अमर फ़ारूक़ी

प्राचीन और मध्यकालीन सामाजिक संरचनाएं और संस्कृतियां



अनुवादक
शाहिद अख़्तर

प्राचीन और मध्यकालीन सामाजिक संरचनाएं और संस्कृतियां

प्राचीन और मध्यकालीन सामाजिक संरचनाएं और संस्कृतियां

अमर फ़ारूकी

अनुवादक
शाहिद अख्तर

ग्रंथ शिल्पी

प्रथम संस्करण 2003
ISBN : 81-7917-007-1

श्यामबिहारी राय द्वारा ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, बी-7,
सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110 092
से प्रकाशित तथा निधि लेज़र प्वाइंट, दिल्ली 110032 से टाइप सेट
होकर नाइस प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली 110 051 में मुद्रित

विषयानुक्रम

प्रस्तावना

पिछले कई साल से मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर '*प्राचीन और मध्यकालीन सामाजिक संरचनाएं और संस्कृतियां*' पाठ्यक्रम के शिक्षण से जुड़ा हूं। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्रों को मानवजाति की उत्पत्ति से लेकर यूरोप में सामंतवाद के उदय तक मानव समाजों के ऐतिहासिक विकास क्रम से अवगत कराना है। हालांकि यह महज एक सर्वेक्षण पाठ्यक्रम माना जाता है, और इसमें व्यापक विषय वस्तु शामिल हैं। इन विषय वस्तुओं से जुड़े साहित्य भी विशाल और व्यापक हैं और मेरे छात्रों ने तथा मैंने अकसर एक संक्षिप्त किताब की जरूरत महसूस की जो पाठ्यक्रम के विषयों पर बुनियादी जानकारियां दे सके। मौजूदा किताब का उद्देश्य विषयों का सामान्य परिचय देना है। किताब मुख्य रूप से पश्चिम एशिया, मिस्र, यूनान और रोम की शुरुआती सामाजिक संरचना पर केंद्रित है। मैंने व्यापक रूप से दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के ढांचे को दिमाग में रखा है, लेकिन साथ ही कुछ ऐसी चीजें भी इसमें शामिल की हैं जो उम्मीद है कि दूसरों के लिए भी फायदेमंद होंगी। यह किताब पूरी तरह से गैर-प्राथमिक स्रोतों पर आधारित है और इसलिए मौलिक शोध का कोई दावा नहीं है।

मैं स्मिता सहगल को धन्यवाद देना चाहूंगा जिनके समर्थन और प्रोत्साहन के बिना यह किताब कभी नहीं लिखी जाती। मैं पी.एस. द्विवेदी का ऋणी हूं जिन्होंने सेंट स्टीफेंस कॉलेज में मेरे शिक्षक के रूप में मुझे इस विषय से रूबरू कराया। बाद में जब मैंने सामाजिक संरचना के पाठ्यक्रम का शिक्षण शुरू किया तो उनके दिशानिर्देश मेरे काम आते रहे। मैं वरजिनियस जाजा का आभारी हूं। उन्होंने मुझे जरूरी जानकारियां देकर पुस्तक लेखन में मेरी मदद की।

हंसराज कॉलेज में अपने छात्रों के साथ काफी लंबे समय के संपर्क और जीवंत बहस-मुबाहिसा ने इस जटिल विषय की मेरी समझ को एक स्वरूप प्रदान किया जिस पर इस किताब में चर्चा की गई है। इसलिए वे सब भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इस पुस्तक की रचना के प्रेरणा स्रोत ग्रंथ शिल्पी के प्रबंध निदेशक श्यामबिहारी राय हैं। उन्हीं का सुझाव था कि पुस्तक मूल रूप से अंग्रेजी में तैयार की जाए और उसका हिंदी अनुवाद करवाकर प्रकाशित किया जाए। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूं। मैं विश्वमोहन झा का आभारी हूं जिन्होंने हिंदी अनुवाद की पांडुलिपि आद्यंत एक-एक पंक्ति पढ़ी, उसमें जरूरी संशोधन किए। अंग्रेजी और हिंदी संस्करणों के लिए उनके द्वारा सुझाए गए कुछ संशोधन महत्वपूर्ण और काफी उपयोगी साबित हुए हैं। मैं

शाहिद अख्तर का भी आभारी हूं जिन्होंने अत्यंत सावधानी से और परिश्रमपूर्वक पुस्तक का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया है। मैं मानक पब्लिकेशंस के एम.पी. यादव के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने इसका अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित किया और हर तरह का सहयोग दिया।

हंसराज कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अमर फ़ारूकी

अध्याय एक

मानव की उत्पत्ति

करीब चार अरब साठ करोड़ (4,600,000,000) साल पहले पृथ्वी के निर्माण और करीब साढ़े तीन अरब साल पहले जैव पदार्थों के आरंभिक रूपों की उत्पत्ति के साथ क्रमिक विकास की एक लंबी प्रक्रिया शुरू हुई। मानवजाति उस क्रमविकास के सर्वाधिक विकसित चरण का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि क्रमविकास की यह प्रक्रिया खत्म हो गई। प्रकृति में लगातार बदलाव हो रहा है। लेकिन नई प्रजातियों की उत्पत्ति कराने वाली तब्दीलियां करोड़ों या लाखों साल के इतने लंबे कालखंड में फैली होती हैं कि उन्हें आसानी से परिलक्षित नहीं किया जा सकता। दरअसल प्रकृति में चलने वाली क्रमविकास की प्रक्रिया जितने बड़े कालखंड में फैली होती है उसे मानव मस्तिष्क आसानी से आत्मसात नहीं कर सकता। मनुष्य अपेक्षाकृत बहुत छोटे पैमाने पर समय को देखने का आदी है। इन तब्दीलियों का एक दूसरा पहलू भी है। इस पहलू को भी ध्यान में रखना चाहिए। इस धरती पर मानवजाति के कदम रखने के साथ ही गुणात्मक रूप से एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई। अब जैविक या प्राकृतिक क्रमविकास ही एकमात्र विकल्प नहीं रहा बल्कि उसमें मानव हस्तक्षेप भी खुद एक कारक बन गया। मानव हस्तक्षेप का मतलब सांस्कृतिक रूपांतरण है जिसने अनेक नई संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त किया है। इस तरह क्रमविकास की प्रक्रिया अब सिर्फ जैविक उत्पत्ति तक ही सीमित नहीं रह गई है।

I

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पहली बार यह सिद्धांत पेश किया गया कि मानवजाति क्रम विकास की एक प्रक्रिया में वजूद में आई है। ब्रिटिश वैज्ञानिक चार्ल्स डारविन (1809-1882) ने पहली बार यह क्रांतिकारी सिद्धांत पेश किया। इस सिद्धांत ने प्रकृति को और साथ ही मानवजाति को देखने का हमारा पूरा नजरिया बदल दिया। डारविन ने पांच साल तक जलपोत एचएमएस बीगल से दक्षिण अमरीका और प्रशांत के विभिन्न हिस्सों की वैज्ञानिक यात्रा की। यात्रा के क्रम में वह कुछ सुदूर द्वीपों और टापुओं तक पहुंचे। वहां उन्हें उस क्षेत्र के वनस्पति और प्राणी जीवन के ढेर सारे अनजाने पहलुओं को जानने का मौका मिला। डारविन ने अपनी यात्रा के दौरान वनस्पतियों और प्राणियों के बारे में ढेर

सारी जानकारी इकट्ठी की। उस यात्रा के दौरान एकत्र की गई उन जानकारियों और उसके बाद किए गए अनुसंधान के फलस्वरूप 1859 में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक *दि ओरिजिन आफ स्पीशीज* (*प्रजातियों की उत्पत्ति*) प्रकाशित हुई। डारविन ने उस पुस्तक में क्रमविकास का अपना सिद्धांत पेश किया।

डारविन के इस सिद्धांत के प्रकाशन से पहले अठारहवीं सदी और उन्नीसवीं सदी के शुरू में प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में कई उल्लेखनीय कार्य हो चुके थे। मसलन वनस्पतियों और प्राणियों के वर्गीकरण के कार्य को आगे बढ़ाया जा चुका था। इस संबंध में स्वीडन के वनस्पतिशास्त्री लनिअस (कार्ल फॉन लने, 1707-78) ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया। वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित वर्गीकरण में कुछ समान लक्षणों वाले वनस्पतियों या प्राणियों को एक समूह में रखा गया। उससे असंख्य प्रकार के जीवजंतुओं के बारे में उपलब्ध आंकड़ों को एक तरतीब मिला। इस तरह सुव्यवस्थित वर्गीकरण ने विभिन्न प्रजातियों के बीच समानताएं और असमानताएं रेखांकित करना आसान कर दिया।

अठारहवीं सदी के अंत में वैज्ञानिकों के बीच यह सोच बनने लगी थी कि प्रकृति का भी अपना एक इतिहास है। अर्थात जीवजंतुओं से भरापूरा यह संसार किसी क्षण अचानक इसी रूप में वजूद में नहीं आ गया, बल्कि वह क्रमविकास की एक ऐतिहासिक प्रक्रिया से गुजर कर यहां तक पहुंचा है। इस तरह मानव समाज की तरह उसका भी अपना कोई इतिहास है। फ्रांसीसी वैज्ञानिक जार्ज दिबुफां (1707-88) ने अनेक खंडों में प्रकाशित अपनी पुस्तक *नेचुरल हिस्ट्री* (*प्राकृतिक इतिहास*) में यह विचार पेश किया कि प्राकृतिक विश्व एक कालखंड में परिवर्तित हुआ है। इस तरह तत्कालीन प्राकृतिक विश्व पहले के युगों की तुलना में भिन्न है।

इस क्रम में शिक्षा की एक वैज्ञानिक शाखा के रूप में भूविज्ञान की स्थापना और जीवाश्म शास्त्र के अध्ययन की शुरुआत से क्रमविकास के सिद्धांत को एक ठोस आधार मिला। भूविज्ञान अनिवार्यतया पृथ्वी की, खासकर चट्टानों की उत्पत्ति, रचना और संरचना का वैज्ञानिक अध्ययन है। जीवाश्म पत्थरों में सुरक्षित प्राचीन वनस्पतियों और प्राणियों के निशान हैं। प्राणियों के जीवाश्म आम तौर पर उनके कड़े भाग मसलन हड्डियों और खोल के अवशेष होते हैं जो पत्थरों के सख्त होने की प्रक्रिया के दौरान उन पर अपना निशान छोड़ जाते हैं। इस तरह सख्त होने पर पत्थर में उक्त प्राणी या वनस्पति की आकृति उभर जाती है। जीवाश्म हमें लाखों या करोड़ों साल पहले रहने वाले वनस्पतियों और प्राणियों की जानकारी देते हैं। वे डायनासोर और उस जैसी लुप्त अन्य प्रजातियों के बारे में हमारी सूचना के मुख्य स्रोत हैं।

जीवाश्म बुनियादी रूप से पत्थर होते हैं। इसलिए उनका अध्ययन भूशास्त्रियों की मदद से करना पड़ता है। भूविज्ञान के विकास ने जीवाश्मों को जानने-समझने में हमारी मदद की है। भूविज्ञान यह निर्धारित करने का माध्यम बना कि जीवाश्म कितना पुराना है

और जीवाश्मीकृत जीव के इर्दगिर्द का माहौल क्या था। बेशक अपने शुरुआती दौर में भूविज्ञान यह बताने में असमर्थ था कि कोई जीवाश्म वास्तव में कितने साल पुराना है। उससे सिर्फ यही अंदाजा लग पाता था कि विभिन्न जीवाश्मों की उत्पत्ति किस क्रम में हुई। ऐसे में यही पता चल पाता था कि कोई जीवाश्म दूसरे जीवाश्म का समकालीन है या उससे पहले या बाद के काल का है। लेकिन तब यह जानना जरूरी था कि किस विशेष कालखंड में क्या परिवर्तन हुए। बहरहाल हम जीवाश्मों के बारे में बाद में चर्चा करेंगे।

विज्ञान के क्षेत्र में हुए इन विकासों ने शेवालिया दी लमार्क (1744–1829) के अध्ययन के लिए जमीन तैयार की। लमार्क एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक थे। फ्रांसीसी क्रांति के कुछ साल पहले उन्हें फ्रांस के सम्राट का वनस्पतिशास्त्री नियुक्त किया गया था। क्रांति के बाद में वह पेरिस में प्राणिशास्त्र के अध्यापक रहे। उन्होंने कई किताबें लिखीं जिनमें 1815 और 1822 के बीच सात खंडों में प्रकाशित *नेचुरल हिस्ट्री आफ इनवर्टेब्रेट एनिमल्स* (*अपृष्ठवंशी प्राणियों का प्राकृतिक इतिहास*) भी शामिल है। लमार्क ने अपनी पुस्तकों में इस बात पर जोर दिया कि वनस्पति और प्राणियों की प्रजातियां परिवर्तनों से गुजरी हैं। उनका कहना था कि प्रजातियां स्थायी और अपरिवर्तनशील नहीं हैं। वे स्थिर नहीं हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाने के क्रम में उनमें भिन्नता आ सकती है। उनका यह विचार उत्पत्ति की दृष्टि से जीवजंतुओं की व्यापक विविधता को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

जीवाश्मों के रूप में मिले साक्ष्यों से इस बात की पुष्टि हुई है कि प्रजातियां तब्दीलियों से गुजरी हैं। समय के साथ प्राणियों और वनस्पतियों की कुछ प्रजातियां लुप्त हो गईं जबकि कुछ नई प्रजातियों की उत्पत्ति हुई और उनकी विभिन्न शाखाएं फली-फूलीं। बहरहाल उन तब्दीलियों के बारे में लमार्क की समझ एकांगी और वैज्ञानिक रूप से गलत थी। लमार्क का कहना था कि तब्दीली तब होती है जब प्राणी अपना कोई खास अंग बार-बार इस्तेमाल में लाता है या फिर उसका इस्तेमाल कम करता है। लमार्क के मुताबिक ज्यादा इस्तेमाल से कोई अंग बड़ा हो जाता है और कम इस्तेमाल से छोटा हो जाता है। अगर उस तब्दीली से उसे परिस्थिति के अनुकूल खुद को ढालने में मदद मिलती है तो यह तब्दीली बाद की पीढ़ियों में भी चली जाती है। उससे नए लक्षणों वाली एक नई प्रजाति की उत्पत्ति होती है। दुर्भाग्यवश लमार्क की इस समझ का अनेक बार क्रमविकास के डारविन के अत्यंत परिष्कृत सिद्धांत के साथ घालमेल कर दिया जाता है।

डारविन की मुख्य प्रस्थापना यह है कि प्रजातियों के कुछेक सदस्यों की मामूली भिन्नताएं आने के कारण नई प्रजातियों की उत्पत्ति हुई। कभी-कभी ये भिन्नताएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचती हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुरानी के साथ नई भिन्नताओं के जुड़ने के एक लंबे (अकसर लाखों या करोड़ों साल तक चलने वाला) सिलसिले के नतीजे में एक नई प्रजाति वजूद में आती है। डारविन के मुताबिक एक पीढ़ी से दूसरी

पीढ़ी में तब्दीलियों या भिन्नताओं के प्रवेश करने का क्रम तभी तक जारी रहता है जब तक वे उस प्रजाति को माहौल के अनुरूप खुद को बेहतर ढंग से ढालने में या अस्तित्व की बेहतर रक्षा करने में उसका मददगार होती है। आनुवंशिकता के सिद्धांत के तहत उन भिन्नताओं का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाना संभव हो पाता है। अगर उन भिन्नताओं से प्राणी की मौत नहीं हो या वे माहौल के अनुरूप अपर्याप्त रूप से खुद को ढालने में मददगार नहीं होती है तो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाने का उन भिन्नताओं का सिलसिला जारी रहता है। यह प्राकृतिक चयन है। सर्वाधिक उपयुक्त का चयन होगा यानी सर्वाधिक उपयुक्त जीवित बचेगा।

अस्तित्व के अनवरत संघर्ष को, अर्थात स्थितियों के अनुरूप खुद को बेहतर ढंग से ढालने के संघर्ष को किसी खास पर्यावरण के संसाधन को लेकर विभिन्न जीवों के बीच प्रतिस्पर्धा के संदर्भ में देखा जा सकता है। लेकिन पर्यावरण भी अपने-आप में कोई स्थिर चीज नहीं है। वह समय के साथ बदलता है और उससे तालमेल बैठाना जरूरी होता है। अगर कोई प्रजाति किसी पर्यावरण विशेष के अनुकूल खुद को ढालने में सफल रहती है तो उसकी आबादी बढ़ती है। इस तरह पर्यावरण से जूझने में और अस्तित्व के संघर्ष में मदद करने में उसकी अतिरिक्त भूमिका होती है। मामूली तब्दीली किसी जीव को बेहतर ढंग से प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता प्रदान कर सकती है। इस तरह एक संचयी प्रक्रिया से एक प्रजाति (या अनेक प्रजातियां) वजूद में आ सकती है जो उस पर्यावरण में विभिन्न तरीकों से अपना अस्तित्व बनाए रखती है। बेहतर ढंग से अस्तित्व बनाए रखने का अर्थ महज बेहतर ढंग से जीने में सक्षम होना नहीं है बल्कि सफलतापूर्वक प्रजनन करना भी है। यहां हमें दो महत्वपूर्ण बिंदुओं को दिमाग में रखना चाहिए। पहली बात तो यह कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाने वाली ये भिन्नताएं बहुत छोटी या मामूली होती हैं। अगर ऐसा नहीं हो तो अगली पीढ़ी उन भिन्नताओं के साथ टिक नहीं पाएगी और खत्म हो जाएगी। ये भिन्नताएं एक बड़े कालखंड में लाखों पीढ़ियों से गुजरते हुए आकार ग्रहण करती हैं। हरेक पीढ़ी की अपनी शाखा, उपशाखा इत्यादि होगी। हरेक स्तर पर ऐसी संभावनाएं होंगी कि न सिर्फ पुरानी भिन्नताएं अगली पीढ़ी तक पहुंचें, बल्कि कुछ नई भिन्नताएं भी उनसे जुड़ जाएं। हर नई पीढ़ी के साथ उसकी एक नई शाखा शुरू होती है। लेकिन उसमें नई भिन्नताएं विभिन्न संयोजनों में शामिल हो सकती हैं। इस तरह एक ही पीढ़ी के सभी सदस्यों में एक ही तरह की भिन्नताएं नहीं होंगी। अत: विभिन्न शाखाएं क्रमविकास के भिन्न-भिन्न रास्तों पर बढ़ेंगी। यह हमें एक दूसरे बिंदु पर पहुंचाता है। तमाम भिन्नताओं को उस जीव के लिए बेहतर और उपयोगी नहीं समझा जाना चाहिए। कुछ भिन्नताएं ऐसी भी होती हैं जो अपने कारण या अपनी पूर्ववर्ती भिन्नताओं के साथ जुड़कर क्रमविकास की यात्रा में उस जीव को एक बंद गली में पहुंचा देती हैं। भिन्नताओं की गणितीय संभावनाएं अर्थात पीढ़ियों की भारी-भरकम संख्या को संभाव्य भिन्नताओं

से गुणा करने पर जो संख्या मिलती है, वह सिर चकरा देने वाली है। यही कारण है कि हम जीवों में इस कदर विविधिता पाते हैं।

डारविन ने क्रमविकास की गत्यात्मकता समझने के लिए हमें न सिर्फ एक विश्वसनीय सिद्धांत दिया, बल्कि उन्होंने दिखाया कि क्रमविकास की इस प्रक्रिया में मानवजाति भी शामिल है। अनेक लोग डारविन के सिद्धांत का यह हिस्सा स्वीकार नहीं कर पाते। लिहाजा वे उसका विरोध करते हैं। डारविन ने दिखाया कि अन्य जीव-जंतुओं के समान मानवजाति भी क्रमविकास का नतीजा है। मानवजाति इस धरती पर इसी रूप में कोई बनी-बनाई अवतरित नहीं हुई बल्कि अपनी पूर्ववर्ती आद्य जीवनरूपों से विकसित हुई। उन्होंने मानवजाति के विकास के संबंध में अपने पूर्ण विकसित तर्क अपनी अगली पुस्तक *डिसेंट आफ मैन* (*मानव का अवतरण,* 1871) में पेश किया। बाद के वैज्ञानिक अनुसंधानों ने उनकी दलीलों की पुष्टि कर दी।

हम अतीत में जितनी दूर तक जाएंगे, समान पूर्वज वाली प्रजातियों की संख्या उतनी ही बढ़ती जाएगी। समान पूर्वजों की यह खोज वानर, नरवानर, स्तनधारी प्राणी, पृष्ठवंशी और बहुकोशीय जीवों से होते हुए हमें करोड़ों वर्ष पहले के एककोशीय जीवों तक पहुंचाती है। उन सब के ढेर सारे लक्षण समान हैं क्योंकि हमारे पूर्वज एक हैं। मामला यह है कि हम सिर्फ प्राइमेट के ही वंशज नहीं हैं जो क्रमविकास के वृक्ष में हमसे सबसे नजदीक है, बल्कि हम कुछ अत्यंत आद्य जीवन रूपों से भी विकसित हुए हैं।

बीसवीं सदी के वैज्ञानिक विकास ने स्पष्ट कर दिया कि उनके साथ एक अनिवार्य चीज—डीएनए में हमारी भागीदारी है। जैसा कि हम जानते हैं कि डीएनए या जींस जीवन की बुनियाद है। ये अणुओं की ऐसी रचना हैं जो गैर-जैव पदार्थों के अणुओं से इस मायने में बुनियादी तौर पर भिन्न होते हैं कि उनमें खुद को दोहराने (अर्थात खुद अपनी 'प्रतियां' बनाने) की क्षमता होती है। साथ ही उनमें अपनी उन 'प्रतियों' को खुद को दोहराने का निर्देश देने की भी क्षमता होती है। इस तरह प्रजनन और उत्पत्ति का एक अनवरत सिलसिला जारी रहता है।

डीएनए छोटे अणुओं की लंबी शृंखला होते हैं। छोटे अणु (या न्यूक्लियोटाइड) आपस में जुड़कर एक लंबी शृंखला बनाते हैं। क्रोमोजोम में अवस्थित उन शृंखलाओं में सूचनाएं कुछ इसी तरह समाहित होती हैं जिस तरह वे कंप्यूटर की 'मेमोरी' में या फ्लापी डिस्क में होती हैं। ये सूचनाएं किसी प्रजाति का आनुवांशिक कोड होती हैं। डीएनए के कोड या सूचनाएं निर्देश उपलब्ध कराती हैं जिनका इस्तेमाल प्राणी या वनस्पति की कोशिकाओं के निर्माण में होता है। जीवों में अनेक प्रकार की कोशिकाएं होती हैं। वे डीएनए की उन सूचनाओं का इस्तेमाल करती हैं जो उनके लिए जरूरी होती हैं। किसी जीव में तरह-तरह की कोशिकाएं होती हैं जो अलग-अलग तरह का काम करती हैं। फिर भी एक ही जीव की तमाम कोशिकाओं का 'कोड' या डीएनए एक होता है। डीएनए को

सूचनाओं का एक बड़ा जखीरा मानना चाहिए जो क्रमविकास की प्रक्रिया से होता हुआ उस जीव तक पहुंचा है। यह संभव है कि कोई प्रजाति उतनी सारी सूचनाओं का इस्तेमाल नहीं कर पाए। वैज्ञानिकों का कहना है कि अत्यंत आद्य जीवन रूपों तक के डीएनए में इतनी सारी सूचनाएं हो सकती हैं जिसके सामने भारी-भरकम *इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका* के सारे खंड भी छोटे पड़ जाएं। यहां यह समझना जरूरी है कि डीएनए में ऐसी सूचनाएं होती हैं जो अस्तित्व बनाए रखने में उस जाति की सहायक होती हैं। प्रजनन की प्रक्रिया में जेनेटिक कोड और उस तरह उस प्रजाति द्वारा एकत्रित तमाम सूचनाएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संप्रेषित होती हैं। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि डीएनए इस मायने में अनूठे हैं कि उनमें खुद को एक से दो बनाने की क्षमता होती है। खुद से अपनी प्रतियां तैयार करना और उन प्रतियों को यह प्रक्रिया दोहराने का निर्देश देना डीएनए को अन्य अणुओं से भिन्न तथा विशिष्ट बनाता है। गौरतलब है कि प्रजनन की क्षमता जीवों को परिभाषित करती है। अन्यथा जैव और गैर-जैव पदार्थ सभी महज अणु ही तो हैं। अपनी प्रतियां बनाने और फिर उन प्रतियों को यही प्रक्रिया दोहराने का निर्देश देने की डीएनए की इस विशेषता से क्रमविकास की प्रक्रिया चलती है।

करीब साढ़े तीन अरब साल के इस लंबे काल के दौरान हर बार ऐसा नहीं हुआ कि डीएनए की हूबहू प्रति ही बन गई। अनेक बार उसमें बहुत मामूली गलती भी हुई। उससे तब्दीलियों की संभावनाएं बनीं। तमाम प्रतियों का एकसमान होना जरूरी नहीं है। इस तरह जीवों की उत्पत्ति हुई। डीएनए में अपनी हूबहू प्रतियां बनाने की अद्‌भुत क्षमता होती है। आम तौर पर ये प्रतियां त्रुटियों से मुक्त होती हैं। लंबे काल तक ऐसा चलता रहता है। उस दौरान त्रुटियों से मुक्त दसियों लाख प्रतियां बन जाती हैं। लेकिन प्रजनन इस कदर जटिल प्रक्रिया है कि कभी-कभार उसमें एकाध मामूली गलती हो सकती है। महज एक छोटी सी सूचना की प्रति बनने में उसके संप्रेषण में गलती होती है और उससे उत्परिवर्तन अमल में आता है। चूंकि आंकड़े या सूचनाएं बेशुमार होती हैं इसलिए गलती होने की संभावना भी अपार होती हैं। अगली पीढ़ी में उत्परिवर्तन बरकरार रहेगा या नहीं रहेगा, यह इस पर निर्भर करता है कि वह उस जीव को अपना अस्तित्व बनाए रखने में किस हद तक मदद करता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाने की उत्परिवर्तन की लंबी और संचयकारी प्रक्रिया तथा प्राकृतिक चयन से एक नई प्रजाति की उत्पत्ति होती है।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि *दि ओरिजिन आफ स्पीशीज* के प्रकाशन के तकरीबन 150 साल बाद आज भी मानवजाति की उत्पत्ति समेत क्रमविकास की समूची प्रक्रिया समझने के लिए डारविन का सिद्धांत ही एकमात्र संतोषप्रद परिकल्पना है। यह बात तब और भी आश्चर्यजनक लगेगी जब हम यह महसूस करेंगे कि डारविन की पहुंच उन जानकारियों तक नहीं थी जिन्हें पिछले 50-60 सालों के दौरान हुई वैज्ञानिक प्रगति ने आज वैज्ञानिकों के कदमों पर डाल दिया है। व्यापक फलक वाला आण्विक जीवविज्ञान

(मौलिक्यूलर बायोलॉजी) का विकास अभी हाल में हुआ है। उसने डारविन के सिद्धांत की पुष्टि की है। इतने लंबे समय के बाद अब कहीं जाकर वैज्ञानिकों ने क्रमविकास की प्रक्रिया बारीकी से समझना शुरू की है। लेकिन अब भी ढेर सारे रहस्यों पर से परदा उठना बाकी है। जब तक कोई कामकाजी परिकल्पना नहीं होती है तो तथ्य अपने आप बहुत कुछ की व्याख्या नहीं कर पाते। ऐसी बात नहीं कि डारविन को उन सभी बातों की जानकारी थी जो आज आनुवांशिकी हमें बताता है। लेकिन जैसा हर अच्छे सिद्धांत के साथ होता है, डारविन के सिद्धांत में नए-नए तथ्यों का समावेश कर उसे अद्यतन बनाया जा सकता है क्योंकि वे उसके बुनियादी उसूलों को नहीं काटते।

वैज्ञानिक अब आमतौर पर डारविन के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। फिर भी कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि उसमें कुछ फेरबदल की जरूरत है। उनका कहना है कि अगर हम क्रमविकास को एक खास रफ्तार से चलने वाली प्रक्रिया के रूप में देखें तो जीवों की बेशुमार संख्या की उत्पत्ति को समझने के लिए अब तक का समय पर्याप्त नहीं है। स्टीफन जे गूल्ड का कहना है कि डारविन के सिद्धांत के मुताबिक परिवर्तन बहुत धीमे और क्रमिक रूप से होता है। गूल्ड के अनुसार क्रमविकास के दौरान ऐसे लंबे अंतराल भी रहे हैं तब वस्तुत: कोई तब्दीली अमल में नहीं आती जबकि ऐसे छोटे काल भी रहे हैं जब बड़ी तेज रफ्तार से अनेक प्रजातियों की उत्पत्ति हुई। यह उन धारणाओं से भिन्न है जिनके मुताबिक एक लंबी छलांग के साथ बड़ी तब्दीलियां अमल में आईं। इससे सिर्फ यही अर्थ लगाया जा सकता है कि कुछ खास उत्परिवर्तनों ने एक छोटे काल के लिए उत्पत्ति को गति दी होगी। क्रमविकास की प्रक्रिया उससे तेज हुई।

गूल्ड ने जीवाश्मों की व्याख्या के आधार पर अपने तर्क रखे हैं। वह खुद भी एक जीवाश्मशास्त्री है। जैसा हमने पहले ही देखा है, जीवाश्म क्रमविकास की दिशा दरशाने वाले हमारे कुछ शुरुआती औजारों में एक है। उन्नीसवीं सदी का भूविज्ञान जीवाश्मों को समझने में ज्यादा मददगार नहीं था। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भौतिकी और रसायनशास्त्र में विकास से उस क्षेत्र में अग्रगति हुई। उनसे भूविज्ञान समृद्ध हुआ और जीवाश्मशास्त्र विश्वसनीय विज्ञान बना। लुप्त हो चुकी प्रजातियों के बारे में अब हमारे पास बेहतर जानकारी है। गूल्ड जैसे कुछ जीवाश्मशास्त्री इस बात से परेशान हैं कि जीवाश्म के हमारे साक्ष्यों के बीच एक लंबा अंतराल है। उनका कहना है कि यह अंतराल महज इसलिए नहीं है कि मध्यवर्ती काल के जीवाश्म खोजे नहीं जा सके। गूल्ड कहते हैं कि ऐसा भी हो सकता है कि किसी मध्यवर्ती काल का कोई वजूद ही नहीं हो। उनका कहना है कि अगर क्रमविकास झटके में हुआ होगा तो हमें इसी तरह के जीवाश्मों के साक्ष्य मिलेंगे जो अभी हमारे पास हैं। लेकिन प्रख्यात प्राणिशास्त्री रिचर्ड डाकिंस ने गूल्ड के उन विचारों का इस आधार पर खंडन किया कि झटके में तब्दीलियां होने पर नई विशेषताओं वाले समूह के लिए परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाना बेहद कठिन हो जाएगा। जीवाश्मों

में अंतराल की व्याख्या कई तरह से की जा सकती है। एक व्याख्या तो यह हो सकती है कि जीवों का एक समूह मुख्य आबादी से दूर चला गया होगा और वहां अलग-थलग रहकर क्रमविकास की प्रक्रिया से गुजरा होगा। क्रमविकास की प्रक्रिया में एक नई प्रजाति की उत्पत्ति हुई होगी। फिर वह अपने पुराने निवास स्थल पर लौट गया होगा। ऐसी स्थिति में उस स्थान पर दो भिन्न प्रजातियों के जीवाश्म मिलेंगे तथा मध्यवर्ती क्रम गायब होगा। मध्यवर्ती क्रम की जानकारी के लिए हमें वहां जाना होगा जहां वह प्रजाति मुख्य आबादी से अलग-थलग क्रमविकास की प्रक्रिया से गुजरी थी। इस तरह की व्यापक खोज होने की उम्मीद नहीं है। लिहाजा हमें बड़े अंतराल से दो-चार होना पड़ता है।

II

अभी मौजूद प्रजातियों में से वानर और बंदर मानवजाति से बहुत मिलते-जुलते हैं। बंदर, वानर और मानव में ढेर सारी समानताएं हैं। अगर वैज्ञानिक शब्दावली का इस्तेमाल किया जाए तो उन्हें एक ही आर्डर में रखा जाता है। बंदर, वानर और मानव (तथा लेमुर जैसे कुछ अन्य जीवों को) 'प्राइमेट' (नरवानर) के क्रम में रखा जाता है। नरवानर एक बड़े ग्रुप स्तनधारी पृष्ठवंशी का एक हिस्सा है। सभी पृष्ठवंशी (मत्स्य, उभयचर, पक्षी, सृप और स्तनधारी) का मेरुदंड होता है जो चकतियों (कशेरुक) का एक स्तंभ होता है और उसके अंदर मेरु रज्जु होती है। मेरुदंड शरीर को आंतरिक मजबूती देता है। स्तनधारी प्राणियों के हाथ-पांव होते हैं। उनके शरीर बालों से ढके होते हैं। वे गर्म खून वाले जीव होते हैं, अर्थात उनके शरीर का तापमान कमोबेश स्थिर रहता है। मादा स्तनधारी अंडे नहीं देती बल्कि बच्चे को जन्म देती है। फिर भी अपवाद के रूप में प्लैटिपस और ऐंटईटर जैसी कुछ प्रजातियां हैं जो अंडे देती हैं (अंडज स्तनी)। उसके अलावा स्तनधारी की कुछ प्रजातियां हैं जिनमें बच्चा पूरी तरह विकसित होने से पहले जन्म ले लेता है। उन्हें मार्सुपियल्स कहते हैं। मां के शरीर में एक थैली होती है जिसमें नवजात शिशु अपने अधूरे विकास की प्रक्रिया पूरी करता है। कंगारू इसका सबसे जाना-पहचाना उदाहरण है। तमाम स्तनधारियों में एक चीज समान है, स्तनग्रंथि; जिससे बच्चों की परवरिश के लिए दूध का स्राव होता है।

शुरुआती नरवानरों की उत्पत्ति ऐसी विशेषताओं के साथ हुई जिससे वे पेड़ों पर जीवन-यापन के लिए खुद को सक्षम बना पाए। नरवानरों में ऐसी विशेषताएं हैं जिसके कारण वे बड़ी आसानी से पेड़ों पर चढ़ सकते हैं और उन पर घूम सकते हैं। वे अपने अगले पांव का इस्तेमाल बहुत करते हैं। उनके नाखून चपटे होते हैं और हाथ के अंगूठे तर्जनी की विपरीत दिशा में होते हैं। नरवानरों के हाथ और पांव परिग्राही होते हैं, अर्थात वे किसी चीज को पकड़ने के लिए उपयुक्त होते हैं। वे अपने हाथ-पांव के सहारे पेड़ों के तनों पर

आसानी से चढ़ और उतर सकते हैं या फिर टहनियां पकड़कर तथा उन्हें जकड़कर एक टहनी से दूसरी टहनी पर छलांग लगा सकते हैं। जिन स्तनधारियों में ये विशेषताएं नहीं होती हैं, उन्हें दूसरे उपाय करने पड़ते हैं। मसलन पेड़ के तनों या टहनियों को पकड़ने के लिए उन्हें अपने पंजे गड़ाने पड़ते हैं। नरवानरों के हाथ और पांव के आकार उन्हें पेड़ के तनों या टहनियों को मजबूती से पकड़ने में मदद करते हैं। नरवानरों में पंजे छोटे हो गए और नाखून चिपटे हो गए (कुत्ता और बिल्ली से तुलना करें)। जिस तरह से नरवानरों की उंगलियां विकसित हुई हैं (वे एक दूसरे से अलग हो गई हैं)। और तर्जनी के विपरीत दिशा में अंगूठा के होने से उनको किसी चीज के इर्दगिर्द अपना हाथ फैलाने और उसको अपने हाथ में जकड़ने में कोई दिक्कत नहीं होती। साथ ही उनके अगले पांव में घूमने, लचकने और बढ़ने की क्षमता होती है।

नरवानरों ने अपनी उत्पत्ति के दौरान त्रिविमदर्शी दृष्टि पा ली। इसका मतलब यह हुआ कि उनके नेत्रगोलक इस तरह अवस्थित होते हैं कि दृष्टि के दो क्षेत्र जुड़कर उनको अपने इर्दगिर्द की त्रिआयामी तसवीर देते हैं। त्रिविमदर्शी दृष्टि उन्हें दूरी और गहराई समझने में मदद करती है जो पेड़ों पर चलने के लिए जरूरी होता है। कुछ और जंतुओं जैसे बाज की दृष्टि भी त्रिविमदर्शी होती है।

नरवानरों की उत्पत्ति करीब सात करोड़ साल पहले शुरू हुई थी। दसियों लाख साल तक वे पेड़ों पर रहने वाले प्राणी के रूप में विकसित होते रहे। उनके विशेष आकार-प्रकार, यानी परिग्राही हाथ-पांव, त्रिविमदर्शी दृष्टि इत्यादि सभी पेड़ पर उसके जीवनयापन में मददगार रहे। पेड़ों ने उन्हें जीवनयापन की लगभग तमाम चीजें मसलन फल, पत्तियां, कीड़े और पक्षियों के अंडे मुहैया कराए। वे जमीन पर उतरे बगैर पेड़ की एक शाखा से दूसरी शाखा पर उछलते-कूदते और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग लगाते। भारत के ज्यादातर हिस्सों के लोगों को मालूम है कि बंदर कितनी आसानी के साथ पेड़ों पर घूमते-फिरते हैं।

नरवानर की तमाम मौजूद और लुप्त प्रजातियों को दो उपखंडों (सबआर्डर) प्रोसिमी और एंथ्रोपोइडिया में वर्गीकृत किया जाता है। प्रोसिमी के तहत ज्यादा आदिम प्राणी आते हैं जिनकी उत्पत्ति पहले हुई थी। एंथ्रोपोइडिया के तहत ज्यादा विकसित नरवानर जैसे बंदर, वानर और मानव आते हैं। प्रोसिमी के तहत लेमूर, लॉरिस और टार्सियर आते हैं। कुछ प्राणिशास्त्री पेड़ों पर रहने वाले छछूंदर (टुपैआडिया) को भी इसी श्रेणी में रखते हैं। वे गिलहरी जैसे बहुत छोटे प्राणी होते हैं। वे संभवत: कीटभक्षी से शुरुआती नरवानर में संक्रमण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रोसिमी की विभिन्न प्रजातियां मुख्यत: अफ्रीका और दक्षिण एशिया में पाई जाती हैं। लेमूर अभी सिर्फ मदगास्कर में मिलते हैं। वे आकार में बहुत छोटे होते हैं। लेकिन उनकी आंखें बड़ी-बड़ी और खोपड़ी के अग्र भाग में (किनारे नहीं) पास-पास स्थित

होती हैं। ये आखें हड्डी के जिस ढांचे में स्थित होती हैं वह प्रोसिमी और एंथ्रोपोइडिया में अलग-अलग तरह के होते हैं। प्रोसिमी की आंखें एक वलयाकार ढांचे में स्थित होती हैं जबकि एंथ्रोपोइडिया की आंखों का कोटर प्यालानुमा होता है। प्रोसिमी की आंखों का दृष्टि क्षेत्र वलयाकार ढांचे के कारण सीमित होता है। एंथ्रोपोइडिया का प्यालानुमा कोटर उसकी आंखों को विभिन्न दिशा और कोणों पर घूमने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। यह बढ़िया दृष्टि के लिए महत्वपूर्ण है।

करीब चार करोड़ वर्ष पहले एंथ्रोपोइडिया बंदर की उत्पत्ति के साथ प्रोसिमी से अलग हो गए। एंथ्रोपोइडिया को तीन उपसमूहों या महापरिवारों (सुपर फेमिलीज) में विभाजित किया जाता है। उनमें से दो महापरिवार बंदरों के हैं। उन दो महापरिवारों को कर्कोपिथेइडिया (पुरानी दुनिया के बंदर) और सिबोइडिया (नई दुनिया के बंदर) के नाम से जाना जाता है। उनके बीच दांतों की रचना का फर्क है। बहरहाल हमें इस वर्गीकरण के झंझट में नहीं पड़ना है। यहां यह कहना काफी है कि प्रोसिमी के सदस्यों की तुलना में बंदरों के अगले पांव ज्यादा विकसित होते हैं। उनकी निगाह तेज होती है, चेहरा चपटा होता है, और थूथन छोटी होती है। वे पेड़ों पर जीवनयापन करने में दक्ष होते हैं और एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक छलांगें लगाते हुए लंबी दूरी तय कर सकते हैं। लंगूर जैसी उनकी कुछ प्रजातियां अपनी लंबी पूंछ का इस्तेमाल एक अतिरिक्त पैर के रूप में कर सकती हैं। पूंछ छलांग के दौरान शारीरिक संतुलन बनाए रखने में भी सहायता करती है। लंगूर एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक लंबी छलांग लगा सकता है। उसकी छलांग बहुत सुंदर होती है और किसी छोटी उड़ान सी लगती है। यह पेड़ों पर जीवनयापन की दक्षता का द्योतक है। बच्चों के दक्ष और परिग्राही हाथ-पांव हमारी अपनी उत्पत्ति के एक महत्वपूर्ण मोड़ की तरफ इशारा करते हैं। उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों के दौरान डारविन के इस मत का व्यापक विरोध हुआ था कि हमारी उत्पत्ति बंदरों से हुई है। बंदरों के साथ हमारी समानता स्पष्ट है। लेकिन अकसर उत्पत्ति की यह बात स्वीकार करने में दिक्कत होती है। यह एक खास चिंतन प्रणाली को दिखाता है जिसे बदलना बहुत आसान नहीं होता है। आम तौर पर जब हम बंदरों को कुछ करते हुए, जैसे केला को छिलका छीलते हुए देखते हैं तो हमारी तत्काल यही प्रतिक्रिया होती है कि बंदर अपने हाथों का जिस तरह इस्तेमाल करते हैं, वह हमसे बहुत मिलता-जुलता है। लेकिन बंदरों ने हमारी उत्पत्ति से बहुत पहले ही अपने हाथों को 'हमारे जैसा इस्तेमाल करना' सीख लिया था। इस तरह हम बंदरों के जैसा व्यवहार करते हैं, न कि वे हमारी नकल करते हैं।

क्रमविकास के इतिहास का अगला चरण करीब तीन करोड़ साल पहले वानरों की उत्पत्ति के साथ शुरू होता है। वानर और मानव दोनों को एक ही महापरिवार 'होमोनोइडिया' में रखा जाता है जो उपखंड (सबआर्डर) एंथ्रोपोइडिया का तीसरा महापरिवार है (पहले दो में बंदर आते हैं)। वानरों की विभिन्न प्रजातियां हैं : चिंपैंजी, गोरिल्ला, गिब्बन, ओरांग-

उटांग इत्यादि। उन्हें एक साथ पोंगीडे परिवार में रखा जाता है(यहां यह दोहराना उचित होगा कि प्राणिशास्त्री प्राणियों का वर्गीकरण आर्डर, सबआर्डर, सुपर फेमिली, फेमिली, जीनस और स्पीशीज जैसी श्रेणियों में करते हैं)। दूसरे शब्दों में महापरिवार होमीनिडिया को दो परिवारों में विभक्त किया जाता है : (i) पोंगीडे (वानर); और (ii) होमीनिडे (मानव और मानव के निकटतम पूर्वजों की लुप्त प्रजातियां)। वानर और मानव दोनों एक ही महापरिवार के सदस्य हैं। वे मौजूद प्रजातियों में एक दूसरे के निकटतम संबंधी हैं। वे संभवत: अफ्रीका के जगलों में पहली बार बंदरों से अलग हुए। पर्यावरण के अनुकूल खुद को ढालने के लिए अलग रास्ता अपनाने के कारण वानर की उत्पत्ति हुई। बंदरों की तुलना में वानर बड़े आकार के होते हैं। उनके श्वदंत बड़े और शक्तिशाली होते हैं। वानरों की कुछ प्रजातियां (चिंपैंजी, गोरिल्ला और ओरांग-उटांग) के अगले पांव उनके पिछले पांव की तुलना में बड़े होते हैं। दूसरे वानरों मसलन गिब्बन का शरीर छोटा होता है और उनके हाथ-पांव लंबे होते हैं (इसलिए कुछ प्राणिशास्त्री गिब्बन और सियामिंग को एक अलग परिवार हाइलौबैटिडे में वर्गीकृत करते हैं)। बंदरों के विपरीत वानर पेड़ों पर जीवनयापन में दक्ष नहीं होते हैं। वे भोजन और सुरक्षा की तलाश में पेड़ों पर चढ़ते हैं। लेकिन वे जमीन पर मौजूद संसाधनों का भी इस्तेमाल करने की लगातार कोशिश करते हैं। गोरिल्ला का शरीर भरी-भरकम होता है। वे अपना ज्यादा समय जमीन पर ही गुजारते हैं। वयस्क चिंपैंजी को भी पेड़ों पर फुर्ती से चलने में कठिनाई होती है। जमीन पर चलते समय गोरिल्ला और चिंपैंजी का शरीर आधा तना हुआ होता है। वे चलने-फिरने में हाथ पांव का इस्तेमाल करते हैं। चलते समय वे टखनों के पांचों की मदद लेते हैं। वानरों ने जिंदा रहने के लिए जो तरीका अपनाया, वह कामयाब रहा। करीब दो करोड़ वर्ष पहले अफ्रीका में वानरों की प्रजातियों की आबादी बंदरों से ज्यादा थी।

लगभग उसी समय कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। जीवाश्म के साक्ष्यों ने एक वानर की उत्पत्ति का रहस्योद्घाटन किया है। जो करीब दो करोड़ साल पहले अफ्रीका में रहता था और जमीन पर जीवनयापन के अनुकूल खुद को ढाल चुका था। उस तरह के वानर को 'ड्रायोपिथेकस' के नाम से पुकारा जाता है। करीब डेढ़ करोड़ साल पहले वह एशिया चला आया। भूवैज्ञानिक हमें बताते हैं कि करीब डेढ़ करोड़ साल पहले अफ्रीकी-अरब भूभाग एशिया से टकराया। उससे दोनों महाद्वीप आपस में मिल गए और अफ्रीका के प्राणियों के एशिया पहुंचने की स्थिति बनी। ड्रायोपिथेकस की एक शाखा अलग हो गई। वह वानर से मिलते-जुलते एक छोटे आकार के प्राणी में विकसित हुई। उसे 'रैमापिथेकस' का नाम दिया गया है। रैमापिथेकस का पहला जीवाश्म 1930 के दशक में भारत में मिला।

बाद में 1960 के दशक के प्रारंभ में कहा गया कि रैमापिथेकस होमीनिडे का अब तक का ज्ञात सबसे शुरुआती प्रजाति है। दूसरे शब्दों में रैमापिथेकस उस बिंदु का

प्रतिनिधित्व करता है जहां से होमीनिड (होमीनिडे) वानर (पोंगिडे) से अलग हुए। बहरहाल यह व्याख्या जीवाश्म के एक अत्यंत अपर्याप्त साक्ष्य पर, जबड़े के एक छोटे से हिस्से पर आधारित था। रैमापिथेकस के जीवाश्मों की खोज के लिए शिवालिक की पहाड़ियों में सघन अभियान चल रहा है। रावलपिंडी के इलाके में कुछ जीवाश्म भी मिले हैं। रैमापिथेकस ऐसे माहौल में रहने में दक्ष थे जहां जंगल ज्यादा घना नहीं हो। लेकिन इसमें शक है कि वह सीधे तनकर चल पाता होगा। रैमापिथेकस करीब अस्सी लाख साल पहले इस धरती पर से लुप्त हो गया।

आण्विक जीवविज्ञान के क्षेत्र में हाल में हुई खोजों ने जीवाश्मों पर हमारी निर्भरता घटा दी है। उसके तहत अब जीवित प्रजातियों के डीएनए की तुलना की जाती है और यह पता लगाने की कोशिश की जाती है कि उनमें उत्परिवर्तन की दर क्या रही होगी। इस नए तरीके ने क्रमविकास के कुछ चौंका देने वाले पहलू उजागर किए हैं। एशियाई और अफ्रीकी वानरों के क्रमविकास का रास्ता बहुत पहले लुप्त हो गया था। डीएनए के विश्लेषण के हिसाब से अफ्रीकी वानर मनुष्यों से जितना भिन्न है, उससे कहीं ज्यादा भिन्न वे अपने एशियाई भाइयों से हैं। पहले मानव और अफ्रीकी वानरों में जितनी नजदीकी मानी जाती थी, दोनों उससे कहीं ज्यादा निकट निकले। एशियाई वानर करीब डेढ़ करोड़ साल पहले अफ्रीका से एशिया चले आए और क्रमविकास के भिन्न रास्ते पर चलने लगे। रैमापिथेकस क्रमविकास की इसी प्रक्रिया में शामिल रहे (एक करोड़ बीस लाख साल पहले)। अफ्रीकी वानर और एशियाई वानर डेढ़ करोड़ साल पहले एक-दूसरे से अलग हो गए तथा क्रमविकास की प्रक्रिया में भिन्न दिशा में चल पड़े। अफ्रीकी वानरों की तीन प्रजातियां जैसे गोरिल्ला, आम चिंपैंजी और बौना चिंपैंजी अभी जीवित हैं। 70 लाख साल पहले अफ्रीकी वानर दो समूहों में बंट गए। एक समूह सीधे मानवजाति में विकसित हो गया। मानव की उत्पत्ति की जो नई तसवीर अब हमारे पास है, उससे संकेत मिलते हैं कि (i) मानव एशियाई वानर के बजाए अफ्रीकी वानर (गोरिल्ला, चिंपैंजी) से विकसित हुआ है और (ii) शुरुआती मानव अफ्रीकी वानर से अपेक्षाकृत हाल में यानी 70 लाख साल पहले विकसित हुआ (न कि डेढ़ करोड़ साल पहले जैसा कि पहले समझा जाता था)।

अगर हम आण्विक जीवविज्ञान के साक्ष्य स्वीकार करते हैं तो हम शुरुआती होमीनिड को 70 लाख साल पहले का मान सकते हैं। बदकिस्मती से 80 लाख और 40 लाख साल पहले के बीच के महत्वपूर्ण काल के जीवाश्म हमारे पास उपलब्ध नहीं हैं। तकरीबन 40 लाख साल पहले के जीवाश्मों से संकेत मिलता है कि होमीनिड की उत्पत्ति दो चरणों में हुई । पहले चरण में दो पांव पर चलने की शुरुआत हुई जबकि दूसरे चरण में मस्तिष्क का आकार तेजी से बढ़ा। डारविनियाई दृष्टिकोण से दोनों विकास एक साथ हुए। पिछली सदी तक यही समझ बनी रही। यहां यह इंगित करना जरूरी है कि डारविन की यह समझ

मुख्यतः तुलनात्मक शरीर-रचनाविज्ञान पर, जीवित प्रजातियों और वानरों की शारीरिक रचना के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित थी। डारविन के समय में (निएंडरथल जीवाश्मों को छोड़कर) शुरुआती मानव का कोई जीवाश्म उपलब्ध नहीं था। उस वक्त खुद जीवाश्म-शास्त्र भी शुरुआती दौर में था। अतिरिक्त जीवाश्म उपलब्ध होने के बावजूद बीसवीं सदी में कुछ वैज्ञानिकों के लिए यह विचार तजना आसान नहीं था कि दो पांव पर चलना और मस्तिष्क का विकास दोनों प्रक्रियाएं साथ-साथ चलीं। यहां यह बताना जरूरी है कि दोनों के बीच कम से कम 30 लाख साल का अंतराल था।

जीवाश्म और आण्विक साक्ष्य, दोनों को साथ लेने पर पता चलता है कि दो पांव पर चलने की शुरुआत 70 लाख साल पहले हुई। अफ्रीकी वानर की कुछ प्रजातियों ने लगभग उस काल में दो पांव पर चलना शुरू कर दिया था। ऐसा शायद पर्यावरण में परिवर्तन से हुआ जिसके कारण घास के विशाल खुले मैदान वजूद में आए। उन वानरों के पिछले पांव आगे की तुलना में लंबे हो गए। वे तनकर खड़े होने लगे और दो पांव पर चलने लगे। लेकिन इस विकास के कारण वानरों के मस्तिष्क का आकार तुरंत बढ़ नहीं गया। डब्ल्यू.ई. ले ग्रास क्लार्क ने अपनी पुस्तक *दि फासिल एविडेंस फार ह्यूमन इवोल्यूशन* (*मानव उत्पत्ति के जीवाश्म साक्ष्य*) में कहते हैं कि बेशक मस्तिष्क का आकार मानव का एक विशिष्ट लक्षण है। लेकिन पोंगिडे के परिप्रेक्ष्य में यह होमीनिड का विशिष्ट लक्षण नहीं है। क्लार्क का कहना है कि शुरुआती होमीनिड और वानरों के बीच का मुख्य फर्क होमीनिड का दो पांवों पर चलना था।

सत्तर लाख साल पहले अपनी उत्पत्ति के तुरंत बाद द्विपादी वानरों की विभिन्न प्रजातियों में से शायद किसी एक के मस्तिष्क का आकार बढ़ा। अपेक्षाकृत बड़े मस्तिष्क वाला यह द्विपादी प्राणी तकरीबन 25 लाख साल पहले द्विपादी वानरों से अलग हो गया और कुछ समय बाद अनगढ़ औजार बनाना शुरू कर दिया।

यहां आगे बढ़ने से पहले यह बताना जरूरी है कि आधुनिक मानव होमीनिडे ही एकमात्र जीवित प्रजाति है। होमीनिडे की दूसरी सभी प्रजातियां लुप्त हो गई हैं। उनके बारे में हमारे पास जो कुछ भी जानकारी है वह जीवाश्मों से मिली है। जीवाश्मों के आधार पर (हमारी प्रजाति समेत) होमीनिडे को दो जेनेरा (जेनस का बहुवचन) आस्ट्रेलोपिथेकस और होमों में विभाजित किया जाता है। आस्ट्रेलोपिथेकस की उत्पत्ति पहले हुई थी। अपने पिछले दो पांवों पर सीधे खड़े होकर चलने की अपनी क्षमता के कारण वह वानर से अलग हुए। रेमंड डार्ट ने 1924 में दक्षिण अफ्रीका में आस्ट्रेलोपिथेकस के जीवाश्मों की खोज की। डार्ट ने उसका नाम आस्ट्रेलोपिथेकस (दक्षिणी वानर) रखा। उन्होंने जिस प्रजाति के जीवाश्म की खोज की वह 30 से 10 लाख साल पहले रहती थी। बाद में दक्षिण अफ्रीका में उसके कई और जीवाश्म मिले। उनमें से कुछ में आस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस से भिन्न विशेषताएं पाई गईं। उनकी बारीकी से जांच करने पर पता चला कि वे दो भिन्न प्रजातियां

आस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस और आस्ट्रेलोपिथेकस रोबस्टस हैं। अफ्रीकेनस की तुलना में रोबस्टस के दाढ़ बड़े और ललाट ज्यादा चिपटे होते थे। अफ्रीकेनस का ललाट ज्यादा ढलवां था। उसकी खोपड़ी का ऊपरी हिस्सा गोल था। नर रोबस्टस के सिर पर हड्डी की बनी कलगी होती थी। दोनों ही प्रजातियों में दाढ़ (चर्वणक और अग्र चर्वणक) वानरों से भिन्न होते हैं। वानर के विपरीत आस्ट्रेलोपिथेकस के दाढ़ चपटे (सपाट) होते हैं। उससे लगता है कि ये दांत नर्म फल चबाने के बजाए सख्त वनस्पति कुचलने के लिए विकसित हुए होंगे। यह कहा जाता है कि जहां आस्ट्रेलोपिथेकस रोबस्टस शाकाहारी थे, वहीं आस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस मांस समेत तमाम चीजें खाते थे। लेकिन अभी इसे साबित नहीं किया गया है। मजे की बात यह है कि आस्ट्रेलोपिथेकस प्रजाति का नर अपनी मादा की तुलना में आकार में बड़े होते थे। उसे सेक्सुअल डिमॉर्फिज्म कहते हैं। यह होमो की उत्पत्ति के साथ धीरे-धीरे खत्म हो गई।

1950 के दशक में पूर्वी अफ्रीका में आस्ट्रेलोपिथेकस के जीवाश्मों के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण खोज हुई। लुइस लीकी और उनकी पत्नी मेरी ने तनजानिया के ओल्डुवाई घाटी में आस्ट्रेलोपिथेकस के अवशेष पाए। ये रोबस्टस और अफ्रीकेनस से भिन्न एक अन्य प्रजाति के जीवाश्म के अवशेष थे। उस प्रजाति का नाम 'जिनजानथ्रोपस' रखा गया। अब उसे आस्ट्रेलोपिथेकस बोइसेइ के नाम से पुकारा जाता है।

आस्ट्रेलोपिथेसिनों से संबंधित नवीनतम जीवाश्म इथोपिया में ओमो घाटी में मिले। ये जीवाश्म एक ऐसी प्रजाति के हैं जिसकी उत्पत्ति बोइसेइ, रोबस्टस और अफ्रीकेनस से पहले हुई थी। आस्ट्रलोपिथेकस अफारेनसिस के नाम से जानी जाने वाली इस प्रजाति ने आस्ट्रलोपिथेकस की उत्पत्ति को अब करीब 40 लाख साल पीछे ढकेल दिया है। शायद यही आस्ट्रलोपिथेकस की सभी प्रजातियों का पूर्वज हो। लेकिन उस पर विवाद है और उसे अभी हल नहीं किया गया है। फिलहाल यह हीमोनिडे की अब तक की ज्ञात सबसे पुरानी प्रजाति है।

आस्ट्रलोपिथेकस अफारेनसिस में हम दो पांव पर चलने वाले की प्रक्रिया को अंतिम चरण में देख सकते हैं। इस प्रजाति ने सीधे तनकर खड़ा होना शुरू कर दिया था। लेकिन अब भी उसमें वानरों के कुछ लक्षण बचे थे। दो पांव पर चलना एक बेहद जटिल प्रक्रिया है और उसके लिए शरीर रचना में कई तब्दीलियां होनी जरूरी हैं। उसके लिए पैरों की हड्डियों में तब्दीली आती है जो उसे पूरे शरीर का वजन उठाने के लायक बनाती है। इसी तरह कोहनी और श्रोणि मेखला (पल्विक गर्डिल) भी इस तरह का रूप धारण करता है जिससे दो पांवों पर चलते या दौड़ते समय वे आसानी से अपना शरीर सीधा रख सकें। श्रोणि मेखला को पैरों की बड़ी मांसपेशियों का सहारा देना पड़ता है। और साथ ही पूरे शरीर का वजन भी संभालना पड़ता है।

मेरुदंड को भी उसी के अनुरूप शक्ल अपनानी पड़ती है। सीना या वक्ष के कारण

यह जरूरी होती है। वानरों में यह अंदर की ओर मुड़ी हुई या अवतल (अंग्रेजी के 'सी' अक्षर की शक्ल का) होता है। यह आकृति उनके सीधे खड़े होने में आड़े आ सकती है क्योंकि वक्र के अंदर स्थित वक्ष का वजन उस प्राणी को आगे की ओर गिरा देगा। मेरुदंड की आकृति अवतल से उत्तल होने पर बेहतर संतुलन स्थापित होता है (दरअसल मानव का मेरुदंड अंग्रेजी के 'एस' शक्ल का होता है)। दो पैरों पर चलने की प्रक्रिया के विकास के क्रम में वक्ष भी वानरों के शंकु या कीपाकार से बदल कर मानव में बेलनाकार हो जाता है।

आस्ट्रलोपिथेकस अफरेनसिस में द्विपादिता के ज्यादातर लक्षण होते हैं। फिर भी उनमें वानरों के भी कई लक्षण बरकरार रहते हैं। उनका पिछला पांव मानव की तुलना में छोटे होते हैं। वक्ष का आकार शंकु जैसा ही रहता है और उंगलियां चिंपैंजी की तरह बेहद मुड़ी होती हैं।

जैसा कि हम देख चुके हैं आस्ट्रलोपिथेकस में करीब 40 लाख साल पहले दो पांवों पर चलने की प्रक्रिया का विकास हुआ। उससे पहले के काल के उपलब्ध जीवाश्मों में बड़ा अंतराल है। लेकिन आण्विक साक्ष्यों के मद्देनजर ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रक्रिया 70 लाख साल से चल रही थी जब शुरुआती द्विपादी वानर की उत्पत्ति शुरू हुई थी। यहां यह बता देना प्रासंगिक होगा कि द्विपादिता के लिए अनिवार्य तब्दीलियों के पूरा होने में काफी लंबा समय लगा होगा। फिर भी कई लाख साल तक, 70 लाख साल पूर्व से लेकर 25 लाख साल पूर्व तक उनके मस्तिष्क के आकार में कोई खास इजाफा नहीं हुआ। आस्ट्रलोपिथेकस के मस्तिष्क का आकार (450 सीसी से 550 सीसी) वानरों के मस्तिष्क (चिंपैंजी में 470 सीसी) से ज्यादा भिन्न नहीं है। मस्तिष्क के आकार में वृद्धि 30 लाख साल पूर्व से 20 लाख साल पूर्व के बीच हुई। इस क्रम में दांत और जबड़े में आई तब्दीलियों ने मस्तिष्क के आकार में वृद्धि के लिए एक हद तक संभावनाएं सृजित कीं। श्वदंत का आकार घटा और निचला जबड़ा हल्का हुआ। निचले जबड़े का वजन घटने से कपाल के ऊपरी हिस्से की हड्डियों के वजन के भी घटने की गुंजाइश बनी क्योंकि उन्हें अब गतिशील निचले जबड़े का ज्यादा वजन नहीं उठाना पड़ता था। इसका मतलब यह हुआ कि मस्तिष्क के लिए अब ज्यादा जगह उपलब्ध थी। कपाल के ऊपरी हिस्से की हड्डी के पतली/हल्की होने से बनी जगह ने मस्तिष्क को फैलने का मौका दिया।

इन तब्दीलियों से क्रमविकास का एक नया रास्ता खुला और आधुनिक मानव की उत्पत्ति हुई। मानव और उसके निकटतम पूर्वज 'होमो' जेनस श्रेणी में रखे गए हैं। यह जेनस अपने मस्तिष्क के बड़े आकार के कारण आस्ट्रलोपिथेकस से भिन्न है। अब तक जेनस होमो का जो सबसे प्राचीन जीवाश्म खोजा गया है वह 'होमो हैबिलिस' का है। उसका जीवाश्म कीनिया में लेक तुरकाना के निकट मिला। दूसरे जीवाश्म की खोज ओल्डुवाइ में हुई। होमो हैबिलिस 40 लाख साल पहले रहता था और उसका मस्तिष्क

आस्ट्रलेपिथेकस की तुलना में बड़ा था। उसका मस्तिष्क 800 सीसी का था। होमो हैबिलिस औजार बनाते थे। कई साल तक इस पर बहस रही कि होमो हैबिलिस को जेनस होमो की प्रजाति मानी जाए या नहीं। कई किताबों में उसे आस्ट्रलोपिथेकस की श्रेणी में रखा गया है। लेकिन होमो हैबिलिस के मस्तिष्क का निकट से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसे शुरुआती मानव का स्थान दिया जाना चाहिए।

होमो हैबिलिस के उद्भव के बाद होमो की एक अन्य प्रजाति 'होमो इरेक्टस' की उत्पत्ति हुई। होमो इरेक्टस के जीवाश्म साढ़े 17 लाख साल पुराने हैं। उसके सबसे पुराने जीवाश्म कीनिया में पूर्वी तुरकाना में मिले हैं। होमो इरेक्टस लगभग आधुनिक मानव के जैसा था। वह दो पांव पर चलता था। उसके हाथ विकसित थे और मस्तिष्क बड़ा था। वह आस्ट्रेलोपिथेकस के मुकाबले बहुत लंबा था। उसका मस्तिष्क करीब 1000 सीसी का था जो आधुनिक मानव 'होमो सैपिएन्स' के मस्तिष्क का करीब 70 प्रतिशत है। होमो इरेक्टस बड़ी दक्षता के साथ औजार बनाते थे (औजार बनाने की कला पर अगले अध्याय में चर्चा की जाएगी)। होमो इरेक्टस के समय से होमो अफ्रीका से निकल कर एशिया और यूरोप में फैलने लगे। आस्ट्रलोपिथेकस और होमो हैबिलिस के जीवाश्म सिर्फ दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका में ही मिले हैं जिससे डारविन के इस कथन की पुष्टि होती है कि मानव की उत्पत्ति अफ्रीका में हुई। होमो इरेक्टस के साथ मानव के निकटतम पूर्वज दुनिया के अन्य भागों में फैले। रिचर्ड लीकी ने हिसाब लगाया है कि 20 किलोमीटर प्रति पीढ़ी की दर से होमो इरेक्टस का स्थानांतरण हुआ होगा। इस तरह उन्होंने 20 हजार साल में पूर्वी अफ्रीका और चीन के बीच की 14000 किलोमीटर की दूरी तय की होगी। फिर भी ज्यादातर होमो इरेक्टस अफ्रीका में ही टिके रहे होंगे।

होमो इरेक्टस के जीवाश्म की खोज पहली बार इंडोनेशिया में हुई। ये जावा में मिले पिथेकैंथ्रोपस के जीवाश्म थे (नामकरण की तिथि और वैज्ञानिकों की व्यक्तिगत पसंद के चलते यह शब्दावली कभी-कभी भ्रामक भी हो सकती है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि 'पिथेकैनथ्रोपस इरेक्टस', 'पिथकैनथ्रोपस जावानेनसिस', 'जावा मैन', 'पिथेकैनथ्रोपस पेकिनेनसिस', सिनानथ्रोपस सभी को अब होमो इरेक्टस कहा जाता है)। होमो इरेक्टस के जीवाश्म चीन और यूरोप के कुछ हिस्सों में भी मिले हैं। इंडोनेशिया में मिले होमो इरेक्टस के जीवाश्म कम से कम नौ लाख साल पुराने हैं जबकि चीन में मिले जीवाश्म साढ़े तीन लाख साल से लेकर पांच लाख साल पुराने हैं।

करीब 60-70 हजार साल तक आस्ट्रेलोपिथेकस, होमो हैबिलिस और होमो इरेक्टस का सहअस्तित्व रहा। फिर प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के तहत आस्ट्रेलोपिथेकस और होमो हैबिलिस लुप्त हो गए। पिछले दस लाख साल से सिर्फ होमो हैं। इसका मतलब यह नहीं लिया जाना चाहिए कि होमो इरेक्टस माहौल के अनुरूप खुद को ढालने में ज्यादा सफल हुए। कुछ भी हो, आस्ट्रेलोपिथेकस अगर ज्यादा नहीं तो कम से कम 30 लाख

साल तक जरूर इस धरती पर बने रहे जबकि होमो इरेक्टस 15 लाख साल तक टिके। आस्ट्रेलोपिथेकस के लुप्त हो जाने का मुद्दा अब भी बहस का विषय बना हुआ है।

होमो इरेक्टस करीब चार लाख साल पहले लुप्त हो गए। इस बीच होमो की एक नई प्रजाति उभरी और उसने क्रमविकास का एक अलग रास्ता अपनाया। होमो की यह नई प्रजाति करीब एक लाख 25 हजार साल पहले (कुछ विद्वानों के मुताबिक एक लाख 35 हजार साल पहले) सामने आई। वे निएंडरथल्स थे। निएंडरथल शुरुआती होमो सैपिएन्स थे (उनका नाम 'होमो सैपिएन्स निएंडरथलेनसिस' रखा गया है; हमारी प्रजाति का नाम 'होमो सैपिएन्स सैपिएन्स' है)। उसके जीवाश्म सबसे पहले 1856 में जर्मनी में मिले और तब से उनकी खूब चर्चा है। निएंडरथलों में मस्तिष्क का आकार और बढ़ा। वे पत्थर के और भी प्रभावी औजार बनाते थे। साथ ही जिसे हम 'संस्कृति' कहते हैं, वह उनमें भरपूर ढंग से परिलक्षित हुई। लेकिन आधुनिक मानव के मुकाबले निएंडरथल के कपाल ज्यादा मोटे और शीर्ष पर कम गोल थे। करीब 50 हजार साल पहले निएंडरथलों की आबादी घटने लगी और 34 हजार साल पहले यह प्रजाति लुप्त हो गई। यहां यह ध्यान में रखना चाहिए कि निएंडरथल जेनस होमो के क्रमविकास की मात्र एक शाखा का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। विशुद्ध निएंडरथलों के जीवाश्म मुख्यत: यूरोप और पश्चिम एशिया के कुछ हिस्सों में मिले। लेकिन आधुनिक मानव से बेहद मिलती-जुलती प्रजाति के जीवाश्म अफ्रीका के विभिन्न हिस्सों में मिले। ऐसा हो सकता है कि करीब 125000 साल पहले शुरुआती होमो सैपिएन्स निएंडरथल और होमो सैपिएन्स सैपिएन्स (आधुनिक मानव) में विभाजित हो गए हों। रिचर्ड लीकी ने जीवाश्मों और आण्विक साक्ष्यों के आधार पर होमो सैपिएन्स सैपिएन्स की उत्पत्ति अफ्रीका में होने के पक्ष में मजबूत दलीलें दी हैं। कुछ भी हो, होमो सैपिएन्स की अनेक किस्में थीं जो लंबे समय तक एक साथ रहीं। निएंडरथल के अलावा होमो सैपिएन्स में वे प्रजातियां भी शामिल हैं जिनके जीवाश्म जांबिया के ब्रोकन हिल में (1,10,000 साल पुराना), पश्चिम एशिया के कफजह में (92,000 साल पुराना) और पश्चिम यूरोप के क्रो-मैग्नान में (40,000 साल पुराना) पाए गए। उनमें से किसी एक का विकास होमो सैपिएन्स सैपिएन्स के रूप में हुआ होगा और वह 30 से 40 हजार साल पहले तक दूसरों के साथ रहा होगा जब अन्य तमाम प्रजातियां (और उप-प्रजातियां) लुप्त हो गई होंगी और सिर्फ हमारी प्रजाति बची रही होगी। उसके बाद प्रजाति या उप-प्रजाति के स्तर पर कोई विकास नहीं हुआ। हालांकि कुछ जाहिरी फर्क (रंग, कद-काठी इत्यादि) हैं, लेकिन होमो सैपिएन्स सैपिएन्स एकीकृत समरस प्रजाति है।

होमो सैपिएन्स सैपिएन्स के विकास के साथ मस्तिष्क का आकार औसतन 1350 सीसी हो गया। लेकिन विद्वान इस पर एकमत नहीं हैं कि निएंडरथल और अन्य होमो सैपिएन्स की उत्पत्ति हो जाने के बाद अकेले मस्तिष्क के आकार में वृद्धि का कोई महत्व

है या नहीं। निएंडरथलों में मस्तिष्क का आकार होमो सैपिएन्स सैपिएन्स के बराबर पहुंच चुका था। तब उसके बाद के क्रमविकास की दिशा क्या थी? इसका जवाब देना बहुत कठिन है क्योंकि उसके लिए यह व्याख्या करना जरूरी है कि कौन सी चीज होमो सैपिएन्स सैपिएन्स के लिए अत्यंत विशिष्ट थी—मस्तिष्क का आकार, बोली, जटिल औजार गढ़ने का कौशल या उच्च स्तर की सामाजिक अंत:क्रिया।

बड़ा मस्तिष्क और चलने-फिरने की प्रक्रिया में इस्तेमाल नहीं होने की वजह से स्वतंत्र रहने वाले सुविकसित हाथों का एक बड़ा क्रांतिकारी नतीजा निकला जो औजार बनाने की कला के तेज विकास में दिखाई पड़ा। मस्तिष्क के आकार में वृद्धि की प्रक्रिया पहले ही एक ऐसे बिंदु पर पहुंच चुकी थी और उच्च स्तर के कौशल पर आधारित औजार बनाना संभव हो चुका था।

अब जोर मानव व्यवहार के सामाजिक संदर्भों को समझने की ओर चला गया है। होमो सैपिएन्स की कुछ प्रजातियों की तुलना में होमो सैपिएन्स सैपिएन्स सामाजिक अंत:-क्रिया और सहयोग करने में ज्यादा सक्षम थे। इस विचार के पक्ष में कुछ वैज्ञानिक साक्ष्य भी पेश किए गए हैं। लीवरमैन, केलिन और क्लाट का मत था कि निएंडरथल मानव ठीक से बोल नहीं पाता था, लेकिन इस पर विवाद था। फिलिप लीवरमैन ने निएंडरथलों और वानरों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक मानव के कपाल और गर्दन के आकार तथा आकृति का गहराई से अध्ययन किया है। होमो सैपिएन्स सैपिएन्स का कपाल गोलिकाकार है जो निएंडरथल के अवनत और उभरे कपाल से भिन्न है। आधुनिक मानव के कपाल के कारण उसकी गर्दन में तब्दीली आई है। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण तब्दीली ध्वनि निकालने वाला हमारे कंठ के भाग (स्वर सूत्र और मुंह के पीछे वाले हिस्से के बीच का भाग) में आई। यह अनेक प्रकार की आवाजें निकाल सकता है। हालांकि अन्य वानर और साथ ही दूसरे जंतु भी ध्वनि पैदा कर संवाद करते हैं। लेकिन आधुनिक मानव विविध किस्म की ध्वनि निकालने के मामले में अनूठे हैं। उन ध्वनियों को अनंत प्रकार से मिलाया जा सकता है जो मानव समाज की असंख्य भाषाओं (जीवित और लुप्त) में दिखाई पड़ती है।

बड़ी संख्या में विद्वान अब भाषा को होमो सैपिएन्स सैपिएन्स की विशिष्टता समझने की कुंजी के रूप में देखते हैं। यह संवाद के लिए महज विविध किस्म की ध्वनियां निकालने का ही मामला नहीं है, बल्कि भाषा की सहायता से अपने विचारों को सजाने की भी बात है। यह मस्तिष्क के आकार और उसके विभिन्न हिस्सों के संगठन का तरीका, दोनों से जुड़ा है। हाल के अध्ययनों से ये संकेत मिले हैं कि निएंडरथल के मस्तिष्क का आकार हमारी प्रजाति के मस्तिष्क के बराबर था। लेकिन निएंडरथल के मस्तिष्क की संरचना में अब भी तब्दीली की गुंजाइश थी जो भाषा के विकास में मदद करती।

इन क्रियाओं के अलावा भाषा ने मानव की अपने ज्ञान और सूचना को अगली पीढ़ी तक संप्रेषित करने की इजाजत दी जो दूसरे जीवों में संभव नहीं था। इसका मतलब है

कि मानव की हरेक पीढ़ी को शून्य से शुरू नहीं करना पड़ा। वह पिछली पीढ़ी के संग्रहित अनुभवों के आधार पर आगे बढ़ सकता था। ज्यादा विकसित मस्तिष्क में सूचनाओं को संग्रह करना संभव हुआ। उसने सांस्कृतिक रूप से खुद को ढालने की रफ्तार तेज की और मानव जैविक क्रमविकास पर आश्रित नहीं रहा। यह ऐसा विषय है जिस पर हम अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

अध्याय दो

पुरापाषाणकाल

पिछले अध्याय में हमने देखा कि होमीनिड करीब 25 लाख साल पहले औजार बनाने लगे थे। आस्ट्रेलोपिथेकस ने शायद सबसे पहले औजार गढ़ा था। लेकिन अभी यह बात सिद्ध नहीं की जा सकी है। फिर भी हम एक हद तक यकीन के साथ कह सकते हैं कि होमो हैबिलिस औजार बनाते थे। रिचर्ड लीकी के मुताबिक नियमित रूप से औजार गढ़ने की शुरुआत होमो हैबिलिस के पदार्पण के साथ हुई। होमो हैबिलिस के मस्तिष्क के बड़े आकार ने इस विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ओल्डुवाइ से पत्थर के औजार के निर्माण की शुरुआत होने के साक्ष्य मिले हैं। उस जगह के नाम के अनुरूप प्राचीनतम पाषाण संस्कृति का नाम 'ओल्डोवान' रखा गया है। लुइस और मेरी लीकी ने ओल्डोवान संस्कृति की खोज में अग्रणी भूमिका निभाई है। उन्होंने यह स्थापित किया कि मानव के पूर्वजों ने सबसे पहले पूर्वी अफ्रीका में औजार गढ़ना शुरू किया था। ओल्डोवान अब तक ज्ञात प्राचीनतम पुरापाषाण (पूर्व-पाषाणयुगीन) संस्कृति है।

होमो हैबिलिस के बनाए प्राचीनतम औजार बड़े बेढब और अपरिष्कृत थे। ऐसे औजारों को पहचानने के लिए भी विशेषज्ञता चाहिए। वे आकार में छोटे और बटिकाश्म (Pebble) के बने हैं। उन औजारों को बनाने के पत्थर के एक छोटे से टुकड़े पर दूसरे पत्थर से चोट की गई होगी। यह काम इतना आसान नहीं है जितना यह दिखने में लगता है। यहां इस बात पर जोर देना प्रासंगिक होगा कि यह महज प्राकृतिक रूप से उपलब्ध पत्थरों का किसी औजार की तरह इस्तेमाल करने का मामला नहीं है। उसमें पत्थरों को धारदार बनाने का या उसके एक सिरा को नुकीला बनाने का सचेत प्रयास किया गया है। चिंपैंजी (बंदरों की एक नस्ल) औजारों के इस्तेमाल के लिए, मसलन भोजन के उद्देश्य से कीट प्राप्त करने के लिए लकड़ी के इस्तेमाल को लेकर जाने जाते हैं। लेकिन चिंपैंजी नियमित रूप से औजारों का इस्तेमाल नहीं करते और निश्चित रूप से पत्थर के औजार गढ़ने में सक्षम नहीं हैं। दूसरी तरफ औजार 25 लाख साल से जेनस होमो के अनुकूलन की रणनीति का एक अभिन्न हिस्सा रहा है।

प्रारंभिक मानव में मस्तिष्क के आकार में वृद्धि औजार गढ़ने की उनकी क्षमता के लिए अनिवार्य थी। आस्ट्रेलोपिथेकस के औजार गढ़ने पर अगर हमें शक है तो उसका कारण उनके मस्तिष्क का बहुत छोटा आकार है। अब यह तथ्य स्वीकार कर लिया गया है कि बिलकुल शुरुआती किस्म के औजार गढ़ने के लिए भी उच्च स्तर का मानसिक

विकास जरूरी है जो शायद आस्ट्रेलोपिथेकस में नहीं थी। एक विद्वान निकोलस टोथ ने पाषाणकाल के औजारों के निर्माण की तकनीक के अध्ययन में अनेक साल लगाए। उन्होंने प्रारंभिक पाषाणकाल के औजारों की तरह के पत्थर के औजार खुद भी गढ़े और औजार निर्माण की तकनीक में दक्ष बनने की कोशिश की। टोथ ने दिखाया कि बेढब औजारों को भी गढ़ने के लिए कौशल की जरूरत है। उसके लिए सही किस्म का पत्थर चुनना होता है। औजार निर्माता को यह जानना होता है कि पत्थर पर चोट किस कोण से और कितने जोर से की जाए। संयोगवश टोथ ने दिखाया कि होमो हैबिलिस दोनों हाथों का एक समान इस्तेमाल करने के बदले एक हाथ (दाएं) का इस्तेमाल ज्यादा करते थे जो एक मानवीय गुण है।

बेशक, अत्यंत दक्ष हाथ और द्विपादिता (इससे चलने-फिरने की प्रक्रिया में इस्तेमाल होने से हाथ मुक्त हो गए ताकि उनका इस्तेमाल औजार गढ़ने या उस जैसे अन्य कामों में हो सके) औजार निर्माण के लिए महत्वपूर्ण शर्तें हैं। फिर भी बड़े आकार के मस्तिष्क ने ही इस प्रक्रिया को अंजाम दिया। औजार गढ़ने के लिए उच्च स्तर का गत्यात्मक कौशल और शरीर के विभिन्न हिस्सों (आंखों, उंगलियों, पांवों इत्यादि) में समन्वय के साथ तन्मयता की जरूरत होती है। उसके अलावा इस काम में कुछ हद तक सिद्धांतीकरण और कल्पनाशीलता भी जरूरी है। औजार के बनने से पहले उस औजार की परिकल्पना जन्म लेती है। औजार गढ़ने से पहले औजार निर्माता को उसका मानसिक खाका रचना पड़ता है। ये सभी काम सिर्फ उच्च मानसिक शक्ति से ही संभव हो सकते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि होमो हैबिलिस (800 सीसी) और होमो इरेक्टस (1000 सीसी और इससे भी ज्यादा) तथा औजार निर्माण की शुरुआत के बीच गहरा रिश्ता है।

ओल्डोवान औजार पुरापाषाणकाल की शुरुआत को रेखांकित करते हैं। पुरापाषाण मानव प्रागितिहास का प्रारंभिक चरण है। मानव उस युग में पेड़-पौधों से खाद्य संग्रह कर और पशुओं का शिकार कर गुजारा करते थे। आम बोलचाल की भाषा में अगर कहा जाए तो पुरापाषाणीय अर्थव्यवस्था शिकार और वनस्पति जगत से खाद्य संग्रह पर आधारित थी। उस काल के औजार वनस्पतियों और जानवरों से भोजन प्राप्त करने तथा उनका प्रसंस्करण में मदद पाने के उद्देश्य से गढ़े गए थे। वानरों की तरह आस्ट्रेलोपिथेकस मुख्यत: वनस्पतियों पर आश्रित थे। आस्ट्रेलोपिथेकस भोजन के रूप में शायद कभी-कभार कुछ छोटे जानवरों का भी इस्तेमाल करते थे। यह वानरों के लिए भी उतना ही सच है। शुरू में होमो हैबिलिस भी इसी ढर्रे पर चले। मुख्य रूप से वनस्पतियों से मिलने वाले खाद्य पदार्थों को काटने, काष्ठ फल तोड़ने, कंद-मूल खोदने, लकड़ियां खुरचने और मधु निकालने में ओल्डोवान औजारों का इस्तेमाल होता था।

एक मांसाहारी प्राणी के रूप में होमो हैबिलिस खाने के उद्देश्य से बारासिंगा की प्रजातियों और उन जैसे शिकारों को मार पाता होगा क्योंकि वह सिर्फ उन्हीं जानवरों पर

आसानी से काबू पा सकता था। अन्यथा वह आम तौर पर परभक्षी पशुओं द्वारा मारे गए जानवरों के बचे-खुचे हिस्सों पर गुजारा करता होगा। ओल्डोवान औजारों का इस्तेमाल उन जानवरों के मांस पर से खाल हटाने या अस्थि मज्जा निकालने के लिए होता था। अस्थि मज्जा पौष्टिकता से भरपूर होती है। हमें अभी यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि होमो हैबिलिस की खुराक में मांस किस मात्रा तक शामिल था। हकीकत चाहे जो भी हो, पुरापाषाणकाल के प्रारंभ में मानव शिकार करने के बजाए परभक्षी जानवरों द्वारा मारे गए पशुओं के बचे-खुचे हिस्सों पर ही गुजारा करता था। औजार गढ़ने का कौशल बढ़ने से ऐसी स्थितियां बनीं कि वह परभक्षी जानवरों के जूठन पर गुजारा करने की जगह खुद ही शिकार करने लगा। इसका मतलब यह हुआ कि अब उसके भोजन में मांस की बड़ी मात्रा शामिल हो गई।

प्रागितिहास काल के कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि हम महज ओल्डोवान औजारों की मदद से मांसाहार की शुरुआत के बारे में किसी नतीजे तक नहीं पहुंच सकते हैं। अगर किसी औजार का इस्तेमाल मांस तराशने में किया जा सकता है तो उसका मतलब यह नहीं है कि वास्तव में उसका इस्तेमाल भी उसी मकसद से किया गया होगा। इस दलील के बाद जीवाश्मशास्त्री और पुरातत्ववेत्ता उन स्थानों से प्राप्त जीवाश्मीकृत प्राणियों के अवशेषों का अध्ययन आधुनिकतम तरीकों से बारीकी से करने लगे जहां से पाषाणकालीन औजार मिले हैं। आधुनिक तकनीकों की मदद से अब विशेषज्ञ 15 लाख साल से भी ज्यादा पुराने अस्थि जीवाश्मों पर से कटने के निशानों की पहचान कर पा रहे हैं। कटने के ये निशान पत्थरों के औजारों से हड्डी के मांस अलग करने के क्रम में लगे थे। हड्डियों के इन अध्ययनों से पता चला है कि आदिमानव ने 15 लाख साल से 20 लाख साल पूर्व के बीच में मांस को अपने नियमित आहार में शामिल कर लिया था। साक्ष्यों (स्थल पर मिली हड्डियों की किस्मों, क्या वे हड्डियां जानवरों के मांसल हिस्सों की थीं या संभवतः जूठन थीं) की जांच-पड़ताल से यह संकेत मिलता है कि जूठन खाने और बहुत छोटे जानवरों का शिकार करने से मानव ने मांसाहार की शुरुआत की। बाद में वह धीरे-धीरे कुशल शिकारी बना।

होमो इरेक्टस के पदार्पण तक शिकार करना एक नियमित चीज बन गया था। पुरापाषाणीय अनुकूलन का विशेष प्रतिमान अर्थात शिकार करना और खाद्य संग्रह करना अब अर्थव्यवस्था का आधार था। होमो इरेक्टसों के औजार ज्यादा सटीक और जटिल तकनीक की उपज थे। ये औजार मानकीकृत थे और इस तरह बने थे कि वैसे औजार और भी गढ़े जा सकें। टोथ ने बताया है कि मानव ने शुरू में औजार बनाना शुरू किया तो वे किसी खास डिजाइन पर आधारित नहीं थे। बेशक उनके पास एक सामान्य परिकल्पना थी कि वे किस तरह का औजार चाहते हैं (मसलन काटने के लिए धारदार सिरा)। ऐसा लगता है कि उन्होंने एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर एक-दो बिंदुओं पर चोट की होगी।

उन चोटों पर पत्थर कई टुकड़ों में बंट गए होंगे। उनमें से कुछ टुकड़े उस औजार से मिलते-जुलते होंगे जिसका खाका उनके दिमाग में तथा और जो उनकी जरूरत काफी हद तक पूरा कर सकते थे। ओल्डोवान औजार गढ़ने में इसी तकनीक का इस्तेमाल किया गया होगा। जैसा कि हम देख चुके हैं। ये औजार भी आदिमानव की जबर्दस्त शारीरिक दक्षता प्रदर्शित करते हैं। फिर भी होमो इरेक्टस के बनाए औजारों की तुलना में वे सरल से औजार थे। होमो इरेक्टस के औजारों में हम पत्थर की जबरन एक पूर्ण निर्धारित डिजाइन के अनुरूप ढालने का प्रयास देखते हैं। ये औजार संग्रहित अनुभव और उच्च स्तर की बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करते हैं।

होमो इरेक्टस जिस औजार का प्रमुखता से इस्तेमाल करते थे वह हस्तकुठार (hand axe) है। हस्तकुठार नाशपाती या अंगूर या आंसू की बूंद की शक्ल के होते हैं। उसका एक सिरा नुकीला और दूसरा सिरा चौड़ा होता है। ओल्डोवान औजारों की तुलना में हस्तकुठार आकार में बड़े और काफी हद तक सुडौल होते थे। होमो इरेक्टस के कुठार 'क्रोड' (core) औजारों की श्रेणी में आते हैं। व्यापक रूप से पत्थरों के औजारों के दो समूह हैं : 'क्रोड औजार' और 'शल्क औजार' (flake tools)। शल्क औजार पत्थरों के ऐसे औजार हैं जो पत्थरों पर चोट करने से मिले छोटे टुकड़ों या शल्कों से गढ़े जाते हैं। क्रोड़ औजार पत्थरों के बड़े पिंड या 'क्रोड़' से तैयार किए जाते हैं। हस्तकुठार के मामले में क्रोड़ को ही औजार में बदल दिया जाता है।

होमो इरेक्टस के साथ जो संस्कृति फली-फूली, उसका नाम उत्तर फ्रांस के एक स्थल (सेंट एशूल) पर एशूली संस्कृति रखा गया। अनेक पुरापाषाणकालीन संस्कृतियों का नाम उन फ्रांसीसी स्थलों पर रखा गया है जहां सबसे पहले उनके बारे में जानकारी मिली। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पुरापाषाणकालीन संस्कृतियों के स्थल सिर्फ फ्रांस (या पश्चिमी यूरोप) तक ही सीमित हैं। दरअसल यह उन संस्कृतियों का हवाला देने का एक सुविधाजनक तरीका है। एशूली हस्तकुठार परंपरा 14 लाख साल पहले विकसित हुई थी। वह दुनिया के तकरीबन तमाम हिस्सों में होमो इरेक्टस के साथ घनिष्ठता से जुड़ी रही। यह डेढ़ लाख साल तक जारी रही। एशूली औजार पूर्व, दक्षिण और पश्चिम अफ्रीका में; स्पेन, फ्रांस और यूरोप के कई अन्य हिस्सों में; पश्चिम एशिया में और भारत तथा दक्षिण एशिया के कुछ क्षेत्रों में पाए गए। लेकिन हस्तकुठार सुदूर पूर्व के उन इलाकों में नहीं पाए गए जहां कभी होमो इरेक्टस वास करते थे।

हस्तकुठार बुनियादी रूप से मांस को खाने योग्य बनाने के लिए इस्तेमाल होते थे। डेसमंड क्लार्क ने पत्थरों के उन औजारों पर अनेक प्रयोग किए हैं। उनका कहना है कि हस्तकुठार खाल उतारने और मांस काटने का एक बहुउद्देश्यीय औजार था। मानव ने उस वक्त तक बड़े जानवरों का शिकार करना और उन्हें खाना शुरू कर दिया था। स्पेन के तोराल्बा के एशूली स्थल पर होमो इरेक्टस द्वारा खाए गए मैमथ के अवशेष मिले हैं।

अभी विशेषज्ञ इस नतीजे तक नहीं पहुंच सके हैं कि होमो इरेक्टस ने इतने बड़े जानवरों के शिकार के लिए कौन सा तरीका अपनाया था। मानव ने उन हाथियों को या तो चोरगढ़ों में गिरा दिया होगा या फिर उन्हें दलदल की तरफ हांका गया होगा जहां उनके फंसने के बाद उन्हें मार डाला गया होगा। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि चोरगढ़े जानवरों के लिए अकसर इस्तेमाल किए जाते थे।

हस्तकुठार के इस्तेमाल के संबंध में हाल में एक नई अवधारणा पेश की गई है। उसके अनुसार हस्तकुठार होमो इरेक्टस के इस्तेमाल में आने वाला एकमात्र औजार नहीं था। वे (शल्क औजार समेत) छोटे औजारों का भी इस्तेमाल करते थे। उनमें से अनेक औजार मांस काटने या तराशने के लिए ज्यादा उपयोगी थे। ऐसा कहा जाता है कि हस्तकुठार का इस्तेमाल दूसरे कामों में किया जाता था। उसे किसी हथियार के रूप में चक्र की तरह फेंका जा सकता था। हस्तकुठार का आकार-प्रकार ऐसा है कि थोड़ी महारत से फेंके जाने पर उसका नुकीला सिरा कुछ दूर स्थित किसी लक्ष्य पर जोर से चोट कर सकता है। हथियार के रूप में हस्तकुठार का इस्तेमाल जानवरों के शिकार में और साथ ही परभक्षी जानवरों से बचाव दोनों उद्देश्यों से किया जाता होगा।

आश्चर्य की बात है कि होमो इरेक्टस के वास वाले ज्यादातर क्षेत्रों से प्राप्त हस्तकुठार के निर्माण में एक जैसी तकनीक का इस्तेमाल किया गया है। होमो इरेक्टस जहां भी गए, औजार बनाने की तकनीक अपने साथ ले गए। 10 लाख से ज्यादा साल तक होमो इरेक्टस की एक पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को यह तकनीक सौंपती रही। औजार निर्माण के एक अपेक्षाकृत जटिल तरीके का मानकीकरण सिर्फ ज्यादा विकसित मस्तिष्क और उन्नत संचार/सामाजिक अंत:क्रिया से ही संभव है।

मस्तिष्क के आकार में वृद्धि ने खुद ही एक बेहतर सामाजिक अंत:क्रिया के लिए हालात तैयार कर दिए। दो पैरों पर चलने की प्रक्रिया अर्थात द्विपादिता के परिप्रेक्ष्य में देखने पर मस्तिष्क का बड़ा आकार शुद्ध जैविक प्रकृति की सीमाबद्धता लागू करता है। लेकिन उन सीमाबद्धताओं के अपने दूरगामी महत्व हैं। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा कि द्विपादिता के कारण श्रोणि मेखला (कूल्हे की हड्डी इत्यादि) की बनावट में ढेर सारी तब्दीलियां आईं। उन तब्दीलियों के कारण मादाओं की प्रजनन नलिका (birth canal) तंग हो गई। दूसरी तरफ प्रजनन के क्रम में बड़े मस्तिष्क वाले शिशुओं को इसी तंग नलिका से गुजरना पड़ा। मानव की उत्पत्ति के क्रम में नलिका का मुंह थोड़ा चौड़ा हुआ। लेकिन द्विपादिता की जरूरतों के कारण यह एक हद से ज्यादा चौड़ा नहीं हो सकता था। लिहाजा इन सीमाबद्धताओं के मद्देनजर शिशु छोटे मस्तिष्क के साथ जन्म लेता है। जन्म के बाद शिशु के मस्तिष्क में वृद्धि होती है और वह अपना पूरा आकार ग्रहण करता है।

मानव शिशु का मस्तिष्क जन्म के समय महज एक तिहाई के करीब होता है (वानर के मामले में यह आधा होता है)। मस्तिष्क का छोटा आकार मानव शिशु को अत्यंत

कमजोर बना देता है। नतीजन वह अपनी मां पर बेहद आश्रित होता है। जब बच्चे के मस्तिष्क में वृद्धि हो रही होती है तो उसकी परवरिश बड़े एहतियात से करनी पड़ती है। इस विकास में समय लगता है जो शिशु और मां को एक मजबूत रिश्ते में बांधता है। यह रिश्ता एक सामाजिक समूह का केंद्रक बनता है और बच्चा उसमें पलता है। बच्चे के बड़ा होने के दौरान कुछेक वयस्क स्त्री-पुरुष उसे सुरक्षा एवं भोजन मुहैया कराते हैं। इस तरह के समूह बच्चे की परवरिश और विकास की स्थितियां बनाते हैं जो मानव के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।

मानव शिशु को वयस्क बनने में कई साल लगते हैं। हालांकि पैदाइश के बाद मस्तिष्क में बहुत तेज वृद्धि होती है। लेकिन शरीर के अन्य भागों का विकास ज्यादा समय लेता है। इस विकास में जो समय लगता है, वह मां और शिशु के बीच के रिश्ते को स्थिरता प्रदान करता है। साथ ही वह उस सामाजिक समूह को भी स्थिरता देता है जो उस रिश्ते पर टिका है। यह शिशु को जिंदा रहने का गुर सीखने और संस्कृति के तत्वों को आत्मसात करने का मौका देता है। मस्तिष्क के बड़े आकार के कारण बड़ी मात्रा में सूचना का संग्रह करना संभव होता है। प्रारंभिक भाषाओं के विकास के साथ सूचनाओं के संप्रेषण और संग्रह में आसानी हुई। ऐसे में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि होमो इरेक्टस के समूह औजार निर्माण की जटिल तकनीक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाते रहे। स्पष्टत: हरेक पीढ़ी अपने अनुभवों पर आधारित कुछ नई सूचना उसमें जोड़ती गई।

जैसे-जैसे मानव पुरानी दुनिया (अफ्रीका, एशिया और यूरोप) के विभिन्न हिस्सों में फैले, उन्होंने वहां के विशेष पर्यावरण के अनुरूप खुद को ढालने के लिए अलग-अलग तरह से प्रयास किए। उन्होंने औजार गढ़ने की तकनीक में तब्दीली की। हम पहले ही देख चुके हैं कि हस्तकुठार का इस्तेमाल सुदूरपूर्व में नहीं होता था। वहां काटने के छोटे औजार पसंद किए जाते थे। उत्तरी यूरोप और इंगलैंड के कुछ हिस्सों में क्रोड़ औजार गढ़े जाते थे जो एशूली हस्तकुठार से भिन्न थे। ये क्लेक्टोनी और लवाल्वाई संस्कृतियां थीं। क्लेक्टोनी औजार कछुए की शक्ल के होते थे जबकि लवाल्वाई औजर गोल हुआ करते थे। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि अब तक हमने सिर्फ पत्थर के औजारों की ही चर्चा की है जबकि औजार दूसरी चीजों के भी बनाए जाते थे। औजार के निर्माण में लकड़ी और हड्डियों का इस्तेमाल निश्चित तौर पर होता था। लेकिन इस तरह के बहुत जल्द नष्ट हो जाने वाली चीजों के बने औजार आसानी से नहीं मिलते। लकड़ी के औजारों का इस्तेमाल जड़, कंद-मूल खोदकर निकालने में हुआ होगा।

होमो इरेक्टस ने करीब सात लाख साल पहले आग का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार आग का इस्तेमाल और पहले से हो रहा था। आग के अनेक लाभ हैं। उसका इस्तेमाल मांस पकाने में, पौधों से जहरीले पदार्थ हटाने में, खतरनाक जानवरों को डराकर दूर रखने में, और जाड़े के मौसम में गर्मी पाने के लिए

किया जा सकता है। मानव को आग जलाने में माहिर होने में लंबा समय लगा। शुरू में आदमी आग का तभी इस्तेमाल करता था जब वह प्राकृतिक कारणों से लगती थी। यह झाड़ी या जंगल की आग होती थी या आसमान से बिजली गिरने से लगी आग होती थी। जब लकड़ी के भारी-भारी कुंदों में आग लगती तो वह लंबे समय तक अंदर ही अंदर धधकती रहती। ऐसे कुंदे मानव के लिए आग के महत्वपूर्ण स्रोत थे। उन्हें खयाल रखना पड़ता था कि आग जल्दी नहीं बुझे। आग के इस्तेमाल के लिए मशहूर होमो इरेक्टस के प्राचीनतम शरणस्थलों में से एक दक्षिण चीन में है। छोउकोउदीन का यह स्थल बीजिंग के निकट है। वह करीब 5,00,000 साल पुराना है और वहां से निश्चित साक्ष्य मिले हैं कि वहां आग का इस्तेमाल बहुत पहले से हो रहा था। होमो इरेक्टस छोउकोउदीन में लंबे समय तक रहे। छोउकोउदीन के अलावा इंगलैंड में होसने और स्पेन में तोराल्बा में भी आग के इस्तेमाल की शुरुआत के साक्ष्य मिले हैं।

अब तक हमने जिन पुरापाषाणकालीन संस्कृतियों (ओल्डोवान, एशूली, क्लेक्टोनी, लवाल्वाई) की चर्चा ही है, वे सभी पूर्व-पुरापाषाणकालीन हैं। उनमें चीन, इंडोनेशिया और अफ्रीका के कुछ हिस्सों के पूर्व-पाषाणकालीन गंडासा औजार भी शामिल है। पूर्व-पाषाणकालीन संस्कृति के बाद मध्य-पुरापाषाणकालीन संस्कृति आई। मध्य-पुरापाषाणकाल की सबसे उल्लेखनीय संस्कृति मूस्तिए संस्कृति है जिसका नामकरण फ्रांसीसी गुफा लमूस्तिए पर किया गया है। मूस्तिए संस्कृति का संबंध निएंडरथल से है। इस संस्कृति की कुछ विशेषताओं का जिक्र करने से पहले हम थोड़ा विषयांतर कर उस पर्यावरण की स्थितियों पर निगाह डालेंगे जिसमें पुरापाषाणकालीन संस्कृतियां विकसित हुईं। यह पुरापाषाणकाल का प्राकृतिक परिदृश्य बेहतर ढंग से समझने के लिए आवश्यक है।

पुरापाषाणकाल का ज्यादातर हिस्सा पृथ्वी के इतिहास के उस चरण के साथ मिलता है जिसे भूवैज्ञानिक अत्यंत नूतन युग (pleistocene epoch) कहते हैं। जैसा हमने पहले अध्याय में देखा है प्रागितिहास के अध्ययन के लिए भूविज्ञान का विकास बेहद महत्वपूर्ण रहा। भूविज्ञान पृथ्वी की उत्पत्ति की कालक्रमिक रूपरेखा (chronological framework) देता है और सुदूर अतीत के अनेक पहलुओं को इस कालक्रम के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। साथ ही भूवैज्ञानिक पत्थरों का बारीकी से अध्ययन करके सुदूर अतीत के पर्यावरण की स्थितियां समझ पाए हैं। भूवैज्ञानिक पृथ्वी ग्रह के इतिहास को इयोन में विभाजित करते हैं जिसे फिर महाकल्पों (एरा) में बांटा जाता है। महाकल्प को कल्पों (पीरियड्स) में विभाजित किया जाता है जिसे फिर युगों (इपोक) में बांटा जाता है। भूविज्ञान में कल्प और छोटे समयकाल होते हैं। हमारे लिए यह समझना पर्याप्त होगा कि हम जिस भूवैज्ञानिक महाकल्प में हैं, वह नूतनजीव (cenozoic) कहलाता है। नूतनजीव महाकल्प साढ़े छह करोड़ साल पहले शुरू हुआ। तब तक पृथ्वी अपना मौजूदा रूप और आकृति ग्रहण कर चुकी थी। वैज्ञानिकों ने यह तथ्य स्थापित किया है कि एक समय सारे महाद्वीप लगभग

एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। तब उनको मिलाकर एक विशाल भूक्षेत्र (pangea) बनता था। बाद के लाखों साल के दौरान महाद्वीप एक-दूसरे से दूर हुए और साढ़े छह करोड़ साल पहले पृथ्वी की सतह का मौजूदा मानचित्र बना। यह नूतनजीव महाकल्प की शुरुआत थी। नूतनजीव महाकल्प को दो कल्पों में, तृतीयक (टरशियरी) और चतुर्थक (क्वार्टरनैरी) में बांटा जाता है। तृतीयक कल्प में पांच युग थे : पुरातन (paleocene) (छह करोड़ पचास लाख से पांच करोड़ पैंसठ लाख साल पूर्व); आदि नूतन (eocene) (पांच करोड़ 65 लाख से तीन करोड़ 54 लाख साल पहले); अल्प नूतन (oligocene) (तीन करोड़ 54 लाख से दो करोड़ 33 लाख साल पूर्व); मध्य नूतन (miocene) (दो करोड़ 33 लाख से 52 लाख साल पूर्व) और अति नूतन (pliocene) (52 लाख से 16 लाख 40 हजार साल पूर्व)। वानरों की उत्पत्ति सात करोड़ साल पहले शुरू हो गई थी। नूतनजीव महाकल्प की शुरुआत के वक्त प्रोसिमी वजूद में आ चुके थे। मध्य नूतन युग में द्विपादिता का विकास शुरू हो चुका था। होमो जीनस का विकास अति नूतन युग में हुआ। इसी दौरान होमीनिड ने औजार गढ़ने शुरू कर दिए थे।

चतुर्थ कल्प के दौरान औजार निर्माण की तकनीक में बहुत प्रगति हुई। इस कल्प को दो भौगोलिक युग—अत्यंत नूतन (pleistocene-16 लाख 40 हजार से 12000 साल पूर्व तक) और नूतनमय (halocene) (12000 साल पहले अब तक, अर्थात हम नूतनद्य युग में रहते है) में बांटा गया है। प्रागितिहास का पूर्वपाषाणकाल अत्यंत नूतन युग का एक हिस्सा है।

अत्यंत नूतन युग के दौरान दुनिया भर में तापमान में उल्लेखनीय गिरावट आई। उसने हिमयुगों के एक सिलसिला का सूत्रपात किया। उत्तरी गोलार्द्ध का एक खासा बड़ा हिस्सा लाखों साल तक बर्फ से ढका रहा। शीतोष्ण (temperate) जलवायु वाले क्षेत्र बर्फ और हिमनद से ढके थे। करीब दो करोड़ 36 लाख साल पहले बर्फ की परतें उत्तरी गोलार्द्ध के बड़े हिस्सों को समेटे हुए दक्षिण की तरफ फैलीं। न्यूयार्क से लेकर लंदन और मास्को तक उत्तरी गोलार्द्ध के एक तिहाई से ज्यादा हिस्सा उस समय पूरी तरह बर्फ की परतों के नीचे दब गया था। बीच में गर्म अंतराल (अंतरा हिमानी) आते-जाते थे जब बर्फ की परतें उत्तर दिशा में पीछे हटीं। भूवैज्ञानिकों ने अनेक हिम युगों की शिनाख्त की है। हरेक हिमनदन (या दक्षिण की ओर बर्फ की परतों के बढ़ने की प्रक्रिया) करीब 1,00,000 साल के अंतराल पर हुआ। अंतिम हिम युग को वुर्म हिमनदन के नाम से जाना जाता है (यह नाम एल्पीया क्षेत्र से लिया गया है जहां पहल-पहल उसकी जानकारी मिली थी)। यह हिमनदन 1,18,000 साल पहले शुरू हुआ था और सर्वाधिक व्यापक था। इस युग से पहले एक अंतराहिमानी आया था जिसके दौरान जलवायु उष्ण रहा। इस अंतराहिमानी के दौरान शुरुआती होमो सैपिएन्स वजूद में आए। 20,000 साल पहले अंतिम हिमयुग अपने उत्कर्ष पर था। 12,000 साल पहले वह हिमयुग समाप्त हुआ

और उसके साथ नूतनतम (या उत्तर हिमनद) भौगोलिक युग की शुरुआत हुई।

मूस्तिए संस्कृति अंतिम हिमयुग के बाद के उष्ण जलवायु की स्थितियों से तालमेल बैठाने का एक प्रयास था। हम फिर कहना चाहेंगे कि अत्यंत नूतन युग के दौरान मानव जैविक उत्पत्ति की प्रक्रिया से गुजर रहे थे। लेकिन अब वे सांस्कृतिक अनुकूलन में भी समर्थ हो गए थे। निएंडरथल जिस पर्यावरण में रहते थे, उसमें समुद्रतटों, जलधाराओं और नदियों से मछली या उसके जैसा नए किस्म का भोजन प्राप्त किया जा सकता था। पहले ये तट, जलधाराएं और नदियां या तो ठंड से जमी हुई थीं या फिर उन तक पहुंचना मुश्किल था। मूस्तिए संस्कृति में अलग-अलग प्रयोजनों के लिए अलग-अलग औजार विकसित हुए। उस युग के औजारों की कम से कम 60 किस्मों की पहचान की गई है। निएंडरथल दक्ष शिकारी थे। वे ज्यादातर जंगली भैंसा, घोड़ा, लाल हिरन और रेंडियर का शिकार करते थे। मछली भी उनके खुराक का हिस्सा बन गई। अनेक मूस्तिए परंपराएं स्वतंत्र रूप से पश्चिम एशिया और अफ्रीका में भी विकसित हुईं। ये शुरुआती होमो सैपिएन्स की विभिन्न प्रजातियों की परंपराएं थीं। उनकी विशेषताएं निएंडरथल की मूस्तिए संस्कृति से बहुत मिलती-जुलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शुरुआती होमो सैपिएन्स ने काफी हद तक समान संस्कृतियों को जन्म दिया। भिन्न-भिन्न पर्यावरण के अनुरूप खुद को ढालने की जरूरत ने उनमें कुछ भिन्नताएं भी लाईं लेकिन वे उल्लेखनीय नहीं हैं। दरअसल कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि मध्य-पुरापाषाणकालीन/मूस्तिए/ शुरुआती होमो सैपिएन्स की विभिन्न औजार परंपराएं पूर्व-पुरापाषाणकालीन औजारों से बुनियादी रूप से भिन्न नहीं हैं। शुरुआती दौर की तकनीकों को बेहतर बनाया गया। वास्तविक और महत्वपूर्ण तब्दीलियां करीब 35 हजार साल पहले आईं जो उत्तर-पुरापाषाणकाल की शुरुआत और होमो सैपिएन्स के उद्भव को रेखांकित करता है।

मूस्तिए संस्कृति एक मायने में पूर्व-पुरापाषाणकालीन संस्कृतियों से भिन्न थी। पहली बार हम एक ऐसी चीज पाते हैं जो मानव संस्कृति का एक बेहद महत्वपूर्ण भाग है अर्थात शवों की अंतिम क्रिया। मूस्तिए संस्कृति से जुड़े स्थलों ने शुरुआती होमो सैपिएन्स के बीच शवों को दफन करने की परंपरा उजागर की है। अब शव इधर-उधर नहीं फेंके जाते थे बल्कि एक हद तक एहतियात के साथ उनका अंतिम संस्कार किया जाता था। उसके लिए गड्ढा खोदा जाता था और कुछ औजारों एवं अन्य चीजों के साथ शव को गड्ढे में दबा दिया जाता था। शुरुआती होमो सैपिएन्स ने मृत्यु की परिघटना पर सोच-विचार करना शुरू कर दिया था। उससे उनके चिंतन और कल्पनाशीलता के ऊंचे स्तर का पता चलता है। इराक में शानीदार गुफा और यूरोप के विभिन्न स्थलों से मूस्तिए कब्रें मिली हैं।

उत्तर-पुरापाषाणकाल 35,000 साल पहले शुरू हुआ। उस वक्त होमो सैपिएन्स सैपिएन्स ने वजूद में आना और निएंडरथल को विस्थापित करना शुरू कर दिया था।

पर्यावरण भी बदल गया था। पिछले हिमयुग ने यूरोप, एशिया, और उत्तरी अफ्रीका का तापमान खासा गिरा दिया था। उस काल में पत्थर के औजार गढ़ने की तकनीक में उल्लेखनीय विकास हुआ। बड़ी संख्या में उत्तर-पुरापाषाणकालीन स्थल फ्रांस और स्पेन में खोजे गए हैं। उनमें से अनेक दक्षिण फ्रांस में केंद्रित हैं। पिछले कुछ दशक के दौरान उन पर सघन कार्य हुए हैं। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में फ्रांसीसी प्रागितिहासकार हेनरी ब्रुइल पश्चिम यूरोपीय उत्तर-पुरापाषाणकालीन स्थलों के सबसे बड़े विशेषज्ञ के रूप में स्थापित हुए। उनके अध्ययन ने दिखाया कि सुस्पष्ट रूप से उत्तर-पुरापाषाणकालीन संस्कृतियां अनेक थीं। उनमें से तीन संस्कृतियां उत्तर-पुरापाषाणकाल को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं। उन्हें औरिगनेशियाई (aurignacian), सोलुत्रियाई (solutrean) और मैगदलेनियाई (magdalenian) कहा जाता है।

उत्तर-पुरापाषाणकालीन मानव लोमश गैंडे और विशालकाय हाथी (mammoth) के अलावा आर्कटिक क्षेत्र के विशाल स्तनधारी जानवरों का शिकार करते थे। जंगली भैंसा, रेंडियर, घोड़ा और समुद्री एवं ताजा पानी की मछलियां उनके खुराक में शामिल थीं। अनेक किस्म की वनस्पतियां भी खाई जाती थीं। उनमें से कुछ सख्त थीं। लेकिन मानव अपने औजारों से उन्हें खाने योग्य बना लेता था।

उत्तर-पाषाणकालीन औजार अधिकाधिक विशेषीकृत थे। उन्हें विशेष उद्देश्य के तहत गढ़ा जाता था। कुछ समूह एक सौ तक किस्म के औजार इस्तेमाल करते थे। औजार गढ़ने वाले औजार लगातार परिष्कृत किए जा रहे थे। इस तरह का एक विशिष्ट औजार तक्षणी (बुइन) है। औजार गढ़ने के लिए तक्षणी किसी छेनी के रूप में इस्तेमाल होता था। औरिगनेशियाई लोग समानांतर किनारों वाले छोटे फलक बनाने में दक्ष थे। ये किनारे बेहद धारदार होते थे। सोलुत्रियाई संस्कृति के सर्वाधिक विशिष्ट औजारों में से एक धारदार 'पटल बिंदु' (leaf point) था। मागदलेनियाई लोगों ने मछली पकड़ने के लिए लाजवाब मत्स्यभाला (harpoon) बनाया था।

यहां उत्तर-पुरापाषाणकाल के पत्थर के औजारों की दो और विशेषताओं की चर्चा करना जरूरी है। पहली तो यह कि पत्थर के अलावा अन्य वस्तुओं का व्यापक इस्तेमाल औजार बनाने में हो रहा था। लकड़ी, हड्डी, हाथी दांत और मृगशृंग आमतौर पर इस्तेमाल किए जा रहे थे। दूसरी, अब इस्तेमाल होने वाले औजारों में एक अच्छी-खासी संख्या मिस्र औजारों की थी। मिस्र औजारों के कई हिस्से होते जिनमें से कुछ हिस्से पत्थर के बने होते और अन्य लकड़ी या हड्डी के। पटल बिंदुओं को लकड़ी के डंडों से जोड़कर बरछा या भाला जैसा हथियार बनाया जाता था। शिकार के लिए इस्तेमाल किए जाने पर ये हथियार बड़े घातक हो सकते थे। शिकार करने के लिए तीरों का भी इस्तेमाल होने लगा था। अकसर उन्हें जहर में डुबाकर घातक बनाया जाता था। तन ढकने के लिए (चमड़े इत्यादि से) बेढब और अपरिष्कृत किस्म के लिबास बनाने के भी औजार गढ़े

गए थे। साथ ही साज-सज्जा के मकसद से लकड़ी, हड्डी, हाथी दांत और मृगशृंग छीलने खुरचने के लिए भी औजार गढ़े गए थे।

उत्तर-पुरापाषाणकाल हमें प्राचीनतम कला से रूबरू करता है। उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला के साथ मानव ने एक लंबी सांस्कृतिक छलांग लगाई। यह कला मानव इतिहास में विचार तथा कल्पना के विकास के एक नितांत नए चरण को रेखांकित करती है। उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला का विकास पश्चिमी यूरोप (हंगरी, यूगोस्लाविया) और दक्षिण-पश्चिम एशिया में शुरू हुआ। बाद में वह पश्चिम यूरोप में अपने उत्कर्ष तक पहुंचा। उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला के नमूने पश्चिम एशिया, साइबेरिया और अफ्रीका के साथ यूरोप के ज्यादातर हिस्सों में पाए गए हैं।

उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला की खोज सबसे पहले उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में हुई। 1879 में डान मार्सेलिनो डी सावतुओला ने स्पेन में आल्तमीरा की एक गुफा की छत पर चित्रकारी की खोज की। उन्होंने उन चित्रों का बारीकी से अध्ययन कर बताया कि वे प्रारंभिक पाषाणकाल के मानवों के बनाए हुए हैं। वहां की चित्रकारी इतनी शानदार है कि पुरापाषाणकाल में उन चित्रो के बने होने की बात एक लंबे समय तक लोगों के गले से उतर नहीं सकी। इसकी मुख्य वजह थी उन चित्रों का शैली की दृष्टि से बेहद आधुनिक लगना। उन चित्रों में जिस यथार्थपूर्ण ढंग से दौड़ते-भागते जानवरों की छवियां उकेरी गई हैं वह पुरापाषाणकाल के मानवों के बूते के बाहर की चीज लगती थी।

बाद के अध्ययनों ने इस बात की पुष्टि कर दी कि डी सावतुओला सही थे। वह सचमुच पुरापाषाणकालीन चित्रकारी थी। हेनरी बुइन ने उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला पर महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है। अब हमारे पास उत्तर-पुरापाषाणकाल की 200 गुफाओं की जानकारी है। उनके दीवारों पर चित्र बने हैं और नक्काशी की हुई है। आल्तमीरा के अलावा दूसरी मशहूर उत्तर-पुरापाषाणकालीन गुफा फ्रांस के लास्काव में है। गुफाओं में उकेरे ये चित्र ही उन संस्कृतियों की एकमात्र कलाकृति नहीं हैं। वहां हजारों अन्य कलावस्तुएं भी पाई गई हैं। उनमें औजारों के मूठ, लघु प्रतिमाएं और मृदाकृतियां शामिल हैं। उनमें जानवरों की छवि या फिर ज्यामितीय आकृतियां उकेरी गई हैं। मजे की बात यह है कि अनेक मृदाकृतियों में नारी शरीर प्रदर्शित किए गए हैं। जहां ये चित्रकारी यूरोप तक ही सीमित हैं, अन्य कलाकृतियां लगभग हर जगह मिलती हैं। उनकी खोज यूरोप, अफ्रीका और साइबेरिया के स्थलों पर की गई है।

आरिगनेशियाई संस्कृति (34,000 से 30,000 साल पूर्व) से जुड़े स्थलों में उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला का पहला व्यापक साक्ष्य मिला। असल में कहीं से आरिगनेशियाई चित्र तो नहीं मिले हैं। लेकिन बड़े सुंदर ढंग से गढ़े हाथी दांत के अनेक मनके मिले हैं जिनका इस्तेमाल सजावट में होता था। आरिगनेशियाई मानव ने हाथी के दांत और अस्थियों की मदद से जानवरों की छोटी आकृतियां गढ़ीं। उन्होंने हड्डी से एक बांसुरीनुमा सुषिर

वाद्य (wind instrument) भी बनाया। यहां हम संगीत की शुरुआत होते देखते हैं।

सोलुत्रियाई संस्कृति (22,000 से 18,000 साल पूर्व) में गुफा-चित्रकारी कला की एक प्रधान विधा के रूप में उभरी। शुरुआती चित्रकारी के खाके बेढब थे। लेकिन एक समय के बाद बढ़िया खाका बनने लगे। उनमें ढेर सारी तफसीलें भी डाली जाने लगीं। उन चित्रों में विभिन्न प्राकृतिक रंजकों की मदद से तरह-तरह के रंग भरे जाते। सोलुत्रियाई लोग गुफाओं की दीवारों पर आकृतियां उकेरने में भी माहिर थे। उस तकनीक में उकेरी आकृति दीवार की सतह से थोड़ा ऊपर उभरी होती थी।

उत्तर-पाषाणकालीन गुफा-चित्रकारी मैगदलेनियाई संस्कृति (18,000 से 11,000 साल पूर्व) के दौरान अपनी बुलंदी पर पहुंची। वह ऐसा समय था जब अंतिम हिमयुग (20,000 साल पूर्व) अपने चरम पर पहुंचने के बाद उतार पर था। जलवायु उष्ण हो गया था और सांस्कृतिक विकास की गति तेज थी। उस समय तक होमो सैपिएन्स सैपिएन्स दुनिया के विभिन्न हिस्सों में फैल चुके थे। वी गोर्डन चाइल्ड ने मैगदलेनियाइयों को आखेटक संग्राहकों द्वारा सृजित सबसे शानदार संस्कृति की संज्ञा दी है।

उत्तर-पुरापाषाणकालीन गुफाचित्रों में से करीब 80 प्रतिशत मैगदलेनियाई स्थलों के हैं। मैगदलेनियाई मानव ने गुफाओं में गहरे अंदर तक चित्रकारी करने की तकनीक उत्कर्ष तक पहुंचा दी थी। गुफाओं के सुदूर हिस्सों तक कुदरती रोशनी शायद ही पहुंच पाती थी। जानवरों की चर्बी से बने दीपों का इस्तेमाल वहां रोशनी करने के लिए किया जाता था। चित्रकार उन दीपों की रोशनी में गुफा के सुदूर हिस्सों में चित्र उकेरते। अवश्य ही यह थका देने वाला एक मुश्किल काम था जिसके लिए अच्छी-खासी महारत जरूरी थी। चित्रकारों ने मुख्यत: जानवरों के चित्र बनाए। उनमें से अनेक जानवर ऐसे थे जिनका मैगदलेनियाई शिकार किया करते थे। गुफाओं की दीवारों पर उकेरे गए अनेक चित्रों में मानवों को शिकार करते दिखाया गया है। उसके अलावा कुछ ज्यामितीय आकृतियां और (विभिन्न जानवरों की विशेषताओं को समाहित करते हुए) कुछेक काल्पनिक जानवरों के चित्र भी बनाए गए हैं।

जब से उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला का काल निर्धारित किया गया है, विशेषज्ञ उस कला के उद्देश्य के संबंध में तरह-तरह के अनुमान लगा रहे हैं। इस कला का मकसद क्या है? उत्तर-पुरापाषाणकालीन मानव ने उसके लिए इतनी कठोर मेहनत क्यों की? इसी तरह के सवालों के संदर्भ में उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला की व्याख्या करने के लिए बहुत कुछ लिखा गया है। इस बहस के एक सिरे पर वे लोग हैं जिनको लगता है कि यह महज 'कला के लिए कला' का मामला, अर्थात कला से मिलने वाली सौंदर्यपरक खुशी का मामला है और उसमें कोई अर्थ ढूंढना फिजूल होगा। बहस के दूसरे सिरे पर वे लोग हैं जिन्होंने उस कला से इतना ज्यादा अर्थ निकाल लिया कि उनके आलोचकों को यह कहना पड़ा कि हमें अपने अनुभवजनित अर्थों को उस कला पर थोपना नहीं चाहिए।

यह बात तुरंत साफ हो जाती है कि उत्तर-पुरापाषाणकालीन मानवों को जटिल विचार प्रक्रिया रचने में अक्षम आदिम मानव के रूप में खारिज करना गलत होगा। ये वे लोग हैं जिन्होंने एक उच्च स्तर का कलात्मक उत्कर्ष प्राप्त किया। यह उनकी अत्यंत उन्नत चिंतन प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है। उत्तर-पुरापाषाणकालीन मानव की अपनी एक सुसंगत विश्व दृष्टि थी। आधुनिक नृवैज्ञानिक अध्ययन ने हमें 'आदिमता' की अवधारणा पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य किया है। अगर कोई समाज प्रौद्योगिकी के मामले में हमारे मौजूदा समाज के मुकाबले कम विकसित है तो उसका यह कतई मतलब नहीं होता कि वह प्रकृति और विश्व को गहराई से समझने में अक्षम है। वास्तव में कभी-कभी उनकी समझ आधुनिक शहरवासियों के मुकाबले कहीं ज्यादा गहरी और उत्कृष्ट हो सकती है। कहा जाता है कि प्रौद्योगिकी के प्रति हमारा गहरा लगाव हमें इस चीज को आसानी से महसूस नहीं करने देता।

आज के आखेटक-खाद्य संग्राहक समुदायों के नृवैज्ञानिक अध्ययनों से हमें अतीत के उन समाजों के बारे में सूचनाओं का एक खजाना मिला है। उन अध्ययनों ने हमें सोचने-समझने और व्याख्या करने के खांचे दिए हैं। प्रागितिहासकारों ने उनकी मदद से उन चिंतन प्रक्रियाओं की पड़ताल करने की कोशिश की है जिसने उत्तर-पुरापाषाणकालीन कला के सृजन में भूमिका निभाई थी। जैसा कि हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं, बुइन ने उस कला पर गहन एवं महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है। वह बीसवीं सदी की शुरुआत में किए गए एस. रेनाक के अध्ययन से बेहद प्रभावित थे। रेनाक ने आस्ट्रेलिया के आदिवासी शिकारियों के चित्रों का अध्ययन करने पर पाया कि ये चित्र शिकार की संभावना बढ़ाने के इरादे से किए गए अनुष्ठान थे। उन चित्रों में ज्यादातर उन्हीं जानवरों की छवि उकेरी गई है जिनका आस्ट्रेलियाई आदिवासी शिकार करना चाहते थे। रेनाक ने उत्तर-पुरापाषाणकालीन चित्रों के साथ उन चित्रों की तुलना की। बुइन ने रेनाक के विचारों के आधार पर कहा कि उत्तर-पुरापाषाणकालीन चित्र जादुई प्रकृति के हैं।

यहां 'जादू' शब्द का इस्तेमाल किसी वस्तु या प्राकृतिक परिघटना को वश में करने के उद्देश्य से किए गए कार्य यानी कर्मकांड के अर्थ में किया गया है। जादू या कुछ अनुष्ठानों के जरिए प्रकृति में हस्तक्षेप करने या उसे नियंत्रित करने के प्रयास एक स्तर पर मानव को प्राकृतिक परिघटनाओं के गहरे अवलोकन की ओर ले गए। उसने शुरुआती विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक अन्य स्तर पर इन जादुई अनुष्ठानों ने धार्मिक आस्थाओं की शुरुआत को रेखांकित किया क्योंकि एक समग्र विश्व दृष्टि अर्थात एक खास तरह से दुनिया को देखने की दृष्टि के निर्माण में धार्मिक आस्थाओं की भी भूमिका होती है।

उत्तर-पुरापाषाणकालीन चित्रों के बारे में बुइन का कहना है कि वह किसी जादुई कर्मकांड का हिस्सा थे। ये कर्मकांड इसलिए किए गए थे ताकि उत्तर-पुरापाषाणकालीन

मानव जब शिकार करने जाए तो शिकार के जानवरों पर उसका ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण हो। इसीलिए जंगली भैंसा, रेंडियर और घोड़ा जैसे जानवर ही मुख्यत: उन चित्रों के विषय हैं।

ज्यादातर विशेषज्ञ अब मान चुके हैं कि उन चित्रों का उद्देश्य कर्मकांडी है। फिर भी उन अनुष्ठानों के वास्तविक संदर्भों को लेकर मतभेद है। कुछ प्रागितिहासकारों की दलील है कि कर्मकांडों के बारे में बुइन की समझ सतही है। उनके अनुसार उत्तर-पुरापाषाणकालीन शिकारी यह नहीं सोचते थे कि महज किसी खास जानवर की छवि उकेर देने से वह जानवर उनके काबू में आ जाएगा। उसके अलावा ऐसा नहीं था कि उन मानवों ने अपने चित्रों में हमेशा उन्हीं जानवरों की आकृति बनाई हो जो उनके खुराक में शामिल हो। उन चित्रों के एक और विशेषज्ञ आंद्रे लेरोइ-गौरहान ने इस प्रश्न को एक भिन्न परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की। बुइन उन चित्रों में जानवरों को अलग-अलग कर देखते हैं जबकि लेरोइ-गौरहान ने उन जानवरों को एक समूह या झुंड में रखकर उन्हें देखने की कोशिश की। उन्होंने पाया कि जानवरों के कुछ खास समूहों को गुफाओं के कुछ खास हिस्सों में एक समान रूप से चित्रित किया गया है।

इस चित्रण का अपना एक प्रतिरूप (pattern) है। मसलन जंगली भैंसों और घोड़ों को हमेशा गुफा के अंदर चित्रित किया गया है। दूसरी तरफ हिरन की छवि हमेशा गुफाओं के प्रवेश द्वार पर उकेरी गई है। लेरोइ-गौरहान के अनुसार उन चित्रों के पीछे आस्थाओं की एक जटिल प्रक्रिया है। उनकी सजावट बताती है कि उत्तर-पुरापाषणकालीन मानव के मानस में जानवरों के विभिन्न समूहों का संबंध विभिन्न प्राकृतिक परिघटनाओं से था। वह एक कदम आगे बढ़कर बताते हैं कि उन जानवरों को प्रकृति के स्त्री-पुरुष विभाजन के आधार पर समूहबद्ध किया गया है। कुछ शक्तियों को 'पौरुष' का प्रतिनिधि माना गया है जबकि अन्य को 'स्त्रीत्व' का प्रतिनिधि। 'पुरुष' जानवर (मसलन घोड़ा, हिरन) पुरुष सिद्धांतों के प्रतिनिधि माने जाते थे जबकि 'स्त्री' जानवर (जैसे जंगली भैंसा, बैल) स्त्री सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करते थे।

इस तरह उन चित्रों से हमें उत्तर-पुरापाषाणकालीन मानस की गहरी जानकारी मिलती है। हम समझ पाते हैं कि प्रकृति की शक्तियों के बारे में उन लोगों का चिंतन क्या था। वे जानवरों के कुछ समूहों को कुछ खास प्राकृतिक शक्तियों के साथ जोड़ते थे। उन्हें उम्मीद थी कि प्रकृति के प्रति अपनी इस विशेष दृष्टि के माध्यम से वे प्रकृति को अपने काबू में कर लेंगे। खास तौर पर यह बात उन शक्तियों के नियंत्रण की उनकी कोशिशों में दिखती हैं जिन्हें वे प्रकृति का 'स्त्री-पुरुष' सिद्धांत मानते थे। बहरहाल अनेक प्रागितिहासकारों ने लेरोइ-गोरहान की इस व्याख्या से असहमति जताई है। कुछ ने तो यहां तक कहा है कि उत्तर-पुरापाषाणकालीन समाज और हमारे मौजूदा समाज के बीच समय का बहुत बड़ा अंतराल है और ऐसे में इसमें शक है कि हम उन चिंतन प्रक्रियाओं

पर से समय का पर्दा हटा पाएंगे जिनके तहत वे चित्र बने थे।

यहां एक और मुद्दा है जिस पर चर्चा करने की जरूरत है। और यह मुद्दा है कि उस वक्त जो धार्मिक अनुष्ठान होते थे, उनका स्वरूप क्या था? यह एक जटिल प्रश्न है। इसे हल करने की जो कोशिशें हुई हैं, उनमें से ज्यादातर अटकलों पर आधारित हैं। कुछ विद्वानों ने यहां से जादू-टोना की शुरुआत होने की बात की है। एक दूसरी अवधारणा काउंट बगां की है। उनका कहना है कि चित्र बनाना भी कर्मकांड का एक हिस्सा था। चित्रकार किसी चीज का खाका बनाकर अपना अनुष्ठान पूरा करता था। बगां की दलील चित्रों की दो महत्वपूर्ण विशेषताओं पर आधारित है। पहली विशेषता यह कि अनेक मामलों में संबंधित गुफाओं में आकृतियां एक ही स्थान पर बार-बार बनाई गई हैं। उन स्थानों पर पुराने चित्रों के ऊपर ही नए चित्र बना दिए गए। उन विशेष स्थानों पर (जिन्हें 'पवित्र' माना जा सकता है) चित्र बनाने का कृत्य चित्र से ज्यादा प्रतीत होता है। दूसरी बात यह है कि ज्यादातर चित्र अंधेरी और तंग जगहों पर बनाए गए हैं। इसका मतलब यह हुआ कि चित्र बनाना बेहद मुश्किल काम था। उन्हें बनाने के लिए बहुत ज्यादा समय, मेहनत और महारथ की जरूरत पड़ती थी। इस तरह आकृति बनाते व्यक्ति को अनुष्ठान करते हुए माना जा सकता है। फिर चूंकि आकृतियां गुफा के तंग और अगम्य हिस्सों में उकेरी गई हैं जहां कुदरती रोशनी बमुश्किल पहुंच पाती थी। इसलिए देखने के उद्देश्य से नहीं बनाया गया था। इस तरह चित्रकारी अपने आप में एक अनुष्ठान थी। यह व्याख्या अपनी सरलता और सहजता के कारण प्रभावशाली है।

पुरापाषाणकाल के अवशेष हमारे सामने शुरुआती मानव के सामाजिक संगठन की एक तसवीर पेश करते हैं। उन अवशेषों को अकसर समकालीन आखेटक-खाद्य संग्राहक समुदायों के अनुभवों के साथ तालमेल बिठाने की जरूरत पड़ती है। पूर्व-पाषाणकाल में होमिनिड बेहद छोटे समूहों में रहते थे। मां और शिशु के बीच का संबंध केंद्रक था और उसके इर्द-गिर्द सामाजिक समूह का निर्माण हुआ था। वानरों के व्यवहार के अध्ययन से संबंधित वानर शास्त्र (primatology) ने हाल-फिलहाल एक स्वतंत्र एवं संपूर्ण शास्त्र का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इसने प्रारंभिक मानव के सामाजिक संगठन की पुनर्रचना करने में हमारी मदद की है। मानवाभ कपि (anthropoid) सामान्यत: अपने व्यवहार में बेहद सामाजिक होते हैं। वे समूहों में रहते हैं। उन समूहों के बीच स्पष्ट संबंध होते हैं। यह प्रारंभिक मानव के लिए भी सही होगा। नवजात शिशुओं की लंबे समय तक देख-रेख करने की जरूरत उनके बीच सहयोग स्थापित करती है।

पुरापाषणकाल में परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बैठाने में गतिशीलता का बहुत महत्व था। समूह भोजन की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह तक लगातार घूमते रहते थे। फिर भी उनकी सारी गतिशीलता एक जाने-पहचाने माहौल में ही चलती थी। वे उससे बाहर नहीं जाते थे। वनस्पति संग्रह एक व्यक्तिगत गतिविधि थी। उसमें बहुत

समय लगता था। समूह के तमाम वयस्क सदस्यों को उसमें लगना पड़ता था। वनस्पति संग्रह में लगने वाले समय, परिश्रम और तकनीक के स्तर के मद्देनजर यह संभव नहीं था कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए संग्रह कर सके। परभक्षियों के शिकार किए हुए जानवरों के बचे-खुचे हिस्से लाना भी किसी एक व्यक्ति के बूते की चीज नहीं थी। एशूली और होमो इरेक्टस की अन्य संस्कृतियों के साथ सामाजिक समूह थोड़ा बड़ा हो गया। उन समूहों को 'जत्था' कहा जा सकता है। उनमें आमतौर पर 20-25 सदस्य होते थे। जत्थे रिश्तेदारी पर अर्थात खून के रिश्ते से जुड़े लोगों पर आधारित होता था। समूह के अंदर यौन संबंध स्थापित करने पर कुछ रोक थी। शिकार खेलने के लिए अधिक सहयोग की जरूरत थी। यह सहयोग परस्पर संवाद करने की क्षमता में सुधार के साथ संभव हुआ।

मूस्तिए संस्कृति के लोग बड़े स्तनधारी जानवरों के माहिर शिकारी थे। बड़े चौपायों का शिकार बढ़िया ढंग से तभी संभव हो सकता था जब ढेर सारे लोग सामूहिक रूप से उसका शिकार करें। जानवरों का सुराग लगाने, उन्हें फंसाने के लिए जाल बुनने और उन्हें मारने के लिए ज्यादा सहयोग की जरूरत पड़ती है। इस तरह के सहयोग ने औजार-निर्माण की तकनीक सिखाने और उन तकनीकों का मानकीकरण करने के अवसर दिए। जैसे ही किसी समूह के सदस्यों की संख्या बढ़ती, उनसे उपसमूह निकल आते ताकि उस क्षेत्र के संसाधनों पर बोझ नहीं बढ़े। यह होमो इरेक्टस के समय से होमीनिड आबादी के बड़े पैमाने पर स्थानांतरण में प्रदर्शित हुआ।

मध्य-पुरापाषाणकाल तक समूह एक-दूसरे से पूर्ण अलगाव में नहीं रहते थे। दूसरे समूहों के साथ उनका ढीला-ढाला संपर्क स्थापित हो गया था और वे एक बड़े इलाके के विचरते थे। पूरा समूह कई-कई दिन एक जगह से दूसरी जगह नहीं जाता था, बल्कि एक जटिल रणनीति पर अमल करता था। समूह एक मौसमी चक्र में एक बड़े इलाके में लंबी दूरी तय करता। हरेक मौसमी स्थानांतरण के दौरान वे अपने ठिकाने (homebase) के लिए उपयुक्त स्थान चुनते। वे अपने इस ठिकाने से जानवरों का शिकार करने छोटे-छोटे जत्थों में विभिन्न दिशाओं में कूच करते। इस क्रम में वे कई-कई दिन अपने ठिकानों से गैरहाजिर रहते।

इस व्यवस्था के तहत समूह के अंदर श्रम का विभाजन था। आम तौर पर पुरुष शिकार करने जाते। महिला ठिकानों के निकट रहतीं। वे बच्चों की परवरिश करतीं और भोजन के लिए वनस्पति इकट्ठा करतीं। वे ठिकानों के आसपास उपलब्ध छोटे-मोटे जानवरों का शिकार भी करतीं। यह बस श्रम का एक क्रियागत विभाजन था। इसलिए उसमें 'पुरुष शौर्य' का कोई संकेत नहीं देखना चाहिए। निश्चित रूप से इसका यह भी मतलब नहीं निकलता है कि पुरुषों में शिकार करने की बेहतर क्षमता होती है या वनस्पति संग्रह करने के मुकाबले शिकार करना एक श्रेष्ठ या उत्कृष्ट गतिविधि है। इस तरह की

सारी अवधारणाओं ने बहुत बाद में, समाज में विषमता आ जाने के बाद अपनी जगह बनाई।

होमो सैपिएन्स सैपिएन्स के पदार्पण और उत्तर-पुरापाषाणकाल में संक्रमण के साथ अनेक समूहों के संजाल पर आधारित समुदायों का गठन हुआ। उन समुदायों में अनेक समूह थे जो एक ही पर्यावरण वाले क्षेत्र में रहते थे और मिलते-जुलते तरीकों से भोजन जुटाते थे। वे एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर शिकार करते। उनके बीच वस्तुओं की, यहां तक कि यौन क्रियाओं के लिए सहयोगियों की अदला-बदली हुई। ये समूह कुछ खास मौकों पर अनुष्ठान करने के लिए जमा होते। साझी आस्थाओं पर आधारित उन अनुष्ठानों ने उस काल की गुफा-चित्रकारी को जन्म दिया। एक समूह की पहचान उनके खास आभूषणों से होती थी। अनुष्ठान और आदान-प्रदान पर आधारित संबंध का विकास एक जटिलतर सामाजिक संगठन के उदय की ओर इशारा करते हैं।

भाषा ने इस विकास में एक निर्णायक भूमिका निभाई। फिलिप लीवरमैन ने दिखाया है कि निएंडरथल तक में भाषा कौशल की कमी थी जबकि होमो सैपिएन्स सैपिएन्स इस कौशल से परिपूर्ण है। निएंडरथल का स्वर भाग (vocal tract) चिंपैंजी से मिलता-जुलता है। शुरुआती होमो सैपिएन्स भी वानरों, यहां तक कि आस्ट्रेलोपिथेकस की तुलना में ज्यादा बेहतर ढंग से संवाद कर सकते थे और ज्यादा सूचनाएं संग्रह कर सकते थे। लेकिन वे उस तरह से भाषा का इस्तेमाल नहीं कर सकते थे, जिस तरह आज हम कर रहे हैं। एक बार जब यह कौशल हासिल हो गया, उसने ज्यादा व्यापक और ज्यादा सघन संवाद की संभावना सृजित की। भाषा के अनेक समूहों के साथ संपर्क बनाने और उसे कायम रखने में मदद की। परस्पर सहयोग के आधार पर गठित होमो सैपिएन्स सैपिएन्स के बड़े-बड़े समूहों के सदस्य बड़ी आसानी से आपस में संवाद करते हुए विचरण करते थे। वे होमो सैपिएन्स की दूसरी प्रजातियों के लिए घातक हुए होंगे। होमो सैपिएन्स की दूसरी प्रजातियां छोटे समूहों में रहती थीं और उतनी दक्षता के साथ आपस में संवाद नहीं करती थीं। एक छोटे से काल में उन प्रजातियों को आधुनिक मानव के दबाव के सामने झुक जाना पड़ा और विलोपन की राह अपनानी पड़ी।

पूरे पुरापाषाणकाल के दौरान सामाजिक संगठन की एक विशेषता हमेशा बरकरार रही। न सिर्फ जत्थों में, बल्कि बड़े समूहों में भी औजार और भोजन तक सभी सदस्यों की 'सामूहिक' पहुंच थी। वनस्पति खाद्य पदार्थ आम तौर पर व्यक्तिगत स्तर पर चुने एवं खाए जाते थे। मांस का बंटवारा होता था। इस बंटवारा से, खासकर उत्तर-पुरापाषाण काल में एक जटिल अनुष्ठान जुड़ा होता था। उस काल के बंटवारे की प्रक्रिया को तोहफा देने या समूह के दूसरे सदस्यों के साथ किसी की स्वैच्छिक भागीदारी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। उस वक्त व्यक्तिगत नियंत्रण की कोई अवधारणा या समझ ही नहीं थी क्योंकि मारे गए जानवर पर (साथ ही औजार पर) सामूहिक अधिकार या स्वामित्व था। यह अवधारणा खाद्य उत्पादन शुरू होने के साथ ही बदलने लगी।

अध्याय तीन

नवपाषाणकाल

अत्यंत नूतन युग के अंत के साथ ही हिमयुग का भी अंत हो गया। अत्यंत नूतनोत्तर (पोस्ट प्लीस्टोसीन) या हिमनदोत्तर युग में (भूगोलशास्त्री उसे नूतनतम युग भी कहते हैं) जलवायु की स्थितियां काफी ऊष्ण थीं। पर्यावरण में इस परिवर्तन का मतलब था कि अत्यंत नूतनोत्तर समाज हमेशा उन तरीकों से अपना भोजन जुटा नहीं पाते होंगे जिनके वे पिछले कई हजार सालों से अभ्यस्त हो चुके थे। पहले वे जानवरों की कुछ खास प्रजातियों की, मसलन रेंडियर की बड़ी संख्या में शिकार करते थे। लेकिन अब उनकी संख्या बहुत घट गई थी। विभिन्न पारिस्थितिकीय क्षेत्रों (इकोलॉजिकल जोन्स) पर उन तब्दीलियों के पड़ने वाले प्रभाव अभी साफ नहीं हैं। लेकिन उन तब्दीलियों को एक हद तक पहचाना जा सकता है।

पहले तापमान कम होने के कारण पृथ्वी की सतह पर मौजूद पानी का एक बड़ा हिस्सा बर्फ की शक्ल में था। तापमान बढ़ने से बर्फ पिघला और पानी का वह हिस्सा मुक्त हो गया। सागर और महासागर में पानी की सतह ऊंची हुई। उससे एक तरफ अन्य तटीय इलाके और निचले क्षेत्र जलमग्न हो गए। दूसरी तरफ पहले जो इलाके पूरी तरह बर्फ से ढके थे, अब रहने योग्य हो गए। जमी हुई नदियों और जलधाराओं के पिघल जाने से उनका इस्तेमाल भोजन के स्रोत के रूप में संभव हो रहा था। यह हिमनदोत्तर युग में खाई जाने वाली समुद्री खाद्य सामग्रियों और नदी की मछलियों की विविधता में देखी जा सकती है।

समशीतोष्ण प्रदेशों (टेंपरेट जोन) और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों (ट्रॉपिकल जोन्स) में आर्द्र स्थितियां रहीं। उष्ण जलवायु और उच्च जल स्तर से उन क्षेत्रों में आर्द्रता बढ़ी। अनेक वन घने हो गए और अब तक सूखे पड़े अनेक क्षेत्र खुले चरागाहों में बदल गए।

हालांकि जलवायु की इन तब्दीलियों का जीवन-निर्वाह के तरीकों पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा, हमें उनके महत्व को ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर आंकना नहीं चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि समूचे उत्तर-पुरापाषाणकाल के दौरान मानव को पर्यावरण में तेजी से हो रहे बदलावों के अनुरूप खुद को लगातार ढालना पड़ा था। जैसे-जैसे अंतिम हिमयुग आगे बढ़ा, वैसे-वैसे तापमान में गिरावट आई। यह सिलसिला 20,000 साल वर्ष पूर्व तक चला। जबर्दस्त ठंड के चरण के लगभग तुरंत बाद हिमनदों के पिघलने की प्रक्रिया शुरू हो गई। मानव समाज वातावरण में होने वाले उन परिवर्तनों से निबटना सीख चुका था।

उसके अलावा उत्तर-पुरापाषाणकाल के दौरान मानव उन परिवर्तनों से जूझने की तकनीक काफी हद तक विकसित कर चुका था।

हिमनदोत्तर युग 12,000 साल पहले (या 12,000 आद्यपूर्व (बिफोर प्रेजेन्ट) शुरू हुआ। आद्यपूर्व की गणना 1950 ईसवी से की जाती है। अत: 12,000 बी.पी. (आद्यपूर्व) का मतलब हुआ 1950 ईसवी से 12,000 साल पहले। उसे 10,150 ईसापूर्व भी लिखा जा सकता है। इस अध्याय की ज्यादातर तारीखें आद्यपूर्व में हैं। 12,000 बी.पी. के बाद यूरोप की शानदार उत्तर-पुरापाषाणी संस्कृति ढह गई। उनमें सबसे उत्कृष्ट मैगदलेनियाई संस्कृति थी। वह गुम हो गई। उसके बाद लंबे समय तक उसके टक्कर की कोई संस्कृति नहीं दिखती है। स्पष्टत: बदली हुई नई परिस्थितियों में मैगदलेनियाई अर्थव्यवस्था टिक नहीं पाई। एक समय था जब मैगदलेनियाइयों ने वातावारण के अनुरूप खुद को सफलतापूर्वक ढाल लिया था। लेकिन वातावरण में हुए बदलाव से अनुकूलन की यह प्रक्रिया बुरी तरह गड़बड़ा गई।

अत्यंत नूतनोत्तर युग की शुरुआत में यूरोप के ज्यादातर हिस्सों में शिकार एवं खाद्य संग्रह पर आधारित अर्थव्यवस्था जारी रही। शुरुआती हिमनदोत्तर काल की ये संस्कृतियां मैगदलेनियाइयों के मुकाबले निम्नतर प्रतीत होती हैं। एक लंबे समय तक प्रागितिहासकारों ने उसे चौतरफा ह्रास के एक काल के रूप में देखा। उन्होंने उस काल की यूरोपीय संस्कृतियों के लिए मध्यपाषाणकाल (मेसोलिथिक) शब्द का इस्तेमाल किया। *इस शब्दावली का इस्तेमाल खासतौर पर शुरुआती हिमनदोत्तर काल में यूरोप की शिकार एवं खाद्य संग्रह पर आधारित संस्कृतियों के लिए किया गया।* यह माना गया कि जलवायु में हुए परिवर्तनों ने यूरोप में विकास की प्रक्रिया उलट दी। जहां पश्चिम एशिया कृषि की ओर अग्रसर हुआ, यूरोपीय पुरापाषाणी जीवनशैली से बंधे रहे। यह माना जाता है कि महाद्वीप में खाद्य उत्पादन के प्रसार के साथ मध्यपाषाणकाल समाप्त हो गया। इस शब्द का इस्तेमाल अपने-आप में विवादास्पद हो गया। प्रागितिहासकार यह फैसला नहीं कर पाए हैं कि नवपाषाणकाल पुरापाषाणकाल से संपूर्ण टूट का प्रतिनिधित्व करता है या फिर पुरापाषाणकाल से नवपाषाणकाल में एक क्रमबद्ध संक्रमण हुआ और मध्यपाषाणकाल दोनों के बीच का मध्यवर्ती चरण था। इसके अलावा यूरोप के संदर्भ में कुछ विशेषज्ञों ने मध्यपाषाणकाल को ह्रास का एक दौर माना है जबकि अन्य के लिए यह शिकार एवं खाद्य संग्रह पर आधारित अर्थव्यवस्था में फेरबदल का अत्यंत नूतनोत्तर वातावरण के अनुरूप खुद का ढालने का एक प्रयास था।

यह हकीकत है कि 12,000 बी.पी. के बाद यूरोप के अनेक हिस्से गतिरुद्धता के शिकार हो गए या उनमें गिरावट आई। फिर भी हाल के अध्ययनों से पता चला है कि कुछेक क्षेत्रों में बड़ा रोचक विकास हो रहा था। इन अध्ययनों ने मध्यपाषाणकाल को एक नया अर्थ दिया है। हालांकि मध्यपाषाणकालीन मानव मुख्यत: शिकार करने एवं

खाद्य-संग्रह से जुड़े रहे, उनकी अनुकूलन की रणनीति में कई अनूठे पहलू जुड़े। यूरोपीय मध्यपाषाणकाल की यह नई तसवीर मुख्य रूप से स्कैंडिनेविया और उत्तरी यूरोप में उभरती है।

स्कैंडिनेविया की मध्यपाषाणकालीन संस्कृतियों ने शिकार और खाद्य संग्रह की पूरी क्षमता का दोहन करने का प्रयास किया। ये संस्कृतियां बड़ी संख्या में विविध प्रकार के पशुओं का शिकार करती थीं। बेहतर ढंग से शिकार करने के लिए नए औजार और नई तकनीकों का इस्तेमाल होता था। समुद्री भोजन अर्थव्यवस्था का केंद्र बिंदु बन गया था। यह बाल्टिक सागर के तट के दोहन से संभव हो सका था जो अब तक ठंड के कारण जमा हुआ था। अंतिम हिम युग के दौरान स्कैंडिनेवियाई बर्फ की परतों ने उत्तरी यूरोप के ज्यादातर हिस्सों को ढक रखा था। तापक्रम बढ़ने से बर्फ की परतें पीछे हटीं और बाल्टिक प्रदेश तथा साथ ही पूर्वी यूरोपीय तट रेखा तक लोगों की पहुंच बनी। समुद्री जीवन से समृद्ध इस प्रदेश ने स्कैंडिनेविया के मध्यपाषाणकालीन शिकारियों का पोषण किया। विभिन्न किस्म की मछलियां (जिनमें सामन सर्वाधिक लोकप्रिय थी) और समुद्री स्तनधारी पशु (डाल्फिन, सील और व्हेल) खाए जाते थे। जमीन पर विचरने वाले पशुओं की एक बड़ी तादाद भी उनकी खुराक में शामिल थी। कुल मिलाकर मध्यपाषाणकालीन मानव की खुराक विविधतापूर्ण थी। मध्यपाषाणकालीन स्थलों से मछली पकड़ने के कांटे, जाल और मत्स्य भाले मिले हैं। छोटे और अत्यंत प्रभावी सूक्ष्म पाषाणों (माइक्रोलिथ) का इस्तेमाल आम था। इन सूक्ष्म पाषाण के सिरे नोकदार या धारदार होते हैं और शिकार के लिए एक अत्यंत घातक हथियार के रूप में उनका इस्तेमाल किया जाता था। मध्य-पाषाणकालीन शिकारी तीर और धनुष का नियमित इस्तेमाल करते थ। समुद्र और नदियों में यहां-वहां जाने के लिए डोंगी या छोटी नावों का निर्माण होता था। नावें लकड़ी के कुंदों को खोदकर तैयार की जाती थीं। कुत्तों को शिकार में मदद के लिए पालतू बना लिया गया था।

उत्तरी यूरोप में मध्यपाषाणकाल के विकास को तीन प्रमुख कालखंडों में बांटा जाता है : मैगलेमीजी (9500 से 7700 बी.पी.); कांगीमोजी (7700 से 6600 बी.पी.); और अर्तेबोली (6600 से 5200 बी.पी.)। स्वीडन, डेनमार्क और दक्षिणी स्कैंडिनेविया के दूसरे हिस्से मध्यपाषाणकालीन संस्कृति के प्रमुख केंद्र थे। दक्षिणी स्कैंडिनेविया के मध्यपाषाणकालीन स्थलों में आबादी सघन है। संबंधित भूक्षेत्र के लिहाज से वहां की आबादी ज्यादा है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिकारी कुछ पसंदीदा जगहों पर भारी तादाद में जमा हो गए। उन्होंने लंबे समय तक उन स्थलों का इस्तेमाल किया। उसने एक स्थिर और स्थानबद्ध जीवन शैली को जन्म दिया जो आमतौर पर शिकारी-खाद्य संग्राहक समुदायों का लक्षण नहीं है। मध्यपाषाणकालीन शिकारी-खाद्य संग्राहक समुदाय बसने की प्रक्रिया में थे। यह शिकारी-खाद्य संग्राहक समुदायों की अनुकूलन की आम प्रक्रिया से भिन्न

चीज थी। शिकारी-खाद्य संग्राहक छोटे समूहों में रहते थे और लगातर एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। मैगलेमोजी से कांगेमोजी में और फिर अर्तेबोली कालों में संक्रमण के क्रम में स्कैंडिनेविया के मध्यपाषाणी समुदाय बेहद बड़े हो गए। वे सघन आबादी वाली बस्तियों में रहते थे।

उसे एक 'सम्मिश्र' शिकारी समाज के नाम से जाना जाता है। सामाजिक समूह आकार में बड़े थे। पर्यावरण का खासतौर पर मछली पकड़ने के माध्यम से खूब दोहन किया गया। दूसरे समूहों के साथ सहयोग और आदान-प्रदान पर आधारित संबंध स्थापित किए गए। विशिष्ट औजारों, आभूषणों और शंखों जैसी कुछ वस्तुओं का भी आदान-प्रदान होता था। अर्तेबोली काल तक कुछ कृषक समुदायों के साथ भी आदान-प्रदान के साक्ष्य मिलते हैं। यह मध्यपाषाणकालीन स्थलों पर मृद्‌भांडों (मिट्टी के बरतनों) के मिलने से पता चला है। टी डगलस प्राइस के शब्दों में हम अब मध्यपाषाणकाल को 'उत्तरी यूरोप के आरंभिक हिमनदोत्तर शिकारी-खाद्य संग्राहक में सृजन, अंत:क्रिया और सफल अनुकूलन के काल' के रूप में देख सकते हैं। उसने 6000 से 5000 ईसा पूर्व के दौरान यूरोप के उन हिस्सों में कृषि के प्रारंभ के लिए स्थितियां तैयार कीं।

मध्यपाषाणी अर्थव्यवस्था अनिवार्यत: पुरापाषाणी शिकार एवं खाद्य संग्रह का एक विस्तार था। उसमें पौधों का खूब संग्रह हुआ। मध्यपाषाणकाल में बस्ती बसाकर रहने की शुरुआत हुई। समूहों के बीच आदान-प्रदान पर आधारित संबंध मजबूत हुए। ऐसे पर्याप्त साक्ष्य मिले हैं जो कुछ इलाकों में आबादी में समग्र वृद्धि के साथ साथ घनत्व (प्रतिवर्ग किलोमीटर व्यक्तियों की अधिक संख्या) में वृद्धि को इंगित करते हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं ये लक्षण यूरोपीय मध्यपाषाणकाल में दिखते हैं। शिकारी-संग्राहक जीवन शैली के ये तत्व पश्चिमी एशिया में प्रमुखता से दिखे। ऐसा लगता है कि उस क्षेत्र में उन नए तत्वों में से अनेक उत्तर-अत्यंत नूतन युग से ही विकसित होने शुरू हो गए थे। उत्तर-अत्यंत नूतन युग/मध्यपाषाणकाल के दौरान पश्चिम एशिया के शिकारी-संग्राहक समुदायों ने अनुकूलन की जो रणनीति अपनाई, उससे उस क्षेत्र में खाद्यान्न उत्पादन की शुरुआत हुई।

हिम युगों के दौरान पश्चिम एशिया एक ठंडा एवं शुष्क क्षेत्र था। हिमनदोत्तरी उष्णता और आर्द्रता से वहां घास के मैदान उभरे। अत्यंत नूतन युग में पश्चिम एशिया का पर्यावरण बेहद कठोर था। उस क्षेत्र में रहने वाले समूह एक जगह से दूसरी जगह लगातार घूम कर और खाने योग्य जो भी जंगली पौधे मौजूद थे, उन्हें जमा कर खुद को जिंदा रखा होगा। हिरन बड़ी संख्या में शिकार किए जाते थे। अन्य जानवर शायद ही कभी शिकार किए जाते हों। इन मुश्किल हालात में नई किस्म के भोजनों को जांचने-परखने की चाह होगी। इस क्रम में अत्यंत नूतन युग के अंतिम चरण में किसी समय अनाज की जंगली घासें उनकी खुराक में शामिल हो गईं।

पश्चिम एशिया की पुरापाषाणी अर्थव्यवस्था 12,000 बी.पी. के बाद लगातार बदलती रही। नई किस्म के औजार गढ़े गए। भोजन की उपलब्धता सुधरी और उसके कारण पश्चिम एशियाई पुरापाषाणी समाज की विशिष्ट घुमक्कड़ जीवन शैली में ठहराव आया। स्थायी आवास उभरने लगे। अत्यंत नूतनोत्तर युग में कुछ पश्चिम एशियाई स्थलों पर निवास स्थान की एक उल्लेखनीय निरंतरता दिखती है। इस तरह की बस्तियों के साक्ष्य फलस्तीन, इस्राइल, सीरिया और जोर्डन में मिलते हैं। ये बस्तियां 1200 बी.पी. की हैं और उन्हें नातुफियाई संस्कृति (नातूफियन कलचर) (1200 बी.पी. से 1000 बी.पी.) से जोड़ा जाता है। पहले किए गए के कुछ अध्ययनों में नातुफियाई संस्कृति का जिक्र एक मध्यपाषाणी संस्कृति के रूप में किया गया है क्योंकि उसे मूलत: एक शिकारी-संग्राहक संस्कृति माना जाता है जिसने हिमनदोत्तर पर्यावरण के मुताबिक खुद को ढाल लिया था। खाद्य उत्पादन की प्रक्रिया की शुरुआत की बेहतर समझ से हमें संकेत मिलता है कि नातुफियाई संस्कृति ने कृषि के लिए पूर्वशर्त तैयार कर दी थी। पश्चिम एशिया में नातुफियाई संस्कृति से पहले एक संक्षिप्त मध्यपाषाणकाल या/नवपाषाणकाल एकदम अचानक नहीं आया, बल्कि वह स्थितियों के साथ समायोजन एवं प्रयोग का परिणाम था। नातुफियाई संस्कृति पुरापाषाण/मध्यपाषाण से नवपाषाण में संक्रमण को रेखांकित करती है।

नातुफियाई लोगों ने जंगली अनाज और काष्ठ फलों के संग्रह तथा हिरनों के शिकार के सहारे जीवनयापन किया। वे वृत्ताकार झोंपड़ियों में रहते थे। प्राप्त साक्ष्य इंगित करते हैं कि वनस्पति खाद्य पदार्थों के लिए संग्रहकक्ष थे। यह खाद्य आपूर्ति की एक अधिक स्थायी प्रक्रिया और स्थिर जीवन का संकेत देता है। नातुफियाई लोगों ने हंसिया का इस्तेमाल किया जो औजार प्रौद्योगिकी में सर्वाधिक उल्लेखनीय अग्रगति थी। यह अब तक की ज्ञात सबसे पुरानी हंसिया है। उन हंसियों में पत्थर के दो या तीन धारदार फलक होते थे जो आमतौर पर हड्डी के बने मूठ से जुड़े होते थे। फलक के सिरे बकरे के दांत से मिलते-जुलते होते थे। वे जंगली अनाज के तृण काटने के लिए उपयुक्त थे। उन तृणों के कड़े डंठल काटने से फलकों पर विशेष किस्म की चमक आ गई जो उन औजारों में संरक्षित हो गई। उस चमक ने पुष्टि कर दी कि जंगली अनाज नतुफियाई लोगों के भोजन का एक महत्वपूर्ण स्रोत था।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों या बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों के दौरान प्रागितिहासकारों के पास नवपाषाणकाल के प्रारंभ की बस्तियों की जानकारी बहुत कम थी। अकसर यह माना जाता था कि खाद्यान्न उत्पादन की शुरुआत उन उर्वर क्षेत्रों (मिस्र में नील नदी से लगे या मेसोपोटामिया में दजला और फरात नदी के बीच के क्षेत्रों) में हुई जिसने महान सभ्यताओं को जन्म दिया। 1940 के दशक तक नवपाषाणी बस्तियों का तिथि निर्धारण अत्यंत अवास्तविक था और वह प्राय: अटकलबाजी होता था। 1950

के दशक में बड़ी मात्रा में पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध हुए। ये साक्ष्य चौथे दशक के अंत और पांचवें दशक की शुरुआत में पश्चिम एशिया में हुए खुदाई से मिले। इस खुदाई के साथ-साथ साक्ष्यों के तिथि निर्धारण के तरीकों में क्रांति आई। इस क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी पुरातात्विक वस्तुओं के रेडियोकार्बन तिथि निर्धारण तकनीक का इस्तेमाल। इस नए तरीके ने ठीक-ठीक निर्धारण करना संभव कर दिया। यह तरीका आण्विक भौतिकी (एटमिक फिजिक्स) की अग्रगतियों के उपफल के रूप में प्राप्त हुआ। उसका क्रांतिकारी पहलू रहा पुरातत्व में उसका इस्तेमाल होना।

वैज्ञानिकों ने खोज की कि ऊर्जा की किरणें बाहरी अंतरिक्ष से पृथ्वी के वायुमंडल में लगातार प्रवेश कर रही हैं। ये रेडियोधर्मी किरणें हैं और उनके कारण विभिन्न किस्म की रासायनिक प्रतिक्रियाएं होती हैं। कुछ खास गैसों (नाइट्रोजन, आक्सीजन इत्यादि) की रासायनिक प्रतिक्रिया के कारण तथा बाहरी अंतरिक्ष से आने वाली ऊर्जा किरणों (रेडियोधर्मी किरणों) के कारण एक खास प्रकार के कार्बन का निर्माण होता है। यह कार्बन (कार्बन-14) एक हद तक उस कार्बन (कार्बन-12) से भिन्न है जो पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। दोनों का अणुभार भिन्न (क्रमश: 14 और 12) है, लेकिन उनके रासायनिक गुण समान होते हैं।

हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि तमाम जीव कार्बन ग्रहण करते हैं। चूंकि कार्बन-12 प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जीव उसे ज्यादा मात्रा में ग्रहण करते हैं। लेकिन वायुमंडल में अल्पमात्रा में कार्बन-14 भी मौजूद है। इसलिए कार्बन-14 भी जीवों द्वारा ग्रहण किया जाता है। मजेदार बात यह है कि दोनों किस्म के कार्बन के बीच एक खास अनुपात है। कार्बन-14 की एक महत्वपूर्ण विशेषता के कारण यह अनुपात स्थिर रहता है। कार्बन-14 रेडियोधर्मी होता है। वह रेडियो कार्बन के नाम से भी जाना जाता है। रेडियोधर्मी होने के कारण उसका क्षरण होता है। हालांकि बाहरी अंतरिक्षण से आने वाली ऊर्जा किरणों के कारण कार्बन-14 का निर्माण लगातार होता रहता है, उसके रेडियोधर्मी क्षरण के कारण प्रकृति में कार्बन-14 और कार्बन-12 का अनुपात स्थिर रहता है। जहां एक तरफ कार्बन-14 के अणु सृजित होते रहते हैं, वहीं दूसरी ओर उनका क्षरण भी होता रहता है (अर्थात वे कार्बन नहीं रहते)। वे तमाम जीव जो कार्बन ग्रहण करते हैं, उसी अनुपात में कार्बन-14 और कार्बन-12 ग्रहण करते हैं जिस अनुपात में वे प्रकृति में होते हैं।

वनस्पतियों और जीवों की जब मृत्यु हो जाती है, तब वे कार्बन ग्रहण करना बंद कर देते हैं। अपनी मृत्यु के समय किसी जीव में कार्बन-14 और कार्बन-12 उसी स्थिर अनुपात में होंगे जिस अनुपात में वे प्रकृति में पाए जाते हैं। उस अनुपात का आकलन किया जा सकता है। एक समय के बाद कार्बन-12 की मात्रा वही बरकरार रहती है जो उस जीव की मृत्यु के समय थी। लेकिन कार्बन-14 का क्षरण जारी रहता है। कोई मृत जीव कार्बन ग्रहण नहीं करता। इसलिए मृत जीव में रेडियोधर्मी क्षरण की क्षतिपूर्ति करने

और कार्बन-14 की मात्रा स्थिर रखने के लिए उसकी नई मात्रा शामिल नहीं होगी।

इस संबंध में एक महत्वपूर्ण खोज यह रही कि कार्बन-14 का क्षरण एक निश्चित दर से होता है। किसी मृत जीव में कार्बन-14 की वास्तविक मात्रा (मृत्यु के समय की मात्रा) का आधा हिस्सा हर 5500 साल पर खत्म हो जाता है और सिर्फ आधा बचा रहता है। 11000 साल के बाद एक चौथाई कार्बन-14 बचा रहेगा और इसी तरह कार्बन-14 के क्षरण का सिलसिला जारी रहेगा। हम किसी मृत जीव में मौजूद कार्बन-14 की मात्रा माप कर शरीर में मौजूद कार्बन-12 की मात्रा के साथ उसकी तुलना कर उस जीव की मृत्यु के समय का आकलन कर सकते हैं। कार्बन-12 की मात्रा अपरिवर्तित रहेगी, जबकि कार्बन-14 का क्षरण हुआ होगा। अब जबकि दोनों का वास्तविक अनुपात मालूम है और साथ ही वह कालखंड भी मालूम है जिसमें कार्बन-14 का क्षरण (हर 5500 साल में आधा) हुआ है, हम वह काल मालूम कर सकते हैं जब वह जीव जीवित था। इस तरीके की मदद से किसी स्थल से प्राप्त लकड़ी या हड्डी से वहां की सभ्यता की तिथि निर्धारित की जा सकती है। कार्बन-14 अत्यंत अल्प मात्रा में होता है और एक कालखंड (करीब 70,000 साल) के बाद उसका इस कदर क्षरण हो जाता है कि मृत जीव में उसकी मौजूदगी का भी पता लगाना मुश्किल हो जाता है। रेडियोधर्मी क्षरण के इस सिद्धांत पर आधारित अब तिथि-निर्धारण के और भी तरीके उपलब्ध हैं जिनकी मदद से जीवाश्म जैसे लाखों साल पुरानी वस्तुओं की तिथि निर्धारित की जा सकती है। उनमें से एक महत्वपूर्ण तरीका है पोटाशियम। आर्गन तिथि-निर्धारण विधि का इस्तेमाल आम तौर पर जीवाश्मों की उम्र का आकलन करने में होता है। भूवैज्ञानिक आंकड़ों और पोटाशियम/आर्गन तिथि-निर्धारण विधि की मदद से यह पता लगाया जा सकता है कि कोई जीवाश्मीकृत जीव किस काल में जीवित था।

पुरातत्व विज्ञान में रेडियोकार्बन तिथि-निर्धारण का इस्तेमाल 1949 में शुरू हुआ। इस क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाई अमरीकी वैज्ञानिक विलार्ड लिब्बी ने जिनको 1960 में उनके योगदान के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। तिथि-निर्धारण की इस विधि ने नवपाषाणकाल का इतिहास पूरी तरह बदल दिया। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, यह विधि ऐसे समय उपलब्ध हुई जब पश्चिम एशिया में पुरातात्विक खुदाई का काम चल रहा था। जब पश्चिम एशिया के नवपाषाणी स्थलों से प्राप्त अवशेषों पर रेडियोकार्बन तिथि-निर्धारण विधि का प्रयोग किया गया तो यह पाया गया कि ये स्थल उससे कहीं ज्यादा पुराने हैं जितना पहले उनके बारे में माना जा रहा था। यह इस बात से स्पष्ट हो जाएगा कि इतिहासकारों ने मिस्र और मेसोपोटामिया के लिखित दस्तावेज से उस क्षेत्र में प्राचीन सभ्यताओं की शुरुआत 3000 ईसा पूर्व (4950 बीपी) तय की थी। इस तिथि से पीछे की ओर गणना करते हुए यह आकलन किया गया था कि मिस्री और मेसोपोटामियाई सभ्यता के उद्भव और कृषि की शुरुआत के बीच करीब 1500 साल

गुजरे होंगे। इसका मतलब यह हुआ कि प्राचीनतम नवपाषाणी संस्कृति 4500 ईसा पूर्व (करीब 6500 बीपी) से ज्यादा पुरानी नहीं मानी गई। उधर रेडियोकार्बन तिथि-निर्धारण विधि से यह उजागर हुआ कि कुछ फलस्तीनी नवपाषाणी स्थल करीब 8200 साल पुराने हैं। बाद के अनुसंधानों और रेडियोकार्बन तिथि-निर्धारण के सटीक प्रयोग ने अब इंगित किया है कि *पश्चिम एशिया में नवपाषाण 10,500 बीपी में शुरू हुआ।*

पश्चिम एशिया में करीब 150 प्रारंभिक नवपाषाणी स्थल खोजे गए हैं। ये स्थल फलस्तीन/इस्राइल में मृत सागर क्षेत्र से शुरू होने वाली पट्टी, जार्डन घाटी, सीरिया, उत्तर इराक, जागरोस पर्वत और उत्तर-पश्चिम ईरान के हिस्सों में स्थित है। पश्चिम में यह पट्टी दक्षिण तुर्की तक फैली है। इस तथ्य के साथ कि नवपाषाण की शुरुआत की तिथि अब करीब 5000 साल पीछे चली गई है यह स्पष्ट है कि खाद्य उत्पादन की शुरुआत पहले-पहल उर्वर नदी घाटी में नहीं हुई बल्कि घास के मैदानों, गिरिपीठों और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में हुई जो अत्यंत उर्वर नदी क्षेत्रों से दूर स्थित थे।

प्रारंभिक नवपाषाणी बस्तियां पश्चिम एशिया में दो क्षेत्रों में, फलस्तीन/इस्राइल और उत्तर इराक में पाई गईं। फलस्तीन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थल जेरीको है। उत्तर इराक में दो महत्वपूर्ण स्थल जावी चेमी शानीदार और जारमो हैं। दोनों जागरोस पर्वत की तलहटी में स्थित हैं। जेरीको में खुदाई से पुरातत्वविज्ञान को एक बड़ी उपलब्धि हासिल हुई है। जेरीको नवपाषाणी अवशेष 10,500 बी.पी. के थे। जेरीको नातुफियाई संस्कृति से नवपाषाण के विभिन्न चरणों के बीच की बस्तियों में धारावाहिकता दरशाता है।

जेरीको मृत सागर के निकट स्थित है। कुदरत ने उसे एक झरना से नवाजा है। कुदरती झरना/नखलिस्तान के पानी ने शुरुआती लोगों को आकर्षित किया होगा। धीरे-धीरे जेरीको एक अर्ध-स्थायी बस्ती बन गया जहां शिकारी-संग्राहक समुदाय थोड़ी-बहुत कृषि के जरिए खाद्य पदार्थों का अपना जखीरा बढ़ाते थे। बसने के बाद उन्होंने वहां वृत्ताकार झोंपड़ियां बनाईं। बाद में उन झोंपड़ियों की जगह बेहतर ढंग से बने चौकोर मकानों ने ली। कुछ मकानों के साथ आंगन जुड़े थे। हालांकि लंबे समय तक पुरातत्वशास्त्री मृद्‌भांड निर्माण की शुरुआत को नवपाषाण के साथ जोड़ते रहे, जेरीको में बस्तियों के पहले दो स्तरों में मृद्‌भांडों का कोई साक्ष्य नहीं मिला। उन दो स्तरों को 'प्राक्-मृद्‌भांड नवपाषाणी ए' (पीपीएन ए) और 'प्राक्-नवपाषाणी बी' (पीपीएन बी) कहा जाता है। उनके बाद नवपाषाणी सस्कृतियां आती हैं जिनमें मृद्‌भांड के उपयोग की शुरुआत हुई है। पीपीएन ए और पीपीएन बी प्याले और तश्तरियां मुलायम चूना पत्थर से बनाए गए थे। उन्हें पत्थर को तराश कर बनाया गया था और उन पर पालिश की गई थी। घरों में बड़े गड्ढे बने थे जो प्रत्यक्षत: बीजों तथा काष्ठफलों के संग्रह के लिए बनाए गए थे। जेरीको के प्राक्-मृद्‌भांड चरण की एक उल्लेखनीय विशेषता थी—सुरक्षा के मकसद से बनाई गई एक लंबी-चौड़ी दीवार। बस्ती को घेरती हुई यह दीवार वास्तुकला का एक अद्‌भुत

नमूना है। साढ़े छह फुट चौड़ी यह दीवार पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़ों से बनाई गई थी। पश्चिम की ओर की दीवार का सिरा अब भी अच्छी हालत में है। वहां उसकी ऊंचाई 12 फुट हैं। दीवार के अंदर एक बड़ी मीनार बनाई गई थी। मीनार 30 फुट ऊंची है और उसमें बिलकुल ऊपर तक पहुंचने के लिए 30 सीढ़ियां हैं।

पीपीएन ए और पीपीएन बी चरणों के बाद मृद्‌भांडों के इस्तेमाल की शुरुआत एक महत्वपूर्ण विकास को दरशाती है। मृद्‌भांड प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक विकास है। मृद्‌भांड बनाने के लिए मिट्टी को पानी में गूंध कर उसे एक स्थायी शक्ल दी जाती है। मिट्टी को आग के संपर्क में लाकर उसकी रासायनिक प्रकृति बदल दी जाती है। मिट्टी को कोई खास शक्ल देने के बाद उसे पकाया जाता है और इस तरह उसकी नमी हटाई जाती है। लोग उत्तर-पुरापाषाणकाल में मिट्टी के साथ काम करना (मृदाकृतियां इत्यादि) सीख चुके थे। मध्यपाषाणी और नातुफियाई संस्कृतियों के खाद्य संग्रह करने के गड्ढों पर मिट्टी के अस्तर लगाए गए थे। मृद्‌भांड बनाने के लिए शायद मिट्टी की जानकारी से ज्यादा आग को नियंत्रित रूप से इस्तेमाल करना, जानना जरूरी होता है। जब तक मिट्टी पक नहीं जाती, लगातार उच्च तापक्रम बनाए रखना पड़ता है और उसके लिए भट्टी की जरूरत पड़ती है। जैसा कि हम बाद में देखेंगे कि आग को इस तरह इस्तेमाल करने की क्षमता ने बाद में धातुओं का इस्तेमाल करने वाले समाज में संक्रमण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उत्तर-पुरापाषाणी और मध्यपाषाणी संस्कृति ने कुछ खास पौधों से टोकरियां बनाईं जो शायद मृद्‌भांड के पहले पात्रों की शक्ल का सूचक है। उन पात्रों का इस्तेमाल खाद्य पदार्थों के संग्रह तथा पकाने के लिए किया जाता था। मृद्‌भांडों का रूप, उनको सजाने का तरीका और उपयोग की गई तकनीक (किस तापक्रम पर मिट्टी पकाई गई, किस तरह की मिट्टी इस्तेमाल की गई) अकसर समूहों के लिए विशिष्ट होती है। ये इस कदर विशिष्ट होती हैं कि पुरातत्वविदों के लिए मृद्‌भांड संस्कृतियों के तिथि-निर्धारण और शिनाख्त के लिए यह एक सुविधाजनक माध्यम का काम करते हैं।

जेरीको के आसपास सीरिया में अबु हुरेरा और जार्डन में एन गजल से भी कृषि की शुरुआत के साक्ष्य मिलते हैं। अबु हुरेरा एक बड़े इलाके में, लगभग 28 एकड़ में फैला है। जेरीको, अबु हुरेरा और एन गजल के लोगों ने गेहूं और जौ जैसे अनाज उगाने में ज्यादा से ज्यादा समय व्यतीत किया। उन्होंने भेड़ों और बकरियों को भी पालतू बनाया। कृषि के लिए पत्थर के औजार गढ़े गए। उन स्थलों से बड़ी संख्या में हंसिए मिले हैं। अनाजों को पीसने के लिए पत्थर के भारी उपकरण भी इस्तेमाल होते थे। वहां बाणाग्र (एरोहेड्स) की मौजूदगी संकेत देती है कि प्रारंभिक नवपाषाणकाल में शिकार करना जारी था।

हालांकि जेरीको हमें ज्ञात अब तक की शायद सबसे प्राचीन नवपाषाणी बस्ती है, यह उत्तर इराक की जागरोस पर्वत गिरिपीठ थी जिसने कृषि की शुरुआत का पहला

पुरातात्विक साक्ष्य पेश किया। 1940 के दशक के अंतिम वर्षों में हुई खुदाई से इस क्षेत्र में जारमो की खोज हुई। यह खुदाई राबर्ट ब्रैडवुड और उनके दल के नेतृत्व में हुई थी। यही वह काल था जब रेडियोकार्बन तिथि-निर्धारण विधि हमें उपलब्ध हुई। ब्रैडवुड कार्बन-14 तिथि-निर्धारण की मदद से यह दिखाने में सफल हुए कि नवपाषाणी अवशेष उससे कहीं बहुत ज्यादा पुराने हैं जितना उनके बारे में पहले समझा जा रहा था। साथ ही, उन्होंने यह भी दिखाया कि खाद्य उत्पादन में संक्रमण उर्वर नदी घाटी में नहीं बल्कि उत्तर इराक के अपेक्षाकृत गैर महत्वपूर्ण घास के मैदानों में हुआ।

जारमों के साथ पेशेवराना ईर्ष्या की एक दास्तान जुड़ी है। ब्रैडवुड की इस सनसनीखेज खोज के तुरंत बाद एक अन्य पुरातनविद कैथलीन केन्यन ने जेरीको में अपनी खुदाई के नतीजों की घोषणा की। केन्यन के नतीजों में जेरीको को जारमो से बहुत ज्यादा पुराना बताया गया। साथ ही यह भी बताया गया कि उत्तर इराक नहीं बल्कि फलस्तीन वह जगह है जहां कृषि की सबसे पहले उत्पत्ति हुई। जैसा कि हमने देखा है, उस इलाके में नातुफियाई संस्कृति से शुरुआती नवपाषाणकाल के बीच एक सातत्य भी था। केन्यन की तिथियां भी रेडियोकार्बन तिथि-निर्धारण विधि पर आधारित थी। लेकिन ब्रैडवुड को उनके नतीजों पर संशय थे। जेरीको बनाम जारमो का विवाद अनेक साल तक चला। अब जाकर कहीं यह स्वीकार किया गया है कि केन्यन सही थीं। जेरीको वास्तव में जारमो से बहुत ज्यादा पुराना है। जेरीको 10,500 बीपी का है जबकि जारमो महज 7,000 बीपी का है।

बहरहाल जो भी हो, जागरोस पर्वत गिरिपीठ कृषि के प्राचीन इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए महत्वपूर्ण बनी रही। इस क्षेत्र में बाद के अध्ययनों ने ज्यादा प्राचीन स्थलों को प्रकाश में लाया जहां हम खाद्य उत्पादन की ओर बदलाव होते देख सकते हैं। इस तरह का एक स्थल जावी चेमी शानीदार है जो 11,000 बीपी का है। वह शिकारी-संग्राहक की बस्ती थी जब लोग स्थायी जीवन बसर करते थे। वे जंगली पहाड़ी बकरों का शिकार करने के माहिर थे और शायद उन्होंने भेड़ें पालना शुरू कर दिया था। जंगली अनाज उनकी खुराक में शामिल थे। इस इलाके में नियमित खाद्यान्न उत्पादन का साक्ष्य अली कोश से मिलता है। उत्तर इराक का यह आवास स्थल 10,000 बीपी का है। अली कोश में, और बाद में जारमो में लोगों ने कृषि पर अधिकाधिक गुजारा किया। चौकोर मकान बनाए गए। कृषि के अनुरूप पत्थर के औजार गढ़े गए। वहां हंसिए और अनाज पीसने के पत्थर मिले हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि जारमो में 20 प्रतिशत से भी कम भोजन शिकार और खाद्य संग्रह से आता था और यह तत्कालीन अर्थव्यवस्था में अपना महत्व खो बैठा था।

तुर्की (अनातोलिया) में पौधों की नियमित खेती सायोनू में संभवत: 9500 बीपी में और हासिलार में कुछ बाद में शुरू हुई होगी। इस इलाके में सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रारंभिक

नवपाषाणी स्थल कातल हुयुक (8000 बीपी) है। कातल हुयुक एक बड़ी नवपाषाणी बस्ती थी। वह 32 एकड़ में फैली है। वहां के मकान धूप में सुखाए ईंटों के बने हैं। वहां अनेक पूजास्थल भी हैं। कातल हुयुक लगभग एक नगर के जैसा था। वह विभिन्न किस्म के पत्थरों के कच्चे मालों और शंखों का व्यापार करता था। अनातोलिया के पश्चिम में एक अन्य प्रारंभिक नवपाषाणी बस्ती, यूनान के आरगिस-मागुला (8000 बीपी) का जिक्र किया जा सकता है।

करीब 7000 और 6000 बीपी के बीच पश्चिम एशिया, दक्षिण यूरोप और उत्तर अफ्रीका के अनेक समुदाय के लिए कृषि मुख्य आजीविका बन गई। पुरानी समझ के विपरीत मिस्री नवपाषाण अपेक्षाकृत देर से शुरू हुआ। नील नदी की घाटी में नवपाषाणी बस्तियां 6500 बीपी से बसनी शुरू हुई। दो सबसे मशहूर शुरुआती नवपाषाणी बस्तियां फायुम और मेरिमदे हैं। उन बस्तियों में रहने वाले लोग खेती करते थे लेकिन बड़ी दिक्कतों में जीते थे। औजार और मृद्भांड बड़े साधारण थे। यह कहा जाता है कि नील नदी से लगी कई और बस्तियां रही होंगी। मिस्र में कृषि की शुरुआत शायद 7000 बीपी में हुई होगी।

अब जबकि शुरुआती नवपाषाण का एक हद तक विश्वसनीय कालक्रम तैयार हो गया है, प्रागितिहासकारों ने अपना ध्यान एक दूसरी समस्या पर केंद्रित कर दिया है। ढेर सारे पुरातात्विक साक्ष्य अब हमारे पास यह दिखाने के लिए जमा हो गए हैं कि नवपाषाण *कब* और *कहां* शुरू हुआ। पिछले कई दशक से इतिहासकार, समाजशास्त्री और नृविज्ञानी यह समझने में जुटे हुए हैं कि एक भिन्न रणनीति की खातिर पुरापाषाणी अनुकूलन का *क्यों* परित्याग कर दिया गया। *नवपाषाणी समाज का विशिष्ट लक्षण शिकार और खाद्य संग्रह की जगह खाद्य उत्पादन (कृषि, पशुओं को पालतू बनाना था।)*

शिकार और खाद्य संग्रह करना क्यों छोड़ा गया? यह खासकर दो कारणों से एक प्रासंगिक प्रश्न है। पहला तो यह कि अगर लोग गुजर-बसर के किसी तरीके का कई पीढ़ियों से अभ्यस्त हो जाते हैं तो वे उसे आसानी से नहीं छोड़ते हैं। दूसरा, शिकार और खाद्य संग्रह का मतलब हमेशा भूखमरी जैसी स्थिति या खाद्य पदार्थों की अपर्याप्त आपूर्ति नहीं होती है। नृवैज्ञानिक अध्ययनों ने दिखाया है कि शिकारी एवं खाद्य संग्राहक समाज पर्याप्त खुराक और पौष्टिकता प्राप्त करने में सक्षम था। यह मान लेना गलत होगा कि शिकार एवं खाद्य संग्रह से खाद्य उत्पादन अपरिहार्य था। आखिर अनेक शिकारी संग्राहक समाज मौजूदा दौर तक टिके रहने में सफल रहे हैं।

अमरीकी नृविज्ञानी रिचर्ड ली ने 1960 के दशक में दक्षिण अफ्रीका के एक शिकारी संग्राहक समुदाय के जीवन निर्वाह की शैली की जांच-पड़ताल की। यह कालाहारी रेगिस्तान में रहने वाला कुंग बुशमैन समुदाय था। वे सीमांत वास में रहते हैं जहां इधर-उधर बहुत थोड़े पेड़-पौधे होते हैं। कोई भी सोचेगा कि इस इलाके में भोजन जुटाने का

काम कुंग समुदाय के लोगों को दिन भर पूरी तरह से व्यस्त रखता होगा। लेकिन ली के अध्ययन ने दिखाया कि मामला ऐसा नहीं है। कुंग समुदाय ने वातावरण के अनुरूप खुद को बहुत अच्छे ढंग से ढाल लिया है। वे शिकार और खाद्य संग्रह पर जीवन निर्वाह करते हैं। वे भोजन जुटाने में प्रतिदिन औसतन दो घंटे लगाते हैं। उनकी खाद्य आपूर्ति पर्याप्त है और उन्हें काफी पोषाहार मिल जाता है। दरअसल ली ने पाया कि इर्द-गिर्द के कुछ कृषक समुदाय के मुकाबले उनका आहार ज्यादा पौष्टिक है। कुंग सूखा के दौर में भी जीवन निर्वाह करने में सफ़ल रहते हैं क्योंकि वे अनेक प्रकार के पौधों पर गुजारा करते हैं। कुल मिलकार शिकार और खाद्य संग्रह पर गुजारा करने के बावजूद वे एक स्वस्थ समुदाय हैं। ली के अनुसंधान ने इस मिथक को ध्वस्त कर दिया कि शिकारी संग्राहक अनिवार्यतः भुखमरी के कगार पर जीते हैं और उन्हें भोजन जुटाने के लिए बहुत समय देना पड़ता है।

बाद में समकालीन शिकारी संग्राहक समुदाय के नृविज्ञानी अध्ययनों ने ली के निष्कर्षों की पुष्टि की। उन निष्कर्षों ने प्रागितिहासकारों को नवपाषाण में संक्रमण के मुद्दे पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य किया। अगर हम शिकार एवं खाद्य संग्रह को अंतर्निहित रूप से अपर्याप्त या त्रुटिपूर्ण मानना छोड़ देते हैं और उसे अनुकूलन की अनेक संभावित रणनीतियों में से एक मानते हैं तो इस पर विचार करना जरूरी हो जाएगा कि मानव ने एक रणनीति छोड़ कर दूसरी रणनीति क्यों अपनाई। उत्तर-पुरापाषाणी शिकार एवं खाद्य संग्रह व्यवस्था अत्यंत सक्षम थी। साथ ही, जहां आज के शिकारी संग्राहक समुदायों को सीमांत वासों में रहना पड़ता है (सर्वाधिक अनुकूल भूमि कृषि के लिए ले ली गई है), उत्तर-अतिनूतन युग के शिकारी संग्राहक समुदाय खाद्य पदार्थों से भरे पूरे इलाकों में रहते थे।

शिकार-संग्रहण से खाद्य उत्पादन में संक्रमण एक जटिल प्रक्रिया थी। इसमें प्रकृति के साथ जोड़-तोड़ निहित थी। मानव ने प्रकृति में हस्तक्षेप इस तरह किया कि कुछ पौधे सघन रूप से उगने लगे जबकि अन्य खत्म हो गए। उन पौधों को उनके जंगली रूप में नहीं उगाया गया बल्कि उन्हें कृषि की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला गया। एक कालखंड के दौरान पौधों की चुनिंदा प्रजातियों की कुछ विशेषताएं बदल दी गईं। जो विशेषताएं उपयोगी पाई गईं, उन्हें अपना लिया गया जबकि अनुपयोगी विशेषताएं त्याग दी गईं। इस तरह का एक उदाहरण गेहूं की उन किस्मों का प्रसार है जिनका 'पिच्छाक्ष'(rachis) भंगुर नहीं होता। पिच्छाक्ष पौधों का वह हिस्सा है जहां बीज मुख्य तने से जुड़ा होता है। जंगली प्रजाति में उसमें भंगुर बनने की प्रवृत्ति होती है, अर्थात पौधे के परिपक्व होने के बाद वह बड़ी आसानी से टूट जाता है। यह विशेषता जंगली प्रजाति को अपने पुनः उत्पादक के लिए बीजों को आसानी से बिखेरने में मदद करती है। लेकिन यह कृषकों के लिए समस्या बनी होगी क्योंकि जैसे ही पौधे काटे जाते, बीज इधर-उधर

बिखर जाते होंगे। उस समस्या से बचने के लिए अगर गेहूं का पौधा समय से पहले काटा जाता तो उसके बीज में नमी होती जिसके कारण उसका भंडारण मुश्किल होता। नतीजतन ऐसी प्रजातियों को बढ़ावा दिया गया और विकसित किया गया जिसमें पौधे के तैयार होने पर उसके पिच्छाक्ष आसानी से नहीं टूटते। मानव ने हस्तक्षेप कर पौधे को उपजने में मदद की। इस तरह भंगुर पिच्छाक्ष कोई जरूरी नहीं रहा और उससे छुटकारा पाया जा सका। पशुओं के मामले में भी हम इसी तरह की प्रक्रिया पाते हैं। पशुओं को पालतू बनाने का मतलब था कि कुछ चुनिंदा प्रजातियों को सधाया गया और उनके चुनिंदा एवं नियंत्रित प्रजनन से उनकी जंगली विशेषताएं हटाई गईं। पौधे और पशु दोनों ही में पालतू बनाने की प्रक्रिया सही प्रजाति चुनने और उस पर केंद्रित करने का मामला था। अवलोकनों और प्रयोगों के आधार पर वे प्रजातियां चुनी गईं जिन्हें पालतू बनाया जा सकता था और जो उगाने/प्रजनन कराने की लगी श्रम की मात्रा के अनुपात में पर्याप्त पोषाहार दे सकती थीं।

हमें खाद्य उत्पादन के उद्‌भव के बारे में अपनी कुछ एकांगी धारणाएं छोड़ देनी चाहिए। मसलन यह धारणा एकांगी है कि मानव उस समय कृषि की ओर मुड़े जब उन्हें बीज और पौधों के बीच के संबंध की जानकारी हुई। शिकारी संग्राहक समुदायों का प्रकृति के साथ बड़ा निकट का संबंध था। उन्हें बहुत सावधानीपूर्वक पौधों और पशुओं का अवलोकन करना पड़ता था। और क्यों न करें—आखिर उन पर उनकी जिंदगी का सारा दारोमदार जो था। उन्हें पूरी जानकारी थी कि साल के किस हिस्से में कौन-कौन पौधे भोजन के लिए उपलब्ध हैं। वे यह भी जानते थे कि किसी खास पौधे को कहां ढूंढा जाए, किस मौसम में वह पौधा उगता है और उसके उगने के लिए किस तरह की जलवायु उपयुक्त है। उत्तर-अत्यंत नूतन मानव ने पौधों के बारे में काफी जानकारी हासिल कर ली होगी। हालांकि उनके पास जानकारी होगी, उन्होंने उसे तुरंत प्रयोग में नहीं लाया होगा। हिमनदोत्तर युग के बाद ही ये जानकारियां प्रकृति के दोहन में इस्तेमाल की जाने लगीं।

चूंकि खाद्य उत्पादन में संक्रमण हिम युग के अंत के साथ हुआ, अनेक प्रागितिहासकार पर्यावरण में परिवर्तन को इस संक्रमण के लिए एक महत्वपूर्ण कारक मानते हैं। पिछली सदी के महानतम प्रागितिहासिकारों में से एक वी. गोर्डन चाइल्ड का कहना है कि अत्यंत नूतनोत्तर युग में शुष्क होने की एक आम प्रक्रिया थी। पहले जो क्षेत्र पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं से भरे-पूरे थे, इस प्रक्रिया के कारण शिकारी संग्राहक का भरण-पोषण नहीं कर सके। लोग उन क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करने लगे जहां पानी के थोड़े बहुत स्रोत थे। जीव-जंतु भी भोजन की तलाश में उन्हीं इलाकों की ओर जाने के लिए बाध्य हुए। उनसे मानव और पशुओं के बीच एक बहुत नजदीकी रिश्ता बना। बाद में उनमें से कुछ पशु पालतू बनाए गए। खाद्य पदार्थों की आपूर्ति पूरी करने के लिए जंगली अनाज जैसी

पौधों की प्रजातियों के उगाने का सिलसिला शुरू हुआ। यह मानव को कृषि की ओर ले गया।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि चाइल्ड का सिद्धांत उन साक्ष्यों पर आधारित है जो पिछली सदी के पूर्वार्द्ध में उपलब्ध थे। उन्होंने इसी दौरान अपने ज्यादातर प्रमुख सिद्धांत एवं अवधारणाएं पेश कीं। हम पहले ही देख चुके हैं कि 1950 के दशक के ही दौरान हमें प्रारंभिक नवपाषाणकाल की ज्यादा सटीक सूचनाएं मिलीं। उसने दिखाया कि जिन क्षेत्रों में शुरुआती नवपाषाणी संस्कृतियां फली-फूलीं, वहां शुष्क होने (डेसीकेशन) का कोई साक्ष्य नहीं मिला। राबर्ट ब्रैडवुड ने उत्तर इराक की खुदाई के क्रम में अत्यंत नूतनोत्तर युग के दौरान शुष्क होने कीं प्रक्रिया का साक्ष्य खोजने की कोशिश की। उन्हें ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिला और इसीलिए उन्होंने वातावरण में जबर्दस्त तब्दीली के कारण कृषि के शुरू होने की संभावनाओं को खारिज कर दिया।

ब्रैडवुड ने खाद्य-उत्पादन की ओर मानव के मुड़ने की परिघटना की व्याख्या सांस्कृतिक संदर्भों में करनी चाही। उनकी दलील है कि कृषि कुछ खास क्षेत्रों में, 'नाभिक क्षेत्रों' में विकसित हुई जहां भावी कृषियोग्य पौधे (जंगली अनाज, दालें इत्यादि) और पालतू बनाने योग्य पशु (भेड़, बकरे) भरपूर मात्रा में उपलब्ध थे। नाभिक क्षेत्रों में रहने वाले मानव उन क्षेत्रों में रहने वाले पौधों और पशुओं से पहले से ही परिचित थे और लंबे समय से उनका दोहन कर रहे थे। जैसे-जैसे अपने प्राकृतिक वास के बारे में उनकी जानकारी बढ़ी उन्होंने जानवरों और पौधों की कुछ खास प्रजातियों को अपने पक्ष में इस्तेमाल करना सीखा। यह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया थी और यह महज समय की बात थी, जब उन नाभिक क्षेत्रों में उन्होंने कृषि की ओर रुख किया।

1968 के बाद, खासकर ली जैसे नृविज्ञानियों के अध्ययनों के बाद कृषि की शुरुआत के संबंध में ज्यादा परिष्कृत सिद्धांत पेश किए गए। तब तक दुनिया के विभिन्न हिस्सों से बड़ी मात्रा में पुरातात्विक साक्ष्य जमा हो चुके थे। अत्यंत नूतनोत्तर युग के पर्यावरण की भी बेहतर समझ बन गई थी। यह स्पष्ट था कि उस दौर में शुष्क होने की कोई प्रक्रिया नहीं थी। हालांकि वातावरण में तब्दीली हुई थी, उसने विभिन्न क्षेत्रों को विशिष्ट रूप से प्रभावित किया। वातावरण में तब्दीली को एक कारक के रूप में पूरी तरह छोड़ा तो नहीं गया लेकिन जोर जनसंख्या वृद्धि और स्थानबद्ध अभ्रमणशील जीवनशैली के सामाजिक प्रभावों जैसे कारकों पर चला गया।

लूअस बिन फोर्ड का सुझाव था कि कृषि की ओर मानव के मुड़ने के लिए जनसख्या संबंधी कारक जिम्मेदार थे। उनकी परिकल्पना है कि अगर आबादी और पर्यावरण के बीच का संतुलन बिगड़ता है तो अनुकूलन की शैली बदलेगी। जब तक संतुलन बना रहता है, लोग अनुकूलन की उसी रणनीति पर अमल करते रहेंगे जिसके वे अभ्यस्त हो चुके हैं। संतुलन या तो वातावरण में भारी तब्दीली या फिर जनसांख्यिकीय परिवर्तनों के

कारण गड़बड़ा सकता है। चूंकि हिम युगों के अंत के बाद पश्चिमी एशिया के वातावरण में किसी भारी फेरबदल का कोई साक्ष्य नहीं मिलता, बिनफोर्ड ने कृषि के उद्भव के लिए जनसंख्या वृद्धि को जिम्मेदार माना। जनसंख्या वृद्धि उन इलाकों में हुई जहां अत्यंत नूतन युग के अंत में अनुकूल परिस्थितियों ने शिकारी संग्राहक समुदायों को लंबे समय तक एक जगह टिकने के लिए प्रोत्साहित किया। स्थिर जीवन (गैर-यायावरी) ने जनसंख्या वृद्धि को तेज किया। जब तक शिकारी संग्राहक समुदाय घुमक्कड़ रहे, उन्होंने जन्म दर को नियंत्रण में रखा। शिशुओं की ज्यादा तादाद उनकी गतिशीलता में आड़े आ सकती थी क्योंकि उन्हें एक जगह से दूसरी जगह ले जाना मुश्किल था, खासकर तब जब उसके साथ-साथ उन्हें भोजन भी जुटाना हो। बसने के बाद दो शिशुओं के बीच लंबा अंतराल रखना जरूरी नहीं रहा। इस तरह शुरुआती अत्यंत नूतनोत्तर युग में जनसंख्या तेजी से बढ़ी।

बिनफोर्ड दो तरह के प्राकृतिक वासों, अनुकूलतम और सीमांत प्राकृतिक वासों के बीच फर्क करते हैं। पुरापाषाणकाल तक में भी कुछ क्षेत्रों में दूसरी जगहों के मुकाबले ज्यादा आबादी थी। अनुकूलतम वास जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख केंद्र थे। वे ऐसे क्षेत्र थे जहां एक बड़ी आबादी के भरणपोषण के लिए पर्याप्त संसाधन था। इसने लोगों को अनुकूलतम वास में बसने के लिए प्रेरित किया क्योंकि उन्हें वहां पर्याप्त खाद्य आपूर्ति का भरोसा था। लेकिन स्थिर जीवन के कारण जनसंख्या उस बिंदु तक बढ़ गई और उस क्षेत्र की भरण-पोषण क्षमता से ज्यादा हो गई। एक बार जब संतुलन बिगड़ गया तो कुछ समूह अनुकूलतम वास से निकलकर बगल के सीमांतवास में चले गए। बिनफोर्ड उन समूहों को 'पुत्री समूह' कहते हैं। ये ऐसे क्षेत्र थे जो अनुकूलतम वासों की सीमा पर अवस्थित थे। सीमांत वासों की भरण-पोषण क्षमता ज्यादा नहीं थी। उनके संसाधान बड़ी आबादी को सहारा देने के लिए पर्याप्त नहीं थे। नतीजतन सीमांत वास में रहने वाले समुदायों ने अपनी गतिशील जीवन शैली जारी रखी। स्थिर जीवन की अनुपस्थिति में जनसंख्या वृद्धि नियंत्रण में रही और संतुलन कायम रहा।

अनुकूलतम वासों में हुई जनसंख्या वृद्धि ने सीमांत वासों के लिए समस्याएं खड़ी कीं। जनसंख्या वृद्धि के केंद्रों से 'पुत्री समूह' सीमांत वासों में गए। उन क्षेत्रों का संतुलन बिगाड़ा। सीमांत वासों के लोगों पर दबाव पड़ा और उसने उनको जीवन-निर्वाह के नए रास्ते खोजने के लिए बाध्य किया। यही वह स्थिति थी जिसके कारण अनुकूलतम वासों के बजाए सीमांत क्षेत्रों में लोग कृषि की ओर उन्मुख हुए।

हालांकि बिनफोर्ड जनसंख्या वृद्धि को परिवर्तन की चालक शक्ति मानते हैं। उन्होंने वातावरण से जुड़े कारकों को पूरी तरह नजरअंदाज नहीं किया। उनका कहना है कि अत्यंत नूतनोत्तर युग में जल स्तर में वृद्धि ने स्थिर आबादी के लिए एक अनुकूल तटीय वास सृजित कर दिया। उन तटीय वासों ने मछली पकड़ने और उससे खाद्य आपूर्ति करने

का अवसर दिया। मानव को अपनी खुराक में अनेक प्रकार के समुद्री जीवों को शामिल करने का मौका मिला। वे तेज जनसंख्या वृद्धि के केंद्र बन गए जबकि सीमांत क्षेत्र दूर-दराज में स्थित रहे।

एक अन्य वैज्ञानिक केंट फ्लैनरी ने 1960 के दशक में यह विचार पेश किया कि कुछ और कारणों से संतुलन बिगड़ा होगा। उनका कहना है कि मानव का कृषि की ओर उन्मुख होना किसी जबर्दस्त तब्दीली का संकेत नहीं है। शिकार और खाद्य संग्रह पर आधारित अर्थव्यवस्था इस कारण क्रमशः गड़बड़ाती गई कि उत्तर-पुरापाषाणकाल के दौरान कुछ इलाकों (खासकर पश्चिम एशिया जैसे सीमांत इलाकों) में रहने वाले लोगों ने कुछ खास किस्म के पौधों पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया था। यह पाया गया कि वे ऐसी प्रजातियां थीं जिनकी उपज में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती थी। फ्लैनरी का मत है कि जंगली रूप में संग्रहित कुछ प्रजाति में अकस्मात किसी कारणवश तब्दीली (उत्परिवर्तन) हो गई। उन उत्परिवर्तनों के कारण उन प्रजातियों में भारी तब्दीलियां आ गई होंगी और वे दूसरी अन्य प्रजातियों की कीमत पर तेजी से फली फूली होंगी। लोगों ने उन प्रजातियों पर ज्यादा ध्यान देना और उनके विकास को बढ़ावा देना शुरू किया होगा और आखिरकार अन्य प्रजातियों को परिदृश्य से हटना पड़ा होगा। पश्चिम एशिया के मामले में गेहूं और जौ पसंदीदा पौधे बने। फ्लैनरी का सिद्धांत अमरीकी उपमहाद्वीप में कृषि के उद्‌भव के साक्ष्यों पर आधारित है। मध्य अमरीका (उत्तर मैक्सिको और पनामा के बीच का क्षेत्र) में शुरुआती कृषि मक्के की खेती पर आधारित थी। वहां मक्के की उत्परिवर्तित किस्मों का प्राकृतिक रूप से उत्पत्ति और प्रसार हुआ। मक्के की ये किस्में प्राकृतिक रूप से भरपूर मात्रा में उगने लगीं। उसने लोगों को उन किस्मों को ज्यादा से ज्यादा संग्रह करने के लिए प्रोत्साहित किया। लोगों ने अन्य प्रजातियों को नजरअंदाज कर दिया। जैसे-जैसे उत्परिवर्तन प्रजातियों पर निर्भरता बढ़ी, लोगों ने उन्हें विकसित करने के लिए प्रकृति में हस्तक्षेप की ओर कदम बढ़ाया।

फ्लैनरी के मुताबिक इन विकासों से पहले एक बदलाव 'सीमित फलक' (नैरो स्पेक्ट्रम) से 'व्यापक फलक' (ब्रॉड स्पेक्ट्रम) वाली अर्थव्यवस्था की ओर हुआ। व्यापक फलक वाली अर्थव्यवस्था वह है जिसमें विभिन्न तरीकों से जुटाए गए वनस्पति एवं पशु खुराक में शामिल किए गए हों। उत्तर-पुरापाषाणकाल में जीवन-निर्वाह का आधार पहले ही व्यापक हो चुका था। मछली, केकड़े, घोंघे, कछुए और कुछ इलाकों में संभवतः जंगली अनाज भी खुराक में शामिल होने शुरू हो गए थे। फ्लैनरी की शब्दावली में यह 'व्यापक फलक वाली क्रांति' (ब्रॉड स्पेक्ट्रम रिवोल्यूशन) पश्चिम एशिया जैसे सीमांत क्षेत्रों में हुई। सीमांत क्षेत्रों में पोषण के तमाम संभव स्रोतों का दोहन करना जरूरी था। उनमें रहने वाले लोग तजुर्बा करने के मामले में ज्यादा खुले दिमाग के थे। कुछ प्रजातियों के विकास को बढ़ावा देना भी जरूरी था। मिसाल के तौर पर यह प्रतिद्वंद्वी प्रजातियों को खत्म कर हासिल किया जा सकता था।

इधर हाल फिलहाल मार्क कोहेन ने फिर से यह मत पेश किया है कि कृषि के उद्भव के पीछे जनसंख्या एक प्रमुख कारक रही। उनकी दलील बिनफोर्ड से कुछ हद तक भिन्न है। बिनफोर्ड के विचार से जनसंख्या में वृद्धि अत्यंत नूतनोत्तर युग की शुरुआत में हुई। कोहेन जनंसख्या वृद्धि को एक दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। पुरापाषाण काल के दौरान जनसंख्या में लगातार वृद्धि हुई। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी, लोगों ने उन तमाम क्षेत्रों में फैलना शुरू किया जो शिकार और खाद्य संग्रह पर आधारित उनकी अर्थव्यवस्था को सहारा दे सकते थे। हिम युग के अंत तक शिकार और खाद्य संग्रह पर आधारित पुरापाषाणी अर्थव्यवस्था के लिए अनुकूल तमाम इलाकों पर बढ़ती हुई आबादी बस चुकी थी। जब नए क्षेत्र तक पहुंच मुश्किल हो गई तो भोजन जुटाने के नए तरीकों के साथ तजुर्बा करना जरूरी हो गया। कृषि जनसंख्या दबाव का एक जवाब थी। कोहेन के मुताबिक कृषि का फायदा यह था कि वह ज्यादा सघन आबादी की इजाजत देती है। अनुकूलन की नई रणनीति ने प्रति इकाई भूमि खाने योग्य ज्यादा कैलोरी के उत्पादन की संभावनाएं सृजित कीं।

कोहेन ने नूतनतम युग की शुरुआत से संबंधित जनसंख्या के कुछ पुराने आंकड़ों पर प्रश्नचिह्न खड़ा किया है। इस विषय का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों में इस बात पर पूरी सहमति है कि पुरापाषाणकाल के अंत और मध्यपाषाणकाल के दौरान आबादी 30 से 50 लाख के बीच थी। कोहेन का आंकड़ा उससे बहुत ज्यादा, डेढ़ करोड़ है। उनके मुताबिक इतनी बड़ी आबादी का भरण-पोषण कृषि से ही संभव था। पुरापाषाणी अर्थव्यवस्था 0.1 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के घनत्व की इजाजत देती थी। शुरुआती नवपाषाणकाल में आबादी का घनत्व एक से दो व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर थी। दूसरे शब्दों में, कृषि में संक्रमण से शिकार एवं खाद्य के मुकाबले प्रति इकाई भूमि कम से कम दस गुनी आबादी का भरण-पोषण हो सकता है।

बारबरा ब्रेंडर जनसंख्या वृद्धि के इर्द-गिर्द घूमने वाले सिद्धांतों की कटु आलोचक हैं। उनका तर्क है कि जनसंख्या वृद्धि को अपने-आप में चालक शक्ति नहीं माना जा सकता है। आखिरकार जनसंख्या वृद्धि कोई अलग-थलग परिघटना नहीं है। यह अनेक कारकों से जुड़ी है। जनसंख्या स्तर निर्धारित करने वाले कारकों में सामाजिक संगठन का स्वरूप, उसकी जीवन-निर्वाह की शैली, प्रौद्योगिकी का स्तर, पर्यावरण के साथ एकीकरण और विश्वदृष्टि शामिल हैं। जैसा बेंडर कहती हैं,''जनसांख्यिकी श्रेणीबद्ध कारणों का फल है, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण उत्पादन संबंध हैं।' महत्वपूर्ण यह है कि समाज उन चीजों का उत्पादन कैसे करता है जिनकी उसे जरूरत होती है और कैसे यह उत्पादन प्रक्रिया नियंत्रित की जाती है। इन सबसे जनसंख्या प्रभावित होती है। इसीलिए हम जनसंख्या या पर्यावरण को परिवर्तन के कारणों के रूप में अलग-थलग करने के बजाए सामाजिक संबंधों को संपूर्णता में देखेंगे। अनुकूलन की रणनीति बदलती है क्योंकि सामाजिक संबंध तब्दीलियों से गुजरते हैं।

इस विषय पर बहस किसी नतीजे तक नहीं पहुंच सकी है। लेकिन उसने समस्या के अनेक पहलुओं पर रोशनी डाली है। हम अब कृषि के उद्‌भव को एक घटना के बजाए एक प्रक्रिया के रूप में देख सकते हैं। इस संबंध में जो विभिन्न सिद्धांत पेश किए गए हैं, वे खाद्य उत्पादन को अनिवार्यत: एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न रूप में नहीं पेश करते। जहां कुछ सिद्धांतों में जोर पर्यावरण पर है, ऐसी बात नहीं है कि दूसरे सिद्धांतों में पर्यावरण में होने वाली तब्दीलियों को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया हो। हमने बिनफोर्ड की परिकल्पना में इसे देखा है।

पुरापाषाणकाल खत्म होने से बहुत पहले शिकारी संग्राहक समुदायों ने वनस्पति की कुछ प्रजातियों में अतिरिक्त रुचि लेकर प्रकृति में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया था। उपयोगी समझी जाने वाली वनस्पतियों के विकास को तब बढ़ावा दिया गया होगा। यहां तक संभव है कि मानव ने (तीर के लिए) जहर के लिए या (चित्रकारी के उद्देश्य से) रंग प्राप्त करने के लिए कुछ पेड़-पौधे उगाए होंगे। एक छोटा सा भूखंड कुछ खास जंगली प्रजातियां उगाने के लिए अलग कर दिया गया होगा। अत्यंत छोटे भूखंडों पर इस तरह की वनस्पति उगाने से (कृषि से भिन्न) बागवानी की शुरुआत हुई होगी। हम पहले ही नोट कर चुके हैं कि खाद्य संग्राहक दूसरी प्रजातियों की कीमत पर कुछ खास प्रजातियों को बढ़ावा दिया गया। यह गैर-जरूरी समझी जाने वाली प्रजातियों को खत्म कर दिया गया।

हिमनदोत्तर युग की शुरुआत में पश्चिम एशिया के सीमांत क्षेत्रों में बसने वाले लोगों ने दो तरह के अनाज—गेहूं और जौ पर अपना ध्यान केंद्रित किया। अत्यंत नूतन युग के अंत तक जंगली अनाज उनके खुराक में शामिल हो चुके थे। जल्द ही अपनाई प्रजातियां उगाई जाने लगीं। आनुवांशिक दुर्घटनाओं ने नई प्रजातियों को जन्म दिया। इस क्षेत्र में 'एमर' (Emmer) नाम की गेहूं की एक किस्म और 'दो-कियारी जौ' (टू रो बार्ली) कृषि के आधार बन गए। एमर गेहूं और दो-कियारी जौ अपने जंगली पूर्वज से भिन्न हैं। शुरुआती नवपाषाण काल के दौरान एमर गेहूं की सर्वाधिक महत्वपूर्ण किस्म बना रहा। मध्य यूरोप के कुछ हिस्सों में गेहूं की एक दूसरी किस्म उगाई जा रही थी। उस किस्म को 'एइनकोर्न गेहूं' कहा जाता है।

जानवरों को पालतू बनाना थोड़ा ज्यादा जटिल मामला था। उसमें शिकार आधारित अर्थव्यवस्था की तरह भोजन के लिए पशुओं को मारा नहीं जाता है बल्कि उत्पादों मसलन दूध, अंडे, ऊन और मांस की प्राप्ति के उद्देश्य से उन्हें पाला जाता है। चुनिंदा पशु-पक्षियों को पाला गया ताकि उनसे अतिरिक्त दूध और अंडे मिल सकें। भेड़ के मामले में, मानव हस्तक्षेप से उनके शरीर पर ऊन उगाए गए। भेड़ों के जंगली पूर्वजों के शरीर पर ऊन नहीं उगते थे। मांस के लिए पाले जाने वाले पशुओं को तुरंत मारा नहीं जाता था। उन्हें एक खास उम्र तक बढ़ने दिया जाता था, उसके बाद उन्हें मारा जाता था।

जानवरों को पालतू बनाने का मतलब था उनसे उनकी जंगली विशेषताएं (सींग का बड़ा आकार, दांत वगैरह) छुड़वाना। इस क्रम में पहले चरण में मानव और आसानी से सधाए जा सकने वाले पशुओं के बीच ढीले-ढाले संपर्क का दौर रहा। उसके बाद आया दौर चुनिंदा प्रजातियों को कठोर बंधन में रखने का। पशुओं को अपनी जंगली नस्लों के साथ प्रजनन प्रक्रिया में जाने की इजाजत नहीं दी गई। वे मानव के संपर्क में रहे। जब उन्होंने अपने जंगली गुणों और लक्षणों को त्याग दिया, तो उनका संकरण कराया गया ताकि उनके कुछ लक्षण सुधारे जा सकें। इन सबका उद्देश्य था दूध, अंडा, ऊन या मांस का उत्पादन बढ़ाना और यह इस पर निर्भर था कि उस प्रजाति को किस चीज के लिए पालतू बनाया जा रहा है।

ऐसे साक्ष्य मौजूद हैं जो यह संकेत देते हैं कि उत्तर-पुरापाषाणकाल में कुछ जानवर पालतू बनाए गए थे। कुत्ता पहला जानवर था जिसे पालतू बनाया गया था। पालतू कुत्तों ने उत्तर-पुरापाषाणी मानव को शिकार करने में मदद की। रेंडियर भी पालतू बनाए गए थे। पालतू रेंडियरों को जंगली रेंडियरों के झुंडों में छोड़ा जाता था जो उनको भरमाते थे। इससे उनका आसानी से शिकार किया जा सकता था।

हालांकि जानवरों को पालतू बनाने की प्रक्रिया उत्तर-पुरापाषाणकाल से चल रही थी, नवपाषाणकाल में ही उसने नया महत्व ग्रहण किया। उत्तर-पुरापाषाणी मानवों के पास शायद कुछ पालतू जानवर होंगे जिनका इस्तेमाल बुनियादी तौर पर शिकार में मदद लेने के लिए किया जाता होगा। नवपाषाणकाल में अपेक्षाकृत बड़े जानवरों को पालना संभव हुआ। स्थिर जीवन शैली ने लंबे समय तक बंधन में रखकर जानवरों को पालने के लिए जरूरी शर्तें पूरी कर दीं। यह भी इंगित किया गया है कि पशुओं के प्रति शिकारी समाज की मानसिकता खाद्य उत्पादक की तुलना में बहुत भिन्न होती है। शिकारी संग्राहक समुदाय पशुओं से भावनात्मक रूप से नहीं जुड़े होते हैं। इसलिए शिकारी संग्राहक समाज में बड़े पैमाने पर जानवरों को पालतू बनाने के लिए अनुकूल स्थितियां नहीं होती हैं।

शुरुआती नवपाषाणकाल में कहीं जाकर इतने बड़े पैमाने पर जानवरों को पालतू बनाने का काम हो सका जो अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सके। शुरुआती नवपाषाण काल के दौरान भेड़ और बकरी दो मुख्य जानवर थे जिन्हें पालतू बनाया गया था। भेड़ को करीब 10,500 बीपी में पश्चिम एशिया में पालतू बनाया गया। अत्यंत नूतन युग के अंतिम चरण में पश्चिम एशिया के कुछ हिस्सों में, जैसे जागरोस पर्वत में शिकारी संग्राहक समुदायों ने ढीले-ढाले बाड़ों के अंदर भेड़ और बकरियां पालने के तकनीक सीखे होंगे। उन इलाकों में पहाड़ी बकरियां भोजन का एक महत्वपूर्ण स्रोत थीं। कम उम्र जानवरों (और मादाओं) को मारा नहीं जाता था। उन्हें बड़ा होने और प्रजनन करने की इजाजत दी जाती थी। कम उम्र भेड़-बकरियों को जीवित रख कर खाद्य आपूर्ति को अधिक स्थिर बनाया गया। स्थिर जीवन शैली से दीर्घकालीन पशुपालन संभव हुआ। भेड़-बकरियों

जत्थों के मुकाबले अब रिश्ते अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित थे और विवाह करने के नियम सुनिश्चित हो चले थे। यह गोत्र-समुदाय बहिर्विवाह (exogamous) वाली एक इकाई में विकसित हुआ। लोगों को अपनी इकाई से बाहर शादी करनी होती थी। कुल के सदस्यों पर आपस में शादी करने पर रोक थी क्योंकि वे एक-दूसरे से खून के रिश्तों से बंधे थे। बहिर्विवाह कुल की इस व्यवस्था ने विभिन्न समूहों के बीच सहयोग विकसित करने में मदद की। समूह अगर आपस में आदान-प्रदान के रिश्तों से बंधे हों, तो उनके बीच सहयोग ज्यादा टिकाऊ होगा। आदान-प्रदान का यह सिलसिला एक हद तक तोहफों की प्रकृति का था। जिस समूह से सहयोग करने की इच्छा होती, उसे तोहफे पेश किए जाते थे और उससे तोहफे लिए जाते थे। वस्तुओं के आदान-प्रदान के अतिरिक्त विवाह के पक्षों का आदान-प्रदान भी सहयोग के संबंध प्रगाढ़ करने का एक माध्यम बन गया था। एक बहिर्विवाह कुल दूसरे बहिर्विवाह कुल को वर या वधू पक्ष देता (भेंट करता) था। कुल के अंदर वंशानुक्रम मां की ओर से निर्धारित होता था (मातृवंशीय कुल)। शुरुआती नवपाषाणकाल के दौरान महिलाओं ने कृषि के विकास में एक निर्णायक भूमिका निभाई। हम पहले ही देख चुके हैं कि पुरापाषाणकाल के दौरान महिलाएं वनस्पति संग्रह से पूरी तरह जुड़ी थीं। जब पौधों के उगाने की शुरुआत हुई तो इसने उनको केंद्रीय स्थान पर पहुंचा दिया।

धार्मिक आस्था और कर्मकांड भी ज्यादा परिष्कृत हो गए। बहुत सारी शुरुआती नवपाषाणी बस्तियों से मिट्टी और पलस्तर की मूर्तियां मिली हैं। ढेर सारी मूर्तियों में महिलाएं प्रदर्शित की गई हैं। यदा-कदा गर्भवती महिलाएं भी दिखाई गई हैं। महिलाओं की लघुमूर्तियां जननक्षमता (महिलाओं और मिट्टी दोनों की) बढ़ाने के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों से जुड़ी थीं। ये मातृदेवी (मदर गाडेस) की उपासना में विकसित हुईं जो कृषक समाज का एक खास लक्षण है। जेरीको में महिलाओं की लघुमूर्तियों के अलावा खोपड़ियां मिलीं जो निवास स्थानों पर बड़े एहतियात से रखी गई थीं। उन खोपड़ियों पर मिट्टी का एक लेप चढ़ा है और नेत्र कोटरों में सीपी भरे हैं। ये खोपड़ियां कुछ कर्मकांडों या अनुष्ठानों में इस्तेमाल होती थीं। केन्यन कहती हैं कि वे 'कपालोपासना' का हिस्सा थी। यह उपासना पूर्वजों की पूजा का कोई रूप हो सकती है। कातल हुयुक में सांड की उपासना के स्पष्ट साक्ष्य मिलते हैं। सांड पूजे जाते थे और/या उनकी बलि दी जाती थी। इस उपासना पद्धति के अनेक पूजास्थल मिले हैं। यह भी जनन क्षमता बढ़ाने के कर्मकांडों या अनुष्ठानों से जुड़ी है। अनातोलिया और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र लंबे समय तक सांड की पूजा के केंद्र बने रहे।

वी. गोर्डन चाइल्ड ने कृषि की ओर बदलाव को 'नवपाषाणी क्रांति' बताया है। बाद में कुछ प्रागितिहासकारों ने 'क्रांति' शब्द के इस्तेमाल पर सवाल खड़ा किया। उन्होंने इंगित किया कि इस क्रम में जो कुछ हुआ वह क्रांति होने के बजाए एक बड़े कालखंड

में फैली उत्पत्ति है। हम पहले ही देख चुके हैं कि कृषि के उद्भव को एक घटना करार नहीं दिया जा सकता जो किसी खास क्षण हुई हो। इसलिए हमें कृषि की ओर*आकस्मिक* बदलाव की संभावना खारिज कर देनी चाहिए। लेकिन यह 'आकस्मिकता' वह नहीं है जो गोर्डन चाइल्ड के दिमाग में थी। उनकी नवपाषाणी क्रांति की अवधारणा में उसे इस मायने में क्रांति माना गया था कि वह मात्र एक मात्रात्मक परिवर्तन नहीं बल्कि एक प्रमुख गुणात्मक परिवर्तन को रेखांकित करती है। एक बार जब मानव समाज ने कृषि अपना ली, उन्होंने एक ज्यादा जटिल समाज के विकास के लिए स्थितियां बना दीं। वे अधिशेष (सरप्लस) पैदा कर सके जो अंतत: मानव को सभ्यता के उद्भव की ओर ले गया। पुरापाषाणकाल के दौरान लाखों वर्षों तक शिकार और खाद्य-संग्रह अर्थव्यवस्था का आधार था। कृषि बहुत हाल की चीज है। फिर भी हमें इस पर ध्यान देना चाहिए कि एक बार अनुकूलन की वैकल्पिक रणनीति बन जाने के बाद कृषि ने कुछ हजार साल के अंदर शिकार एवं खाद्य संग्रह को पूरी तरह विस्थापित कर दिया। समकालीन शिकारी संग्राहक समुदाय निरपवाद रूप से सीमांत क्षेत्र में सीमित हो गए। कृषि ने मानवों की जीवनशैली की पूरी तरह कायापलट कर दी।

के अलावा सूअर भी पालतू बनाए गए। ढोर-डंगरों को पालतू बनाने की प्रक्रिया बाद में हुई क्योंकि जंगली ढोरों-डंगरों को सधाना ज्यादा कठिन था।

यह मान लेना गलत होगा कि जैसे ही पेड़-पौधों और जानवरों को पालतू बना लिया गया तथा कृषि की ओर झुकाव हो गया, शिकार करने और खाद्य संग्रह करने का काम छोड़ दिया गया। जब तक लोग पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो गए कि कृषि शिकार और खाद्य संग्रह का एक सक्षम विकल्प है, उन्होंने अपनी पुरानी जीवन शैली को पूरी तरह नहीं छोड़ा होगा। यहां तक कि कृषि की शुरुआत हो जाने के बाद भी कुछ समय तक एक तरह से मिश्रित अर्थव्यवस्था रही और खाद्य उत्पादन, शिकार तथा खाद्य संग्रह साथ-साथ चला। तीनों के बीच का अनुपात विभिन्न इलाकों में अलग-अलग था। बहरहाल, मानव ने पेड़-पौधे उगाने के प्रयास किए और एक समय काल में उसे कुछ खास पौधों (गेहूं और जौ जैसे अनाज) के मामले में उसे सफलता मिलनी शुरू हुई। कुछ चुनिंदा पौधों पर केंद्रित होने का मतलब है कि दूसरे पौधे नजरअंदाज कर दिए गए और बड़ी तादाद में उनका उगना बंद हो गया। खाद्य पदार्थों को चुनने-बीनने और संग्रह करने का काम अब कोई विकल्प के रूप में नहीं रहा क्योंकि जंगली पौधे अपवर्जित हो गए थे। एक बार इस विकल्प के खत्म होने के बाद कृषि की सफलता सुनिश्चित करना बेहद जरूरी हो गया। स्थिर जीवन व्यवस्था ने अनेक समूहों को अर्धस्थायी या स्थायी आधार पर एक-दूसरे के साथ संपर्क में लाकर और उनके बीच परस्पर सहयोग बढ़ाकर इस प्रक्रिया में मदद की। इस तरह खाद्य उत्पादन को मजबूती दी।

शुरुआती नवपाषाणी समाज अनेक मामलों में पुरापाषाणी समाज से भिन्न थे। उत्तर-पुरापाषाणकाल में भी शिकारी संग्राहक जत्थे पूर्ण अलगाव में नहीं रहते थे। उन्होंने दूसरे जत्थे के साथ रिश्ते बना लिए थे और उनके साथ मिलकर शिकार करते थे। सीमांत क्षेत्रों में थोड़ा-बहुत सहयोग के बगैर रहना अपरिहार्य था। समूहों के बीच थोड़ा आदान-प्रदान भी होता था, खासकर अनुष्ठानों और कर्मकांडों के लिए जरूरी वस्तुओं का। कुछ अनुष्ठान मिलकर किए जाते थे। फिर भी शिकारी संग्राहक समूह लंबे समय तक साथ-साथ नहीं रहे। जब सामाजिक समूह बड़ी संख्या में लंबे समय तक साथ-साथ रहते हैं तो उन्हें आपसी विवाद सुलझाने का तरीका ढूंढने की जरूरत पड़ती है। उत्तर-पुरापाषाणी शिकारी संग्राहक समूहों के पास ऐसा कोई तरीका नहीं था। अगर कोई विवाद छिड़ता तो उनके लिए वहां से चले जाना आसान था। यह उनके लिए संभव था क्योंकि शिकारी संग्राहक अपेक्षाकृत ज्यादा गतिशील होते हैं और किसी खास भूखंड के प्रति उनको मोह नहीं होता है। जब लोगों ने अत्यंत नूतनोत्तर युग में अस्थायी आधार पर बसना शुरू किया तब ही उन्होंने आपसी विवाद-झगड़े सुलझाने के रास्ते ढूंढे। बारबरा बेंडर इस संदर्भ में कहती है कि स्थिर जीवन की समस्या उस हद तक जनसंख्या का प्रश्न नहीं है जितना वह मिलजुलकर एक साथ रहने से जुड़ी समस्याओं के हल ढूंढने की है। उसके कारण

प्राधिकार का ढांचा खड़ा हुआ और सामाजिक अंतर्संबंध के नियम बने।

शुरू में प्राधिकार अनुष्ठानों और कर्मकांडों से जुड़े थे। यह प्राधिकार और उससे मिलने वाला रुतबा खाद्य पदार्थ तक पहुंच होने के संदर्भ में कोई मायने नहीं रखता था। लेकिन उसने आभूषणों या अनुष्ठानों से जुड़ी कुछ चीजों तक उनको पहुंच का अवसर दिया होगा। अगर समूह में कुछ प्राधिकार रखने वाले व्यक्ति दूसरे समूहों के साथ आदान-प्रदान और परस्पर सहयोग पर संबंध स्थापित करने में सफल रहते तो उनकी हैसियत और रुतबा में इजाफा होता। एक जगह बसे समूहों के बीच सहयोग और प्राधिकार रखने वाले कुछ व्यक्तियों के अभ्युदय ने कृषि की ओर संक्रमण को गति दी। दरअसल उन सामाजिक तब्दीलियों ने खुद ही खाद्य उत्पादन की ओर उन्मुख होने के लिए उत्प्रेरक की भूमिका निभाई होगी।

पश्चिम एशिया के अनेक शुरुआती नवपाषाणी स्थलों से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य एक दक्ष सामाजिक संगठन की ओर इशारा करते हैं। वहां शंखों और आब्सीडियन का खूब आदान-प्रदान होता था। आब्सीडियन एक प्रकार का पत्थर है जिसकी उस वक्त बहुत मांग थी क्योंकि उनसे औजार गढ़ना आसान था। अनातोलिया के कातल हुयुक में आब्सीडियन का आदान-प्रदान एक खासे बड़े पैमाने पर होता था। इस आदान-प्रदान को संगठित करने वाले व्यक्तियों के रंगमंच पर आने से उसमें मदद मिली। कातल हुयुक में मिले कब्र यह दिखाते हैं कि कुछ लोगों को वस्तुओं के साथ दफनाया जाता था जिन्हें श्रेष्ठ माना जा सकता है। अन्य कब्रों से ऐसी वस्तुएं नहीं मिलतीं। कातल हुयुक का एक बड़ी नवपाषाणी बस्ती के रूप में उभरना इसी आदान-प्रदान के संदर्भ में समझा जा सकता है।

जेरीको से मिले साक्ष्य और भी महत्वपूर्ण हैं। हम पहले ही वहां एक बड़ी सुरक्षात्मक दीवार की उपस्थिति को नोट कर चुके हैं जिनका निर्माण जेरीको में रहने वाले तमाम लोगों के एक साथ श्रम से ही संभव हो सका होगा। उसके लिए निर्माण कार्य की योजना बनाने और उसे समन्वित करने की कुछ संगठनात्मक क्षमता की जरूरत होती है। साथ ही जेरीको की नवपाषाणी बस्ती में शुरू से ही सघन आबादी थी। जैसे-जैसे आबादी बढ़ी, नखलिस्तान के इर्द-गिर्द का एक बड़ा इलाका कृषि के दायरे में आया। नखलिस्तान से कुछ दूरी पर कई खेत स्थित थे। बाहर स्थित खेतों तक पानी ले जाने के लिए नालियां (चैनल्स) थीं। कैथलीन केन्यन ने इंगित किया है कि नालियों को नियोजित करने और बराबर-बराबर पानी बांटने के लिए जरूर कोई सामाजिक तंत्र रहा होगा।

कुल मिलाकर शुरुआती नवपाषाणकाल में उत्पादन के साधनों और उत्पाद पर सामूहिक नियंत्रण जारी रहा। अब मुख्य सामाजिक इकाई के रूप में गोत्र-समुदाय (clan) ने जत्थों (band) की जगह ले ली। ये विस्तारित परिवार थे जिनके सदस्य एक दूसरे से रिश्तों से बंधे थे, अर्थात उनके बीच खून का रिश्ता था और एक साझी वंश परंपरा थी।

अध्याय चार

सभ्यता की शुरुआत और कांस्ययुगीन मेसोपोटामिया

नवपाषाण से कांस्ययुगीन सभ्यता में सबसे पहले संक्रमण मेसोपोटामिया में हुआ। मेसोपोटामिया कुल मिलाकर मौजूदा इराक है। मेसोपोटामिया ने अब तक की ज्ञात प्राचीनतम कांस्ययुग सभ्यता–सुमेरियाई सभ्यता दी है। इस वजह से नवपाषाण से कांस्ययुग में संक्रमण पर होने वाली किसी चर्चा में मेसोपोटामिया का विशेष महत्व है। इसके अलावा मेसोपोटामिया में इस संक्रमण से संबंधित पुरातात्विक रिकार्ड बहुत समृद्ध हैं। इस क्षेत्र के पुरातात्विक अवशेष इतने समग्र और व्यापक हैं कि वे शुरुआती खाद्य उत्पादक समाज से धातुओं का उपयोग करने वाले समाज की उत्पत्ति का कदम-ब-कदम दास्तान दर्ज करने के लिए पर्याप्त हैं।

यहां मेसोपोटामिया की भौगोलिक विशिष्टताओं से बात शुरू करना जरूरी है। मेसोपोटामिया की ऐतिहासिक उत्पत्ति को इन्हीं विशिष्टताओं के संदर्भ में ही सही ढंग से समझा जा सकता है। वहां दो प्रमुख नदियां बहती हैं। उनमें से एक फरात (पुरात्तू) है और दूसरी दजला (इदिकलात) है। दोनों नदियां उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हैं तथा अपना पानी फारस की खाड़ी में छोड़ती हैं। मेसोपोटामिया को कुल मिलाकर उत्तर और दक्षिण दो सुस्पष्ट हिस्सों में बांटा जा सकता है। दोनों क्षेत्रों की जलवायु एक दूसरे से बेहद भिन्न है। उत्तरी मेसोपोटामिया जागरोस पर्वत से मध्य दजला तक फैला है। पश्चिम में यह क्षेत्र सीरियाई रेगिस्तान से घिरा है। प्राचीन काल में उत्तरी मेसोपोटामिया को अकसर असीरिया के नाम से पुकारा जाता था।

दक्षिणी मेसोपोटामिया कमोबेश मध्य दजला और फारस की खाड़ी के बीच आने वाला क्षेत्र है। यह करीब 400 किलोमीटर लंबा और 100 किलोमीटर से ज्यादा चौड़ा है। पूर्व में उसकी सीमा ईरान से मिलती है। उसके पश्चिम में रेगिस्तान का एक अंतहीन सिलसिला है जो अरब के रेगिस्तान से मिल जाता है। जमीन बिलकुल समतल है और कहीं पत्थर या चट्टान नहीं हैं। हम वहां की जमीन के समतल होने का अंदाजा इस तथ्य से लगा सकते हैं कि फारस की खाड़ी (जहां से दक्षिणी मेसोपोटामिया शुरू होता है) से 400 किलोमीटर दूरी पर भी जमीन समुद्र की सतह से सिर्फ 20 मीटर ऊपर स्थित है। इसका मतलब हुआ कि इस क्षेत्र में समुद्र की दिशा में ढलान न के बराबर है। दक्षिणी मेसोपोटामिया रेगिस्तान से घिरा एक शुष्क क्षेत्र है। वहां पर्याप्त बारिश नहीं होती है। फिर भी फरात और दजला ने वहां खेती की और इस तरह से बस्ती की संभावनाएं सृजित की।

ऐतिहासिक काल की शुरुआत में मेसोपोटामिया का सबसे दक्षिणी हिस्सा सुमेरिया कहलाता था। सुमेरिया और उत्तरी मेसोपोटामिया के बीच का इलाका अक्काद कहलाता था। दरअसल दक्षिणी मेसोपोटामिया में सुमेरिया और अक्काद शामिल थे। 2000 ईसापूर्व सुमेरिया और अक्काद को अकसर बेबीलोनिया के नाम से पुकारा जाता रहा। कुल मिलाकर मेसोपोटामिया में दो सुस्पष्ट भौगोलिक क्षेत्र : उत्तरी मेसोपोटामिया (या असीरिया) और दक्षिणी मेसोपोटामिया हैं। प्राचीन काल में दक्षिणी मेसोपोटामिया दो भागों में, अक्काद और सुमेरिया में उपविभाजित था। ईसापूर्व से 2000 के बाद से अक़्काद और सुमेरिया दोनों को मिलाकर बेबीलोनिया कहा जाने लगा क्योंकि बेबीलोन दक्षिणी मेसोपोटामिया के एक प्रमुख साम्राज्य का राजनीतिक केंद्र बन गया था।

जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं कि प्राचीनतम नवपाषाणी बस्तियों में से कुछ उत्तरी मेसोपोटामिया में स्थित थी। जागरोस पर्वत गिरिपीठ की शिनाख्त पश्चिम एशियाई पट्टी के एक हिस्से के रूप में की गई है जहां खाद्य उत्पादन की शुरुआत होने के साक्ष्य मिले हैं। जागरोस पर्वत गिरिपीठ में कृषि की शुरुआत करीब 10,000 बीपी (अली कोश) में हुई। बाद में जारमो की महत्वपूर्ण नवपाषाणी बस्ती उस क्षेत्र में उभरी। उत्तरी मेसोपोटामिया में फसलों की खेती के लिए पर्याप्त बारिश होती है और उसे सिंचाई पर आश्रित होने की जरूरत नहीं थी। शीतकालीन वर्षा गेहूं और जौ जैसे खाद्यान्नों के साथ अनेक किस्म के घासों की खेती के लिए मददगार है। जागरोस पर्वत पर जहां-जहां 200 मिलीमीटर बारिश होती है, गेहूं और जौ की खेती की जा सकती है।

उत्तरी मेसोपोटामिया में 8000 ईसापूर्व और 6000 ईसापूर्व के बीच अनेक नवपाषाणी गांव उभर आए। जारमो की चर्चा पहले ही की जा चुकी थी। जारमो के गांव में अनेक कमरों वाले मकान थे। मकान की दीवारें मिट्टी की थीं और उसमें दो या दो से ज्यादा कमरे थे। उनमें चूल्हे और धान्यागार भी थे। खाद्यान्न उत्पादन एक प्रमुख गतिविधि थी। उस स्थल से अनेक हंसिया मिली हैं। जारमो के लोग गेहूं और जौ की खेती करते थे। उत्तरी मेसोपोटामिया में उम्म दबागिया एक अन्य महत्वपूर्ण शुरुआती बस्ती थी।

करीब 6000 ईसापूर्व तक समूचे उत्तरी मेसोपोटामिया में खाद्य उत्पादन ने व्यापक स्वरूप ग्रहण कर लिया। उसने तीन उत्तरोत्तर नवपाषाणी सभ्यताओं—हसुना (6000-5500 ईसापूर्व), समारा (5500-5000 ईसापूर्व) और हलफ (5500-4500 ईसापूर्व) को जन्म दिया। ये तीनों संस्कृतियां उत्तरी मेसोपोटामिया वातावरण के फल हैं। वहां खेती मुख्यत: शीतकालीन वर्षा पर आधारित थी। इन नवपाषाणी संस्कृतियों के विकास से खाद्य उत्पादन ने मेसोपोटामिया में शिकार एवं खाद्य संग्रह की जगह ले ली। इन संस्कृतियों की एक अन्य विशेषता थी सुंदर हस्तनिर्मित मृद्भांडों का निर्माण।

हसुना संस्कृति का नाम तेल हसुना पर पड़ा है जहां सबसे पहले उसे चिह्नित किया गया था। इस संस्कृति से जुड़ी अनेक बस्तियां खोजी गई हैं। ये बस्तिया उत्तरी मेसोपोटामिया

में व्यापक रूप से बिखरी हैं। हसुना के नवपाषाणी गांवों में अनेक कमरों वाले मकान थे। सभी मकानों में खाद्यान्न संग्रह करने के लिए धान्यागार बने थे। पत्थरों के फलक वाली हंसियों का व्यापक प्रचलन था। हसुना संस्कृति के स्थलों से पत्थर के जो अन्य प्रकार के औजार पाए गए उनमें भारी भाला शामिल है। हसुना संस्कृति के मृद्भांड रंगे थे और उन्हें विभिन्न ज्यामितीय आकारों से सजाया गया था। वहां से शिकार करने के कुछ साक्ष्य मिले हैं। लेकिन तब तक वह प्राथमिक गतिविधि नहीं रह गया था। यह अनुमान लगाया गया है कि हसुना संस्कृति के ढेर सारे गांवों की आबादी 400 तक थी। यह हसुना कृषकों के सफल अनुकूलन का एक संकेत है।

हसुना संस्कृति के बाद समारा नवपाषाणी संस्कृति आई। जब तक यह संस्कृति विकसित होती, उत्तरी मेसोपोटामिया के लोगों ने मध्य दजला के पास, अर्थात दक्षिणी मेसोपोटामिया के सीमांत क्षेत्रों में बसना शुरू कर दिया था। इस क्षेत्र में शीतकालीन वर्षा अपेक्षाकृत कम होती है। इसलिए समाराइयों को कृत्रिम सिंचाई पर कुछ हद तक आश्रित होना पड़ा। तेल अस्सव्वान और चोगा मामी जैसे समाराई स्थलों से आदिम सिंचाई के साक्ष्य मिले हैं। चोगा मामी में खेतों तक पानी ले जाने के लिए प्राथमिक किस्म के नहर खोदे गए थे। इस बस्ती की आबादी संभवत: 1000 के करीब थी। गांव की रक्षा के लिए खाई थी। ये तमाम विशेषताएं एक जटिल सामाजिक संगठन की ओर इशारा करती हैं। समाराई गेहूं और जौ उगाते थे। अलसी भी उगाई जाती थी।

हलफियाई संस्कृति उत्तरी मेसोपोटामिया में नवपाषाणी विकास के क्रम में सर्वाधिक उन्नत चरण का प्रतिनिधित्व करती है। करीब एक हजार साल (5500 ईसापूर्व से 4500 ईसापूर्व) तक टिकी इस संस्कृति को सबसे पहले तेल हलफ में चिह्नित किया गया था। कुछ हलफियाई स्थलों से तांबे के छोटे-छोटे मनके मिले हैं। ये मनके सतह पर मिले तांबे से बनाए गए थे, अर्थात उनके लिए तांबा का उत्खनन नहीं किया गया। बहरहाल, औजार बनाने के लिए विभिन्न किस्म के पत्थरों (चकमक, आब्सीडियन इत्यादि) का इस्तेमाल जारी रहा।

हलफियाई लोगों ने लाजवाब किस्म के मृद्भांड बनाए। ये मृद्भांड प्रौद्योगिकी और कला के लिहाज से बहुत उन्नत स्तर के थे। जार्जेस राउकस हलफियाई मृद्भांडों को मेसोपोटामिया में इस्तेमाल हुए सर्वाधिक सुंदर मृद्भांड मानते हैं। दूसरे विशेषज्ञ भी मानते हैं कि इस संस्कृति के मृद्भांड प्राचीन मेसोपोटामिया में हस्तनिर्मित मृद्भांडों में सर्वाधिक सुंदर हैं। मृद्भांड रोगर किए गए हैं और उन्हें चमकदार बनाया गया है। उन्हें अत्यंत उच्च तापक्रम पर पकाया गया था जिससे उसमें खास तरह की चमक आई। हलफियाई मृद्भांड पूर्व में जागरोस पर्वत से लेकर पश्चिम में सीरिया तक फैले एक बड़े इलाके में स्थित ढेर सारे स्थलों में पाए गए। इसकी बहुत संभावना है कि इस इलाके में बस्तियों ने आपस में व्यापार और आदान-प्रदान पर आधारित संबंध बना लिया था।

दक्षिणी मेसोपोटामिया में बस्तियों के बसने की प्रक्रिया 5000 ईसापूर्व से कुछ पहले शुरू हुई। यह कहा जाता है कि 5300 ईसापूर्व से पहले वह क्षेत्र संभवतः दलदली था जहां बस्ती नहीं बसाई जा सकती थी। 5300 ईसापूर्व के बाद दक्षिणी मेसोपोटामिया के कठोर पेर्यावरण के दोहन के प्रयास हुए। मध्य मेसोपोटामिया में बसे कुछ समाराई कृषकों ने संभवतः डेल्टा क्षेत्र में जाने की पहल की होगी। जैसा कि हम जानते हैं समाराई पहले ही प्राथमिक किस्म की सिंचाई प्रणाली विकसित करने का प्रयास कर चुके थे।

यहां यह जोर देना जरूरी है कि दक्षिणी मेसोपोटामिया में बसने की प्रक्रिया सिर्फ कृत्रिम सिंचाई प्रणाली के साथ-साथ विकास से ही संभव हो सकती है। इस क्षेत्र में शायद ही बारिश होती है। लेकिन जमीन बेहद उपजाऊ है। बेशक उसके लिए सिंचाई जरूरी है। सबसे पहले बस्तियां दजला और फरात के तटों के इर्द-गिर्द बसीं। उसके बाद नदी से कुछ दूरी पर स्थित खेतों तक पानी ले जाने के लिए नहरें खोदी गईं। फरात का तल दजला से ऊंचा है। डेल्टा क्षेत्र में इसके कारण पानी की छोटी-छोटी धाराएं फरात से दजला की ओर बहती हैं। नहर खोद कर उन्हें खेतों की ओर ले जाया जा सकता है। सिंचाई के उद्देश्य से पानी की दिशा मोड़ने के लिए फरात पर बराज बनाने की जरूरत थी। लिहाजा दक्षिणी मेसोपोटामिया में नहरों और बराजों का एक संजाल उभर आया जिसके कारण उस क्षेत्र की पूरी क्षमता का इस्तेमाल हुआ। नतीजतन वह प्राचीनतम कांस्य युग सभ्यता का केंद्र बन गया।

दक्षिणी मेसोपोटामिया के आबाद होने के बाद वहां तीन नवपाषाणी संस्कृतियां विकसित हुईं। उनमें सबसे पुरानी अल-उबैदी संस्कृति (5000 से 4000 ईसापूर्व) है। उसके बाद पश्चिम एशिया की सर्वप्रमुख संस्कृतियों में से एक, उरूक संस्कृति (4000 से 3200 ईसापूर्व) आई। अंत में जामदात नस्र संस्कृति (3200 से 3000 ईसापूर्व) के पराकाष्ठा पर पहुंचने के साथ सुमेरियाई सभ्यता उभरी।

अल-उबैद संस्कृति दक्षिणी मेसोपोटामिया के वातावरण के अनुरूप खुद को ढालने का पहला प्रमुख प्रयास को रेखांकित करती है। शुरू में फसलों की सिंचाई के लिए प्राकृतिक जलमार्गों का उपयोग किया गया। गेहूं और जौ उगाए गए। भेड़ और बकरियां भी पाली गईं। दजला और फरात तथा निचले मेसोपोटामिया के दलदलों से पकड़ी गई मछलियां भोजन का एक महत्वपूर्ण स्रोत थीं। उस इलाके में प्रचुर मात्रा में मिलने वाले पोषक खजूर ने उनकी खुराक की भरपाई की होगी।

अल-उबैद संस्कृति धातुओं के उपयोग का साक्ष्य पेश करती है। बेशक धातुओं का उपयोग छोटे पैमाने पर था। दूसरी धातुओं की तुलना में तांबा को आसानी से ढाला, मोड़ा या कोई शक्ल दी जा सकती है। इसी कारण उसका इस्तेमाल औजार बनाने में हो रहा था। गोर्डन चाइल्ड का कहना है कि इस चरण में कुछेक धातुकार धातु की वस्तुएं बनाने के उद्देश्य से एक गांव से दूसरे गांव जाते रहते होंगे। यह बात ध्यान में रखनी

चाहिए कि धातुकर्म के लिए एक खास हद तक कौशल की जरूरत पड़ती है। दूसरे शब्दों में, धातु के उत्पादन के लिए विशेषज्ञों की जरूरत पड़ती है जिन्हें धातुकर्म की जानकारी और तजुर्बा हो। धातु के निष्कर्षण और प्रसंस्करण की प्रौद्योगिकी एक विशिष्ट और विशेषज्ञता आधारित कार्य है। पर्याप्त कौशल एवं विशेषज्ञता नहीं रखने वाला कोई व्यक्ति सामान्य रूप से यह काम नहीं कर सकता है। धातु की वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया पत्थर के औजार या मृद्भांड बनाने की अपेक्षा ज्यादा जटिल है। इस दिशा में संभवत: पहला कदम कुम्हारों ने उठाया जिन्हें भट्टियों पर काम करने का तजुर्बा था। हलफियाई कुम्हार अपने मृद्भांड भट्टों में पकाते थे जहां तापक्रम 1200 डिग्री सेंटीगेट तक जाता था। यह वह तापक्रम है जिस पर तांबा पिघलता है। इस तकनीकी जानकारी को तांबा की ओर हस्तांतरित करने में ज्यादा कठिनाई नहीं हुई होगी। फिर भी तांबा ढालने का सिलसिला कुछ बाद में शुरू हुआ। तांबा ढालने के बाद का कदम था कांसा का उत्पादन। तांबा बहुत नर्म धातु है और उससे मजबूत एवं प्रभावी औजार तथा हथियार नहीं बनाए जा सकते। धातुकारों ने पाया कि तांबा में थोड़ी मात्रा में टिन मिलाने से एक कठोर पदार्थ मिलता है। उससे कांसा का उत्पादन शुरू हुआ जो तांबा और टिन का मिश्र धातु है। कांसा का इस्तेमाल नवपाषाणकाल के अंत में ही शुरू हो सका।

उस समय कुछ लोगों को अपना अच्छा-खासा समय विशेषज्ञता आधारित धातु उत्पादन में देना पड़ता होगा। लेकिन इस तरह की विशेषज्ञता उसी हालत में संभव है जब कोई समुदाय इतना खाद्य उत्पादन करता हो कि वह विशेषज्ञों को जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध करा सके। तांबा की वस्तुओं के निर्माता तभी भोजन के साथ अपने उत्पादों का आदान-प्रदान कर सकते थे। शुरू में धातु का उपयोग बहुत सीमित होगा और ये विशेषज्ञ या 'घुमक्कड़ विशेषज्ञ' जैसा कि गोर्डन चाइल्ड उन्हें पुकारते हैं एक जगह से दूसरी जगह घूम-घूम कर अपनी सेवाएं उपलब्ध कराते होंगे। उसके अलावा अल-उबैद काल में समुदाय अभी इतना खाद्य उत्पादन की स्थिति में नहीं पहुंचे होंगे कि धातुकारों के समूह के लिए कोई स्थायी प्रबंध कर सकें। नतीजतन अनेक गांव उन घुमक्कड़ ताम्रकारों की सेवाओं में हिस्सा बटाते होंगे जो भोजन के बदले तांबा का सामान बनाते थे।

हालांकि हलफियाइयों ने ईंट बनाने के लिए मिट्टी का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था। लेकिन अल-उबैद संस्कृति में मकान बनाने में ईंट का इस्तेमाल व्यापक रूप से किया गया। यह एक हद तक इस कारण से भी हुआ कि दक्षिणी मेसोपोटामिया में पत्थर बमुश्किल उपलब्ध था। ये ईंटें लकड़ी के खांचे में मिट्टी (घास-फूस के साथ मिलाकर) डालकर बनाई जाती थीं। ईंट शुरू में आग में पकाई नहीं जाती थी बल्कि धूप में सुखाई जाती थी। मृद्भांड के निर्माण के सिलसिले में अल-उबैद संस्कृति के लोग पुरानी तकनीक पर ही अमल करते रहे। मृद्भांड हाथ से बनाए जाते थे, अर्थात अब तक चाक का इस्तेमाल नहीं हुआ था।

यहां एक बार फिर इस बात पर जोर देना जरूरी है कि दक्षिणी मेसोपोटामिया का विकास कृत्रिम सिंचाई पर निर्भर था। लेकिन सिंचाई महज प्रौद्योगिकी के विकास का मामला नहीं है। इस क्षेत्र में एकदम साधारण किस्म की सिंचाई के लिए भी जरूरी है कि लोगों का समूह अपने संसाधनों का सामूहिक रूप से इस्तेमाल करें। इसके लिए योजना और समन्वय जरूरी है। किसी खास मौसम में और साथ ही एक मौसम से दूसरे मौसम में एक लंबे समय तक लोगों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करना पड़ता है। इन तमाम सहयोग, योजना और समन्वय के लिए सामाजिक संगठन का उच्च स्तर जरूरी है। दक्षिणी मेसोपोटामिया के बारे में ग्राहम क्लार्क का कहना है कि उसकी पूरी संभावनाओं का दोहन सिर्फ सभ्य समाज कर सके होंगे, अर्थात ऐसे समाज जो महज पारिवारिक या सामाजिक संस्थाओं से भिन्न राजनीतिक संस्था भी हो जो वह सुनिश्चित करे कि व्यक्तिगत सदस्य अपनी विशिष्ट भूमिका निभाएं।

अब यह आम तौर पर स्वीकार किया जाता है कि मंदिरों ने सुमेरियाई सभ्यता के निर्माणकारी चरण में एक प्रमुख भूमिका निभाई। राजनीतिक संस्थाओं के विकास में उनकी केंद्रीय भूमिका थी और उन्होंने आर्थिक गतिविधियों के संचालन में भी मदद की थी। मंदिरों का एक महत्वपूर्ण काम सिंचाई की व्यवस्था करने का था। अल-उबैद संस्कृति के छोटे-मोटे धर्मस्थलों से विकसित होकर मंदिर ने एक जबर्दस्त स्वरूप ग्रहण कर लिया। दक्षिणी मेसोपोटामिया की बस्तियों का सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन इन्हीं मंदिरों के इर्द-गिर्द घूमता था। अल-उबैद के निकट एरिदू में खुदाई से मिट्टी की ईंट से निर्मित एक विशाल मंदिर मिला है। यह प्राचीनतम बस्तियों में से एक है जिसमें सुमेरिया में मंदिरों की प्रभुत्वकारी स्थिति का साक्ष्य दिया गया है।

सुमेरियाई समाज में अपनी निर्णायक हैसियत होने के कारण मंदिर सिंचाई के सिलसिले में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। उसके साथ ही सिंचाई के साथ उनके अंतरंग संबंध ने मंदिरों को और भी अपरिहार्य बना दिया और उनका प्राधिकार मजबूत किया। दक्षिणी मेसोपोटामिया में सिंचाई पर भरपूर ध्यान देना जरूरी था। खेतों तक पानी पहुंचाने के लिए गहरी नहरें खोदनी पड़ी थीं। क्षेत्र में गर्मी के मौसम में जबर्दस्त तपिश होने के कारण फसलें मुख्यत: सितंबर या अक्टूबर महीने में रोपनी पड़ती थीं। इसने सिंचाई के दृष्टिकोण से एक विकट चुनौती पेश की। जब खेतों की सिंचाई का समय होता तो मेसोपोटामिया की नदियों और जलधाराओं में पानी घट जाता। दजला और फरात में आने वाली बाढ़ का पानी अप्रैल-मई माह तक ही निचले प्रदेश में पहुंच पाता। तब तक कृषि की मुख्य अवधि गुजर चुकी होती। तब जाड़े की फसलों के लिए बहुत विलंब हो चुका होता और गर्मी की फसलों के लिए भी बहुत समय बाकी रहता। चूंकि जाड़े के समय पानी का स्तर बहुत नीचे होता, नहरें बहुत गहरी खोदनी पड़तीं ताकि उस स्तर से नदियों और नालों का पानी खेत तक पहुंचाया जा सके। यह इसलिए भी जरूरी था कि

प्राचीन मेसोपोटामिया के कृषकों के पास जल उत्थापक प्रणाली नहीं थी और इसलिए उन्हें बुनियादी तौर पर नहरों पर आश्रित होना पड़ा।

एक अतिरिक्त समस्या यह थी कि जब जल-स्तर बढ़ता और मैदानी इलाका में बाढ़ आ जाती तो जल निकासी जरूरी हो जाती। जैसा कि हम देख चुके हैं कि दक्षिणी मेसोपोटामिया की जमीन इस कदर समतल है कि प्रत्यक्षत: कोई ढलान नहीं है। इसका मतलब है कि बाढ़ के पानी को वापस समुद्र में लौटने में बहुत समय लगता होगा। जल निकासी में बहुत समय लगने से खेतों में जल जमाव होने का खतरा हो जाएगा। इसलिए जल जमाव के खतरे से बचने और जल निकासी की रफ्तार तेज करने के लिए एक कालखंड में सुमेरिया में नहर, बांध (dyke) और जलाशय का तानाबाना (संजाल) सृजित हुआ।

अल-उबैद काल से मंदिर सिंचाई के विकास का साधन थे। नहरों की खुदाई और देख-रेख समुदाय के लिए एक सामूहिक प्रयास थी। श्रम का बड़ा हिस्सा सामूहिक रूप से करना होता था। यह सब मंदिर की देख-रेख में होता था। पुजारियों और मंदिरों के अन्य कर्मियों ने जल्द ही सिंचाई के मामलों में विशेषज्ञता हासिल कर ली। इसका इस्तेमाल और ज्यादा प्रभावी तकनीक के विकास के साथ-साथ मंदिर के प्राधिकार की स्थापना में किया जाता था। धीरे-धीरे मंदिर राजनीतिक नियंत्रण के उपकरण में रूपांतरित हो गए। रूपांतरण की यह प्रक्रिया कई सदियों में पूरी हुई।

मानव सभ्यता में उरूक नवपाषाणी संस्कृति का उल्लेखनीय योगदान है। इस संस्कृति से मिले साक्ष्यों से पता चलता है चाक और हल का इस्तेमाल सबसे पहले यहां ही हुआ। लिखने की पद्धति की शुरुआत का श्रेय भी इसी को जाता है। उरूक संस्कृति के साथ हम प्रागितिहास से आद्य-इतिहास (proto-history) में प्रवेश करते हैं। उरूक (आधुनिक वर्का) फरात के निकट स्थित एक बड़ी सुमेरियाई बस्ती थी। अल-उबैद संस्कृति के मुकाबले उरूक संस्कृति गुणात्मक रूप से आगे थी।

उरूक संस्कृति में चाक पर मृद्भांडों का निर्माण शुरू हुआ। शुरू में मृद्भांडों के निर्माण के लिए धीमी रफ्तार से घूमने वाले चाक का इस्तेमाल होता था। बाद में तेज रफ्तार से चलने वाले चाक का विकास हुआ। उरूक संस्कृति से जुड़े विभिन्न स्थलों से चाक पर बने खूबसूरत कलश मिले हैं। प्रौद्योगिकी के दृष्टिकोण से चाक-निर्माण एक महत्वपूर्ण कदम था। सिर्फ धातु के औजारों की मदद से अच्छे ढंग से चाक बनाए जा सकते हैं। धातु की कुल्हाड़ी और आरी ने लकड़ी को गोलाकार में काटना आसन कर दिया। दूसरे शब्दों में धातुकर्म और चाक-निर्माण आपस में एक-दूसरे से जुड़े हैं। बाद में चाक का रूपांतरण पहिया में हुआ और उसका इस्तेमाल परिवहन में होने लगा। पहिए गाड़ी में लगाए गए। उरूक संस्कृति की कुछ वस्तुओं पर गाड़ियों के चित्र उकेरे गए हैं। चाक और गाड़ियों के निर्माण की शैली और शिल्पकारी से पता चलता है कि उरूक में

माहिर बढ़ई थे। मृद्‌भांड निर्माण और धातुकर्म भी विशेषज्ञता आधारित क्षेत्र बन गए थे। इस तरह की विशेषता ने प्रौद्योगिकी के और विकास के लिए स्थितियां बनाईं।

कृषि में हल का इस्तेमाल एक युगांतरकारी कदम था। इस नए क्रांतिकारी औजार ने मिट्‌टी तोड़ना बेहद आसान कर दिया। अब तक इस काम के लिए मिट्‌टी खोदने की छड़ी इस्तेमाल होती थी। छड़ी के मुकाबले हल में बहुत कम मेहनत की जरूरत पड़ती है। वह मिट्‌टी को ज्यादा कुशलता से नर्म बनाता है। हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि तुरंत-फुरंत हर तरफ हल का इस्तेमाल होने लगा होगा। अपनी जबर्दस्त श्रेष्ठता के बावजूद हल महंगे थे और लंबे समय तक वह छड़ी को पूरी तरह विस्थापित नहीं कर सके। उन्हें धातुकर्म में और विकास का इंतजार करना पड़ा जो बहुत बाद में पूरा हो सका।

उरूक संस्कृति के स्थलों में हुई खुदाई से बड़ी तादाद में मोहरें मिली हैं। ये मोहरें दो तरह की हैं : मुद्रा मोहर (stamp seal) और बेलनाकार मोहर। संभवतः इन मोहरों का इस्तेमाल वस्तुओं का मालिकाना हक प्रदर्शित करने में होता था। मूलतः आयताकार मुद्रा मोहर बनाए जाते थे। उनमें अकसर प्राणी या पौधे प्रदर्शित किए जाते थे। बेलनाकार मोहर आम या मध्यम बहुमूल्य पत्थरों के बने होते थे। पहचान का निशान अंकित करने के लिए उन्हें मृदा पर घुमाया जाता था। उरूक संस्कृति के छोटे बेलनाकार मोहर कलात्मक रूप से बहुत उच्च स्तर के थे। उनमें से अधिकांश पर मिथकीय आकृतियां या रोजाना जिंदगी के दृश्य उकेरे गए थे। जार्जेस राउक्स उन्हें 'लघु चित्रकारी की कला' कहते हैं।

लेखन का विकास उरूक संस्कृति की सबसे शानदार उपलब्धि थी। करीब 3500 ईसापूर्व तक सुमेरिया की अर्थव्यवस्था इस कदर जटिल बन चुकी थी कि भंडारों या आदान-प्रदान का जुबानी हिसाब-किताब रखना संभव नहीं रह गया था। चूंकि मंदिर आर्थिक गतिविधि में लगे थे, उसने लेखन की लिपि विकसित की। उससे उसे लेन-देन का हिसाब-किताब रखने के लिए सिर्फ याददाश्त पर आश्रित रहने के बजाए उसका टिकाऊ ब्योरा रखना संभव हुआ। लिखने के लिए मिट्‌टी के छोटे फलक (tablets) इस्तेमाल में लाए जाते थे। किसी नुकीली चीज से उन फलकों पर चिह्न अंकित किए जाते थे। बाद में उन फलकों को धूप में सुखा लिया जाता था या भट्‌टी में पका लिया जाता था। यह दस्तावेज को एक स्थायी शक्ल दे देता था।

इस तरह के प्राचीनतम फलक मंदिर के हिसाब-किताब और रसद की सूची से संबंधित हैं। उनमें कुछ चीजें मछली, भेड़, बकरी, जौ की बाली इत्यादि की अनगढ़ तसवीरें हैं। बाद में उन प्रतीकों को और सरल बनाया गया और सिर्फ उनका खाका प्रस्तुत किया जाने लगा : वस्तुओं को आशुलिपि (शार्ट हैंड) चित्रों के रूप में, इस तरह की प्रस्तुति को चित्रलिपि लेखन तथा प्रतीकों को चित्रलेख कहते हैं। इस तरह का सबसे पुराना चित्रलेख तेल अल-ओहिमिर (प्राचीन किश) में चूना पत्थर के एक छोटे फलक पर

मिला जो करीब 3500 ईसापूर्व का है। 3200 ईसापूर्व तक सुमेरिया के विभिन्न स्थानों पर मंदिरों में इस चित्रलिपि का उपयोग होने लगा था।

सुमेरियाइयों ने जो लिपि ईजाद की वह कीलाक्षर (cuneiform) लिपि के नाम से जानी जाती है। यह आशुलिपि चित्रों से विकसित हुई। चित्रलेख सरल और एक रूप बने। उन्हें मिट्टी के फलक पर किसी नुकीली चीज की मदद से छोटे त्रिकोणों या फान (wedge) की शक्ल में खोदा गया। हरेक प्रतीक फानों का एक समुच्चय होता था। शुरू में सिर्फ वस्तु प्रदर्शित की जाती थी। एक समय के बाद अन्य शब्दों के लिए भी प्रतीक बनाए गए।

उरूक काल के अंतिम दौर में सुमेरिया की अनेक बस्तियां शहरों में बदल गई थीं। गांवों के शहरों में रूपांतरण काल तक चलता रहा। करीब 3200–3100 ईसापूर्व तक दक्षिणी मेसोपोटामिया में अनेक शहरी केंद्र उभर आए। गोर्डन चाइल्ड इस परिघटना को 'शहरी क्रांति' बताते हैं।

II

शहरों का विकास महज जनसंख्या वृद्धि का एक सवाल नहीं था। बेशक, बुनियादी स्तर पर शहरीकरण का मतलब एक बड़ी आबादी का केंद्रीकरण होता है। संख्या की दृष्टि से अगर आबादी कम से कम 5000 लोगों की हो जाए तो शहर माना जा सकता है। लेकिन एक शहरी केंद्र महज ज्यादा बड़ा गांव नहीं होता (कभी-कभी आबादी बढ़ने से सिर्फ ग्रामीण इकाइयों में इजाफा होता है अर्थात ग्रामीण बस्तियों की संख्या बढ़ती है)।

शहरीकरण का मतलब है किसी खास बस्ती में विविध आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी और बड़े हद तक परस्पर निर्भर एक अच्छी-खासी आबादी का केंद्रीकरण। शहरी केंद्रों का एक प्रमुख लक्षण है एक तरफ व्यापक विशेषज्ञता तथा श्रम विभाजन और दूसरी तरफ आत्मनिर्भरता की कमी। शहरों का सामाजिक और आर्थिक संगठन जटिल होता है। वहां के नियमन एवं नियंत्रण की एक व्यापक राजनीतिक व्यवस्था भी होती है, विवादों को निबटाने के लिए प्राधिकारों के ढांचे भी होते हैं। उसके अलावा शहरों में कुछ बड़ी इमारतें होती हैं जिनका कुछ विशिष्ट काम होता है।

गोर्डन चाइल्ड कहते हैं कि नवपाषाणी काल के अंत में शहरी केंद्रों में वृद्धि अन्य विकासों के साथ-साथ हुई जिनका दीर्घकालिक ऐतिहासिक महत्व है : (1) नजराना या कर उगाहने के कारण पूंजी का केंद्रीकृत संचय; (2) बृहदाकार लोक-निर्माण; (3) लेखन का आविष्कार; (4) यथार्थ एवं भविष्यवाची विज्ञान की दिशा में प्रगति; (5) शिल्पकारी में पूर्णकालिक दक्षता के लिए आबादी के एक हिस्सा को खाद्य उत्पादन की

जिम्मेदारियों से मुक्ति; (6) पारिवारिक रिश्तों पर आधारित समाज की जगह पर क्षेत्रीय आधार पर राजनीतिक रूप से संगठित समाज-राज्य का उद्‌भव; और (7) विलास वस्तुओं की लंबी दूरी के व्यापार का उद्‌भव एवं विकास।

इस विकासक्रम के परिप्रेक्ष्य में शहरों के उद्‌भव को देखने पर ही हम 'शहरी क्रांति' के महत्व को आत्मसात कर सकते हैं। चाइल्ड धातुकर्म के विकास पर विशेष जोर देते हैं। उन्होंने शहरीकरण, धातुकर्म और कांस्य युग सभ्यता के उद्‌भव के बीच एक संबंध स्थापित किया है।

हम देख चुके हैं कि धातु के उत्पादन और इस्तेमाल के लिए धातु विशेषज्ञ की उपस्थिति जरूरी है। समाज के उन विशेषज्ञों को भोजन मुहैया कराने तथा उनकी अन्य बुनियादी जरूरतें पूरी करने में सक्षम होना चाहिए। धातु का उपयोग तभी व्यापक हो सकता है जब विशेषज्ञों के एक समूह के लिए खाद्य उत्पादन से स्थायी तौर पर हटना संभव हो जाए। यह धातु विशेषज्ञों को पूरी तरह से धातु के उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ने की स्थिति बनाएगा। लेकिन इस तरह की किसी स्थिति के निर्माण के लिए*समाज को नियमित रूप से खाद्य उत्पादकों की आवश्यकता से काफी ज्यादा खाद्य का उत्पादन करने में समर्थ होना चाहिए।* तभी यह अधिशेष खाद्य विशेषज्ञों का भरण पोषण कर सकेगा।

दक्षिणी मेसोपोटामिया में एक अतिरिक्त समस्या यह थी कि वहां तांबा का भंडार नहीं था। तांबा बाहर से मंगवाना पड़ता था। सुमेरिया में तांबा मुख्यत: ईरान और अनातोलिया से आता है। दरअसल सुमेरिया में लकड़ी और पत्थर की भी कमी थी। नतीजन सुमेरियाइयों को धातु और अन्य कच्चे मालों के लिए दूसरे क्षेत्रों के साथ होने वाले व्यापार के संजाल पर निर्भर रहना पड़ता था। इस व्यापार के क्रम में जरूरी कच्चे मालों के साथ सुमेरिया के अधिशेष उत्पाद का विनिमय किया जाता था। यहां व्यापार चलाने के लिए कुशल व्यापारियों का एक समूह तैयार हो गया था।

अधिशेष खाद्य के नियमित उत्पादन और पुनर्वितरण के लिए किसी उपयुक्त प्रणाली का होना जरूरी था। अधिशेष खाद्य का भंडारण करना पड़ता था और उसका इस्तेमाल व्यापार में तथा कारीगरों एवं व्यापारियों के भरण-पोषण में करना पड़ता था। गोर्डन चाइल्ड कहते हैं कि नवपाषाणकाल में भी दक्षिणी मेसोपोटामिया में अधिशेष खाद्य के उत्पादन की संभावनाएं थीं। लेकिन शायद किसान अपनी फौरी जरूरतों से ज्यादा खाद्यान्न का उत्पादन करने को उत्सुक नहीं होंगे। अधिशेष उत्पादन के लिए ज्यादा श्रम की जरूरत पड़ती है। जब लोगों की फौरी जरूरतें पूरी हो जाती हों, तब वे क्यों लगातार अतिरिक्त उत्पादन करते रहेंगे। अधिशेष के उत्पादन की प्रौद्योगीगत एवं भौगोलिक संभावनाओं का कतई मतलब नहीं है कि उनसे अनिवार्यत: अधिशेष खाद्य का नियमित उत्पादन ही हो। स्थायी रूप से अधिशेष ख़ाद्य के उत्पादन के प्रति किसानों को प्रेरित करने के लिए कुछ तरह की बाध्यताओं का होना भी जरूरी है। यह ऐतिहासिक स्थिति, जिस पर हम

अगले अध्याय में चर्चा करेंगे, राज्य के गठन और एक उत्पीड़क प्रणाली के निर्माण के साथ-साथ वजूद में आई।

अधिशेष खाद्य के उत्पादन ने एक नई प्रक्रिया को जन्म दिया। अधिशेष के व्यवस्थित दोहन ने गैर बराबर तरीके से उसके पुनर्वितरण की स्थितियां सृजित कीं। समाज के कुछ समूह अधिशेष के निस्बतन ज्यादा हिस्से पर कब्जा जमाने में कामयाब रहे। यह हिस्सा उस योगदान से कहीं बहुत ज्यादा था जो उन समूहों (सरदारों, पुजारियों, योद्धाओं) ने समाज को दिया था। दूसरी तरफ ऐसे समूह थे जिन्हें उनके न्यायोचित हिस्से से वंचित रखा। इसने *वर्गों* में समाज के विभाजन की शुरुआत की : लोगों का एक वर्ग जिसने वास्तव में उत्पादन किया (किसान, कारीगर, दास); और एक वर्ग जिसने अधिशेष का ज्यादातर हड़प लिया और जिसके पास राजनीतिक और आर्थिक सत्ता थी।

वर्ग-समाज का विकास शहरी क्रांति का एक अन्य लक्षण है। शहरों के विकास के संदर्भ में हमने जिस श्रम विभाजन की चर्चा की थी वह महज क्रियागत नहीं था बल्कि उसमें वर्ग के आधार पर समाज में गहराता स्तरीकरण भी परिलक्षित हो रहा था। राज्य के निर्माण को भी वर्गीय विभाजन की पृष्ठभूमि में देखना चाहिए। राज्य प्राथमिक रूप से उस वर्ग के प्रभुत्व को जारी रखने का एक औजार था जिसने अपने हिस्से से बहुत ज्यादा अतिरिक्त पर कब्जा कर लिया था। राज्य अन्य भूमिकाएं भी निभा रहा था मसलन टकरावों को नियंत्रण में रखना, सुरक्षा प्रदान करना, व्यापार को बढ़ावा देना और कृषि को संगठित करना। सुमेरिया में राज्य के निर्माण में मंदिर का एक प्रमुख स्थान था लेकिन राज्य-निर्माण के इस तरीके को हमें सार्विक पैटर्न नहीं मानना चाहिए। अन्य समाजों में राज्य-निर्माण अलग-अलग तरीके से हुआ (हम बाद के अध्यायों में मिस्र, यूनान और रोम की चर्चा करेंगे)। लेकिन राज्य की बुनियादी विशेषताएं कमोबेश समान रहीं।

चाइल्ड के मुताबिक शहरीकरण कोई अलग-थलग घटना नहीं थी। वह प्रौद्योगिकी में प्रगति, धातुकर्म, अधिशेष-उत्पादन, वर्ग-विभाजन, और राज्य-निर्माण से गहराई से जुड़ी थी। लेखन के ईजाद के साथ मिलकर इन तमाम तत्वों ने शहरी क्रांति को संघटित किया। शहरी क्रांति मानव को *सभ्यता* की ओर ले गई। सभ्यता मानव की सामाजिक उत्पत्ति की एक निश्चित अवस्था है। यह पहले के चरणों से यानी शिकारी खाद्य संग्रह वाला चरण जिसे जंगलीपन की संज्ञा दी जाती है और वह नवपाषाणी खाद्योत्पादन का चरण जहां अधिशेष उत्पाद का समुचित विकास नहीं हो सका था, बर्बरता से भिन्न था। शहरीकरण, अधिशेष का उत्पादन, जटिल सामाजिक व्यवस्थाएं, श्रम विभाजन, राज्य का अस्तित्व, संगठित धर्म, धातु का इस्तेमाल, लेखन का और यथार्थ विज्ञान का विकास सभ्यता के कुछ लक्षण हैं।

कुछ विशेषज्ञ, मसलन राबर्ट एडम्स कुछ हद तक गोर्डन चाइल्ड की आलोचना करते हैं क्योंकि उनको लगता है कि चाइल्ड सभ्यता की एक खास विशेषता, शहर पर

अत्यधिक जोर देते हैं। दूसरे, अमरीका जैसी कुछ सभ्यताओं में धातु का इस्तेमाल नहीं हुआ और वहां कोई लिखित लिपि भी नहीं थी। उसके अलावा एडम्स का कहना है कि प्रौद्योगिकी (धातुकर्म) के बजाए सामाजिक संगठन में तब्दीली जैसे कारक सभ्यता के उद्भव के लिए प्राथमिक रूप से जिम्मेदार हैं। फिर भी अधिशेष उत्पादन की भूमिका के संबंध में चाइल्ड की परिकल्पना व्यापक रूप से स्वीकार की गई है।

अब इस बिंदु पर हमें अपना ध्यान अवश्य ही उन तब्दीलियों में से कुछ पर केंद्रित करना चाहिए जो सामाजिक संगठन में हो रही थीं। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा, बहिर्विवाह कुल (exogamous clan) नवपाषाणी समाजों की प्रधान सामाजिक इकाई बन गई थी। कुल विनिमय के रिश्तों के आधार पर एक-दूसरे से जुड़े थे। विवाह के लिए वर अथवा वधू और वस्तुओं की अदला-बदली होती थी। इन रिश्तों ने उनके बीच सहयोग बढ़ाया। किसी खास इलाके में रहने वाले कुल सामान्यतः कुछ खास समूह वर एवं वधु की अदला-बदली करते थे। यह समूह अकसर एक कबीला की शक्ल का होता था। कबीलों में सामाजिक और आर्थिक साझेदारी होती थी। उनकी साझी आस्था, संस्कृति एवं भाषा थी। जैसे-जैसे कबीलों का विकास हुआ, कबीले के *बाहर* विवाह करने पर रोक लगी। जिन सामाजिक समूहों में यह नियम-कायदा था कि उसके सदस्य समूह के बाहर शादी नहीं कर सकते, उन्हें अंतर्विवाह समूह कहते हैं। इस तरह कबीले अंतर्विवाह पर आधारित थे जबकि कुल बहिर्विवाह पर आधारित था। कुलों के सदस्य अपने कुल से बाहर (बहिर्विवाह) लेकिन कबीले के भीतर (अंतर्विवाह) विवाह करते थे। कुल को यहां वंश समूह के रूप में देखा जा सकता है जो कबीले की एक उपइकाई है।

जब कबीले स्थिर और स्थायी सामाजिक इकाई में बदले तो उनके लिए समान पूर्वज में अपनी उत्पत्ति खोजना स्वाभाविक था। सामान्यतः यह एक मिथकीय पूर्वज होता था जिसे किसी चिह्न या गणचिह्न में अभिव्यक्त किया जाता था। गणचिह्न (totem) जानवरों या वनस्पतियों जैसी कुछ प्राकृतिक वस्तुओं के रूप में प्रतीक होता था जिससे कबीले अपनी शिनाख्त करते थे। उसे पवित्र समझा जाता था और समूचे कबीला का जनक माना जाता था। गणचिह्न पर आधारित इस तरह का संगठन कबीला की उपइकाइयों को आंतरिक स्तर पर और साथ ही बाहरी तत्वों के परिप्रेक्ष्य में एकताबद्ध होने में मदद करता था।

एक बार जब कोई कबीला किसी स्थान पर कुछ समय तक टिक जाता था तो वह खुद को उस क्षेत्र से जोड़ लेता था। यहां यह दोहराया जा सकता है कि यह कृषि में संक्रमण था जिसने स्थिर जीवन के लिए स्थितियां सृजित कीं। स्थिर जीवन ने अगल-बगल में बसे सामाजिक समूहों को एक-दूसरे के साथ सहयोग के संबंधों में बंधने के लिए प्रेरित किया। उससे न सिर्फ सामाजिक संगठन और जटिल हुआ, बल्कि कुल और कबीलों की प्रकृति भी बदली। वे क्षेत्रीय इकाइयों में रूपांतरित होने लगे।

नवपाषाण काल के अधिकांश समय में कुल या कबीला का क्षेत्र समूचे समूह की सार्वजनिक संपत्ति था। भूमि पर साझी मिल्कियत थी। प्राकृतिक संसाधनों और जलापूर्ति का नियंत्रण एवं प्रबंधन मिलजुलकर किया जाता था। जमीन पर कोई विशेष अधिकार नहीं था। अगर जमीन की उर्वरता में फर्क होता तो कुल/कबीले के सदस्यों को बदल-बदल कर दी जाती। चूंकि दक्षिणी मेसोपोटामिया में पर्याप्त चारा नहीं था, पशुपालन केंद्रित रूप से करना पड़ा। अगर कोई अतिरिक्त उपज होती तो वह समूह में बांट ली जाती थी। क्षेत्र की रक्षा पूरे समूह का दायित्व था। जब अगल-बगल के क्षेत्रों पर हमला किया जाता था तो लूट का माल बराबर-बराबर बांटा जाता।

अधिशेष के नियमित उत्पादन और उसका गैर बराबर बंटवारा के कारण समुदाय में ज्यादा समय तक समतामूलक संबंध बरकरार रखना संभव नहीं रहा। कुल/कबीले वर्गों में टूट गए। श्रेणीबद्ध ढांचे उभरे जिसने सामूहिक मिल्कियत को चोट पहुंचाई। संपत्ति की निजी मिल्कियत की अवधारणा अस्तित्व में आई। इस तरह नवपाषाण से कांस्य युग में संक्रमण का काल कुल या कबीला संगठन से वर्ग आधारित समाज में संक्रमण का भी काल था। बेशक कुल और कबीले अभी हाल तक टिके थे और भले ही उनकी विशेषताओं में खासा बदलाव आ गया था, वे विवाह और कर्मकांडों में महत्वपूर्ण बने हुए हैं।

III

हम पहले ही देख चुके हैं कि दक्षिणी मेसोपोटामिया की उपज की क्षमताओं का इस्तेमाल करने के लिए कृत्रिम सिंचाई एक पूर्वशर्त थी। मंदिर ने उस क्षेत्र में सिंचाई संगठित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राबर्ट एडम्स के शब्दों में, 'सिंचाई के पानी का आवंटन मंदिर के अधिकारियों के हाथों में था...और मंदिर देखरेख के काम के लिए आवश्यक श्रमशक्ति को प्रत्यक्षत: संगठित करते थे।' इन परिस्थितियों ने मंदिर का प्राधिकार मजबूत किया। मंदिर अपने प्राधिकार का इस्तेमाल अधिशेष उपजाने के लिए किसानों पर दबाव डालने में कर सका। दबाव डालने का हमेशा मतलब बल प्रयोग करना नहीं होता है। लोगों को देवी-देवताओं की नाराजगी का डर दिखा कर अधिशेष उपजाने के लिए बाध्य किया गया होगा। अगर देवी-देवता नाराज हुए तो फसल खराब हो जाएगी। यहां यह बात दिमाग में रखनी चाहिए कि कृषि में विकास होने के बावजूद उपज अब भी बेहद अनिश्चितता और परेशानियों का मामला बनी हुई थी।

विभिन्न मिथकों, किंवदंतियों तथा पौराणिक कथाओं और कर्मकांडों के माध्यम से लोगों के बीच एक मूल्य-व्यवस्था स्थापित की गई जो देवी-देवताओं की खुशी और समुदाय की बेहतरी एवं कल्याण के लिए प्रचुर मात्रा में अनाज के उत्पादन की आवश्यकता

पर जोर देती थी। उपज का एक हिस्सा देवी-देवताओं की भेंट के रूप में वसूल किया जाता था। इस भेंट का उद्देश्य देवी-देवताओं को खुश करना था। इससे जुड़े कर्मकांड उसी समय के हैं जब खाद्य उत्पादन शुरू ही हुआ था। मंदिर अब अधिशेष उपज की वसूली, भंडारण और पुनर्वितरण का बिंदु बन गया। कहना न होगा कि दबाव के पीछे बल का प्रयोग और यह धमकी होती थी कि अगर प्रतिरोध किया गया तो बल का प्रयोग होगा।

अधिशेष उपज के भंडारण और पुनर्वितरण में मंदिर की भूमिका के कारण सुमेरियाई पुजारियों की पकड़ अधिशेष उपज के एक काफी बड़े हिस्से तक थी। वे भारी मात्रा में मिले उपज के इस हिस्से का इस्तेमाल अपनी स्थिति और भी सुदृढ़ करने में करते थे। उसका एक हिस्सा योद्धाओं पर खर्च किया जाता था। योद्धा क्षेत्र की रक्षा करते थे और पड़ोसी क्षेत्रों पर हमला करते थे। वे किसानों और कारीगरों पर दबाव डालने में पुजारियों को सशस्त्र सहयोग देते थे। जब से दक्षिणी मेसोपोटामिया में लोग बस्तियां बनाकर रहने लगे, मंदिर उस क्षेत्र के समुदायों का केंद्र रहा। यह पुरातात्विक रिकार्ड से दरशाया गया है। अल-उबैद काल में एरिडू का विशाल मंदिर वजूद में आया। वह एक ऊंचे मंच (platform) पर खड़ी उस इलाके की सर्वाधिक प्रमुख इमारत थी। उरूक का मंदिर भी आलीशान था। उसे एक ही स्थान पर बार-बार (कम से कम छह बार) बनाया गया। उरूक दौर के अंत में मंदिर 245 फुट लंबा और 100 फुट चौड़ा था और उसकी ऊंचाई 35 फुट से ज्यादा थी। उकैर के मंदिर का निर्माण तीन बार हुआ। ये विशाल मंदिर सीढ़ीदार पिरामिड की शक्ल के बनाए गए थे। उसकी ऊंची-ऊंची सीढ़ियों से मंदिर के ऊपर तक पहुंचा जा सकता है। उन्हें जिग्गुरात (या जिक्कुरात) कहा जाता है। यह शब्द *जकारू* से निकला है जिसका अर्थ होता है 'ऊंचा बनना'।

उरूक में मुख्य जिग्गुरात था ई-अन्ना परिसर। वहां देवी इनाना (नीचे हम उसकी चर्चा करेंगे) की पूजा होती थी। ई-अन्ना परिसर महज पूजा और कर्मकांड का स्थल नहीं था। उसमें गोदाम, कारखाने और कारीगरों के बड़े-बड़े निवास शामिल थे। गोदाम अनाजों के केंद्रीकृत भंडारण के लिए था। अनाज का इस्तेमाल कारीगरों को भोजन मुहैया कराने में होता था। ये कारीगर मंदिर के कारखानों में धातु के सामान, मृद्भांड और कपड़ा तैयार करते थे। अधिशेष का इस्तेमाल कच्चा माल खासकर तांबा जुटाने में भी किया जाता था। समुदायों की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन जिस तरह मंदिरों की धूरी पर घूमता था उसे देखकर गोर्डन चाइल्ड ने उन समुदायों को 'मंदिर परिवार' (temple households) बताया।

मंदिर केंद्रक था जिसके इर्द-गिर्द शहर विकसित हुए। जामदात नस्र संस्कृति के कई शहर जैसे उरूक, उर, जामदात नस्र, किश, उकैर वगैरह मेसोपोटामिया के बिलकुल दक्षिणी छोर पर केंद्रित थे। यह वह समय था जब उस क्षेत्र में नगर-राज्यों का निर्माण हो

रहा था। इन नगर-राज्यों में एक बड़ा शहर और उसके इर्द-गिर्द ग्रामीण अंचल थे। ये नगर-राज्य ऐसे बिंदुओं पर स्थित थे जहां पर्याप्त जल संसाधन मौजूद थे। अनेक शहर किलाबंद थे।

अतिरिक्त उपज, सिंचाई और विविध प्रकार की आर्थिक गतिविधियों पर मंदिरों के नियंत्रण से पुजारियों को राजनीतिक शक्ति अपने हाथों में केंद्रित करने में मदद मिली। उसके अतिरिक्त कर्मकांड विशेषज्ञ के रूप में पुजारियों को समाज में एक अहम रुतबा हासिल था। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि सुमेरिया राज्य का निर्माण मंदिरों की बढ़ती राजनीतिक शक्ति में परिलक्षित हुआ। राज्य का गठन करने वाले विभिन्न तत्व (बंधुत्व, सेना, विधि, नौकरशाही, राजनीतिक निकाय, इत्यादि) मंदिरों से जुड़े थे। शुरुआती कांस्य युग में मेसोपोटामिया में मंदिर राज्य था। अन्ना श्नाइडर ने उसे 'मंदिर राज्य' बताया है।

करीब 3100 ईसापूर्व से सुमेरिया के नगर-राज्यों पर ऐसे सरदारों या राजाओं ने राज किया जो पुजारी भी थे। राजत्व पुजारियों के कामकाज से जुड़ा था। इस चरण में पुरातात्विक साक्ष्यों का समर्थन साहित्यिक स्रोतों से किया जा सकता है। जामदात नस्र संस्कृति के बाद के काल के लिखित दस्तावेज कीलाक्षर लिपि में उपलब्ध हैं। तब तक कीलाक्षर लिपि व्यवस्थित की जा चुकी थी। संकेतों का इस्तेमाल न सिर्फ वस्तुओं बल्कि वाक् ध्वनियों (speech sounds) के लिए भी किया जाने लगा था। जामदात नस्र में लिपि चित्रलिपि से आंशिक ध्वनीय फोनेटिक में विकसित हो गई थी। इसका मतलब है कि कुछ संकेत वाक् ध्वनियों के रूप में थे। अर्थात उनका एक ध्वनि-मूल्य (phonetic value) था। इस सुधार के बगैर व्याकरण के विभिन्न हिस्सों को रेखांकित करना कठिन होता।

लिखित साक्ष्यों की मदद से हम राजनीतिक इतिहास का कुछ ब्योरा तैयार कर सकते हैं। यह हमारी खुशकिस्मती है कि हमारे पास विस्तृत राजसूचियां हैं जो हमें प्राचीन मेसोपोटामिया के प्रमुख राजवंशों की जानकारी देती हैं। ये राजसूचियां हमें वहां के राजनीतिक घटनाक्रम का तारीखवार ब्योरा तैयार करने में मदद करती हैं। एक अन्य उपयोगी स्रोत गिलगमेश का महाकाव्य है। इस महाकाव्य का नायक गिलगमेश उरूक का शासक था। बहादुरी के ओत-प्रोत उसकी युद्धगाथा के संबंध में अनेक किंवदंतियां हैं। उन किंवदंतियों में गिलगमेश को आधा मानव और आधा अलौकिक दरशाया गया है। करीब 2000 ईसापूर्व में ये किंवदंतियां एक लंबी कविता के रूप में संकलित की गईं जिसे 'गिलगमेश महाकाव्य' के बतौर जाना जाता है। यह महाकाव्य अपनी किस्म की प्राचीनतम साहित्यिक कृति है और मेसोपोटामियाई साहित्य का एक अद्‌भुत नमूना है। यह कमोवेश अपने पूर्ण रूप में हमें हासिल हुआ है। उसका जबर्दस्त साहित्यिक महत्व है। उसके अतिरिक्त उसमें समकालीन समाज एवं धर्म की व्यापक चर्चा है।

मेसोपोटामिया की कांस्ययुगीन सभ्यता की चर्चा के क्रम के करीब 5000 से 2350 ईसापूर्व के कालखंड को पूर्व राजवंश काल (early dynastic period) माना जाता है। इस काल के दौरान सुमेरिया के मुख्य नगर-राज्यों (उर, उरूक, किश, लगाश) ने उर्वर क्षेत्र पर प्रभुत्व हासिल करने के लिए संघर्ष किया। उनमें से अनेक टकराव जल पर अधिकार को लेकर हुए। युद्ध उस काल की एक नियमित चीज थी। पड़ोसी राज्यों पर हमला अधिशेष इकट्ठा करने का एक आसान तरीका था। सरदार या राजा युद्ध की अगुआई करते थे। युद्ध में सफलता से उनका कद और प्रतिष्ठा बढ़ती थी। नियमित युद्ध लड़ने के उद्देश्य से सैनिकों के एक वर्ग के उदय ने राज्य के निर्माण की प्रक्रिया तेज की। अब पूरा का पूरा कबीला युद्ध में हिस्सा नहीं लेता था और अगर हिस्सा लेता भी था तो सीमित रूप में। अब सेना का मुख्य आधार प्रशिक्षित, पेशेवर योद्धा थे। लिहाजा आबादी का अधिकांश अब सैन्य प्रशिक्षण से महरूम रहता था।

2600 ईसापूर्व के तुरंत बाद प्रथम राजवंश के तहत उर का नगर-राज्य कुछ समय के लिए प्रमुख शक्ति बना। बाद में अन्य नगरों ने अपना प्रभुत्व स्थापित करने की कोशिश की। यह स्थिति पूर्व राजवंश काल के अंत तक बनी रही। 2350 ईसापूर्व के लगभग एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना हुई। अक्काद अपेक्षाकृत एक पिछड़ा क्षेत्र था। वहां के राजा ने दक्षिणी मेसोपोटामिया (अक्काद और सुमेरिया) के लगभग समूचे इलाके को अपने शासन के अधीन कर लिया। राजा का नाम सरगोन (शर्रू-किन) था। अक्काद अब तक आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से सुमेरिया से पीछे थे। लेकिन ऐसा लगता है कि सरगोन ने एक जबर्दस्त सैन्य प्रणाली बनाई जिसने उसे इतना प्रभावी राजा बना दिया। नियमित सेना की जो प्राचीनतम ऐतिहासिक चर्चा मिलती है वह सरगोन के राज की है। सरगोन ने अपनी उपस्थिति में 5400 सैनिकों के रोटी खाने की चर्चा की है।

सरगोन के विजय अभियान ने दक्षिणी मेसोपोटामिया को पहली बार राजनीतिक रूप से एकीकृत किया। उसने अगादे में एक नई राजधानी स्थापित की। सरगोन के राज में राजा अर्ध दैवी हैसियत वाला एक शक्तिशाली सम्राट बन गया। राजशाही परंपराओं के सुदृढ़ होने से राजनीतिक सत्ता मंदिर से हटकर शाही महल में केंद्रित होने लगी।

यह कहा जा सकता है कि अक्कादवासी भाषाई रूप से सुमेरियाइयों से भिन्न थे। अक्कादियाई भाषा सामी भाषा (semitic) समूह के थे। यह सुमेरियाइयों की भाषा से बिलकुल अलग है। सरगोन के राज में सुमेरिया के विलय के बाद अक्कादवासियों ने अपनी भाषा के लिए कीलाक्षर लिपि अपना ली। अक्काद ने सुमेरियाई सभ्यता के अन्य तत्व भी आत्मसात किए।

सरगोन ने जिस राजवंश की नींव डाली, उसने तकरीबन दो सौ साल तक राज किया। लेकिन सरगोन ने जो क्षेत्र जीते थे, उसके उत्तराधिकारी उसे बरकरार नहीं रख सके। सुमेरियाई नगर-राज्यों को आसानी से स्थायी रूप से अधीन नहीं रखा जा सकता था।

करीब 2150 ईसापूर्व में उर नगर एक बार फिर प्रमुख शक्ति बना। इस बार उर के तीसरे राजवंश (2150-2000 ईसापूर्व) ने उसे प्रमुखता दिलाई। सर लियोनार्ड वुली ने 1920 और 1930 के दशक में जब तीसरे राजवंश के शासकों के शाही कब्रिस्तान की खुदाई की तो वहां से मिली वस्तुओं ने सनसनी फैला दी। शाही कब्रों से सोना, चांदी और कांस्य की बनी बेमिसाल वस्तुओं का एक विशाल खजाना निकला। उन वस्तुओं की कारीगरी अद्भुत है। शाही कब्रिस्तान की शानो-शौकत से सुमेरियाई सभ्यता की विलक्षण प्रतिभा झलकती है। साथ ही वह उर के शासक वर्गों के द्वारा जमा बेशुमार दौलत की ओर भी इशारा करती है।

करीब 2000 ईसापूर्व में उर के तीसरे राजवंश के पतन के बाद इसीन और लारसा के नगर-राज्यों ने सुमेरिया में महत्व ग्रहण कर लिया। लगभग उसी समय आज के बगदाद के निकट बेबीलोन शहर (बेबीलानी या 'देवताओं का द्वार') अक्काद में प्रमुखता ग्रहण कर रहा था। 1894 ईसापूर्व में सुमू-आबुम द्वारा स्थापित बेबीलोनियाई राजवंश ने अक्काद के हिस्सों पर प्रभाव बढ़ाया और बेबीलोन को एक प्रमुख शक्ति बना दी। इस राजवंश का छठा राजा प्रसिद्ध हम्मूराबी था जिसने 1792 ईसापूर्व 43 साल तक राज किया। हम्मूराबी ने दक्षिणी मेसोपोटामिया का अधिकतर हिस्सा जीत कर और उत्तरी मेसोपोटामिया (असीरिया) को अधीन कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित की। हम्मूराबी के शासन में बेबीलोन एक महान शहर बन गया । उसने इतनी प्रमुखता ग्रहण कर ली कि दक्षिणी मेसोपोटामिया उसके बाद से बेबीलोनिया कहलाने लगा। हम्मूराबी ने न्याय संहिता संकलित की जो उसका हमेशा याद रखे जाने वाला योगदान है। हम नीचे उस पर थोड़ी चर्चा करेंगे। हम्मूराबी के बाद सामसुइलूना (1749 ईसापूर्व-1712 ईसापूर्व) ने राज किया। उसने बेबीलोनियाई साम्राज्य में नए क्षेत्र जोड़े। बहरहाल सामसुइलूना के उत्तराधिकारियों के काल में बेबीलोनियाई शक्ति में ह्रास होने लगा और अंततः करीब 1600 ईसापूर्व में अनातोलिया के हित्तियों ने बेबीलोन पर कब्जा कर लिया।

IV

राबर्ट एडम्स ने कब्रिस्तानों के साक्ष्य की तरफ ध्यान आकर्षित कराया है। अल-उबैद काल तक लगभग कोई भेदभाव नहीं था। कब्रें एकसमान थीं और वहां से मिली वस्तुएं भी लगभग एक ही किस्म की हैं। पूर्व राजवंश काल की कब्रों में स्तरीकरण के संकेत मिलते हैं। कुछेक कब्रों में धातु खासकर तांबा की बनी वस्तुएं मिलीं। लेकिन ज्यादातर कब्रों ('गरीब कब्रों') से धातु की कोई वस्तु नहीं मिलती है। यह बात दिगाम में रखनी चाहिए कि उस समय धातु इतनी बेशकीमती थी कि उसे उसके मालिक के शव के साथ दफन नहीं किया जा सकता था। हालांकि हम एक कांस्य युग की बात करते हैं लेकिन

हरेक की हैसियत उस वक्त उसे रखने की नहीं थी। सिर्फ इतनी ही बात नहीं, धातु को हमेशा उसका रूप बदल कर इस्तेमाल किया जा सकता है। अगर उसे किसी मृत व्यक्ति के साथ दफन कर दिया जाता है तो उसे फिर से इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। इसलिए समाज के सिर्फ धनी हिस्सों के लिए धातु की वस्तुओं को मृतक के साथ दफन करना संभव था।

जब हम उर के तीसरे राजवंश की कब्रों तक पहुंचते हैं तो वहां वर्ग-विभाजन स्पष्ट दिखाई देता है। एक छोर पर शाही कब्रिस्तान है जहां कब्र में सोना के बने सामान और अन्य बेशकीमती वस्तुएं मिलीं। संबंधित राजा (या शाही परिवार के सदस्यों) से जुड़े निजी नौकर, गुलाम और यहां तक कि महल से जुड़े कर्मियों को मृतकों के साथ समारोहपूर्वक दफनाया जाता था। मिसाल के तौर पर एक कब्र में शाही अमले के करीब साठ शव हैं जिन्हें मृतक के साथ जिंदा दफना दिया गया था। शाही अंत्येष्टि शासकों की शक्ति और दैवी हैसियत दिखाने-जताने का अवसर होती थी।

कब्रों की एक दूसरी श्रेणी में कम कीमती वस्तुएं हैं। उनमें से ज्यादातर तांबा की बनी हैं। संभवत: वे अधिकारियों की कब्रें थीं। अंत में आम लोगों की कब्रें थीं जिनमें बमुश्किल कोई कीमती वस्तु थी। एडम्स के शब्दों में, 'यहां हम किसानों के अवशेष पाते हैं जो बमुश्किल किसी तरह जीवन-निर्वाह कर रहे थे। वे एक शहरी केंद्र से भौतिक रूप से जुड़े थे। लेकिन शहर की दौलत या तकनीकी प्रगति के कुछ ही प्रतीक उनसे जुड़े थे।' समकालीन दस्तावेजी साक्ष्य इस तसवीर की पुष्टि करते हैं। करीब 2000 ईसापूर्व तक मेसोपोटामिया के सामाजिक ढांचा में वर्ग विभाजन पूरी तरह जड़ जमा चुका था जो लिखित दस्तावेजों से और सबसे बढ़कर हम्मूराबी की कानून संहिता से विदित है।

प्राक् सारगोनी काल में मंदिरों के पुजारियों को सर्वोच्च सत्ता हासिल थी। वे प्रत्यक्षत: जीवन के हरेक क्षेत्र का नियंत्रण करते थे। मंदिरों की गतिविधियां लगातार व्यापक होती गईं। जैसा कि हम नोट कर चुके हैं, अन्ना श्नाइडर ने पूर्व राजवंशीय नगर-राज्यों के लिए 'मंदिर-राज्य' शब्द का इस्तेमाल किया था। लिखित दस्तावेजों के अनुसार बड़ी संख्या में लोग मंदिर की सेवा में बहाल थे। उनमें पंथकर्मी, कारीगर, मजदूर, अनिवार्य सार्वजनिक सेवा करने के लिए जिम्मेदार लोग और गुलाम शामिल थे। यह आकलन किया गया है कि उरूक के इनाना मंदिर के निर्माण के लिए कम से कम पांच साल तक 1500 पूर्णकालिक मजदूरों की जरूरत पड़ी होगी।

ज्यादातर नगरवासी मंदिर की सेवा से जुड़े माने जाते थे। देवी-देवताओं के नाम पर भेंट वसूली जाती थी। इस पर कुछ विवाद है कि वास्तव में जमीन का कितना हिस्सा मंदिर की मिल्कियत में था। शुरू में कम से कम सिद्धांत रूप से सारी जमीन मंदिर की थी। मंदिर समूचे समुदाय का प्रतीक था। एक कालखंड में कुछ जमीनें शासक परिवारों, शक्तिशाली सरदारों और समाज के अन्य प्रभुत्वशाली वर्गों की *निजी संपत्ति* बन गई।

तब भी मंदिर जमीन का सबसे बड़ा मालिक बना रहा। विशेषज्ञों की राय है कि कम से कम एक तिहाई सिंचित जमीन मंदिर की मिल्कियत में थी। इन जमीनों की जुताई मंदिरों के अधिकारियों की देख-रेख में किराएदार, बटाएदार, दैनिक मजदूर या गुलाम करते थे।

कांस्य युग के प्रारंभ में पुराने और ज्यादा समतामूलक सामाजिक संगठन के कुछ चिह्न बाकी थे जिनमें लोगों की व्यापक भागीदारी होती थी। उसे कुछ नगर-राज्यों में *उन्केन* जैसी संस्थाओं के वजूद में देखा जा सकता है। *उन्केन* का एक तरह से मतलब होता है सभा। अक्काद में शब्द है *पुहरूम*। उसका भी वही अर्थ होता है। संयोगवश अक्कादवासी *पुहरूम* शब्द का इस्तेमाल कसबा या नगर के अक्कादियाई शब्द (*अलूम*) के समानार्थी करते थे। यह हमें *उन्केन/पुहरूम* की संभावित उत्पत्ति का सुराग देता है। यह मूलत: शायद एक संस्था थी जिसमें नगरवासियों का सामूहिक प्रतिनिधित्व होता था। उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण काम युद्ध से जुड़े मुद्दों पर चर्चा करना था। शुरुआती राजवंश काल में *उन्केन/पुहरूम* एक सलाहकार निकाय था जिसमें असली शक्ति *शिबुतुम* कहे जाने वाले विशेष सलाहकारों के हाथों में थी जो स्पष्टत: प्रभावशाली परिवारों के मुखिया थे।

पुराने जमाने की यादगार बनी ये संस्थाएं पूर्व राजवंश काल में विकसित राजनीतिक ढांचे के लिए ज्यादा प्रासंगिक नहीं थीं। हम यकीन कर सकते हैं कि सरगोन, उर के तीसरे राजवंश के राजा और हम्मूराबी ने निरंकुश सम्राट के रूप में राज किया था। वुली उर के तीसरे राजवंश की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस राजवंश के राजाओं को 'उनके जीवनकाल में ही दैवी शक्ति-संपन्न मान लिया गया और मृत्यु के बाद भगवान के रूप में उनकी पूजा की जाने लगी।'

उर और किश के शासकों की औपचारिक उपाधि *लुगाल* थी जिसका सुमेरियाई भाषा में अर्थ होता है 'बड़ा आदमी'। यह व्यापक क्षेत्रों पर राज करने वाले राजाओं की एक आम शाही उपाधि बन गई। कुछ राजाओं की उपाधि *एन* थी। एन उपाधि का इस्तेमाल ज्यादातर पुजारी-राजाओं ने किया। साहित्यिक रूप से यह उपाधि 'नगर देवी का पति...' को दरशाता है। इस उपाधि में हम राजनीतिक सत्ता और पुजारी के काम-काज को एक-दूसरे से जुड़ते हुए देखते हैं। कुछ अन्य मामलों में शासक *एनसी* के रूप में जाना जाता था। उसका अनुवाद आमतौर पर 'नगर शासक' या 'राज्यपाल' के रूप में होता है। यह एक रुतबा प्रदर्शित करता है जो *लुगाल* से निम्न है। *एनसी* ज्यादातर छोटे क्षेत्रों के शासक थे जिन्होंने शायद किसी शक्तिशाली सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली होगी। *एनसी* उपाधि में *एन* शब्द शामिल है जो मंदिरों के साथ उनके अंतरंग संबंध दरशाता है। यह संबंध राजाओं की कुछ अन्य उपाधियों, मसलन, *सांगू* (मंदिर-प्रशासक) और *इशाक्कू* (देवता का जोतदार किसान) में भी अभिव्यक्त होता है। हम्मूराबी के राज में सत्ता पूरी तरह से सम्राट में केंद्रित थी। मंदिर के बजाए महल राजनीतिक प्राधिकार का केंद्र बन

गया। इससे पहले कि हम हम्मूराबी की कानून-संहिता और उससे उद्घाटित होने वाली सामाजिक संरचना की चर्चा करें, हम कांस्य युग के सुमेरियाई धर्म की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

हम एक एकल और एकीकृत आस्था के रूप में सुमेरियाई धर्म की चर्चा नहीं कर सकते। सुमेरिया के नगरों के अपने-अपने देवी-देवता थे। नगर के मुख्य देवता के लिए एक बड़ा मंदिर (जिक्कुरात) अर्पित था। इसी मंदिर में राजकीय धार्मिक समारोह आयोजित किए जाते थे। नगर और उसके इर्द-गिर्द के ग्रामीण अंचलों के समुदाय बड़े मंदिर से जुड़े देवता की ही प्रमुख रूप से उपासना करते थे। साथ ही विभिन्न इलाकों में छोटे उपासना स्थल भी थे। इन उपासना स्थलों के देवी-देवताओं की पूजा कुछ विशिष्ट समूह के लोग किया करते थे। वे या तो कुछ खास पेशों से जुड़े लोगों या फिर कुलों या कबीलों के देवी-देवता थे।

बहरहाल, दक्षिणी मेसोपोटामिया के निवासियों के कुछ साझे धार्मिक कर्मकांड और आस्थाएं थीं। सुमेरियाइयों ने कुछ साझी परंपराएं विकसित की थीं। उन परंपराओं का विकास एक सतत प्रक्रिया थी, एक ऐसी प्रक्रिया जो राजनीतिक एकीकरण और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का नतीजा थी। सुमेरिया के पुजारियों ने एक देवकुल...(Pantheon) सृजित करने के लिए मिथकों, कर्मकांडों और धार्मिक विचारों को इस प्रकार व्यवस्थित किया कि उसमें अनेक पंथ समाहित किए जा सकें। आत्मसात करने की प्रक्रिया से अनेक देवी-देवताओं को बड़े देवता के महज संबंधी, नौकर या कर्मियों में बदल दिया गया। राजकीय उपासना के विपरीत आमजन के स्तर पर छोटे देवी-देवताओं की पूजा आराधना जारी रही।

निप्पुर नगर एकताबद्ध सुमेरिया के धार्मिक केंद्र के रूप में उभरा। निप्पुर के पुस्तकालय से मिला धार्मिक ग्रंथों का विशाल जखीरा हमें सुमेरियाई धर्म, खासकर राजकीय पंथों के संबंध में अच्छी-खासी जानकारी देता है। इस तरह का जखीरा अस्सुर और निनेवे से भी मिला है। सुमेरिया के तीन सर्वप्रमुख देवता थे अन (या अनु), एनलिल और एनकी (या इआ)। कुछ अवसरों पर राजनीतिक बदलाव के साथ ही कुछ दूसरे देवताओं को आगे बढ़ाने की कोशिश होती। लेकिन ऐसी कोशिशें ज्यादा दिन नहीं टिकतीं। बेबीलोन के प्रमुखता ग्रहण करने के साथ प्रमुख नगर देवता मरदूक कुछ समय के लिए सर्वोच्च देवता के पद पर आसीन हो गया। लेकिन मरदूक को कभी सार्विक स्वीकृति नहीं मिली। उसकी उपासना बेबीलोन शहर तक सीमित रही। आमतौर पर अक्कादियाई देवताओं की तुलना में सुमेरियाई देवताओं की उपासना ज्यादा व्यापक स्तर पर होती थी। यहां तक कि अक्काद के राजनीतिक प्रभुत्व के काल तक में भी यही दस्तूर रहा।

अन ब्रह्मांड की सर्वोच्च शक्ति और सभी देवताओं से बड़ा था। वह आमतौर पर दुनियावी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता था और अलग-थलग रहता था। अन का मुख्य

मंदिर उरूक में था। एनलिल सुमेरियावासियों द्वारा पूजे जाने वाले देवताओं में सर्वप्रमुख था। एनलिल मूलत: निप्पुर का नगरदेवता था। एक धार्मिक केंद्र के रूप में निप्पुर के महत्व के पीछे यह अनेक कारणों में से एक था। एनलिल को मानवता का स्वामी और राजाओं का राजा माना जाता था। यह माना जाता था कि एनलिल ने धरती को आकाश से अलग किया था और विश्व सृजित किया था। उसे तूफान और बादलों की कड़क (thunder) से भी जोड़ा जाता था। राजा अपनी प्रार्थनाओं में उससे मिन्नतें मांगता था। एनकी का अर्थ होता है 'धरती का स्वामी'। सुमेरिया में धरती पानी के बगैर उपज नहीं दे सकती थी। इसलिए एनकी की शिनाख्त मीठे पानी के साथ जोड़कर की गई। उसकी पूजा मीठे पानी के देवता के रूप में की जाती थी।

हम देख चुके हैं कि उन देवताओं की विशेषताएं एक-दूसरे से मिलती-जुलती थीं। उनके बीच के फर्क हमेशा साफ नहीं रहते थे। ऐसी स्थिति में जबकि सुमेरियाई-देवकुल में तरह-तरह के पंथों को जगह देने का प्रयास चल रहा था, इस तरह की संभ्रांति अपरिहार्य थी।

करीब 3000-2000 ईसापूर्व के दौरान एक महत्वपूर्ण विकास रहा देवियों की संख्या में गिरावट। जैसे-जैसे कांस्य युग का विकास हुआ, देवियों से जुड़े पंथ एवं उपासनाएं पृष्ठभूमि में ढकेल दिए गए। जहां ज्यादातर पंथों का अंतत: खात्मा हो गया, कुछ पंथ देवकुल में इस तरह मिला लिए गए कि देवताओं की तुलना में देवियों की हैसियत हर तरह से निम्न रही। नवपाषाणकाल के दौरान मातृदेवी उपासना विद्यमान रही थी, लेकिन अब वह पूरी तरह से हाशिए पर चली गई। देवियों की स्थिति की यह गिरावट कांस्य युग के दौरान महिलाओं को निम्न स्तर पर ढकेले जाने का नतीजा था।

इस आम रुझान में एक अपवाद था। एक देवी के श्रद्धालुओं की तादाद बढ़ती रही। वह थी इनाना। हालांकि इनाना को समय-समय पर प्रमुख देवताओं की पत्नी... (consort) बनाने का सिलसिला चलता रहा, वह अनिवार्यता एक स्वतंत्र देवी थी। उसका अपना मंदिर था और एक विशिष्ट उपासना थी। इनाना पंथ की उत्पत्ति की तलाश हम उरूक में कर सकते हैं। जैसा कि हम नोट कर चुके हैं वहां उसके लिए एक बड़ा मंदिर अर्पित था। इनाना की पूजा संभवत: उरूक सभ्यता से भी पहले से हो रही थी। मातृदेवी के रूप में वह प्रजनन-क्षमता की प्रतीक थी। इनाना से जो प्रमुख त्योहार जुड़ा था वह था देवता दुमुजी के साथ उसके विवाह का वार्षिक समारोह। दुमुजी वनस्पति और मवेशी का देवता था। यह त्योहार अच्छी फसल के लिए मनाया जाता था। खजूर की खेती भी इनाना और दुमुजी के आनुष्ठानिक (ritual) विवाह से जुड़ी थी। यह इंगित करता है कि इनाना पंथ की उत्पत्ति उस समय हुई जब लोगों ने दक्षिणी मेसोपोटामिया में बसना शुरू किया था। खजूर तब उनके पोषाहार के लिए अत्यंत आवश्यक था। इनाना प्राथमिकत: एक सुमेरियाई देवी थी। जब अक्कादियाइयों ने सुमेरिया पर शासन स्थापित किया तो उन्होंने भी इनाना

की उपासना शुरू कर दी। अक्कादियाइयों ने इनाना को अपनी प्रेम की देवी इश्तार के साथ जोड़ा। बाद में इश्तार की पूजा पश्चिम एशिया, उत्तर अफ्रीका और दक्षिण यूरोप के दूसरे हिस्सों में फैल गई। इश्तार रोमन साम्राज्य तक कुछ अत्यंत लोकप्रिय देवियों में से एक बनी रही।

V

हम्मूराबी की कानून संहिता में मेसोपोटामियाई समाज को संचालित करने वाले तमाम कानूनों का समग्र और व्यवस्थित संकलन नहीं है और इन अर्थों में वह वास्तव में कोई कानूनी संहिता नहीं है। यह कानूनों का प्राचीनतम संकलन भी नहीं है। मेसोपोटामियाई राजाओं में कुछ महत्वपूर्ण कानूनों और फैसलों को दर्ज कराने की परंपरा थी। करीब 2350 ईसापूर्व में लगाश के राजा उरूकागिना के शासनकाल के दस्तावेजों में उस राजा के द्वारा बनाए गए कुछ कानून दर्ज हैं। उर के तीसरे राजवंश (करीब 2113–2095 ईसापूर्व) के संस्थापक उरनाम्नू और इसिन के लिपितिश्तार (करीब 1934–1924) के द्वारा तैयार कराई गई संहिताएं भी मिली हैं।

पारंपरिक कानून (customary law) कानूनी ढांचा का आधार था। शासक आमतौर पर अपने से पहले हुए राजाओं के कानूनों पर अमल करते थे। लेकिन समाज में आई तब्दीलियों ने नई स्थितियां सृजित कीं जिसके लिए मौजूदा कानूनों में संशोधन करना आवश्यक हो गया। कभी-कभी नए कानून भी सूत्रबद्ध करने पड़े। राजा फरमान जारी करते जिनमें संशोधनों की सूचना होती। वे अकसर शाही फैसले की प्रकृति के होते जिन्हें बाद में नमूने के बतौर इस्तेमाल किया जा सकता था। हम्मूराबी ने अपने शासनकाल के अंत में विभिन्न कानूनों का सम्यक संकलन करवाया। उनमें से अनेक का उद्देश्य ऐसी स्थितियों में न्यायाधीशों का मार्गनिर्देश करना था जब मौजूदा कानूनों से मदद नहीं मिलती।

हम्मूराबी ने लोगों को उन कानूनों से परिचित कराने के लिए उन्हें अभिलेख की शक्ल देकर अपने साम्राज्य में विभिन्न स्थानों पर रखवाया। अनेक अभिलेख मंदिर में रखे गए। ऐसा ही एक अभिलेख सिपार नगर में शमश के मंदिर में रखा गया था। उसे बाद में सूसा (ईरान के आधुनिक शहर शुश) ले जाया गया जहां 190 में उसकी खोज हुई। हम्मूराबी की संहिता की प्रतियों में सबसे ज्यादा शोहरत सूसा के अभिलेख को मिली है। उसमें विविध और व्यापक विषयों पर 282 कानून दर्ज हैं।

हमें यह याद रखना चाहिए कि हम्मूराबी की संहिता उस समय लिखी गई जब मेसोपोटामियाई समाज उल्लेखनीय हद तक रूपांतरित हो चुका था। उससे नए कानूनी प्रावधानों की जरूरत हो गई थी। लेकिन हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि हम्मूराबी की संहिता में संकलित तमाम कानून नए थे। उनमें से अनेक सदियों से इस्तेमाल में थे।

लेकिन बदले हालात के तहत यह जरूरी हो गया था कि उनकी नए सिरे से व्याख्या की जाए या स्पष्ट वक्तव्य दिया जाए ताकि भ्रम की कोई स्थिति नहीं हो। साथ ही, हम्मूराबी का राज बहुत बड़े क्षेत्र में फैला था। इसलिए उसने पूरे साम्राज्य के लिए समान कानूनी व्यवस्था की जरूरत महसूस की होगी।

हम्मूराबी की संहिता एक अत्यंत वर्ग-विभाजित समाज के वजूद की पुष्टि करती है। वह एक वर्ग समाज था जिसमें विभिन्न वर्गों के लिए संहिता के अलग-अलग प्रावधान थे। संहिता तीन मुख्य वर्गों *वारदू, मुशकेनू* और *अवेलू* को मान्यता देती थी। *वारदू* शब्द का इस्तेमाल गुलामों के लिए किया जाता था। हम्मूराबी के समय से मेसोपोटामिया में गुलामों की एक अच्छी-खासी आबादी थी। गुलाम मुख्यत: युद्धबंदी थे या फिर वे थे जिनको कर्ज अदायगी नहीं कर पाने के बाद गुलाम की हैसियत कबूल करनी पड़ी।

नियमित रूप से अधिशेष का उत्पादन करने की क्षमता गुलामी के प्रादुर्भाव की पहली पूर्व शर्त थी। किसी को उस वक्त तक गुलाम की हैसियत तक ढकेलना निरर्थक होगा जब तक कि वह अपनी जरूरत से ज्यादा उत्पादन नहीं कर सकता या कर सकती हो। गुलामी की प्रथा उसी समय संभव हुई जब समाज अधिशेष का उत्पादन कर सकने की अवस्था में पहुंच गया। युद्ध गुलामी की दूसरी पूर्वशर्त थी। युद्ध में जुटे समुदायों के पास दुश्मनों को पकड़ने और उन्हें गुलाम बनाने के लिए कुशल योद्धा और काफी सैन्य बल उपलब्ध था। गुलामी का मतलब था किसी व्यक्ति का मुकम्मल अमानवीयकरण। गुलामों के साथ किसी आदमी के जैसा नहीं बल्कि किसी वस्तु के जैसा बर्ताव किया जाता था। लोगों के किसी समूह से गुलामी की स्थायी कैद मनवाने के लिए काफी बड़े पैमाने पर बल तक समाज की पहुंच जरूरी थी। महिलाएं सबसे पहले गुलाम बनाई गईं। युद्ध में जीतने के बाद पराजित पुरुषों की हत्या करने और उसकी महिलाओं को गुलाम बनाने का एक आम प्रचलन था। सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त पुरुष गुलामों की निगरानी के लिए भारी फौज की जरूरत थी। बहुत बाद में जब समाज बहुत बड़े स्तर पर सैन्यबल जुटाने में सक्षम हुआ तो पुरुषों को भी गुलाम बनाया जाने लगा। करीब 2000 ईसापूर्व में मेसोपोटामिया में स्त्री-पुरुष दोनों तरह के गुलाम थे।

वारदू के शरीर पर पहचान के चिह्न बना दिए जाते थे। उसके कारण उनका भाग कर कहीं जाना मुश्किल हो गया था। उनके सिर मुड़े और दागे होते थे। हम्मूराबी की संहिता में किसी गुलाम को भागने में मदद करने की सजा मौत थी। गुलामों के मालिकों को अपने-अपने गुलामों पर पूरा अधिकार था। अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के गुलाम को नुकसान पहुंचाता था तो उसे उसकी वही सजा मिलती थी जो उसे किसी दूसरे व्यक्ति की संपत्ति को नुकसान पहुंचाने पर मिलती।

गुलामों का इस्तेमाल घर का काम और अन्य शारीरिक काम कराने के लिए होता था। अनेक महिला गुलाम कपड़ा बुनने में लगी थीं। मंदिरों और शाही परिवारों में बड़ी

संख्या में गुलाम काम करते थे। कुछ गुलाम खेती-बाड़ी में लगे थे। यह एक सीमित स्तर पर था क्योंकि व्यापक गुलामी मेसोपोटामियाई अर्थव्यवस्था का आधार नहीं थी। गोर्डन चाइल्ड कहते हैं : 'ऐसा बिलकुल नहीं लगता है कि गुलाम और कैदी लोक निर्माण में लगी श्रमशक्ति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थे।'

अवेलू समाज का सबसे ऊपरी हिस्सा था। लियोनार्ड वुली उसे कुलीन वर्ग मानते हैं। जार्जेस राउक्स ने उनकी चर्चा महज स्वतंत्र लोगों के रूप में की है। इगोर एम. डियाकोनोफ का मानना है कि *अवेलू* उच्चतम अधिकार संपन्न स्वतंत्र निवासी थे। दूसरे स्वतंत्र लोगों की तुलना में इस वर्ग की सामाजिक-आर्थिक हैसियत बेहतर थी। *अवेलू* में पुजारी, कुलीन, सेना के उच्चाधिकारी, योद्धा, लेखक (कीलाक्षर लिपि में लेखन में दक्ष) और बड़े किसान शामिल थे। शासक अभिजात्य *अवेलू* के बीच से लिए जाते थे।

अवेलू की श्रेष्ठ स्थिति को स्वतंत्र लोगों के एक अन्य समूह—*मुशकेनू* के परिप्रेक्ष्य में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। *मुशकेनू* को कुछ अधिकार प्राप्त नहीं थे। वे सार्वजनिक पदों पर आसीन नहीं हो सकते थे और आम तौर पर हथियार नहीं रख सकते थे। उनका संपत्ति का अधिकार सीमित था। वे भूस्वामी के बजाए पट्टेदार थे। मेसोपोटामिया के सामाजिक पायदान पर *मुशकेनू* अवेलू से बहुत नीचे थे। फिर भी *वारदू* के विपरीत वे स्वतंत्र थे। हालांकि आमतौर पर संहिता के कानून *अवेलू* और *मुशकेनू* दोनों पर समान ढंग से लागू थे, ज्यादातर मामलों में *अवेलू* को अपेक्षाकृत हल्की सजा दी जाती थी।

संहिता के लगभग एक चौथाई कानून विवाह और पारिवारिक संबंधों के नियमन से जुड़े हैं। सामाजिक संगठन में तब्दीलियों के लिए कानूनी ढांचा में गुंजाइश रखनी होती है। एक तरफ वर्गीय स्तरीकरण था तो दूसरी तरफ कुल या कबीलाई संगठन में बिखराव के कारण एक बुनियादी सामाजिक इकाई के रूप में परिवार महत्वपूर्ण होता जा रहा था। निजी संपत्ति के सामने आने से विरासत के कायदे-कानूनों की उचित ढंग से व्याख्या करना जरूरी हो गया था। अब कुल के बजाए परिवार संपत्ति पर नियंत्रण की प्रमुख इकाई बन गया। संपत्ति का उत्तराधिकार परिवार के दायरे तक सिमट गया।

इस क्रम में अत्यंत महत्व की एक संबंधित घटना कांस्य युग में महिलाओं का पराभव है। फ्रेड्रिक एंगेल्स ने अपनी कृति *परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति* में उसे 'नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक पराजय' करार दिया। शिकारी-संग्राहक समाजों और पूर्व-नवपाषाणी समाजों में स्त्री-पुरुषों के बीच थोड़ा श्रम-विभाजन था। मसलन पुरुष संभवत: शिकार करते होंगे जबकि खाद्य संग्रह करना मुख्यत: महिलाओं की जिम्मेदारी होगी। इस श्रम-विभाजन का एक कारण यह था कि महिलाएं प्रजनन प्रक्रिया और बच्चों की परवरिश में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। यह उनके लिए उचित नहीं होता होगा कि वे शिकार अभियान में बाहर जाएं खासकर उस समय जब अभियान कई दिनों का हो।

कृषि के विकास के साथ कृषक समुदाय बस्ती बसा कर रहने लगे जिससे एक

दूसरे के साथ सहयोग स्थापित हुआ। ये संबंध लेन-देन खासकर विवाह में वर और वधू पक्ष के आदान-प्रदान से सुदृढ़ हुआ होगा। हालांकि आदान-प्रदान वर और वधू दोनों पक्षों का होता होगा, विशेषज्ञों ने बताया है कि रुझान वधू पक्ष के आदान-प्रदान का होगा। महिलाएं बच्चे जनती हैं। इसलिए उन्हें आसानी से नए समूहों के साथ जोड़ा जा सकता था। उनकी प्रजनन क्रिया उन्हें नए समूह के साथ जोड़ देती थी और उसके प्रति उनकी वफादारी सुनिश्चित कर देती थी। दूसरी तरफ पुरुष के लिए अपना संबंध तोड़ देना और भाग निकलना आसान था। महिलाएं इस तरह पण्य या माल (commodity) बन गईं जिनका आदान-प्रदान बच्चा पैदा करने के उद्देश्य से किया जाता था। यह आदिम समाजों का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। बाद में युद्ध के विकास के साथ बच्चों के लिए महिलाओं को पकड़ने का सिलसिला शुरू किया।

एक बार 'वस्तु' में बदल जाने के बाद महिलाओं को बराबर का दर्जा नहीं मिला। समाज पुरुष प्रभुत्व (पितृसत्तात्मक) हो गया। वंशानुक्रम पुरुष की तरफ से जोड़ा जाने लगा, अर्थात वह पितृवंशिक (patrilineal) हो गया। पितृसत्तात्मकता के उदय ने लिंगों की समानता समाप्त कर दी। अतिरेक के उत्पादन, युद्ध, प्रजनन और श्रम के लिए गुलामी ने महिलाओं की अधीनता को और बढ़ा दिया। वर्ग-समाज में महिलाओं को संपत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया। परिवार का ढांचा पितृसत्तात्मक था। पति संपत्ति पर नियंत्रण रखता था और परिवार पर उसका हुक्म चलता था।

हम्मूराबी की संहिता ने पितृसत्तात्मक परिवार के ढांचे को मजबूत करना चाहा। पिता के प्रभुत्व को चुनौती नहीं दी जा सकती थी। अगर कोई पुत्र अपने पिता पर हाथ उठाता तो बाप को अपने बेटे का हाथ कलम करने का अधिकार था। कम से कम आम जन के बीच आम तौर पर एक विवाह की प्रथा थी। विवाह के समय दहेज की व्यवस्था होती थी। जब कोई महिला मर जाती तो उसका दहेज पुत्रों को मिलता था। तलाक का अधिकार सिर्फ पुरुषों के पास था। संहिता के मुताबिक तलाक का एक मान्य आधार यह था कि महिला ने 'बेवकूफी वाली हरकत से घर बर्बाद किया और पति को नीचा दिखाया।' तलाक का सबसे आम कारण था कि महिला लड़का जनने में नाकाम रही।

संहिता के कानूनों की एक श्रेणी अर्थव्यवस्था के संबंध में है। बंजर जमीन को आबाद करने के लिए किसान को तीन साल मिलते थे। पहले साल उसे कोई कर अदा नहीं करना पड़ता था । दूसरे साल उसे सामान्य कर का आधा अदा करना होता था। तीसरे साल उसे पूरा कर चुकाना होता था। कानून में स्पष्ट कर दिया गया था कि भूमि धारक को अपने खेतों से गुजरने वाली नहर के तटबंध की देखरेख करनी पड़ेगी। उसमें कोताही से आसपास के खेतों को नुकसान होने पर सजा का प्रावधान था। उसके अलावा ऐसे कानून थे जिनके तहत कुछ सेवाओं जैसे शल्य चिकित्सा के लिए कीमत अदा करने का प्रावधान था।

कुछ कानून हम्मूराबी के सैन्य संगठन पर प्रकाश डालते हैं। संहिता में *इलकुम* की

प्रणाली का जिक्र है। यह सैन्य सेवा में लोगों की भर्ती का तरीका था। *इलकुम* के तहत भूखंड का आवंटन होने पर लोग सेना में सेवा देने के लिए बाध्य थे। यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि इलकुम की कार्य प्रणाली क्या थी। लेकिन वह सैन्य सहयोग जुटाने में बहुत उपयोगी संस्था थी।

संहिता में जिन सजाओं का प्रावधान किया गया है वे 'आंख के बदले आंख और दांत के बदले दांत' के उसूल पर आधारित हैं। इस तरह अगर किसी निर्माता ने किसी *अवेलू* के लिए कोई मकान बनाया, और वह मकान गिर गया जिससे अवेलू की मृत्यु हो गई तो स्थापत्यविद को मौत की सजा दी जा सकती थी। कुछ विशेषज्ञों की राय है कि जरूरी नहीं था कि इस तरह की सजा हर मामले में दी ही जाती थी। मनमानेपन की भी काफी गुंजाइश थी। उसके अलावा यह सोचना गलत होगा कि इस उसूल को लागू कराने के लिए हम्मूराबी जिम्मेदार था। कई परंपरागत समाजों में रूढ़िबद्ध (customary) कानून सजा के समान उसूलों पर आधारित होते हैं।

हम्मूराबी की संहिता में शामिल कानूनों के समेत मेसोपोटामियाई कानूनों ने पश्चिम एशिया के अन्य समाजों की विधि प्रणाली पर अच्छा-खासा प्रभाव डाला। उनमें से अनेक कानून बाद में संशोधित किए गए और इस क्षेत्र के लोगों की सामाजिक स्थितियों के अनुरूप अपनाए गए।

अध्याय पांच

प्रारंभिक मिस्री सभ्यता

बीसवीं सदी की शुरुआत में सुमेरियाई सभ्यता की खोज होने से पहले मिस्री सभ्यता आम तौर पर प्राचीनतम सभ्यता मानी जाती थी। मिस्री सभ्यता एक अत्यंत लंबे समय तक बनी रही। मुख्यत: इसी कारण यह मान्यता बनी। मिस्री सभ्यता की अनेक विशेषताएं तकरीबन तीन हजार साल तक टिकी रहीं। प्राचीन यूनानियों और रोमनों ने जब वहां शासन किया तो उन्होंने अनेक मिस्री परंपराएं अपनाईं। यूनानी-रोमन इतिहासकारों ने मिस्री सभ्यता की पुरातनता की चर्चा की है। यहूदी, ईसाई और इसलामी धर्म ग्रंथ मिस्र और वहां के राजाओं (फैरोहों) की चर्चा से अटे पड़े हैं। सदियों से प्राचीन मिस्र के अतिविशाल अवशेष, मसलन पिरामिड लोगों की कल्पना पर गहरा छाप छोड़ रहे हैं। इस प्रकार मिस्री सभ्यता की स्मृति आधुनिक समय में भी ताजा बनी रही जब उसके इतिहास के व्यवस्थित अध्ययन की शुरुआत हुई।

हम पहले ही नोट कर चुके हैं कि मिस्र में नवपाषाण की शुरुआत अपेक्षाकृत देर से हुई। सभ्यता और शहरी क्रांति के लक्षण सुमेरिया की तुलना में मिस्र में बाद में उभरे। फिर भी मिस्र में नवपाषाण से शुरुआती सभ्यता में संक्रमण की प्रक्रिया खासे तेज रफ्तार से हुई और करीब 5000 साल पहले समूचा देश राजनीतिक रूप से एकीकृत हो गया। मिस्र की 'राजसूचियां' करीब 3100 ईसापूर्व की हैं। बदकिस्मती से सभ्यता में संक्रमण के अनेक पहलू कुछ हद तक धुंधले और अस्पष्ट बने हुए हैं क्योंकि उस काल के पुरातात्विक विवरण मेसोपोटामिया के समान व्यापक नहीं हैं।

मिस्र के इतिहास की बेहतर समझ के लिए वहां की भौगोलिक विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण उपयोगी होगा। मिस्र का ज्यादातर हिस्सा शुष्क और बंजर है जहां बहुत ही कम बारिश होती है। उसका पश्चिमी हिस्सा एक विशाल रेगिस्तान है जो सहारा से मिल जाता है। रेगिस्तान के इस भाग को पश्चिमी रेगिस्तान कहा जाता है। लाल सागर से लेकर नील नदी तक मिस्र का पूर्वी हिस्सा भी रेगिस्तान है। उस क्षेत्र में कुछ छोटी पहाड़ियां भी हैं। उसे पूर्वी रेगिस्तान कहते हैं। फिर भी यह मिस्र का सौभाग्य है कि वहां नील नदी बहती है। नील नदी दक्षिण से पूर्व तक मिस्र की पूरी लंबाई में बहती है। उसका पानी भूमध्य सागर में गिरता है। नील एक घाटी से होकर बहती है। कई जगहों पर यह घाटी करीब 25 किलोमीटर तक चौड़ी है। घाटी खड़ी चट्टानों और रेगिस्तान से घिरी है।

नील घाटी मिस्र का सर्वाधिक उर्वर क्षेत्र है। नील नदी में हर साल आने वाली बाढ़ इस शुष्क और बंजर देश में सिंचाई का नायाब अवसर देती है। नील नदी भूमध्यसागर में मिलने से पहले घाटी के उत्तरी छोर पर एक डेल्टा का निर्माण करती है। उत्तर का यह डेल्टा क्षेत्र आम तौर पर निम्न मिस्र कहलाता है। देश के दक्षिणी हिस्से को ऊपरी मिस्र कहते हैं। ऊपरी मिस्र में नील नदी चट्टानों बीच दरार से गुजरती है। इस तरह मिस्र को (1) पश्चिमी रेगिस्तान, (2) नील घाटी और (3) पूर्वी रेगिस्तान में बांटा जा सकता है। ऐतिहासिक काल में नील घाटी मुख्य क्षेत्र थी जहां आबादी केंद्रित थी। उसे दो हिस्सों में विभाजित किया जाता है : (1) डेल्टा या निम्न मिस्र, (2) ऊपरी मिस्र। मिस्र के दक्षिण के इलाकों को नूबिया कहते हैं।

I

पहले समझा जाता था कि मिस्री नवपाषाण का उद्भव नील नदी में हुआ है। लेकिन उसके विपरीत उसका विकास पश्चिमी रेगिस्तान में हुआ था। इसे मिस्र के पर्यावरणीय इतिहास (environmental history) के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। कार्ल बुत्जर की कृति (*अर्ली हाइड्रालिक सिविलाइजेशन इन इजिप्ट*) ने उनमें से कुछ तब्दीलियों पर प्रकाश डाला है जो पूर्व नूतनतम युग में उस क्षेत्र में घटी थी। शुरू में एक दौर था जब खूब वर्षा हुई। यह दौर करीब 9200 ईसापूर्व से 6000 ईसापूर्व चला। उसके बाद 5000 ईसापूर्व तक सूखा का एक दौर चला। कुछ और उतार-चढ़ाव के बीच वर्षा के कुछ और दौर रहे। फिर इसी क्रम में करीब 2400 ईसापूर्व में मौजूदा शुष्क परिस्थितियां स्थापित हुईं। यह संकेत देता है कि पूर्व नूतनतम युग में रेगिस्तान के कुछ हिस्से उतने शुष्क नहीं थे जितने वे बाद में हो गए। बाद में एफ. हस्सान जैसे विशेषज्ञों के अनुसंधानों ने दिखाया कि पूर्व नूतनतम युग में पश्चिमी रेगिस्तान में ज्यादा पानी था और उस दौरान नील नदी में खूब बाढ़ आती थी। घाटी में बाढ़ आते रहने से वहां रह रहे जनसमूह पश्चिमी रेगिस्तान की ओर चले गए। उन दिनों पश्चिमी रेगिस्तान में स्थितियां आज की अपेक्षा ज्यादा बेहतर थीं। वह शिकार एवं खाद्य संग्रह पर आधारित एक अर्थव्यवस्था का निर्वाह कर सकता था।

संभवत: पश्चिमी रेगिस्तान के शिकारी संग्राहक समुदायों ने जंगली अनाजों की खेती को लेकर कुछ तजुर्बे किए। साथ ही शायद उन्होंने कुछ जानवरों को पालतू बनाने का प्रयास किया। करीब 8000 बीपी तक उस क्षेत्र में जौ की बाकायदा खेती (छह पांत वाला जौ जिसके लिए दो पांत वाले जौ की अपेक्षा ज्यादा नमी चाहिए) होने के साक्ष्य मिले हैं। बाद में जब पश्चिमी रेगिस्तान ज्यादा शुष्क हुआ तो लोग नील घाटी की तरफ चले गए। हम अध्याय तीन में देख चुके हैं कि घाटी में बसे लोगों ने करीब 7000 बीपी

में कृषि की शुरुआत की। 7000 और 6500 बीपी के बीच निचले मिस्र में नवपाषाणी अर्थव्यवस्था विकसित हुई। निचले मिस्र में प्राचीनतम नवपाषाणी स्थल फायुम और मेरिमदे में मिले हैं। ऐसी मान्यता है कि उस क्षेत्र की नवपाषाणी संस्कृति शायद पश्चिम एशियाई संस्कृतियों से प्रभावित हुई हों। ऊपरी मिस्र में खाद्य उत्पादन की शुरुआत के बारे में अब भी नहीं जानते। हाल के पुरातात्विक साक्ष्यों के संकेतों के मुताबिक दक्षिण मिस्र में नवपाषाणी सभ्यता लगभग 6500 बीपी के बाद शुरू हुई।

फायुम और मेरिमदे में आरंभ की नवपाषाणी बस्तियों के बाद नील घाटी में सिलसिलेवार तीन नवपाषाणी संस्कृतियां उभरीं। उन संस्कृतियों के विकास के क्रम में लोग खेती के लिए नील नदी की बाढ़ का इस्तेमाल करने में अधिकाधिक सक्षम हुए। पुरातत्वविदों ने उन संस्कृतियों की शिनाख्त इस प्रकार की है: बदरी (Badarian), अम्राई (Amratian) (या नकदा-1) और गेरजेई (Gerzean) (या नगदा-2)। बदरी संस्कृति (बदरी स्थल पर नामित) करीब 4100-3600 ईसापूर्व के दौरान फली-फूली। उस दौरान नील से लगे इलाकों में अनेक नवपाषाणी गांव उभरे। ऐसा हो सकता है कि उन गांवों के वासी पश्चिमी रेगिस्तान से घाटी में आ गए लोगों के वंशज हों। बदरीवासियों ने जौ और गेहूं उपजाए। उन्होंने भेड़, बकरी और मवेशियों को पालतू बनाया। उस काल में मृद्भांड बनाए गए। हालांकि नील नदी की बाढ़ की प्राकृतिक सिंचाई पर आधारित कृषि तत्कालीन अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी, लोग अब भी खाद्य संग्रह और शिकार पर एक हद तक निर्भर थे।

तकरीबन 3800-3500 ईसापूर्व के बीच फली-फूली, अम्राई संस्कृति (अल-अम्रा पर नामित) बदरी संस्कृति से क़मोवेश मिलती-जुलती थी। इस दौरान नील नदी की बाढ़ का दोहन कृषि के उद्देश्य से ज्यादा व्यवस्थित रूप से होने लगा था। पूरी घाटी में नवपाषाणी बस्तियों की तादाद बढ़ी। ऐसे साक्ष्य भी हैं कि अम्राई संस्कृति ने तांबा का इस्तेमाल किया था।

गेरजेई संस्कृति (अल-गेरजे पर नामित) के दौरान मिस्रवासियों ने बाढ़ के पानी को नियंत्रित कर कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था की। नहरें खोदी गईं ताकि नील से कुछ दूरी पर स्थित खेतों को उसकी मदद से खींचा जा सके। इसने अधिशेष अनाज की उपज की स्थितियां सृजित कर दीं। नील घाटी की मिट्टी इतनी ज्यादा उर्वर है कि एक आकलन के अनुसार सामान्य स्थिति में एक कृषक परिवार कृषि की अपेक्षाकृत आदिम तकनीक का इस्तेमाल करने के बावजूद अपने जीवन निर्वाह की आवश्यकता से तीन गुना खाद्यान्न उपजा सकता है। यह हमें कुछ अंदाजा देगा कि मिस्र में किस हद तक अधिशेष खाद्यान्न उत्पादन करने की क्षमता थी। गेरजेई संस्कृति के अंत तक आबादी में एक उल्लेखनीय वृद्धि हो गई। कार्ल बुत्जर ने आकलन किया है कि 4000 से 3000 ईसापूर्व के बीच आबादी 3,50,000 से बढ़कर 8,70,000 पहुंच गई। गेरजेई संस्कृति के लोगों ने तांबे

की वस्तुएं बनाईं। उनके पास भट्टी थी जिसमें 1200 डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रम तक गर्मी पाई जा सकती थी। जैसा कि हम देखेंगे, यह वह दौर था जब प्रारंभिक मिस्री सभ्यता की नींव रखी गई।

गेरजेई संस्कृति की परिणति मिस्र के राजनीतिक एकीकरण में हुई। यह एक भारी ऐतिहासिक महत्व की घटना है। फिर भी उसकी प्रक्रिया अभी तक ठीक ढंग से समझी नहीं जा सकी है। करीब 3100 ईसापूर्व तक मिस्र शक्तिशाली राजशाही वाला एक एकीकृत देश बन चुका था। वहां नौकरशाही थी और साथ ही योद्धा और पुजारी भी थे। नील घाटी में अनेक प्रमुख शहरी केंद्र उभर गए थे। लिखने के लिए एक लिपि का इस्तेमाल होता था। मिस्री समाज एक वर्ग समाज बन चुका था और 'सभ्यता' की अनेक विशेषताएं ग्रहण कर चुका था जिनकी चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। सभ्यता में मिस्री समाज ने इतनी तेज रफ्तारी से प्रवेश किया कि कुछ विशेषज्ञों की राय है कि कुछ समूहों ने (संभवत: पश्चिम एशिया से) मिस्र में प्रवेश किया होगा और वहां नए विचार तथा नई तकनीक पहुंचाया होगा जिससे सभ्यता की ओर मिस्री समाज के संक्रमण की प्रक्रिया तेज हो गई होगी। लियोनार्ड वुली का कहना है कि मिस्री सभ्यता की कुछ विशेषताएं मसलन लेखन मेसोपोटामिया से संभवत: ली गई हैं।

जिन लोगों ने मिस्री सभ्यता के विकास में विदेशी प्रभावों की भूमिका को महत्व दिया उनमें डब्ल्यू.बी. एमरी (*आर्काएक इजिप्ट*) की चर्चा की जा सकती है। एमरी की दलील है कि पश्चिम एशिया के कुछ समूह लाल सागर के रास्ते दक्षिण मिस्र पहुंचे और अपने साथ वहां सुमेरियाई प्रभाव ले गए। एमरी के मुताबिक अभी यह ठीक-ठीक तय नहीं हो सका है कि मिस्र पहुंचने वाले ये बाहरी लोग कौन थे। लेकिन हम कुछ प्राचीन मिस्री मिथकों की व्याख्या कर सकते हैं जिनमें विदेशियों के साथ देशजों के टकराव का जिक्र है।

मिस्री पुराण कथाओं में देवता होरस को एक प्रमुख स्थान प्राप्त था। बाज के रूप में चित्रित होरस को मिस्र के राजाओं से अभिन्न समझा जाता था। होरस के साथ जो सबसे मशहूर कथा जुड़ी है वह अपने चाचा सेत के साथ संघर्ष की गाथा है। हम इस मिथक की चर्चा तफसील से करेंगे। फिलहाल इतना बताना काफी होगा कि माना जाता है कि सेत ने अपने भाई ओसिरिस की हत्या की थी। ओसिरिस होरस का पिता था। होरस ने सेत की हत्या कर अंतत: अपने पिता की मृत्यु का बदला ले लिया। एमरी इसमें विदेशियों (बाज के उपासक) और देशज आबादी (सेत के उपासकों) के बीच संघर्ष का प्रतिबिंब देखते हैं। वह कहते हैं कि मिस्र के अनेक हिस्सों में सेत की उपासना की एक बहुत ही पुरानी परंपरा थी। सेत (सुतेख) की उपासना लंबे अरसे तक बंजर रेगिस्तान के देवता के रूप में की जाती रही। दूसरी तरफ होरस की पूजा अपेक्षाकृत बाद की चीज

है। बहरहाल मिथक जिस तरह विकसित हुआ, उसमें सेत दुष्ट के रूप में पेश किया गया है। यह बाज के उपासकों की जीत का द्योतक है।

एक बड़ी संख्या में इतिहासकारों की राय में इसकी संभावना बहुत है कि मिस्री सभ्यता की जड़ें गेरजेई या नकदा—दो संस्कृति में हो। ग्लिन डैनियल नील नदी की जबर्दस्त क्षमताओं का जिक्र करते हैं जिसने सभ्यता के लिए संभावनाएं सृजित कीं। वह कहते हैं कि राजनीतिक एकीकरण से पहले के काल में मिस्र पहले से ही सभ्यता की ओर अग्रसर था और मेसोपोटामिया से आवेग पाए बगैर भी वहां पहुंच सकता था। बी.जी. ट्रिगर की भी कुछ ऐसी ही राय है। वह गेरजेई संस्कृति और प्रारंभिक सभ्यता के बीच की धारावाहिकता पर ध्यान देने पर जोर देते हैं। ट्रिगर बाहरी प्रभावों को पूरी तरह नहीं नकारते। लेकिन वह कहते हैं कि ऐसे साक्ष्य नहीं मिलते हैं कि बाहर से बड़े पैमाने पर लोगों का आगमन के कारण मिस्री सभ्यता अपने अंजाम तक पहुंची। वह खासतौर पर इस परिकल्पना की आलोचना करते हैं कि प्राचीन मिस्री और (पश्चिम एशियाई) सामी भाषाओं में जो समानताएं हैं वे मिस्र में बाहर से लोगों के आगमन के कारण हैं। उनके मुताबिक इसमें कोई असामान्य बात नहीं है क्योंकि दक्षिण पश्चिम एशिया और उत्तर अफ्रीका के एक बड़े भूभाग में बोली जाने वाली अनेक प्राचीन भाषाओं का साझा स्रोत है।

चाहे जो भी मामला हो, जैसा कि बुत्जर कहते हैं, बंजरीकरण की तेज होती प्रक्रिया के कारण नील घाटी चारों तरफ से रेगिस्तानों से (पश्चिमी रेगिस्तान, पूर्वी रेगिस्तान, नूबियाई रेगिस्तान) पूरी तरह घिर गई। पश्चिम एशिया, नूबिया और सहारा से उसका संपर्क खत्म हो गया। साथ ही घाटी की 'बंद' प्रकृति ने उसे ज्यादा समरूपता और संबद्धता दी जिससे ऊपरी और निचले मिस्र के एकीकरण में मदद मिली।

II

प्राचीन मिस्री इतिहास में 3100 ईसापूर्व राजवंश काल की शुरुआत को रेखांकित करता है। हम मानेथो के ऐतिहासिक विवरण से उस काल के राजनीतिक इतिहास की कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मानेथो (सिकंदर महान के आक्रमण के बाद) मिस्र पर यूनानी राज के दौर में रहने वाला एक पुजारी था। हमें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि मानेथो का 'मिस्र का इतिहास' मिस्र के एकीकरण के करीब 2800 साल बाद लिखा गया है। बहरहाल प्राचीन ग्रंथों के बारे में उसे जानकारी थी जिनको आधार बनाकर उसने अपना ग्रंथ तैयार किया था। आधुनिक इतिहासकारों ने प्राचीन मिस्र का कालक्रम तय करने में मानेथो के इतिहास को बड़ा उपयोगी पाया है। मानेथो की ढेर सारी बातों की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों और अन्य स्रोतों से हो गई है।

मानेथो ने मिस्र के एकीकरण से लेकर सिकंदर की जीत तक वहां राज करने वाले

31 राजवंशों को सूचीबद्ध किया। उसने उन राजवंशों का वर्गीकरण अनेक कालों में मसलन पुरानी बादशाहत, मध्य बादशाहत और नई बादशाहत और इनके बीच के कालों (पहला मध्यवर्ती काल, दूसरा मध्यवर्ती काल इत्यादि) में किया। आधुनिक इतिहासकार मानेथो के इस कालनिर्धारण पर अब भी अमल कर रहे हैं। कालनिर्धारण का यह तरीका सुविधाजनक है क्योंकि किसी खास राजवंश में परिवर्तन के साथ ही हमेशा अनिवार्य रूप से भारी राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन नहीं होते हैं। प्रारंभिक मिस्त्री सभ्यता पर हमारी चर्चा मुख्यत: प्रारंभिक राजवंशीय काल (या पुरातन काल) और पुरानी बादशाहत तक सीमित रहेगी।

प्रारंभिक राजवंशीय काल के दौरान मिस्र पर पहले और दूसरे राजवंश (करीब 3100 से 2686 ईसापूर्व तक) ने राज किया। उसके बाद पुरानी बादशाहत—तीसरे राजवंश से छठे राजवंश (करीब 2686 से 2161 ईसापूर्व) का दौर आया। छठे राजवंश के बाद थोड़े अरसे के लिए तसवीर कुछ धुंधली हो जाती है। उसे पहला मध्यवर्ती काल (करीब 2181 से 2133 ईसापूर्व) कहते हैं जिसमें सातवां से दसवां राजवंश शामिल है। ग्यारहवें राजवंश से एक नया दौर शुरू होता है। यह मध्य बादशाहत (करीब 2133 से 1786 ईसापूर्व) ग्यारहवां और बारहवां राजवंश है। बारहवें राजवंश के बाद एक और मध्यवर्ती काल, दूसरा मध्यवर्ती काल (करीब 1786 से 1567 ईसापूर्व) है जिसके तहत तेरहवें से सत्रहवें राजवंश आते हैं। उसके बाद नई बादशाहत (करीब 1567 से 1080 ईसापूर्व), अठारहवें से बीसवें राजवंश का दौर शुरू होता है। मानेथो ने राजवंशों के एकान्वयिक राज्यारोहण (unilinear succession) दर्ज किए हैं। लेकिन ऐसे दौर भी संभव हैं जब मिस्र के विभिन्न हिस्सों पर अलग-अलग राजवंश एक ही समय राज कर रहे हों। मानेथो की सूची में ऐसे राजाओं का कोई जिक्र नहीं है।

मानेथो के मुताबिक मिस्र का एकीकरण मेनेस नामक एक राजा के हाथों हुआ। अभी यह निश्चित नहीं हो सका है कि मेनेस कोई ऐतिहासिक हस्ती है या नहीं। पुरातात्विक खुदाई ने नार-मेर नामक एक राजा से जुड़े साक्ष्यों पर प्रकाश डाला है जिसने संभवत: मिस्र के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी। यह सुझाया जा रहा है कि नार-मेर को दंतकथाओं के मेनेस के साथ चिह्नित किया जा सकता है। बदकिस्मती से पहले राजवंश का कोई विवरण नहीं बचा है। हम बस इतना जानते हैं कि पहले दो राजवंश ऊपरी मिस्र के थिनिस शहर से आए थे। इसीलिए वे थिनीसी राजवंश भी कहलाते थे।

पहले राजवंश ने ऊपरी और निचले मिस्र का एकीकरण किया। यह एकीकरण संभवत: नार-मेर (जो हो सकता है कि मेनेस हो) का काम था। इस घटना की स्मृति तमाम मिस्री शासकों को 'ऊपरी और निचले मिस्र' दोनों के राजा के पदनाम से सुशोभित करने की परंपरा में संरक्षित की गई। इस एकीकरण के प्रतीक के रूप में राजा दो-दो ताज पहना करते थे। सफेद ताज ऊपरी मिस्र का और लाल ताज निचले मिस्र का

प्रतिनिधित्व करता था। राजा सर्वशक्तिमान सम्राट-फैरोह होते थे। शब्द फैरोह प्राचीन मिस्त्री शब्द पेर-ओ (या पेर-आ) का हिब्रू रूप है जिसका अर्थ होता है 'विशाल घर'। यह महल का एक संकेत था।

हालांकि पहला राजवंश दीर्घकालीन आधार पर मिस्र का एकीकरण करने में कामयाब रहा, राजवंश के काल से पहले भी इस तरह के प्रयास अवश्य हुए होंगे। राजवंश काल के पहले से ही राज्य निर्माण चल रहा था। नील घाटी में अनेक छोटे-मोटे राज्य उभर आए थे। उन पर सरदारों का राज था जिनका अपेक्षाकृत छोटे भूभाग पर नियंत्रण था। यह प्रतीत होगा कि लघु राज्यों के गठबंधन की प्रक्रिया से और/या उन्हें जीतकर बड़ी क्षेत्रीय इकाइयां बनीं जो अंतत: घाटी के राजनीतिक एकीकरण तक गईं।

एकीकरण के बाद भी लंबे अरसे तक लघु राज्य प्रांतीय प्रशासनिक इकाइयों के रूप में टिके रहे। यूनानी उन प्रशासनिक इकाइयों को *नोम* (*नोम* के लिए प्राचीन मिस्त्री शब्द *स्पत* (spt) था) कहते थे। राजवंश काल में *नोम* स्थिर इकाइयां थीं जिनका सुस्पष्ट क्षेत्र थे। इन नोम के प्रांतीय अभिजात्य काफी शक्तिशाली थे। *नोम* के अपने प्रतीक थे जो अकसर जानवरों के चिह्न होते थे। ये चिह्न मूलत: संबंधित *नोम* से बसे प्रभुत्वशाली कबीलों के गणचिह्न होते थे। इस तरह राजवंश काल के *नोम* की जड़ें पूर्व के लघु राज्यों में थीं। एकीकरण के बाद उन लघु राज्यों को *नोम* के रूप में प्रशासनिक ढांचा में समाहित कर लिया गया। अनेक मामलों में *नोम* के क्षेत्र राजवंश काल से पहले के लघु राज्यों से एकरूप थे।

हम राजवंश से पहले के काल में उभर आए लघु राज्यों की संख्या का आकलन करने की स्थिति में नहीं हैं। लेकिन यह ज्ञात है कि एकीकरण के समय 42 *नोम* थे। उनमें से बाईस *नोम* ऊपरी मिस्र में और बीस निचले मिस्र में थे। यह संभव है कि ऊपरी और निचले मिस्र के विलय से बहुत पहले ऊपरी मिस्र का राजनीतिक एकीकरण हो गया था। ऊपरी मिस्र के नेखेन में खुदाई ने अतिविशाल स्थापत्य वाला एक प्राचीनतम स्थल उजागर किया है। यूनानी उस नगर को हायेराकोनपोलिस ('बाज का शहर') कहते थे। वह राजवंशकाल के पूर्व एकीकृत ऊपरी मिस्र की राजधानी हो सकता है। संयोगवश मानेथो ने शहरों और राजाओं के लिए यूनानी शब्द का इस्तेमाल किया है और कभी-कभी इसके कुछ हद तक उलझन हो सकती है।

पहले राजवंश के राजाओं ने ऊपरी और निचले मिस्र के संधिस्थल पर स्थित मेंफिस में अपनी राजधानी स्थापित की। मेंफिस (इस प्राचीन नगर के अवशेष आधुनिक काहिरा के ठीक दक्षिण में स्थित है) कई सदियों तक मिस्र की राजधानी रहा। दरअसल इस शहर ने समूचे देश को नाम दिया। 'इजिप्ट' मेंफिस के प्राचीन मिस्त्री नाम 'हिकुप्तेह' से लिया गया है। उस वक्त तक समूची नील घाटी में अनेक बड़े शहरी केंद्र उभर आए थे। उनमें से कई किलाबंद थे। गेरजेई संस्कृति/पूर्व राजवंश काल के आखिरी दौर में विकसित

ज्यादातर शहरी केंद्र ऊपरी मिस्र में स्थित थे। उनमें हायेराकोनपोलिस (नेखेन), एबीदोस(थिनिस), ओंबोस (नकदा), एलकाब और कोप्तोस शामिल हैं। फपरी मिस्र में साइस और बुतो थे।

करीब 3200 ईसापूर्व तक मिस्र ने एक लिपि विकसित कर ली थी। इस लिपि को चित्रलिपि (hieroglyph) कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'पवित्र नक्काशी'। प्राचीन यूनानी जब मिस्र पहुंचे तो उन्होंने मंदिरों या मकबरों में पत्थरों पर इस लिपि में इबारत खुदी देखी। इस कारण उन्होंने उस लिपि को पवित्र नक्काशी कहना शुरू कर दिया। मिस्री लिपि में इस्तेमाल होने वाले संकेत सुमेरी कीलाक्षर लेखन से बेहद भिन्न हैं। फिर भी दोनों लिपियों में कोई संकेत किसी वस्तु या ध्वनि (यहां तक किसी विचार) का सूचक हो सकता है। लेखन की यह पद्धति 'रेबुस' सिद्धांत पर आधारित बताई जाती है जिसमें वस्तुओं, शब्दों या अक्षरों को निरूपित करने के लिए चित्र लेख समुच्चय या संकेत का इस्तेमाल होता है। यह लिपि करीब 3500 साल तक इस्तेमाल में रही। मिस्रवासी इस लिपि का एक थोड़ा संशोधित रूप का भी इस्तेमाल करते थे जिसे 'पुरोहिती' (hieratic) लिपि कहते हैं। पुरोहिती लिपि चित्रलिपि के ही समान थी। लेकिन उसमें संकेत सरल थे। वे ज्यादा गोल थे और कम जटिल थे। पुरोहिती लिपि रोजमर्रा के इस्तेमाल के लिए उपयुक्त थी खासकर जब जब ब्रश से पपाइरस (पपाइरस पौधे से निर्मित कागज सदृश्य लेखन सामग्री) पर कोई लंबा दस्तावेज तैयार करना हो।

पुरातन मिस्र अत्यंत वर्ग-विभाजित समाज था जिसका शासन फैरोह के इर्द-गिर्द एकत्रित एक छोटे से अभिजात वर्ग के हाथों में था। ऊपरी और निचले मिस्र के बेशुमार अधिशेष पर इस शासक वर्ग की पकड़ थी। एक कालखंड में नील घाटी के राजनीतिक एकीकरण ने नील नदी को केंद्रीकृत भंडारण और पुनर्वितरण के लिए अधिशेष के परिवहन का प्रमुख राजमार्ग बना दिया। फैरोह के नाम पर अधिशेष का एक बहुत बड़ा हिस्सा नजराने के रूप में हड़प लिया जाता था और राज-परिवार के सदस्यों, पुरोहितों, नौकरशाही और सेना के बीच बांट दिया जाता था। इस नजराने ने एक निरंकुश सम्राट के रूप में फैरोह की स्थिति और पुख्ता की। राजवंश से तुरंत पहले के काल तक में सामाजिक स्तरीकरण के साक्ष्य मिले हैं। हायेराकोनपोलिस, नकदा और एबीदोस की कब्रें एक धनाढ्य अभिजात वर्ग की मौजूदगी जताती हैं। कुछ मकबरे शासकों और उनके परिवारों के थे।

फैरोह के अधीन एक लंबा-चौड़ा प्रशासकीय ढांचा था जिसमें एक विशाल नौकरशाही शामिल थी। नौकरशाही के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक सिंचाई की देख-रेख थी। शुरुआती दौर से ही *अद्ज-मेर* (शाब्दिक अर्थ 'नहर खोदने वाला') नामक एक अधिकारी का जिक्र है जिसके जिम्मे सिंचाई का कार्य था। समय के साथ उस अधिकारी का महत्व बढ़ता गया। बाद में हम पाते हैं कि *अद्ज-मेर* शब्द का इस्तेमाल प्रांतीय गवर्नरों की उपाधि के रूप में भी होने लगी। नील नदी में आने वाली वार्षिक बाढ़ों पर मिस्री कृषि

की नितांत निर्भरता के मद्देनजर राज्य के लिए नदी के जलस्तर की स्थिति से खुद को अवगत रखना जरूरी था। इस मकसद के लिए प्रशासन की एक शाखा (परे-मू) थी जिसका काम जलस्तर दर्ज करना और उसकी खबर देना था।

नील नदी में हर वर्ष बाढ़ आने का मुख्य कारण इथोपियाई पठार पर होने वाली मानसूनी वर्षा है जहां मुख्य नील नदी की एक शाखा नीली नील ताना झील से फूटती है। वर्षा के कारण जलस्तर ऊपर चला जाता है। मिस्र में जून से नदी का जलस्तर चढ़ने लगता है और सितंबर तक यह अपने उच्चतम बिंदु तक पहुंच जाता है। उसके बाद नील नदी का जलस्तर गिरने लगता है। अक्टूबर/नवंबर में बीज बोए जाते हैं जब बाढ़ उतरना शुरू करती है और खेतों से पानी का निकास हो चुका होता है। अगस्त से लेकर जनवरी तक नील का इस्तेमाल सिंचाई के लिए किया जा सकता है और पानी खेतों तक ले जाया जा सकता है। फरवरी तक नदी का जलस्तर बहुत गिर जाता है और सिंचाई करना संभव नहीं रहता है। कृषि चक्र को तीन काल में विभाजित किया गया था : *अखेत* या बाढ़, *पेरेत* या अंकुरण और *चेमू* या कटाई। यहां यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि वार्षिक बाढ़ और खेती के काल में तालमेल था। यह विशेषता हमें मेसोपोटामिया में नहीं मिलती। यह मिस्र में सिंचाई को अपेक्षाकृत एक आसान काम बना देता है। मेसोपोटामिया में स्थानीय स्थितियों के हिसाब से सिंचाई पर भरपूर ध्यान देना पड़ता था। लेकिन मिस्र में सिंचाई के लिए सिर्फ सरसरी तौर पर देख-रेख की जरूरत थी।

मिस्र में कुल मिलाकर बाढ़ का एक नियमित चक्र था लेकिन जलस्तर में कमी-बेशी हो सकती थी। छह फुट ऊपर या नीचे का फर्क समस्याएं खड़ी कर सकता था। अगर नदी सामान्य बाढ़ स्तर से छह फुट ऊपर चला जाता तो ग्रामीण अंचलों में जलजमाव हो जाता जिसके कारण खेती के काम-काज में विलंब हो जाता। दूसरी तरफ अगर स्तर सामान्य से छह फुट कम रहता तो वह सिंचाई के लिए अपर्याप्त होता। नतीजतन नील नदी का जलस्तर मिस्री राज्य के लिए बड़ी चिंता का विषय रहा करता था। यह वार्षिक बाढ़ की स्थिति पर पूरी नजर रखता था ताकि फसल की प्रकृति निर्धारित की जा सके।

III

यह पुरानी बादशाहत का दौर था जब मिस्री सभ्यता ने प्रौढ़ अवस्था में प्रवेश किया। मिस्री सभ्यता और संस्कृति पर कई सदियों तक पुरानी बादशाहत की उपलब्धियों का गहन असर रहा। इस काल में फैरोह के नेतृत्व में मिस्री शासक वर्ग ने अपनी सत्ता और मजबूत की। इससे उन्हें देश के विशाल संसाधन पर अपना नियंत्रण बढ़ाने का मौका मिला। अब तक फैरोह भगवान के रूप में सुदृढ़ता से स्थापित हो चुका था। पुरातन काल में भी फैरोह को दिव्य पुरुष के रूप में पेश किया जाने लगा था। हमें यह ध्यान देना

चाहिए कि मिस्र में राजा की तुलना में पुरोहितों की भूमिका आम तौर पर गौण रही है। राजा स्वयं ही देवता के रूप में पूजा जाता था। पुरानी बादशाहत के दौर में फैरोह की पूजा-उपासना से जुड़े विस्तृत कर्मकांडों में इजाफा हुआ। फैरोह की उपासना को जोरदार ढंग से बढ़ावा दिया गया और उसने मिस्री धर्म में एक महत्वपूर्ण जगह बना ली। अनेक प्रमुख मिस्री देवी-देवताओं को धीरे-धीरे फैरोह की उपासना से जोड़ा गया। इसने मिस्री शासकों को अभूतपूर्व रूप से सर्वशक्तिमान बना दिया।

पुरानी बादशाहत के पुरातात्विक अवशेष हमें उस दौर के राज्य और समाज की कुछ विशेषताओं को जानने-समझने में मदद करते हैं। उस वक्त के सर्वाधिक प्रभावशाली इमारत शाही मकबरे हैं। फैरोह के दफन के लिए विशाल स्मारकों के निर्माण की परंपरा तीसरे राजवंश के काल में जोसर के सीढ़ीदार पिरामिड के निर्माण के साथ शुरू हुई। जोसर तीसरे राजवंश का संस्थापक था। उसने अपनी ही अंत्येष्टि के लिए सक्कारा (मेंफिस के निकट) में एक विशाल स्मारक बनवाया। उससे पहले फैरोह भूमिगत विशाल कब्रिस्तानों में दफन होते थे जिन्हें 'मस्तबा' कहते थे। जोसर के समय से जमीन के ऊपर ही मकबरा बनाया जाने लगा।

जोसर के पिरामिड ने मिस्री स्थापत्य में क्रांति ला दी। उसका मकबरा पूरी तरह पत्थरों से बना है। वह अब तक बचा रहने वाला ऐसा प्राचीनतम मिस्री स्मारक है जो पूरी तरह पत्थरों से बना है। पत्थरों को इतनी कुशलता से सजाया गया है कि इमारत के सभी चारों तरफ विशाल सीढ़ियां बन गई हैं। सीढ़ियों के इस तरतीब ने ढांचा को एक पिरामिडनुमा शक्ल दे दी। माना जाता है कि इस पिरामिड की रूपरेखा इम्होतेप ने बनाई जिसका नाम उस पर खुदा है। एक स्थापत्यविद के रूप में एक इम्होतेप की ख्याति सदियों तक, यूनानी शासन तक बनी रही। इम्होतेप का दर्जा बढ़ाकर देवताओं के समकक्ष कर दिया गया। मिस्रवासी और बाद में यूनानी भी उसकी पूजा करने लगे। यूनानियों ने इम्होतेप को इलाज के देवता अक्लेपियोस के साथ चिह्नित किया।

जोसर के उत्तराधिकारियों के तहत पिरामिडों का स्थापत्य विकसित होकर सीढ़ीदार पिरामिड से विशुद्ध पिरामिड तक पहुंचा। चौथे राजवंश के काल में यह स्थापत्य कला अपनी बुलंदी पर पहुंची। आधुनिक काहिरा के निकट गिजा में स्थित चौथे राजवंश काल के पिरामिड हर किसी को आश्चर्यचकित कर देते हैं। आकार के हिसाब से ये स्मारक प्राचीन विश्व की बेमिसाल कृतियां हैं। चौथे राजवंश के पिरामिड फैरोहों की अनूठी हैसियत उजागर करते हैं जो उसे मिस्री शासक वर्ग के बीच हासिल थी। वे मिस्री वर्ग के पास मौजूद विशाल संसाधन का भी द्योतक हैं। गिजा समूह के दो सबसे शानदार पिरामिड चेयोप्स या खूफू (चौथे राजवंश का दूसरा शासक) और उसके उत्तराधिकारियों में से एक चेफरेन (या खाफ्रे) के हैं। खूफू जिस पिरामिड में दफन है उसका आधार वर्गाकार है जिसके हर भुजा की लंबाई 235 मीटर है। यह 146.5 मीटर ऊंचा है। खाफ्रे के पिरामिड का आधार 215.25 वर्ग मीटर है और वह 143.5 मीटर ऊंचा है।

इन पिरामिडों की विशालता का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उनमें से हरेक के निर्माण में पत्थरों के कम से कम बीस लाख बड़े-बड़े टुकड़े इस्तेमाल किए गए। औसतन एक टुकड़े का वजन करीब ढाई टन है। ये पिरामिड उच्च स्तर के स्थापत्य कौशल के नमूने हैं। उनके डिजाइन में परिशुद्ध गणितीय गणना थी। यह महज सौंदर्यबोध का मामला नहीं था और इस परिशुद्धता के बगैर स्थापत्य की दृष्टि से इमारत का निर्माण संभव नहीं था। अन्यथा, जैसा कि उनका वजन, रूप और आकार था, ये इमारत एकदम ढह जाते।

यह आकलन किया गया है कि हरेक पिरामिड के निर्माण में एक साथ कम से कम 10000 लोगों के श्रम की जरूरत पड़ी होगी। मजदूरों को पिरामिड के निर्माण के लिए तब तलब किया जाता था जब खेत नील नदी के पानी में डूबे होते और कृषि से संबंधित कोई काम-काज नहीं चल सकता था। निर्माण कार्य कई मौसमों के बीच फैले होते। कुछ इतिहासकारों की राय है कि पिरामिड निर्माण में जबरिया श्रम नहीं लगा था बल्कि वह ढीले मौसम में किसानों को रोजी-रोटी मुहैया कराने का तरीका था। बहरहाल इस कार्य के लिए जरूरी कठोर श्रम को देखते हुए मजदूरों को गोलबंद करने में जोर-जबर्दस्ती जरूर की गई होगी। हमें ध्यान में रखना चाहिए कि इतनी भारी संख्या में मजदूरों को पिरामिड में लगाने का मतलब एक बड़ी श्रम शक्ति को आर्थिक रूप से उत्पादक गतिविधियों से हटाना था। वैसे भी इतने बड़े पैमाने पर मकबरे बनाना मिस्र के संसाधनों की बर्बादी थी। यह शायद ही आश्चर्य की बात हो कि खाफ्रे के उत्तराधिकारी मेनकुरे (माइसरनियस) के द्वारा निर्मित पिरामिड स्थापत्य के हिसाब से निम्नतर और आकार की दृष्टि से बहुत छोटा (सिर्फ 62 मीटर ऊंचा और 108.4 वर्ग मीटर आधार वाला) है। मेनकुरे के बाद पिरामिड निर्माण में समग्र रूप से ह्रास हुआ। चौथे राजवंश के बाद एक लंबे अरसे तक मिस्री अर्थव्यवस्था स्मारकों की इस तरह की फिजूलखर्ची बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। बाद के काल के कुछ प्रमुख राजवंशों ने विशाल मकबरे बनवाए। लेकिन उनका स्वरूप बहुत भिन्न था और जोर राजाओं की विशालकाय प्रतिमाएं बनाने पर चला गया।

पिरामिड मूलत: ऐसी इमारत थे जिनमें संबंधित फैरोह की लाश दफन की गई थी। दफन के साथ एक उल्लेखनीय कर्मकांड जुड़ा था। इस कर्मकांड का मकसद मृत फैरोह को पुनर्जन्म के लिए सक्षम बनाना था। एक मिथक गढ़ा गया जिसके अनुसार मौत के साथ फैरोह का जीवन पूरी तरह खत्म नहीं हो जाता। यह माना गया कि मृत्यु के बाद भी फैरोह की जिंदगी होती है। लेकिन इस मरणोत्तर जीवन (या मृत्यु के बाद जीवन) को सहज करने के लिए दफन से संबंधित कुछ जटिल अनुष्ठान करने पड़ते थे। इस अनुष्ठान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग मृत शरीर को संरक्षित रखना था। शरीर के अंदरूनी अंग निकाल लिए जाते थे और शरीर पर कुछ जड़ी-बूटियों तथा रसायनों का लेप लगा दिया

जाता था। उसके बाद उसे पट्टीनुमा कपड़े के टुकड़े में लपेट दिया जाता था। इस प्रक्रिया को सामान्यत: 'ममीकरण' कहते हैं। ममीकृत शव को एक कक्ष में बंद कर पिरामिड (या अन्य प्रकार के मकबरों) में रखा जाता था। उसके साथ मृत फैरोह से जुड़ी विभिन्न वस्तुएं भी वहां रखी जाती थीं। मरणोत्तर जीवन में गमन में मदद करने के लिए मकबरा में एक अनुष्ठान पोत रखा जाता था।

फैरोह के मरणोत्तर जीवन की अवधारणा ओसिरिस के मिथक से जुड़ी है जिसकी हम थोड़ी चर्चा पहले कर चुके हैं। मृत फैरोह को 'ईश्वरानुग्रह प्राप्त' मृतकों के देवता ओसाइस के साथ चिह्नित किया जाता था। मिथक के कुछ और पहलू यहां पेश किए जा सकते हैं। राजवंश से पहले के काल में ओसिरिस (असार) की व्यापक तौर पर पूजा होती थी। उसकी उपासना पहले कृषि से जुड़ी थी। ओसिरिस को वनस्पति का देवता माना जाता था। ऐसा माना जाता था कि उसने मानव को कृषि करना सिखाया और उन्हें गेहूं, रोटी और जौ की शराब से परिचित कराया। ऐसा लगता है कि ओसिरिस मिस्र के डेल्टा क्षेत्र में बेहद लोकप्रिय था जहां बुसिरिस इस उपासना का मुख्य केंद्र बन गया था। उसकी उपासना के और भी केंद्र थे और राजवंश काल में एबीदोस उसके मुख्य केंद्र के रूप में उभरा।

मिस्री पौराणिकी के अनुसार ओसिरिस एक इंसाफ पसंद और अच्छा देवता था, जो पूरे विश्व पर शासन करता था। ओसिरिस का एक भाई सेत था जो उससे डाह करता था। सेत ने ओसिरिस की हत्या का षड्यंत्र रचा। उसकी योजना कामयाब रही और ओसिरिस मारा गया। ओसिरिस की पत्नी आइसिस ने अपने पति की लाश देखी। उसके प्रयास से ओसिरिस का पुनर्जन्म हुआ। पुनर्जन्म के बाद ओसिरिस ईश्वरानुग्रह प्राप्त मृतकों का देवता बन गया और उसने मृत्युलोक पर राज किया। ओसिरिस की मृत्यु के बाद आइसिस ने एक बेटे को जन्म दिया। होरस ओसिरिस और इसिस का बेटा था। जब होरस बड़ा हुआ, उसने सेत को मार कर अपने पिता की हत्या का बदला लिया। सेत के साथ संघर्ष में विजयी होने के बाद देवताओं की सहमति से होरस अपने पिता की गद्दी पर बैठा। तमाम *शासक* फैरोहों को होरस के साथ चिह्नित किया जाता था। होरस को शुरू में बाज गणचिह्न की उपासना से जोड़ा जाता था। अंतत: बाज सभी फैरोहों का प्रतीक बन गया। हमेशा बाज को चित्रित कर उन्हें इंगित किया गया। इस तरह हर शासक फैरोह को होरस का रूप माना जाता था।

मिस्री राजाओं का देवत्व स्थापित करने के लिए जीवित फैरोह को होरस के साथ और मृत फैरोह को ओसिरिस के साथ चिह्नित किया गया। ओसिरिस के रूप में फैरोह के पुनर्जन्म का मिथक इस विश्वास को पुख्ता करता था कि राजा अमर है। फैरोहों के पुनर्जन्म से जुड़े तमाम अनुष्ठानों को इसी संदर्भ में देखना चाहिए। पिरामिडों और अन्य शाही कब्रिस्तानों या मकबरों की एक विचारधारात्मक भूमिका थी। वे मृत्यु और मरणोत्तर

जीवन को लेकर मिस्रवासियों के जुनून का नतीजा नहीं थे। अगर यह मामला होता तो दफन करने का यह तरीका समाज के तमाम हिस्सों में होता। लेकिन ज्यादातर मिस्री आडंबरहीन कब्रों में दफन किए गए। गरीबों की कब्रें एक संकरा गड्ढा होती थीं जिसमें शव के घुटनों को मोड़कर बड़ी लापरवाही के साथ डाल दिया जाता था।

फैरोहों ने लोगों पर रोब जमाने और उन्हें यह जताने के लिए विशालकाय स्मारक बनवाए थे कि फैरोह कोई मामूली इनसान नहीं बल्कि शक्तिशाली देवता है। यह अंदाज लगाना मुश्किल नही है कि खूफू और खाफ्रे के पिरामिडों ने लोगों पर क्या प्रभाव डाला होगा। ये पिरामिड कोई अलग-थलग ढांचे नहीं थे। वे बहुत बड़े परिसरों के हिस्से थे जिनमें मंदिर स्थित थे। उन मंदिरों में पुरोहित लगातार कर्मकांडों में लगे रहते थे। खाफ्रे के पिरामिड परिसर के साथ स्थापत्य की एक विशाल और बेहद असामान्य कृति जुड़ी थी जो 'स्फिंक्स' के नाम से जानी जाती हैं। स्फिंक्स एक ही चट्टान को काट कर बनाया गया है। वह एक विचित्र प्राणी है जिसका सिर सिंह का और धड़ आदमी का है। उसका सिर फैरोह खाफ्रे का प्रतिनिधित्व करता है। फैरोह की उपासना के प्रचार-प्रसार के लिए राज्य ने इन मंदिर-सह-मकबरा परिसरों की देख-रेख पर बेशुमार संसाधन खर्च किए। चौथे राजवंश के बाद लोगों के दिमाग में यह बात मजबूती से बैठ गई कि फैरोह देवता है।

मिस्री राज्य और उसको नियंत्रित करने वाला शासक वर्ग फैरोह की उपासना को स्थापित करने में अनवरत लगा रहा। शासक वर्ग बेहद शक्तिशाली था और उसकी शक्ति बहुत हद तक फैरोह की दैविक स्थिति से थी। हमें अवश्य याद रखना चाहिए कि पुरानी बादशाहत के काल में मिस्र में एक शक्तिशाली और केंद्रीकृत राज्य वजूद में आ चुका था। एक बहुत ही बड़े पैमाने पर वित्तीय, प्रौद्योगिकीय और मानव संसाधन जुटाने की अपनी क्षमता को लेकर बेहद आश्वस्त शासक वर्ग विशाल पिरामिडों के निर्माण का इतना महत्वाकांक्षी उपक्रम अपने हाथ में ले सकता है। फिर भी चौथे राजवंश काल के अंत तक देश के उत्पादक संसाधन की शासक अभिजात्य वर्ग की तलब हद पार कर चुकी थी। सीमांत क्षेत्रों पर दबाव बढ़ रहा था और संभवत: उसके कारण पर्यावरण का क्षरण हुआ और उत्पादकता गिरी। यह उन कारणों में से एक हो सकता है जिसके चलते पुरानी बादशाहत के अंत में केंद्रीकृत राज्य अत्यल्प समय के लिए बिखर गया।

पुरानी बादशाहत काल तक मिस्री राज्य नौकरशाही का एक व्यापक ढांचा विकसित कर चुका था जो विविध प्रशासनिक काम कर रही थी। इस नौकरशाही ने नजराने सुव्यवस्थित रूप से वसूल किए। नौकरशाही का एक अन्य प्रमुख काम सिंचाई से संबंधित कार्यों को संगठित एवं समन्वित करना था। नजरानों का ज्यादातर हिस्सा कृषि से आता था। गेहूं, जौ और पटसन (जिससे कपड़ा बनाया जाता था) मुख्य फसलें थीं। उसके अलावा मवेशी पालन कृषक अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न हिस्सा था। मिस्री किसानों (किसानों के लिए मिस्री दस्तावेजों में अकसर *मेर्तू* शब्द का इस्तेमाल हुआ है) पर एक

कर लगाकर उनसे जिंस की शक्ल में उनकी उपज वसूली जाती थी। इस कर को *मेजेद* कहते थे और उसमें अनाज, रोटी, पटसन तथा जानवरों की खाल शामिल थी। *मेर्तू कात* के लिए भी उत्तरदायी थे। यह राज्य के लिए (पिरामिडों का निर्माण इत्यादि) या सिंचाई के मकसद से नहर या जलवाहिका खोदने और उनकी देखरेख करने के लिए कराया गया जबरिया श्रम था। कारीगर और दस्तकार सामान्यत: मंदिरों, महलों और धनी परिवार के घरों से जुड़े कारखानों से बंधे थे। हालांकि निजी व्यापारी थे, राज्य खासकर धातु, लकड़ी और भोग-विलास के सामान की खरीददारी के संबंध में प्रमुख व्यापारिक अभियान संगठित करता था।

सरकार हर दो साल पर मवेशियों और कुछ हद तक जमीन के आकलन के लिए जनगणना कराती थी। जनगणना की आधुनिक अवधारणा के साथ उसका घालमेल नहीं करना चाहिए क्योंकि हर प्रांत या *नोम* के संसाधनों के कच्चे आकलन पर आधारित थी। हम नहीं जानते कि जनगणना कितनी सटीक और कितनी पक्की थी। लेकिन संभवत: यह किसी तरह से कर प्रणाली से जुड़ी थी। इस द्विवर्षीय जनगणना का प्रभारी राज्य में एक मुख्य हैसियत रखता था। जिंस की शक्ल में वसूल किया गया कर देश के विभिन्न हिस्सों में स्थित केंद्रीय अन्नागार (central granary) में रखा जाता। जिंस के रूप में अदायगी उन्हीं अन्नागारों में होती थी। पुरातन काल में ऊपरी और निचले मिस्र के लिए दो अलग-अलग कोषागार थे। ऊपरी मिस्र के कोषागार को 'सफेद घर' और निचले मिस्र के कोषागार को 'लाल घर' कहते थे। पुरानी बादशाहत के दौर में दोनों को मिलाकर एक केंद्रीय कोषागार गठित किया गया जिसका नाम 'दोहरा सफेद घर' था। अन्नागार का प्रबंधन कोषागार करता था। वह प्राप्ति, अदायगी, नजराना, शाही खजाना और पटसन तथा खाल की वसूली का हिसाब-किताब रखता था।

जैसे-जैसे केंद्रीकृत प्रशासन जटिल से जटिलतर होता गया, फैरोह सरकार की दैनंदिन कामों की देख-रेख के लिए एक मुख्यमंत्री नियुक्त करने लगे। मुख्यमंत्री की उपाधि *ताती* थी और वह आमतौर पर शाही परिवार का सदस्य होता था। प्रांतों में शुरू में *नोम* में सिंचाई संबंधित कार्यों के लिए नियुक्त *अद्ज-मेर* धीरे-धीरे शक्तिशाली होने लगा। *अद्ज-मेर* वस्तुत: प्रांतीय सरकार का प्रमुख था। वह द्विवार्षिक जनगणना कराता था और न्याय करता था। नौकरशाही के निचले स्तर पर एक बड़ी संख्या में लिपिक थे जो चित्रलिपि पढ़ने और लिखने तथा विभिन्न प्रकार के सरकारी दस्तावेज तैयार करने के लिए प्रशिक्षित थे। हम यकीन के साथ कह सकते हैं कि चित्रलिपि का ज्ञान समाज के एक छोटे से हिस्से (अधिकारी, पुरोहित, लिपिक और कुलीन तंत्र) तक सीमित था। लोगों के व्यापक बहुमत को चित्रलिपि का ज्ञान नहीं था।

मिस्री राज्य ने केंद्रीकृत नियंत्रण के लिए एक खासी कुशल प्रणाली विकसित कर ली थी। लेकिन एक प्राक्-आधुनिक राज्य के लिए एक खास बिंदु से आगे केंद्रीकरण

मुश्किल थी। एक प्राक्-आधुनिक राज्य की ऐतिहासिक सीमाबद्धता के मद्देनजर प्राचीन मिस्र की सरकार को स्थानीय स्तर के सामान्य प्रशासन के लिए ग्राम स्तरीय संस्थाओं पर निर्भर होना पड़ा। हमारे पास मौजूद साक्ष्यों के अनुसार ग्राम परिषदों को पुरानी बादशाहत के दौर में *सेह*-(या *जजात*) और मध्य बादशाह के दौरान *केनबेत* कहा जाता था। इन परिषदों के सदस्यों को *सारू* कहा जाता था, जो स्थानीय प्रतिष्ठित जन और कुछ लिपिक होते थे। दूसरे शब्दों में *सारू* या उन परिषदों के सदस्य गांवों के प्रभुत्वशाली समूहों के लोग होते थे। *सेह* या *जजात* संभवत: प्राक्-राजवंश काल में थे। मिस्री राज्य के केंद्रीकरण के रुझानों ने उन संस्थाओं को खत्म नहीं किया। ये परिषद अब ग्राम प्रशासन में सरकार की मदद कर रहे थे। ग्रामांचलों में *सारू* राज्य का मुख्य आधार बन गया और उसने फैरोह का प्राधिकार बुलंद किया।

IV

हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि राजवंश काल में मिस्र की आधिकारिक धार्मिक विचारधारा फैरोह की उपासना के इर्द-गिर्द घूमती थी। फिर भी यह उपसाना अपेक्षाकृत बाद में विकसित हुई और उसने मिस्री धर्म के अनेक पहलुओं (मसलन ओसिरिस की पूजा) को अपनाया जो कहीं ज्यादा पुराने थे। मिस्री धर्म की जड़ें अम्राई और गेरजेई संस्कृतियों बल्कि उससे भी पहले तक जाती हैं। मिस्र के शुरू के कृषक समुदाय मातृ-देवियों की पूजा करते थे। उनकी अपनी जननक्षमता उपासनाएं भी थीं। जैसे-जैसे ये समुदाय कुलों और कबीलों में संगठित हुए, उन्होंने गणचिह्न अपनाए जो संबंधित कुलों/कबीलों का प्रतीक था। जब कुल या कबीले नील घाटी में बसे, उन्होंने खुद को कुछ खास क्षेत्रों से जोड़ लिया। एक खास क्षेत्र में रहने वाले कुल या कबीले अपने गणचिह्न को पवित्र मानते थे और वह प्राक्-राजवंश काल की उन संबंधित क्षेत्रीय इकाइयों के प्रतीक बन गए। मातृदेवी और प्रजननक्षमता की उपासना के साथ-साथ प्रकृति के कुछ तत्वों (सूर्य, बंजर रेगिस्तान) की पूजा आम थी।

मेसोपोटामिया की तरह एक एकल, एकरूप मिस्री धर्म के संदर्भ में चर्चा करना संभव नहीं है। हालांकि मिस्र बहुत पहले राजनीतिक रूप से एकताबद्ध हो गया था, धार्मिक आस्थाओं और आचरण में बेहद विविधता थी। हमें पूरे देश को अपने दायरे में समेटने की कोशिश करने वाला राज्य समर्थित धर्म और कुछ खास *नोम* या नगरों में सिमटी स्थानीय उपासनाओं में फर्क करना चाहिए। आमजन के बीच अनेक आदिम आस्थाएं कायम थीं। वेपवावेत असयुत *नोम* से जुड़ा एक भेड़िया देवता था। खेन्तियामेन्तियू, एबीदोस का एक गीदड़ देवता था और सोबेक थीबस का मगरमच्छ देवता था। सभी तीनों अब तक टिक पाए पुराने काल के गणचिह्न होंगे। मिस्री धर्म की उत्पत्ति की प्रक्रिया

सदियों तक जारी रही। इस क्रम में कुछ उपासनाओं का रंग-रूप बदला और वे रूपांतरित हुईं जबकि अन्य गायब हो गईं।

राजवंश काल में देवियों और मातृदेवी पूजा की महत्ता में आम गिरावट आई। मेसोपोटामिया पर अपनी चर्चा के क्रम में हमने देखा था कि कैसे यह प्रक्रिया पितृसत्तात्मक समाज के उद्‌भव से जुड़ी है। देवियां या तो पूरी तरह खत्म हो गईं या फिर देवताओं के अधीन कर दी गईं। कुछ मामलों में वे प्रमुख देवताओं की सहचरी (consort) बन गईं। इस तरह इसिस एक पत्नी के रूप में ओसिरिस से जुड़ गई। उसी तरह, सिंह के सिर वाली देवी, सेखमात मेंफिस के मुख्य देवता पिताह (Ptah) की सहचरी बन गई। पिताह ऐसा देवता था जिसे पूरे राजवंश काल के दौरान और यहां तक कि उस समय भी बड़ी संख्या में लोग पूजते रहे जब मेंफिस राजधानी नहीं रहा। पिताह के भक्तों में शिक्षित अभिजात्य वर्ग के लोगों के अलावा कारीगर भी शामिल थे।

एक प्रवृत्ति थी दो या तीन देवी-देवता को जोड़कर उन्हें एक परिवार की शक्ल देने की। हमने ओसिरिस परिवार ओसिरिस-इसिस-होरस का एक पति, पत्नी और पुत्र के रूप में जिक्र किया है। एक अन्य चर्चित देव परिवार पिताह, सेखमात (सहचरी) और नेफरतूम (पुत्र) का है। हम पाते हैं कि अलग-अलग उपासनाओं को एक साथ लाने के क्रम में एक सामाजिक इकाई के रूप में परिवार पर जोर बढ़ा। मिस्री धर्म में एक और रोचक विशेषता ऐसी अनेक देवी-देवताओं की उपस्थिति थी जिनका एक हिस्सा जानवरों का (आमतौर पर सिर) और दूसरा मानव का था। अरसाफेस हेराक्ल्यूपोलिस का मेढ़ा के सिर वाला देवता था जबकि सोकार मेंफिस क्षेत्र में पूजा जाने वाला बाज के सिर वाला देवता था।

राज्य स्तर पर मिस्री धर्म की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता सूर्य देवता की पूजा थी। तीसरे राजवंश के काल से फैरोहों ने इस या उस रूप में सौर उपासना को संरक्षण दिया। सौर उपासना ने अन्य उपासनाओं को भी अपना लिया । पुरातन काल में बाज के रूप में होरस की पूजा ने प्रमुखता ग्रहण कर ली जबकि विभिन्न आस्थाएं अब भी अपने वर्चस्व के लिए संघर्ष कर रही थीं। दूसरे राजवंश के छठे राजा पेरिबसेन के शासन काल के साक्ष्य दिखाते हैं कि पुरातन काल के अंतिम दौर में सेत की पूजा फिर से शुरू करने के लिए गंभीर प्रयास किए गए। जैसा कि एमरी इंगित करते हैं इस चरण में होरस ओसिरिस की उपासना से पूरी तरह नहीं जुड़ा था। पुरानी बादशाहत के दौर में जाकर होरस को ओसिरिस परिवार के साथ जोड़ने और सेत को दुष्ट के रूप में पेश करने की प्रक्रिया पूरी हुई। ठीक उसी समय सूर्य देवता रे आधिकारिक धर्म का आधार बना। ओसिरिस और रे की पूजा के संबंध में सूचनाओं का एक प्रमुख स्रोत पिरामिडों के अंदर खुदी धार्मिक इबारत है। वे पिरामिड आलेख के रूप में जाने जाते हैं। सबसे पुराने पिरामिड आलेख पांचवें राजवंश (करीब 2300 ईसापूर्व) के हैं। पिरामिड आलेख विश्व के प्राचीनतम धर्मग्रंथ हैं।

रे की शाही पूजा की प्रवृत्ति ने जोसर के काल में प्रमुखता ग्रहण की। धीरे-धीरे एक धर्मशास्त्र (theology) विकसित हुआ जिसमें रे, ओसिरिस, होरस और फैरोहों को देवकुल में जगह दी गई। उसके लिए जो वंशावली सृजित की गई उसमें ओसिरिस और होरस को सूर्य देवता रे का वंशज दिखाया गया। इस तरह दैवी फैरोह को रे के साथ-साथ ओसिरिस और होरस से भी जोड़ा गया। चौथे राजवंश तक रे की पूजा पूरी तरह स्थापित हो गई। इस उपासना ने ढाई हजार साल तक मिस्री धर्म में अपनी प्रमुखता बरकरार रखी। बेशक इस लंबे दौर में उसकी पूजा के तरीके में अनेक तब्दीलियां आईं।

समय के विभिन्न बिंदुओं पर रे को अलग-अलग देवी-देवताओं के साथ जोड़ा गया। यह राजनीतिक तब्दीलियों का सीधा नतीजा था। जब नए समूह सत्ता में पहुंचते, वे रे की पूजा के साथ जोड़ कर अपनी उपासना को बढ़ावा देना चाहते। यह स्थानीय देवी-देवताओं को रे के अवतार में बदल देने के तरीका से अमल में लाया गया। मिसाल के तौर पर आमोन को आमोन-रे में, आतुम को आतुम-रे में और सोबेक को सोबेक-रे में बदला गया। यह फार्मूला स्थानीय देवी-देवताओं को व्यापकता प्रदान करने का आसान तरीका था।

हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि मिस्र में पुरोहितों के पास आम तौर पर कोई प्रत्यक्ष राजनीतिक शक्ति नहीं थी। फिर भी उन्होंने राजनीतिक ढांचा में महत्वपूर्ण विचारधारात्मक भूमिका निभाई और संकट के समय में उनका समर्थन बेहद जरूरी हो सकता था। पुरानी बादशाहत के दौर में हेलियोपोलिस के पुरोहितों को एक विशेष दर्जा प्राप्त था। हेलियोपोलिस मेंफिस के निकट स्थित नगर था। आतुम नगर का मुख्य देवता था। हेलियोपोलिस के पुरोहितों ने एक बहुत पुराने देवता-सूर्य देवता रे के साथ आतुम को सफलतापूर्वक चिह्नित कर दिया। इस जुड़ाव के माध्यम से उन्होंने आतुम को व्यापक रूप से स्वीकार्य बना दिया। हेलियोपोलिस के पुरोहितों ने राज्य के साथ खुद को दृढ़ता से जोड़कर अपनी स्थिति मजबूत कर ली। आतुम-रे पुरानी बादशाहत के दौर में प्रधान उपासना रही। जब चौथे राजवंश के बाद राजनीतिक संकट का एक लंबा दौर चला और फैरोहों की शक्ति क्षीण पड़ी, हेलियोपोलिस के पुरोहित राजनीतिक रूप से शक्तिशाली बन गए, पांचवें और छठे राजवंश के अंतर्गत हेलियोपोलिस ने अपना प्रभाव बढ़ा लिया।

छठे राजवंश के पतन के साथ ही पुरानी बादशाहत का अंत हो गया। प्रथम मध्यवर्ती काल में केंद्रीकृत राज्य के ह्रास से हेलियोपोलिस के पुरोहितों और आतुम-रे उपासना को धक्का लगा। केंद्र कुछ शक्तिशाली *नोम* की तरफ चला गया जिन्होंने अपनी स्वतंत्रता का दावा किया। प्रांतीय गवर्नर मजबूत हो गए। यूनानी विवरणों में ऐसे गवर्नरों को *नोमार्क* कहा गया है। हेराक्ल्यूपोलिस सत्ता के नए प्रमुख केंद्रों में से एक था। हेराक्ल्यूपोलिस के उत्थान से नगर का स्थानीय देवता अरसाफेस कुछ समय के लिए मिस्री देवकुल का प्रमुख देवता बन गया।

जब ग्यारहवें और बारहवें राजवंश के अंतर्गत मिस्र को एक बार फिर से एकीकृत किया गया तो आतुम-रे की जगह आमोन-रे की पूजा होने लगी। मध्य बादशाहत काल में राजनीतिक सत्ता का केंद्र ऊपरी मिस्र के थेबेस नगर में चला गया। ग्यारहवें और बारहवें राजवंश के शासक थेबेस के थे। आमोन थेबेस का मुख्य देवता था। रे को अब आमोर-रे के रूप में प्रस्तुत किया गया। सूर्य देवता इस रूप में मध्य एवं नई बादशाहत के ज्यादातर काल में पूजा जाता रहा। हमें सोबेक-रे का जिक्र भी मिला है। हमने देखा कि सोबेक थेबेस का एक मगरमच्छ देवता था।

बारहवें राजवंश से फैरोह को आमोन के वंशज के रूप में पेश किया जाने लगा। आमोन उपासना मिस्री राज्य की सर्वप्रमुख उपासना बन गई। यह उपासना इतनी प्रभावशाली थी कि जब अठारहवें राजवंश के राजाओं में से एक आमेनहोतेप चतुर्थ ने राजधानी थेबेस से बदलकर आखेत-आतेन ले जाकर उसे तोड़ने की कोशिश की तो उसे असफलता हाथ लगी। आमेनहोतेप चतुर्थ ने वहां एक अन्य देवता (आतेन) की पूजा शुरू की थी। उसके उत्तराधिकारी ने थेबेस को एक बार फिर साम्राज्य की राजधानी बना दिया और आमोन (या आमोन-रे) का वर्चस्व सुनिश्चित किया।

इन तब्दीलियों के दौरान ओसिरिस की उपासना भी रूपांतरित हुई। पुरानी बादशाहत काल में सिर्फ फैरोह को ओसिरिस के रूप में पुनर्जन्म लेने का विशेषाधिकार था। बाद में यह विशेषाधिकार शाही परिवार के सदस्यों को भी मिल गया। उसके बाद तो यह विशेषाधिकार प्रांतीय गवर्नरों, *नोमार्क* तक को हासिल हो गया। शासक वर्ग के अनेक हिस्सों को आसिरिस के रूप में पुनर्जन्म लेने के लिए कर्मकांड करने की इजाजत मिल गई। नतीजतन फैरोह की दिव्यता को बढ़ावा देने के संदर्भ में ओसिरिस की उपासना का महत्व घटता प्रतीत हुआ। ओसिरिस की उपासना बेहद लोकप्रिय रही। लेकिन पुरानी बादशाहत काल के बाद उसके संपूर्ण चरित्र में परिवर्तन आया। यहां,कोई यह टिप्पणी कर सकता है कि चौथे राजवंश के अंत तक मिस्रवासियों के दिमाग में फैरोह के देवता होने का विचार इतनी मजबूती से जम चुका था कि अब फैरोह की दिव्यता और अमरत्व के विचार को बरकरार रखने के लिए ओसिरिस के मिथक पर आश्रित होने की कोई जरूरत नहीं थी।

V

अब तक टिकी रही लिखित सामग्री समेत प्राचीन मिस्री सभ्यता के अवशेषों से विज्ञान और गणित के क्षेत्र में मिस्रवासियों की शानदार उपलब्धियों को लेकर कोई संदेह नहीं बचता। इन क्षेत्रों में खुद भी शानदार उपलब्धियां अर्जित करने वाले यूनानियों ने मिस्रवासियों के योगदान को स्वीकार किया है। मिस्रवासी सिद्धांत गढ़ने में ज्यादा निपुण नहीं थे।

लेकिन वे जबर्दस्त प्रेक्षक थे और विज्ञान तथा गणित के प्रश्नों का व्यावहारिक हल निकालने में दक्ष थे। पिरामिड इसका सर्वप्रमुख उदाहरण है।

नील नदी में बाढ़ के आकलन और सिंचाई या करारोपण के लिए जमीन के सर्वेक्षण के क्रम में आरंभिक मिस्री ज्यामिति और गणित विकसित हुए। लंबाई की आधिकारिक इकाई 52.3 सेंटीमीटर का एक शाही रेखाकार माप थी। उसका इस्तेमाल नील में जलस्तर मापने में पुरानी बादशाहत काल से किया जा रहा था। एक और रेखाकार माप थी जो आम उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल की जाती थी। यह शाही इकाई से थोड़ी छोटी थी।

मिस्रवासियों ने एक से नौ तक के अंकों के निरूपण के लिए चिह्न विकसित किए। वे शून्य की अवधारणा से अनजान थे। वे दस, सौ, हजार और उस तरह 10 लाख तक की संख्याओं के लिए अलग-अलग चिह्न इस्तेमाल करते थे। उनका हिसाब-किताब मुख्यत: जोड़ और घटाव पर आधारित था। गुणा के बारे में उनका ज्ञान प्राथमिक स्तर का था। गुणा में वे एक जटिल पद्धति का इस्तेमाल करते थे जो जोड़ के एक विस्तारित रूप से ज्यादा मिलता-जुलता था। यह भाग के लिए भी सही था। मिस्रवासी अपने खंडों में जिस एकमात्र गणक का इस्तेमाल करते थे वह '1' था। इसलिए उन्हें एक से बड़े गणक वाले खंडों को निरूपित करने के लिए एक लंबा पुनरावृत्ति तरीका अपनाना पड़ता था : 3/11 को 1/11+1/11+1/11 के रूप में दिखाया जाता था। उसको सरल करने के लिए आमतौर पर इस्तेमाल होने वाले खंडों मसलन 2/3 और 3/4 के लिए कुछ चिह्न इस्तेमाल किए जाते थे।

इन सीमाबद्धताओं के बावजूद मिस्रवासी अपने हिसाब-किताब में गजब के सटीक थे। यह उस समय और भी विलक्षण हो जाता है जब हम महसूस करते हैं कि पिरामिड जैसे विशाल पैमाने पर आकलन को बिलकुल सटीक होना होता था। अगर बहुत छोटी सी भी त्रुटि होगी तो डिजाइन पर अमल करने में वह कई गुणा बड़ी हो जाएगी। कंप्यूटर के इस आधुनिक युग में भी खूफू के महान पिरामिड के आयाम वाला कोई पिरामिडी ढांचा का डिजाइन बनाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा क्योंकि उसके लिए एक साथ ढेर सारे आकलन की जरूरत होगी। हम जानते हैं कि मिस्रवासियों ने पिरामिडों के संरेखण के लिए अपने कुछ खगोलीय अवलोकन का इस्तेमाल किया। उन्हें किसी वृत्त के व्यास और उसके क्षेत्रफल के बीच का संबंध मालूम था और उन्होंने पाई का मूल्य का आकलन खासा सही-सही किया।

आमतौर पर माना जाता है कि मिस्रवासी कुछ मिलाकर खगोलशास्त्र में ज्यादा प्रगति नहीं कर पाए। लेकिन उन्होंने एक व्यावहारिक पंचांग (calendar) बनाया। उसमें साल की लंबाई का आकलन लगभग सही-सही किया गया था। प्राचीन मिस्री पंचांग में एक साल में 365 दिन होते थे। साल तीस-तीस दिनों के बारह महीनों में बांटा गया था। मिस्री साल हमारे पंचांग के 19 जुलाई से शुरू होता था। पांच अतिरिक्त दिन पवित्र दिन

थे जो भोज के लिए अर्पित थे। हर साल एक चौथाई दिन को छोड़ देने से एक अरसे में गड़बड़ी आ जाती थी। उसे एक नए फैरोह के सत्तारोहण के साथ नए ढंग से पंचाग शुरू कर दूर किया जाता था। पिछले फैरोह के पंचांग को छोड़ दिया जाता था। इसका अर्थ यह हुआ कि हरेक चार साल पर पंचाग में एक दिन जोड़ने (जो हम हर लीप वर्ष में करते हैं) में असफलता से हुई त्रुटि एक हद से ज्यादा नहीं बढ़ती। इस तरह गड़बड़ी दुरुस्त करने योग्य सीमा में रखी जाती थी।

मिस्रवासी मानव शवों के संरक्षण में अत्यंत सफल थे। ममीकरण की कला चौथे राजवंश तक पक्की कर ली गई थी। शव के संरक्षण के लिए मानव शरीर-रचना विज्ञान और रसायनशास्त्र के बुनियादी सिद्धांतों की अच्छी जानकारी जरूरी है। यह एक अत्यंत विशेषज्ञतापूर्ण काम था और उसका कौशल लंबे समय तक प्रशिक्षण के बाद प्राप्त किया जाता होगा। बदकिस्मती से ममीकरण के लिए विकसित दक्षता चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में कोई योगदान नहीं कर सकी। शव को संरक्षित करने वाले विशेषज्ञों को मानव शरीर-रचना विज्ञान के संबंध में बहुत कुछ जानने का मौका मिला। यह तजुर्बा चिकित्सा विज्ञान को इस कारण फायदा नहीं पहुंचा सका कि चिकित्सा सामान्यतः पुरोहितों का क्षेत्र था जिन्हें संरक्षण की वास्तविक प्रक्रिया से सीधे तौर पर कुछ लेना-देना नहीं था। पुरोहित ने इलाज के लिए जादू-टोना के इस्तेमाल को प्राथमिकता दी। इस तरह चिकित्सा विज्ञान के विकास का एक महान ऐतिहासिक मौका खो गया।

अध्याय छह

कांस्ययुग से लौहयुग तक अनातोलिया और यूनान

तीसरी सहस्राब्दी ईसापूर्व (3000 और 2000 ईसापूर्व के बीच) अनातोलिया, यूनान और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के कुछ अन्य हिस्सों में अनेक कांस्ययुगीन संस्कृतियां उभरीं। सुमेरियाई और मिस्री सभ्यताओं के जन्म के लगभग 1000 साल बाद 2000 ईसापूर्व तक इस क्षेत्र में नई कांस्ययुगीन सभ्यताओं के उद्‌भव के लिए स्थितियां परिपक्व हो चुकी थीं। अनातोलिया और पूर्वी भूमध्यसागर के क्षेत्र के समाजों का ऐतिहासिक विकास इस चरण में पहुंच चुका था कि वे सभ्यता में प्रवेश के लिए तैयार थे। विश्व के इस हिस्से में दो महान कांस्ययुगीन सभ्यताओं (मेसोपोटामिया और मिस्र) की उपस्थिति ने पड़ोस के अनेक क्षेत्रों पर दूरगामी प्रभाव डाला। ज्यादातर पड़ोसी क्षेत्र विकास के मामले में उनसे अपेक्षाकृत पिछड़े थे। लेकिन उससे ज्यादा महत्वपूर्ण थे आंतरिक परिवर्तन जो एक लंबे समय से अनातोलियाई और पूर्वी भूमध्यसागरीय समाजों में घट रहे थे। यहां यह जिक्र करना जरूरी है कि इस क्षेत्र में व्यापार का एक व्यापक संजाल स्थापित हो गया था और उसमें अनेक समुदाय हिस्सा ले रहे थे।

तीसरी सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध (2500 ईसा पूर्व के बाद) की एक प्रमुख विशेषता विभिन्न कबीलों में हलचल और विस्थापन था। उनमें वह समूह भी शामिल है जिन्हें हम मोटे तौर पर हिंद-यूरोपीय कहते हैं। करीब 1500 साल तक पश्चिम एशिया और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में असंख्य कबीलों के आने का एक तांता लगा रहा। उनमें से अनेक कबीलों का इतिहास धुंधला है। लेकिन उस क्षेत्र में बसे कृषक समाजों के साथ उनकी अंत:क्रिया और संघर्षों को समय-समय पर इस या उस रूप में दर्ज किया गया है। ये विवरण हमें उन कबायली गतिशीलता को समझने में मदद करते हैं। विशेषज्ञों ने उन समूहों को उनकी भाषा के आधार पर वर्गीकृत किया है। दुर्भाग्यवश कभी-कभी इस भाषाई वर्गीकरण का इस्तेमाल इतिहास की नस्लवादी/प्रजातिवादी व्याख्या के समर्थन में करने की कोशिश की गई है। उन कबीलों की भाषाओं को मोटे तौर पर दो समूहों में, हिंद-यूरोपीय और सामी में बांटा जा सकता है। कुछ ऐसे भाषाई समूह हैं जिन्हें दोनों में से किसी भी खाने में नहीं रखा जा सकता है। सामी कबीलों में प्रमुख सीरिया का अमोरी कबीला था, जिसने मेसोपोटामिया में बेबीलोनियाई साम्राज्य की स्थापना में योगदान किया था और बाद में सीरिया और फलस्तीन का कनानी कबीला था। कनानियों की एक शाखा फिनिशियन ने भूमध्यसागरीय क्षेत्र के इतिहास में एक प्रमुख भूमिका निभाई। हिंद-यूरोपीय

समुदायों में हिंद-आर्याई, नेसियाई (हित्ती), यूनानी और मित्तानी शामिल थे। हुरियाई नामक एक अन्य समूह उत्तर इराक और सीरिया में बसे थे। हिंद-यूरोपीय या सामी के साथ उनकी भाषा की कोई समानता नहीं थी। हुरियाई समूह के अंदर ही हम एक हिंद-यूरोपीय समुदाय पाते हैं जिसका नाम मित्तानी था। करीब 1500 ईसापूर्व तक मित्तानी हुरियाइयों के बीच एक कुलीन वर्ग के रूप में उभर गए थे। वे इंद्र, मित्र और वरुण की पूजा करते थे। मित्तानी रूस के घास के मैदानों में स्थित अपने मूल निवास से अश्व प्रशिक्षण की कला लेकर आए। उन्होंने पश्चिम एशिया में घोड़ों को लोकप्रिय बनाया। एक अन्य कबीला कस्सी उत्तर इराक में जाग्रोस पर्वत की ओर चला गया। कस्सी और मित्तानी दोनों ही शायद एक ही उत्पत्ति थी। दक्षिण मेसोपोटामिया पर कस्सियों के हमलों से प्राचीन बेबीलोनियाई साम्राज्य का विनाश तीव्रतर हो गया।

I

अनातोलिया (कभी-कभी उसे एशिया माइजर भी कहते हैं) एक विशाल आयताकार क्षेत्र है जो आधुनिक तुर्की के एशियाई हिस्से के लगभग बराबर है। उत्तरी छोर पर यह कालासागर से घिरा है जबकि उसके दक्षिणी छोर पर भूमध्यसागर स्थित है। उसके पश्चिम में इजियन सागर है जिसमें अनेक यूनानी द्वीप स्थित हैं। यूनान की मुख्य भूमि इजियन सागर के दूसरे तट पर स्थित है। अनातोलियाई प्रायद्वीप के दक्षिण-पश्चिम भाग में एक प्रमुख पर्वत शृंखला—तौरस स्थित है। तौरस पर्वत अनातोलिया को उत्तर मेसोपोटामिया, सीरिया और लेबनानी तट से अलग करते हैं। अनातोलिया का मध्य भाग एक ऊंचा पठार है। यहां हम एक बार फिर यह चर्चा कर सकते हैं कि दक्षिण अनातोलिया उस पश्चिम एशियाई पट्टी का एक हिस्सा है जहां खाद्य उत्पादन की शुरुआत हुई थी। हम कायोनू की चर्चा कर चुके हैं जहां करीब 9500 बीपी में नियमित रूप से खेती हो रही थी। हम कातल हुयुक की नवपाषाणी बस्ती की भी चर्चा कर चुके हैं। करीब 32 हेक्टेयर में फैला कातल हुयुक को लगभग एक शहर कहा जा सकता है (करीब 7500 बीपी)। कातल हुयुक जैसी बस्तियों में 'शहरी क्रांति' के लिए जरूरी अनेक अवयव (व्यापार, विशेषज्ञता, तांबा की वस्तुओं का निर्माण, बड़ी आबादी) मौजूद थे। फिर भी दक्षिण अनातोलिया कांस्य युग में जल्द प्रवेश करने में असफल रहा। कातल हुयुक का 7000 बीपी (5000 ईसापूर्व) के बाद पतन हो गया।

पहला अनातोलियाई कांस्ययुगीन शहरी केंद्र के साक्ष्य इजियन तट पर प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग में स्थित हिसारलिक से मिले। वहां खुदाई से पता चला है कि हिसारलिक प्रसिद्ध ट्राय शहर का स्थल था। ट्राय की प्रारंभिक किलाबंद बस्ती (ट्राय-1) 3000 और 2500 ईसापूर्व के बीच फली-फूली। उस काल की कांस्ययुगीन बस्तियां

मध्य अनातोलिया में अलिसार और अलाका हुयुक में भी पाई गईं। ट्राय-1 के बाद एक नई और ज्यादा विकसित बस्ती ट्राय-2 (2500-2200 ईसापूर्व) उभरी। उस वक्त तक सामाजिक स्तरीकरण पूरी तरह हो चुका था। उत्कृष्ट स्वर्णाभूषण और कांस्य के हथियार वहां एक धनी शासक वर्ग की ओर इंगित करते हैं। पश्चिम एशिया और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों के साथ ट्राय के व्यापारिक संबंध थे।

करीब 2500 ईसापूर्व तक मध्य अनातोलिया में भी एक कांस्ययुगीन सभ्यता विकसित हुई। अनातोलिया के इस हिस्से में एक ऐसा समुदाय बसा जिसे इतिहास में 'हत्ती' के नाम से जाना जाता है। संभवत: वे वहीं के निवासी थे। उनकी भाषा दीगर एशियाई भाषाओं से मिलती-जुलती नहीं थी। हत्ती ने मध्य अनातोलिया में सभ्यता की नींव डाली। उनकी सभ्यता अनातोलिया के मध्य कांस्य युग (2500 से 1800 ईसापूर्व) के काल की है। अलाका हुयुक हत्ती सभ्यता के अनेक केंद्रों में से एक है। वहां से 13 शाही मकबरे मिले हैं। इस सभ्यता की समृद्धि धातु के प्रमुख निर्यातक के रूप में अनातोलिया की भूमिका से जुड़ी थी। यह याद रखना चाहिए कि मिस्र और मेसोपोटामिया दोनों जगह तांबा की कमी थी। उन्हें तांबा के बड़े पैमाने पर आयात पर निर्भर रहना पड़ता था। जैसे-जैसे उन सभ्यताओं का विकास हुआ, धातु की उनकी जरूरत भी बढ़ी। दूसरी तरफ अनातोलिया में तांबा (और साथ ही सोना तथा चांदी) के विशाल भंडार थे। 2000 ईसापूर्व तक सुव्यवस्थित रूप से उनका दोहन होना शुरू हो गया था। उस समय हम धातु की प्राप्ति के लिए मध्य अनातोलिया में सौदागरों की बस्तियां पाते हैं। ऐसी ही एक बस्ती तौरस पर्वत के उत्तर कानेश (आधुनिक कुलतेपे) में थी जहां मेसोपोटामियाई व्यापारी खरीदोफरोख्त करते थे। उनके कुछ व्यापारिक पत्र और हिसाब-किताब के बही खाते अब भी बचे हुए हैं। उनमें हम इस व्यापार की झलक पाते हैं। यह स्पष्ट है कि धातु के निर्यात ने हत्ती को अपने संसाधन बढ़ाने और इस तरह अपनी सभ्यता को समृद्ध बनाने का मौका दिया।

हिंद-यूरोपीय भाषाई परिवार से जुड़े एक समूह ने हत्ती मातृभूमि पर धीरे-धीरे कब्जा कर लिया। करीब 2000 ईसापूर्व में विभिन्न हिंद-यूरोपीय समुदाय अनातोलिया में घुसे। यह वह काल था जब दक्षिण यूरोप और पश्चिम एशिया में कबीलाई विस्थापन का सिलसिला जारी था। इन हिंद-यूरोपीय कबीलों में से एक नेसियाई अंतत: हत्ती समुदाय की भूमि पर बस गए। नेसियाई उस जगह के लिए बाहरी थे। लेकिन उन्होंने जल्द ही अपना राजनीतिक वर्चस्व स्थापित कर लिया। उसी के साथ उन्होंने हत्ती सभ्यता के अनेक तत्व अपना लिए। इस संश्लेषण से एक नई सभ्यता वजूद में आई जो 'हित्ती सभ्यता' के नाम से जानी ज़ाती है।

हित्ती सभ्यता (1800 से 1200 ईसापूर्व) का शुमार पश्चिम एशिया की महान सभ्यताओं में किया जाता है। उसे मेसोपोटामियाई और मिस्री सभ्यता के बाद तीसरा

सर्वाधिक महत्वपूर्ण सभ्यता माना जाता है। इस सभ्यता के विपुल अवशेषों में कई हजार लिखित ग्रंथ हैं जो मुख्यत: मिट्टी की पट्टिकाओं पर उत्कीर्ण है। हित्तियों का प्रमुख शहर हत्तूसास (बोगाजकोय) था। हत्तूसास लंबे समय तक हित्ती साम्राज्य की राजधानी रहा। बोगाजकोय में पुरातात्विक खुदाई में हित्ती इमारतें और किलेबंदी मिली हैं। कई हजार दस्तावेज भी बरामद हुए। उसने इतिहासकारों को हित्ती इतिहास की पुनर्रचना में खासी मदद की। दिलचस्पी की बात यह है कि इस स्रोत सामग्री को मिस्र और मेसोपोटामिया के समसामयिक साक्ष्यों से सहसंबद्ध किया जा सकता है।

हित्ती सरदारों ने 1800 ईसापूर्व के बाद मध्य अनातोलिया में अपना राज्यक्षेत्र बढ़ाना शुरू किया। प्रारंभिक हित्ती राजाओं की सूचियां उपलब्ध हैं लेकिन उनका कालक्रम संदिग्ध है। हित्ती राजाओं ने कभी-कभार मेसोपोटामिया पर भी हमला किया और वहां लूटपाट की। उनके आक्रमण के कारण ही बेबीलोनियाई साम्राज्य का विनाश (करीब 1800 ईसापूर्व) हुआ। 1500 ईसापूर्व के बाद किसी समय एक नए हित्ती राजवंश ने अनातोलिया के ज्यादातर हिस्से पर राज करना शुरू किया। इस राजवंश का संस्थापक तुधालियास द्वितीय था। तुधालियास के उत्तराधिकारियों में से एक सुप्पिलूलियूमास प्रथम ने एक शक्तिशाली हित्ती साम्राज्य स्थापित की। सुप्पिलूलियूमास प्रथम (1380-1345 ईसापूर्व) ने उत्तर सीरिया को हित्ती साम्राज्य में मिला लिया और हुरियाइयों को अधीन कर लिया। उसके शासन काल में हित्ती एक जबर्दस्त शक्ति बन गए।

सुप्पिलूलियूमास प्रथम के पुत्र मुर्सिलिस द्वितीय (1345-1315 ईसापूर्व) ने विजय और साम्राज्य को सुदृढ़ करने का अभियान जारी रखा। इससे उसका टकराव मिस्रवासियों के साथ हुआ जिन पर उस वक्त उन्नीसवें राजवंश का शासन था। बाद में एक अन्य हित्ती राजा हत्तूसिलिस तृतीय (1275-1250 ईसापूर्व) ने मिस्र के साथ गठबंधन कायम किया। मिस्र के उन्नीसवें राजवंश के फैरोह रामेसस द्वितीय ने हत्तूसिलिस तृतीय के साथ नजदीकी रिश्ता कायम किया और एक हित्ती राजकुमारी से शादी कर ली। ऐसा प्रतीत होता है कि इस गठबंधन का आधार मेसोपोटामिया की ओर से हमले के बढ़ते खतरे थे। हित्ती साम्राज्य करीब 1200 ईसापूर्व में ढह गया जब अनातोलिया पर कुछ कबीलों का हमला हुआ। समकालीन विवरणों में उन हमलावर कबीलों को 'समुद्र के लोग' बताया गया है।

जैसा कि हम पहले की देख चुके हैं, हित्ती सभ्यता अनेक हत्ती परंपराओं को साथ लेकर चली। राजशाही की हत्ती अवधारणा ने हित्ती राजतंत्र के विकास को प्रभावित किया। हत्ती सरदार और राजा मिस्र या मेसोपोटामिया के सम्राटों की तरह निरंकुश नहीं थे। हत्ती समाज में कबायली राजनीतिक संगठन के तत्व मजबूती से मौजूद थे। यह हित्ती राजव्यवस्था की प्रकृति में प्रतिबिंबत हुआ जहां राजा को असीमित अधिकार नहीं दिया गया था। राज्य को देवता के रूप में भी नहीं देखा जाता था और बहुत बाद तक राजा की

मृत्यु के बाद उसको देव सदृश नहीं माना जाता रहा। प्रारंभिक हित्ती राज्य मूलत: एक कुलीनतंत्र था और राजा अन्य योद्धा सरदारों के साथ सत्ता की साझेदारी करता था। ऐसा कहा जाता है कि शुरू में हित्ती राजा का सत्तारोहण उत्तराधिकार के वंशगत अधिकार के आधार पर नहीं बल्कि चुनाव से होता होगा। हम जानते हैं कि हित्ती राजाओं को राजतंत्र मजबूत करने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा। सुप्पिलूलियूमास के राजकाल में जाकर कहीं राजतंत्र की प्रकृति पूरी तरह से बदली। उसने अपने पूर्वजों की तुलना में कहीं ज्यादा अधिकार का इस्तेमाल किया।

हत्ती युग के मातृवंशीय सामाजिक संगठन के कुछ अवशेष हित्ती काल में भी बचे रहे। हत्ती समुदाय के राजनीतिक ढांचे में उत्तराधिकार महिला अनुक्रम में था। इसका मतबल यह हुआ कि सत्तारूढ़ राजा की *बहन* के बच्चों को राजगद्दी और विभिन्न उच्च पदों का वारिस बनने का विशेषाधिकार था। राजा की बहन को *तवानाना* की उपाधि मिलती थी। *तवानाना* के पास अच्छी-खासी शक्ति होती थी। राजा की मृत्यु के बाद *उसके* बेटे को राजगद्दी पर बैठने का अधिकार था जबकि उसकी बेटी को अब *तवानाना* की उपाधि और शक्ति प्रदान की जाती। यह रिवाज हित्तियों में भी जारी रहा। हित्ती काल में *तवानाना* की हैसियत बहुत मजबूत रही। उत्तराधिकार निर्धारण में अपनी भूमिका के अलावा वह मुख्य पुजारिन भी थी। कुछ कर विशेष रूप से *तवानाना* के लिए आरक्षित थे जिसके कारण यह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर थी।

बाद के हित्ती शासकों ने यह प्रथा समाप्त करने की कोशिश की। इस प्रथा के कारण उत्तराधिकार को लेकर झड़पें भी हुईं। अंतत: सुप्पिलूलियूमास ने *तवानाना* प्रणाली का चरित्र बदल दिया। उसने अपनी रानी को *तवानाना* घोषित कर दिया। इस तरह इसके बाद रानी, शासक राजा की पत्नी की हैसियत से *तवानाना* रही। इस उपाधि के साथ जुड़ी ताकत और विशेषाधिकार में खासी कमी आई। उत्तराधिकार का अधिकार अब *तवानाना* के पास नहीं रहा। वह राजा के पास चला गया। यह एक कदम था जिसे सुप्पिलूलियूमास ने राजतंत्र सुदृढ़ करने के लिए उठाया था। यहां यह ध्यान देना जरूरी है कि *तवानाना* की प्रथा इतने लंबे असरे से चली आ रही थी कि उसे पूरी तरह तज देना संभव नहीं था। राजा की बहन से रानी को हस्तांतरित कर दिए जाने के बावजूद इस उपाधि के साथ कुछ खास धार्मिक क्रियाएं जुड़ी रहीं। हमें कुछ रानियों की जानकारी है जिनका *तवानाना* की हैसियत से जबर्दस्त राजनीतिक दबदबा था । इस संबंध में सबसे प्रसिद्ध उदाहरण हत्तूसिलिस तृतीय की पत्नी पुदूहेपा का है। रामेसस द्वितीय के साथ पुदूहेपा का राजनयिक पत्राचार संरक्षित है। यह पत्राचार पुदूहेपा का एक स्वतंत्र राजनीतिक व्यक्तित्व पेश करता है।

बहरहाल यह नहीं समझ लेना चाहिए कि *तवानाना* की संस्था हित्ती समाज में महिलाओं की बेहतर स्थिति का एक संकेत थी। हित्ती समाज एक कठोर पितृसत्तात्मक

समाज था। हमारी यह समग्र धारणा हित्तियों की कानून संहिता से बनती है। मेसोपोटामिया की तरह हित्तियों ने भी कानून का एक विशाल संकलन छोड़ा है। बौगाजकोय के अवशेष में हमें मिट्टी की पट्टिकाओं पर कानून के दो समुच्चय मिले हैं। हरेक समुच्चय में 100 धाराएं हैं; अर्थात कुल मिलाकर हमारे पास 200 विभिन्न हित्ती कानून हैं। ये कानून विवाह, विरासत, अपराधों की सजा, विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य, और आर्थिक मामलों जैसे विविध विषयों के संबंध में हैं। करीब पच्चीस कानून विवाह और संबंधित मुद्दों से जुड़े हैं। गेर्डा लर्नर ने (अपनी कृति द *क्रिएशन ऑफ पैट्रियार्की* में) हम्मूराबी की संहिता और दीगर मेसोपोटामियाई कानूनों में प्रतिबिंबित महिलाओं की स्थिति से इन कानूनों में दिखने वाली उनकी हैसियत की तुलना करते हुए टिप्पणी की है कि हित्ती कानून अन्य कानून संहिताओं के मुकाबले महिलाओं की भूमिका ज्यादा सीमित करते हैं।

इन कानूनों से जाहिर है कि हित्ती राज में अनातोलिया का सामाजिक ढांचा वर्गों में पूरी तरह बंटा था। गुलामी प्रथा समाज में पूरी तरह स्थापित थी। संहिता में गुलामों से संबंधित प्रावधान हैं जिनमें मुक्त व्यक्तियों से गुलामों की शादी के छह कानून भी शामिल हैं। हित्ती कानूनों में सजा की अवधारणा हम्मूराबी की संहिता से कुछ हद तक भिन्न है। मेसोपोटामियाई कानून में प्रतिकार का बुनियादी उसूल 'आंख के बदले आंख और दांत के बदले दांत' है जिसका मतलब है कि अपराध करने वाले को ठीक उतनी ही शारीरिक यंत्रणा मिलनी चाहिए जितनी पीड़ित को उसके हाथों पहुंची है। उसके विपरीत हित्ती अंग-भंग करने जैसी सजाएं देने की जगह पीड़ित पक्ष की क्षतिपूर्ति करने पर ज्यादा जोर देते थे। अपराध करने वाला मुक्त व्यक्ति होता या होती तो उसे पीड़ित को पहुंचे नुकसान को पर्याप्त भरपाई करनी पड़ती थी। हित्ती कानून में एक अग्रगति यह हुई कि प्रतिकार महज अपराधी और पीड़ित के बीच सीमित कोई मामला नहीं था बल्कि वह दोषी व्यक्ति और राज्य के बीच का मामला था। अनेक मामलों में सजा की ठीक-ठीक मात्रा के निर्धारण में राज्य का हस्तक्षेप महत्वपूर्ण था और उसे विवाद के पक्षों पर अपने मामले खुद ही सुलझाने की छूट नहीं थी।

हित्ती धर्म में पुरानी अनातोलियाई विश्वासों के अनेक पहलुओं को समाहित किया गया था। एक तरफ स्थानीय देवी-देवताओं के इर्द-गिर्द केंद्रित अनेक उपासनाएं फली-फूलीं। उन उपासनाओं में विभिन्न मातृदेवियां शामिल थीं। पितृसत्तात्मक समाज के उद्भव के साथ अनेक देवियां तिरोहित हो गईं या उन्हें देवताओं के अधीन कर दिया गया। अनातोलिया के सर्वाधिक लोकप्रिय देवताओं में से एक तूफान-देवता था जिसकी विभिन्न रूपों में पूजा होती थी। इस क्षेत्र में सूर्य की उपासना व्यापक थी। सूर्य को कभी देवी और कभी देवता के रूप में पेश किया जाता था। दूसरी तरफ हित्ती राज्य द्वारा संरक्षित धर्म मुख्य रूप से तूफान-देवता तारू और सूर्य-देवी अरिना की पूजा पर आधारित था। हित्ती पौराणिकी में अरिना को तारू की पत्नी के रूप में चित्रित किया गया था। अरिना उपासना

की उत्पत्ति में हम मेसोपोटामियाई धर्म का प्रभाव देख सकते हैं। अरिना को इश्तर के साथ चिह्नित किया गया था। अनातोलिया में इश्तर प्रजनन क्षमता, युद्ध और चंद्रमा के साथ जुड़ी थी। हित्ती धर्म में सांड उपासना को भी प्रमुख स्थान प्राप्त था।

मेसोपोटामियाई सभ्यता ने हित्तियों पर गहरी छाप छोड़ी। सीरिया और मेसोपोटामिया पर हित्ती हमले तथा अनातोलिया के साथ मेसोपोटामियाई व्यापार संबंध ने हित्ती प्रभाव क्षेत्र में मेसोपोटामियाई सभ्यता के पहलुओं का प्रचार-प्रसार किया। शायद हित्तियों को कीलाक्षर लिपि के रूप में सबसे महत्वपूर्ण बेबीलोनियाई योगदान मिला। हित्तियों ने बहुत पहले अपनी भाषा में कीलाक्षर लिपि अपना ली थी। हित्ती शासक वर्ग की बोलचाल की भाषा नेसियाई (हिंद-यूरोपीय भाषा) थी। फिर भी उनके सरकारी दस्तावेज निरपवाद स्वरूप से अक्कादी भाषा में लिखे हैं।

हित्ती राजाओं को घोड़ों के द्वारा खींचे जाने वाले हल्के रथों के कारण अपने सैनिक अभियानों में सफलता मिली। मेसोपोटामियाई रथ भारी थे और उनके पहिए ठोस थे। उसके विपरीत हित्ती रथ अर (spoke) वाले थे। प्रसंगवश मिस्री भी इसी तरह के रथ इस्तेमाल करते थे। हित्ती और मिस्री रथों में मुख्य फर्क यह था कि जहां हित्ती रथ पर तीन योद्धा सवार हो सकते थे, मिस्री अपने युद्ध रथों पर दो योद्धाओं को बैठाते थे। घोड़ों की वंशवृद्धि और प्रशिक्षण से संबंधित हित्ती काल का एक प्रमुख ग्रंथ मिलता है। अनातोलिया के लिए घोड़े अपेक्षाकृत नए थे और यह ग्रंथ हित्ती सैनिक प्रबंध में उनके महत्वपूर्ण स्थान पर प्रकाश डालता है। यह आमतौर पर माना जाता है कि हित्तियों की सैनिक श्रेष्ठता का एक प्रमुख कारण हथियारों, खासकर तलवार के निर्माण में लोहे का इस्तेमाल था। पहले विशेषज्ञों की राय में लौह प्रौद्योगिकी हित्ती राज्य का एक सैनिक रहस्य था। जैसा कि हम देखेंगे कि यह विचार अब मान्य नहीं रहा। लेकिन यह संभव है कि हित्ती संभवत: अपने कुछ हथियारों के निर्माण में लोहे का इस्तेमाल करते हों।

II

हम देख चुके हैं कि पश्चिम एशिया में प्राक्-मृद्भांड नवपाषाणी संस्कृतियां 10500 बीपी के बाद विकसित होनी शुरू हुईं। यूरोप में खाद्य उत्पादन में संक्रमण 2000 से ज्यादा साल बाद हुआ। यूरोप के प्राचीनतम नवपाषाणी संस्कृतियों का काल नौवीं सहस्राब्दी बीपी में निर्धारित किया जा सकता है। अध्याय तीन में हमने दक्षिण-उत्तर यूरोप में खासकर यूनान में कृषि की शुरुआत का जिक्र किया था जहां आरगिसा-मागुला (करीब 8000 बीपी) में पहली यूरोपीय नवपाषाणी बस्तियों में से एक के साक्ष्य मिले हैं। दक्षिण यूरोप में खाद्य उत्पादन की उत्पत्ति एक विवादास्पद मुद्दा बना हुआ है। प्रागितिहासकार इस पर सहमत हैं कि यूरोपीय नवपाषाण पश्चिम एशियाई प्रभावों का नतीजा था। अनातोलिया

से दक्षिण-पूर्व यूरोप-इजियन और यूनान में जीवन-निर्वाह की नई शैली फैली। या तो अनातोलिया से आए प्रवासी कृषि के तरीके यूनान ले गए या फिर नवपाषाण क्रमिक रूप से पश्चिम एशिया से दक्षिण-पूर्व यूरोप की तरफ फैला।

गोर्डन चाइल्ड का विचार है कि प्रागैतिहासिक काल की ज्यादातर अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धियां मसलन खाद्य उत्पादन, मृद्भांड निर्माण, धातुकर्म, शहरी क्रांति इत्यादि पहले पश्चिम एशिया और मिस्र में हासिल की गईं। इस क्षेत्र से ये उपलब्धियां 'विसरण' (diffusion) की एक प्रक्रिया से विश्व के दूसरे हिस्से में गईं। चाइल्ड का विचार था कि हरेक प्रमुख अग्रगति एक खास क्षेत्र में एक बार हुई और फिर बाद में नई सूचना या सभ्यता दूसरे लोगों में फैली। उसके अनुसार यूरोप नवपाषाण और कांस्ययुग में विकास के क्षेत्र में आम तौर पर पिछड़ा रहा। यूरोप ने कृषि और धातुकर्म का ज्ञान पश्चिम एशिया से पाया। विसरण पश्चिम एशिया से अनातोलिया, अनातोलिया से इजियन, इजियन से यूनान और बाल्कन प्रदेश और फिर विभिन्न मार्गों से दक्षिण-पूर्व यूरोप से महाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि विसरण की प्रक्रिया में दो बिंदुओं के बीच हमेशा अंतराल होता था। इजियन में नवपाषाण और कांस्ययुग पश्चिम एशिया की तुलना में बाद में विकसित हुआ तथा यूरोप के अन्य भाग में जीवन निर्वाह की ये शैलियां और भी बाद में पहुंचीं। चाइल्ड के माडल को 'विसरणवादी' करार दिया जाता है। लेकिन उन्हें एक 'उदार विसरणवादी' माना जाता है क्योंकि वह स्थानीय संस्कृतियों के योगदान को नहीं नकारते। संस्कृतियां पूरी की पूरी एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित नहीं हो जातीं। लोग नई तकनीक ग्रहण करते थे तो उसमें अपना भी कुछ विशेष योगदान करते थे। इस तरह कुछ फेरबदल करते थे। ऐसे कुछ फेरबदल स्थानीय स्थितियों के अनुरूप ढालने की जरूरत के तहत किए गए। यह हरेक संस्कृति की विशिष्टता दिखाता है। विसरण के बावजूद एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति के बीच उल्लेखनीय फर्क रहा। विसरण से मूल संस्कृति की हूबहू प्रतिआकृति सृजित नहीं हो गई।

चाइल्ड का विसरणवादी माडल बीसवीं सदी के ज्यादातर हिस्से में यूरोपीय नवपाषाण और कांस्ययुगीन समाज के अध्ययन में छाया रहा। 1970 के दशक से कुछ विशेषज्ञों ने चाइल्ड की अवधारणाओं को चुनौती देना शुरू किया। उनमें सर्वप्रमुख कालिन रेनफ्रियू हैं जो विसरणवादी माडल के घोर आलोचक हैं। उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में दलील दी है कि यूरोपीय कृषि और धातुकर्म की स्वतंत्र उत्पत्ति हुई है। अर्थात वे देशज हैं और उन्हें कहीं बाहर से नहीं लाया गया है। रेनफ्रियू की दलीलें नए कालानुक्रम की उनकी व्याख्या पर आधारित हैं जो रेडियोकार्बन काल निर्धारण (देखें अध्याय 3) से उपलब्ध हुआ था। उसका कहना था कि परिशोधित तिथियां विसरणवादी व्याख्या का खंडन करती हैं। ये तिथियां उस काल से बहुत पहले की हैं जिसे चाइल्ड और अन्य प्रागितिहासकारों ने तय किया था। रेनफ्रियू ने सही तौर पर इंगित किया कि चाइल्ड की प्रमुख कृतियां उस

क्रांति से पहले प्रकाशित हुईं जो कार्बन-14 तकनीक से आईं। परिशोधित कालानुक्रम की मदद से अब यह दिखाया जा सकता है कि यूरोप में परिवर्तन होने में कोई उल्लेखनीय अंतराल नहीं था। अत: रेनफ्रियू ने कृषि और ताम्रकर्म में संक्रमण के लिए स्थानांतरण या विसरण की किसी संभावना को खारिज कर दिया। उनके लिए वे मुख्यत: यूरोपीय उत्पत्ति के थे।

पुरातात्विक खोजों की मौजूदा स्थिति के मद्देनजर रेनफ्रियू की दलीलों के साथ उसकी संपूर्णता में सहमत होना संभव नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कृषि के संबंध में आमतौर पर साक्ष्य विसरण या पश्चिम एशिया से दक्षिण-पूर्व यूरोप की दिशा में विसरण या प्रव्रजन को इंगित करते हैं। इस बहस का सार संकलन करते हुए एस.जे. डिलाएट हाल में प्रकाशित यूनेस्को की *हिस्ट्री आफ ह्यूमनिटी* (खंड-1) में कहते हैं कि अनातोलिया से आए प्रवासियों ने यूनान और इजियन को अपनाए गए पौधे और पालतू बनाए गए पशुओं के साथ-साथ मृद्भांडों से भी परिचित कराया। उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया कि यूरोप में उगाए गए पहले पौधे—गेहूं की एनकोर्न और एमर प्रजातियां—दक्षिण यूरोप में अपनी जंगली रूप में नहीं पाई जाती थी। उन्हें अवश्य ही पश्चिम एशिया से लाया गया होगा और कुछ परिवर्तनों के बाद उन्हें यूरोप के विभिन्न हिस्सों के पर्यावरण के अनुरूप अपना लिया गया होगा। बहरहाल हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि मध्यपाषाण काल के दौरान कुछ यूरोपीय समाज विकास की इस अवस्था में पहुंच चुके थे जहां कृषि में संक्रमण महज कुछ समय का मामला था।

आरगिसा-मागुला के अलावा यूनान के अन्य प्रारंभिक नवपाषाण स्थलों में सेसक्लो और फ्रांचथी गुफा शामिल हैं। प्राक्-मृद्भांड नवपाषाणी सेक्सलो संस्कृति 5000 ईसापूर्व की है। सेक्सलो एक बड़े गांव में विकसित हुआ जिसकी आबादी करीब 3000 की थी। क्रीट द्वीप पर पुरातात्विक खुदाई ने नवपाषाणी समुदायों की परत-दर-परत बस्तियां उजागर की हैं जो करीब 6000-5500 ईसापूर्व की हैं। यूनान क्रीट और इजियन के प्रथम खाद्य उत्पादक समाज गेहूं और जौ उपजाते थे तथा भेड़ और बकरियां पाला करते थे। उन्होंने अत्यंत उन्नत किस्म के मृद्भांड बनाना सीख लिया था।

जहां यूरोपीय कृषि के मामले में रेनफ्रियू की विसरणवाद विरोधी दलीलें मान पाना मुश्किल है, धातुकर्म का मामला कुछ अलग है। 1960 और 1970 के दशक से जो पुरातात्विक साक्ष्य इकट्ठा हुए उनके नतीजे के तौर पर यूरोप में धातुकर्म की शुरुआत की कहानी पूरी तरह बदल गई है। उन साक्ष्यों से उभरी नई तसवीर ने रेनफ्रियू के इन विचारों की पुष्टि कर दी है कि यूरोपीय धातु पश्चिम एशिया का ऋणी नहीं है, बल्कि उसकी उत्पत्ति स्वतंत्र रूप से वहीं स्थानीय स्तर पर हुई है। अब यह निश्चित प्रतीत होता है कि यूरोप के बाल्कन क्षेत्र ने इजियन के किसी भाग की तुलना में तांबा का इस्तेमाल पहले करना शुरू कर दिया था। इसका अर्थ हुआ कि बाल्कन की धातु प्रौद्योगिकी पश्चिम

एशिया से उधार नहीं ली गई थी। बाल्कन प्रदेश इजियन सागर की तुलना में अनातोलिया से ज्यादा दूरी पर स्थित हैं। विसरणवादी माडल के मुताबिक धातुकर्म यूनान और इजियन में फैलने के *बाद* बाल्कन प्रदेश और मध्य यूरोप पहुंचती। चूंकि यह वास्तविकता नहीं है, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यूरोपीय धातुकर्म की परंपरा स्वतंत्र थी। सच्चाई यह है कि धातुकर्म की कुछ यूरोपीय तकनीकें पश्चिम एशिया की तुलना में ज्यादा पुरानी हैं।

मानव ने धातु की पहली जो वस्तु गढ़ी उसका स्रोत प्राकृत तांबा या लगभग शुद्ध तांबा था जो अपनी प्राकृतिक अवस्था में धरती की सतह पर मिलता है। ऐसी चट्टानें जो जोर से लगातार टकराने पर पत्थर की तरह टूटती या चूर-चूर नहीं होतीं, प्राकृत तांबा के गुणों के साथ बढ़ते परिचय ने दिखाया कि वह दूसरे पत्थरों से भिन्न हैं। उस पर लगातार चोट करने से उसको विभिन्न शक्ल दी जा सकती है। तांबा का इस्तेमाल करीब 6000 ईसापूर्व में अनातोलिया (कातल हुयुक) में छोटे आभूषण बनाने में हुआ। कुछ समय बाद तांबा की वस्तुएं उत्तर इराक और ईरान में बनने लगीं। करीब 5000 ईसापूर्व तक बाल्कन के विन्का (यूगोस्लाविया) और वरना (बुल्गारिया) में ताम्रकर्म शुरू होने के साक्ष्य मिले हैं। शुरू में युगोस्लाविया और बुल्गारिया में धातु की वस्तुएं प्राकृत तांबा को ठंडी अवस्था में चोट कर बनाई जाती थीं। जल्द ही बाल्कन प्रदेश में तांबा के प्रगलन की शुरुआत हो गई। पश्चिम एशिया में प्रगलन की तकनीक संभवत: कुछ बाद में इस्तेमाल हुई। पश्चिम एशिया में तांबा के अयस्क के प्रगलन से संबंधित प्राचीनतम साक्ष्य तेपे यह्या (3800 ईसापूर्व) से मिले हैं। इस प्रक्रिया में अशुद्धी दूर करने के लिए टुकड़ों को गर्म किया जाता था और फिर पीट-पीट कर उन्हें अपेक्षित शक्ल दी जाती थी।

बाल्कन में मृद्भांडों के निर्माण में इस्तेमाल होने वाली भट्टियां इतनी विकसित थीं कि उनका इस्तेमाल धातुकर्म में किया जा सकता था। हम पहले ही मृद्भांड-निर्माण और तांबा के प्रगलन के बीच के प्रौद्योगिकीय संबंधों की चर्चा कर चुके हैं। यह उल्लेखनीय है कि अब तक के प्राचीनतम तांबा खान यूगोस्लाविया (रुदना ग्लाबा) और बुल्गारिया (आइबुनार) के हैं। खानों से प्राप्त अयस्कों के प्रगलन से तांबा का उत्पादन धातुकर्म की विकास की दिशा में एक दूसरा प्रमुख कदम था। यूगोस्लाविया और बुल्गारिया के प्रागैतिहासिक धातु विशेषज्ञों ने तांबा के औजार और आभूषण गढ़े जो श्रेष्ठ कारीगरी के नमूने हैं। संयोगवश उनकी सोने की वस्तुएं भी आला दर्जे की कारीगरी के नमूने हैं। बदकिस्मती से हमें उन संस्कृतियों के बारे में बस इतना ही मालूम है कि वे अपने हाथों से बनाई धातु की वस्तुओं का व्यापार करते थे।

यूनान और इजियन में तांबा युग करीब 3500 ईसापूर्व में विकसित हुआ। 3000 ईसापूर्व के कुछ समय बाद समूचे बाल्कन, यूनान और पश्चिम एशिया में तांबा के साथ टिन (या आर्सेनिक) मिश्रित कर कांस्य बनाया जाने लगा था। मिस्री अनातोलिया और इजियन के बहुत बाद कांस्य बनाने की तकनीक पर महारत हासिल कर सके। तीसरी

सहस्राब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्द्ध के दौरान क्रीट द्वीप पर कांस्ययुगीन संस्कृतियां विकसित हो रही थीं। पूर्वी भूमध्यसागर में स्थित यह चौकोर बड़ा द्वीप यूनान और इजियन की दक्षिणी सीमा को रेखांकित करता है। 2000 ईसापूर्व में वह एक शानदार कांस्ययुगीन सभ्यता, मिनोअन सभ्यता का स्थल बना।

III

मिनोअन सभ्यता को यूरोप की पहली कांस्ययुगीन सभ्यता कहा जा सकता है। प्राचीन यूनान के काल विभाजन के संदर्भ में यह माना जा सकता है कि शहरी क्रांति का पहला चरण मिनोअन सभ्यता के साथ शुरू हुआ। यह सभ्यता बीसवीं सदी की शुरुआत तक ओझल थी। सर आर्थर एवांस के नेतृत्व में हुई खुदाई से वह प्रकाश में आई। एवांस ने उस सभ्यता का नामकरण प्रसिद्ध राजा मिनोस पर किया जो यूनानी पौराणिकी में क्रीट से जुड़ा है। हम अब भी मिनोअन के राजनीतिक इतिहास के बारे में कुछ नहीं जानते हैं। लेकिन अनेक मिनोअन शहरों के अवशेष क्रीट में मिले हैं। सबसे जबर्दस्त खोज नौसास (Knossos) में हुई।

करीब 2000 ईसापूर्व तक क्रीट में कांस्ययुग परिपक्व हो चुका था। उस समय के लगभग शहरी क्रांति पूरी हो चुकी थी और द्वीप पर अनेक प्रमुख शहर विकसित हो चुके थे : नौसास, फैस्तास और मालिया। उन शहरों में बड़े महल परिसर थे। नौसास का महल बड़ा प्रसिद्ध है और वह कलात्मक उपलब्धियों का एक उल्लेखनीय नमूना है। मिनोअन महलों का डिजाइन इस तरह किया गया कि वे सुंदर और आकर्षक दिखें। दीवारों को भित्तिचित्रों (पलस्तर सूखने से पहले जल मिश्रित रंगों से चित्रण) से सजाया गया था। महलों में बड़े-बड़े भंडारघर और कारखाने हैं। लेकिन महल किलाबंद नहीं हैं। यह दिखाता है कि मिनोअन समाज अंदर से बहुत स्थिर था। शासक वर्ग बल पर सिर्फ एक सीमित हद तक भरोसा करते थे। और सर्वोपरि, सुरक्षात्मक दीवार की अनुपस्थिति दिखाती है कि मिनोअनों के पास बाहरी आक्रमण से प्रभावी रूप से निबटने के लिए पर्याप्त नौसैनिक बल था। उनकी नौसेना समुद्री डाकुओं के हमलों को रोकने में भी सक्षम थी।

मिनोअन सभ्यता 2000-1600 ईसापूर्व के काल में अपने उत्कर्ष तक पहुंची। मिनोअन उत्पाद मसलन कलश और जेवरात विशिष्ट हैं और मिनोअन लोगों की प्रतिनिधि हैं। इस सभ्यता का सौंदर्यबोध सुस्पष्ट रूप से मिनोअन था और वह उस जैसा कतई नहीं था जिससे हम समकालीन पूर्वी भूमध्यसागरीय और पश्चिम एशियाई संस्कृतियों से दो-चार होते हैं। मिनोअन कला से नजाकत और गर्मजोशी झलकती है। वे ज्यादातर प्रकृति या दैनंदिन जीवन के दृश्यों को अपनी चित्रकारी का विषय बनाते थे। ऐसे में

आश्चर्य नहीं कि मिनोअन वस्तुओं की जबर्दस्त मांग थी।

मिनोअन सभ्यता के उदय के ही समय पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों और इजियन के बीच व्यापारिक संपर्कों में तेजी आई। क्षेत्र के मानचित्र पर एक निगाह डालने से क्रीट द्वीप की उपयुक्त स्थिति स्पष्ट हो जाती है। मिनोअन लोगों ने अपनी अनुकूल भौगोलिक स्थिति का फायदा उठाकर एक व्यापक व्यापारिक संजाल बनाया। यह कहना सही होगा कि लंबी दूरी का सामुद्रिक व्यापार और विनिमय मिनोअन अर्थव्यवस्था की नींव था। मिनोअन जहाज मिस्र, अनातोलिया, लेबनानी तट, साइप्रस और इजियन से व्यापार करते। क्रीट से व्यापारी ऊन, वस्त्र, सुगंधित तेल, जेवरात और कलश भूमध्यसागरीय क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में ले जाते।

मिनोअन शहर और बंदरगाह-नगर क्रीट के ग्रामीण अंचलों की कृषक अर्थव्यवस्था से जुड़े थे। ग्रामीण इलाकों से वस्तुएं विनिमय और पुनर्वितरण के लिए शहरों में लाई जातीं। महल परिसर इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते। यह कहा जाता है कि मिनोअन महल महज राजनीतिक सत्ता के केंद्र या मिनोअन कुलीनों के निवास-स्थल नहीं थे। ये परिसर एक व्यापक क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों के नियमन में लगे थे। वस्तुएं भंडारण, प्रसंस्करण, पुनर्वितरण या विदेशी व्यापार के लिए महलों में ले जाई जाती थी।

भेड़ पालन और ऊन उत्पादन मिनोअन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण हिस्सा थे। साथ ही मिनोअन कृषि में गेहूं की खेती के अतिरिक्त दो नए खाद्य पदार्थ जैतून और अंगूर शामिल थे। भूमध्यसागरीय मिट्टी और जलवायु के तहत जैतून और अंगूर की खेती से गुणात्मक रूप से अनूठी विशेषता बन गए। जल्द ही गेहूं के साथ जैतून और अंगूर यूनान और रोम की तीन प्रमुख फसलों के रूप में स्थापित हो गए। जैतून एक छोटा फल है जो पेड़ों पर होता है। इस फल का प्रसंस्करण मुख्यत: उसका शानदार तेल प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अंगूर की लताओं से अंगूर मिलते हैं। अंगूर शराब बनाने का मुख्य साधन है। जैतून और अंगूर की खेती केंद्रित करने का एक फायदा यह है कि उन्हें उन इलाकों में उपजाया जा सकता है जहां समतल कृषि-योग्य भूमि बहुत कम है। हमें ध्यान में रखना चाहिए कि यूनान और इजियन द्वीप में विशाल उर्वर एवं समतल भूमि नहीं है। वहां समतल कृषि भूमि की कमी है और ज्यादातर भूखंड छोटे-छोटे हैं। इसलिए गेहूं और अन्य अनाज को जैतून तथा अंगूर के साथ मिलाकर उपजाना उचित जान पड़ता है क्योंकि उन्हें एक ही जगह की दरकार नहीं होती। साथ ही, कृषि की इस शैली में विनिमय अनिवार्य हो जाता है क्योंकि जैतून, शराब और ऊन भोजन के रूप में उपयोग नहीं किए जा सकते। महल परिसर उन विनिमयों में भूमिका निभाते थे और तेल, शराब तथा वस्त्रों के उत्पादन के केंद्र थे।

मिनोअन ने मुख्यत: वस्तुओं को सूचीबद्ध करने के उद्देश्य से लेखन का विकास किया था। शुरुआत में उनके संकेताक्षर संशोधित चित्र होते थे। उन्होंने बाद में एक लिपि

ईजाद की जिसे 'लिनियर ए' का नाम दिया गया है। हम इस लिपि की भाषा नहीं जानते हैं। यह लिपि अभी पढ़ी और समझी नहीं जा सकती है। लेकिन उस लिपि में दर्ज अब तक मौजूद विवरणें संभवत: व्यापार और विनिमय से संबंधित हैं। क्रीट में एक और लिपि भी इस्तेमाल की जाती थी। उसे 'लिनियर बी' कहते हैं। यह मुख्यत: मिट्टी की पट्टिकाओं पर मिली है जिन्हें पकाया नहीं गया है। किसी कालखंड में लिनियर बी लिपि यूनानी लिपि के प्राथमिक प्रारूप में रूपांतरित हो गई। हम कुछ देर बाद इस लिपि पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

करीब 1400 ईसापूर्व में मिनोअन सभ्यता का अचानक अंत हो गया। मुख्य भूमि यूनान से संचालित हमलों ने मिनोअन के पतन में भूमिका निभाई। इस घटना को ठीक से समझने के लिए हमें यूनान में एक नई कांस्ययुगीन सभ्यता, माइसीनी सभ्यता, के उद्भव पर विचार करना होगा।

IV

जब क्रीट में मिनोअन सभ्यता की नींव रखी जा रही थी, यूरोपीय यूनान में हिंद–यूरोपीय समुदाय कब्जा कर रहे थे जो एक प्रारंभिक किस्म की यूनानी या आद्य–यूनानी भाषा बोलते थे। इस अध्याय के शुरू में हमने खासकर करीब 2500 ईसापूर्व के बाद हिंद–यूरोपीय कबीलों के प्रव्रजनों का जिक्र किया था। 2200 और 2000 ईसापूर्व के बीच उनमें से कुछ कबीले यूनान में प्रवेश कर गए और वहीं बस गए। उन कबीलों ने अंतत: माइसीनी सभ्यता नामक एक प्रमुख कांस्ययुगीन सभ्यता को जन्म दिया। प्रव्रजियों की नई लहरें उस क्षेत्र में घुसती रहीं और यूनानी भाषा का विकास होता गया। यूनानी भाषी समुदायों का मुख्य भूमि यूनान के ज्यादातर हिस्सों पर वर्चस्व हो गया।

माइसीनी सभ्यता (करीब 1600–1200 ईसापूर्व) की खोज उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में हेनरिक श्लीमान के प्रयासों से हुई। माइसीनी की खोज के अतिरिक्त ट्राय में खुदाई की शुरुआत भी श्लीमान की ही उपलब्धि थी। मुख्य भूमि यूनान पर इस पहली कांस्ययुगीन सभ्यता का नामकरण माइसीनी के स्थल पर किया गया। माइसीनी (यूनानी नाम माइकेने या माइकेनाइ है; माइसीनी उसका लातीनी रूप है) कोरिंथ के निकट मुख्य भूमि के दक्षिणी भाग में स्थित है। दंतकथाओं के हिसाब से वह पर्सियस द्वारा स्थापित माना जाता है। अन्य प्रमुख माइसीनी स्थलों में टिराइंस और पाइलोस है। पाइलोस के महल में कांस्य की वस्तुओं और वस्त्र के निर्माण के लिए विशाल कारखाने मिले हैं।

माइसीनियों ने मिनोअन सभ्यता से केंद्रीकृत पुनर्वितरण प्रणाली और लिनियर बी लिपि सहित ढेर सारे तत्व ग्रहण किए। माइसीनियों का विदेशी व्यापार व्यापक था। तेल, मृद्भांड और वस्त्र मुख्य निर्यात थे जबकि वे सोना, तांबा और टिन आयात करते थे।

लेकिन माइसीनी सभ्यता का समग्र-चरित्र मिनोअन सभ्यता से बहुत भिन्न था। जब हम माइसीनियों की चर्चा करते हैं तो हम असल में योद्धा सरदारों के शासन वाले स्वतंत्र राज्यों का जिक्र करते हैं। आम तौर पर उन सरदारों की उपाधि *वानाक्स* या *अनाक्स* होती थी और वे किलाबंद शहरी केंद्रों से अपने क्षेत्रों पर राज करते थे। मिनोअन महल परिसर किलाबंद नहीं थे। उसके विपरीत माइसीनी शहर में मजबूत किले होते थे।*वानाक्स* के किले माइसीनी शहरों के केंद्र बिंदु थे। माइसीनी राज्यों पर शक्तिशाली योद्धा कुलीन वर्ग का राज था। योद्धा अपनी रियासत बढ़ाने के लिए अपने पड़ोसियों के साथ लगातार उग्र संघर्ष में उलझे रहते थे। इस सभ्यता को कभी-कभी 'योद्धा सभ्यता' भी कहा जाता है। धनी माइसीनी सरदारों को मधुमक्खी के छत्ते के आकार वाले मकबरों (*थोलोइ*) या विशाल कक्ष वाले मकबरों में दफन किया जाता था। माइसीनी के अलावा कुछ अन्य राज्य पाइलोस, थेबेस और ऑर्कोमेनोस थे। माइसीनियों ने क्रीट का ज्यादातर हिस्सा अपने अधीन कर लिया था और द्वीप पर अपने राज्य स्थापित कर दिए थे। नौसास उन राज्यों में से एक का केंद्र था।

करीब 1200 ईसापूर्व तक माइसीनी सभ्यता टिकी। यह वह समय था जब हित्ती सभ्यता भी खत्म हो गई। 1200 ईसापूर्व में पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में कांस्ययुगीन संस्कृतियों के एक साथ खात्मे के साथ ही कबीलाई प्रव्रजन का एक और दौर चला। उस वक्त मिस्र और मेसोपोटामिया भी संकट से गुजर रहे थे। प्राचीन यूनानी इतिहास में पारंपरिक काल निर्धारण में 1200 से लेकर 800 ईसापूर्व की चार सदियों को 'अंधकार युग' के रूप में पेश किया जाता है। माइसीनी शहरों का पतन हो चला, लिनियर बी लिपि लुप्त हो गई तथा व्यापार बाधित हुआ। इस काल की स्रोत सामग्री अत्यंत कम है। इसलिए इस काल के लिए 'अंधकार युग' का शब्द इस्तेमाल किया जाता है।

समझा जाता है कि करीब 800/750 ईसापूर्व में यूनान का 'अंधकार युग' समाप्त हो गया जब दो महान यूनानी महाकाव्य *इलियड* और *ओडिसी* रचे गए। वे महाकाव्य यूनानी इतिहास के एक मोड़ को रेखांकित करते हैं। उनकी रचना को होमर नामक एक कवि से जोड़ा जाता है। होमर की ऐतिहासिकता की पुष्टि नहीं हुई है। यह भी निश्चित नहीं किया जा सका है कि दोनों महाकाव्यों का रचयिता एक ही व्यक्ति है। हमारे लिए बस इतना ही प्रासंगिक है कि दोनों महाकाव्य अत्यंत समृद्ध ऐतिहासिक स्रोत हैं।*इलियड* और *ओडिसी* की रचना के साथ ही करीब चार सदियों के अंतराल के बाद एक बार फिर लिखित विवरण उपलब्ध होते हैं।

ये दो कृतियां महाकाव्य परंपरा के हिस्सा हैं।*इलियड* करीब 16000 पंक्तियों की एक लंबी कविता है।*ओडिसी* थोड़ी छोटी और करीब 12000 पंक्तियों की कविता है। *इलियड* की मुख्य विषयवस्तु ट्राय के खिलाफ यूनानी राज्यों के एक गठबंधन का युद्ध है। महाकाव्य में गठबंधन के सदस्यों को सामूहिक रूप से 'एकियन' कहा गया है।

कहानी के मुताबिक अगैमेमनान (माइसीनी का राजा) के नेतृत्व में अनेक यूनानी राज्यों ने ट्राय नगर के साथ दस साल तक जंग की। *इलियड* ट्रोजन युद्ध के अंतिम कुछ दिनों का एक विस्तृत विवरण पेश करती है। *ओडिसी* युद्ध के खात्मे के बाद युद्ध के नायकों में से एक ओडिसियस की घर वापसी के क्रम में अभियानों की दास्तान कहती है। इन विवरणों में अर्थव्यवस्था, धर्म, देवकथा, आस्था, भोजन इत्यादि समाज के लगभग सभी पहलुओं को छुआ गया है।

यह आम तौर पर माना जाता है कि *इलियड* और *ओडिसी* माइसीनी युग में होने वाली घटनाओं से प्रेरणा पाकर रची गई हैं। इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि इन महाकाव्यों की कुछ गाथाएं उस काल से ली गई हैं जब माइसीनी सभ्यता फल-फूल रही थी। इनमें एक पुराने दौर की याद है जब महान नायक, राजा और योद्धा होते थे। यह समझा जाता था कि होमर के महाकाव्यों में माइसीनी समाज का चित्रण है। उन कविताओं की पुन: व्याख्या, खासकर व्यापक पुरातात्विक साक्ष्यों के आलोक में हुई व्याख्या से विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि *इलियड* और *ओडिसी* बाद के 'अंधकार युग' की कृतियां हैं।

हो सकता है कि महाकाव्यों की दंतकथाओं की उत्पत्ति माइसीनी युग की हो। लेकिन अनुश्रुति के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण के क्रम में रूपांतरित हो गई होगी। माइसीनियों की वीर गाथा बार-बार दोहराने की प्रक्रिया में उसमें कुछ नई बातें जुड़ गई होंगी और कुछ बातें गुम हो गई होंगी। महाकाव्य की परंपरा मनोरंजन का एक रूप थी। कवि कविताएं रचते और उनमें से उन गाथाओं को चुन-चुन कर सुनाते जिनसे श्रोता अवगत होते। हम इस संभावना से इनकार नहीं कर सकते कि उनमें से कुछ गाथाएं सच्ची घटनाओं पर आधारित हो सकती हैं। मामला जो भी हो, 800 ईसापूर्व के लगभग किसी ने उस समय की लोकप्रिय अनेक दंतकथाओं को संकलित कर या उनकी रचना कर उन्हें *इलियड* और *ओडिसी* के रूप में लिख दिया। चूंकि उनकी रचना 'अंधकार युग' के अंतिम वर्षों में हुई, उनमें उस काल की रोजाना जिंदगी का यथार्थ चित्रण है।

हम पाते हैं कि कुछ मिलाकर तथाकथित 'अंधकार युग' उतना अंधकारपूर्ण नहीं था। 1200 से 800 ईसापूर्व के काल को दो खंडों में बांटा जा सकता है: (1) 1200 से 1050 ईसापूर्व और (2) 1050 ये 800 ईसापूर्व। पहले कालखंड के दौरान कबायली आक्रांताओं ने माइसीनी सत्ता केंद्रों को रौंद डाला। शहरों के निवासी बिखर गए और लेखन को धक्का लगा। 1050 ईसापूर्व के बाद पुनरुत्थान के कुछ संकेत दिखे। यूनानी भाषी लोगों ने पूरे यूरोपीय यूनान पर कब्जा कर लिया और इजियन सागर का उपनिवेशीकरण कर दिया। इजियन द्वीपों और अनातोलिया के पश्चिमी तट को यूनानी भाषाई क्षेत्र में शामिल कर लिया गया। क्रीट, मुख्य भूमि यूनान, इजियन और पश्चिमी अनातोलिया के तटीय इलाकों में यूनानी भाषी समुदायों के बसने से समूचा क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से एकताबद्ध हो गया। इस काल में प्रमुख यूनानी बोलियां विकसित हुईं। तीन महत्वपूर्ण बोलियां थीं :

आयोनिक जिसमें एथेंस में बोली जाने वाली उपबोली ऐटिक भी शामिल है; डोरिक; और एयोलिक। होमर के महाकाव्य आयोनिक के एक रूप में लिखे गए हैं।

'अंधकार युग' में यूनानी राजनीतिक रूप से बड़ी संख्या में लघु राज्यों में विभाजित थे। उन राज्यों पर सीमित शक्ति वाले राजा या सरदार राज करते थे। हो सकता है कि दो-चार शक्तिशाली राजा भी रहे हों, लेकिन 'अंधकार युग' के उत्तरार्द्ध में समग्र रुझान राजशाही नियंत्रण के कमजोर पड़ने की दिशा में था। *इलियड* और *ओडिसी* के महान नायक वास्तव में छोटे-मोटे रियासतों पर राज करने वाले योद्धा सरदार थे। यह जाहिर है कि उनके अपने समुदाय में उन्हें सर्वोच्च अधिकार प्राप्त नहीं था। अकसर उन सरदारों को योद्धा कुलीन वर्ग के अन्य सदस्यों के साथ राजनीतिक सत्ता बांटनी पड़ती थी। 'अंधकार युग' के बाद यूनान में चारों तरफ फली-फूली कुलीनतंत्रीय राजनीतिक ढांचा की जड़ें इन्हीं परंपराओं में थीं।

ओडिसी उस राजनीतिक व्यवस्था को उजागर करती है जो करीब 1000 ईसापूर्व के बाद यूनान में उभरी थी। इस महाकाव्य का नायक ओडिसियस शक्ति और बहादुरी में महामानव जैसे कारनामे अंजाम देने में सक्षम है। उसे एक जबर्दस्त योद्धा के रूप में पेश किया गया है जिससे समूचे यूनान में लोग डरते हैं। लेकिन खुद अपनी ही रियासत में उसकी अपनी स्थिति खासी असुरक्षित है। महाकाव्य ओडिसियस को इथाका की एक नन्हीं रियासत का शासक दिखाता है। जब वह ट्रोजन के युद्ध पर बाहर गया होता है, उसके परिवार को लगातार सताया जाता है। कबीला के प्रतिद्वंद्वी नेता उसकी लंबी गैरहाजिरी का फायदा उठाकर सत्ता हड़पने की कोशिश करते हैं। जब हम ओडिसियस की हैसियत का गहन अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि वह एक छुटभैया योद्धा सरदार से ज्यादा कुछ नहीं है जिसे अपनी हैसियत बरकरार रखने के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ता है। यहां हम यह बात जोड़ सकते हैं कि ट्राय की खुदाई से यह तथ्य सामने आया कि 'अंधकार युग' के उत्तरार्द्ध में ज्यादातर यूनानी राजाओं ने अत्यल्प संसाधनों के सहारे राज किया। किस्से कहानियों का प्रसिद्ध ट्राय नगर की वास्तविकता बेहद नाउम्मीद करने वाली है। एम.आई. फिनले (*दि वर्ल्ड आफ ओडिसियस*) के शब्दों में *इलियड* के काल से मेल खाने वाली ट्राय बस्ती, ट्राय-7 गरीबी से त्रस्त एक दयनीय छोटा सा स्थान था जहां न तो कोई खजाना था और न ही कोई विशाल इमारत, किसी महल का जरा भी आभास देने वाला तो हरगिज नहीं। इस तरह 'अंधकार युग' के दौरान यूनानी शासक लूट का माल हथियाने के लिए अकसर हमला करते रहते थे और ट्रोजन युद्ध (अगर यह सचमुच हुआ है तो) ऐसी ही एक घटना थी।

'अंधकार युग' के अंत पर यूनान में लेखन की फिर शुरुआत हुई। 1200 ईसापूर्व के माइसीनी लोगों के द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली लिनियर बी लिपि छोड़ दी गई थी। होमर के युग तक सैकड़ों वर्ष का कोई लिखित विवरण नहीं है। यह संभव है कि माइसीनियों

के पतन के बाद व्यापार बाधित हुआ और उसने लेखन को अप्रासंगिक बना दिया। ऐसा हो सकता था क्योंकि लिनियर बी पट्टिकाओं में मुख्यत: हिसाब-किताब और तालिका दर्ज थे। जब 'अंधकार युग' के अंतिम वर्षों में यूनानी फिर से एक लिपि इस्तेमाल करने लगे तो वह माइसीनियों से भिन्न लिपि थी। नई लिपि फिनिशियनों से ली गई थी। जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं फिनिशियन सामी लोग थे और कनानी समुदाय की एक शाखा थे।

फिनिशियन समुदाय की जड़ें लेबनानी तट से लगे ताइर, सिदोन, बाइबलास और उगारित की व्यापारिक बस्तियों में थीं। अक्षर के विकास में मानव सभ्यता को स्थायी योगदान देने के अतिरिक्त फिनिशियनों ने भूमध्यसागरीय क्षेत्र के साथ आदान-प्रदान को बढ़ावा देने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाई। करीब 1000 ईसापूर्व से उन्होंने पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में हर जगह व्यापारिक बस्तियां स्थापित कीं। बाद में उन्होंने पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में भी व्यापारिक बस्तियां स्थापित कीं। भूमध्यसागरीय क्षेत्र में प्रमुख बिचौलिया बनने के अलावा उन्होंने शीशा और एक किस्म का किरमिजी रंग जैसी कुछ वस्तुओं का उत्पादन भी किया। फिनिशियनों ने नौवीं सदी में उत्तर अफ्रीका (आधुनिक ट्यूनिशिया) में कार्थेज में बस्ती बसाई। कार्थेज पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र की एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति बना। रोमनों को फिनिशियनों के कार्थेज साम्राज्य को नष्ट करने के लिए एक सदी से ज्यादा समय तक जूझना पड़ा। साम्राज्य 200 ईसापूर्व तक टिका।

फिनिशियनों ने एक लिपि विकसित की थी (करीब 1500 ईसापूर्व) जो हिसाब-किताब रखने की उनकी जरूरतों के अनुकूल थी। यह पूरी तरह से एक ध्वनीय लिपि थी जिसमें विभिन्न ध्वनियों के लिए अलग-अलग संकेत थे। अर्थात यह एक वर्ण अनुक्रमिक लिपि थी। फिनिशियन वर्णमाला में 22 संकेताक्षर थे। इस लिपि में सिर्फ व्यंजन (consonant) के लिए संकेताक्षर थे। यह दाएं से बाएं (लिनियर बी बाएं से दाएं लिखी जाती थी) लिखी जाती थी। यूनानियों ने फिनिशियन लिपि अपना ली और स्वर वर्ण के लिए संकेताक्षर जोड़कर उसमें संशोधन कर दिया। होमर के महाकाव्य नई यूनानी वर्णमाला में लिखे गए थे।

V

उत्तर 'अंधकार युग' की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि कांस्य से लौह में संक्रमण था। 1050 और 800 ईसापूर्व के बीच यूनान और इजियन में लौह प्रौद्योगिकी का प्रसार हुआ। यह काल लौह युग में संक्रमण को रेखांकित करता है। लौह प्रौद्योगिकी की उत्पत्ति का मामला रहस्यों में गुम है। बहरहाल लंबे समय काल में इकट्ठा पुरातात्विक साक्ष्य इंगित करते हैं कि अनातोलिया और उत्तर मेसोपोटामिया इस धातु के इस्तेमाल में अग्रणी रहे।

लोहे की वस्तुओं के निर्माण में इस्तेमाल होने वाली प्रौद्योगिकी तांबा या कांस्य के मुकाबले कहीं ज्यादा जटिल होता है। लौहकर्म में महारथ हासिल करने में थोड़ा समय लगा। पश्चिम एशिया और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में लोहे का इस्तेमाल पंद्रहवीं से आठवीं सदी ईसापूर्व के बीच कई सदी में फैला था।

यह ठीक-ठीक चिह्नित करना संभव नहीं है कि लौह प्रौद्योगिकी का 'आविष्कार' कहां हुआ था। यह पहले सोचा गया था कि हित्ती पहला समुदाय है जिसने खासकर सैनिक उद्देश्य से लोहे का व्यापक इस्तेमाल किया और उसने इस प्रौद्योगिकी को रहस्य की तरह सीने से लगाए रखा। करीब 1200 ईसापूर्व में हित्ती साम्राज्य के पतन और अनातोलिया तथा पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में कबायली हलचल ने लौह प्रौद्योगिकी को नए इलाकों तक पहुंचाया। विशेषज्ञों की अब यह राय नहीं है कि इस प्रौद्योगिकी पर हित्तियों का एकाधिकार था या कबायली समूहों के विस्थापन से लौहकर्म की जानकारी नए इलाकों में फैली। हम जानते हैं कि 1200 ईसापूर्व से पहले पश्चिम एशिया, मिस्त्र और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र लोहे से पूरी तरह अनजान नहीं थे। 2000 और 1500 ईसापूर्व के बीच इस धातु के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी जरूर हासिल हो चुकी थी। पश्चिम एशिया के एक बहुत बड़े इलाके में फैले विभिन्न स्थलों से लोहे की बनी चंद वस्तुएं या उसके कुछ टुकड़े मिले हैं। 1500 ईसापूर्व के बाद भी लोहे की वस्तुएं दुर्लभ थीं, फिर भी उनसे धातुकर्म का विकसित कौशल झलकता था। इस संबंध में फैरोह तूतनखामेन (1350 ईसापूर्व) के अवशेषों के साथ दफन लोहे का फल वाला खंजर एक नायाब नमूना है।

इस सवाल पर इतिहासकारों में अब भी बहुत विवाद है कि क्या तांबा और कांस्य प्रौद्योगिकी से लौहकर्म सीधे विकसित हो सकता था। फिर भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि तांबा और कांस्य प्रौद्योगिकी ने अग्निदहन प्रौद्योगिकी (pyrotechnology) (अग्नि और ताप के नियमन की प्रौद्योगिकी, भट्ठी में उच्च तापक्रम का निर्माण/नियंत्रण की प्रौद्योगिकी) में विकास का मार्ग प्रशस्त किया जिसने लौह प्रौद्योगिकी में संक्रमण में मदद की। दूसरी तरफ तांबा और कांस्य के विपरीत लौहकर्म में कई जटिल चरण हैं। उसके अलावा हरेक चरण में उत्पादन पद्धति में फेरबदल की बहुत गुंजाइश है। इसलिए हम लौह उत्पादन में विविध विधियों का प्रयोग पाते हैं। ऐसे में यह मान लेना गलत होगा कि समूचे पश्चिम एशिया में लौहकर्म में समान विधि इस्तेमाल की जाती थी। विभिन्न संस्कृतियां प्रौद्योगिकी के अपने विशेष रास्ते पर चलकर लौह उत्पादन की मंजिल तक पहुंची।

लोहा हमेशा अशुद्ध रूप में ही मिलता है। उसका निष्कर्षण अयस्क से करना पड़ता है। लोहे के अनेक अयस्क हैं और हर में लोहे की मात्रा अलग-अलग है। हेमेटाइट और मैगनेटाइट अयस्कों में लोहे की मात्रा सर्वाधिक है। लेकिन उपलब्धि के आधार पर

उन अयस्कों को भी इस्तेमाल निष्कर्षण में किया जाता है जिसमें लोहे की मात्रा बहुत कम है। लोहे के निष्कर्षण के लिए अयस्क को 1500 डिग्री सेंटीग्रेड से ऊपर गर्म करना पड़ता है ताकि लोहा पिघल सके और उसे निकाला जा सके। लोहे का द्रवांक (melting point) 1540 डिग्री सेंटीग्रेड है जो तांबा (करीब 1100 डिग्री सेंटीग्रेड) से बहुत ज्यादा है। शुरू में ऐसी भट्टी का निर्माण करना संभव नहीं था जिसमें 1500 डिग्री सेंटीग्रेड से ज्यादा तापक्रम तक पहुंचा जा सके। इसके बावजूद तकनीकी तौर पर उससे कहीं कम तापक्रम पर थोड़ी मात्रा में कुछ हद तक अशुद्ध लोहा का उत्पादन संभव था। लोहा को आर्थिक रूप से उपयोगी बनाने के लिए दो और प्रक्रियाएं जरूरी हैं। ये हैं कार्बन भारित-करण (carburization) और सान चढ़ाना (tempering)। जब गर्म अवस्था में लोहे को कार्बन के संपर्क में लाया जाता है तो वह रासायनिक परिवर्तनों से गुजर कर इस्पात बन जाता है। सान चढ़ाने की प्रक्रिया में कार्बन भारित लोहा को बहुत तेजी से ठंडा किया जाता है। ये दो प्रक्रियाएं लोहा को कड़ा और मजबूत बनने में मदद करती हैं। यह उसे औजार और हथियार के निर्माण में उपयोग होने वाला उत्कृष्ट धातु बनाता है।

प्राचीन धातु विशेषज्ञों ने पाया कि कार्बन लोहे से उस समय जुड़ता है जब धातु को लकड़ी के जलते कोयले की उपस्थिति में गर्म किया जाता है। लेकिन यह विधि धीरे-धीरे ही लोकप्रिय हो सकी। लौह प्रौद्योगिकी में बड़ी मात्रा में ईंधन जुटाना एक बड़ी दिक्कत थी। एक टन लोहे के कार्बन भारितकरण के लिए आठ टन लकड़ी के कोयले की जरूरत होती है। अनातोलिया और सीरिया में लौह अयस्क और ईंधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे और करीब 1200 ईसापूर्व में उस क्षेत्र में लोहे के कार्बन भारितकरण की खोज हुई होगी। 1200 ईसापूर्व के बाद नई प्रौद्योगिक पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में फैली। 1000 ईसापूर्व तक कार्बन भारित लोहा यूनान में व्यापक रूप से इस्तेमाल होने लगा था।

गोर्डन चाइल्ड ने लोहा को एक 'लोकतांत्रिक' धातु माना है। ऐसा इसलिए कि तांबा के विपरीत लौह अयस्क समूची दुनिया में बिखरे हैं। लौह अयस्क आम तौर पर स्थानीय स्तर पर ही प्राप्त किया जा सकता है और उसके लिए किसी विस्तृत व्यापारिक संजाल पर निर्भर रहने की कोई जरूरत नहीं थी। यह तांबा और कांस्य के मुकाबले लोहे के सस्ते होने का एक कारण भी था। एक बार लौह प्रौद्योगिकी के आ जाने के बाद लोहा तक ज्यादा से ज्यादा लोगों की पहुंच हो जाती है। इस अर्थ में चाइल्ड उसे एक लोकतांत्रिक धातु कहते हैं।

यूनान में लोहे की तेज रफ्तार विकास की व्याख्या करना मुश्किल नहीं है। यूनानियों को कांस्य के उत्पादन के सिलसिले में तांबा और टिन के आयात पर पूरी तरह निर्भर रहना पड़ता था। 1200 ईसापूर्व के बाद पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के व्यापार में आई गिरावट ने यूनानी धातुकर्म के समक्ष दिक्कतें खड़ी कर दीं क्योंकि तांबा और टिन की आपूर्ति बरकरार नहीं रह सकीं। लोहा ने एक उपयुक्त विकल्प पेश किया। यूनान के पास लौह

अयस्कों के अपने भंडार थे। इसलिए सीमित संसाधनों वाले यूनानी राज्यों ने आयातित तांबा और टिन की प्राप्ति में अपना सीमित अधिशेष गंवाने की जगह लोहे के इस्तेमाल को तरजीह दी होगी। एक छोटे से काल में लोहे ने धातु के रूप में अपना फायदा दिखा दिया। सस्ता होने के अतिरिक्त औजारों और हथियारों को ज्यादा मजबूत और ज्यादा तेज धार देने में उसका इस्तेमाल किया जा सकता है। तलवार बनाने में कांस्य के मुकाबले लोहा ज्यादा उपयुक्त था। लोहे के हल जैसे कृषि के औजारों की तरह लोहे की कुल्हाड़ियां भी ज्यादा प्रभावी हैं। यह नहीं मान लेना चाहिए कि लोहे ने फौरन ही तांबा और कांस्य को प्रचलन से हटा दिया। मेसोपोटामिया और मिस्र में लोहा धीरे-धीरे अपनाया गया। मेसोपोटामिया में लौहयुग 800 ईसापूर्व के बाद शुरू हुआ और मिस्र में यह युग एक सदी से ज्यादा समय बाद शुरू हुआ। पश्चिम एशिया के ज्यादातर इलाकों में लोहा और कांस्य का इस्तेमाल लंबे समय तक साथ-साथ चला। लेकिन यूनान के संदर्भ में नई प्रौद्योगिकी उन कारकों में से एक बनी जिनके कारण 800 ईसापूर्व के बाद उत्पादक शक्तियां विकसित हुईं।

अध्याय सात

पुरातन और क्लासिकी यूनान

क्लासिकी यूनानी सभ्यता की नींव पुरातन काल (करीब 750-500 ईसापूर्व) में रखी गई। यूनानी सभ्यता का शानदार दौर क्लासिकी युग करीब 500 ईसापूर्व से 338 ईसापूर्व तक रहा जब यूनान पर मकदूनिया का वर्चस्व स्थापित हो गया। पिछले अध्याय में हमने देखा कि होमर के महाकाव्यों के लिखे जाने के समय यूनान बेशुमार स्वतंत्र राज्यों का एक समुच्चय था। यूनानी भाषा और कुछ साझी आस्थाएं और मिथक उन राज्यों को आपस में बांधते थे। चौथी सदी ईसापूर्व में मकदूनियाई विजय तक राजनीतिक रूप से एकताबद्ध यूनानी राज्य जैसी कोई चीज नहीं थी। लंबे समय तक यूनानियों के पास खुद को संबोधित करने के लिए अपना कोई सामूहिक नाम भी नहीं था। *इलियड* और *ओडिसी* जैसी रचनाओं में अनेक शब्द इस्तेमाल किए गए हैं। ट्राय के खिलाफ गठबंधन बनाने वालों को अकसर एकियन (देखें अध्याय छह) कहा जाता है। अंततः यूनानी भाषी लोगों के लिए 'हेलेनी' शब्द का इस्तेमाल होना शुरू हुआ। यूनानी भाषी समुदाय सामूहिक रूप से खुद को 'हेलेनी' कहते थे और उनके क्षेत्र को 'हेलास' (आज भी यूनानी भाषा में देश का आधिकारिक नाम हेलास है) कहा जाता था। बाद में रोमनों ने यूनानियों को 'ग्रेसी' (graeci) कहा। यूरोप के अन्य हिस्सों में यह नाम लोकप्रिय हो गया और उसी से 'ग्रीक' नाम की उत्पत्ति हुई।

मुख्य भूमि यूनान दक्षिण-उत्तर यूरोप में एक अनियमित आकार वाला प्रायद्वीप है। यह पूर्व में इजियन सागर, पश्चिम में आयोनी सागर और दक्षिण में भूमध्यसागर से घिरा है। मुख्य भूमि यूनान का दक्षिणी किनारा भूमध्यसागर में फैला हथेली के आकार का हिस्सा है जिसे पेलोपोनीज कहते हैं। स्पार्टा उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण राज्य था। पेलोपोनीज वस्तुतः एक द्वीप है और कोरिंथ की खाड़ी उसे मुख्य भूमि यूनान से अलग करती है। पेलोपोनीज के उत्तर-पूर्वी छोर पर भूमि की एक पतली पट्टी दोनों हिस्सों को जोड़ती है। कोरिंथ पेलोपोनीज और यूरोपीय यूनान की संधि पर सामरिक रूप से स्थित है। मेगारा पेलोपोनीज को मुख्य भूमि से जोड़ने वाली पट्टी पर स्थित एक अन्य चर्चित राज्य था। कोरिंथ की खाड़ी से परे यूरोपीय यूनान के दक्षिण-पूर्वी छोर पर ऐटिका का क्षेत्र स्थिति है। एथेंस ऐटिका में स्थित है। उत्तर-पश्चिम में ऐटिका से लगा एक क्षेत्र है जिसे बीओशिया (मध्य यूनान) कहते हैं। थीब्ज बीओशिया का एक प्रमुख शहर था। उत्तर में इजियन तट से लगे आगे बढ़ने पर थेसाली का क्षेत्र आता है। थेसाली खुले मैदानी

इलाकों से भरा है जो गेहूं की खेती और मवेशी पालन के लिए उपयुक्त है। थेसाली की जलवायु चरम है जिसके कारण उस क्षेत्र में जैतून और अंगूर की खेती मुश्किल है।

थेसाली से हम घड़ी की दिशा में घूमते हुए मकदूनिया, थ्रेस और अनातोलिया के पश्चिमी तट तक पहुंचते हैं। मकदूनिया (सिकंदर महान का गृह प्रदेश) अब यूनान, यूगोस्लाविया और बुल्गारिया के बीच बंटा है। इस प्रदेश में भी व्यापक मैदानी इलाके हैं और यह घोड़ों के लिए मशहूर है। थ्रेस का एक हिस्सा तुर्की के यूरोपीय भाग में शामिल कर लिया गया है। थ्रेस दक्षिण यूरोप के पूर्वी छोर पर स्थित है। दक्षिण यूनान के मुकाबले थ्रेस एक पिछड़ा इलाका था। लेकिन वह सोना और चांदी के खदानों से मालामाल था। अनातोलिया के पश्चिमी तट पर अनेक यूनानी राज्य थे। अनातोलिया और पूर्वी इजियन सागर के द्वीपों के यूनानी भाषी लोगों को पूर्वी यूनानी कहा जाता था। इजियन सागर में ही विभिन्न आकार के ढेर सारे द्वीप हैं। दक्षिणी इजियन में केंद्रित द्वीपों का एक समूह है। इस समूह के द्वीपों को सामूहिक रूप से सिक्लेडीज कहते हैं। क्रीट पेलोपोनीज और सिक्लेडीज के दक्षिण में स्थित है। यूनानियों ने अपना विस्तार करने के क्रम में दक्षिणी इटली और सिसिली के कुछ हिस्सों को अपना उपनिवेश बनाया था। दक्षिणी इटली और सिसिली की यूनानी आबादी को संयुक्त रूप से पश्चिमी यूनानी कहा जाता है।

'अंधकार युग' के अंत में उभरे यूनानी राज्यों को नगर-राज्य कहा जा सकता है। वैसे उनके लिए '*पोलिस*' शब्द का इस्तेमाल करना ज्यादा उचित होगा जिसे यूनानी खुद भी अपने राजनीतिक ढांचों के लिए इस्तेमाल करते थे। *पोलिस* महज एक क्षेत्र को इंगित नहीं करता है बल्कि वह उन राज्यों में लागू शासन प्रणाली को भी दिखाता है। *पोलिस* का केंद्रक एक शहरी केंद्र होता था। लेकिन शहरीकरण का स्तर अलग-अलग था। *पोलिस* में शहर और उसके इर्द-गिर्द के ग्रामीण अंचल शामिल थे। एक ऐतिहासिक परिघटना के रूप में हमें बाद के इतालवी नगर-राज्यों के साथ *पोलिस* का घाल-मेल नहीं करना चाहिए। इतालवी नगर-राज्यों ने अपना धन-दौलत व्यापार और वाणिज्य से जुटाया था। उसके विपरीत *पोलिस* का आर्थिक आधार मुख्यत: कृषि था। एक राजनीतिक इकाई के रूप में *पोलिस* की विशेषता उसका अपेक्षाकृत छोटा आकार और राजनीतिक प्रक्रिया में आबादी के बड़े हिस्सों की उच्च स्तर की भागीदारी है।

I

पुरातन काल में समूचे यूनान में जमींदार कुलीन वर्ग और कृषकों के बीच बड़ा लंबा संघर्ष चला। इस संघर्ष की शुरुआत उत्तर 'अंधकार युग' से हुई जब ऐतिहासिक फेरबदल के कारण जमींदार कुलीन वर्ग मजबूत स्थिति में आ गए। माइसीनी राज्यों के शासक वर्ग में राजा, पुरोहित, नौकरशाह और योद्धा कुलीन वर्ग शामिल थे। 1200 ईसापूर्व के बाद

कबायली स्थानांतरण और व्यापार में गिरावट के कारण माइसीनी सामाजिक और राजनीतिक ढांचा ढह गया। महलों की देखरेख में चलने वाली उत्पादन और पुनर्वितरण की प्रणाली बिखर गई। नौकरशाही इस प्रणाली को चलाती थी लेकिन वह अपना नियंत्रण खो बैठी। उसके बाद अनेक माइसीनी राज्यों में राजाओं को अपना कुछ विशेषाधिकार शक्तिशाली कबायली सरदारों और जमींदार कुलीन वर्ग को सौंपने के लिए बाध्य होना पड़ा। अनेक यूनानी राज्यों में थोड़ी ही मात्रा में अधिशेष का उत्पादन होता था। ऐसे में अपना अधिकार मजबूत करने, अपने क्षेत्रों की रक्षा करने और लूट के मकसद से भारी-भरकम फौज रखने के लिए उन शासकों के पास संसाधन नहीं था। उन्हें सैन्य अभियानों में वयस्क युवकों को जुटाने के लिए कबायली सरदारों और बड़े जमींदारों पर आश्रित रहना पड़ता था। पुरातन काल की शुरुआत तक यूनान में राजशाही की संस्था कमजोर पड़ी चुकी थी। प्रभावी सत्ता कुलीन तंत्र (लोगों के एक छोटे समूह, इस मामले में कुलीनों, का राज) के हाथ में जा रही थी।

हमें ठीक-ठीक पता नहीं कि 'अंधकार युग' के दौरान वास्तव में क्या हुआ। लेकिन कुछ विश्वास के साथ कहना संभव है कि 1000 ईसापूर्व के बाद बहुत से यूनानी राज्यों में राजशाही की जगह जमींदार कुलीन वर्गों का राज लेने लगा था। पुरातन काल की शुरुआत तक पुराने कबायली संबंध और भी कमजोर हो गए और सामाजिक-आर्थिक ढांचा में उनकी कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रह गई। विशेषज्ञों ने उत्तर 'अंधकार युग' में सामाजिक संगठन और उत्पादन की एक अन्य संस्था, *ओइकोस* की शिनाख्त की है। *ओइकोस* एक प्रमुख सामाजिक इकाई था और मोटे तौर पर उसका अनुवाद 'गृहस्थी' के रूप में किया जा सकता है। *ओइकोस* साथ ही एक आर्थिक इकाई (*ओइकोस* से ही 'इकोनोमी' शब्द निकला) भी था। *ओइकोस* एक परिवार को, उसकी संपत्ति को, उसके माल-असबाब और उन तमाम लोगों को इंगित करता है जो उस गृहस्थी के कामकाज से जुड़े हैं। अंतिम श्रेणी में घरेलू नौकर, *ओइकोस* के खेतों पर काम करने वाले मजदूर और गुलाम आते हैं। कुलीन वर्ग के *ओइकोस* में अनुचर (retainers) भी शामिल होते थे। जैसे अभी धनी परिवार और गरीब परिवार हो सकते हैं, वैसे ही एक तरफ कुलीन वर्गों के *ओइकोस* थे तो दूसरी तरफ छोटे किसानों के *ओइकोस* थे जिनमें उस समुदाय के ज्यादातर *ओइकोस* शामिल थे।

ओइकोस एक सामाजिक इकाई था और साथ ही उत्पादन इकाई भी। उसमें परिवार या गृहस्थी के लोग और सामान दोनों शामिल थे। *ओइकोस* के केंद्र में परिवार था। परिवार के सदस्यों के आलावा *ओइकोस* के अन्य सदस्य भी थे जिनका परिवार से कोई सीधा रिश्ता नहीं था। वे अपनी रोजी-रोटी के लिए *ओइकोस* पर आश्रित थे और बदले में *ओइकोस* को अपना श्रम देते थे। *ओइकोस* पूर्ण रूप से पितृसत्तात्मक था। परिवार का मुखिया *ओइकोस* का भी मुखिया होता था और तमाम सदस्यों पर उसका निरंकुश राज

चलता था। सदस्यों से पूर्ण निष्ठा और कर्तव्यपालन की अपेक्षा की जाती थी।

ओइकोस में उत्पादन एवं उपभोग की एक आत्मनिर्भर इकाई बनने की प्रवृत्ति रहती थी। उसकी आर्थिक गतिविधि प्राथमिक रूप से भूमि पर केंद्रित थी। *ओइकोस* का उद्देश्य थोड़ी मात्रा में उपलब्ध कृषि योग्य भूमि से अधिक से अधिक अन्न उपजाना था। 'अंधकार युग' के अंत के लगभग धनी जमींदार इसमें कतई सफल दिखे। बड़े जमींदारों के पास अतिरिक्त श्रम (मुक्त एवं बंधुआ) उपलब्ध था और इसलिए वे अपनी उपज बढ़ाने में ज्यादा सक्षम थे। अपने *ओइकोइ* के संसाधन के अतिरिक्त कुलीन वर्ग अपनी राजनीतिक हैसियत का फायदा उठाकर छोटे किसानों की कीमत पर ज्यादा जमीन हासिल कर लेते थे। उसके अलावा वे अनुचरों की सहायता से लूट-मार के अभियानों में हिस्सा लेते थे और लूट के ज्यादा हिस्से पर कब्जा जमा कर अपनी दौलत बढ़ाते थे। पुरातन काल की शुरुआत में सबसे धनी *ओइकोइ* के मुखियाओं ने आपस में नजदीकी रिश्ते कायम कर एक वंशगत अभिजात्य वर्ग का ताना-बाना तैयार कर लिया था। उस समय अनेक यूनानी राज्यों में राजशाही का खात्मा हो चुका था या उसे पृष्ठभूमि में ढकेला जा चुका था और एक कुलीनतांत्रिक ढांचा स्थापित हो चुका था। इस वंशगत अभिजात्य वर्ग ने उस ढांचा पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

करीब 750 से 600 ईसापूर्व तक कुलीन वर्ग ने जमीन पर अपनी गिरफ्त मजबूत कर ली। इससे छोटे किसानों में गरीबी बढ़ी। हताश छोटे किसानों ने कुलीनतंत्र के खिलाफ कड़ा संघर्ष किया। इस संघर्ष के कारण लगातार होने वाली हलचल में करीब 600 ईसापूर्व में संकट की स्थिति पैदा कर दी। कुलीन वर्ग के हिस्सों ने अंतत: महसूस किया कि अगर इसका कोई हल नहीं निकाला गया तो उनकी अपनी समृद्धि खतरे में पड़ जाएगी। लिहाजा वे सुधार प्रक्रिया शुरू करने के लिए बाध्य हुए जिसके तहत किसानों को रियायतें दी गईं।

समकालीन लेखनों से किसानों की बदहाली का पता लगाया जा सकता है। आठवीं सदी ईसापूर्व का यूनानी साहित्य अपने योद्धा नायकों की वीरगाथाओं तक नहीं सिमटा है, बल्कि वह आम किसानों की रोजमर्रा जिंदगी पर ध्यान केंद्रित करता है। यह झुकाव प्रारंभिक पुरातन काल की प्रमुख साहित्यिक कृति, हेसियोड रचित *कारखाना और दिन* (वर्क्स एंड डेज) की विषयवस्तु में देखी जा सकती है। हेसियोड बीओशिया का एक यूनानी कवि था। उसका जन्म थीब्ज के निकट हुआ था। उसकी दो कृतियां बची रह गई हैं : *कारखाना और दिन* तथा *देवोत्पत्ति* (theogony)। इन कविताओं की प्रकृति होमर के काल की महाकाव्य कविता से बहुत अलग थी। *कारखाना और दिन* का सरोकार किसानों की दिनचर्या से है। इस लंबी कविता में कृषि चक्रों का ब्योरा है और वह किसानों को परामर्श देती है कि वे बेहतर खेती कैसे करें। हेसियोड धनी किसानों के प्रति नफरत जताते हैं और छोटे किसानों के कठिन-कठोर श्रम की दास्तान कहते हैं।

यूनान के गरीब किसानों के प्रतिरोध संघर्ष के कारण कुलीन वर्गों के लिए उनकी मांगों को नजरअंदाज करना मुश्किल हो गया। समाज में व्याप्त तनावों को घटाने के उद्देश्य से किसानों की स्थिति में सुधार के लिए उन्हें कुछ कदम उठाने थे। हमारे पास एथेंस में किए गए सुधारों की अच्छी-खासी जानकारी है। यह हमें पुरातन काल के उत्तरार्द्ध में हुए विकास का कुछ अंदाजा देती है। एथेंस के संबंध में इन जानकारियों के अलावा अन्य *पोलेइ* (polei) में भी इसका जिक्र है कि कैसे दूसरी जगहों पर भी इसी तरह की प्रक्रियाएं चल रही थीं। यह ध्यान में रखना जरूरी है कि 752 ईसापूर्व में एथेंस में राजशाही का खात्मा हो गया था। पुरातन काल की शुरुआत में राजाओं के लिए अकसर *बेसिलियस* (basileus) शब्द इस्तेमाल होता था। बहुत सारे यूनानी राज्यों में *बेसिलियस* हटा दिए गए थे या उनके अधिकार छीन लिए गए थे। निरंकुश सत्ता वाली वंशगत राजशाही का प्रचलन नहीं था। एथेंस में अधिकारी शासन चलाते थे जिन्हें आर्कन कहते थे। आर्कन कुलीन वर्ग में से चुने जाते थे।

एथेनियाई राज्य पर एक बार अपना नियंत्रण स्थापित करने के बाद कुलीन वर्ग ने छोटे किसानों पर बोझ बढ़ाना शुरू कर दिया। उन्होंने सर्वाधिक उर्वर जमीनों पर कब्जा जमा लिया और किसानों को खराब जमीनों की तरफ ढकेल दिया। कुलीन वर्ग ने अपनी जायदाद पर काम करने के लिए किसानों पर दबाव डाला और इस तरह उनका शोषण करना चाहा। बदहाल किसानों को अकसर धनी जमींदारों से कर्ज लेना पड़ता था। अनेक जमींदार व्यापार और सूदखोरी में लगे थे। जब गरीब किसान कर्ज अदायगी में असमर्थ होते, उन्हें अपने परिवार सहित बंधुआ मजदूरी करनी पड़ती थी। ऐसे किसानों को न सिर्फ उनकी जमीनों से वंचित कर दिया जाता, बल्कि उनकी हैसियत गुलामों जैसी हो जाती। किसानों की बिगड़ती स्थिति के कारण एक व्यापक प्रतिक्रिया हुई। एथेंस लगभग स्थायी रूप से उथल-पुथल की गिरफ्त में था और कुलीनतंत्र उसे दबाने में असफल था। समकालीन लोगों ने इस स्थिति को *स्टैसिस* या गतिरोध कहा। किसानों की मुख्य मांगें थीं : जमीन का पुनर्वितरण और कर्ज-बंधुआगिरी का खात्मा। जब किसानों का असंतोष काबू से बाहर होने लगा तो कुलीन वर्ग के एक हिस्से ने कुछ सुधारों का प्रस्ताव किया। 594 ईसापूर्व में एथेंसवासियों ने सोलोन नामक एक व्यक्ति को मध्यस्थ नियुक्त किया और उसे सुधार प्रक्रिया चलाने को कहा। दोनों पक्षों की सहमति से सोलोन को एक खास मुद्दत के लिए निरंकुश सत्ता सौंपी जानी थी। मध्यस्थ की असीम शक्ति के कारण उसे संकट से निबटने की एक खुली छूट मिली।

सोलोन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुधार था कर्ज-बंधुआगिरी के प्रावधान का खात्मा। इसका मतलब था कि अब एथेंस के किसी मुक्त व्यक्ति को कर्ज अदायगी में असमर्थ होने पर गुलाम नहीं बनना पड़ेगा। किसानों के मौजूदा कर्ज माफ कर दिए गए। फिर भी सोलोन ने जमीन का पुनर्वितरण नहीं किया। दूसरे, सोलोन ने सांविधानिक तब्दीलियां

लाईं जिसके तहत तमाम एथेंसवासियों को राजनीतिक प्रक्रिया में हिस्सा लेने का अधिकार मिला। इस हिस्सेदारी की प्रकृति पर बाद में विस्तार से चर्चा की जाएगी। तीसरे, उसने न्याय पद्धति में तब्दीली की। कुलीन वर्गों ने उसके कारण कानूनी व्यवस्था में अपने कुछ विशेषाधिकार खोए जो कानून की निगाह में सभी को एक समान पेश करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। एक अन्य कानूनी सुधार के तहत पीड़ित नहीं होने के बावजूद कोई व्यक्ति किसी आपराधिक मामले में न्याय के लिए अदालत का दरवाजा खटखटा सकता था। सोलोन ने एक नया कानून भी बनाया जिसके तहत न्यायिक सजा के खिलाफ अपील करने का प्रावधान था। सोलोन ने अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए अनेक उपाय किए। चांदी का उत्पादन बढ़ाया गया। उसने व्यापार को बढ़ावा दिया जिससे कारीगरों और सौदागरों को फायदा पहुंचा। उसने खाद्यान्नों की कीमत घटाने के लिए गेहूं के निर्यात पर रोक लगा दी।

सोलोन के सुधारों से कुछ समय के लिए किसानों की हालत अच्छी हुई। लेकिन चूंकि ये सुधार पर्याप्त रूप से व्यापक और समग्र नहीं थे, उनसे किसानों का असंतोष महज वक्ती तौर पर थमा। कर्ज-बंधुआगिरी की समाप्ति से गरीब किसानों को गुलाम बनाने पर रोक लगी। लेकिन भूमि सुधार नहीं होने के कारण कुलीन वर्ग कृषि योग्य भूमि के ज्यादातर हिस्से पर कब्जा जमाए रहे थे। जैसा हम देखेंगे, 594 ईसापूर्व के बाद श्रमिकों, खासकर ऐसे श्रमिकों की कमी हुई जो मुक्त नहीं थे क्योंकि कर्ज अदायगी नहीं होने पर अब एथेंस के नागरिकों को बंधुआ श्रम के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। ऐसे में बड़े जमींदारों ने बाहर से लाए गए गुलामों का इस्तेमाल कर अपनी श्रम-समस्या हल की।

सोलोन के सुधार कार्यक्रम के कुछ ही दशक बाद एथेंस में असंतोष फिर उबल पड़ा। दूसरे राज्यों में भी वैसी ही स्थितियां बन गईं जहां सुधार अधूरा रहा था या सिरे से हुआ ही नहीं था। अशांत स्थितियों का फायदा उठाते हुए कुछ राजनीतिक नेताओं ने सत्ता पलट कर अपने-अपने राज्यों में निरंकुश शासन स्थापित कर लिया। पीसिसट्रेटस पहला व्यक्ति था जिसने एथेंस में तख्तापलट किया। उसने 561 ईसापूर्व में पहले सत्ता पर कब्जा करने की कोशिश की लेकिन नाकाम रहा। उसे एथेंस से भागना पड़ा। 545 ईसापूर्व में उसे एथेंस की सत्ता पर कब्जा करने में सफलता मिली। पीसिसट्रेटस सांविधानिक प्रावधानों को नजरअंदाज कर और कुलीनतांत्रिक संस्थाओं का उल्लंघन कर एथेंस का सर्वोच्च शासक बन बैठा।

यह शासन का नया रूप था जिसके लिए यूनानियों ने 'तानाशाह' शब्द का इस्तेमाल किया। इस तरह सत्ता पर कब्जा जमाने वाले पीसिसट्रेटस जैसे शासकों को 'तानाशाह' कहा गया। यूनानी तानाशाही का एक रोचक पहलू यह है कि उसका सामाजिक आधार दरिद्र किसान थे। पीसिसट्रेटस को एथेंस के छोटे किसानों और दरिद्रता से त्रस्त नागरिकों

का समर्थन प्राप्त था। जब वह तानाशाह बना तो उसने कुलीनों वर्ग के द्वारा कब्जा की गई सार्वजनिक कृषि योग्य भूमि जब्त कर ली और उसे छोटे या बेदखल किए गए किसानों में बांट दी। उसने तानाशाही की स्थापना के कारण निर्वासित जीवन बिताने गए कुछ कुलीन की संपत्ति भी जब्त कर ली और उसे जरूरतमंद किसानों को सौंप दी। पीसिसट्रेटस की नीतियों का दोहरा असर हुआ। पहला तो उससे किसानों की स्थिति सुधरी। दूसरे, राजनीतिक ढांचे पर जमींदार कुलीन वर्ग का एकाधिकार नष्ट हो गया। पीसिसट्रेटस की मृत्यु 527 ईसापूर्व में हुई। उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटे हिप्पियास ने शासन की बागडोर संभाली। स्पष्ट रूप से यह तानाशाही को वंशगत राजशाही में बदलने का कदम था। स्वाभाविकत: उससे लोगों में नाराजगी फैली। मामला जो भी हो, एक छोटे समय के बाद तानाशाही ने अपनी ऐतिहासिक प्रासंगिकता खो दी। 510 ईसापूर्व में हिप्पियास की सत्ता उलट दी गई। इस तारीख से एथेंस में क्लासिकी लोकतंत्र की शुरुआत हुई।

तानाशाही का संदर्भ पूरी तरह से नकारात्मक था। लोगों ने शुरू में उसका समर्थन किया। लेकिन बाद में जब वह दमनकारी बन गई तो लोग उसे नापसंद करने लगे। उन्होंने उसे उलटने में मदद की। कुलीन वर्ग तानाशाही से नफरत करते थे क्योंकि उसने उनकी सत्ता नष्ट की थी। क्लासिकी काल में यूनानी आमतौर पर तानाशाही के काल को घृणा के साथ याद करते थे। फिर भी हमें याद रखना चाहिए कि *तानाशाही ने कुलीनतंत्र से लोकतंत्र में संक्रमण की गति तेज की थी।* यह परिघटना सिर्फ एथेंस तक सीमित नहीं थी। कोरिंथ का तानाशाह पेरियांडर करीब 600 ईसापूर्व में सत्ता में आया । पेरियांडर से कुछ समय पहले साइपसेलस ने कोरिंथ में सत्तारूढ़ कुलीन वर्ग से सत्ता छीनी थी। हमें दूसरे तानाशाहों की भी जानकारी मिली है। पोलीक्रेटीज 545 ईसापूर्व में सामोस का तानाशाह बना था। लगभग उसी समय नाक्सोस का तानाशाह लाइगडामिस था। हर जगह तानाशाहों ने जमींदार कुलीन वर्ग की सत्ता उलटी और किसानों की स्थिति मजबूत की। जार्ज थामसन का विचार है कि तानाशाहों ने व्यापारियों को भी सत्ता में हिस्सेदार बनाया। थामसन ने तानाशाहों और व्यापारी वर्ग के बीच के निकट संबंधों को रेखांकित करते हुए तानाशाहों के अपने व्यापारिक हितों को रेखांकित किया है।

तानाशाह राजनीतिक सत्ता का पारंपरिक वंशगत आधार खत्म करने में सहायक रहे। हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि यूनानी कुलीन वर्ग एक दूसरे के साथ वंशगत रिश्तों से निकटता से बंधे थे। वे महज इस कारण सत्ता में शामिल नहीं थे कि उनके पास धन-दौलत थी, बल्कि उससे भी ज्यादा इसलिए कि वह एक खास परिवार में पैदा हुए थे। कुलीन परिवार कार्यपालिका, न्यायपालिका और सेना से जुड़े तमाम पद स्वत: पा जाते थे। उन्होंने राज्यों के सभी अंगों पर एकाधिकार जमा लिया था। इस तरह उन्होंने यूनानी *पोलिस* के और व्यापक केंद्रीकरण के लिए स्थितियां पैदा कर दी थीं। तानाशाही ने उसी क्षण अपनी उपयोगिता खो दी जब शासन कुलीन वर्गों के चंगुल से मुक्त हुआ।

अगर तानाशाही स्थायी हो जाती तो राजशाही में उसका पतन हो जाता। थोड़े ही समय के बाद लोगों ने तानाशाही से अपना समर्थन वापस ले लिया। जी. ग्लोट्ज *(दि ग्रीक सिटी एंड इट्स इंस्टीट्यूशंस)* कहते हैं : 'लोगों ने तानाशाही को महज एक तदबीर के तौर पर लिया। उन्होंने उसका इस्तेमाल भित्तिपातक (दीवार या दरवाजा गिराने के लिए इस्तेमाल होने वाला उपकरण) की तरह किया जिससे कुलीन वर्ग का गढ़ ढहाया जा सके। जब उनका लक्ष्य पूरा हो गया तो उन्होंने जल्दी से उस हथियार को तिलांजलि दे दी।' दूसरे शब्दों में, तानाशाही कुलीन वर्गों का एकाधिकार तोड़ने का महज एक सुविधाजनक औजार था और जब काम पूरा हो गया तो लोगों ने तानाशाहों से मुक्ति पा ली।

इस संदर्भ में स्पार्टा एक अपवाद था क्योंकि कठोर अर्थों में उसने कभी तानाशाही की अवस्था पार नहीं की। लेकिन स्पार्टा ने कभी लोकतंत्र की ओर भी संक्रमण नहीं किया। वह कुलीन तांत्रिक शासन प्रणाली से चिपटा रहा। दरअसल वहां राजा भी हुए। स्पार्टा में एक विचित्र तरह की राजशाही, एक 'दोहरा' राजतंत्र था। हम बाद में उसकी जांच-पड़ताल करेंगे। हमें एक मध्यस्थ लाइकर्गस की जानकारी है जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने स्पार्टा में सुधार किया था। लाइकर्गस और उसके कानूनों के बारे में हमारी सूचनाएं अस्पष्ट हैं। इतिहासकार उसके काल पर निश्चित नहीं हैं जो शायद 700 से 600 ईसापूर्व के बीच कहीं है।

एथेंस में 510 ईसापूर्व में हिप्पियास को सत्ता से हटाने के बाद भारी सांविधानिक फेरबदल किए गए। इन तब्दीलियों ने गुणात्मक रूप से एक नए राजनीतिक ढांचे के लिए रूपरेखा प्रदान की। इसकी बुनियाद सोलोन और पीसिसट्रेटस ने रखी। एथेनियाई लोकतंत्र की इमारत खड़ी की क्लाइसथनीज ने। करीब 507 ईसापूर्व और उसके बाद किए गए उसके सुधारों के बड़े नतीजे निकले। क्लासिकी काल के दौरान यूनानी लोकतंत्र की उत्पत्ति पर चर्चा करने से पहले करीब 500 ईसापूर्व और मकदूनियाई विजय के बीच के यूनानी इतिहास के राजनीतिक घटनाक्रम का जिक्र करना प्रासंगिक होगा।

क्लासिकी काल की शुरुआत के यूनानी इतिहास को फारसी साम्राज्य के पश्चिम की ओर विस्तार के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। फारसी साम्राज्य का आंतरिक इतिहास हमारे अध्ययन के दायरे से बाहर है। यहां इतना उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि छठी सदी ईसापूर्व के मध्य में ईरानियों ने सम्राट साइरस के अंतर्गत एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था जिसमें ईरान और मेसोपोटामिया शामिल थे। इस साम्राज्य की राजधानी ईरान के सुसा (शुश) में थी। साइरस और उसके उत्तराधिकारी दारियस प्रथम ने फारसी साम्राज्य की सीमाएं पूर्वी भूमध्यसागर तक फैला दीं। ईरानियों ने पश्चिम एशिया और अनातोलिया के ज्यादातर हिस्से जीत लिए। 546 ईसापूर्व में साइरस ने लीडिया के शासक क्रीसस को हराया। लीडिया पश्चिम अनातोलिया का एक महत्वपूर्ण राज्य था। उसके विलय ने फारस

को पूर्वी इजियन सागर में सबसे बड़ी शक्ति बना दी। जल्द ही पूर्वी यूनान के ज्यादातर क्षेत्रों पर फारस का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शासन स्थापित हो गया।

यह स्वाभाविक था कि मुख्य भूमि यूनान के राज्य फारसी विस्तार का अगला निशाना बने। एक ऐसे समय जब क्लीजथेंज लोकतांत्रिक सुधार की प्रक्रिया शुरू कर रहा था, एथेंस को फारस के हमले से अपनी रक्षा के लिए सैन्य संसाधन जुटाने पड़े। 500 से लेकर 400 ईसापूर्व तक यूनानी राज्य फारस के साथ युद्ध में जूझते रहे। स्पार्टा यूनानी सरजमीन की सबसे बड़ी सैनिक शक्ति था जबकि समुद्र में एथेंस मुख्य सैनिक शक्ति था। एथेंसवासियों ने एक शक्तिशाली नौसेना बनाई थी जिसने फारस के साथ युद्ध में मुख्य भूमिका निभाई। यूनानियों ने फारस का मुकाबला करने के लिए एथेंस और स्पार्टा के नेतृत्व में संसाधन एकत्रित किए।

समूचे यूनान पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए सम्राट दारियस (521–486 ईसापूर्व) के नेतृत्व में ईरानियों ने जोरदार हमला किया। पूर्वी यूनान और थ्रेस को फारसी साम्राज्य में मिलाकर दारियस समूचे इजियन सागर और यूनानी प्रायद्वीप पर कब्जा करने के लिए बढ़ा। एथेंस ने 490 ईसापूर्व में मैराथन में फारसी सेना को हरा दिया। इस हार के बाद ईरानियों ने यूनान को जीतने के लिए जर्क्सेज के नेतृत्व में नए सिरे से अभियान चलाया जो 486 ईसापूर्व में दारियस की मृत्यु के बाद फारस का सम्राट बना था। जर्क्सेज ने यूनानी मुख्य भूमि पर कब्जे के लिए जमीन और समुद्र दोनों तरफ से एक दोतरफा हमला करने का प्रयास किया। लेकिन थेमिस्टोक्लीज के नेतृत्व में एथेनियाई नौसेना ने सलामिस (480 ईसापूर्व) में फारसी बेड़े को परास्त कर दिया। यहां यह उल्लेखनीय है कि थेमिस्टोक्लीज एथेनियाई नौसैनिक शक्ति का निर्माता था। 480 ईसापूर्व में सलामिस का युद्ध फारसी युद्धों में एक मोड़ था। उसने इजियन सागर पर नियंत्रण स्थापित करने का फारस का सपना चकनाचूर कर दिया। इस सामुद्रिक युद्ध के बाद 479 ईसापूर्व में संयुक्त यूनानी सेना ने प्लाटेआ में जमीनी युद्ध में एक निर्णयकारी जीत हासिल की। प्लाटेआ के युद्ध में यूनानी गठबंधन का नेतृत्व स्पार्टा कर रहा था।

सलामिस और प्लाटेआ के युद्ध ने फारसी पेशकदमी रोक दी। लेकिन फारसी हमलों का खतरा बना रहा। यूनानी राज्यों ने महसूस किया कि भविष्य में फारसी हमलों को नाकाम करने के लिए उन्हें नियमित रूप से अपने संसाधन एक जगह जुटाने होंगे। पूरी तरह से अपने ही बल पर फारसी सेना का मुकाबला करना किसी भी एक यूनानी राज्य के बस की बात नहीं थी। पेलोपोनीज में स्पार्टा की सुसंगठित सेना के नेतृत्व में पहले से ही एक मजबूत सैन्य गठबंधन मौजूद था। इस व्यवस्था से पेलोपोनीजवासी अपनी रक्षा कर सकते थे। इजियन द्वीपों और तटवर्ती राज्यों के साथ समस्या ज्यादा गंभीर थी क्योंकि उनके पास ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। सलामिस के युद्ध के बाद एथेंस ने इस समस्या के हल के लिए अपने नेतृत्व में राज्यों का एक परिसंघ बनाने की दिशा में पहल की। यह

परिसंघ डेलियन लीग के रूप में जाना गया। यह नाम डेलास द्वीप से लिया गया जहां शुरू में परिसंघ का मुख्य खजाना स्थित था। उसका गठन 478 ईसापूर्व में हुआ था। उसका मुख्य उद्देश्य इजियन सागर में एक शक्तिशाली नौसेना रखना था। लीग के सदस्य राज्यों को नौसेना के निर्माण एवं देखरेख के लिए योगदान करना पड़ता था।

कुछ कारणवश इजियन में और फारसी हमले नहीं हुए। यहां उन कारणों के विस्तार में जाने की जरूरत नहीं है। फारसी खतरा के कम होने के साथ ही एथेंस ने लीग का चरित्र रूपांतरित कर दिया। वह लीग के संसाधन का इस्तेमाल एकमात्र अपने हितों को बढ़ाने में करने लगा। एंटनी एंड्रयूज टिप्पणी करते हैं कि जैसे-जैसे समय गुजरा, ज्यादातर सहयोगी राज्यों को लीग के अभियानों के लिए अपने जहाज और सैनिक देना भारी लगने लगा। नाम मात्र का गठबंधन बल सहयोगियों द्वारा वित्तपोषित एथेनियाई नौसेना में बदल गई।

स्वैच्छिक परिसंघ के रूप में गठित डेलियन लीग धीरे-धीरे एथेंस द्वारा शासित एक साम्राज्य बन गया। लीग के सदस्य राज्यों को एथेंस का प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा और वे अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता खो बैठे। जब भी कोई सदस्य लीग से हटना चाहता उसे बलपूर्वक ऐसा करने से रोक दिया जाता। इस संबंध में सबसे मशहूर मिसाल नाक्सोस की है जिसे लीग (468 ईसापूर्व) में रहने के लिए बाध्य किया गया। लीग को एथेनियाई साम्राज्य में बदलने की प्रक्रिया 454 ईसापूर्व में खजाना डेलोस से एथेंस स्थानांतरित होने के साथ संपन्न हो गई। उसके बाद से लीग के संसाधन एथेंसवासियों के इस्तेमाल के लिए आरक्षित हो गए। लीग का स्वैच्छिक योगदान अब एथेंस को अनिवार्य रूप से अदा किए जाने वाले कर में बदल गया। इजियन सागर तक जाने वाले सभी मार्गों पर अब एथेंस का पूरा नियंत्रण हो गया। समूचे क्षेत्र का व्यापार एथेंसवासियों के पास चला गया। कभी-कभी विभिन्न राज्यों की उर्वर भूमि भी लेकर एथेंसवासियों को सौंप दी जाती थी। साम्राज्य और इजियन पर एकाधिकार ने एथेंस में जो खुशहाली लाई वह क्लासिकी युग में लोकतांत्रिक परंपराओं को टिकाए रखने में महत्वपूर्ण बनी।

इजियन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद एथेंस ने पेलोपोनीज को शामिल करके अपने साम्राज्य का विस्तार करने की कोशिश की। स्वाभाविकत: इससे स्पार्टा के साथ उसका टकराव हुआ जो एक प्रमुख पेलोपोनेशियाई ताकत था। दोनों राज्यों के बीच लंबी प्रतिस्पर्धा चली। यूनान पर वर्चस्व को लेकर एथेंस और स्पार्टा के बीच एक बड़ा युद्ध, पेलोपोनेशियाई युद्ध हुआ। इस युद्ध के दो चरण थे : पहला पेलोपोनेशियाई युद्ध (431-421 ईसापूर्व) और दूसरा पेलोपोनेशियाई युद्ध (421-404 ईसापूर्व)। 404 ईसापूर्व तक एथेंस हार चुका था और उसकी नौसेना तबाह हो चुकी थी। पेलोपोनेशियाई युद्ध के अंत में स्पार्टा यूनान में एक प्रमुख राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति बनकर उभरा। लेकिन

स्पार्टा का वर्चस्व चुनौतीहीन नहीं रहा। उसे थीब्ज की चुनौती का सामना करना पड़ा जो बीजोशिया का एक अग्रणी राज्य था। यूनान में वर्चस्व स्थापित करने के लिए 362 ईसापूर्व तक स्पार्टा और थीब्ज के बीच संघर्ष चला। लेकिन दोनों में से कोई हावी नहीं हो सका।

उसी समय उत्तर यूनान में जबर्दस्त ऐतिहासिक महत्व का एक नया विकास हो रहा था। वह था मकदूनिया का उत्थान। राजा फिलिप द्वितीय (382-336 ईसापूर्व) ने विकसित सैन्य तकनीकों और मकदूनिया के मैदानी इलाकों की समृद्ध संपदा का इस्तेमाल कर एक साम्राज्य स्थापित किया जिसमें ज्यादातर यूनानी राज्य शामिल थे। अपनी मृत्यु से सिर्फ दो साल पहले 338 ईसापूर्व में फिलिप ने कैरोनिया में यूनानी नगर-राज्यों को परास्त किया। यूनानी राज्यों की अधीनता के साथ यूनान का क्लासिकी काल और *पोलिस* का युग समाप्त हो गया। फिलिप द्वितीय के बाद उसका पुत्र सिकंदर महान सम्राट बना। उसने एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। यूनानी राज्य अब अपनी स्वतंत्रता खो बैठे। उन्हें मकदूनियाई शासन के अधीन कर दिया गया। बाद में वे रोमन साम्राज्य का हिस्सा बने।

II (क)

पुरातन काल के क्रम में अनेक यूनानी राज्य लोकतंत्र के रूप में विकसित हुए। हमें जिन सबसे पुराने लोकतंत्रों की जानकारी मिली है उनमें कियोस (600 ईसापूर्व) और मेगारा (590 ईसापूर्व) शामिल हैं। हालांकि लोकतंत्रीकरण का स्तर राज्यों में अलग-अलग था, ऐसा लगता है कि क्लासिकी यूनान की शुरुआत में लोग समकालीन अन्य समाजों की तुलना में राजनीतिक प्रक्रिया में कहीं ज्यादा हिस्सा लेते थे। यहां खासकर वर्ग विभाजित लोकतंत्र के कुछ सामान्य लक्षणों पर विचार किया जा सकता है। प्राचीन यूनान में उन तमाम राजनीतिक इकाइयों को इंगित करने के लिए आमतौर पर *पोलिस* शब्द का इस्तेमाल किया जाता था जिनमें थोड़ी सी भी लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली पर अमल किया जाता था। विभिन्न *पोलिस* की शासन प्रणाली का एक छोर अगर कुलीन तंत्र था, तो दूसरा छोर एथेंस का परिपक्व लोकतंत्र था। दोनों छोरों के बीच शायद ज्यादातर राज्य थे जहां की शासन प्रणालियों में कुलीनतंत्र और लोकतंत्र के तत्व विभिन्न अनुपात में मौजूद थे। जिन राज्यों के बारे में हमारे पास सूचनाएं हैं उनके *पोलिस* के ढांचे में समरूपता नहीं दिखती। ऐतिहासिक आंकड़े भी विषम हैं। समकालीन सूत्रों से हमें एथेंस और स्पार्टा के बारे में ढेर सारी जानकारियां मिलती हैं। लेकिन कोरिंथ और सिराक्यूज जैसे महत्वपूर्ण राज्यों में लोकतंत्र के बारे में हम लगभग कुछ नहीं जानते हैं।

पोलिस एक छोटा सा क्षेत्र था। उसके साथ ही, जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, वहां की आबादी भी अपेक्षाकृत कम थी। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि उस काल

में लोकतंत्र पूरी तरह एक नई अवधारणा था। इस व्यवस्था को सुगम बनाने वाली प्रणाली अभी निर्माण की प्रक्रिया में थी। अगर *पोलिस* क्षेत्रफल या आबादी में बड़ा होता तो प्राचीन समाज की सीमाबद्धताओं के चलते लोकतंत्र क्रियाशील नहीं हो पाता। यह हमारे सामने यूनानी लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता पेश करता है। आधुनिक लोकतंत्र में लोग अपना प्रतिनिधि चुनते हैं जो उनकी तरफ से मुद्दों पर चर्चा करते हैं, कानून बनाते हैं और शासन करते हैं। प्राचीन यूनान में लोकतंत्र का मतलब था सभा की बैठकों में तमाम लोगों की हिस्सेदारी।

सभा लोकतंत्र की बुनियादी संस्था थी। 'जन' का मतलब *पोलिस* के सभी निवासी नहीं था, यहां तक कि सभी मुक्त निवासी भी नहीं था। उसका मतलब सिर्फ वही लोग थे जिन्हें हम नागरिक कह सकते हैं। सर्वप्रथम महिलाएं उसमें शामिल नहीं थीं। दूसरे सिर्फ वयस्क पुरुषों को ही नागरिक होने का विशेषाधिकार प्राप्त था। तीसरे, जनसभा में वे तमाम लोग शामिल नहीं थे जो *पोलिस* के मूल निवासी नहीं थे या जिन्हें इस या उस कारण से बाहरी माना जाता था। स्पार्टा में मुक्त गैर-नागरिकों को पेरीओइकोइ कहा जाता था। जबकि एथेंस में वे मेटिक (मेटोइकोइ) कहलाते थे। एथेंस में बसे कई व्यापारी मेटिक थे। बेशक गुलामों को कोई भी अधिकार नहीं था।

नागरिकता अधिकार प्राप्त समुदाय की परिभाषा ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण अलग-अलग पोलिस में अलग-अलग थी। एक छोर पर स्पार्टावासी थे जो बड़े जोरदार ढंग से डोरियन कबीलाई समुदाय की नागरिकता के अधिकार की रक्षा करते थे जिसके वे सदस्य थे। उस कारण वहां नागरिकों का एक छोटा बंद समूह था। उत्तर 'अंधकार युग' में स्पार्टा ने दक्षिण पेलोपोनीज के दो बड़े क्षेत्रों यानी लैकोनिया और मेसेनिया पर कब्जा कर लिया और वहां के निवासियों के तमाम अधिकार खत्म कर दिए। उन इलाकों की सारी की सारी आबादी गुलाम बना दी गई। गुलाम बनाए गए लैकोनियाइयों और मेसेनियाइयों के अलावा स्पार्टा में बड़ी संख्या में मुक्त गैर-नागरिक (पेरीओइकोइ) भी थे। लेकिन नागरिकों की संख्या बेहद कम थी।

दूसरे छोर पर थीब्ज का उदाहरण है। थीब्ज बीओशिया का एक प्रमुख राज्य था। बीओशिया में अनेक राज्यों ने मिलकर एक बीओशियाई परिसंघ का गठन किया था। परिसंघ के सदस्य राज्यों का अपना-अपना शासन था। इन राज्यों के नागरिकों को दोहरी नागरिकता का अधिकार था। वे अपने संबंधित *पोलिस* के साथ बीओशियाई परिसंघ की राजनीतिक संस्थाओं के भी नागरिक थे। एथेंस ने जब शुरू में एटिका में अपनी सीमाओं का विस्तार किया तो उसने मैराथन, एलिउसिस वगैरह के स्थानीय प्रशासन खत्म कर दिए जो उस वक्त अस्तित्व में थे। लेकिन उसने उन समुदायों को अपने *पोलिस* में शामिल कर लिया और उन्हें पूर्ण नागरिक अधिकार दिए।

यूनानी पोलिस के नागरिक सभा की कार्यवाहियों में हिस्सा ले सकते थे और वोट

डाल सकते थे जो नागरिकता का बुनियादी अधिकार था। नागरिकों को अपने अधिकार के लिए *अगोरा* जाना पड़ता था। *अगोरा* शहर का एक विशेष खुला स्थान होता था जहां जनसभा की बैठकें होती थीं। उसके कारण शहर से दूर रहने वाले लोगों को असुविधा होती होगी। अगर यूनानी राज्यों का क्षेत्र बड़ा होता तो इस तरह के लोकतंत्र के सिद्धांत पर अमल नहीं किया जा सकता था। कोई आश्चर्य नहीं कि समकालीन राजनीतिक चिंतकों ने जब भी *पोलिस* की चर्चा की, उनके दिमाग में संचालन योग्य आकार वाली आबादी रही। अफलातून (Plato) ने एक आदर्श *पोलिस* के लिए 5040 नागरिकों की संख्या तय की जबकि अरस्तू का कहना था कि *पोलिस* में दस से कम और दस हजार से ज्यादा नागरिक नहीं होने चाहिए। दोनों ही मामलों में नागरिकों की संख्या तर्कसंगत सीमा में रखने पर जोर दिया गया है।

पोलिस की एक दूसरी विशेषता एक परिषद की उपस्थिति थी। यह सभा से बहुत छोटी निकाय थी और शासन का ठोस कामकाज संभालती थी। 'अंधकार युग' के दौरान राजशाही के अंतर्गत कबीलों के प्रमुखों और बुजुर्गों को लेकर गठित परिषद एक सलाहकार निकाय थी। *इलियड* और *ओडिसी* में राजा महत्वपूर्ण मुद्दों पर परिषद से सलाह करता था। राजशाही के पतन के बाद वास्तविक शक्ति कुलीनतांत्रिक परिषदों के पास चली गई।

सभा के लिए बार-बार बैठकें करना संभव नहीं था। उसकी बैठकों में भी कुछ ही मुद्दों पर चर्चा और मतदान हो पाता। इसने परिषद को सभा के कामकाज में हस्तक्षेप करने के लिए व्यापक शक्ति दे दी। आमतौर पर परिषद सभा की बैठकें बुलाती, उन बैठकों की कार्यसूची तय करती और सत्रों का मार्गदर्शन करती। विभिन्न मुद्दों के ब्योरे परिषद या छोटी कमेटियों (कमेटियों के लिए आमतौर पर *प्रोबोउलोइ* शब्द का इस्तेमाल होता था) में तय होते। सभा में किसी चीज को मंजूरी के लिए पेश करने से पहले परिषद में चर्चा या *प्रोबोउलियूसिस* की व्यवस्था अनेक राज्यों में थी। एंड्रयूज के मुताबिक *प्रोबोउलियूसिस* प्रणाली का उद्देश्य सभा को नियंत्रित करना था। ज्यादातर राज्यों में परिषद एक बेहद शक्तिशाली निकाय थी और आमतौर पर उन पर जमींदार कुलीन वर्ग का प्रभुत्व था। लेकिन एथेंस की तरह उसमें वास्तविक जन-प्रतिनिधित्व भी हो सकता था।

यूनानी लोकतंत्र पर चर्चा में अपनी उपलब्धियों के चलते एथेंस का एक विशेष महत्व है। साथ ही एथेंस के राजनीतिक ढांचा के बारे में हमारी जानकारी दूसरे राज्यों की तुलना में ज्यादा व्यापक है। एक अर्थ में एथेंस नियम से कहीं ज्यादा एक अपवाद है। हमने देखा कि सोलोन का सुधार (594 ईसापूर्व) एथेनियाई लोकतंत्र की उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण चरण था। एथेनियाई सभा की लंबे समय से बैठक नहीं हुई थी और वह निष्क्रिय हो चुकी थी। सोलोन ने नागरिकों की सभा बुलाकर उसे पुनरुज्जीवित किया। उसने चार सौ सदस्यों की एक नई परिषद गठित की। नई परिषद *ब्यूल* कहलाई। एथेंस की पुरानी परिषद एरियोपैगस कुलीन वर्ग का निकाय थी। एपियोपैगस को भंग नहीं

किया गया, लेकिन उसकी शक्तियां सीमित कर दी गईं और उसने धीरे-धीरे कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाना बंद कर दिया। *ब्यूल* अब राजनीतिक सत्ता का मुख्य केंद्र था। *ब्यूल* की सदस्यता का आधार वंशगत अधिकार नहीं बल्कि संपत्ति थी जो अपने-आपमें एक नई चीज थी। पुरानी परिषद एरियोपैगस की सदस्यता के लिए कुलीन कुल का होना जरूरी था।

सोलोन ने एथेंस के नागरिकों को चार वर्गों में बांटा। किसी नागरिक का वर्ग उसकी संपत्ति या दौलत के आधार पर निश्चित होता था। शीर्ष पर *पेंटाकोसियोमेडिमनी* था जिनके पास इतनी संपत्ति थी कि उसने कम से कम 500 *मेडिमनोइ* (अनाज की मात्रा मापने की एक इकाई) गेहूं या उसके बराबर के मूल्य की शराब या तेल का उत्पादन होता हो। दूसरे क्रम पर वे नागरिक आते थे जिनकी संपत्ति से कम से कम 300 *मेडिमनोइ* का उत्पादन होता था। तीसरी श्रेणी उनकी थी जिनकी संपत्ति से कम से कम 200 *मेडिमनोइ* का उत्पादन होता था। इस वर्ग के लोगों को *जेयुगिताइ* कहा जाता था। *जेयुगिताइ* छोटे और मध्यम किसान थे जो, जैसा कि हम देखेंगे, एथेनियाई सेना की मुख्य शक्ति थे। इस तरह उन्हें आसानी से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। सबसे नीचे *थीटिज* थे जिनकी संपत्ति से 200 *मेडिमनोइ* से कम उत्पादन होता था। *थीटिज* गरीब किसान, कारीगर और भूमिहीन थे।

ब्यूल की सदस्यता सिर्फ पहले तीन वर्गों के लिए खुली थी। निर्धन हिस्सा अर्थात *थीटिज* को पहले से बाहर रखा गया था। सार्वजनिक पदों पर बहाली चार वर्गों के इस विभाजन के आधार पर की जाती थी। ऊपर के पहले दो वर्गों के पास आर्कन समेत तमाम मुख्य पद रहते थे। *जेयुगिताइ* को छोटे-मोटे पद दिए जाते थे। *थीटिज* को सिर्फ सभा की बैठकों में हिस्सा लेने का अधिकार था। इन सुधारों के बावजूद कुछ प्रमुख पुरोहिती पदों पर अब भी कुलीन वर्ग का एकाधिकार बना था।

क्लाइसथीनिज ने 510 ईसापूर्व में हिप्पियास को सत्ता से हटाने के बाद एथेंस में लोकतांत्रिक सुधार किए। उसका मुख्य लक्ष्य नागरिकों को इस प्रकार पुनर्गठित करना था कि कुलीन वर्गों के लिए कबीले एवं वंश के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था पर अपना शिकंजा बरकरार रखना मुश्किल हो जाए। यहां हमें समझना चाहिए कि सोलोन के सुधार के बाद भी प्रमुख सार्वजनिक पदों पर कुलीन वर्ग का एकाधिकार सुनिश्चित करने में वंशगत समूह निर्णायक भूमिका निभाते रहे। सोलोन ने जो संपत्ति की योग्यता तय की थी उसने नागरिकों के राजनीतिक अधिकार निश्चित किए। फिर भी उम्मीदवारों का चयन वंशगत समूहों के अंदर ही होता रहा।

नागरिक पारंपरिक रूप से चार आयोनियाइ कबीलों में बंटे थे। ये उन कबीलों या कुलों (फ्रात्री) से उनकी उत्पत्ति की निशानदेही करते थे जो मूल रूप से ऐटिका में बसे थे। एथेंस के आयोनियाइ कबीले वंशगत समूह थे। इन चार आयोनियाइ कबीलों (फाइलाइ) का सोलोन के सुधार के आधार पर एथेनियाई नागरिकों के चार वर्गों के

साथ घालमेल नहीं किया जाना चाहिए। सोलोन के चार वर्ग पूरी तरह संपत्ति की योग्यता पर आधारित थे। सोलोन के सुधार के बाद उन कबीलों की राजनीतिक भूमिका घट गई थी लेकिन खत्म नहीं हुई थी। हरेक कबीला *ब्यूल* में एक सौ सदस्य भेजता था। परिषद के सदस्यों और विभिन्न पदों के उम्मीदवारों का चयन आमतौर पर लाटरी निकाल कर किया जाता था। कुलीन वर्ग उम्मीदवारों का चयन अपने पक्ष में कराने के लिए वंशगत रिश्तों, कुलों की वफादारी और उन कबीलों पर अपना पारंपरिक प्रभावों का इस्तेमाल करने में अब भी सक्षम थे। पीसिस्ट्रेटस ने सारी शक्ति अपने हाथों में केंद्रित कर *फाइलाइ* पर कुलीन वर्ग का नियंत्रण खत्म कर दिया।

क्लाइसथीनिज ने नागरिकों के वर्गीकरण के लिए वंश का सिद्धांत खारिज कर दिया। वंश आधारित चार *फाइलाइ* का उन्मूलन कर दिया गया। उनकी जगह दस रिहाइशी *फाइलाइ* (507 ईसापूर्व) ने ली। नए *फाइलाइ* मौलिक रूप से एक नई अवधारणा पर आधारित थे। पुरानी शब्दावली जारी रही लेकिन क्लाइसथीनिज के नए *फाइलाइ* को नागरिकों को संगठित करने के पुराने तरीके से कोई लेना देन(नहीं था। अब से नागरिकों का *फाइलाइ* उनके वंशगत रिश्तों के आधार पर नहीं बल्कि उनके निवासस्थल के आधार पर निर्धारित होने लगा। छठी सदी ईसापूर्व के दौरान मौलिक कबीलाई समूहबंदी पहले ही कमजोर हो चुकी थी क्योंकि नागरिकता का अधिकार उससे वंचित कुछ हिस्सों को दिया गया था और उन्हें विद्यमान कबीलों में स्थान दिया गया था। इस तरह क्लाइसथीनिज के सुधार से पहले से *फाइलाइ* में ऐसे काफी सदस्य मौजूद थे जिनका दूसरे सदस्यों के साथ कोई वंशगत संबंध नहीं था। थामसन का कहना है कि यह समस्या तब खास तौर पर विकट हो गई जब पीसिसट्रेटस ने (*मेटिक्स* समेत) बहुत से कारीगरों और व्यापारियों को एथेंस की नागरिकता प्रदान कर दी। इसलिए *फाइलाइ* का सुधार एक बड़ी तात्कालिक जरूरत बन गई थी। क्लाइसथीनिज ने इस प्रश्न को जो सर्वोच्च प्राथमिकता दी, हमें उसको इसी संदर्भ में देखना चाहिए।

क्लाइसथीनिज ने जो लोकतांत्रिक ढांचा स्थापित किया था उसकी प्राथमिक इकाई 'डीम' थी। सभी नागरिक किसी न किसी डीम के सदस्य थे। डीम सबसे छोटी भौगोलिक इकाई थी जिसमें राजनीतिक उद्देश्य से एथेंस का *पोलिस* विभाजित किया गया था। कुल मिलाकर लगभग 200 डीम (*डेमोइ*) थे। इन डीमों पर नागरिकों की सूची रखने की जिम्मेदारी थी। उनकी अपनी निर्वाचित सरकारें थीं जिसमें सभा और अधिकारी शामिल थे। स्थानीय सरकारों का नेतृत्व *डिमारकोस* या डीम का प्रमुख करता था। थामसन के शब्दों में, 'क्लाइसथीनिज कुलों की बर्खास्तगी से लोगों के दिमाग में पैदा हुई शून्यता भरने के लिए इससे बेहतर कुछ और नहीं कर सकता था।' डीम को उनके स्थान के अनुरूप समूहबद्ध कर दस रिहाइशी *फाइलाइ* बनाए गए थे। क्लाइसथीनिज ने डीम को *फाइलाइ* में श्रेणीबद्ध करने के लिए थोड़ा जटिल तरीका अपनाया था। डीम तीन प्रकार

के थे : तटीय डीम, नगरीय डीम और दूरदराज के ग्रामीण डीम। तमाम *फाइलाइ* में तीनों प्रकार के डीम के कुछ-कुछ हिस्से शामिल किए गए थे। इस तरह *फाइलाइ* के एक तिहाई डीम (*ट्राइटाइज*) तटीय होते; एक तिहाई शहरी होती; और एक तिहाई डेमे दूरदराज में स्थित होते। यह *फाइलाइ* को *ट्रायटाइज* या तिहाई में बांटने की प्रणाली थी। तीन *ट्राइटाइज* तट, नगर एवं ग्रामांचल थे। *फाइलाइ* को *ट्राइटाइज,* अर्थात तीन प्रकार के डीम में विभाजित करने से *फाइलाइ* के संसाधन संतुलित हुए।

क्लाइसथीनिज ने *फाइलाइ* में सुधार के अनुरूप *ब्यूल* की रचना में तब्दीलियां कीं। *ब्यूल* की सदस्य संख्या चार सौ से बढ़ाकर पांच सौ कर दी गई। दस *फाइलाइ* में से हरेक से पचास-पचास सदस्य चुने गए। संबंधित *फाइलाइ* में परिषद के पचास सदस्य डीम में से हरेक की आबादी के अनुपात में लाटरी निकाल कर चुने जाते थे। ब्यूल की सदस्यता थेटे समेत तमाम नागरिकों के लिए खोल दी गई थी। तीस साल से ज्यादा आयु वाला कोई भी नागरिक *ब्यूल* का सदस्य बन सकता था। सदस्यों का कार्यकाल एक साल का था और वह एक अंतराल के बाद ही दूसरे कार्यकाल के लिए चुने जा सकते थे।

ब्यूल पर कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रशासन संबंधी ढेर सारी जिम्मेदारियां थीं। उसे अपने कामकाज के लिए रोजाना बैठकें करनी पड़ती थीं। कर-वसूली की देख-रेख *ब्यूल* करता था। वह वैदेशिक संबंधों की देखरेख करता था, जहाजों और बंदरगाहों की देखभाल करता था और व्यापार का नियमन करता था। *ब्यूल* सभा की बैठकों का मार्गदर्शन करता था। *ब्यूल* की सदस्यता एक पूर्णकालिक कार्य था और यह सही तौर पर समझा गया था कि सिर्फ धनी नागरिकों के पास परिषद के काम के लिए समय हो सकता है। एक समय के बाद एथेनियाई *ब्यूल* पर नागरिकों के संभ्रांत हिस्सों का वर्चस्व हो गया। करीब 450 ईसापूर्व तक जब पेरीक्लीज एथेनियाई राजनीति की एक प्रमुख हस्ती के रूप में उभरा (पेरीक्लीज लगभग 450 ईसापूर्व से 429 ईसापूर्व के दौरान अपनी मृत्यु तक एथेंस का प्रमुख राजनीतिज्ञ रहा)। राजनीतिक सत्ता तक निचले वर्ग की पहुंच खत्म करने का एक निश्चित प्रयास किया गया था।

एथेनियाई सभा *एक्लेसिया* कहलाती थी। सभी नागरिकों (अर्थात वे सभी लोग जिनका नाम डीम की नागरिकता सूची में दर्ज था) को सभा की कार्यवाहियों में हिस्सा लेने और मतदान करने का अधिकार था। *एक्लेसिया* की सदस्यता के लिए न्यूनतम आयु अठारह साल थी। यह अनुमान लगाया गया है कि पांचवीं सदी ईसापूर्व में एथेंस में करीब 45,000 नागरिक थे। बहरहाल एंड्रयूज का कहना है कि सामान्य रूप से करीब 5000 से 6000 नागरिक ही वास्तव में *एक्लेसिया* की बैठकों में हिस्सा लेते थे। *एक्लेसिया* के सत्र *ब्यूल* द्वारा बुलाए जाते थे जो उन बैठकों की कार्यसूची भी तय करता था। *एक्लेसिया* की कार्यवाहियों का संचालन *ब्यूल* का मौजूदा पीठासीन अधिकारी (ब्यूल का अध्यक्ष रोजाना के आधार पर चुना जाता था क्योंकि परिषद से हर दिन बैठक करने की अपेक्षा

की जाती थी) करता था। सभा के सत्रों के लिए एथेनियाई *एक्लेसिया* के सदस्य नाइक्स (Pnyx) नामक स्थान या फिर एक दूसरी जगह जमा होते थे जिसे 'डायनीसस का रंगशाला' कहा जाता था। प्रसंगवश ये सत्र एक दिन का मामला होते थे। जब कभी किसी विषय पर सभा को मतदान करना होता, उसकी बैठक *अगोरा* में होती।

अगोरा पारंपरिक रूप से सभा की बैठकों से जुड़ा था। यह शहर के केंद्र में एक विशाल खुली जगह थी जो और दिनों में बाजार के रूप में इस्तेमाल होती थी। जब क्लाइसथीनिज ने 507 ईसापूर्व में अपना सुधार कार्यक्रम शुरू किया तो उन तमाम स्वतंत्र वयस्क पुरुषों का नाम नागरिकों के रूप में दर्ज किया गया जो डीम के मूल निवासी थे। फिर जैसे-जैसे उन नागरिकों के पुरुष वंशज अठारह साल के होते गए उनका नाम भी नागरिकों के रूप में दर्ज किया जाता रहा। 450 ईसापूर्व तक एथेंस का नागरिक बनने के लिए बस यही शर्त थी कि उसका पिता एथेनियाई हो। 450 ईसापूर्व में पेरीक्लीज ने नागरिकता का अधिकार सिर्फ उन्हीं स्वतंत्र वयस्क पुरुष के लिए सीमित कर दिया जिनके मां और बाप *दोनों* एथेनियाई मूल के हों।

हमने देखा कि 752 ईसापूर्व में एथेनियाई राजाओं (बेसिलियस) को सत्ता से हटा दिया गया। *बेसिलियस* की जगह अधिकारियों ने ले ली जो कुलीन वर्ग के बीच से चुने होते थे। इन अधिकारियों को आर्कन कहा जाता था। शुरू में आर्कन का पद दस साल के लिए था। लेकिन बाद में उसे वार्षिक बना दिया गया। आर्कन निरपवाद रूप से कुलीन वर्ग के बीच से होते थे। 487 ईसापूर्व में उसे एक निर्वाचित पद बना दिया गया। 456 ईसापूर्व में एक दूसरे सुधार के बाद आम जन भी उन पदों पर आसीन होने की उम्मीद कर सकते थे।

स्पार्टा में कुछ हद तक असामान्य सरकार थी जिसमें राजतंत्र, कुलीनतंत्र और लोकतंत्र का सम्मिश्रण था। वहां की सरकार का चरित्र कुल मिलाकर कुलीनतांत्रिक था। स्पार्टा में नागरिक *पोलिस* के कुल निवासियों की तुलना में एक बहुत छोटा समूह थे। क्लासिकी काल की शुरुआत में स्पार्टा में करीब 8000 नागरिकों के होने की रिपोर्ट है और एक सदी के अंदर इस संख्या में खासी गिरावट आई। एथेंस के विपरीत स्पार्टा ने अपने राजनीतिक ढांचा में कभी नए समूहों को जगह नहीं दी। उसके साथ ही यह बात भी उल्लेखनीय है कि एकदम शुरू से ही सरकार में सभी नागरिकों के लिए भूमिका थी। सिद्धांततः सभी नागरिकों को बराबरी हासिल थी। पुरातन काल के शुरुआती दौर में भी स्पार्टा की सभा राज्य का एक सक्रिय अंग था। यूनानी देवता अपोलो की उपासना से जुड़े समारोहों के अवसर पर सभा की बैठकें होने के विवरण मिले हैं। इसलिए स्पार्टा की सभा को कभी-कभी *अपेला* भी कहते हैं।

स्पार्टा की परिषद एक शक्तिशाली कुलीनतांत्रिक निकाय थी जिसे *गेरोउसिया* कहते थे। *गेरोउसिया* में तीस सदस्य थे। उसके दो सदस्य स्पार्टा के राजा होते थे। स्पार्टा में

एक अनोखी तरह की राजशाही थी। दो भिन्न कुलों (एजियाड और यूरिपोनरिड) से जुड़े हुए दो राजा एक साथ राज करते थे। यह अपने आप में राजा के सीमित अधिकार का संकेत है। राजा परिषद के *पदेन* सदस्य थे। परिषद में उन्हें कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। बाकी अट्ठाइस सदस्य कुलीन परिवारों से लिए जाते थे। ये अट्ठाइस सदस्य *जेरोन्टेस* (जेरेन, बूढ़ा व्यक्ति) कहलाते थे। वे साठ साल या उससे ज्यादा उम्र के होते थे। गेरोउसिया की सदस्यता जीवनपर्यंत होती थी। लेकिन बाद में उसे वार्षिक कर दिया गया। राज्य के मुख्य अधिकारी (एथेंस के आर्कन के अनुरूप) एफोर्स कहलाते थे। वहां पांच एफोर्स होते थे। स्पार्टा के एफोर्स मजिस्ट्रेट होते थे जिनके पास कार्यपालिका, न्यायपालिका और पुलिस संबंधी विविध शक्तियां होती थीं। उन्हें नागरिकों के बीच से एक साल के लिए चुना जाता था। हम समझ सकते हैं कि कुलीन वर्ग को एफोर्स बनने के ज्यादा अवसर उपलब्ध होंगे। संभव है कि एफोर्स को भी *गेरोउसिया* की बैठकों में हिस्सा लेने का अधिकार होता होगा।

II (ख)

यूनानी लोकतंत्र का एक सुस्पष्ट लक्षण नागरिकता अधिकार और सैनिक व्यवस्था के बीच गहरा संबंध था। यूनानी राज्यों के पास पेशेवर सैनिकों की कोई नियमित सेना नहीं थी। बड़े हद तक उसका एक कारण यह था कि इस तरह की सेना रखने के लिए उनके पास संसाधन नहीं थे। ऐसे में तमाम स्वतंत्र वयस्क पुरुषों से सैनिक सेवा अपेक्षित थी। इसका अर्थ यह हुआ कि लोग नागरिक होने के साथ ही सैनिक भी थे। नागरिक समुदाय की समूची वयस्क पुरुष आबादी सेना का हिस्सा थी। पुरातन काल की शुरुआत में सभाएं अकसर युद्ध और रक्षा के मुद्दों पर चर्चा के लिए बुलाई जाती थीं। अगर कहीं हमला करने का मंसूबा होता था तो रणनीति तय करने के लिए सभा की बैठक होती थी। होमर के महाकाव्यों में योद्धा सरदार अपनी संबंधित सभाओं में मंजूरी के लिए शांति स्थापना या हमले करने की योजना पेश करते दिखाए गए हैं। हम देखे सकते हैं कि वे नागरिकों की सभाएं थीं जिन्हें उस समय सैनिकों की सभा भी माना जा सकता है।

सभा की सदस्यता के साथ सैन्य कर्तव्य जुड़े थे। एथेंस में स्वतंत्र वयस्क पुरुष तभी सभा की सदस्यता के योग्य माने जाते थे जब वे वयस्क होने के बाद दो साल की सैनिक सेवा पूरी कर लेते थे। स्पार्टा में नागरिकों के युवा पुत्रों के सैन्य प्रशिक्षण का प्रावधान और भी कठोर था। युवाओं को नागरिक के रूप में मान्यता पाने के लिए कठोर सैन्य प्रशिक्षण से गुजरना पड़ता था। स्पार्टा में अपने नागरिकों को अत्यंत उच्च स्तर के युद्ध कौशल से पारंगत करने पर अत्यधिक जोर दिया जाता था। इस कारण स्पार्टावासी जमीनी युद्ध में एक अजेय शक्ति बन गए थे।

यूनानी सेना की केंद्रक होप्लाइट पैदल सेना थी। होप्लाइट ऐसे सैनिक थे जो अपना सैन्य साजो-सामान खुद जुटाते थे। इस तरह के सैनिक ज्यादातर यूनानी राज्यों में आम थे। चूंकि नागरिकों को युद्ध के साजो-सामान से लैस होने के लिए अपने संसाधनों का इस्तेमाल करना पड़ता था, यह जरूरी था कि उनके पास उसके लिए वांछित साधन भी उपलब्ध हों। ज्यादातर होप्लाइट छोटे और मध्यम किसान थे। एथेंस के संदर्भ में देखें तो वहां होप्लाइट पैदल सेना *जेयुगताई* से बनी थी। दूसरे शब्दों में, यूनानी सेनाएं अनिवार्यतया कृषक सैनिकों की सेनाएं थीं। चूंकि ये कृषक सैनिक यूनानी *पोलिस* के अस्तित्व के लिए बेहद जरूरी थे, शासक वर्ग उन्हें आसानी से नजरअंदाज नहीं कर सकते थे। यह भी एक कारण था जिसने राजनीतिक व्यवस्था में उनकी एक हद तक भागीदारी सुनिश्चित की। किसानों की निर्धनता से होप्लाइ्ट सैनिक की किल्लत हुई क्योंकि गरीबों और भूमिहीनों (*थेटे*) के पास बख्तर या हथियार जुटाने का साधन नहीं था। एथेंस ने मेटिकों को आरक्षित सेना के रूप में रखा जबकि स्पार्टा ने *पेरीओइकोइ* को भर्ती करना शुरू कर दिया।

होप्लाइट पैदल सैनिक थे जो भारी-भरकम जिरहबख्तर पहनते थे। इस जिरहबख्तर में एक नकाबनुमा शिरस्त्राण (helmet) भी शामिल था। होप्लाइट सैनिकों का मुख्य हथियार भाला था। उनके पास एक छोटी तलवार और ढाल भी होती थी। होप्लाइट सैनिकों को रणभूमि पर एक खास अंदाज में सजाया जाता था जिसके कारण वे प्रभावी साबित होते थे। इस तरह की व्यूहरचना को फैलेंक्स (phalanx) कहते हैं। उसमें सैनिकों के आठ स्तंभों को अगल-बगल एक दूसरे से बहुत नजदीक सजाया जाता था। यह समझ थी कि फैलेंक्स में होप्लाइट को खूब कसकर भर दिया जाए तो उनका संयुक्त एकताबद्ध दबाव का जबर्दस्त प्रभाव होगा। इस तरह का युद्ध छोटा और निर्णायक माना जाता था।

होप्लाइट सैन्य व्यूहरचना खुले मैदानी इलाकों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी। भारी जिरहबख्तर पहाड़ी इलाकों में दिक्कत तलब होते। इससे यूनानियों को परेशानी का सामना करना पड़ा क्योंकि उनके ज्यादातर क्षेत्र पहाड़ी हैं। आमतौर पर किसी खुले मैदान (कभी-कभी युद्ध से पहले दोनों पक्ष रणभूमि तय कर लेते थे) में छोटी लड़ाई से निर्णय हो जाता था। कृषक सैनिकों की सेना रखने का एक ज्यादा गंभीर नुकसान यह था कि उन्हें बार-बार सैन्य अभियानों में शरीक करने से कृषि कार्य प्रभावित होते थे। इसीलिए ज्यादातर सैन्य अभियान ऐसे समय होते थे जब किसान अपनी खेती-बाड़ी के कामों से मुक्त होते। आमतौर पर ये अभियान माल-ए-गनीमत लूटने के लिए पड़ोसी इलाकों पर हमला या सीमा विवाद सुलझाने के लिए झड़पें होतीं। एम.आई. फिनले का मत है कि *इलियड* में दस वर्ष तक चले ट्रोजन युद्ध की बात बढ़ा-चढ़ाकर पेश की गई है। सामान्य तरीका लूटमार के लिए छोटे अभियान संचालित करना था। पेलोपोनेशियाई युद्ध एक अपवाद था। इस लंबे युद्ध ने ऐटिका, मेगारा और कोरिंथ के ग्रामीण अंचलों को तबाह कर दिया।

कृषक सैनिकों पर पूरी तरह से आश्रित रहने की समस्या का एक आंशिक हल

एथेंस में क्लासिकी काल की शुरुआत में खोजा गया। उसने नौसेना को अपनी सेना की एक अतिरिक्त शाखा बनाया। नौसेना केंद्रीय रूप से वित्तपोषित थी। करीब 500 ईसापूर्व में एथेंस ने लौरियम के खदानों से मिलने वाला अपनी कुछ चांदी एक बड़े नौसैनिक बेड़े के निर्माण में लगाया। यहां यह दोहराना बेहतर होगा कि थेमिस्टोकल्स ने यह परियोजना शुरू की थी। एथेनियाई नौसैनिक बेड़े की मुख्य शक्ति एक नए किस्म का जहाज था जो 'ट्राइटेम' कहलाता था। ट्राइटेम में 170 पतवार थे और उसे तेज रफ्तार से चलाया जा सकता था। एथेनियाई नौसेना ने फारस के खिलाफ युद्ध में यूनानी विजय में महत्वपूर्ण योगदान किया और वह 480 ईसापूर्व के बाद इजियन पर नियंत्रण का आधार थी।

ट्राइटेम के पतवार चलाने वाले मल्लाह ज्यादातर *थेटे* के बीच से नियुक्त किए जाते थे। उन्हें राज्य की ओर से वेतन मिलता था। ट्राइटेम पर नौकरी के तलबगार *थेटे* भूमिहीन लोग थे जो इस तरह के काम के लिए आसानी से उपलब्ध थे, या फिर गरीब किसान थे जो होप्लाइट बनने का सामर्थ्य नहीं रखते थे। डेलियन लीग के सदस्यों से मिलने वाले कर से एथेनियाई नौसेना का रखरखाव होता था। विशेषज्ञों की राय है कि पेलोपोनीज युद्ध इतना लंबा इसलिए खींचा क्योंकि अंतिम चरण तक सैन्य गतिरोध बना रहा। यह गतिरोध इसलिए बना रहा क्योंकि लंबे समय तक स्पार्टा समुद्री युद्ध में एथेंस से टकराने की स्थिति में नहीं था जबकि एथेंस में धरती पर स्पार्टा का वर्चस्व तोड़ने की क्षमता नहीं थी। यहां यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि एथेंस को पराजित करने के बावजूद स्पार्टा की सैन्यशक्ति इतनी नहीं थी कि वह पूरे यूनान पर राज करे। उसे विभिन्न राज्यों का खासकर थीब्ज के विरोध का सामना करना पड़ा। मकदूनियाइयों के पास एक राज्य पोषित पेशेवर सेना थी। उनका सैन्य संगठन उन्नत था और उसमें घुड़सवार सेना भी शामिल थी। अंततः मकदूनियाई ही यूनानी राज्यों पर अपना प्रभुत्व जमा सके।

III

प्राचीन यूनान पहली सभ्यता थी जहां उत्पादन के तमाम क्षेत्रों में गुलामों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया। अब तक हमने जिन सभ्यताओं (मेसोपोटामियाई, मिस्री, हित्ती, माइनोआनी, फिनिशियाई, माइसीनी, ईरानी) की चर्चा की है, सभी ने गुलामों के श्रम का इस्तेमाल किया। लेकिन यूनान के विपरीत उन सभ्यताओं में गुलामों ने उत्पादन में एक सीमित भूमिका ही निभाई। वर्ग-विभाजन, अधिशेष का उत्पादन, राज्य का निर्माण और युद्ध ने गुलामी के लिए स्थितियां तैयार कर दी थीं। गेर्डा लर्नर ने अपनी पुस्तक *दि क्रिएशन आफ पैट्रियार्की* (पितृसत्तात्मक समाज का निर्माण) में कहा है कि पितृसत्तात्मक समाज (ऐसा समाज जिसमें महिलाओं पर पुरुषों का प्रभुत्व और वर्चस्व हो) गुलामी के लिए एक महत्वपूर्ण पूर्वशर्त था। उन्होंने पितृसत्तात्मक समाज के उद्भव और गुलामी

की उत्पत्ति के अंत:संबंधों पर प्रकाश डाला है। वह कहती हैं कि ऐतिहासिक रूप से पितृसत्तात्मक समाज गुलामी से *पहले* वजूद में आया। मानव ने पहले लैंगिक संबंधों में गैरबराबरी स्थापित कर समाज में स्थायी गैरबराबरी की शुरुआत की। महिलाओं के पराभव ने सहयोगी मानव के पराभव का माडल पेश किया। जब लोगों को दासता में जकड़ने के लिए इस माडल का विस्तार अन्य समुदाओं तक किया गया तो गुलामी की संस्था वजूद में आई। गुलामों का पहला जत्था युद्धबंदियों से तैयार हुआ। संभवत: कर्ज अदा नहीं करने के कारण गुलाम बनाए गए लोग भी उनमें शामिल हुए। बहरहाल युद्ध के कारण बड़ी संख्या में युद्धबंदी बने। बाहरी लोगों को गुलाम बनाना ज्यादा आसान था क्योंकि समुदाय से उनका कोई रिश्ता नहीं था और न ही उनकी कोई हैसियत थी। इसलिए उनका बेरहमी से शोषण किया जा सकता था (देखें अध्याय चार)।

अध्यार चार में हमने पढ़ा था कि पहले जिन्हें गुलाम बनाया गया वे महिलाएं थीं। युद्ध में किसी समूह के हारने पर वयस्क पुरुषों की हत्या कर देने का और महिलाओं तथा बच्चों को बंदी बनाने का चलन था। पुरुषों को गुलाम बनाने की शुरुआत तभी हो सकी जब समाज के पास पर्याप्त संख्या में सैनिक हो गए। विशेषज्ञों ने इंगित किया है कि भिन्न समुदाय के पुरुषों की एक बड़ी जमात को गुलाम बनाना दो कारणों से अपेक्षाकृत कठिन काम था। पहला तो यह कि उन पुरुषों में से अनेक युद्धकला में पारंगत होते थे जिसके कारण उन्हें स्थायी रूप से बंदी बना कर रखने के लिए पर्याप्त सैन्य बल की जरूरत थी। याद करें कि पितृसत्तात्मक समाज पहले ही वजूद में आ गया था और श्रम के असमान विभाजन के तहत युद्ध का सारा दारोमदार पुरुषों पर था। दूसरे, महिला गुलामों को उन पर कब्जा करने वाले समुदाय के साथ नया संबंध बनाने के लिए बाध्य किया जा सकता था। मिसाल के तौर पर, उन्हें बच्चा पैदा करने के लिए बाध्य (बलात्कार बलात शासन के लिए सर्वाधिक इस्तेमाल होने वाला तरीका था) किया गया। महिलाओं को अपने गुलाम बनाने वाले समुदाय के साथ कृत्रिम रिश्ता बनाने के लिए बाध्य किया जा सकता था, खासकर जब उनके बच्चे होते। लेकिन पुरुषों के साथ ऐसा असंभाव्य था।

गुलामी की प्रथा के विकास का यह तरीका यूनान में देखा जा सकता है। माइसीनी समाज में गुलाम महिलाएं महलों में काम करने वाले श्रमिकों में शामिल थीं। मिसाल के तौर पर पाइलोस के महल में कम से कम 550 महिलाएं वस्त्र-निर्माण में लगी थीं। लिनियर बी पट्टिकाओं में गुलामों के लिए *डोएरी* शब्द का इस्तेमाल हुआ है। 'अंधकार युग' के दौरान गुलामी का तथ्य व्यापक स्तर पर मौजूद था। *इलियड* और *ओडिसी* में युद्ध के दौरान महिलाओं के बंदी बनाए जाने के अनेक उल्लेख हैं। होमर के महाकाव्यों में गुलाम महिलाओं की प्रमुखता से चर्चा मिलती है। महिलाओं को घरेलू कामकाज और वस्त्र-निर्माण में लगाया जाता था।

पुरातन और क्लासिकी यूनान में गुलाम श्रम का जिस पैमाने पर शोषण होता था

वह पहले की सभ्यताओं से बुनियादी रूप से भिन्न था। गुलाम उत्पादन के हर क्षेत्र में दिखते थे। कृषि के क्षेत्र में गुलाम भारी संख्या में थे। उत्खनन और दस्तकारी ऐसे दो अन्य क्षेत्र थे जिनमें गुलाम श्रम की भूमिका महत्वपूर्ण थी। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यूनानी कृषि में गुलामों की भूमिका बढ़ा-चढ़ा कर पेश की गई है जबकि स्वतंत्र किसानों ने कृषक अर्थव्यवस्था को संभाला था। हम रोमन गुलामी पर चर्चा करने के बाद इस बहस पर नजर डालेंगे। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि यूनानियों ने अपने से पहले की सभ्यताओं के मुकाबले कृषि में गुलामों का बहुत ज्यादा इस्तेमाल किया।

'अंधकार युग' के आखिरी दौर से ही स्पार्टा जिस तरह से गुलाम श्रम का इस्तेमाल कर रहा था वह अभूतपूर्व था। 'अंधकार युग' के आखिरी दौर में स्पार्टा ने लैकोनिया और मेसेनिया को पराजित कर दोनों क्षेत्रों की समूची आबादी को गुलामों में बदल दिया। स्पार्टावासियों ने एक अनोखी तरह की गुलामी का तरीका शुरू किया जिसे 'हिलट प्रथा' कहते हैं। हिलट राज्य की मिल्कियत होते थे। लैकोनियाई और मेसेनियाई हिलटों के रूप में स्पार्टा के नागरिकों की सामूहिक संपत्ति बन गए। उन्हें स्पार्टावासियों का काम करने के लिए बाध्य किया गया। लैकोनियाई और मेसेनियाई खेतों में काम करते, भेड़ या बकरियों के झुंडों की देखरेख करते और घरेलू काम करते। स्पार्टा ने उनके खेत ले लिए थे और उन्हें टुकड़ों में बांट दिया था जो *क्लेरोइ* (kleroi) कहलाते थे। *क्लेरोइ* स्पार्टा के नागरिकों के परिवारों को आवंटित किए जाते थे। उनमें हिलटों के श्रम से खेती की जाती थी।

स्पार्टा के समाज के कुलीनतांत्रिक चरित्र को देखते हुए ऐसा नहीं लगता कि नागरिकों के बीच *क्लेरोइ* का बराबर-बराबर वितरण हुआ होगा। कुलीनों के पास बड़े भूखंड थे। हिलटों का वितरण राज्य की देखरेख में होता था। राज्य ने जरूरत के आधार पर हरेक परिवार को कुछ खास संख्या में गुलाम दे दिए। स्वाभाविक था कि कुलीन वर्ग को सबसे बड़ा हिस्सा मिला। अन्य प्रकार की गुलामी से यह गुलामी इस मायने में भिन्न थी कि ये गुलाम निजी मिल्कियत नहीं थे। साथ ही उन्हें पारिवारिक संबंध बनाने की इजाजत थी। गुलाम परिवारों में पैदा हुए बच्चों की हैसियत भी अपने माता-पिता जैसी ही होती। इसका मतलब यह हुआ कि एक लंबे समय तक स्पार्टा गुलाम श्रम की अपनी जरूरत लैकोनियाइयों और मेसेनियाइयों से पूरा करने में सक्षम था। दूसरी तरफ अभी तक समुदाय के रूप में संगठित की गई इतनी बड़ी आबादी को बड़े पैमाने पर सैन्यबल के सहारे ही अधीन बनाया जा सकता था। स्पार्टा में गुलाम संख्या में नागरिकों से बहुत ज्यादा थे। स्पार्टा के नागरिकों के कठोर सैनिक प्रशिक्षण ने उन्हें सैनिक तैयारी की स्थायी स्थिति में बनाए रखा। इस तरह के सैन्यबल की मदद से स्पार्टावासी लैकोनियाइयों और मेसेनियाइयों को कई पुश्तों तक गुलामी में जकड़ कर रख सके।

इस तरह की व्यवस्था को गुलामी का एक आदिम रूप माना जा सकता है जो स्पार्टा

की अर्थव्यवस्था के अपेक्षाकृत पिछड़ेपन को दिखाता है। इस क्षेत्र में व्यापार और दस्तकारी अल्पविकसित रही जिसके कारण कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था के लिए उपयुक्त यह व्यवस्था स्पार्टा में गुलामी का प्रमुख रूप बनी रही। यहां यह याद रखना चाहिए कि बाहर से लाए गए गुलामों के लिए अन्य चीजों के अलावा व्यापार का एक सक्रिय संजाल, निजी संपत्ति का पर्याप्त विकास, और कुछ हद तक छोटी-मोटी चीजों का उत्पादन अपेक्षित था। सामूहिक स्वामित्व वाले गुलाम अन्य यूनानी राज्य मसलन थेसाली, क्रेटे और आर्गोलिस में भी थे। थेसाली में इस तरह के गुलामों को *पेनेस्टाइ* कहते थे।

अन्य जगहों पर निजी मिल्कियत वाले गुलाम यूनानी समाज एवं अर्थव्यवस्था की विशेषता बन गए। ऐसे गुलामों के लिए अनेक शब्द इस्तेमाल होते थे जिनमें *डोउलोस* सर्वाधिक प्रचलित थे। निजी मिल्कियत वाले गुलाम मिनोआनी और माइसीनी काल से मौजूद थे। करीब 600 ईसापूर्व में कियोस द्वीप में कृषि कार्यों में व्यापक रूप से गुलामों का इस्तेमाल होने के साक्ष्य मिले हैं। हम जानते हैं कि पूर्व भूमध्यसागरीय क्षेत्र में गुलामों का एक फलता-फूलता व्यापार था। फिनिशियाई इस व्यापार में सक्रिय थे। पुरातन काल में खासकर एथेंस में गुलामों *(डोउलोस)* की संख्या में इजाफा हुआ। हम पहले ही देख चुके हैं कि करीब 600 ईसापूर्व तक किसानों की दरिद्रता के कारण ऋण-दासता ने एथेंस में एक गंभीर संकट खड़ा कर दिया था। यह संकट अस्थायी तौर पर तब टल गया जब 594 ईसापूर्व में सोलोन ने ऋण दासता खत्म कर दी। उस समय तक समस्या बहुत विकट हो गई होगी क्योंकि ऋण दासता का खात्मा कुलीन वर्ग के खिलाफ संघर्षरत एथेनियाई किसानों की एक प्रमुख मांग थी। कुलीन वर्ग से सर्वाधिक पीड़ित किसानों का वह हिस्सा था जो *हेकतेमोरोइ* कहलाता था। *हेकतेमोरोइ* गरीब किसान थे जिन्हें अपने खेतों पर इस शर्त पर खेती करने की इजाजत दी जाती थी कि वह अपनी उपज का छठा हिस्सा उस वर्ग को देंगे जिसका उस जमीन पर श्रेष्ठ अधिकार है (थामसन ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि किसानों को सिर्फ छठा हिस्सा मिलता था)। अगर वे यह हिस्सा नहीं दे पाते तो उन्हें उनके परिवार समेत गुलाम बना लिया जाता था। यह एक रास्ता था जिससे जमींदार वर्ग मजदूरों की अपनी समस्या हल करता था।

सोलोन के शासन के तहत ऋण दासता के खात्मे का एथेनियाई सामाजिक ढांचे के विकास पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। 594 ईसापूर्व के बाद एथेनियाई समुदाय के किसी व्यक्ति को गुलामी करने के लिए बाध्य करना संभव नहीं था। इससे बड़े जमींदारों को मजदूरों की कमी का सामना करना पड़ा। वे अपनी जायदादों पर काम करने के लिए बाहर से गुलामों का आयात करने लगे। यहां हमें स्पष्ट हो जाना चाहिए कि श्रमिकों की किल्लत अनिवार्यत: या स्वत: समाज को गुलामी की तरफ नहीं ले जाती। दरअसल यह एक उपाय था जिसे यूनानियों ने अपनी विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियों में इस्तेमाल किया।

एम.आई. फिनले का मत है कि जब दो पूर्वशर्तें मौजूद होती हैं तो गुलामी किसी अर्थव्यवस्था में (खासकर कृषि अर्थव्यवस्था में) व्यापकता ग्रहण कर लेती है। पहली पूर्वशर्त यह है कि समाज में श्रम की मांग की तुलना में उसकी आपूर्ति पर्याप्त रूप से कम हो। दूसरी यह कि कृषि भूमि एक छोटे समूह के हाथों में काफी हद तक सकेंद्रित हो जबकि छोटे किसान भी अच्छी-खासी संख्या में हों। इसका मतलब हुआ कि बड़े जमींदारों का एक वर्ग होना चाहिए जिसे अपने खेतों के लिए श्रमिकों की जरूरत हो। लेकिन अगर छोटे-छोटे भूखंडों के स्वामित्व वाले छोटे किसानों की एक अच्छी-खासी तादाद मौजूद होगी तो अतिरिक्त श्रमिक जुटाना मुश्किल होगा क्योंकि छोटे किसानों का झुकाव बड़े जमींदारों के खेतों में काम करने की ओर नहीं होगा। बेशक कुछ भूमिहीन मजदूर होंगे जो बड़े जागीरों में काम कर सकते हैं। फिनले के मुताबिक प्राचीन यूनान में हर तरह के उत्पादन में स्वतंत्र मजदूर श्रम का इस्तेमाल हुआ है। उसके अतिरिक्त ढेर सारे गरीब किसान (अर्थात *थेटे*) थे जिनके पास इतने कम खेत थे कि उन्हें अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए समय-समय पर जागीरों में काम ढूंढना पड़ता था। लेकिन इस तरह के श्रमिकों से उपलब्ध श्रमबल अपर्याप्त था। सोलोन के सुधारों और पीसिसट्रेटस के शासनकाल में किसानों में स्थिरता आने के बाद आंतरिक स्रोत से श्रमिक जुटाना और कठिन हो गया। इसलिए बाहर से गुलाम लाने का रुझान बढ़ा।

मिनोआइ-माइसीनी युग से ही यूनान में विभिन्न प्रकार की गुलामी प्रचलित थी और इस कारण वहां गैर-स्वतंत्र श्रम के इस रूप को अपनाना आसान हुआ। गुलामी संस्थाबद्ध हो चुकी थी (राज्य की मशीनरी इस स्थिति को लागू करने के लिए इस्तेमाल की जाती थी) और पुरातन काल तक गुलामों के संबंध में कानूनी प्रावधान तैयार हो चुके थे। गुलामों को साफ तौर पर संपत्ति का एक रूप माना गया था। लोकतंत्र के विकास ने स्वतंत्र और गैर-स्वतंत्र दर्जों के बीच विषमता बढ़ा दी। यहां यह जोड़ना जरूरी है कि पहले से मौजूद संगठित गुलाम व्यापार से पुरातन और क्लासिकी काल के दौरान बड़े जमींदारों को गुलामों की नियमित आपूर्ति हुई। फ़ारसी युद्ध के बाद गुलाम श्रम की जरूरत कई गुना बढ़ी जब कुलीन वर्ग को एथेनियाई साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में जमीनें मिलीं।

युद्ध, समुद्री डकैती और आदिम कबीलाई समुदाय के इलाकों पर हमलों से गुलामों का लाभप्रद व्यापार फला-फूला। पुरातन काल की शुरुआत में ज्यादातर गुलाम यूनानी थे जबकि क्लासिकी काल में ज्यादातर गुलाम गैर-यूनानी मूल के थे। उन गुलामों के मूल स्थानों के बारे में हमारी जानकारी अत्यल्प है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण रूस, काला सागर के इर्द-गिर्द का इलाका, थ्रेस, मध्य यूरोप, सीरिया और इटली मुख्य क्षेत्र थे जहां से गुलाम पकड़े जाते थे। गैर-यूनानी होने के कारण गुलाम पूरी तरह बाहरी होते। इससे गुलामों के बीच आपसी संबंध बनाना मुश्किल था। लिहाजा विद्रोह की संभावना कम थी।

क्लासिकी काल के दौरान एथेंस की खुशहाली गुलाम श्रम के विस्तार पर निर्भर थी। गुलामी ने एथेंस के शासक वर्गों को सांस्कृतिक क्रियाकलापों के लिए पर्याप्त संसाधन और फुर्सत मुहैया की। इतिहासकारों ने पांचवीं सदी ईसापूर्व के दौरान एथेनियाई गुलामों की संख्या 60,000 से 1,10,000 के बीच आंकी है। यह अनुमान लगाया गया है कि उनमें से करीब 20,000 से 30,000 गुलाम लौरियम की चांदी के खानों में काम करते थे। ऐटिका के दक्षिणी छोर पर स्थित लौरियम क्लासिकी यूनान में चांदी का सबसे समृद्ध क्षेत्र था। स्रोत गुलामों के मालिकान राज्य को ठेके पर गुलामों की आपूर्ति करते थे। विशाल गुलाम श्रमिक बल के श्रम से इन खानों से निकाली गई चांदी ने इजियन में एथेंस का आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करने में बड़ी भूमिका निभाई। कृषि एवं उत्खनन के अलावा दस्तकारी में भी गुलामों की बड़ी भूमिका रही। गुलामों से नियमित प्रशासनिक कामकाज भी कराए जाते थे। एथेनियाई राज्य के पास इस मकसद से कुछ गुलाम थे। गुलाम पुलिसकर्मी और जेलकर्मी के रूप में तैनात किए जाते थे। वे विभिन्न प्रकार के घरेलू और छोटे समझे जाने वाले काम भी किया करते थे।

कृषि यूनानी अर्थव्यवस्था का स्तंभ थी। इस क्षेत्र की भौगोलिक प्रकृति के कारण आमतौर पर भूखंड छोटे थे। खेत औसतन 5 से 15 एकड़ के बीच के थे। ज्यादातर जगहों की मिट्टी निकृष्ट किस्म की थी और उसमें खेती करने के लिए बहुत शारीरिक श्रम की जरूरत पड़ती थी। ढेर सारी जगहों पर सिंचाई के लिए छोटी नहरें खोदनी पड़ती थीं। इलाके के पहाड़ी इलाकों में पहाड़ों की ढलानों को काट कर सीढ़ीदार खेत बनाने पड़ते थे। चूंकि मिट्टी हल्की और सूखी थी तथा खेत बड़े नहीं थे, मिट्टी ढीली करने के लिए हल की जगह कुदाल से काम चला लिया जाता था। यह तरीका खासकर गरीब किसानों में ज्यादा प्रचलित था। गेहूं, जैतून, अंगूर और फ्लैक्स प्रमुख फसलें थीं। भेड़, बकरी और सुअर पाले जाते थे।

'अंधकार युग' खत्म होने के साथ इजियन और पूर्वी भूमध्य सागरीय क्षेत्र का समुद्री व्यापार बहाल हो गया। करीब 600 ईसापूर्व से उस क्षेत्र में एक फलता-फूलता वाणिज्य था जिसका एक बड़ा हिस्सा यूनानियों के हाथ में था। पूर्वी यूनानी राज्य-एथेंस और कोरिंथ उस व्यापार के प्रमुख भागीदार थे। यूनानी जैतून का तेल, शराब, गेहूं, कलश, वस्त्र, सोना, चांदी, गुलाम और विभिन्न प्रकार की विलास सामग्रियों का व्यापार करते थे। फारस के युद्ध के बाद इजियन के वाणिज्य पर एथेंस का वर्चस्व हो गया। पाइरीअस एथेंस का प्रधान बंदरगाह था। समूचे क्लासिकी काल में पाइरीअस पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के व्यस्ततम बंदरगाहों में से एक बना रहा। एक महत्वपूर्ण कारण से इस क्षेत्र के व्यापार को बढ़ावा मिला। वह था सिक्कों की शुरुआत। मानव इतिहास में पहली बार मुद्रा विनिमय का माध्यम बनी। पश्चिम अनातोलिया के लीडिया राज्य को इस नवाचारी शुरुआत का श्रेय जाता है। लीडिया में करीब 600 ईसापूर्व में सिक्के बनने शुरू हुए।

जल्द ही एथेंस समेत दूसरे यूनानी राज्यों ने विनिमय के इस नए माध्यम को अपना लिया। सिक्के चांदी और इलेक्ट्रम (सोना और चांदी की एक मिश्र धातु) के बनाए जाते थे। एथेंस के पास लौरियम के खानों से भारी मात्रा में चांदी उपलब्ध थी। उसने उससे बढ़िया किस्म के एक जैसे सिक्के गढ़े। उन सिक्कों को बड़े पैमाने पर स्वीकृति मिली जिसने उस क्षेत्र के व्यापारिक संजाल में एथेंस की नेतृत्वकारी स्थिति पुख्ता की।

IV (क)

यूनान का क्लासिकी काल दर्शन, विज्ञान और कला के क्षेत्र में शानदार उपलब्धियों का काल रहा। यूनानी *पोलिस* की लोकतांत्रिक परंपराओं ने विचारधाराओं के विकास के लिए अनुकूल माहौल दिया। लोकतंत्र ने *पोलिस* के नागरिकों को जो स्वतंत्रता दी उससे नए विचारों को फलने-फूलने को मौका मिला। गुलामी ने नागरिकों के एक हिस्से को फुर्सत का लुत्फ उठाने और संस्कृति को बढ़ाने का मौका दिया। प्राचीन यूनानी विचार प्रकृति को समझने तथा अस्तित्व का गूढ़ रहस्य खोलने के मानव मस्तिष्क की कोशिश की दिशा में एक लंबी छलांग थे।

इस दिशा में पहला स्पष्ट प्रयास आयोनियाइ मत था जो करीब 600 ईसापूर्व में पूर्वी यूनान के मिलेटस में फला-फूला। इस विचार शृंखला से जुड़े तीन नाम थेलेस, अनाक्सीमैंडर और अनाक्सीमीनिज हैं। उन तीनों को पश्चिमी दर्शन का संस्थापक माना जाता है। थेलेस, अनाक्सीमैंडर और अनाक्सीमीनिज इस प्रश्न में उलझे थे कि प्रकृति क्या है अर्थात वह कौन से बुनियादी तत्व या तत्वों से बनी है और उसकी चालक शक्ति क्या है। थेलेस का मानना था कि जल, बल्कि 'आर्द्र' प्रकृति का बुनियादी तत्व है और सभी चीजों की उत्पत्ति जल से हुई है। अनाक्सीमैंडर का मत था कि गरम, ठंडा, आर्द्र और शुष्क एक साथ इस ब्रह्मांड के प्रमुख मूल सिद्धांत हैं। उसका विपरीत (गरम और ठंडा, गीला और सूखा) का एक सिद्धांत था। इस सिद्धांत के अनुसार ताप के कारण से उनके बीच अंत:करण से आर्द्र से शुष्क में रूपांतरण, एवं अन्य चक्रीय प्रक्रियाओं की शुरुआत होती है। अनाक्सीमीनिज के अनुसार हवा ब्रह्मांड का प्राथमिक तत्व है।

प्रारंभिक यूनानी दर्शन की एक दूसरी महत्वपूर्ण धारा पाइथागोरस और उसके अनुयाइयों की थी। पाइथागोरस सामोस द्वीप में रहने वाला एक पूर्वी यूनानी था। वह सामोस छोड़कर क्रोटोन में बस गया (करीब 530 ईसापूर्व) जो दक्षिण इटली में एक पश्चिमी यूनानी उपनिवेश था। क्रोटोन में पाइथागोरस ने एक नए धार्मिक पंथ की स्थापना की। पुरातन काल में यूनान के विभिन्न हिस्सों में अनेक धार्मिक पंथ एवं संघ थे। ये पंथ गुप्त संस्थाओं से मिलते-जुलते थे। उनकी सदस्यता कुछ चुनिंदा लोगों को दी जाती थी

जो पंथ के उसूल समझते और स्वीकार करते। नए सदस्यों को प्रवेश की एक लंबी-चौड़ी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता था। उन पंथों के विशेष कर्मकांड और कार्यक्रम थे जिनमें सिर्फ सदस्य ही हिस्सा ले सकते थे। ये पंथ कुछ उपासनाओं और खास देवी-देवताओं की पूजा के इर्द-गिर्द संचालित होते थे। इन पंथों की एक रोचक विशेषता यह थी कि उनमें शुरुआती कबीलाई आस्था के साथ पुरातन काल के यूनानी धर्म का मिश्रण था।

उस काल की एक चर्चित उपासना ओर्फियाइयों की थी जो ओर्फियस के इर्द-गिर्द केंद्रित थी। ओर्फियस यूनानी देवमाला का एक त्रासिक चरित्र है जो संगीत और काव्यरचना से जुड़ा था। यह उपासना थ्रेसियाई (या शायद मिस्री) मूल की थी। लेकिन यूनान के एक बड़े हिस्से में लोकप्रिय हो गई थी। ओर्फियाई आस्था की मुख्य विशेषता रहस्यवाद, पाप-बोध और प्रायश्चित्त की भावना थी। पाइथागोरस ओर्फियाई रहस्यवाद से बेहद प्रभावित था। उसका धार्मिक पंथ ओर्फियाई संघ के आधार पर संगठित था अर्थात यह एक गुप्त संघ की तरह संचालित होता था। दोनों पंथों के कुछ साझे आचार-व्यवहार थे मसलन दोनों में मांसाहार पर रोक थी।

पाइथागोरस ने ओर्फियाई पंथ से आत्मा की अनश्वरता की अवधारणा ली। उसने इस अवधारणा में थोड़ा संशोधन कर कहा कि मृत्यु के बाद मानव की आत्मा जानवरों के शरीर में समा जाती है। पाइथागोरस के अनुयाइयों (कुछ हद तक ओर्फियाई भी) आत्मा के देहांतरण या पुनर्जन्म पर विश्वास करते थे। दूसरे शब्दों में, आत्मा शरीर से स्वतंत्र मानी जाती थी। पाइथागोरस ने आत्मा के लिए समरसता (harmony) हासिल करने पर जोर दिया। उसके लिए उसने 'माध्य' का सिद्धांत या दो चरम के बीच सृजनात्मक रूप से एक मध्य मार्ग बनाने का प्रचार किया। 'माध्य' समरसता की कुंजी थी। समरसता और 'माध्य' की तलाश ने पाइथागोरस को प्रकृति, संगीत और गणित के अध्ययन की ओर उन्मुख किया। पाइथागोरस ने कुछ खास संख्याओं और सममिति (symmetry) को विशेष महत्व दिया। पाइथागोरस गणितज्ञ के रूप में ज्यादा जाना जाता है खासकर अपने मशहूर ज्यामितीय प्रमेय के लिए जिसके तहत किसी समकोण त्रिभुज के कर्ण का वर्गफल उसके दो अन्य भुजाओं के वर्गफल के योग के बराबर होता है। ज्यामिती में पाइथागोरस की रुचि उसके धार्मिक विचारों का उपफल थी।

प्राचीन यूनान के अन्य विचारकों में डेमोक्रिटस (करीब 470-400 ईसापूर्व) का जिक्र किया जाना चाहिए। डेमोक्रिटस ने प्रकृति को और तर्कसंगत रूप से समझने की कोशिश की। उसने निष्कर्ष निकाला कि प्रकृति में सब चीजें 'परमाणुओं' से बनी हैं। लेकिन परमाणु के आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांत के साथ इसका घाल-मेल नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि परमाणु के संबंध में डेमोक्रिटस की धारणा किसी अवलोकन या प्रयोग पर आधारित नहीं थी। परमाणु के संबंध में उसकी धारणा प्रकृति के मूल तत्व को रेखांकित करने वाली एक दार्शनिक परिकल्पना मात्र थी। बहरहाल डेमोक्रिटस ने इस

पर जोर दिया कि ब्रह्मांड में हर चीज अंततः पदार्थ का रूप होती है। उसने यह भी कहा कि प्रकृति में हर चीज लगातार बदलती रहती है।

यूनान में विचारकों के फलने-फूलने का असर विज्ञान, चिकित्सा और इतिहास लेखन पर पड़ा। यूनानी दर्शन में तर्कसंगत रुझानों के विकास ने इन क्षेत्रों को अंधविश्वास से मुक्त कराने में मदद की। चिकित्सा के क्षेत्र में कोस का हिप्पोक्रेट्स (469-399 ईसापूर्व) क्लासिकी काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व था। हिप्पोक्रेट्स ने चिकित्सा को जादू-टोना के दायरे से निकाला और उसे एक वैज्ञानिक आधार देने की कोशिश की। एक चिकित्सक के रूप में हिप्पोक्रेट्स ने रोगों का इलाज लक्षणों की बारीकी से जांच कर और सिर्फ उन लक्षणों के आधार पर किसी निदान तक पहुंच कर किया। हिप्पोक्रेट्स मानता था कि रोग प्राकृतिक कारणों से होते हैं और उसकी वैज्ञानिक जांच-पड़ताल की जा सकती है। इलाज का तौर-तरीका निदान से निर्धारित होता था।

हेरोडोटस और थूसिडडीज की लेखनी ने इतिहास को ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा के रूप में एक नया और ज्यादा आधुनिक अर्थ दिया। अब तक ऐतिहासिक विवरण तथ्यों, कल्पनाओं, मिथकों, दंतकथाओं, किस्सों, नीतिकथाओं और उपाख्यान के मिश्रण होते थे। हेरोडोटस के साथ ऐतिहासिक पद्धति वजूद में आई और इसलिए उसे अकसर 'इतिहास का जनक' भी कहा जाता है। हेरोडोटस का जन्म करीब 490 ईसापूर्व में अनातोलिया में हुआ। उसने मध्य पांचवीं सदी ईसापूर्व से यूनानी इतिहास की रचना की। उसने फारसी युद्ध का विस्तार से उल्लेख किया। हेरोडोटस ने खूब यात्राएं कीं और मिस्त्र समेत अनेक देशों के बारे में ऐतिहासिक जानकारियां इकट्ठी कीं। उसने इकट्ठा किए गए साक्ष्यों को दर्ज करने से पहले उनका सत्यापन और मूल्यांकन करने की कोशिश की। थूसिडडीज ने पांचवीं सदी ईसापूर्व के उत्तरार्द्ध में रचना की। वह (करीब 460-399 ईसापूर्व) एथेंस का रहने वाला था। उसने पेलोपोनीज युद्धों का इतिहास लिखा। उसने खुद भी उन युद्धों में हिस्सा लिया था और इसलिए वह कई घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी था। यह उल्लेखनीय है कि उसने एक निष्पक्ष पर्यवेक्षक की हैसियत से लिखा। थूसिडडीज का इतिहास यूनान के समकालीन राजनीतिक हालात का एक खरा विवरण और धारदार विश्लेषण दोनों है।

विज्ञान के विकास के क्षेत्र में यूनानियों का सरोकार सिद्धांत से ज्यादा था। दरअसल थेलस के समय से लेकर क्लासिकी काल के दार्शनिकों तक यूनानी चिंतन को विज्ञान से आसानी से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि वह प्रकृति के नियमों को जानने पर लक्षित था। आगे चलकर इस रुझान के कारण व्यावहारिक विज्ञान और प्रयोगों की कीमत पर शुद्ध चिंतन-मनन पर ज्यादा जोर पड़ा। दूसरी तरफ इस रुझान के कारण विचार और परिष्कृत हुए।

यूनानी दर्शन का स्वर्णयुग करीब 400 ईसापूर्व में सुकरात के साथ शुरू हुआ। इस

काल में एथेंस बौद्धिक गतिविधियों का मुख्य केंद्र था। सुकरात, अफलातून (Plato) और अरस्तू ऐसे दार्शनिक थे जिन्होंने यूनानी दर्शन को बुलंदी दी। सुकरात अफलातून का गुरु था। उसके साथ यूनानी चिंतन का केंद्र प्रकृति से हट कर मानव अस्तित्व की प्रकृति की ओर गया। सुकरात ने अनेक दार्शनिक श्रेणियां स्पष्ट कीं जिससे चिंतन तथा तर्क और भी परिष्कृत हुए। सुकरात पश्चिमी दर्शन के क्षेत्र में इस कदर मोड़ है कि उसके पहले की तमाम पश्चिमी दार्शनिक परंपराओं को सीधे प्राक्–सुकराती का नाम दे दिया गया है।

अफलातून (427–347 ईसापूर्व) ने सुकरात के दिशा–निर्देश में अध्ययन किया। अफलातून ने एथेंस में एक संस्था (अकादमी) स्थापित की जहां वह दर्शन की शिक्षा देता था। अफलातून का दर्शन 'आदर्शवादी' माना जाता है। उसकी दलील है कि हमारे मस्तिष्क से इतर किसी चीज का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। हम जो कुछ भी अनुभव करते हैं वह वास्तव में हमारी चिंतन प्रक्रिया का फल है। उसकी मान्यता थी कि अनुभव अवास्तविक है और सिर्फ विचार वास्तविक है। उसके अनुसार सिर्फ चिंतन और ध्यान से यथार्थ तक पहुंचा जा सकता है। अफलातून ने मस्तिष्क और पदार्थ के बीच संबंध का सवाल जिस तरह पेश किया वह दर्शन के क्षेत्र में हमेशा याद रखा जाने वाला उसका योगदान बन गया। अफलातून ने बाद के पश्चिमी एवं अरब दर्शन पर जोरदार प्रभाव डाला।

अरस्तू (384–322 ईसापूर्व) अफलातून का शिष्य था लेकिन उसने जो विचार विकसित किए वे उसके शिक्षक से भिन्न थे। अफलातून के निधन के बाद अरस्तू ने अकादमी छोड़ दी। कई साल बाद उसने एथेंस में एक नई संस्था (लाइसियम) स्थापित की। अरस्तू ने कभी अफलातून के विचारों को पूरी तरह परित्याग नहीं किया। लेकिन उसने अफलातून की यह राय खारिज कर दी कि यथार्थ तक पहुंचने के लिए अनुभव गैर–जरूरी है। हमें याद रखना चाहिए कि अरस्तू विज्ञान का गहन अध्ययनकर्ता था। उसे जीवविज्ञान में विशेष रुचि थी। उसने पेड़–पौधों और पशुओं का बारीकी से अध्ययन किया। वैज्ञानिक अवलोकन उसकी कार्यपद्धति का एक विभिन्न अंग था।

अफलातून और अरस्तू पेलोपोनीज युद्ध में एथेंस की हार के बाद के सालों में आए। यह एथेंसवासियों के मनोबल में गिरावट का दौर था। एथेंस ने अपना साम्राज्य खो दिया था। और उसके शासक वर्गों के पास सुअवसर सीमित हो चुके थे। इसी पृष्ठभूमि के कारण दोनों विचारकों के राजनीतिक और सामाजिक विचार रूढ़िवादी थे। वे नीति निर्माण की प्रक्रिया में जन–भागीदारी के विरोधी थे। उनके आदर्श *पोलिस* में सरकार में लोगों की एक सीमित भूमिका थी। उनके राजनीतिक विचारों में गैर–लोकतांत्रिक तत्वों में एथेनियाई अभिजात वर्ग का मिजाज प्रतिबिंबित होता है जो 400 ईसापूर्व के बाद आम नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकार कम करना चाहते थे।

IV (ख)

हमने इस अध्याय के शुरू में देखा कि यूनान राजनीतिक रूप से एकताबद्ध नहीं था। लेकिन यूनानियों की अनेक साझी सांस्कृतिक परंपराएं थीं। यह खासकर यूनानी धर्म के लिए सच था। यूनानियों की एक साझी धार्मिक परंपरा थी। उनकी कुछ धार्मिक आस्थाएं पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र की सार्विक विरासत का एक हिस्सा थी। पुरातन युग और क्लासिकी युग के यूनानी धर्म की बुनियादी रूपरेखा होमर के महाकाव्यों में देखी जा सकती है। *इलियड* और *ओडिसी* धार्मिक ग्रंथ नहीं हैं। लेकिन वे यूनानी धार्मिक देवमाला की लगभग एक पूरी तसवीर पेश करते हैं जो 'अंधकार युग' के अंत तक उभर चुकी थी।

हेसियोड की *देवोत्पत्ति* के साथ होमर के महाकाव्यों ने यूनानी धर्म को व्यवस्थित करने का काम किया। *इलियड* और *ओडिसी* में जिस यूनानी धर्म की रूपरेखा पेश की गई वह उच्च वर्ग को स्वीकार्य धर्म था। चूंकि होमर का सरोकार मुख्य रूप से माइसीनिया के योद्धा कुलीन वर्ग के क्रियाकलापों से था, इसलिए उसने जो धर्म पेश किया उस पर कुलीन वर्ग अपने समय (अर्थात बाद के 'अंधकार युग') में अमल करते थे। इसलिए शायद उसने यूनानी धर्म के उन पहलुओं को नहीं शामिल किया होगा जो आम लोगों के स्तर पर प्रचलित थे। बहरहाल उन महाकाव्यों का प्रभाव इतना जबर्दस्त था कि उसमें पेश यूनानी धर्म से समूचा पुरातन और क्लासिकी काल प्रभावित रहा।

यूनानी धर्म सर्वेश्वरवादी (सर्वेश्वरवाद की व्याख्या 'सभी या अनेक देवताओं में विश्वास करने की तत्परता' के रूप में की जा सकती है) था। कुल बारह मुख्य देवता थे। यूनानियों का विश्वास था कि ये देवता थेसाली में स्थित ओलंपस पर्वत पर वास करते हैं। जिन बारह ओलंपियाई देवी-देवताओं का जिक्र होमर में मिलता है वे इस प्रकार हैं : जियस, पसाइडन, अपोलो, एरीज, हर्मीज, हेफेस्टस, हेस्तिया, डीमीटर, हेरा, एथेना, एफ्रोडाइट और आर्टिमीज। उनमें से हेफेस्टस, हेस्तिया, डीमीटर, हेरा, एथेना, एफ्रोडाइट और आर्टिमीज देवियां थीं। जियस देवकुल का प्रमुख और देवताओं का राजा था। उसका हथियार वज्र था। पोसीदोन जियस का बड़ा भाई और समुद्र का देवता था। अपोलो जियस का बेटा था और बेहद सुंदर माना जाता था। अपोलो तीरंदाजी, भविष्यवाणी, गीत और संगीत से जुड़ा था। हेरा जियस की पत्नी थी। पहले वह एक मातृदेवी थी। डीमीटर भी पहले मातृदेवी थी। बाद में अन्न खासकर गेहूं की देवी के रूप में उसकी पूजा होने लगी। ऐटिका में उसके सम्मान में एक महत्वपूर्ण एलियसिनियाई समारोह आयोजित होता था। एथेंस के निकट एलियुसिस में डीमीटर का एक विशाल मंदिर था। यूनानी शहर किसी खास देवी या देवता को अपना संरक्षक बना लेते थे। एथेना एथेंस की संरक्षक देवी थी। इसका यह मतलब नहीं है कि एथेना की पूजा सिर्फ एथेंस तक

सीमित थी। संरक्षक देवी या देवताओं को संबंधित शहरों में विशेष दर्जा मिलता होगा लेकिन उनकी पूजा अन्य राज्यों में भी होती थी। होमर ने ओलंपियाई देवी-देवताओं को लगभग मानवीय विशेषताओं और भावनाओं वालों के रूप में चित्रित किया है। उन देवी-देवताओं में प्यार है और डाह है। उनमें प्रतिद्वंद्विता है और वे सत्ता के लिए झड़पें और संघर्ष करते हैं।

यूनानी धर्म पर किसी पुरोहित वर्ग का वर्चस्व नहीं था। पुरोहित थे लेकिन धार्मिक कर्मकांडों और समारोहों पर उनका एकाधिकार नहीं था। पुरोहितों की जो थोड़ी-बहुत भूमिका थी, क्लासिकी काल तक उसमें और भी कमी आ गई। सार्वजनिक धार्मिक समारोह राज्य का मामला था। कुछ अभिजातवर्गी कुल थे जो इन अवसरों के लिए पारंपरिक रूप से पुरोहितों की आपूर्ति करते थे। लेकिन एक समय के बाद आम नागरिकों को भी आधिकारिक कर्मकांड के संचालन का अधिकार मिल गया। पुरोहिती के कुछ पद निर्वाचित हो गए। देवी-देवताओं की सामूहिक सार्वजनिक पूजा करने के लिए हमेशा किसी धर्मविशेषज्ञ का रहना जरूरी नहीं था।

सार्वजनिक पूजा ने उत्सव का रूप ले लिया था जिसमें समूचे *पोलिस* या समूचे क्षेत्र के लोग हिस्सा लेते थे। जानवरों की बलि दी जाती थी और उसका मांस लोगों में बांटा जाता था। संगीत, नाटक, काव्य-पाठ और खेल-कूद ऐसे समारोहों के अनन्य भाग थे। यूनानी नाटक की उत्पत्ति कुछ हद तक उन समारोहों से जुड़ी है जहां उत्सव के क्रम में नाटकों का मंचन होता था। एथेंस के ऐथेना समारोहों (पनाथेनिया) में होमर के महाकाव्य का पाठ किया जाता था। उसी तरह ओलंपिक खेल ओलंपिया (यह खेल ओलंपिया के मैदानी इलाकों में आयोजित होते थे जो पेलोपोनीज में हैं और उसके साथ थेसाली के ओलंपस पर्वत का घाल-मेल नहीं किया जाना चाहिए) में जियस के समारोह के दौरान आयोजित किए जाते थे। ओलंपियाई समारोह हर चौथे साल आयोजित किए जाते थे और पुरातन काल की शुरुआत तक (776 ईसापूर्व प्रथम ओलंपिक समारोह की पारंपरिक तिथि है) संभवत: यह पूरी तरह स्थापित हो चुका था। इस समारोह में एथलेटिक स्पर्धाएं होती थीं और उनमें पूरे यूनान के लोग भाग लेते थे। डेल्फी में अपोलो समारोह और कोरिंथ में पोसीदोन के समारोह ऐसे अवसर थे जहां इस तरह के खेल-कूद आयोजित किए जाते थे।

यूनानियों ने अपने देवी-देवताओं को समर्पित मंदिर बनाए थे। ये मंदिर संबंधित देवी-देवता का आवास माने जाते थे। भक्तजन धार्मिक समारोहों के लिए मंदिर के अंदर नहीं जाते थे। अनुष्ठान मंदिरों के बाहर आम तौर पर खुले में संपन्न होते थे। भव्य मंदिरों के निर्माण ने यूनानी स्थापत्य को दिशा दी। यूनानी क्लासिकी स्थापत्य के कुछ शानदार नमूनों में उस काल के मंदिर शामिल हैं। पेरीक्लीज के काल में एथेंसवासियों ने स्थापत्य के अनेक उत्कृष्ट नमूने गढ़े। उसी समय ओलंपियाई देवी-देवताओं को समर्पित एक

विशाल मंदिर का निर्माण हुआ। पारथेनोन नामक यह मंदिर एक विशाल इमारत है जिसकी ऊंची छत अनेक स्तंभों पर टिकी है। पारथेनोन को सुंदर प्रतिमाओं से सजाया गया था। चूंकि यूनानी स्थापत्य कला मेहराबों के इस्तेमाल से अनभिज्ञ थी, विशाल इमारतों की भारी-भरकम छतों को सहारा देने के लिए एक दूसरे के निकट स्थित स्तंभों का इस्तेमाल किया जाता था जबकि मेहराबों का इस्तेमाल स्तंभों के बीच अच्छी-खासी दूरी की इजाजत देता है। यही कारण है कि पारथेनोन जैसी इमारतों में बेशुमार स्तंभ इस्तेमाल किए गए। फिर भी यूनानियों ने उन स्तंभों को विविध आकार देकर उनकी एकरसता खत्म करने का प्रयास किया। इन स्तंभों की शैली को कोरिंथियाई, डोरिक और आयोनियाई इत्यादि स्थापत्य शैलियों से सूचित किया जाता है।

आम तौर पर सार्वजनिक पूजा राज्य की ओर से प्रायोजित होती थी। उसके अतिरिक्त लोग या परिवार विभिन्न उद्देश्यों के तहत किसी खास देवी-देवता की पूजा के लिए निजी धार्मिक समारोह आयोजित करते थे। इन समारोहों में देवी-देवताओं को मनाने के लिए आनुष्ठानिक बलि दी जाती थी। जैसा कि हम देख चुके हैं कि कुछ ऐसे रहस्यवादी पंथ भी थे जो देवी-देवताओं के साथ ज्यादा निजी संबंध रखने पर यकीन करते थे। उसके अतिरिक्त स्थानीय देवी-देवता और पुरानी मातृदेवियां भी थीं जिनका ओलंपियाई देवताओं के साथ सहअस्तित्व बना हुआ था। सांड की उपासना (सांड की पूजा एवं बलि)मिनोआई काल से यूनान में व्यापक रूप से प्रचलित थी और तमाम स्तरों पर यूनानी धर्म की चिरस्थायी विशेषता बनी रही।

यूनानी धर्म का एक और पहलू देवताओं से भविष्य की जानकारी और सलाह हासिल करना था। यह माना जाता था कि देवता संकेतों में भविष्य उजागर करते हैं जिन्हें सिर्फ विशेषज्ञ समझ सकते हैं। ये विशेषज्ञ कुछ खास पवित्र स्थलों से जुड़े होते थे जिन्हें देववाणी स्थल (oracle) कहा जाता था। डेल्फी का देववाणी स्थल पूरे यूनान में मशहूर था। यह अपोलो का एक प्राचीन पूजास्थल था जिसमें *ओमफैलोस* नामक एक पत्थर रखा था। यूनानी *ओमफैलोस* को संसार की नाभी या केंद्र मानते थे। अपोलो भविष्यवाणी एवं देववाणी का देवता था और वह डेल्फी के पुरोहितों के मार्फत देवताओं की इच्छाएं मानव के पास पहुंचाता था। दूसरे देववाणी स्थल और दिव्य वक्ता भी थे।

पुरातन काल में ओलंपियाई देवी-देवताओं के समूह में एक और देवता शामिल किया गया। उसका नाम डायनीसिस था। डायनीसिस उपासना का उत्थान इस काल में यूनानी धर्म के सर्वाधिक दिलचस्प पहलुओं में से एक है। डायनीसिस पूजा की जड़ें सुदूर अतीत तक जाती थीं। यह आमजन के स्तर पर एक प्रमुख देवता था। लेकिन कुलीन वर्ग ने उसे संरक्षण नहीं दिया था। इस कारण होमर ने उसे ओलंपियाई देवताओं में शामिल नहीं किया था। लेकिन यह इतना शक्तिशाली संप्रदाय था कि उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। यह आमतौर पर स्वीकार किया जाता है कि डायनीसिस संप्रदाय की

उत्पत्ति थ्रेस के बेहद आदिम समुदायों में हुई। फिर पुरातन काल में यह यूनान के दूसरे हिस्सों में फैल गया। क्लासिकी काल तक उसे यूनानी धर्म में पूरी तरह मिला लिया गया था। शासक वर्गों ने भी उसका अनुमोदन कर दिया था। डायनीसिस के अनेक रूप थे। वह शराब, भोग और नशा का देवता था। उसे बैकस भी कहा जाता था। साथ ही वह त्रासिक कला का देवता था। डायनीसिस संप्रदाय में महिलाएं बड़ी संख्या में शामिल थीं। संप्रदाय के आचार-व्यवहार में शराब पीना, उच्छृंखल नृत्य करना और परमानंददायक अवस्था में जाना शामिल था। डायनीसिसस ओर्फियाइयों का प्रधान देवता था। ओर्फियसवाद पर रहस्यवाद का जोर था और वह डायनीसिस संप्रदाय के रहस्यवादी पहलू का प्रदर्शन करता था।

उत्तर-पुरातन काल में डायनीसिस को ओलंपियाई देवता का दर्जा दिया गया। साक्ष्य दिखाते हैं कि उसी समय देवी हेस्तिया को ओलंपियाई देवकुल से हटा दिया गया। क्लासिकी काल में डायनीसिस के उत्सव प्रमुख सांस्कृतिक समारोह बन गए। इन उत्सवों में नाटकों, खासकर दु:खांत नाटकों, का मंचन होता था। डायनीसियाई उत्सवों ने यूनानी त्रासदी की महान परंपरा को जन्म दिया। पांचवीं सदी ईसापूर्व में क्लासिकी नाटक अपनी बुलंदी पर पहुंच गया। एस्कलस, सोफोक्लीज और यूरिपडीज दु:खांत नाटकों में प्रवीण थे जबकि असिस्टोफेनीज ने हास्य नाटक रचे। इन नाटकों में यूनानी मिथकों और किंवदंतियों को कथानक बनाया गया। लेकिन उनमें से कुछ ने समकालीन समाज पर भी टिप्पणी की। सोफोक्लीज कृत *राजा ईडीपस* क्लासिकी काल की विशाल साहित्यिक रचनाओं का एक अच्छा उदाहरण है।

V

सम्राट फिलिप द्वितीय (338 ईसापूर्व) के नेतृत्व में केरोनिया पर मकदूनियाई जीत ने यूनानी राज्यों की स्वतंत्रता खत्म कर दी। 338 ईसापूर्व के बाद एक राजनीतिक इकाई के रूप में *पोलिस* का वजूद बाकी नहीं रहा। यूनानी राज्य मकदूनियाई साम्राज्य में समाहित कर लिए गए। इस घटना के दो साल बाद फिलिप की हत्या कर दी गई। 336 ईसापूर्व में फिलिप का पुत्र सिकंदर मकदूनिया का शासक बना। बाकी यूनान के विपरीत मकदूनिया में एक शक्तिशाली राजतंत्र था और वह अपनी अत्यंत कुशल स्थायी सेना के लिए संसाधन जुटा सकता था। सैनिक मुख्यत: मकदूनियावासी ही थे। उनमें शानदार घुड़सवार शामिल थे। घुड़सवार सेना मकदूनियाई सेना की महत्वपूर्ण शाखा थी। मकदूनियाइयों ने क्रीट से माहिर तीरंदाज भर्ती किए थे। यह सेना जो भाला इस्तेमाल करती थी वह होप्लाइट सैनिकों के भाले से बड़ा था। भाला की लंबाई 8 फुट से बढ़ा कर 14 फुट कर दी गई जबकि ढाल का आकार और जिरहबख्तर का वजन घटा दिया गया। यूनानी होप्लाइट पैदल सेना

की तुलना में मकदूनियाई सेना तेज रफ्तार थी। फिर भी दक्षिण यूनान के मुकाबले मकदूनिया सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से एक पिछड़ा प्रदेश था।

सिकंदर ने सत्तारोहण के बाद राज्य विस्तार की एक जबर्दस्त मुहिम छेड़ी। उसका प्राथमिक लक्ष्य पश्चिम एशिया की फारसी ताकत नष्ट करना था ताकि समूचे इलाके में मकदूनियाई राज सुदृढ़ किया जा सके। 330 ईसापूर्व तक सिकंदर दारा तृतीय (फारस का अंतिम सम्राट) को परास्त कर फारसी साम्राज्य जीत चुका था और मेसोपोटामिया तथा मिस्र को अपने साम्राज्य में शामिल कर चुका था। बाद के अपने सैन्य अभियान के क्रम में सिकंदर सिंधु के तट तक पहुंचा। 323 ईसापूर्व में बेबीलोन में सिकंदर का निधन हो गया। सिकंदर के नेतृत्व में पूर्व दिशा में मकदूनिया के विस्तार से अनातोलिया, सीरिया, मेसोपोटामिया, मिस्र, ईरान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया तथा उत्तर-पश्चिम भारत के कुछ हिस्सों पर यूनानी शासन स्थापित हो गया। सिकंदर की मौत के बाद मकदूनियाई साम्राज्य से कुछ दूर दराज के क्षेत्र हट गए। लेकिन सिकंदर के राज्य का बड़ा हिस्सा यूनानी नियंत्रण में बना रहा।

सिकंदर अपने विशाल साम्राज्य के लिए कोई वारिस नहीं छोड़ गया और न ही अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति के संबंध में कोई प्रबंध किया। इस कारण उसके प्रमुख सेनापतियों के बीच सत्ता-संघर्ष शुरू हो गया जो लगभग 275 ईसापूर्व तक जारी रहा। अंततः साम्राज्य सिकंदर के तीन जनरलों—सेल्यूकस, टोलेमी और ऐंटीगोनस के बीच बंट गया। उन जनरलों के वंशों ने साम्राज्य के संबंधित हिस्सों पर शासन किया । सेल्यूकस के वंशजों ने फारस (मुख्यतः ईरान और इराक) पर, टोलेमी के वंश ने मिस्र पर और ऐंटीगोनस के वंशजों ने मकदूनिया पर राज किया। फारस पर सेल्यूकस के वंशजों का शासन बहुत समय तक नहीं टिका जबकि ऐंटीगोनस के वंशजों ने मकदूनिया पर लंबे समय तक शासन किया। 196 और 146 ईसापूर्व के बीच रोमनों ने मकदूनिया और यूनान पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उसी के साथ मकदूनिया पर ऐंटीगोनस के वंशजों का शासन खत्म हो गया। टोलेमी का वंश 30 ईसापूर्व तक मिस्र पर शासन करता रहा जब इस वंश की अंतिम शासक क्लोपेट्रा रोमन शासकों से हार गई।

सिकंदर की मौत और सेल्यूकस, टोलेमी और ऐंटीगोनस वंश के शासन की स्थापना से लेकर पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र की सर्वोच्च शक्ति के रूप में रोम के उदय के काल (करीब 300 से 30 ईसापूर्व) को यूनानवादी (hellenistic) युग कहते हैं। सिकंदर के साम्राज्य के विभाजन के नतीजे में वजूद में आए राज्यों को यूनानवादी राज्य कहते हैं। उन राज्यों पर यूनानी शासक वर्ग शासन करता था और यूनानी मिस्र, फारस, पश्चिम एशिया और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों की सरकारी भाषा बन गई। यूनानी इस क्षेत्र के बौद्धिक क्रियाकलापों की भी मुख्य भाषा बन गई। इन यूनानवादी राज्यों ने पश्चिम एशिया और मिस्र के एक बड़े हिस्से में क्लासिकी यूनानी सभ्यता की उपलब्धियां पहुंचाने की

स्थितियां सृजित कीं। चूंकि इन राज्यों के एशियाई और उत्तर अफ्रीकी क्षेत्र प्राचीन सभ्यताओं के बड़े केंद्र थे, उन साम्राज्यों के यूनानी शासकों ने अपनी प्रजा के अनेक रस्मोरिवाज अपना लिए। इसने एक गतिशील (dynamic) सांस्कृतिक परंपरा को जन्म दिया जिसे सुविधा के लिए यूनानवादी सभ्यता का नाम दिया जा सकता है। खास यूनान की सभ्यता विशेषकर पुरातन और क्लासिकी काल की सभ्यता को हेलीनी सभ्यता (hellenic civilization) कहते हैं जबकि यूनानवादी राज्यों की सभ्यता को यूनानवादी सभ्यता कहते हैं।

भारत के साथ यूनानवादी संसार का एक जीवंत संबंध था। जब से सिकंदर का आक्रमण हुआ, ईरान, मध्य एशिया, अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारत में यूनानी उपस्थिति थी। इस यूनानी उपस्थिति का असर भारतीय कला एवं संस्कृति पर पड़ा और शुरुआती बौद्ध कला पर छाप छोड़ गया। यह आमतौर पर माना जाता है कि गांधार और मथुरा शैली ने अनेक यूनानी तत्व ग्रहण किए। उसके अतिरिक्त उत्तर-पश्चिम भारत में सिकंदर के हिंद-यूनानी उत्तराधिकारियों ने साहित्य और सिक्कों की शक्ल में महत्वपूर्ण साक्ष्य छोड़े हैं जो सम्राट अशोक के बाद के काल के इतिहास की पुनर्रचना के लिए महत्वपूर्ण हैं।

मिस्र, मेसोपोटामिया, फारस, मध्य एशिया, अनातोलिया और यूनान की सभ्यताओं के आपसी संपर्क ने एक समृद्ध संश्लेषण को जन्म दिया जो सिकंदर के बाद के यूनानी राज्यों की संस्कृति में अभिव्यक्त हुआ। इस काल में शिक्षा के नए केंद्र उभरे। मिस्र के उत्तर-पश्चिम तट पर स्थित सिकंदरिया शहर (सिकंदर द्वारा स्थापित) ने चिंतकों और विद्वानों के अग्रणी शहर के रूप में एथेंस की जगह ले ली। सिकंदरिया एक प्रमुख भूमध्यसागरीय बंदरगाह भी था। टोलेमी के पहले दो शासकों ने वहां पुस्तकालय स्थापित कराए जो राज्य के खर्च से चलते थे और जहां यूनानी भाषा, संस्कृति और शैली संबंधी महत्वपूर्ण कृतियों की प्रतियां बनाईं और संरक्षित की जाती थीं। सिकंदरिया का पुस्तकालय किताबों के अपने विशाल संग्रह के लिए जाना जाता था। इस शहर ने समूचे भूमध्यसागरीय क्षेत्र के चिंतकों, वैज्ञानिकों, गणितज्ञों और इतिहासकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। छात्र ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की शिक्षा प्राप्त करने सिकंदरिया आने लगे।

भौतिक शास्त्र में (तरल के विस्थापन से संबंधित) 'आर्किमीडीज के सिद्धांत' का जन्मदाता आर्किमीडीज सिकंदरिया का ही था। सिकंदरिया का एक अन्य प्रतिष्ठित विद्वान ज्यामितिशास्त्री यूक्लिड था। यूक्लिड द्वारा संकलित ज्यामितीय प्रमेय (इसी किताब के मार्फत पाइथागोरस के प्रमेय हम तक पहुंचे हैं) आधुनिक काल में भी ज्यामिति के छात्रों का मानक पाठ्यक्रम बना हुआ है। सिकंदरिया के अतिरिक्त अनेक अन्य यूनानवादी नगरों मसलन अनातोलिया में पर्गेमम में विशाल पुस्तकालय थे जो विचार और ज्ञान के आदान-प्रदान को बढ़ावा दे रहे थे। एथेंस अपनी पुरानी कीर्ति खो चुका था। फिर भी

दार्शनिक विचारों के लिए उसकी ख्याति बनी हुई थी। यूनानवादी काल में स्टोइक दर्शन और भोगवाद दो प्रमुख मत थे। दार्शनिक जीनो स्टोइक दर्शन का संस्थापक था जबकि एपिक्यूरियस भोगवाद का संस्थापक था। दोनों दार्शनिक एथेंस में शिक्षा देते थे। यूनानवादी काल में भोगवाद की तुलना में स्टोइक दर्शन को मानने वालों की संख्या ज्यादा थी।

भूमध्यसागरीय क्षेत्र पर रोमन प्रभुत्व स्थापित होने से पहले यूनानवादी दुनिया वास्तविक अर्थों में एक मिली-जुली संस्कृति थी। यही मिली-जुली संस्कृति क्लासिकी रोम का आधार बनी। बहुत लंबे समय तक इस संस्कृति को पूर्व से—मिस्र, फलस्तीन, सीरिया, अनातोलिया, इराक, ईरान और यहां तक कि उत्तर-पश्चिम भारत से प्रमुख सांस्कृतिक योगदान मिलता रहा। डब्ल्यू.डब्ल्यू. टार्न के शब्दों में: 'रोम को जिस यूनान ने शिक्षा दी वह प्राचीन यूनान नहीं बल्कि समकालीन हेलीनवाद (Hellenism)' था। हम रोमन सभ्यता पर अगले दो अध्यायों में चर्चा करेंगे।

अध्याय आठ

प्राचीन रोम : एक

यूनान के बाद रोमन सभ्यता यूरोप की प्रमुख प्राचीन सभ्यता के रूप में उभरी। रोमन सामाजिक संरचना का केंद्रक इटली और बाद में समूचा भूमध्यसागरीय क्षेत्र था। दक्षिण इटली में खाद्य उत्पादन की शुरुआत करीब 7000 ईसापूर्व में हो चुकी थी जबकि उत्तर इटली में करीब 6000 ईसापूर्व में जाकर उसकी शुरुआत हुई थी। 2000 ईसापूर्व तक इटली में अनेक कबीले बस चुके थे। उनमें से कई हिंद-यूरोपीय मूल के थे। पिछले अध्याय में हम पहले ही देख चुके हैं कि दक्षिण इटली में अनेक यूनानी बस्तियां थीं। हिंद-यूरोपीय कबीलों के दो प्रमुख समूह मध्य एवं उत्तर इटली में थे। मध्य इटली के पश्चिमी हिस्सों में रहने वाले लोग लातीनी और उससे जुड़ी हुई बोलियां बोलते थे। प्रायद्वीप के मध्य में विशाल एपेनाइन पर्वत ('इटली के रीढ़' के रूप में मशहूर) है जो उत्तर से मध्य इटली तक फैला है। यह एक अन्य हिंद-यूरोपीय समूह, आस्को-अंबरियाई, का क्षेत्र था। आस्को-अंबरियाइयों में वे कबीले शामिल थे जो आस्कन, अंबरियाई या आस्कन से जुड़ी बोलियां बोलते थे। आस्कनभाषी कबीलों को साबेलियाई भी कहते हैं। उस क्षेत्र में दो प्रमुख कबीले थे जो आस्कन/साबेलियाई से जुड़े थे और आस्कन बोलियां बोलते थे। वे साबियाई और सामनाई थे। दोनों ने रोम के शुरुआती इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कुछ आस्कन/साबेलियाई धीरे-धीरे पश्चिमी तट में फैल गए। उन्होंने कैंपेनिया के अति उर्वर इलाके पर कब्जा कर लिया। तातीनी क्षेत्र (लैटियम) की परिरेखा में वोल्सकी और एइकी दो प्राचीन कबीले रहते थे। इटली के पूर्वी हिस्से में वेनेटिक और मेसापिक बोलने वाले हिंद-यूरोपीय कबीले प्रमुख थे। इटली के सुदूर उत्तरी छोर में गॉल तथा अन्य सेल्टिक कबीले थे। एट्रस्कन इटली का प्रमुख गैर-हिंद-यूरोपीय समुद्राय था। एट्रस्कन उत्तर-पश्चिम और मध्य इटली में केंद्रित थे और उनका इलाका लैटियम तक फैला था।

करीब 1200 ईसापूर्व से इतालवी कांस्ययुगीन संस्कृतियां एपेनाइन क्षेत्र में उभरीं। उनमें से सर्वाधिक मशहूर विलानोवाई संस्कृति थी जो सबसे पहले एपेनाइन के उत्तर में विलानोवा में चिह्नित की गई। करीब 1000 ईसापूर्व तक उत्तरी इटली में अनेक विलानोवाई कांस्ययुगीन बस्तियां उभर चुकी थीं। विलानोवाई प्राथमिक रूप से ग्रामीण थे और भेड़ें तथा मवेशी पालन कर अपना गुजारा करते थे। वह पर्वतीय क्षेत्रों और पश्चिम के अधिक उर्वर मैदानी इलाकों के बीच नियमित अंतराल पर जा-जाकर वहां रहा करते थे।

करीब 800 ईसापूर्व के इर्द-गिर्द कुछ नए रुझान उभरे। एट्रस्कन की आबादी वाले क्षेत्रों में बड़ी तेजी से परिवर्तन आए जिनके कारण वहां शहरीकरण हुआ। और कृषि अर्थव्यवस्था का विकास हुआ जो उत्तर-पश्चिम और मध्य इटली के उर्वर मैदानी इलाकों के दोहन पर निर्भर थी। आठवीं सदी ईसापूर्व से लोहे का व्यापक इस्तेमाल होने लगा। एट्रस्कन को प्राक्-रोमन इटली का सर्वाधिक विकसित समुदाय माना जा सकता है। उन्होंने 800 और 700 ईसापूर्व के बीच एक समृद्ध सभ्यता की रचना की। उस दौरान मध्य इटली के ज्यादातर हिस्से पर उनका कब्जा था। अनेक एट्रस्कन नगर उभरे। वेई, ताक्वीनीई और वुल्ची कुछ प्रमुख एट्रस्कन शहरी केंद्र थे।

एट्रस्कनों ने राजनीतिक रूप से किसी एकीकृत राज्य का निर्माण नहीं किया। लेकिन वे स्वशासित शहरों में रहते थे जिनका स्वतंत्र क्षेत्र होता था। ऐसे अनेक शहरों में एट्रस्कनों और विविध इतालवी हिंद-यूरोपीय कबीलों की मिली-जुली आबादी होती थी। उन शहरों पर एक एट्रस्कन योद्धा कुलीन वर्ग का वर्चस्व होता था। कुछ एट्रस्कन शहरों (नगर-राज्यों) पर राजाओं का शासन था। हम उन शहरों के बीच खासा फर्क पाते हैं। शासक महलनुमा घरों में रहते थे। एट्रस्कन कुलीन वर्ग ने पत्थरों के विशाल मकबरे बनाए जिसमें मुर्दों को दफन करने के लिए बड़े-बड़े कक्ष थे। उन कक्षों की दीवारें तसवीरों से सजाई गई थीं जो कुलीन वर्ग के रईसाना जीवन शैली के द्योतक हैं। उन मकबरों में मुर्दों के साथ चांदी, कांस्य और हाथी दांत की वस्तुएं भी दफन की जाती थीं।

एट्रस्कन शहर सुनियोजित और किलाबंद थे। उनमें बड़े सलीके से सड़कें बनी थीं और गंदे पानी की निकासी की व्यवस्था की गई थी। एट्रस्कनों ने हेलिनी (यूनानी) सभ्यता की कई विशेषताएं अपनी ली थीं जिसमें यूनानी वर्णमाला पर आधारित लिपि भी शामिल थी। वे व्यापार करते थे और यूनानी शहरों के साथ उनका व्यापक व्यापारिक संबंध था। एट्रस्कनों ने लातीनी भाषी लोगों पर बड़ा प्रभाव डाला जिनके पश्चिम-मध्य इटली स्थित क्षेत्र एट्रस्कन सभ्यता के केंद्रों के आसपास थे। कुछेक लातीनी गांव शहरों में विकसित हो गए। कुछ लातीनी शहर एट्रस्कन शहरों के तर्ज पर किलाबंद थे। रोम ऐसा ही एक लातीनी शहर था। प्रेनेस्ते लैटियम में एक अन्य शहरी केंद्र था।

परंपरागत रूप से यह माना जाता है कि रोम नगर की स्थापना 753 ई.पू. में हुई थी। नगर के परंपरागत इतिहास के मुताबिक सात पहाड़ियों पर बनी बस्तियां (ये सात पहाड़ियां थीं: अवेंटाइन, सिलियन, कैपिटोलाइन, एस्क्वीलाइन, पैलेटाइन और वीमिनाल) 753 ईसापूर्व तक चारों ओर से प्राचीरों से घेरी जा चुकी थीं। इससे नगर की शुरुआत का संकेत मिलता है और इसी समय से रोमन तिथियों की गणना की जाती है। बहुत से रोमन इतिहासकार 753 ईसापूर्व को ही इस युग की शुरुआत का वर्ष मानते हैं (क्योंकि इसी साल नगर की स्थापना हुई थी)। बहरहाल इस तिथि की ऐतिहासिकता को अभी तक प्रमाणित नहीं किया जा सका है। इस बात की ज्यादा संभावना है कि रोम की सात

पहाड़ियों की किलेबंदी बाद में की गई। पुरातत्विक साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि 550 ई. में पहली बार नगर की किलेबंदी की गई। और संभवत: इसी समय इन सातों पहाड़ियों पर बसी बस्तियों का विस्तार शुरू हुआ। इन पहाड़ियों का निचला हिस्सा दलदल तथा कीचड़ से भरा हुआ था। इन पहाड़ियों के निचले भागों में बस्ती बसाने के पहले इनकी सफाई करनी पड़ी होगी। एक बार जब इस क्षेत्र की सफाई हो गई होगी तभी यहां की ग्रामीण बस्तियों का रूपांतरण प्रमुख नगर केंद्रों में हुआ होगा।

रोम का शुरुआती इतिहास कुछ धुंधला है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस शहर ने एट्रस्कन सामाजिक और राजनीतिक संगठन के कई तत्व लिए। रोम में कुछ एट्रस्कन परिवार राजनीतिक प्रभुत्व की स्थिति में पहुंच गए थे। इससे रोम के एट्रस्कनीकरण की रफ्तार तेज हुई। रोम में राजतांत्रिक शासन स्थापित हुआ और कुछ समय तक उस पर राजाओं ने शासन किया जो एट्रस्कन मूल के थे। राजतांत्रिक काल के राजनीतिक इतिहास के बारे में हमारे पास बहुत जानकारी नहीं है। हमारे पास उन राजाओं की कोई सूची तक नहीं है। हालांकि बाद के इतिहासकारों ने रोम के कुछ एट्रस्कन शासकों के नाम पेश किए हैं, समकालीन स्रोतों से उन नामों की पुष्टि करना मुश्किल है। यह स्पष्ट नहीं है कि ये राजा एक ही वंश के हैं। उनमें कुछ राजा थे जिनका नाम तारक्वीन था।

रोम में 510 ईसापूर्व में राजतंत्र अचानक खत्म हो गया। दो घटनाएं एक साथ हुईं। पहली यह कि तारक्वीन अभिमानी (तारक्वीनस सुपर्बस) को सत्ता से हटा दिया गया। इसके साथ रोम पर एट्रस्कन शासन खत्म हो गया। दूसरी घटना यह हुई कि रोम में शासन का राजतांत्रिक रूप खत्म हो गया और वह गणतंत्र बन गया। रोमन गणतंत्र की शुरुआत की 510 ईसापूर्व एक पारंपरिक तिथि है। तारक्वीन के खिलाफ आंदोलन सिर्फ एट्रस्कन शासन के खिलाफ हीं नहीं बल्कि राजशाही की संस्था के खिलाफ लक्षित था। बाद में तारक्वीन ने पड़ोसी राज्य चियुसी के राजा लार्स पोर्सेना की मदद से रोम में राजशाही बहाल करने की कोशिश की। यह कोशिश नाकाम रही। उसके बाद शहर पर किसी राजा (राजा के लिए रोमन खिताब *रेक्स* था) का शासन नहीं हुआ। उसकी जगह रोम के धनी लातीनी कुलीन वर्गों का अल्पतंत्रीय शासन रहा। सरकार का नेतृत्व *दो* कौंसल करते थे जो एक साल के लिए चुने जाते थे। कुलीनवर्गीय सत्ता का मुख्य औजार अल्पतंत्रीय परिषद या सीनेट (senate) था। व्यापक राजनीतिक, वैधानिक और सैनिक अधिकारों के साथ परिषद रोमन राज्य का सर्वोच्च निकाय बन गई थी। गणतंत्र की शुरुआत में वस्तुत: नागरिकों की कोई भागीदारी नहीं थी। बाद में नागरिकों की सभाएं स्थापित हुईं। रोमन गणतंत्र 510 से 27 ईसापूर्व तक चला। पांच सदी के इस लंबे काल में गणतंत्र के ढांचे में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। रोमन गणतंत्र के इतिहास पर नजर डालने से पहले रोम के क्षेत्रीय विस्तार की संक्षिप्त चर्चा करना उपयोगी होगा।

I

करीब 500 से 280 ईसापूर्व के दो सदियों से ज्यादा समय तक रोम समूचे इतालवी प्रायद्वीप को अपने नियंत्रण में लाने में लगा हुआ था। रोमन विस्तार का पहला चरण मध्य इटली, मुख्यतः लैटियम में हुआ। रोम ने लातीनी भाषी लोगों के साथ गठबंधन किया जिससे लातीनी समुदायों पर रोमन अपना प्रभाव बढ़ा सके। इस गठबंधन ने एट्रस्कनों, साबियाइयों, वोल्सकी और एइकी के आक्रमणों का सामना करने के लिए रोमनों को संसाधन मुहैया कराया। गैर लातीनी राज्यों के खिलाफ रोमन संघर्ष का महत्वपूर्ण मोड़ 396 ईसापूर्व में आया जब रोम एट्रस्कन नगर वेई पर कब्जा करने में सफल रहा। रोम के निकट स्थित वेई लंबे अर्से तक रोम का प्रमुख प्रतिद्वंद्वी बना रहा था। वेई की विजय से मध्य इटली के और इलाकों तक रोमनों की पहुंच बन गई। उसके अतिरिक्त वेई की जमीन और दूसरे संसाधन रोमनों के अधिकार में थे जिनके सहारे रोम अपने पड़ोसियों पर अधिक आक्रामकता से धौंस जमा सकता था।

इसी बीच उत्तर के सेल्टिक कबीलों ने इटली पर आक्रमण कर दिया। इससे रोम को एक बड़ा धक्का लगा और कुछ समय के लिए रोमन विस्तार थम गया। एक काल अवधि के दौरान सेल्टिक भाषी हिंद-यूरोपीय कबीले, खासकर गॉल, उत्तर इटली में घुस गए थे। करीब 450 से 350 ईसापूर्व तक आल्प्स और पो नदी के बीच के इलाके पर उनका कब्जा रहा। 390 ईसापूर्व में सेल्ट (गॉल) रोम में घुस गए और वहां लूट-मार की। इस आक्रमण के बाद रोम का पुनर्निर्माण करना पड़ा। एक नई रक्षात्मक दीवार खड़ी की गई। चौथी सदी ईसापूर्व के मध्य तक रोमन संभल चुके थे। उन्होंने एक जबर्दस्त विस्तार कार्यक्रम आरंभ किया। उन्होंने शुरुआत अपने लातीनी सहयोगियों पर अपनी गिरफ्त कड़ी करके की। लातीनी राज्यों ने इसका प्रतिरोध किया। नतीजतन लैटियम में रोमन अभियानों का एक सिलसिला शुरू हुआ। ये अभियान 338 ईसापूर्व तक चले। तब तक रोम लातीनी राज्यों को अधीन करने में सफल हो चुका था। रोम ने अब इटली के अन्य हिस्सों को अधीन करने की कोशिश की। कैंपेनिया का उर्वर मैदानी इलाका उसका पहला निशाना बना। विस्तार के इस नए चरण में पड़ोसी समुदायों के साथ रोमनों के भीषण युद्ध हुए। रोम सामनाइयों के साथ 295 ईसापूर्व तक लगातार युद्ध में उलझा रहा। तभी वह मध्य इटली में अपनी स्थिति मजबूत कर सका। 295 ईसापूर्व तक एट्रस्कन इलाकों के ज्यादातर हिस्सों पर रोमन अपना नियंत्रण स्थापित कर चुके थे। इसके बाद उन्होंने अपना ध्यान दक्षिण इटली पर केंद्रित किया।

दक्षिण इटली के यूनानी राज्यों ने अपने क्षेत्र में रोमन विस्तार का जबर्दस्त विरोध किया। टैरेंटम दक्षिण इटली के उन यूनानी राज्यों में एक था जिसने रोम का सामना करने का फैसला किया। टैरेंटम ने अन्य यूनानी राज्यों से सहायता की अपील की। एपिरस (मुख्य भूमि यूनान के उत्तर-पश्चिम हिस्से में स्थित एक राज्य) का राजा पिरस ने इस

अनुरोध पर कार्रवाई की। पिरस रोम के खिलाफ संघर्ष के लिए पश्चिमी यूनानियों को एकताबद्ध करने के प्रयास में लगा था। उसने अब दक्षिणी इटली पर कब्जा करने से रोमनों को रोकने के लिए लामबंदी की। शुरू में पिरस सफल रहा। लेकिन अपनी शुरुआती जीतों के लिए उसे सैनिकों और संसाधनों के रूप में भारी कीमत चुकानी पड़ी। अंततः रोमनों ने 275 ईसापूर्व में पिरस को परास्त कर दिया। दक्षिण इटली रोमनों के नियंत्रण में आ गया और उसके साथ रोम विस्तार का पहला मुख्य चरण पूरा हो गया। इस चरण के अंत में समूचे इतालवी प्रायद्वीप ने रोमन प्रभुत्व स्वीकार कर लिया।

दक्षिण इटली की जीत ने रोमनों को पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के छोर पर पहुंचा दिया। अब वे इटली के दक्षिण-पश्चिमी छोर के निकट स्थित सिसिली द्वीप के रूबरू हो गए। पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र पर सैकड़ों साल से कार्थेज राज्य का वर्चस्व था। अध्याय छह में हमने नोट किया है कि कार्थेज एक फिनिशियाई बस्ती थी। यह बस्ती एक विशाल कार्थेजियाई साम्राज्य में विकसित हो गई। सिसिली उसका एक हिस्सा था। समझा जाता है कि (सीरियाई-लेबनानी तट पर स्थित) पूर्वी भूमध्यसागरीय नगर-राज्य तायर के फिनिसियाई व्यापारियों ने नौवीं सदी ईसापूर्व में कार्थेज में एक व्यापारिक बस्ती बसाई थी। इस बस्ती की स्थापना की पारंपरिक तारीख 814 ईसापूर्व है। लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि यह थोड़ी बाद में बसाई गई है। कार्थेज (कार्त-हदाश्त) उत्तर अफ्रीकी तट पर आधुनिक ट्युनिश के निकट तथा पूर्वी एवं पश्चिमी भूमध्यसागर के करीब-करीब बीच में स्थित है। इस शानदार भौगोलिक स्थिति ने कार्थेज के फिनिशियाई व्यापारियों को भूमध्यसागर के दो हिस्सों के बीच व्यापार में मध्यस्थ की भूमिका निभाने का अवसर दिया। कार्थेजियाई व्यापारियों ने एक विशाल व्यापारिक संजाल का निर्माण किया और उत्तर-पश्चिम अफ्रीका तथा स्पेन में बसे समुदायों के साथ व्यापार शुरू किया।

कार्थेज की खुशहाली महज व्यापार पर ही नहीं थी बल्कि ट्यूनिशियाई पृष्ठ प्रदेश के संसाधनों के दोहन पर भी आधारित थी। पांचवीं सदी ईसापूर्व से फिनिशियाइयों ने कार्थेज के दक्षिण में स्थित ट्यूनिशिया के उर्वर आंतरिक हिस्सों में खेती का विकास करना शुरू कर दिया था। कार्थेजियों ने फिर एक साम्राज्य के निर्माण की तरफ कदम बढ़ाया जिसमें दक्षिण स्पेन, सार्डिनिया, कौर्सिका, सिसिली और उत्तर अफ्रीका के क्षेत्र शामिल थे। उन इलाकों से मिलने वाले कर और खिराज से कार्थेज को बेशुमार दौलत मिली। कार्थेज के पास एक कुशल सेना थी जिसमें समूचे भूमध्यसागरीय क्षेत्र के सैनिक थे। ज्यादातर फिनिशियाई राज्यों की तरह कार्थेज पर भी एक अल्पतंत्रीय शासन था जिस पर धनी व्यापारियों का प्रभुत्व था। कुलीन व्यापारियों के बीच से हर साल दो मजिस्ट्रेट चुने जाते थे जिन्हें *शोफेत* कहा जाता था। *शोफेत* राज्य के प्रधान अधिकारी होते थे। कार्थेज ने अपनी सभ्यता के विकास के क्रम में यूनानी और यूनानवादी सभ्यता की अनेक विशेषताएं अपनी ली थीं।

जब रोम ने सिसिली पर नियंत्रण करने का प्रयास किया तो स्वाभाविकत: कार्थेज के साथ उसकी झड़प हुई। भूमध्यसागरीय क्षेत्र में रोमन विस्तार कार्थेज की कीमत पर ही हो सकता था। एक सदी से ज्यादा अर्से तक रोम का कार्थेजियाइयों के साथ युद्धों का एक तांता लगा रहा। इन युद्धों को प्यूनिक युद्ध (प्यूनिक शब्द फिनिशियाई से आया है) के रूप में जाना जाता है। तीन प्यूनिक युद्ध हुए : पहला प्यूनिक युद्ध (264-241 ईसापूर्व); दूसरा प्यूनिक युद्ध (218-201 ईसापूर्व), और तीसरा प्यूनिक युद्ध (149-146 ईसापूर्व)। इन तीन युद्धों में से दूसरा प्यूनिक युद्ध रोम और कार्थेज के बीच का सबसे भीषण संघर्ष था। कार्थेज के साथ हुए इन लंबे युद्धों से रोम के वित्तीय एवं मानव संसाधनों को जबर्दस्त नुकसान पहुंचा। फिर भी प्यूनिक युद्ध से कार्थेज का सफाया हो गया और समुद्र पार के क्षेत्रों पर रोम का कब्जा हो गया।

पहला प्यूनिक युद्ध पिरस और पश्चिमी यूनानियों पर रोमन विजय के फौरन बाद शुरू हुआ और 264 से 241 ईसापूर्व तक चला। इस युद्ध के अंत में कार्थेज सिसिली को रोम को सौंपने के लिए बाध्य हो गया। सिसिली रोम का पहला 'प्रांत' बना। रोमन प्रांत रोमन साम्राज्य (यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि जब हम गणतंत्र काल के संदर्भ में 'रोमन साम्राज्य' का शब्द इस्तेमाल कर रहे हैं तब हम महज एक बड़ी क्षेत्रीय इकाई की चर्चा कर रहे हैं न कि किसी सम्राट के शासन वाले राज्य के रूप में साम्राज्य की) की विशिष्ट प्रशासनिक इकाइयां थीं। इटली के *बाहर* रोम के प्रत्यक्ष प्रशासन वाले रोमन क्षेत्रों को प्रांतों के रूप में संगठित किया गया था। रोमन प्रांत संरक्षित राज्य (protectorate) से भिन्न थे जिन पर रोम का प्रत्यक्ष शासन नहीं था। सिसिली समुद्र पार पहला क्षेत्र था जिसे प्रांत के रूप में संगठित किया गया था।

पहले प्यूनिक युद्ध के बाद फिनिशियाइयों ने रोमन विस्तारवाद पर अंकुश लगाने के लिए सैन्य रूप से खुद को सुदृढ़ करने के प्रयास किए। कार्थेजियाई सैन्य पुनर्गठन का मुख्य प्रणेता हैनीबाल नामक एक प्रतिभाशाली जनरल था। हैनीबाल ने रोम के खिलाफ युद्ध छेड़ने के लिए एक विशाल और सुप्रशिक्षित सेना गोलबंद की। उसने दक्षिण की ओर से समुद्र के रास्ते रोम पर हमला करने की जगह पश्चिमी यूरोप पार करके उत्तरी इटली के अल्पाइन पर्वतों तक मार्च करने की एक साहसिक योजना बनाई। 218 ईसापूर्व में (जब दूसरा प्यूनिक युद्ध शुरू हुआ) हैनीबाल उत्तर से रोमनों पर हमला करने के उद्देश्य से करीब 40,000 सैनिकों के साथ आल्प्स पहुंचा। यह कुछ ऐसी चीज थी जिसके लिए रोमन एकदम तैयार नहीं थे। हैनीबाल अपनी विशाल सेना के साथ आल्पाइन पर्वतों के ऊंचे शिखरों को सफलतापूर्वक पार कर गया और उत्तरी इटली में प्रवेश कर गया। यहां उसने अनेक उन समुदायों के साथ गठबंधन स्थापित किया जिन्हें रोमनों ने अधीन कर रखा था। हैनीबाल दक्षिण की तरफ रोम की दिशा में बढ़ा। उसने 216 ईसापूर्व में

दक्षिण इटली के कैनी में रोमन सेना को बुरी तरह परास्त किया। लेकिन वह रोम पर कब्जा करने में सफल नहीं हुआ।

कैनी की हार से रोमनों को जबर्दस्त धक्का लगा। उन्हें इस सदमा से उबरने में थोड़ा समय लगा। उन्होंने अपनी सेना फिर से संगठित कर हैनीबाल के खिलाफ अभियान शुरू किया। इस अभियान का नेता सिपियो एफ्रिकैनस था। हैनीबाल को इटली से पीछे हटने के लिए बाध्य होना पड़ा। तब सिपियो स्पेन में घुसा और उसने कार्थेजियाई सेना को पीछे ढकेल दिया। हैनीबाल को कार्थेजियाई क्षेत्रों की रक्षा के लिए उत्तर अफ्रीका जाना पड़ा। 202 ईसापूर्व में हैनीबाल की सेना को कार्थेज के निकट जामा के युद्ध में अंतिम रूप से शिकस्त खानी पड़ी। कार्थेज ने शांति के लिए रोमन शर्त स्वीकार कर लिए और उसी के साथ 201 ईसापूर्व में दूसरा प्यूनिक युद्ध समाप्त हो गया। कार्थेज को स्पेन में अपने क्षेत्र रोम को सौंपने पड़े। स्पेन (उस समय मुख्यत: स्पेन का भूमध्यसागरीय तट) दूसरा रोमन प्रांत बन गया। इसके अलावा कार्थेज को अपना नौसैनिक बेड़ा नष्ट करना पड़ा और युद्ध के मुआवजे के रूप में रोम को एक भारी रकम चुकानी पड़ी। इसके बाद कार्थेज कोई प्रमुख शक्ति नहीं रहा जबकि पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र पर रोम का वर्चस्व हो गया। दूसरे प्यूनिक युद्ध के बाद रोमनों ने इटली के उत्तरी भाग के उन समुदायों को बड़ी बेदर्दी से कुचला जिन्होंने युद्ध में हैनीबाल की मदद की थी। उन समुदायों में गॉल भी शामिल थे जो आल्प्स और पो नदी के बीच के क्षेत्र में रहते थे। उर्वर पो घाटी वाले इस क्षेत्र को सिस-अलपाइन (आल्प्स के इस तरफ का) गॉल कहा जाता था। रोमन शासन अब सिस-अलपाइन गॉल तक पहुंच गया।

रोम एक बार जब पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र की सर्वोच्च शक्ति बन गया तो उसने पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित किया। इस क्षेत्र के राजनीतिक हालात रोमन विस्तार के लिए अनुकूल थे। रोम ने तीसरी सदी ईसापूर्व के अंतिम चरण (देखें अध्याय सात) में यूनानवादी राज्यों की कमजोरी का फायदा उठाना चाहा। पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र पर एंटीगोनस, टालेमी और सेल्यूकस के वंशजों के शासन के अधीन क्रमश: मकदूनिया, मिस्र और पश्चिम एशिया के यूनानवादी राज्यों का प्रभुत्व था। इन तीन राज्यों में मिस्र सबसे ज्यादा सुस्थिर था। वह अपना ज्यादातर क्षेत्र अपने पास रख सका था। मकदूनियाई समस्याओं का सामना कर रहे थे जिसका रोमनों ने फायदा उठाया। सेल्यूकस के वंशज पूर्व के अपने ज्यादातर क्षेत्र गंवा चुके थे। उन्हें पार्थियाईयों को ईरान और इराक सौंपने पड़े (उनके बारे में हम नीचे विस्तार से चर्चा करेंगे) और उनके शासन वाले अनातोलिया के हिस्सों में स्वतंत्र *राज्य* (principalities) स्थापित हो चुके थे। उनका शासन सिर्फ सीरिया तक सीमित हो गया था। दूसरे प्यूनिक युद्ध के समय एंटीओकस तृतीय इस वंश का राजा था। उस समय मकदूनिया में फिलिप पंचम एंटीगोनस वंश का राजा था।

पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में रोमन विस्तार का प्रत्यक्ष संबंध दूसरे प्यूनिक युद्ध के दौरान के और उसके तुरंत बाद के घटनाक्रमों के साथ था। हैनीबाल ने फिलिप पंचम के साथ कुछ संपर्क स्थापित किए थे जो रोम का विरोधी था। मकदूनिया अपने आंतरिक मामलों में रोम के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण नाराज था। रोम ने इटली की पूर्वी (एड्रियाटिक) तटरेखा की रक्षा के लिए *एड्रियाटिक* सागर के पार सेना भेजी। चूंकि सेना मकदूनियाई प्रभावक्षेत्र में ठहरी थी, रोम और मकदूनिया के बीच संघर्ष हो गया। रोमनों ने दूसरे प्यूनिक युद्ध के साथ-साथ मकदूनिया से भी जंग की। मकदूनिया के साथ जंग प्यूनिक युद्ध के बाद भी चली और 196 ईसापूर्व में फिलिप पंचम परास्त हुआ। यहां यह चर्चा करना जरूरी है कि यूनानी राज्य मकदूनियाई शासन में शामिल थे। 196 ईसापूर्व में फिलिप पंचम की हार के बाद रोमनों ने यूनानी राज्यों को मकदूनिया से स्वतंत्र घोषित कर दिया। 196 ईसापूर्व के बाद रोम ने यूनानी राज्यों पर शिकंजा कस दिया।

दूसरे प्यूनिक युद्ध में अपनी हार के बाद भी कार्थेजियाइयों ने रोम का विरोध करना बंद नहीं किया। हैनीबाल ने (जो 182 ईसापूर्व तक जीवित रहा) राज्य की स्थिति ठीक करने के उद्देश्य से सुधारों की पूरी एक श्रृंखला चलाई। उसने 197 और 196 ईसापूर्व में शोफेत (मुख्य मजिस्ट्रेट) का पद संभाला। हैनीबाल ने अपने कार्यकाल के दौरान सत्तारूढ़ कुलीन वर्गों की शक्तियां घटा दीं। उसने सीरिया के राजा एंटीओकस तृतीय के साथ संबंध स्थापित कर फिलिप पंचम के साथ अपने गठबंधन को मजबूत किया। रोम हैनीबाल के इन कदमों को शक की निगाह से देख रहा था। उसने हैनीबाल के विरुद्ध दबाव बढ़ाना शुरू किया। हैनीबाल को कार्थेज छोड़ने के लिए मजबूर किया गया। उसने एंटीओकस तृतीय के पास शरण ली। यह सीरिया के खिलाफ रोम के सफल अभियान का बहाना बना। अनातोलिया और पूर्वी यूनानी राज्यों के हिस्सों पर सेल्यूकस के वंशजों का प्रभाव अब भी बाकी था और रोमन अभियान की वजह दरअसल वही थी। 189 ईसापूर्व में एंटीओकस तृतीय की हार से रोम को यूनान पर अपनी गिरफ्त मजबूत करने का मौका मिला। रोम अब पश्चिम एशियाई राजनीति की एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरा। रोम में सीरिया का औपचारिक विलय एक सदी से ज्यादा अर्से के बाद पूरा हुआ।

एंटीओकस तृतीय से निबटने के बाद रोमनों ने एक बार फिर अपना ध्यान मकदूनिया पर केंद्रित किया। मकदूनिया पर अब फिलिप पंचम के उत्तराधिकारियों का राज था। रोम ने उनके खिलाफ एक नई जंग छेड़ी। इस जंग (उसे तीसरा मकदूनियाई युद्ध, 172-167 ईसापूर्व कहते हैं) की समाप्ति के बाद राजा को गद्दी से हटा दिया गया और मकदूनिया को चार गणराज्यों में बांट दिया गया। उन गणराज्यों को रोम को कर अदा करना पड़ता था। मकदूनिया पर रोमन आधिपत्य का अंतिम चरण 149 से 146 ईसापूर्व तक चले तीसरे प्यूनिक युद्ध के साथ पूरा हो गया।

रोम पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के मामलों में उलझा रहा। इसी बीच कार्थेजियाई

अपना व्यापार बहाल करने में सफल रहे। दूसरी तरफ रोम में एक बेहद ताकतवर खेमा था जो कार्थेज को पूरी तरह नष्ट करने की मांग कर रहा था। ऐसे ही हालात में 149 ईसापूर्व में तीसरा प्यूनिक युद्ध शुरू हुआ। 146 ईसापूर्व तक कार्थेज को हराया और उसका अस्तित्व मिटाया जा चुका था। ट्यूनिशिया में कार्थेज के क्षेत्रों को रोम साम्राज्य के अफ्रीका प्रांत (अफ्रीका महाद्वीप के साथ इसका घालमेल नहीं किया जाना चाहिए) के रूप में पुनर्गठित किया गया। जब प्यूनिक युद्ध जारी था तो मकदूनिया को तोड़ कर बनाए गए गणराज्यों में और साथ ही यूनान में भी रोम विरोधी उथल-पुथल चल रही थी। रोमनों ने इस उथल-पुथल को कुचल दिया और 147 ईसापर्वू में पूरे मकदूनिया को अपने में मिला लिया। यूनानी विद्रोह भी दबा दिया गया और 146 ईसापूर्व में कोरिंथ को नष्ट कर दिया गया। वास्तव में रोमनों ने कोरिंथ और कार्थेज दोनों को एक ही वर्ष (146 ईसापूर्व) नष्ट किया।

मकदूनिया एक रोमन प्रांत बन गया जबकि यूनानी राज्यों को रोम के अप्रत्यक्ष शासन के अधीन रखा गया। मकदूनियाई प्रांत को यूनानी राज्यों के प्रशासन की देख-रेख करनी थी। उस समय तक मिस्र को भी रोमन संरक्षित राज्य (protectorate) बना लिया गया था, अर्थात रोमन उसकी विदेश नीति तय करते थे। पश्चिमी अनातोलिया रोमन शासन के अधीन आ गया था। उसे एशिया के रोमन प्रांत (एशिया महाद्वीप से भिन्न) के रूप में संगठित किया गया था। इस तरह दूसरी सदी ईसापूर्व के मध्य तक समूचे भूमध्यसागरीय क्षेत्र पर रोमन का प्रभुत्व हो गया। बेशक सीरिया, फलस्तीन, मिस्र और उत्तर अफ्रीका के कुछ हिस्से अभी तक रोम में नहीं मिलाए गए थे। बड़े पैमाने पर चलाए गए विस्तार अभियान का दूसरा चरण रोम की आंतरिक राजनीति से जुड़ा था। हम उस पर अगले भाग में चर्चा करेंगे।

II

जब 510 ईसापूर्व में रोम से एट्रस्कन राजशाही खत्म की गई तो राजनीतिक सत्ता कुलीन वर्ग के हाथों में आ गई। कुलीन वर्ग ने शुरू में एक अल्पतंत्रीय सरकार स्थापित की। कुलीन वर्ग एक अल्पतंत्रीय परिषद के मार्फत अपनी सत्ता का इस्तेमाल करते थे जिसे सीनेट कहा जाता था। रोमन गणतंत्र के पूरे काल के दौरान सीनेट शासन का एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण केंद्र रहा। फिर भी हम देखेंगे कि सीनेट को दूसरी संस्थाओं के साथ अधिकारों में साझेदारी करने के लिए क्रमशः बाध्य किया गया।

हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि हम बहुत निश्चित होकर शुरुआती गणतंत्र के कालक्रम (chronology) के बारे में कुछ नहीं कह सकते। ए. अलफोल्डी जैसे कुछ विद्वानों की दलील है कि दूसरे प्यूनिक युद्ध के बाद कुछ रोमन लेखकों ने शुरुआती

गणतंत्र के कुछ ऐतिहासिक विवरण दर्ज किए जिनमें रोमनों को बहुत शुरुआती काल से महान और श्रेष्ठ लोगों के रूप में पेश किया गया था। इन विवरणों का मकसद यह जताना था कि रोम हमेशा अग्रणी भूमिका में रहा है। इस प्रक्रिया में शुरुआती रोमन इतिहास का कालक्रम और पीछे कर दिया गया। अलफोल्डी के अनुसार हम वास्तव में शुरुआती रोम के बारे में बेहद कम जानते हैं। हमारी ज्यादा जानकारियां फैबियस पिक्टर के लेखन पर आधारित हैं। पिक्टर एक रोमन इतिहासकार था जिसने दूसरे प्यूनिक युद्ध में हिस्सा लिया था। उसने यूनानी भाषा में रोम का इतिहास लिखा जो प्राथमिकतः यूनानी लोगों के लिए था। अलफोल्डी का मत है कि पिक्टर ने शुरुआती रोम को महिमामंडित करने के लिए एक कालक्रम गढ़ा। इस कालक्रम ने रोम के उत्थान को छठी सदी ईसापूर्व में दिखाया जबकि वास्तव में यह एक सदी बाद हुआ। लेकिन ज्यादातर विद्वान इस दलील को स्वीकार नहीं करते। वे उन दिक्कतों की ओर इशारा करते हैं जो कालक्रम को संशोधित करने से पेश आतीं, खासकर कुछ घटनाओं का क्रम ऐसा था कि उनका बाद की तारीखों से मेल नहीं किया जा सकता था। फिर भी रोमन गणतंत्र की स्थापना जैसी कुछ तारीखों पर शक है। मसलन क्या यह महज एक संयोग है कि रोम में राजशाही के अंत की तारीख (510 ईसापूर्व) एकदम वही है जो तानाशाह हिप्पियास के तख्तापलट के बाद एथेंस में क्लासिकी लोकतंत्र की स्थापना की है।

हम जिस बात पर निश्चित हैं वह यह है कि गणतंत्र की स्थापना के एकदम शुरू से जमींदार कुलीन वर्ग और रोम के आमजन के बीच जबर्दस्त संघर्ष जारी था। रोमन समाज साफ तौर पर वर्गीय आधार पर विभाजित था और नीचे के वर्ग, खास तौर पर साधारण किसान, राजनीतिक सत्ता पर कुलीन वर्गों के एकाधिकार पर नाराज थे। उसके कारण एक लंबा संघर्ष चला। यूनानी राज्यों के समान रोम का कुलीन वर्ग भी किसानों के संघर्ष को पूरी तरह कुचलने की स्थिति में नहीं था। रोमन गणतंत्र के समूचे इतिहास में किसान संघर्ष बार-बार होता रहा।

रोमन कुलीन वर्ग के पास पेशेवर योद्धाओं पर आधारित एक बड़ी नियमित सेना गोलबंद करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं थे। इसलिए वह किसान असंतोष से प्रभावी ढंग से निबट नहीं सका। उसके अलावा रोमन सैन्य संगठन किसानों पर बेहद आश्रित था जो उसका मुख्य योद्धा बल थे। रोमन सेना में अवैतनिक सैनिक थे जिन्हें मुख्यतः किसानों के बीच से भर्ती किया जाता था। यूनानी होप्लाइटों के समान रोमन सैनिकों को भी युद्ध के अपने साजोसामान का बंदोबस्त खुद ही करना पड़ता था और युद्ध के दौरान जीवन-निर्वाह के लिए अपने ही साधनों का इस्तेमाल करना पड़ता था। सभी स्वस्थ वयस्क पुरुषों को सेना में अपनी सेवा देनी पड़ती थी। हमने देखा है कि प्राचीन यूनान में भी सैन्य संगठन का यही तरीका था। बहुत बड़े पैमाने पर रोमन विस्तार होने के कारण रोम के किसानों पर सैन्य बोझ कई गुना ज्यादा था। हमें याद रखना चाहिए कि रोम छह

सदी से ज्यादा अर्से तक नए-नए क्षेत्र जीतता रहा। इन छह सदियों में से करीब चार सौ साल इटली से बाहर के इलाके जीतने में लगे जिनमें से कुछ यूरोप, पश्चिम एशिया और उत्तर अफ्रीका के दूर-दराज में स्थित थे।

रोम को न सिर्फ अपने साम्राज्य के निर्माण के लिए बल्कि उसे बनाए रखने और उसकी रक्षा करने के लिए एक विशाल सेना की जरूरत पड़ी। ऐसे में यह समझना मुश्किल नहीं है कि किसानों को क्यों नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। गणतंत्र के शुरुआती सालों में राज्य पोषित पेशेवर नियमित सेना के गठन के लिए पर्याप्त धन इकट्ठा करने में असफल होने पर कुलीन वर्ग को पड़ोसी कबीलों (एट्रस्कन, वोल्सकी, एइकी, साबेलियाइ, गॉल इत्यादि) से नगर की रक्षा करने और बाद में मध्य इटली में राज्य का विस्तार करने के लिए किसानों से समर्थन लेना पड़ा। राजनीतिक सत्ता पर एकाधिकार स्थापित करने की कुलीन वर्ग की कोशिश के खिलाफ किसानों का सफल प्रतिरोध संघर्ष एक महत्वपूर्ण कारक था जिसके चलते कुलीन वर्ग ऐसा राजनीतिक और सैनिक ढांचा बनाने में असफल रहे जो पूरी तरह धनिक वर्ग के नियंत्रण में होता। जैसे-जैसे रोम का विस्तार होता गया, कृषक सैनिकों के समर्थन की जरूरत बढ़ती गई। शुरू में किसानों ने भी इस विस्तार से थोड़े छोटे-मोटे फायदे हासिल किए। मिसाल के तौर पर 396 ईसापूर्व में जब वेई नगर जीता गया तो नगर और उसके इर्द-गिर्द की ढेर सारी जमीनें रोम के अत्यंत निर्धन किसानों के बीच बांटी गईं। इसने किसानों को बाद के अभियानों के लिए सैन्य साजोसामान जुटाने का साधन मुहैया किया। इसी के साथ यह जोर देना जरूरी है कि कुलीन वर्ग को रोमन विस्तार का सबसे ज्यादा फायदा मिला। साम्राज्य के विस्तार से कुलीन वर्ग को अकूत धन मिला और अमीर तथा गरीब के बीच खाई बढ़ी।

रोमन विस्तार के शुरुआती दौर में कुलीन वर्ग पूरी तरह कृषक सैनिकों पर आश्रित थे। और इसी चरण में अर्थात जब रोम इतालवी प्रायद्वीप पर जीत के लिए युद्ध कर रहा था, किसानों ने अधिकतम राजनीतिक रियायतें हासिल कीं। इन रियायतों के जरिए *किसानों के एक छोटे हिस्से* ने राजनीतिक सत्ता में कुछ हिस्सेदारी पाई। इन रियायतों की प्रकृति समझने के लिए हमें रोमन गणतंत्र के विकास का अध्ययन करना होगा और यह देखना होगा कि कुलीन वर्ग और किसानों के बीच टकराव ने रोमन राज्य के ढांचे में क्या परिवर्तन लाए।

यह पहले चर्चा की जा चुकी है कि राजशाही के उन्मूलन के बाद सीनेट रोमन राज्य का सबसे महत्वपूर्ण निकाय बन गया था। राजाओं के मातहत रोमन सीनेट ने परामर्श देने वाली एक परिषद के रूप में काम किया था। सीनेट प्रमुख परिवारों के मुखियाओं को लेकर बनाई गई बुजुर्गों की एक परिषद थी। 510 ईसापूर्व के बाद कुलीन वर्गों ने सीनेट के मार्फत रोम पर राज किया। गणतंत्र की शुरुआत में सीनेट एक अल्पतंत्रीय निकाय था जिससे आमजन पूरी तरह बाहर थे। यहां हमें रोमन समाज के एक विशिष्ट

पहलू की अवश्य चर्चा करनी चाहिए। रोमन समाज दो श्रेणियों में बंटा था: पैट्रिशियन और प्लीबियन। पैट्रिशियन आपसी संबंधों से बंधा एक छोटा सा आभिजात्य वर्ग था जबकि प्लीबियन आम लोग थे। फिर भी दोनों श्रेणियां रोमन नागरिक की कोटि में आती थीं (हम रोमन नागरिकता की प्रकृति पर बाद में चर्चा करेंगे)। कुलीन वर्ग और किसानों के बीच का संघर्ष बड़े हद तक पैट्रिशियनों और प्लीबियनों के बीच का संघर्ष था और अकसर उसे 'श्रेणियों का टकराव' भी कहा जाता है।

पैट्रिशियन समाज स्वजन समूहों पर आधारित था जिन्हें *जेंटेस* (एकवचन *जेंस*) कहते थे। *जेंस* को कुल का रोमन समतुल्य माना जा सकता है। हर *जेंस* अपनी उत्पत्ति एक समान पूर्वज में खोजते थे। रोमनों की दो श्रेणियों की यह व्यवस्था कुछ मामलों में भारतीय जाति व्यवस्था से मिलती-जुलती थी। उनके बीच का यह विभाजन स्थायी था जो किसी खास जाति में पैदा होने की स्थायी व्यवस्था से मिलता-जुलता है। रोमन नागरिक पैट्रिशियन या फिर प्लीबियन के रूप में *पैदा* होते थे। कोई महज दौलत या राजनीतिक सत्ता पाने से पैट्रिशियन नहीं बन जाता था। बंधुत्व और विवाह दोनों श्रेणीबद्ध रोमन समाज से गहराई से जुड़े थे। 445 ईसापूर्व तक पैट्रिशियनों और प्लीबियनों के बीच वैवाहिक संबंध बनाने पर कानूनी रोक थी। उसके बहुत बाद तक भी इस तरह के संबंध कम ही बने।

इतिहासकार इस पर ज्यादा निश्चित नहीं हैं कि क्या ये दो श्रेणियां प्राक्-गणतांत्रिक रोम की एक प्रमुख विशिष्टता थी। कुछ विद्वानों का मत है कि एक समय में राजशाही के दौर में नागरिकता पाने का अधिकार सिर्फ पैट्रिशियनों को था। लेकिन ज्यादातर इतिहासकार इस मत को खारिज करते हैं। यह आमतौर पर माना जाता है कि गणतंत्र की शुरुआत में सत्तारूढ़ कुलीन वर्ग में सिर्फ पैट्रिशियन थे। पैट्रिशियन श्रेणी में गैर-पैट्रिशियन का प्रवेश वास्तव में असंभव ही था। पैट्रिशियन होने के लिए किसी व्यक्ति को पैट्रिशियन *जेंस* में जन्म लेना होता था और एक ऐसे विवाह के तहत जन्म लेना होता था जो रोमन कानून के अंतर्गत वैध हो। पैट्रिशियन सामाजिक संगठन के स्तर पर बंधुत्व पर आधारित संबंधों ने खासी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंधुत्व पर आधारित ढांचे के बंद दायरे पर इस कदर सख्ती से अमल किया जा रहा था कि गणतंत्र के दौरान *जेंटेस* की संख्या में लगातार गिरावट आई। साक्ष्यों से पता चलता है कि पांचवीं सदी ईसापूर्व में कुल मिलाकर 50 *जेंटेस* थे। लेकिन करीब 367 ईसापूर्व तक उनकी संख्या बंट गई और 81 परिवारों में विभाजित 22 *जेंटेस* रह गए। गणतंत्र के अंत में उनकी संख्या घट कर 30 परिवार और 14 *जेंटेस* रह गई। कुछ प्रमुख *जेंटेस* में एमिलिया, क्लाडिया, कार्नेलिया, फेबिया और जूलिया शामिल थे। रोमनों के बीच का नाम उनके *जेंटेस* का होता था। इस तरह प्रसिद्ध जूलियस सीजर-गाइयस जूलियस सीजर जूलिया *जेंस* का था। पैट्रिशियन *जेंटेस* पितृवंशिक (अर्थात वंश का निर्धारण पुरुष वंशानुक्रम के हिसाब से होता था) और पूरी तरह

पितृसत्तात्मक था। पैट्रिशियनों और प्लीबियनों के बीच विवाह पर रोक हटने के बाद भी पैट्रिशियन महिला और प्लीबियन पुरुष के बीच विवाह से पैदा बच्चा पैट्रिशियन नहीं माना जाता था। दूसरी तरफ पैट्रिशियन बाप और प्लीबियन मां के बच्चे को पैट्रिशियन होने की मान्यता मिल जाती थी।

कठोर पैमाने पर देखें तो रोमन श्रेणियां वर्ग नहीं थीं। लेकिन यह भी हकीकत है कि पैट्रिशियन आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक रूप से एक प्रभुत्वशाली समूह थे। हो सकता है कि श्रेणियां वर्ग नहीं हों लेकिन वे वर्गों के निकट थीं। गणतंत्र के अंतिम चरण में प्लीबियनों के एक छोटे हिस्से को राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी मिली। लेकिन प्लीबियन का एक व्यापक बहुमत वंचित वर्ग बना रहा और जमीन तथा उत्पादन के अन्य साधनों पर उसकी बहुत कम पकड़ रही। ज्यादातर लोगों के लिए प्लीबियन परिवार में पैदा लेने का मतलब वंचित वर्ग में पैदा होना था। दूसरी तरफ पैट्रिशियन श्रेणी में जन्म लेने का मतलब धन-दौलत और राजनीतिक सत्ता तक खुद-ब-खुद पहुंच और एक उच्च सामाजिक एवं कर्मकांडीय हैसियत पाना था। पैट्रिशियन रोमी धर्म पर उच्च दर्जे का नियंत्रण बनाने में सक्षम थे। प्लीबियनों के कुछ हिस्सों ने पैट्रिशियन को राजनीतिक रियायतें देने के लिए बाध्य किया था। फिर भी कर्मकांड से जुड़े अनेक पदों का दरवाजा प्लीबियनों के लिए बंद था।

जब गणतंत्र वजूद में आया तो पैट्रिशियनों ने रोम पर शासन करने के लिए सीनेट को पूरी तरह से एक अल्पतंत्रीय संस्था में बदल दिया। सीनेट की सदस्यता सहयोजन (co-option) के आधार पर था, अर्थात मूल सदस्य खुद ही सीनेट के नए या अतिरिक्त सदस्यों का चुनाव कर लेते थे। सीनेट के मूल सदस्य अवश्य ही वे लोग होंगे जिन्होंने तारक्वीन अभिमानी को सत्ता से हटाने के बाद रोमन राज्य की कमान संभाली होगी। *सिर्फ पैट्रिशियन पुरुष ही सीनेट के सदस्य हो सकते थे।* गणतंत्र के शुरुआती दौर में सीनेट में 300 सदस्य थे। बाद में सदस्यता 600 हो गई। फिर 900 हो गई और गणतंत्र के खात्मे के बाद वह अंततः 600 पर स्थिर हो गई। सीनेट की सदस्यता जीवन भर के लिए होती थी। सीनेट के ढेर सारे अधिकार थे और उनमें से ज्यादातर की औपचारिक रूप से व्याख्या नहीं की गई थी। वह मजिस्ट्रेटों का कामकाज निर्धारित करता था (लेकिन उन्हें चुनता नहीं था), उन्हें विधायकी, आर्थिक और सैनिक मामलों में सलाह देता था और आम तौर पर राज्य के कामकाज की देखरेख करता था। प्रमुख मुकदमों में खास तौर पर फौजदारी मामलों में ज्यूरी में सीनेट के सदस्य होते थे। ज्यादातर सीनेट बड़े भूमिपति थे। वे चौड़े बैंगनी रंग के किनारों (*लैटीक्लेविया*) वाले एक विशिष्ट लिबास पहनते थे। उन्हें सीनेट की मंजूरी के बगैर इटली से बाहर जाने की इजाजत नहीं थी। उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे सीनेट के सत्रों में हिस्सा लेने के लिए नियमित रूप से उपलब्ध रहेंगे।

रोमन गणतंत्र का शीर्षतम अधिकारी कौंसल कहलाते थे। कौंसल दो होते थे और दोनों एक साथ अपने पद पर काम करते थे। यह एक निर्वाचित पद था और उसके लिए हर साल चुनाव होता था। दोनों कौंसल एक साल काम करते थे जिसके बाद नए चुनाव कराए जाते थे। रोमन साल के नाम आम तौर पर उस साल के कौंसलों पर रखे जाते थे। रोमन राज्य का प्राधिकार कौंसलों में निहित था। वे सीनेट की बैठकों की अध्यक्षता करते थे और कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा सेना से संबंधित कामकाज करते थे। हम जानते हैं कि गणतंत्र के अंतिम काल में इस पद के लिए 42 साल की न्यूनतम आयु सीमा तय की गई थी। कौंसल बिना किसी रोक-टोक के फिर से चुनाव में खड़े हो सकते थे। 367 ईसापूर्व तक सिर्फ पैट्रिशियन ही कौंसल बन सकते थे। गणतंत्र के शुरुआती दौर में पैट्रिशियनों और प्लीबियनों के बीच चल रहे टकराव में एक प्रमुख मांग यह भी थी कि प्लीबियनों को भी कौंसल के पद पर आसीन होने की इजाजत दी जाए। 367 ईसापूर्व में कौंसल का *एक* पद प्लीबियनों के लिए खोल दिया गया। एक लंबे समय तक यह प्रावधान महज एक औपचारिकता बनी रही क्योंकि पैट्रिशियन चुनावी प्रक्रिया नियंत्रित करते थे और वे उम्मीदवारों के चयन में अपने हिसाब से उलट फेर कर सकते थे। गणतंत्र के अंतिम दौर में कहीं जाकर प्लीबियन वास्तव में इस पद पर चुने जाने लगे।

कौंसल के अलावा अनेक मजिस्ट्रेट थे जो प्रशासन के विभिन्न पहलू देखते थे। यहां दो अत्यधिक शक्तिशाली मजिस्ट्रेटों की चर्चा की जा सकती है जो निरीक्षक (censor) थे। दोनों अधिकारी हर पांच साल पर निर्वाचित होते थे। उनका कार्यकाल अठारह माह का होता था। अठारह माह के अपने इस कार्यकाल के दौरान दोनों अधिकारी रोमन नागरिकों की गणना करते थे। निरीक्षक नागरिकों का नाम और उनकी संपत्ति का (सिर्फ पुरुषों के नाम लिखे जाते थे) ब्योरा दर्ज करते थे। यह जनगणना रोमन राज्य के विभिन्न निर्वाचित पदों के लिए नागरिकों की पात्रता निर्धारित करती थी जो उनकी संपत्ति के कुल मूल्य पर निर्भर करता था। ये अधिकारी सार्वजनिक नैतिकता पर भी नजर रखते थे और सार्वजनिक नैतिकता के मानदंडों के उल्लंघन करने वाले किसी भी नागरिक के खिलाफ कार्रवाई कर सकते थे। वे सार्वजनिक जमीनों को रेहन रखने और सरकारी ठेका देने जैसे कुछ अन्य काम भी करते थे। ये तमाम अधिकार मिलकर इस पद को अत्यंत शक्तिशाली बना देते थे। गणतंत्र के शुरुआती दौर में सिर्फ पैट्रिशियन (मुख्यत: पूर्व कौंसल) ही निरीक्षक के पद पर निर्वाचित हो सकते थे। बाद में कौंसल के पद के समान ही मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्ति के लिए प्लीबियनों को भी योग्य करार दे दिया गया। ऐसा लगता है कि गणतंत्र के अंतिम दशकों में इस पद का महत्व गिर गया और खुद नागरिकों की गणना अनियमित हो गई। गणतंत्र की समाप्ति के कुछ ही समय बाद यह पद थोड़े समय के लिए बहाल किया गया। लेकिन क्रमश: उसे तज दिया गया।

कौंसल और सेंसरों के अलावा अनेक कनिष्ठ मजिस्ट्रेट थे जैसे ईडील और क्वेस्टर।

हर साल चार ईडील निर्वाचित होते थे। उनके पास सार्वजनिक निर्माण कार्यों की जिम्मेदारी थी और उन्हें सड़कों, जल निकास मार्गों तथा बाजार स्थल की देखरेख करनी होती थी। ईडील को सार्वजनिक उत्सवों का भी प्रबंध करना पड़ता था। क्वेस्टर उच्च मजिस्ट्रेटों को उनके कामकाज में मदद करते थे। उनकी एक प्रमुख जिम्मेदारी राज्य खजाने की देखरेख करना और सार्वजनिक लेखा-जोखा रखना थी। जैसे-जैसे साम्राज्य का विस्तार हुआ, रोमी अधिकारियों के पद और कार्यभार बढ़े। उसके अलावा जैसा कि हम देखेंगे प्लीबियनों के संघर्ष की बदौलत में मजिस्ट्रेटों के कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण पद सृजित किए गए थे जो सिर्फ उनके लिए थे।

मजिस्ट्रेटों को अवैतनिक सेवाएं देनी होती थी। उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता था। लेकिन सरकार ने रोजमर्रा के सामान्य कार्यों के लिए वेतनभोगी कनिष्ठ अधिकारियों की एक पूरी जमात बहाल कर रखी थी। उन अधिकारियों को सामूहिक रूप से *एप्पारिटोर्स* कहा जाता था। उन्हें राज्य से वेतन मिलता था। मजिस्ट्रेट के विपरीत *एप्पारिटोर्स* निर्वाचित नहीं होते थे। तकनीकी तौर पर उनकी नियुक्ति एक साल (गणतंत्र की समूची मशीनरी सालाना आधार पर चला करती थी) के लिए होती थी। लेकिन वास्तविक व्यवहार में *एप्पारिटोर्स* ज्यादा लंबे काल तक अपने पद पर बने रहते थे क्योंकि सालाना नियुक्तियां करना बेहद मुश्किल काम था। इन लोक सेवकों (public servants) की नियुक्तियां आबादी के अपेक्षाकृत गरीब हिस्सों के बीच से किया जाता था। *एप्पारिटोर्स* में दस्तावेज नवीस (scribe) और लिक्टर शामिल थे। लिक्टर ऐसे कर्मी थे जो कौंसल (या फिर तानाशाह कहलाने वाले अत्यंत विशेष स्थितियों में नियुक्त असाधारण शक्तियों से संपन्न ज्यादा उच्च मजिस्ट्रेटों) के *मार्ग रक्षक* (escort) के रूप में काम करते थे। लिक्टर के पास कभी कुल्हाड़ी के साथ तो कभी उसके बगैर लकड़ी के टुकड़ों के गट्ठर होते थे जिन्हें *फासेज* (fasces) कहते थे। ये कौंसल या अधिकारी के अधिकारों के प्रतीक होते थे। लिक्टर कौंसल के लिए बारह *फासेज* या गट्ठर, तानाशाहों के लिए चौबीस *फासेज* और कनिष्ठ मजिस्ट्रेट के लिए छह *फासेज* लेकर चलते थे। यह लोगों के सामने मजिस्ट्रेटों का रुतबा जताने का और यह बताने का तरीका था कि उनके आदेशों का सम्मान और पालन किया जाना चाहिए। बीसवीं सदी में इतालवी राष्ट्राध्यक्ष मुसोलिनी ने इस प्रतीक को पुनरुज्जीवित किया। उसने अपने शासन की वैधता देने के लिए *फासेज* की अवधारणा को विकृत किया। मुसोलिनी ने अपने आंदोलन को 'फासीवाद' का नाम दिया जो प्राचीन रोमन *फासेज* से लिया गया था।

गणतंत्र की स्थापना के बाद सीनेट और पैट्रिशियन मजिस्ट्रेटों की बढ़ती शक्ति के कारण प्लीबियनों ने भी दबाव डालना शुरू किया और राजनीतिक प्रक्रिया में अपनी भूमिका की मांग की। पैट्रिशियनों ने ऐसी व्यवस्था बनाई थी जिसमें प्लीबियनों को शासन से पूरी तरह अलग रखा गया था। लेकिन प्लीबियन रोमन सैन्य संगठन में अपनी महत्वपूर्ण

भूमिका के कारण अपनी मांगों पर जोर डालने के लिए खुद को सफलतापूर्वक पेश कर सके। रोम नगर की राजनीतिक संरचनाओं में एक कबीलाई सभा थी जो राजशाही के समय से चली आ रही थी। इसके सदस्य उन समुदायों के सभी वयस्क पुरुष थे जो सबसे शुरू में रोम में बसे थे। रोमन सभा, अर्थात नागरिकों की सभा, कोमीशिया क्यूरियाटा कहती थी। जब पैट्रिशियनों ने सत्ता संभाली और अल्पतंत्रीय राज्य की स्थापना की तो कोमीशिया क्यूरियाटा निष्क्रिय हो गई। औपचारिक रूप से वह मौजूद थी लेकिन उसके पास कोई वास्तविक शक्ति नहीं थी। राजाओं की शक्ति सभा को नहीं बल्कि सीनेट और मजिस्ट्रेटों को हस्तांतरित हुई।

कोमीशिया क्यूरियाटा का नाम *क्यूरिया* नामक बंधुत्व आधारित एक सामाजिक इकाई से लिया गया था जिसमें रोम के आदिम निवासी श्रेणीबद्ध थे। *क्यूरिया* विस्तारित कुल थे जिसमें प्लीबियन शामिल थे। पैट्रिशियन *जेंटेस* के साथ उसका घालमेल नहीं किया जाना चाहिए। गणतंत्र की शुरुआत में वहां तीस *क्यूरिया* थे जो तीन कबीलों में समूहबंद थे। तीन कबीलों की यह समूहबंदी उन तीन मूल कबीलों—टाइटीज, रैम्नेस और लूसेरेज—के अनुरूप हैं जो उस क्षेत्र में रहते थे जो बाद में रोम नगर में विकसित हुआ। यह स्पष्ट रहना चाहिए कि यह एक अति सरलीकृत तसवीर है और रोम के अत्यंत प्राचीन काल के संबंध में सूचनाओं की कमी के मद्देनजर हमें शुरुआती रोमन सामाजिक संगठन पर चर्चा करते समय पूरा एहतियात बरतना चाहिए। सामाजिक संगठन की चाहे जो भी आकृति कोमीशिया क्यूरियाटा में प्रतिबिंबित हो रही हो, राजशाही के उन्मूलन के तुरंत बाद दस-दस *क्यूरिया* के तीन कबीलों में समूहबंदी पर आधारित तीस *क्यूरिया* में तमाम नागरिकों के वर्गीकरण की व्यवस्था रूढ़ हो गई। चूंकि रोम की आबादी बढ़ गई थी, *क्यूरिया* में ऐसे कुछ नागरिक शामिल किए गए होंगे जिनका मूल सदस्यों के साथ बंधुत्व पर आधारित कोई रिश्ता नहीं था। हरेक *क्यूरिया* अपना एक मुखिया चुनता था जो *क्यूरियो* कहलाता था। *क्यूरियो* 50 साल से ज्यादा उम्र का होता था। *क्यूरियो* का पद जीवन भर के लिए होता था। *क्यूरियो मैक्सिमस* प्रधान *क्यूरियो* था जो 210 ईसापूर्व तक हमेशा कोई पैट्रिशियाई होता था।

पैट्रिशियन उपयुक्त पीठासीन अधिकारी के चयन के जरिए कोमीशिया क्यूरियाटा की कार्रवाई प्रभावित करने में सक्षम थे। सभा में मतदान 'एक सदस्य, एक मत' के उसूलों पर नहीं होता था। हरेक *क्यूरिया* सामूहिक रूप से मतदान करता था। अतः *क्यूरिया* की (न कि व्यक्तिगत सदस्यों की) राय ली जाती थी। बंधुत्व आधारित अपने रिश्तों का इस्तेमाल कर पैट्रिशियनों ने संबंधित *क्यूरिया* में प्रभुत्व स्थापित कर लिया। वे समूचे *क्यूरिया* की तरफ से बोलते और बाकी नागरिक महज तमाशाई रह गए थे। कोमीशिया क्यूरियाटा की बैठकें इस कदर अप्रासांगिक हो गईं कि अंततः हर *क्यूरिया* से एक आधिकारिक प्रतिनिधि उसके सत्रों में हिस्सा लेने के लिए भेज दिया जाता।

प्लीबियनों ने महसूस किया कि कोमीशिया क्यूरियाटा उनके हितों का ख़याल नहीं रख सकता। प्लीबियन समुदाय से जुड़े रोम के कृषक सैनिकों के बढ़ते दबाव के कारण नागरिक एक नई सभा में संगठित हुए। यह सभा कोमीशिया सेंच्यूरियाटा कहलाई। कोमीशिया क्यूरियाटा भंग नहीं की गई लेकिन उसके रहते हुए ही एक नई सभा गठित कर ली गई। कोमीशिया क्यूरियाटा की तरह कोमीशिया सेंच्यूरियाटा भी *तमाम* रोमन नागरिकों की सभा थी। दोनों सभाओं के बीच का फर्क नागरिकों की समूहबंदी के तरीके में निहित था। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा के मकसद से नागरिक 'शतियों' (centuries) में समूहबंद थे। एक शती रोम सेना की सबसे छोटी इकाई थी और तकनीकी तौर पर उम्मीद की जाती थी कि नाम के अनुरूप उसमें एक सौ लोग होंगे। लेकिन व्यवहार में यह संख्या घट-बढ़ सकती थी। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा अपने शुरुआती चरण में किसी सैन्य संगठन की तरह लगता होगा। ऐसी पूरी संभावना है कि उसकी पहली बैठकें किसी सैन्य अभियान के वक्त या शहर की रक्षा करने की कोई जरूरत होने पर हुई होगी और महत्वपूर्ण कृषक सैनिकों समेत तमाम योद्धाओं की राय मांगी गई होगी। सभी वयस्क पुरुष अपनी इकाई अर्थात शती के अनुसार जमा हुए होंगे जिसके वे सदस्य थे। सभा की सैन्य उत्पत्ति का संकेत इस तथ्य से भी मिलता है कि गणतंत्र के परवर्ती काल में भी उसकी बैठकों का सामान्य स्थल कैंपस मार्शियस था जो रोम के बाहरी इलाके में स्थित युद्ध के रोमन देवता मार्स को समर्पित एक बड़ा मैदान था। यह मैदान बुनियादी तौर पर सैनिक कवायद के लिए इस्तेमाल होता था।

गणतंत्र के ज्यादातर काल के दौरान कोमीशिया सेंच्यूरियाटा नागरिकों की मुख्य सभा बनी रही। कानून कोमीशिया सेंच्यूरियाटा से पारित कराने होते थे। युद्ध और शांति इस सभा के विशेषाधिकार में थी। राज्य के तमाम प्रमुख फैसलों पर कोमीशिया सेंच्यूरियाटा की मंजूरी लेनी होती थी। कोमीशिया क्यूरियाटा अब सामाजिक और धार्मिक प्रकृति के महज कुछ मुद्दों पर चर्चा करती थी। विवाह, गोद लेने और विरासत से जुड़े कुछ मुद्दों पर इस सभा में चर्चा होती थी और वहां वसीयतनामे दर्ज किए जाते थे। पुरोहिताई से जुड़े काम करने वाले अनेक अधिकारियों का चुनाव कोमीशिया क्यूरियाटा में होता था। लेकिन राजनीतिक रूप से यह महत्वहीन निकाय थी।

यह माना जाता है कि कोमीशिया सेंच्यूरियाटा का गठन करीब 450 ईसापूर्व में हुआ था। नई सभा का कामकाज इस तरह का था कि यह राजनीतिक सत्ता में प्लीबियनों की हिस्सेदारी की समस्या सुलझा नहीं सकी। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा में 193 शतियां थीं। हर शती का एक मत था। कोमीशिया क्यूरियाटा की तरह कोमीशिया सेंच्यूरियाटा भी 'एक सदस्य, एक मत' के सिद्धांत पर आधारित नहीं थी। हरेक शती का सामूहिक मत लिया जाता था। शतियों की व्यवस्था इस तरह थी कि पैट्रिशियन कोमीशिया सेंच्यूरियाटा के ज्यादातर मतों को नियंत्रित करते थे।

शतियां पांच वर्गों में समूहबद्ध थीं। ये वर्ग संपत्ति की योग्यता के आधार पर गठित थे। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा की 193 शतियां पांच वर्गों में बराबर-बराबर विभाजित नहीं थी। पहले तीन वर्गों में सबसे ज्यादा शतियां रखी गई थीं। ये कुलीनों और धनिकों के वर्ग थे। दूसरे शब्दों में पहले तीन वर्गों के पास ज्यादातर मत थे। शुरू में भले ही शतियां एक सौ की इकाई रही होंगी लेकिन पांचवीं सदी ईसापूर्व के उत्तरार्द्ध में उसमें वास्तव में एक सौ नागरिक नहीं थे। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा में वह एक सैद्धांतिक इकाई थी। यह इस तथ्य से भी स्पष्ट हो सकता है कि 193 शतियां कुल मिलाकर 19,300 नागरिकों के बराबर होंगी जो 500 ईसापूर्व के बाद लैटियम में रोम के क्षेत्रीय विस्तार के मद्देनजर एक अवास्तविक संख्या है। हर शती में नागरिकों की समान संख्या नहीं थी। पहले दो वर्गों की शतियों में बहुत कम नागरिक थे। एकदम दूसरे छोर पर संपत्तिहीन नागरिक थे। उन नागरिकों को *प्रोलितेरियस* का नाम दिया गया था, अर्थात वे लोग जिनका काम महज बच्चे या *प्रोल* (*प्रोल* का मतलब बच्चा होता है) जनना था। *प्रोलतारी* को सबसे निचले वर्ग में रखा गया था। यह वर्ग संख्या की दृष्टि से बड़ा था। लेकिन उसे महज एक शती दी गई थी। इस तरह के वर्गीकरण से सभा में गरीब नागरिकों की भागीदारी का कोई मतलब नहीं रह गया था।

इस तरह पैट्रिशियनों ने संख्या में कम होने के बावजूद बड़ी चालाकी से नई सभा पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उन्होंने कोमीशिया सेंच्यूरियाटा के विस्तृत नियम-कानून तय कर उस पर अपनी गिरफ्त और भी सुनिश्चित कर ली। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा की बैठकें औपचारिक रूप से मजिस्ट्रेट आहूत करते थे। मजिस्ट्रेट सभा की बैठकों की कार्यसूची पहले से ही तैयार करके रखते थे और नागरिकों से उस पर बगैर किसी चर्चा के मतदान करने की अपेक्षा की जाती थी। सदस्य सभा में किसी कानून के बनाने की शुरुआत नहीं कर सकते थे। मजिस्ट्रेट के पदों के लिए उम्मीदवारों की सूची सभा में मतदान के लिए पेश कर दी जाती थी। उन सूचियों में अपने समूह के बीच से चयनित पैट्रिशियनों के उम्मीदवारों के नाम होते थे। हम इससे इनकार नहीं कर सकते कि इस तरह की राजनीतिक रचना का विकास एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। लेकिन हमें रोमन सभा में लोकतंत्र की सीमाबद्धता से भी अवगत होना चाहिए।

कोमीशिया सेंच्यूरियाटा के मार्फत राजनीतिक सत्ता में हिस्सा पाने में नाकाम होने के बाद प्लीबियनों ने खुद को अपने ही एक निकाय में संगठित किया। यह निकाय कौंसिलियम प्लेबिस के नाम से जाना गया। कौंसिलियम प्लेबिस प्लीबियनों की एक सभा थी। इसमें प्लीबियनों से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर चर्चा होती थी। जल्द ही कौंसिलियम प्लेबिस संस्थाबद्ध हो गई और उसने अपना एक ढांचा विकसित कर लिया। उसकी नियमित कार्यवाही होती थी और अधिकारियों का चुनाव होता था। 494 ईसापूर्व में प्लीबियनों ने रोमन राज्य को कौंसिलियम प्लेबिस से चुने दो अधिकारियों को प्लीबियनों

के प्रवक्ता के रूप में औपचारिक रूप से स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया। ये अधिकारी ट्रिब्यून कहलाते थे।

प्लीबियनों के हाथ में सबसे शक्तिशाली हथियार था सैनिक सेवा से इनकार कर देना। इस इनकार को उस समय के लोग *सेसेसियो* (secessio) कहते थे। *सेसेसियो* के कम से कम पांच दर्ज मामले हैं। पहली बार 494 ईसापूर्व में प्लीबियनों ने *सेसेसियो* का इस्तेमाल किया। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि जब तक उनकी मांगें पूरी नहीं होंगी, वे सैनिक के रूप में काम नहीं करेंगे। वे चाहते थे कि रोमन राज्य कौंसिलियम प्लेबिस को स्वीकार करे और ट्रिब्यूनों को मान्यता दे। *सेसेसियो* तभी वापस लिया गया जब रोमन राज्य ने उनकी मांग मान ली। ट्रिब्यूनों की जिम्मेदारियां क्रमशः बढ़ती गईं और उससे उनकी संख्या बढ़ी। जैसे-जैसे उनके कार्यक्षेत्र बढ़े, उनके अधिकार भी बढ़े। 448 ईसापूर्व तक ट्रिब्यूनों की संख्या दस पहुंच चुकी थी। ट्रिब्यूनों का चुनाव हर साल कौंसिलियम प्लेबिस से होता था। खुशहाल प्लीबियनों के लिए यह सबसे पसंदीदा पद बन गया। ट्रिब्यून के पद पर चुने जाने के किसी प्लीबियनों की राज़नीतिक सत्ता तक थोड़ी-बहुत पहुंच हो जाती थी जो गणतंत्र की शुरुआत में संभव नहीं था।

पूर्ववर्ती गणतंत्र में 494 ईसापूर्व की इस जीत के बाद प्लीबियनों के संघर्ष के चार और महत्वपूर्ण मोड़ रहे। प्लेबियनों की एक प्रमुख मांग लिखित कानून संहिता की थी ताकि न्यायिक प्राधिकार का मनमाना इस्तेमाल न हो सके। पैट्रिशियनों ने अपनी मर्जी और मतलब के हिसाब से कानून लागू कर अपनी न्यायिक शक्तियों का लगातार दुरुपयोग किया था। उस समय कोई लिखित कानून नहीं था। प्लीबियनों ने सीनेट को धमकी दी कि अगर उसने रोमन राज्य की एक उचित कानूनी रूपरेखा बनाने के लिए कदम नहीं उठाया तो वे *सेसेसियो* छोड़ देंगे। सीनेट ने दस सदस्यों का एक आयोग (इस आयोग के सदस्य 'डेसेमविर' कहलाए) का गठन किया जिसका अध्यक्ष एप्पियस क्लाडियस था। इस आयोग ने रोमनों के लिए कानून तैयार किया। इन कानूनों को बारह तख्तियों का कानून (set of twelve tables) कहा जाता है। ये कानून कोमीशिया सेंच्यूरियाटा के गठन के आसपास 450 ईसापूर्व में लागू किए गए। बारह तख्तियां बुनियाद थीं जिस पर रोमन कानून का व्यापक ढांचा खड़ा किया गया। दुर्भाग्यवश तख्तियां पूरी तरह संरक्षित नहीं रह पाईं। रोमन कानून पश्चिम यूरोप की समूची कानूनी व्यवस्था का आधार बना और यह मानव सभ्यता को रोम का एक महत्वपूर्ण योगदान है। आज भी दुनिया भर में बड़ी संख्या में रोमन कानूनी शब्दावली प्रचलित है।

हम पैट्रिशियनों और प्लेबियनों के बीच संघर्ष के दूसरे मोड़ की पहले ही चर्चा कर चुके हैं। 367 ईसापूर्व में पैट्रिशियनों ने कौंसल का एक पद पाने का मौका प्लीबियनों के लिए छोड़ दिया। लेकिन कौंसल के पद पर प्लेबियनों का वास्तविक निर्वाचन बहुत बाद में अमल में आया। चूंकि कौंसलों का चुनाव कोमीशिया सेंच्यूरियाटा में होता था

और सीनेटर उम्मीदवारों के नाम का प्रस्ताव करते थे, प्लीबियनों के लिए रोमन राज्य के इस सर्वोच्च पद पर निर्वाचित होना आसान नहीं था। गणतंत्र के महज अंतिम एक सौ साल के दौरान प्लीबियन नियमित रूप से कौंसल का पद पाने लगे। कौंसल का पद एक साल का होता था। लेकिन उसके साथ अतिरिक्त फायदे जुड़े थे जो स्थायी किस्म के थे। कौंसल सीनेट का सदस्य बन सकते थे। अत: हालांकि प्लीबियन सामान्य तरीके से गणतंत्र के अंत तक सीनेट का सदस्य नहीं बन सके, कौंसल के पद के चुनाव ने उन्हें सीनेट में प्रवेश करने का मौका दिया। यहां ध्यान रखना चाहिए की सीनेट की सदस्यता जीवन भर के लिए होती थी। कुछेक प्लीबियन कौंसल के पद के रास्ते सीनेटर की बुलंदी पर पहुंच सके। गणतंत्र के परवर्ती काल में इस रास्ते का इस्तेमाल कर मुट्ठी भर प्लीबियन परिवारों (मसलन ग्रैकस बंधु, मार्क एंटनी) ने प्रमुखता पाई।

फिर 326 ईसापूर्व में एक और महत्वपूर्ण सुधार हुआ। रोमन कानून में एक कठोर प्रावधान था जो औपचारिक समझौते या *नेक्सम* के कठोर पालन से संबंधित था। अगर कोई रोमन ऋण लेते समय औपचारिक अनुबंध या *नेक्सम* करता जिसमें जमानत के बतौर खुद को पेश करता तो अनुबंध पूरा करने में असफल होने पर वह स्वत: ऋणदासता में बंध जाता। बार-बार युद्ध में भागीदारी और साथ ही विविध आर्थिक आवश्यकताओं के कारण कर्ज लेना पड़ता था और यह ऋणग्रस्तता किसानों के लिए एक गंभीर समस्या बन गई थी। जब किसान और दूसरे गरीब कर्ज अदा नहीं कर पाते, उन्हें गुलाम बना लिया जाता। इस तरह *नेक्सम* मुक्त किसानों को गुलाम मजदूरों में बदलने के लिए बड़े जमींदारों का हथियार बन गया। गणतंत्र के मध्यकाल में यह समस्या और गहराई। प्लीबियनों को *नेक्सम* के खात्मा के लिए आंदोलन करना पड़ा। आखिरकार 326 ईसापूर्व में कानून बना कर कर्ज की गैर-अदायगी पर किसी रोमन नागरिक को गुलाम बनाने पर रोक लगा दी गई। इन कानून ने कुछ समय के लिए रोमन किसानों की स्थिति स्थिर की।

शुरुआती लोकतंत्र के दौरान पैट्रिशियनों और प्लीबियनों के बीच जारी संघर्ष का चौथा और शायद राजनीतिक रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण मोड़ 287 ईसापूर्व का एक कानून था जिसमें प्लीबियन ट्रिब्यूनों को मजिस्ट्रेटों के पूरे अधिकार मिल गए। ऐसा लगता है कि इस चरण में एक गंभीर संकट था जिसकी परिणति प्लीबियनों के एक और *सेसेसियो* में हुई। गणतंत्र का आंतरिक राजनीतिक संकट एक ऐसे समय आया जब दक्षिण इटली के यूनानी राज्यों को रोमन नियंत्रण में लाने की योजना चल रही थी। स्थिति इतनी नाजुक थी कि श्रेणियों के टकराव का कोई हल ढूंढने के लिए एक तानाशाह क्विंटियस होर्टेंशियस चुना गया। तानाशाह निरंकुश शक्तियों से लैस एक निर्वाचित मजिस्ट्रेट होता था जो संकट के समय छोटी अवधि (अमूमन छह माह) के लिए नियुक्त किया जाता था। क्विंटियस होर्टेंशियस ने एक कानून बनाया जिसके तहत कौंसिलियम प्लेबिस के फैसलों को मानना रोमन राज्य के लिए बाध्य कर दिया गया? ट्रिब्यूनों को अधिकार सौंपे गए कि वह

कौंसिलियम प्लेबिस के फैसले लागू कराए और उसका उल्लंघन होने पर उचित सजा दे। होर्टेशियस का सुधार *लेक्स होर्टेंशिया* (रोमन सुधार उन मजिस्ट्रेटों के नाम से जाने जाते थे जो उसकी शुरुआत करते थे) कहलाता है और जबर्दस्त ऐतिहासिक महत्व का है। कौंसिलियम प्लेबिस अब अन्य रोमन समाजों के बराबर माना जाने लगा। उसके फैसलों को पूरी कानूनी हैसियत प्राप्त थी। ट्रिब्यून एक शक्तिशाली मजिस्ट्रेट पद बन गया था। *लेक्स होर्टेंशिया* ने रोमन गणतंत्र में वर्ग संघर्ष को एक चरण का खात्मा कर दिया। 287 ईसापूर्व के बाद भी संघर्ष जारी रहा। लेकिन उसकी प्रकृति बदल गई।

संभवत: 287 ईसापूर्व के विकासक्रम ने रोमन सभा के पुनर्गठन को जरूरी बना दिया। लगभग इसी समय (पक्की तारीख का पता नहीं है) एक नई सभा गठित की गई। यह सभा कोमीशिया ट्राइबूटा थी। कोमीशिया ट्राइबूटा सभी रोमन नागरिकों की सभा थी जिसमें नागरिक कबीलों (ट्राइबस) के आधार पर समूहबंद थे। *ट्राइबस* शब्द कुछ हद तक भ्रामक है क्योंकि ये बंधुत्व पर आधारित समूह नहीं थे। कोमीशिया ट्राइबूटा के लिए नागरिक अपने निवासस्थल के आधार पर वर्गीकृत थे। कोमीशिया ट्राइबूटा के कबीले अनिवार्यत: रिहाइशी कबीले थे। इन रिहाइशी कबीलों की अवधारणा एक लंबे काल में विकसित हुई थी। रोमन नागरिकों को रिहाइशी कबीलों के आधार पर संगठित करने की प्रथा का एक लंबा इतिहास है। लेकिन यह सिर्फ तीसरी सदी ईसापूर्व में जाकर कोई प्रासंगिकता ग्रहण कर सकी जब उसके आधार पर सभा में मतदान की व्यवस्था हुई। जैसा कि हम देख चुके हैं दूसरी सभाओं में नागरिक शतियों के आधार पर या *क्यूरिया* और बंधुत्व पर गठित कबीलों के आधार पर संगठित किए गए थे। कोमीशिया ट्राइबूटा की इकाई रिहाइशी कबीला था।

हम बंधुत्व पर आधारित कबीलों और रिहाइशी कबीलों के बीच मूलत: कोई संबंध होने की संभावना को खारिज नहीं कर सकते। सुदूर अतीत में रोम और उसके इर्द-गिर्द बसने वाले पहले जातीय कबीलों (ethnic tribes) के तमाम सदस्यों को नागरिक माना जाता था। इस तरह के तीन कबीले थे : टाइटीज, रैम्नेस और लूसेरेज। कोमीशिया क्यूरियाटा के तीन कबीले रोम में शुरू में बसने वाले तीन कबीलों से मेल खाते थे। जैसे-जैसे शहर आकार में बढ़ा, ये तीन कबीले पुनर्गठित किए गए। लेकिन कोमीशिया क्यूरियाटा का ढांचा जस का तस बना रहा। शहर को चार हिस्सों में बांटा गया जिसके हर हिस्से में एक कबीला था। ये कबीले रिहाइशी कबीले थे। फिर भी संबंधित हिस्सों के बंधुत्व पर आधारित प्रभुत्वशाली समूह रिहाइशी कबीलों के केंद्रक रहे होंगे। बाद में चार शहरी रिहाइशी कबीलों में सोलह ग्रामीण रिहाइशी कबीले जोड़े गए जिससे कबीलों की संख्या बीस हो गई।

गणतंत्र के शुरुआती दौर में रिहाइशी कबीला रिहाइश की जगह के अनुरूप नागरिकों की सूची बनाने के लिए महज एक आसान तरीका था। यह वर्गीकरण जनगणना और

करारोपण में मददगार था। जब मध्य इटली में रोम का विस्तार हुआ और दूसरे चुनिंदा समुदायों को भी नागरिकता के अधिकार दिए गए तो नए नागरिकों को शामिल करने के लिए और रिहाइशी कबीलों की जरूरत पड़ी। कबीलों की संख्या बीस से क्रमशः बढ़कर पैंतीस हो गई। हम जानते हैं कि 241 ईसापूर्व में पैंतीस कबीले थे और उसके बाद कोई नया कबीला बनाया नहीं गया। नए नागरिक उन्हीं कबीलों में खपाए जाते। कभी-कभी तो यह इतने मनमाने ढंग से होता था कि अंततः कबीला नागरिक के निवासस्थल से मेल नहीं खाता था।

यह प्रतीत होगा कि कौंसिलियम प्लेबिस के भीतर प्लीबियन अपने-अपने कबीलों के आधार पर समूहबद्ध थे। कौंसिलियम प्लेबिस को कभी-कभी कौंसिलियम प्लेबिस ट्राइबूटा भी कहा जाता है। जब से कौंसिलियम प्लेबिस वजूद में आया, उसने अपनी कार्यप्रणाली खुद ही विकसित की। हमें नहीं भूलना चाहिए कि कौंसिलियम प्लेबिस का अपना एक औपचारिक स्थान था। वह ट्रिब्यूनों का निर्वाचन करता था जो 287 ईसापूर्व से पहले भी कुछ अधिकार रखते थे। कौंसिलियम प्लेबिस प्लीबियनों से जुड़े प्रस्तावों पर मतदान करता था। प्लीबियन सभा के सदस्य व्यक्तिगत स्तर पर मतदान नहीं करते थे। प्लीबियनों ने दूसरी रोमन सभा में जारी मतदान के उसूलों पर अमल किया। वे ग्रुपों में सामूहिक मतदान करते थे। प्लीबियन नागरिकों को जिन सर्वाधिक उपयुक्त इकाइयों में बांटा जा सकता था, वे रिहाइशी कबीले थे।

एक तरह से कोमीशिया ट्राइबूटा कौंसिलियम प्लेबिस का एक विस्तार था। उसमें बस पैट्रिशियनों को शामिल करना था। जब प्लीबियनों और पैट्रिशियनों पर आधारित कोई रोमन सभा की बैठक होती और नागरिकों को कबीलों के अनुरूप समूहबद्ध किया जाता तो वह कोमीशिया ट्राइबूटा या रोमन कबीलों की सभा हो जाती। कौंसिलियम प्लेबिस के फैसलों को रोमन राज्य के लिए मान्य बानाने के *लेक्स होर्टेंशिया* के निर्णय के बाद तमाम रोमनों की इस तरह की बैठकें बुलाने का प्रचलन लगातार बढ़ता गया। कोमीशिया क्यूरियाटा और कोमीशिया सेंच्यूरियाटा की तुलना में कोमीशिया ट्राइबूटा एक ज्यादा समतावादी निकाय था। जन्म एवं धन नागरिकों की समूहबद्धता का निर्धारण नहीं करते थे। परवर्ती गणतंत्र में उन तमाम अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दों को मंजूरी के लिए कोमीशिया ट्राइबूटा में रखा जाता था जिन पर नागरिकों की राय जरूरी होती। कोमीशिया ट्राइबूटा ईडील और क्वेस्टर जैसे कुछ मजिस्ट्रेट निर्वाचित करते थे। उसे छोटे-मोटे मुकदमों की सुनवाई करने का भी अधिकार था। समय गुजरने के साथ कुलीन वर्ग ने कोमीशिया ट्राइबूटा की कार्यप्रणाली में उलट-फेर कर वहां भी प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

यह उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होगा कि सीनेट ने कभी अपने विशेषाधिकार पूरी तरह नहीं छोड़े। उसने रोमन राज्य के मामलों में रोमन नागरिकों की सभाओं (कोमीशिया क्यूरियाटा, कोमीशिया सेंच्यूरियाटा और कोमीशिया ट्राइबूटा), कौंसिलियम प्लेबिस और

ट्रिब्यूनों को कुछ अधिकार सौंपे। नई संस्थाएं गठित होती रहीं लेकिन पुरानी संस्थाओं को औपचारिक रूप से छोड़ा नहीं गया। सीनेट का कौंसिलियम प्लेबिस के साथ सहअस्तित्व रहा जबकि कोमीशिया क्यूरियाटा और कोमीशिया सेंच्यूरियाटा का कोमीशिया ट्राइबूटा के साथ सहअस्तित्व बना रहा। उधर कौंसलों और ट्रिब्यूनों का एक साथ सहअस्तित्व रहा। कुछ पुराने निकायों के कार्यभार घटा दिए गए या संशोधित कर दिए गए। फिर भी उनकी अन्य विशेषताएं अपरिवर्तित रहीं। कोमीशिया क्यूरियाटा ने अपना आद्य अल्पतंत्रीय ढांचा बरकरार रखा, कोमीशिया सेंच्यूरियाटा ने कौंसलों का चुनाव करना जारी रखा, सीनेट के दरवाजे सिद्धांततः प्लीबियन के लिए बंद रहे, और गणतंत्र के अंत में भी कौंसल मजिस्ट्रेट का सबसे शक्तिशाली पद बना रहा। इससे यह समग्र तसवीर उभरती है कि गणतंत्र के मध्यकाल तक सत्ता के अनेक केंद्र थे और उसके कारण अस्थिरता रही। 280 ईसापूर्व के बाद घरेलू मोर्चे पर राजनीतिक अस्थिरता और बड़े पैमाने पर क्षेत्रीय विस्तार दोनों साथ-साथ चले।

III

रोम 280 और 146 ईसापूर्व के बीच युद्ध में लगातार उलझा रहा। प्यूनिक और मकदूनियाई युद्ध ने रोम के भूमध्यसागरीय साम्राज्य की बुनियाद रखी। *लेक्स होर्टेंशिया* ने अस्थायी तौर पर घरेलू मोर्चे पर सामाजिक और राजनीतिक तनाव घटा दिया था। उससे रोमन राज्य को युद्ध के लिए संसाधन जुटाने में मदद मिली। साम्राज्य ने प्लीबियनों को कुछ राहत दी। इस तरह उनके असंतोष को कुछ समय के लिए नियंत्रित किया जा सका। मसलन 167 ईसापूर्व के बाद इटली में रहने वाले रोमन नागरिकों को कोई प्रत्यक्ष कर नहीं अदा करना पड़ता था। सभी रोमन नागरिकों को एक प्रत्यक्ष कर अदा करना होता था जिसे *ट्रिब्यूटम* कहते थे। 167 ईसापूर्व में इटली के लिए *ट्रिब्यूटम* खत्म कर दिया गया। नवविजित क्षेत्र भी रोमनों के लिए कृषि भूमि के स्रोत थे। इस जमीन का एक हिस्सा गरीब किसानों को दिया गया जिनमें से अनेक प्रांतों में बस गए। ठीक उसी समय लगातार युद्ध के कारण किसान सैनिकों पर भारी बोझ था। एक लंबे काल में हम पाते हैं कि युद्धों ने किसानों को गरीब और कुलीन वर्ग को समृद्ध बना दिया।

ऐसे में आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि 146 ईसापूर्व के बाद कुलीन वर्ग और किसानों के बीच अंतर्विरोध गहरा गए और एक हिंसक संघर्ष छिड़ गया। एक सदी से ज्यादा अर्से तक रोमन गणतंत्र लगातार इस संघर्ष की आग में झुलसता रहा और कभी-कभी इसने गृहयुद्ध का रूप धारण कर लिया। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि प्लीबियन कोई समरूप वर्ग थे। गणतंत्र की शुरुआत में ज्यादातर प्लीबियन किसान थे। परवर्ती गणतंत्र तक प्लीबियन सामाजिक रूप से विभाजित हो गए। एक छोर पर एक छोटा सा

अभिजात वर्ग था जिसने प्लीबियन को मिलने वाली रियायतों का इस्तेमाल अपने लिए संपत्ति जमा करने और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली बनाने में किया। इस परिघटना ने प्लीबियन सीनेटरों के मुट्ठी भर परिवारों को जन्म दिया जिनकी हैसियत पैट्रिशियन कुलीन वर्ग के लगभग समान थी। प्लीबियन आभिजात्यों की पहुंच सीनेट और कौंसल समेत मजिस्ट्रेट के तमाम पदों तक थी। उन्हें एक अतिरिक्त फायदा यह था कि वे अपने मतलब के लिए कौंसिलियम प्लेबिस का दुरुपयोग कर सकते थे। प्लीबियन सीनेटरों के पास ढेर सारी जमीनें थीं। उनके पास सेनाओं की कमान और ऊंचे ओहदे थे। ट्रिब्यून अकसर उनके बीच से चुने जाते थे। परवर्ती गणतंत्र में प्लीबियन का यह छोटा सा हिस्सा रोम के शासक कुलीन वर्ग से पूरी तरह जुड़ गया था। प्लीबियन अभिजातों का अन्य प्लीबियनों के साथ बहुत कम समानता थी। वे किसानों के अधिकारों को लेकर संघर्ष करने के इच्छुक नहीं थे।

सबसे नीचे संपत्तिहीन नागरिक थे। गणतंत्र के शुरू में ज्यादातर प्लीबियनों के पास थोड़ी-बहुत जमीन थी। लेकिन तीसरी सदी ईसापूर्व तक उनमें से अनेक के हाथों से उनकी जमीनें निकल गईं। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा में संपत्तिहीन नागरिकों को *प्रोलतारी* की शती में रखा गया था। जैसे-जैसे किसानों में निर्धनता बढ़ी, भूमिहीन प्लीबियनों का वर्ग भी बढ़ा। यह खास तौर पर गणतंत्र के अंतिम चरण में हुआ। प्लीबियन अभिजातों और भूमिहीन वर्ग के बीच में किसान थे। रोमन छोटे किसान *ऐसीडुइ* कहलाते थे। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा में जमीन के मूल्य के आधार पर छोटे किसानों को *ऐसीडुइ* के रूप में वर्गीकृत किया जाता था। *ऐसीडुइ* रोमन पैदल सेना के मुख्य आधार थे। हम उन्हें एथेनियाई *जेयुगिताइ* के रोमन समतुल्य मान सकते हैं। इस वर्ग को जमीन पर अपनी पकड़ कायम रखने में दिक्कत आ रही थी।

326 ईसापूर्व में ऋण दासता के उन्मूलन ने कर्जों की गैर-अदायगी पर किसानों को गुलाम बनाने की प्रथा पर रोक लगा दी। लेकिन कर्जों की गैर-अदायगी होने पर किसानों को अपनी जमीनें ऋणदाताओं को सौंपने के लिए मजबूर किया गया। इस तरह से *ऐसीडुइ* ने बड़े जमींदारों के हाथों ज्यादा से ज्यादा जमीनें खोईं। प्यूनिक और मकदूनियाई युद्ध के दौरान यह रुझान और बढ़ा। किसानों के लिए ये साल विपत्ति के थे। युद्ध *ऐसीडुइ* को बहुत तेजी से *प्रोलतारी* में बदल रहा था।

किसानों का संघर्ष 146 ईसापूर्व के बाद भूमि सुधार के सवाल पर केंद्रित हो गया। भूमि सुधार का सवाल न सिर्फ *ऐसिडुइ* की तंगहाली के कारण महत्वपूर्ण हो गया बल्कि इस कारण भी उसने प्रमुखता ग्रहण कर ली कि जमीन के बगैर किसान सैनिक सेवा नहीं दे सकते थे। *ऐसीडुइ* जमीन के पुनर्वितरण की मांग कर रहे थे। शासक वर्ग के एक हिस्सा ने भी महसूस किया कि किसानों की स्थिति स्थिर करने के लिए कुछ भूमि सुधार करना पड़ेगा। लेकिन कुलीन वर्ग के ज्यादा रूढ़िवादी हिस्से किसी किस्म के भूमि

सुधार के खिलाफ थे। इससे इस मुद्दे पर एक खूनी संघर्ष छिड़ गया।

प्लीबियन कुलीन परिवार के दो भाइयों (टाइबेरियस और गाइयस ग्रैकस) ने भूमि सुधार के आंदोलन का नेतृत्व किया। टाइबेरियस ग्रैकस 133 ईसापूर्व में ट्रिब्यून चुना गया था। उसने किसानों को जमीन देने का एक कार्यक्रम शुरू किया। टाइबेरियस ने जिस जमीन को गरीबों में बांटने का प्रस्ताव किया वह दरअसल सार्वजनिक कृषि संपत्ति थी जिस पर कुलीन वर्ग अवैध ढंग से कब्जा किए था। इस श्रेणी की जमीन *एगर पब्लिकस* कहलाती थी। *एगर पब्लिकस* की उत्पत्ति रोमन विस्तार के प्रारंभिक दौर में खोजी जा सकती है। जब रोम ने किसी राज्य को सैन्य अभियान के बाद अधीन किया तो उसने उस राज्य की कुछ कृषि भूमि जब्त करनी चाही। यह रोमन सेना का प्रतिरोध करने की सजा के रूप में विजित राज्य पर लगाया गया एक तरह का जुर्माना था। कृषि योग्य भूमि की एक तिहाई तक जब्त की जा सकती थी। जब्त की गई जमीन को *एगर पब्लिकस* कहा जाता था और वह रोमन नागरिकों की सामूहिक संपत्ति थी। *एगर पब्लिकस* की देखरेख राज्य करता था।

एगर पब्लिकस का एक हिस्सा गरीब किसानों में बांट दिया गया (यह सेना को बनाए रखने के लिए जरूरी था) जबकि बाकी को राज्य ने बड़े जमींदारों और कुलीनों को पट्टे पर दे दिया। पट्टों की देखरेख सेंसर करता था। कुलीनों ने बढ़िया जमीनों पर हाथ साफ कर दिया। *एगर पब्लिकस* पर कुलीनों के नियंत्रण का मुद्दा समय-समय पर उठाया गया। 367 ईसापूर्व में एक कानून बनाया गया जिसमें किसी व्यक्ति को पट्टे पर दी जाने वाली *एगर पब्लिकस* जमीन की अधिकतम सीमा निश्चित की गई। इसके तहत 500 जुगेरा (जुगेरम क्षेत्रफल की पैमाइश की रोमन इकाई थी जो मोटे तौर पर दो तिहाई एकड़ के बराबर थी) से ज्यादा जमीन किसी व्यक्ति को पट्टे पर नहीं दी जा सकती थी। कुलीन वर्ग ने अमूमन इस कानून का उल्लंघन किया। वे लंबे अर्से तक *एगर पब्लिकस* के बड़े-बड़े टुकड़ों पर काबिज रहे। उसके अलावा उन्होंने पट्टे के बकाए भी लगातार अदा नहीं किए। इस तरह *एगर पब्लिकस* कुलीन वर्गों की निजी जागीर में बदल दी गई।

जब टाइबेटियस ग्रैकस 133 ईसापूर्व में ट्रिब्यून बना तो उसने अवैध कब्जे से तमाम *एगर पब्लिकस* जमीनें निकालने के लिए एक आयोग गठित किया। प्राप्त जमीनें छोटे किसानों के बीच बांटी जानी थी, किसानों को उन जमीनों पर दखल दिलाना था और किसानों को उसके लिए राज्य को बकाया अदा करना था। कुलीन वर्ग ने इस सुधार का जबर्दस्त विरोध किया और रोम शहर में बड़े पैमाने पर हिंसा मचाई। टाइबेरियस ग्रेसचस को दूसरी बार ट्रिब्यून पद के लिए चुनाव लड़ने से रोका गया। जब वह नहीं माना तो तीन सौ समर्थकों के साथ उसकी हत्या कर दी गई। थोड़े ही समय बाद 123 ईसापूर्व में उसका छोटा भाई गाइयस ग्रेसचस ट्रिब्यून बना। गाइयस ने टाइबेरियस के कृषि कानूनों को कार्यान्वित कर सुधार प्रक्रिया को आगे बढ़ाया। गाइयस ने बेदखल नागरिकों की

हालत सुधारने के लिए राज्य की ओर से सस्ते दर पर अनाज बेचना शुरू किया। बाद में यह निर्धनतम रोमनों के बीच मुफ्त अनाज वितरण की प्रणाली में विकसित हुआ। गाइयस ने कार्थेज के नवविजित क्षेत्रों में गरीब नागरिकों के एक बड़े हिस्से को बसाया।

गाइयस की भी 121 ईसापूर्व में हत्या कर दी गई। उसके समर्थकों का बड़ी बेदर्दी के साथ कत्लेआम किया गया। 119 ईसापूर्व में *एगर पब्लिकस* का पुनर्वितरण आयोग भंग कर दिया गया। इसने रोम में भूमि सुधार की आखिरी बड़ी कोशिश नाकाम कर दी। *ऐसीडुइ* की स्थिति सुधारने का संघर्ष विफल रहा। गणतंत्र के अंत तक छोटे किसान एक महत्वहीन वर्ग बन गए। दूसरी तरफ *प्रोलतारी* की कतार बढ़ती गई। हम कह सकते हैं कि गणतंत्र के आखिरी एक सौ साल के दौरान प्लीबियनों की बहुत बड़ी तादाद भूमिहीन नागरिकों में बदल गई। यह प्रक्रिया बहुत लंबे समय से चल रही थी। पी.ए. ब्रंट (*सोशल कनफ्लिक्ट्स इन दि रोमन रिपब्लिक*) का कहना है कि दूसरे प्यूनिक युद्ध के शुरू होने तक नागरिकों की अधिकांश संख्या भूमिहीन हो चुकी थी। उनका कहना है कि दूसरी सदी ईसापूर्व तक किसानों के जोत का आकार खासा घट चुका था। *ऐसीडुइ* को जिंदगी काटना कठिन लगने लगा था। जब इसे सैन्य अभियानों के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं जिसमें उन्हें भाग लेना होता था और जिसमें भारी संख्या में *ऐसीडुइ* सैनिक हताहत होते थे तो हम आसानी से यह समझ सकते हैं कि कैसे गणतंत्र की शुरुआत में नागरिकों की बहुसंख्या का निर्माण करने वाला एक वर्ग गणतंत्र के आखिरी सालों में वस्तुत: लुप्त हो गया।

दूसरी सदी ईसापूर्व में *ऐसीडुइ* के लिए न्यूनतम 400 देनारी (गणतंत्र काल में चांदी का देनारियस मानक रोमन मुद्रा था) मूल्य की संपत्ति जरूरी थी। ब्रंट ने हिसाब लगाया है कि उस समय 400 देनारी करीब एक एकड़ कृषि योग्य भूमि का मूल्य रहा होगा। एक एकड़ जमीन की उपज जीवन निर्वाह के लिए अनिवार्य न्यूनतम अनाज से भी बेहद कम थी। ब्रंट इस स्थिति की तुलना पूर्ववर्ती गणतंत्र काल के साथ करते हैं जब जोत का औसत आकार करीब पांच एकड़ था। उसके अलावा छोटे किसानों को बड़े जमींदारों ने सीमांत और कम उर्वर क्षेत्रों की ओर ढकेल दिया था। इन हालात में किसानों के लिए अपनी जमीन जोत-बोकर जीना असंभव था। इटली में कृषि संपत्ति अंतत: कुलीनों के हाथ में चली गई। ऐसीडुइ को सैन्य सैवाएं पूरी करने के लिए अकसर कर्ज लेना पड़ता था। कर्जखोरी ने इस प्रक्रिया में मदद की। सैन्य अभियानों के क्रम में हृष्ट-पुष्ट वयस्क मजदूरों के खेतों से लंबे समय तक अनुपस्थित रहने और युद्ध में मारे जाने से रोमन किसानों की बर्बादी में बची खुची कसर भी पूरी हो गई।

भूमिसुधार में असफलता और ऐसीडुइ वर्ग के सिकुड़ते आकार में सिपाहियों की भर्ती की समस्या का कोई तत्कालीन हल ढूढ़ने की जरूरत महसूस की गई। कुल मिलाकर भूमिहीन नागरिकों से यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी वे अपने साधनों के आधार पर सैनिक सेवा मुहैया कराते। पहले अधीनस्थ क्षेत्रों से सहायक सेना की टुकड़ी खड़ी कर

इस समस्या का आंशिक समाधान खोजा गया लेकिन राज्य के खर्चे पर घुड़सवार सेना भी कायम की गई। 100 ईसापूर्व मैरियस ने रोमन सेना सुधार कर वेतनभोगी सैनिक भर्ती करने का श्रीगणेश किया। वह एक प्रभावशाली सैनिक तथा राजनीतिक हस्ती था। इसके बाद सेना में वेतनभोगी सैनिक रखने का सिलसिला शुरू हो गया। इसके बाद भूमिहीन नागरिकों के सेना में भर्ती का रास्ता बना।

कुलीन वर्गों के सैन्य नेताओं की कमान वाली एक अर्ध-पेशेवर सेना के सृजन ने रोम में राजनीतिक टकरावों को एक नया आयाम दिया। पहले *ऐसीडुइ* सैनिक सैन्य अभियान के बाद घर लौट जाते थे और अपने खेतों में काम करते थे। अब सैनिक स्थायी रूप से अभियानों में व्यस्त रहते और इटली से बाहर साम्राज्य के सुदूर हिस्सों में लंबे समय तक तैनात होते। सैनिक इकाइयों ने अपनी एक खास पहचान बना ली थी। वे अपने कमांडरों के प्रति पूरी तरह वफादार रहते और अपनी उपलब्धियों को उन कमांडरों की रणनीति और योजना का फल मानते। यह स्थिति खास तौर पर अत्यंत सफल कमांडरों के मामले में थी। युद्ध में जीत सैनिकों को लूट-मार करने का मौका देती थी। एक बड़ी और प्रशिक्षित सेना अपनी मातहती में होने से कुलीन वर्ग के सैन्य नेता रोमन राज्य की नीतियों को नियंत्रित करने के लिए हिंसक रूप से हस्तक्षेप कर सकते थे। 100 ईसापूर्व और 27 ईसापूर्व के बीच के काल में ऐसे अनेक कमांडर हुए : मारियस, सुल्ला, क्रैसस, पांपी, जूलियस सीजर, मार्क एंटनी और आगस्टस। असंतोष दबाने और कुलीन वर्ग के हितों को बढ़ाने के लिए सेना ज्यादा से ज्यादा तैनात की जाने लगी। अल्पतंत्रीय नेता अपने निजी गुटीय संघर्ष में भी सेना का इस्तेमाल करते थे। सेना खुद रोम की राजनीति का एक हिस्सा बन गई।

एक वर्ग के रूप में *ऐसीडुइ* के उन्मूलन ने रोमन गणतंत्र का चरित्र रूपांतरित कर दिया। मध्य इटली के रोमन नागरिक अब मुख्यत: संपत्तिहीन प्लीबियन थे। जीवन-निर्वाह का कोई साधन नहीं होने के कारण वे रोम शहर में इकट्ठा हो गए थे जहां सस्ता अनाज उपलब्ध था। ज्यादातर *प्रोलतारी* सस्ता अनाज भी खरीद नहीं सकते थे। इसके मद्देनजर रोमन राज्य ने निर्धनतम लोगों को मुफ्त अनाज बांटना शुरू कर दिया था। ब्रंट ने अपनी महत्वपूर्ण कृति *इटालियन मैनपावर* में हिसाब लगाया है कि करीब 50 ईसापूर्व तक 3,20,000 नागरिक मुफ्त अनाज पा रहे थे।

रोमन सभाओं में हिस्सा लेने वालों का एक बड़ा हिस्सा अब बेरोजगार गरीबों का था जो मुफ्त अनाज वितरण के सहारे जीवननिर्वाह कर रहे थे। लेकिन रोम शहर में उनकी भौतिक उपस्थिति नजरअंदाज नहीं की जा सकती थी। नागरिक के नाते उन्हें राज्य के मामलों में कुछ भूमिका अदा करनी थी। असंतुष्ट *प्रोलतारियों* की भीड़ अस्थिरता पैदा कर रही थी। मुफ्त अनाज वितरण ने भोजन की उनकी सबसे बुनियादी जरूरत पूरा कर दी थी। अन्यथा वे असंतोष का एक संभावित स्रोत थे। कभी-कभी प्लीबियनों का हुजूम

हिंसक हो उठता और सभा की बैठकें बाधित कर देता। राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने की अपनी जोड़-तोड़ में राजनीतिज्ञ उनका इस्तेमाल कर रहे थे। सच तो यह है कि कुलीन वर्गों ने ग्रैकस बंधुओं के खिलाफ हिंसा में उन प्लीबियनों के उत्तेज्ति हुजूमों को ही इस्तेमाल किया था। इन भूमिहीन नागरिकों को इस्तेमाल कर भूमि सुधार के कार्यक्रम को ठप्प किया गया। इस पर टिप्पणी करते हुए पेरी एंडरसन (*पैसेजेज फ्राम एंटीक्वीटी टु फ्युडलिज्म*) का कहना है : 'जहां ग्रामांचलों में कुलीनों के जायदाद भरे पड़े थे, शहर में जमीन या अन्य संपत्तियों से वंचित गरीबों की बहुसंख्या थी। एक बार पूरी तरह शहरीकरण से गुजरने के बाद यह विशाल और बदहाल तबका छोटे किसानों की स्थिति में लौटने की इच्छा खो चुका था और कृषि सुधार की *ऐसीडुइ* किसान समर्थित परियोजनाओं के खिलाफ कुलीन गुटों के हाथों में इस्तेमाल हो सकता था। विस्तृत होते हुए साम्राज्य की राजधानी में उनकी महत्वपूर्ण हैसियत थी जिसके चलते रोमन शासक वर्गों को अंतत: सार्वजनिक अनाज वितरण के जरिए उनके तात्कालिक भौतिक हित पूरे करने पड़े। *दरअसल यह इस भूमि वितरण का एक सस्ता विकल्प था जो कभी हुआ ही नहीं* (जोर हमारा)।'

IV

एक सौ ईसापूर्व के बाद सत्तर साल तक रोम में हिंसक उथल-पुथल का एक सिलसिला चलता रहा। 91 ईसापूर्व में इटली में रोमन शासन के खिलाफ एक जोरदार विद्रोह हुआ। रोम और अनेक इतालवी समुदायों के बीच एक नियमित युद्ध छिड़ गया। उन इतालवी समुदायों को रोमनों ने अधीन कर रखा था। मार्सी और सामनाई इस युद्ध में रोमनों के सबसे शक्तिशाली विरोधी थे। इस युद्ध को 'सोशल युद्ध' (91-89 ईसापूर्व) कहा जाता है। यहां 'सोशल' शब्द *सोशई इटालीसी* या इतालवी सहयोगियों (*सोशस* का अर्थ है सहयोगी, साथी) को इंगित करता है। दूसरे शब्दों में, यह अपने इतालवी सहयोगियों के साथ रोम का युद्ध था। जब रोम ने इटली पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया तो उसने या तो इतालवी इलाकों का सीधे विलय करा लिया या फिर इतालवी राज्यों पर असमानता पर आधारित गठबंधन थोप दिया। विलय कराए गए क्षेत्र मुख्यत: मध्य इटली में स्थित थे। उन्हें रोम ने सबसे पहले जीता था। उन राज्यों या कबीलाई समुदायों की स्वतंत्रता खत्म हो गई थी। उनका प्रशासन सीधे रोम द्वारा किया जाता था। उन क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों को रोमनों के साथ मिला दिया गया था। संश्रयबद्ध राज्यों को अर्थात *सोशई इटालीसी* को अपनी सरकार रखने की इजाजत दी गई थी जो आंतरिक प्रशासन के मामलों में कमोबेश स्वायत्त थीं। सहयोगी राज्यों के विदेशी मामलों पर रोम का नियंत्रण था। सहयोगी राज्यों के साथ रोम के रिश्ते औपचारिक संधियों पर आधारित थे जो रोमन

प्रभुत्व स्वीकार करती थीं। सहयोगी राज्यों को रोम को सैन्य सहयोग देना पड़ता था। इन सहयोग की प्रकृति संधि में स्पष्ट की गई थी।

'सोशल युद्ध' के शुरू होने के समय इटली के महज सातवें हिस्से पर रोम का प्रत्यक्ष शासन था। इसका अर्थ यह हुआ कि इटली का ज्यादातर हिस्सा संश्रयबद्ध क्षेत्र था। एक ताकतवर साम्राज्य के रूप में रोम के उदय ने इतालवी सहयोगियों के साथ रोमन संबंधों को जबर्दस्त प्रभावित किया। उन राज्यों के आंतरिक मामलों में रोम की दखलअंदाजी बढ़ गई थी क्योंकि उनमें प्रतिरोध करने की क्षमता नहीं थी। सहयोगी राज्यों की स्वायत्तता में बहुत कमी आ गई। रोम उन पर सैनिक और वित्तीय बोझ बढ़ाता जा रहा था जिससे उनका आक्रोश बढ़ा। रोमनों ने सहयोगियों के साथ की गई संधियों के प्रावधान नजरअंदाज कर दिए। *सोशई* ने महसूस किया कि अगर उन्हें रोमन राज्य की नीति निर्माण प्रक्रिया में हिस्सेदारी मिलती है तो उससे उनकी स्वायत्तता के क्षरण की भरपाई हो सकती है। लेकिन यह संभव नहीं था क्योंकि सहयोगियों के पास रोमन नागरिकता नहीं थी। सोशल युद्ध के दौरान सहयोगियों की मुख्य मांग *सोशई इटालीसी* को रोमन नागरिकता अधिकार देने की थी। लेकिन सामनाई जैसे कुछ इतालवी समुदाय स्वतंत्रता पाने के लिए लड़े थे।

नागरिकता की रोमन अवधारणा को कोई निश्चित या स्थिर चीज नहीं मानना चाहिए। रोमन नागरिकता कई सौ सालों में विकसित हुई और गणतंत्र के अंतिम चरण में भी विकास की प्रक्रिया से गुजर रही थी। लोकतांत्रिक ढांचा रखने वाले किसी भी प्राचीन समाज की तरह यहां भी नागरिकता लंबे समय से किसी क्षेत्र विशेष में बसे मूल समुदाय के वयस्क पुरुषों पर आधारित होती थी। ये आद्य समुदाय सामाजिक रूप से कबीलों या कुलों में संगठित थे और बंधुत्व एवं विवाह के आधार पर नागरिकों के बीच आपसी संबंध होते थे। इसी प्रकार रोम में प्रारंभिक नागरिक उन कबीलों के लोग थे जो पहले से आकर नगर में बस गए थे। रोम लोगों के आरंभिक सामाजिक और राजनीतिक संगठनों में तीन कबीलों के लोग थे। इनका ही जनसभाओं और न्यायालयों में प्रतिनिधित्व था। वास्तव में वर्ग विभेदीकरण तथा सुसंगठित राज्य ने इस संगठन का स्वरूप बदल दिया था। यह काम न्यायालय तथा कबीलों के भीतर वर्ग भेद के प्रवेश के जरिए संपन्न हुआ था। कुलीन और साधारण नागरिकों के बीच का अंतर बहुत साफ था लेकिन गणतंत्र के शुरुआती दौर में इन वर्ग भेदों के बावजूद जो भी समुदाय रोम के निवासी थे, उनके सभी वयस्क पुरुष सदस्यों को नागरिक अधिकार हासिल थे।

नागरिकता की यह संकीर्ण अवधारणा अपेक्षाकृत छोटी क्षेत्रीय इकाइयों के लिए उपयुक्त थी। लेकिन वृहद राज्यों के लिए व्यावहारिक नहीं था। हमने पिछले अध्याय में देखा कि जब एथेंस ने ऐटिका में अपना क्षेत्रीय विस्तार किया तो उसने एल्युसिस और मैराथन के पड़ोसी समुदायों को एथेंस के नागरिक समूह में शामिल कर लिया। कुछ हद

तक बीओशिया में थीब्ज के लिए भी यह सही है। बड़े यूनानी राज्यों में स्पार्टा एक अपवाद था जिसने बड़े पैमाने पर लैकोनियाइयों और मेसेनियाइयों को गुलाम बनाया। स्पार्टा के नागरिक एक छोटा बंद समूह बने रहे। लेकिन उन्हें लैकोनियाइयों और मेसेनियाइयों को निरंतर गुलामी में रखने के लिए सैन्य प्रशिक्षण पर ढेर सारा समय खर्च कर उसकी कीमत चुकानी पड़ी।

रोमनों ने लैटियम में विस्तार के दौरान पराधीन बनाए गए समुदायों को नागरिकता देने को तरजीह दी। कुछ हद तक यह अपरिहार्य था क्योंकि रोम पांचवीं सदी ईसापूर्व तक एक बहुत कमजोर राज्य था। रोम के लिए यह संभव नहीं था कि वह स्पार्टा की तरह पड़ोसी समुदायों को सामूहिक गुलामों में बदल दे। उलटे, रोम को एट्रस्कनों, आस्कनों, अंबरियाइयों और वाल्सकियों के हमलों से खुद को बचाने के लिए शहर के इर्द-गिर्द रहने वाले लातीनी समुदायों के सहयोग की बहुत जरूरत थी। उसने शुरू में लातीनी समुदायों के साथ एक परिसंघ बनाया। बाद में जब रोम काफी शक्तिशाली हो गया तो उसने लातीनी समुदायों की आजादी खत्म कर दी। बदले में लातीनियनों को नागरिकता के अधिकार दिए गए। इसने उन्हें रोमन राज्य का एक औपचारिक हिस्सा बना दिया। साथ ही उन्हें रोमन सेना में सैनिक बनाया गया। यह एक लंबी प्रक्रिया थी। कुछ लातीनी थे जिन्होंने स्वेच्छा से रोम के आगे सिर झुका दिया था तो कुछ ऐसे थे जिन्हें युद्ध में परास्त करने के बाद अधीन किया गया था। लातीनी भाषी लोगों को नागरिकता का अधिकार देने से रोमनों और अन्य लातीनियों के बीच एक विशेष रिश्ता बना।

लातीनियों को नागरिकता अधिकार दिए जाने का यह हरगिज मतलब नहीं है कि उनमें से सबको सभा में मतदान करने का अधिकार मिल गया। जैसे-जैसे नागरिकता की रोमन अवधारणा विकसित हुई, दो तरह की नागरिकता वजूद में आई। नागरिकों को या तो पूर्ण नागरिकता अधिकार हासिल थे या वे निम्न नागरिक (या अर्ध नागरिक) थे। पूर्ण रोमन नागरिकता में दो अधिकार थे : राजनीतिक अधिकार (ज्यूरा पब्लिका) और वैधानिक अधिकार (ज्यूरा प्राइवेटा)। नागरिकता के राजनीतिक अधिकार किसी नागरिक को सभा की कार्रवाई में हिस्सा लेने और मतदान करने का अधिकार देते थे। ये अधिकार उसे योग्यता शर्त पूरी करने पर विभिन्न सार्वजनिक पदों पर चुने जाने की पात्रता भी देते थे। वैधानिक अधिकारों का संबंध विवाह, विरासत, संपत्ति की मिल्कियत और इकरारनामों से जुड़े दायित्वों के पालन से था। रोमन कानून सिर्फ नागरिकों के बीच हुए विवाह को वैध मानता था अर्थात वर और वधू दोनों नागरिकों के परिवारों के होने चाहिए। इसका यह मतलब नहीं है कि नागरिक और गैर-नागरिक के बीच विवाह पर प्रतिबंध था। इसका मतलब यह था कि किसी नागरिक और गैर-नागरिक के बीच हुए विवाह से पैदा हुए बच्चे को नागरिकता और विरासत का अधिकार नहीं मिल सकता था सिवा उन मामलों के जिन्हें राज्य की स्पष्ट इजाजत थी। सिर्फ नागरिकों के पास रोमन विवाह का अधिकार

था जिसे *कोनूबियम* (conubium) कहते थे। कोनूबियम वाले विवाह में बच्चों को नागरिकता और संपत्ति का उत्तराधिकार मिलता था।

विरासत का सवाल महत्वपूर्ण था क्योंकि वह मिल्कियत से जुड़ा हुआ था। नागरिकों के वैधानिक अधिकार उन्हें पूरा मालिकाना हक देते थे जिसमें संपत्ति बेचने और उसका वारिस होने का अधिकार शामिल थे। यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि रोमन कानून संपत्ति का कब्जा (possession) और स्वामित्व (dominium) में स्पष्ट रूप से फर्क करता था। सिर्फ नागरिकों को ही पूर्ण स्वामित्व का अधिकार था। उसके अलावा, नागरिक अधिकारों में *कमर्सियम* (commercium) या अन्य नागरिकों के साथ अनुबंध करने और उन्हें अदालत से लागू करवाने का अधिकार था। *कमर्सियम* की अनुपस्थिति में रोमन अदालत में किसी अनुबंध की कोई कानूनी वैधता नहीं थी। इस तरह *ज्यूरा प्राइवेटा* स्वत: किसी नागरिक को *कोनूबियम, कमर्सियम* और *डोमिनियम* देता था।

पूर्ण नागरिकता अधिकार वाले नागरिकों को राजनीतिक एवं वैधानिक अधिकार दोनों प्राप्त थे। निम्न नागरिकों या अर्ध-नागरिकों को सिर्फ वैधानिक अधिकार प्राप्त थे। वे रोमन मजिस्ट्रेट पद के लिए खड़ा नहीं हो सकते थे और न ही उसके लिए मतदान कर सकते थे। शुरू में जब लातीनियों को नागरिकता का अधिकार दिया गया तो उसका मतलब सिर्फ वैधानिक अधिकार था। इससे रोमनों और लातीनी समुदायों के बीच अंतर्विवाह हो सका और लातीनियों को पूर्ण स्वामित्व के साथ संपत्ति रखने की इजाजत मिली। रोमनों और दीगर लातीनियों के बीच इस अनोखे रिश्ते ने एक विशेष प्राधिकार *जस लैटी* (jus latti) या लातीनी अधिकार को जन्म दिया जिसके तहत लातीनी समुदाय रोमन *ज्यूरा प्राइवेटा* का इस्तेमाल कर सकते थे। बाद में रोम से बाहर रहने वाले लातीनी समुदायों के कुछ हिस्सों को राजनीतिक अधिकार भी सौंप कर उन्हें पूर्ण नागरिक बना दिया गया। इसकी शुरुआत अवश्य ही लातीनी समुदायों के शासक वर्गों से की गई होगी। जब रोमन ने मध्य इटली के ज्यादातर हिस्से को अपने नियंत्रण में ले लिया तो यह व्यवस्था कुछ इतालवी राज्यों में भी चलाई गई। जब किसी राज्य को रोम की समग्र निगरानी में एक स्वायत्त स्थानीय शासन की इजाजत दी जाती तो उसे *म्यूनिसिपियम* (municipium) कहा जाता था। *म्यूनिसिपियम* में आम तौर पर एक शहरी केंद्र होता था। बाद में इस शब्द ने 'मुक्त शहर' का अर्थ ग्रहण कर लिया। रोम *म्यूनिसिपियम* की विदेश नीति का संचालन करता था। उसे आदेशानुसार रोम को सैन्य सहयोग देना होता था। *म्यूनिसिपियम* को निम्न नागरिकता के अधिकार दिए गए थे। वैसे हो सकता है कि एक छोटी सी जमात को पूर्ण नागरिक बनाया गया हो। रोमन शासक वर्ग ने मध्य इटली के विजित क्षेत्रों के कुलीन वर्गों को रोमन राज्य के ढांचे में कुछ स्थान देकर उनके साथ गठबंधन स्थापित करने की कोशिश की। यह रुझान इटली के अन्य हिस्सों में भी देखी जा सकती है। यहां यह ध्यान में रखना चाहिए कि समूचे राज्य या समुदाय को पूर्ण नागरिकता के अधिकार

पाने के लिए उसे अपनी स्वायत्तता तज कर रोमन राज्य में पूरी तरह विलय करना पड़ता था।

समुदाय के साथ संबंधों के स्तर के आधार पर कुछ को पूर्ण नागरिक अधिकार दिए गए तो कुछ को निम्न नागरिक अधिकार। सरसरी तौर पर पूर्ण नागरिक अधिकार मुख्यत: मध्य इटली में खासतौर पर लातीनी इलाकों में केंद्रित थे। ऐसा शायद ही कभी हुआ कि रोम ने इस मुख्य क्षेत्र से बाहर किसी को पूर्ण नागरिक अधिकार दिया हो। इटली से बाहर तो किसी किस्म की नागरिकता प्रदान करने का कोई सवाल नहीं था। नागरिकता अधिकारों के संदर्भ में *जस लैटी* और *म्यूनिसिपियम* बुनियादी रूप से एक ही चीज को अर्थात निम्न नागरिकता अधिकार को इंगित करते थे। उनके और *सोशई इटालीसी* के बीच मुख्य फर्क यह था कि सामान्यतया सहयोगी क्षेत्रों के निवासियों के रोमन वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। तकनीकी रूप से *सोशई इटालीसी* रोमन राज्य के बाहर था जबकि लातीनी और *म्यूनिसिपिया* रोमन राज्य के एक अनन्य हिस्से थे।

रोमन नागरिकता की चर्चा के क्रम में हमें इटली में रोमन विस्तार के एक दूसरे पहलू की चर्चा करनी चाहिए। रोम विजित क्षेत्र को अपने में मिलाने के बाद कभी-कभी उस क्षेत्र में बसने के लिए रोमन नागरिकों के एक समूह को भेज देता था। नागरिकों के ये समूह विजित इलाके में एक रोमन बस्ती (*कालोनियां*) स्थापित करते थे। इस तरह की बस्तियां रोमन नियंत्रण सुनिश्चित करने के लिए गैरिसन के रूप में काम करती थीं। उन इलाकों के रोमन नागरिकों के पास पूर्ण नागरिकता अधिकार रहते थे जबकि स्थानीय निवासियों को निम्न नागरिक बनाया जाता था। कहा जाता है कि रोम शहर के मुख्य बदंरगाह ओस्टिया में सबसे पहले 300 रोमन नागरिकों की एक बस्ती बसाई गई थी। ओस्टिया की बस्ती के गैरिसन कार्यभार स्पष्ट एवं निर्धारित थे। तटरेखा की रक्षा के लिए समुद्र से लगे अनेक और बस्तियां स्थापित की गईं। 338 ईसापूर्व के बाद जब रोम ने लैटियम के बाहर विस्तार का कार्यक्रम चलाया, तब मध्य इटली में बड़े पैमाने पर बस्तियां स्थापित की गईं। यह नवविजित क्षेत्रों में रोमन शासन सुदृढ़ करने की रणनीति थी। रोमन बस्तियों के अलावा अनेक लातीनी बस्तियां थीं। वे कुछ हद तक भिन्न थीं। लातीनी बस्तियां अपेक्षाकृत बड़ी थीं। उनमें कुछ रोमनों के अलावा लातीनी क्षेत्रों के पूर्ण और अर्ध-नागरिक होते थे। लातीनी बस्तियां स्वायत्त स्वशासी इकाइयों में संगठित की गई थीं। लातीनी और रोमन बस्तियां अपनी सामरिक भूमिका निभाने के अतिरिक्त उन क्षेत्रों का लातीनीकरण का काम करतीं जहां वे स्थित थीं। उन्होंने इटली में रोमन संस्कृति और विचार फैलाने में मदद की। परवर्ती गणतंत्र में ये बस्तियां आकार में बड़ी होने लगीं जिनमें 5000 लोग तक रहते थे। अब इतालवी क्षेत्रों पर नियंत्रण के लिए बस्तियां बरकरार रखना जरूरी नहीं रह गया था। बस्तियां अब निर्धन हो गए किसानों को जमीन उपलब्ध कराने का रास्ता बन गई थीं। परवर्ती बस्तियां मध्य इटली तक ही सीमित नहीं थीं बल्कि इटली के अन्य हिस्सों में भी थीं। गाइयस ग्रेकस ने समुद्र पार पहली बस्ती

कार्थेज में स्थापित की थी। गणतंत्र के अंत तक इटली से बाहर, खासकर पश्चिम यूरोप (स्पेन, गॉल इत्यादि) में, बस्तियां स्थापित करना आम हो गया था। 100 ईसापूर्व के बाद अवकाशप्राप्त पेशेवर सैनिकों को उन बस्तियों में जमीनें दी गईं और उन्हें बसाया गया। इटली से बाहर की बस्तियां प्रांतों में अर्थात रोम के प्रत्यक्ष प्रशासन वाले क्षेत्रों में स्थापित थीं। इन बस्तियों की अपनी एक स्थानीय सरकार होती थी और नागरिकों को पूर्ण नागरिकता अधिकार हासिल रहते थे। लेकिन उनका राजनीतिक अधिकार महज एक औपचारिकता थी क्योंकि वे सभा में शरीक होने के लिए रोम की नियमित यात्रा नहीं कर सकते थे। फिर भी वे प्रांतों में रोमन नागरिकों के केंद्रक थे। बाद के सालों में इन बस्तियों के निवासी रोमन राज्य के उच्च पदों तक पहुंचे।

यह देखा जा सकता है कि रोमन नागरिकता बड़े चुनिंदा आधार पर दी गई थी और नागरिकता अधिकार देने के पीछे हमेशा कोई राजनीतिक-सैन्य लक्ष्य रहा था। जब तक इतालवी सहयोगियों को अपने अंदरूनी मामलों की देखरेख की आजादी दी गई और रोम उनके साथ की गई संधियों के प्रावधानों, खासकर सैन्य सहयोग से संबंधित प्रावधानों का सम्मान करता रहा, *सोशई* ने नागरिकता अधिकार नहीं मिलने पर कोई एतराज नहीं किया। स्वायत्तता के खात्मे और बढ़ते सैन्य बोझ के चलते सहयोगियों ने नागरिकता अधिकारों की मांग की। जब सीनेट ने यह मांग ठुकरा दी तो सहयोगियों ने रोम के खिलाफ हाथ मिला लिया। यह सोशल युद्ध की पृष्ठभूमि थी।

यह युद्ध एक समझौते पर खत्म हुआ। 90 ईसापूर्व में रोम ने पो नदी के दक्षिण में स्थित इटली के तमाम सहयोगी क्षेत्रों को पूर्ण नागरिकता प्रदान कर दी। यह टिप्पणी की गई है कि राजनीतिक अधिकार के संदर्भ में इटली के तमाम मुक्त निवासियों (सिस-अलपाइन गॉल को छोड़ कर) को नागरिकता अधिकार देने का बहुत ज्यादा अर्थ नहीं था और सिर्फ अभिजात्य वर्ग को उससे फायदा हुआ जिनकी राजनीतिक सत्ता तक सीमित पहुंच थी। ज्यादातर नागरिक सभा की कार्यवाहियों में शामिल होने के लिए रोम नहीं जा सकते थे और इस तरह वे अपने राजनीतिक अधिकारों का इस्तेमाल करने में अक्षम थे। यह कोमीशिया ट्राइबूटा और कौंसिलियम प्लेबिस के पतन का एक संकेत था। सभाओं की कार्यवाहियों पर रोम शहर में रहने वाला शहरी प्रोलतारियों के हुड़दंगी हुजूम का पूर्ण प्रभुत्व था जिनका इस्तेमाल अनेक मौकों पर कुलीन वर्गों ने सरकार का कामकाज बाधित करने में किया था।

रोमन गणतंत्र की सांविधानिक मशीनरी 90 ईसापूर्व आते-आते ध्वस्त होने के कगार पर पहुंच गई। सत्ता के अनेक केंद्रों के उभरने से भ्रम बढ़ा। सेना एक नए राजनीतिक कारक के रूप में उभरी। उसने रोम में शक्ति संतुलन बदल दी और टकरावों के नतीजे निर्धारित करने में एक निर्णयकारी भूमिका निभाने लगी। टकराव निरंतर हिंसक होते जा रहे थे जिनमें बड़े पैमाने पर खून-खराबा होता था। सोशल युद्ध ऐसे समय हुआ जब पश्चिम एशिया में एक बड़ा सैन्य अभियान चल रहा था। रोम यूनानवादी राज्यों को

अपने साम्राज्य का हिस्सा बनाने का कार्यक्रम जारी रखने के साथ ही पश्चिम एशिया में अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। मकदूनिया का विलय हो गया था, यूनानी राज्यों को रोमन श्रेष्ठता स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया गया था, सीरिया के शासकों को परास्त किया जा चुका था और मिस्र एक संरक्षित राज्य बनाया जा चुका था। पश्चिमी अनातोलिया अभी हाल ही में एशिया के प्रांत के रूप में संगठित किया गया था। लेकिन रोमनों को अनातोलिया में पोंटस राज्य के शासक से जबर्दस्त चुनौती मिली। शुरू में रोम और पोंटस के संबंध अच्छे थे। पोंटस ने मकदूनियाई युद्धों और तीसरे प्यूनिक युद्ध में रोम का समर्थन किया था। लेकिन जब पोंटस के राजा मिथ्रीडाटेज षष्टम ने पश्चिमी अनातोलिया और यूनान में विस्तार करना शुरू किया तो दोनों के बीच रिश्ते खराब हो गए।

मिथ्रीडाटेज षष्टम ने अनातोलिया में रोमन विस्तार रोक दिया। पोंटस के मिथ्रीडाटेज षष्टम को उसी नाम के पार्थियाई शासकों के साथ घाल-मेल नहीं करना चाहिए। यह नाम मिथ्र की पूजा के साथ जुड़ा था जो पश्चिम एशिया में प्रचलित थी और इस क्षेत्र के अनेक शासकों ने मिथ्रीडाटेज की उपाधि ग्रहण की थी। पार्थियाई ईरान और मेसोपोटामिया के कुछ हिस्सों पर राज करते थे। मिथ्रीडाटेज प्रथम ने एक बड़ा पार्थियाई साम्राज्य स्थापित किया था। उसका उत्तराधिकारी मिथ्रीडाटेज द्वितीय पोंटस के मिथ्रीडाटेज षष्टम का समकालीन था। मिथ्रीडाटेज षष्टम के साथ संघर्ष का परवर्ती काल पार्थियाई राजा मिथ्रीडाटेज द्वितीय और उसके उत्तराधिकारियों के खिलाफ रोमन अभियान के साथ मिलता है जो कुछ हद तक भ्रामक हो सकता है।

रोम को मिथ्रीडाटेज षष्टम से तीन युद्ध (मिथ्रीडैटिक युद्ध) लड़ने पड़े, तब कहीं जाकर 63 ईसापूर्व में उसे परास्त किया जा सका। सोशल युद्ध के बाद रोमन सेनाएं मिथ्रीडैटिक युद्धों में लगीं। पश्चिम एशिया में सैन्य अभियान के स्तर के मद्देनजर रोम को पूर्व में एक बहुत बड़ी सेना भेजनी पड़ी। इस विशाल सेना की कमान को लेकर रोम के राजनीतिक और सैनिक नेताओं के बीच मतभेद हो गया। मिथ्रीडाटेज के खिलाफ अभियान की कमान मारियस को सौंपी गई थी जो कई बार कौंसल रह चुका था और एक योग्य सैनिक नेता था। मारियस का विरोध सुल्ला ने किया जो उस समय पैट्रिशियन कुलीन वर्ग के सर्वाधिक रूढ़िवादी और गरीब-विरोधी गुट का नेतृत्व कर रहा था। यह वही गुट था जिसने *सोशई* को नागरिकता प्रदान किए जाने से रोक दिया था। उसके कारण सोशल युद्ध छिड़ा था। सोशल युद्ध के अंत में सुल्ला पूर्व में तैनात था। उसे पूर्वी सेनाओं की कमान मारियस को सुपुर्द करने को कहा गया। लेकिन उसने इनकार कर दिया। उसकी जगह उसने सेना के साथ रोम का रुख किया और वहां बलपूर्वक सत्ता हथियाने की कोशिश की।

सुल्ला और मारियस के बीच एक गृहयुद्ध (88-82 ईसापूर्व) छिड़ गया। इस गृहयुद्ध

में सुल्ला का पलड़ा भारी रहा। 86 ईसापूर्व में मारियस का निधन हो गया। इसने सुल्ला का काम आसान कर दिया। सुल्ला ने उसके बाद पोंटस के खिलाफ युद्ध छेड़ा। वह मिथ्रीडाटेज को यूनानी राज्यों से हटाने में सफल रहा जहां वह (मिथ्रीडाटेज) कब्जा जमाए था। इस सफलता ने सुल्ला की प्रतिष्ठा बढ़ाई और सेना पर उसकी पकड़ मजबूत की। उसने इस शक्ति का इस्तेमाल एक निरंकुश शासक बनने में किया। 82 ईसापूर्व में सुल्ला रोम लौटा। उसने सेना की मदद से गृहयुद्ध खत्म करा दिया। सुल्ला ने अपने विरोधियों का बड़ी निर्ममता से दमन किया। 81 ईसापूर्व में वह तानाशाह नियुक्त हुआ। सुल्ला ने इस नियम का उल्लंघन किया जिसके तहत कोई रोमन तानाशाह महज छह माह की अधिकतम अवधि तक ही पद ग्रहण कर सकता था। उसने अपना कार्यकाल अनिश्चित अवधि के लिए बढ़ा दिया। तमाम राजनीतिक और सैनिक सत्ता सुल्ला के हाथों में केंद्रित हो गई थी और उसका प्राधिकार सर्वोपरि था।

सुल्ला की तानाशाही 81 से 79 ईसापूर्व तक चली। 79 ईसापूर्व में उसने निजी कारणों से अवकाश ग्रहण कर लिया। अगले वर्ष उसका निधन हो गया। उसकी तानाशाही रोमन गणतंत्र के इतिहास का एक संधिकाल थी। उसके बाद से रोमन गणतंत्र के भाग्य का फैसला दबंग और शक्तिशाली सैन्य कमांडरों के हाथों होने लगा जिन्हें डी. डडले (*रोमन सोसाइटी*) 'युद्धनेता' (warlord) कहते हैं। इन युद्धनेताओं के हिंसक टकरावों ने गणतंत्र के पतन को गति दी। सुल्ला की तानाशाही के दौरान पैट्रिशियन कुलीन वर्ग मजबूत हुआ। सुल्ला सीनेट के प्लीबियन नेताओं से बड़ी बेरहमी से निबटा। उसने उन तमाम लोगों के खिलाफ एक आतंक राज स्थापित कर दिया जो गणतंत्र के ढांचे को ज्यादा लोकतांत्रिक और व्यापक बनाना चाहते थे। पिछले कुछ दशक के दौरान लोकतांत्रिक शक्तियों ने जो पाया था, सब खत्म हो गया। ट्रिब्यूनों की शक्ति सीमित कर दी गई और नागरिकों की सभाओं को नजरअंदाज किया गया। सुल्ला सीनेट की प्रतिष्ठा बहाल करना चाहता था। सीनेट की सीटें 300 से बढ़ा कर 600 कर दी गईं। इसने प्लीबियन सीनेटरों की स्थिति कमजोर कर दी और साथ ही कुलीन वर्गों (इसमें अब इतालवी सहयोगियों के अभिजात्य भी शामिल हो गए थे जिन्हें नागरिकता अधिकार मिल चुका था) की जोरदार उपस्थिति हो गई। जनगणना गणतांत्रिक संस्थाओं में नागरिकों का स्थान निर्धारित करने का एकमात्र उपाय थी। उसे दरकिनार कर दिया गया और सेंसर का रुतबा घटा दिया गया। सुल्ला ने मुफ्त अनाज वितरण की व्यवस्था भी खत्म करा दी जिससे बेसहारा नागरिकों को बहुत कष्ट पहुंचा।

सुल्ला के ये उपाय गणतंत्र के राजनीतिक संकट के दीर्घकालीन हल नहीं बन सकते थे। उसके निधन के बाद उसके ज्यादातर नियम-कायदे उलट दिए गए। 80 और 70 ईसापूर्व के दशक में सैन्य स्थिति नाजुक हो गई थी। पूर्व में मिथ्रीडैटिक युद्ध जारी थे जबकि रोम को अब पश्चिम में अपने साम्राज्य की रक्षा करनी थी। मारियस के कुछ

समर्थकों ने सुल्ला की तानाशाही के खिलाफ एक आंदोलन छेड़ा था। स्पेन का प्रांत विद्रोह का केंद्र बिंदु बन गया था। क्वींटियस सर्टोरियस के नेतृत्व में आंदोलन एक छापामार युद्ध के रूप में विकसित हुआ। 80 और 72 ईसापूर्व के बीच स्पेन रोम से लगभग अलग हो गया। सर्टोरियस को प्राचीन यूनानी रोमन जगत का सबसे शानदार छापामार नेता माना जाता है। 73 ईसापूर्व में खुद इटली में एक जबर्दस्त गुलाम विद्रोह शुरू हो गया जो 71 ईसापूर्व तक चला। थ्रेसियाई गुलाम स्पार्टाकस के नेतृत्व में छिड़ा यह विद्रोह रोमन इतिहास का सबसे बड़ा गुलाम विद्रोह है और उसे स्पार्टाकस विद्रोह के नाम से जाना जाता है। स्पार्टाकस विद्रोह सिसिली से शुरू हुआ और जल्द ही दक्षिण इटली में फैल गया। 71 ईसापूर्व में भीषण लड़ाई के बाद इस विद्रोह को कुचल दिया गया।

मिथ्रीडाटेज षष्टम, सर्टोरियस और स्पार्टाकस के खिलाफ अभियान के लिए एक अभूतपूर्व पैमाने पर सैन्य गोलबंदी की जरूरत पड़ी। प्लीबियन अभिजातों के समर्थन के बगैर इस तरह की गोलबंदी असंभव थी। सुल्ला के बाद के काल में प्लीबियन कुलीनों ने फिर से अपना प्रभाव जताया जिससे गणतंत्र के आंतरिक राजनीतिक संघर्ष को हल करना और भी मुश्किल हो गया। उसके अलावा उस काल के सैनिक अभियानों ने चार युद्धनेताओं को रोमन राजनीति में आगे ला दिया। ये चार युद्धनेता थे लुकलस, क्रैसस, पांपी और जूलियस सीजर। उनके सत्ता संघर्ष गणतंत्र के अंतिम सालों के दौरान छाए रहे।

उन चारों में से क्रैसस और पांपी ने सुल्ला के समर्थक के बतौर अपना राजनीतिक जीवन शुरू किया था। लेकिन बाद में सुल्ला के अनेक फैसलों को रद्द कराने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे रोमन राज्य पर सीनेट को एकाधिकार स्थापित करने देने के खिलाफ थे। उन युद्धनेताओं ने अपनी कमान वाली सेना और विजय अभियानों से प्राप्त प्रतिष्ठा से शक्ति अर्जित की थी। पांपी ने सर्टोरियस को परास्त किया था, क्रैसस ने स्पार्टाकस विद्रोह दबाया था और लुकलस ने अस्थायी रूप से मिथ्रीडाटेज षष्टम को नियंत्रित किया था। 70 ईसापूर्व में क्रैसस और पांपी ने उस साल के लिए कौंसल निर्वाचित होकर अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत की। जूलियस सीजर को स्पेन में सर्टोरियस की हार के बाद वहां रोमन शासन बहाल करने के लिए भेजा गया था। लुकलस अब भी अनातोलिया में था क्योंकि मिथ्रीडाटेज को पोंटस से खदेड़े जाने के बावजूद रोमन सेना में गदर के कारण वह (मिथ्रीडाटेज) अपना ज्यादातर क्षेत्र वापस लेने में सफल रहा था।

लुकलस को 67 ईसापूर्व में पूर्व से वापस बुला लिया गया। वह उसके बाद सार्वजनिक जीवन से हट गया। इससे तीन युद्धनेता—क्रैसस, पांपी और जूलियस सीजर मैदान में बचे। पांपी को मिथ्रीडाटेज के खिलाफ रोमन सेना के अभियान का नेतृत्व करने पूर्व भेज दिया गया। पांपी को एक कानून *लेक्स मैनीलिया* (lex manilia) के तहत व्यापक अधिकार सौंपे गए (66 ईसापूर्व)। *लेक्स मैनीलिया* के तहत पांपी को जो अधिकार और शक्तियां मिली थीं, उससे पहले किसी सैनिक कमांडर को हासिल नहीं थी। लुकलस

की कमान भी उसकी कमान में शामिल कर दी गई थी। उसे पूर्ण अधिकार दिया गया था कि वह जैसा बेहतर समझे, पूर्व का मामला निबटाए। पांपी ने 63 ईसापूर्व में मिथ्रीडाटेज को एक निर्णयकारी शिकस्त दे दी। पोंटस को रोम के प्रति वफादारी जताने वाले सरदारों के बीच बांट दिया गया। अनातोलिया पर रोमन प्रभुत्व और श्रेष्ठता स्थापित करने के बाद पांपी ने सीरिया स्थित सेल्यूकस के वंशजों के क्षेत्रों का विलय रोम में करा दिया। हम पहले ही देख चुके हैं कि एंटीओकस तृतीय के बाद सेल्यूकस के वंशजों का राज सीरिया तक सिमट गया था। रोमनों ने एंटीओकस तृतीय को परास्त किया था लेकिन यूनानवादी राज्य को बरकरार रहने दिया था। बाद में पश्चिम एशिया में पार्थियाई विस्तार ने सेल्यूकस वंश को उसके ज्यादातर क्षेत्रों से वंचित कर दिया। सेल्यूकस वंश के पास सिर्फ सीरिया बचा। वहां भी उनका शासन कमजोर था। 63 ईसापूर्व में पांपी ने सीरिया को रोमन साम्राज्य में मिलाकर उसे एक रोमन प्रांत बना दिया जिसका मुख्यालय एंटीओक में था। रोम अब पश्चिम एशिया की एक अग्रणी ताकत था।

पांपी पूर्व में अपनी जिम्मेदारियां पूरी कर 62 ईसापूर्व में रोम लौट गया। पांपी की वापसी से रोमन राजनीति में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। पांपी सुल्ला की तरह निरंकुश सत्ता स्थापित करने की स्थिति में पूरी तरह था। फिर भी उसने अपनी सेना भंग कर दी। रोम में इस प्रथा पर पारंपरिक रूप से अमल होता रहा था कि जब कोई जनरल किसी अभियान के बाद शहर में प्रवेश करता तो वह किसी सैन्य कमांडर के रूप में नहीं बल्कि एक निजी नागरिक की हैसियत से प्रवेश करता था। सुल्ला ने उस प्रथा का उल्लंघन किया था। लेकिन पांपी ऐसी कोई स्थिति नहीं पैदा करना चाहता था जिससे खून-खराबा हो। इसने सीनेट को पांपी की ताकत कतरने का मौका दिया। चूंकि पूर्व में किए गए पांपी के प्रशासनिक प्रबंध सीनेट की मंजूरी के अधीन थे, सीनेट ने उन मामलों में दखलअंदाजी करने की कोशिश की। इससे उन प्रबंधों को मंजूरी मिलने में विलंब हुआ।

पांपी और सीनेट के बीच तनाव बढ़ने पर पांपी ने सीनेट का विरोध करने के लिए दो अन्य युद्धनेताओं से हाथ मिला लिया। जूलियस सीजर 60 ईसापूर्व में स्पेन से लौटा था। 60 ईसापूर्व में क्रैसस, पांपी और जूलियस सीजर ने एक गठबंधन बनाया। इस गठबंधन को प्रथम त्रिशासक समूह (triumvirate) कहते हैं। त्रिशासक समूह का ऐतिहासिक महत्व हम उसी वक्त समझ सकते हैं जब हम महसूस करेंगे कि गणतंत्र की सांविधानिक मशीनरी तब तक ध्वस्त हो चुकी थी और रोम में कोई प्रभावी सरकार नहीं थी। पांपी, क्रैसस और जूलियस सीजर ने तमाम सत्ता को अपने हाथों में केंद्रित कर एक नया तजुर्बा शुरू किया। रोमन राज्य के तमाम अधिकार त्रिशासक समूह में केंद्रित थे। गणतंत्र की अन्य संस्थाओं को खत्म नहीं किया गया लेकिन उन्हें निष्प्रभावी बना दिया गया।

तीनों सैन्य नेताओं ने 60 ईसापूर्व में त्रिशासक समूह बनाकर सत्ता में हिस्सेदारी का एक औपचारिक समझौता किया था। 56 ईसापूर्व में उन्होंने इस समझौते का नवीकरण

किया। लेकिन 56 ईसापूर्व के बाद त्रिशासक समूह की समस्याएं शुरू हो गईं। क्रैसस को पूर्वी सेना की कमान सौंपी गई थी जहां उसने रोमन सीमा को सीरिया से आगे बढ़ाने की कोशिश की। उसे पार्थियाइयों के साथ युद्ध करना पड़ा जो उस समय ईरान और मेसोपोटामिया पर शासन कर रहे थे। रोमनों को एक बड़ी जर्बदस्त हार का सामना करना पड़ा जब 53 ईसापूर्व में पार्थियाइयों ने कार्रहार (उत्तरी मेसोपोटामिया स्थित हर्रान) युद्ध में उनकी सेना को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया। क्रैसस इस युद्ध में मारा गया। क्रैसस की मृत्यु ने त्रिशासक समूह का सत्ता संतुलन बिगाड़ दिया। इन घटना के कुछ साल तक जूलियस सीजर और पांपी में अनबन रही।

जूलियस सीजर को 58 ईसापूर्व में गॉल (आधुनिक फ्रांस और बेल्जियम) में रोमन सेना की कमान मिली थी। करीब एक दशक से सीजर गॉल में था। उसने रोमन साम्राज्य के लिए यह विशाल और उर्वर क्षेत्र जीत लिया। गॉल में सेल्टिक कबीले बसे थे जिन्होंने आल्पाइन पर्वत के बाद वाले क्षेत्रों में अपनी एक विशिष्ट संस्कृति विकसित की थी। यहां यह याद दिलाना प्रासंगिक होगा कि कुछ सेल्टिक गॉल उत्तरी इटली में आल्प्स और पो नदी के बीच भी बसे थे और इटली का यह हिस्सा सिस-अलपाइन गॉल के नाम से जाना जाता था। सेल्टिक आबादी का मुख्य इलाका आल्प्स से आगे था। सेल्टिक गॉल ने इस क्षेत्र को अपना नाम दिया और रोमन आम तौर पर आज के फ्रांस तथा बेल्जियम को गॉल के नाम से पुकारते थे। गॉल लोगों ने रोमन प्रभुत्व का जोरदार प्रतिरोध किया। उसने रोमन आक्रमण का मुकाबला करने के लिए सैन्य स्तर पर खुद को संगठित किया। गॉल का सबसे मशहूर नेता अरवर्नी कबीले का वर्सिंजतोरी था। 50 ईसापूर्व में कहीं जाकर जूलियस सीजर गॉल पर प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुआ।

जब सीजर ने गॉल को अधीन करने का अपना अभियान पूरा किया, पांपी के साथ उसके रिश्ते बेहद खराब हो चुके थे। पांपी को रोम का निरंकुश राजा बनने से रोकने के लिए सीजर ने अपनी सेना के साथ इटली मार्च करने का फैसला किया। 49 ईसापूर्व में रोम जाते हुए सीजर ने रूबीकोन नदी पार की। जब सिस-अलपाइन गॉल का क्षेत्र पुनर्गठित किया गया तो रूबीकोन नदी को दक्षिणी सीमा बनाया गया। आधिकारिक रूप से जूलियस सीजर की कमान रूबीकोन के उत्तर के इलाकों तक सीमित थी। उसे नदी पार कर अपनी सेना के साथ इटली खास में प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। लेकिन उसने इस प्रावधान को नजरअंदाज किया और सेना के साथ रोम की तरफ बढ़ा। दो सैन्यनेताओं के बीच एक छोटा गृहयुद्ध हुआ। 48 ईसापूर्व में पांपी की हार हो गई। वह मिस्र भाग गया जहां उसकी हत्या कर दी गई। जूलियस सीजर अब रोम का सर्वोच्च युद्धनेता था। 48 ईसापूर्व में वह व्यापक शक्तियों वाला एक तानाशाह बन बैठा। 47 ईसापूर्व में उसे दस साल के लिए तानाशाह बनाया गया। संभवत: यह राजशाही अधिकार हासिल करने की दिशा में एक कदम था। निरंकुश शासक बनने की सीजर की कोशिश को कुलीन वर्ग के कुछ

हिस्सों ने चुनौती दी। 44 ईसापूर्व में उसकी हत्या कर दी गई। सीजर की हत्या की साजिश में ब्रूटस और कैसियस शामिल थे। वे कुलीन वर्ग के उस गुट के थे जो गणतंत्र को राजशाही में बदलने से जूलियस सीजर को रोकना चाहता था। लेकिन यह शक करने की गुंजाइश है कि जूलियस सीजर गणतंत्र का बुनियादी ढांचा बदलना चाहता था।

जूलियस सीजर के समर्थक अब भी काफी शक्तिशाली थे। उन्होंने सीजर की हत्या के बाद हस्तक्षेप किया। वे मार्क एंटनी, लेपिडस और ऑक्टेवियन सीजर के नेतृत्व में पुनर्संगठित हुए। मार्क एंटनी सीजर का एक प्रमुख राजनीतिक सहयोगी था। लेपिडस सीजर के शासन में *मैजिस्टर एक्विटम* था। यह तानाशाह से जुड़ा एक पद था और उस पर सामान्यत: किसी बेहद वफादार व्यक्ति को नियुक्त किया जाता था। लेपिडस 46 ईसापूर्व में कौंसल भी रह चुका था। आक्टेवियन जूलियस सीजर का पोता था। आक्टेवियन की मां एटिया जूलियस सीजर की भतीजी थी। उसे जूलियस का गोद लिया बेटा माना जाता था।

मार्क एंटनी, लेपिडस और ऑक्टेवियन ने 43 ईसापूर्व में एक नया त्रिशासक समूह बनाया जिसे द्वितीय त्रिशासक समूह कहते हैं। एक साल के अंदर त्रिशासक समूह ने सभी विरोधियों को कुचल डाला। 42 ईसापूर्व में ब्रूटस और कैसियस एक युद्ध में परास्त कर दिए गए। त्रिशासक समूह में लेपिडस सबसे कमजोर था। उसे त्रिशासक समूह से अवकाश ग्रहण करने के लिए बाध्य किया गया। उसके बाद राजनीतिक सत्ता में साझेदारी के सवाल पर मार्क एंटनी और आक्टेवियन के बीच मतभेद हो गया। दोनों के बीच सत्ता संघर्ष ऐसे समय चल रहा था जब पूर्व में रोमन अभियान जारी थे। मार्क एंटनी ने क्लिओपेट्रा का समर्थन चाहा जो उस समय टालेमी वंश की मिस्र की शासक थी। 31 ईसापूर्व में आक्टेवियन ने मुख्य भूमि यूनान के पश्चिमी तट पर स्थित ऐक्टियम में मार्क एंटनी और क्लिओपेट्रा की संयुक्त सेना को परास्त कर दिया। 30 ईसापूर्व तक मार्क एंटनी और क्लिओपेट्रा की मृत्यु हो गई और आक्टेवियन समूचे रोमन साम्राज्य का सर्वोच्च शासक बन गया। 27 ईसापूर्व में आक्टेवियन ने *आगस्टस* (उदात्त) की उपाधि धारण कर खुद को *प्रिंसेप,* अर्थात राज्य का प्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ नागरिक घोषित किया। 27 ईसापूर्व औपचारिक रूप से गणतंत्र की समाप्ति और रोमन प्रिंसपेट की शुरुआत को रेखांकित करता है।

अध्याय नौ

प्राचीन रोम : दो

आक्टेवियन 27 ईसापूर्व के बाद आगस्टस सीजर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने रोमन राज्य का पूरा चरित्र बदल दिया। उसने जो परिवर्तन लागू किए वे सुल्ला, प्रथम त्रिशासक समूह, जूलियस सीजर और द्वितीय त्रिशासक समूह के उपायों के क्रम की अगली कड़ी थे। सुल्ला, प्रथम और द्वितीय त्रिशासक समूह की तानाशाही और सबसे बढ़कर जूलियस सीजर की तानाशाही ने रोमन गणतंत्र की संस्थाओं पर कुठाराघात किया था। आधी सदी के अंदर, अर्थात 81 और 31 ईसापूर्व के बीच इन संस्थाओं ने कमोबेश काम करना बंद कर दिया था और राजनीतिक सत्ता युद्धनेताओं के हाथों में सिमट गई थी। जूलियस सीजर ने अपने प्रमुख प्रतिद्वंद्वी पांपी को परास्त करने के बाद एक स्थायी तानाशाह बनने का प्रयास किया था। जूलियस सीजर की हत्या से यह तजुर्बा अधूरा रह गया। अगर सीजर कुछ और समय तक जिंदा रहता तो संभवत: उसकी तानाशाही की परिणति निरंकुश राजशाही में होती। उसकी हत्या के बाद भी राजनीतिक सत्ता उसके समर्थकों के हाथों में रही। जूलियस सीजर के प्रति वफादार सेना के समर्थन से तीन युद्धनेताओं, मार्क एंटनी,लेपिडस ओर आक्टेवियन, ने रोमन राज्य की सत्ता अपने हाथों में ले ली और दूसरे त्रिशासक समूह का गठन किया। बहरहाल आक्टेवियन नए त्रिशासक समूह के दो अन्य सदस्यों का सफाया करने में सफल रहा (लेपिडस को मारा नहीं गया बल्कि उसे जबरन अवकाश ग्रहण कराया गया), और 31 ईसापूर्व तक वह रोमन साम्राज्य का एकछत्र नेता बनकर उभर चुका था।

I

आगस्टस ने 14 ईसवी में अपनी मृत्यु तक, चार दशक तक *प्रिंसेप्स* की हैसियत से रोम पर राज किया। उसने जूलियस सीजर द्वारा शुरू की गई प्रक्रिया पूरी की और एक स्थार्यी तानाशाही स्थापित करने में सफल रहा जो राजशाही में विकसित हो गई। वह वहां सफल रहा जहां सुल्ला और जूलियस सीजर नाकाम रहे। आगस्टस ने एहतियात बरता और रोमन गणतांत्रिक परंपराओं के प्रति लोकभावनाओं को ठेस पहुंचाने से परहेज किया। इन परंपराओं का सदियों पुराना इतिहास रहा था और उसे तुरंत दरकिनार नहीं किया जा सकता था। आगस्टस ने बड़ी चतुराई से गणतंत्र का *बाहरी ढांचा* बरकरार रखा जबकि

उसका *वास्तविक स्वरूप* बदल दिया। गणतंत्र की ज्यादातर राजनीतिक संस्थाएं बनाई रखी गईं और सार्वजनिक पदाधिकारियों के ओहदे पहले की तरह बरकरार रखे गए। खुद आगस्टस को राजा (*रेक्स*) नहीं कहा जाता था। उसने कोई शाही उपाधि भी ग्रहण नहीं की थी। *प्रिंसेप्स* का मतलब महज प्रथम नागरिक था। दरअसल उसके समकालीनों को गुमान भी नहीं हुआ होगा कि रोम में राजशाही वजूद में आ रही है। आगस्टस के काल को एक ऐतिहासिक संदर्भ में रखकर ही हम उसके कदमों के निहितार्थ समझ सकते हैं और देख सकते हैं कि उसने कैसे गणतंत्र को राजशाही में तब्दील कर दिया।

शुरू में आगस्टस के नेतृत्व में रोम जाहिरी तौर पर गणतंत्र लगता था। उसकी मृत्यु तक रोम वास्तव में राजतंत्र बन चुका था। सीनेट को छोड़ कर गणतंत्र की दूसरी तमाम विशेषताएं बेकार हो चुकी थीं। गणतंत्र से राजशाही में संक्रमण की प्रक्रिया पूरी करने में वास्तव में कई पीढ़ियां लग गईं। एक लंबे समय तक आगस्टस के उत्तराधिकारियों ने लोगों में यह भ्रम बरकरार रखा कि गणतंत्र का खात्मा नहीं हुआ है। सिद्धांतत: सम्राट का प्राधिकार राज करने के दैवी अधिकार से संचालित नहीं होता था बल्कि नागरिकों की सहमति पर आधारित था। शासक गणतंत्र का मूर्त रूप था। व्यवहारत: इसका मतलब था कि शासक को सीनेट और सेना की मंजूरी करनी होती थी। इस बाबत कोई औपचारिक नियम-कायदा नहीं था लेकिन सीनेट और सेना से मिली मान्यता किसी सम्राट को वैधता देती थी और उसके शासन को अपेक्षाकृत स्थिर बनाती थी। इस तरह की व्यवस्था की शुरुआत आगस्टस ने मार्क एंटनी को हराने के बाद की थी।

गणतंत्र की सांविधानिक कार्यप्रणाली के ढह जाने ओर रोम में सत्ता के अनेक केंद्रों के उभरने के मद्देनजर एक समझौते का रास्ता बनाना जरूरी हो गया था जिसके तहत राज्य के हरेक अवयव को सत्ता में पर्याप्त भागीदारी मिल सके। सम्राट अर्थात आगस्टस, सीनेट में सत्तारूढ़ अल्पतंत्रवादी कुलीन वर्ग (जिसमें प्लीबियन अभिजात भी शामिल थे) और सेना नए राजनीतिक ढांचे के तीन प्रमुख अवयव थे। आगस्टस सत्ता के इन तीन केंद्रों के बीच उचित संतुलन बनाए रखने में और इस तरह गणतंत्र के अंतिम कुछ दशक से जारी अस्थिरता का लंबा दौर खत्म करने में सफल रहा।

यहां इस तथ्य पर जोर दिया जाना चाहिए कि एक वर्ग के रूप में सीनेट में सत्तारूढ़ कुलीन वर्ग (आगस्टस इसी वर्ग का था) इतना शक्तिशाली था कि उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था और हालांकि आगस्टस ने सीनेट के अधिकार सीमित कर दिए थे, उसे सरकार का एक महत्वपूर्ण अंग बने रहने दिया था। चूंकि सेना आगस्टस की सत्ता का मुख्य स्रोत थी, राज्य के मामलों में भी सैन्य नेतृत्व की अहम भूमिका थी। आगस्टस ने स्पष्ट कर दिया था कि सैन्य नेतृत्व पूरी तरह उसके मातहत है और वह रोमन सेना का सर्वोच्च सेनापति है। दो त्रिशासक समूहों की सत्ता के दौरान होने वाली हिंसक झड़पों ने दिखा दिया था कि सीनेट को निष्प्रभावी करने के उद्देश्य से बनाए गए सैन्य कमांडरों के

गठबंधन कितने खतरनाक हो सकते हैं। आगस्टस निरंकुश निजी सत्ता स्थापित करने के जूलियस सीजर के रास्ते पर चला। उसके अतिरिक्त मार्क एंटनी की हार के बाद रोमन साम्राज्य में ऐसा कोई सैनिक कमांडर नहीं था जो उससे टक्कर लेता।

आगस्टस का मुख्य उद्देश्य यथासंभव ज्यादा से ज्यादा सत्ता अपने हाथों में केंद्रित करना था। उसकी सरकार एक स्थायी सैनिक तानाशाही कही जा सकती है। गणतंत्र की सरकार मजिस्ट्रेटों और सैनिक कमांडारों को *इंपिरियम* (सर्वोच्च शक्ति) प्रदान करने की प्रणाली पर आधारित थी।*इंपिरियम* किसी अधिकारी को कार्यपालिका, न्यायपालिका या सेना से संबंधित काम करने के लिए प्रदत्त प्राधिकार था। *इंपिरियम* उच्चाधिकारियों को प्रदत्त किया जाता था और यह उन्हें अपने सांविधानिक दायित्वों के निर्वाह के लिए एक निश्चित दायरे में असीम अधिकार सौंपता था। *इंपिरियम* किसी कार्य विशेष के लिए दिया जाता था और यह हमेशा स्पष्ट कर दिया जाता था कि *इंपिरियम* किस अवधि और किस क्षेत्र के लिए वैध है। कौंसल का *इंपिरियम* एक साल के लिए होता था। कौंसल इसी *इंपिरियम* के माध्यम से अपनी शक्ति पाते थे। *प्रोकौंसलों* या प्रांतों के गवर्नरों को संबंधित प्रांतों के प्रशासन के लिए *इंपिरियम* प्रदान किया जाता था। इसी तरह किसी सैनिक कमांडर का *इंपिरियम* सैन्य अभियान के काल के लिए होता था। जब सैन्य अभियान का उद्देश्य पूरा हो जाता था तो *इंपिरियम* खत्म हो जाता था। सैनिक कमांडरों का *इंपिरियम* उनके सैन्य अभियानों की भौगोलिक सीमाओं को परिभाषित करता था। प्रथम त्रिशासक समूह के दौरान जूलियस सीजर को गॉल के लिए *इंपिरियम* मिला था। उसका *इंपिरियम* सिर्फ इटली की उत्तरी सीमाओं के पार ही वैध था। रूबीकोन नदी जूलियस सीजर के *इंपिरियम* की चौहद्दी को रेखांकित करती थी और 49 ईसापूर्व में उसने रूबीकोन पार की तो उसने अपने *इंपिरियम* का उल्लंघन किया।

गणतंत्र में एक ही समय एक साथ कई अधिकारियों के पास *इंपिरियम* होता था। हरेक अधिकारी का *इंपिरियम* उसके कार्यभार से जुड़ा होता था जो एक मजिस्ट्रेट या सैनिक कमांडर के रूप में उनसे अपेक्षित था। आगस्टस ने *इंपिरियम* को सिर्फ एक व्यक्ति तक अर्थात खुद तक सीमित कर दिया। *इंपिरियम* के स्वामी के रूप में उसे *इंपरेटर* या कमांडर की पदवी दी गई। उसके बाद से *इंपरेटर* शब्द *इंपिरियम* रखने वाले एक और एकमात्र व्यक्ति का सूचक बन गया। आगस्टस का *इंपिरियम* अनिश्चित काल के लिए था और वह पूरे साम्राज्य में वैध था। वह एकमात्र सैनिक कमांडर था जिसके पास *इंपिरियम* था। कौंसलों के चुनाव का सिलसिला जारी रहा। लेकिन उन्हें *इंपिरियम* से वंचित कर दिया गया। कौंसिलियम प्लेबिस की मंजूरी से ट्रिब्यूनों की शक्तियां आगस्टस को हस्तांतरित कर दी गईं।

आगस्टस ने प्रांतों को अपने और सीनेट के बीच बांट दिया। उसने सीनेट से गॉल, स्पेन और सीरिया प्रांतों पर 10 साल के लिए एकछत्र नियंत्रण देने की मांग की । बाकी

प्रांत सीनेट के प्रत्यक्ष प्रशासन में थे। आगस्टस मिस्र पर पहले से शासन कर रहा था। मिस्र प्रांत अंतत: आगस्टस की एक निजी जागीर बन गया। गॉल, सीरिया और मिस्र एकदम हाल में रोमन साम्राज्य में शामिल किए गए थे। उन्हें अभी ठीक ढंग से संगठित करना बाकी था। स्पेन सर्टोरियस के विद्रोह के समय से एक अशांत क्षेत्र था और उसे हल करना बाकी था। आगस्टस उन तमाम प्रांतों में प्रशासन का बुनियादी ढांचा खड़ा करने के काम में जुट गया। मिस्र, गॉल, स्पेन और सीरिया पर नियंत्रण ने आगस्टस को अकूत वित्तीय संसाधन मुहैया कराया जो उसकी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए जरूरी था। उसके अलावा उसने सीनेट के प्रशासन वाले प्रांतों में हमेशा दखलअंदाजी की। उन प्रांतों में नियुक्तियां सम्राट की सहमति से करनी पड़ती थी। आगस्टस ने उसका इस्तेमाल प्रमुख पदों पर अपने वफादार लोगों को बैठाने में किया।

चूंकि सम्राट के पास अपनी कोई प्रशासनिक प्रणाली नहीं थी, आगस्टस ने एक राजकीय नौकरशाही विकसित की। यह नौकरशाही सिर्फ सम्राट को जवाबदेह थी और अपने प्राधिकार के लिए उस पर आश्रित थी। आगस्टस के नौकरशाह मुख्यत: अश्वारोहियों के बीच से भर्ती किए गए थे। अश्वारोही रोमन समाज में एक विशिष्ट वर्ग थे जिसे मोटे तौर पर गैर-सीनेट आभिजात्य वर्ग (पैट्रिशियन और प्लीबियन दोनों) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह वर्ग गणतंत्र के परवर्ती काल में वजूद में आया। इन अश्वारोहियों की उत्पत्ति शुरुआती गणतंत्र के *एक्विटेज* से हुई। कोमीशिया सेंच्यूरियाटा के पांच वर्गों में से एक का गठन *एक्विटेज* के रूप में हुआ था। शुरू में वे धनी पैट्रिशियन थे जिन्होंने घुड़सवार सेना में काम किया था और अपने खर्च पर घोड़े का भरण-पोषण करते थे। बाद में घुड़सवार सेना का विस्तार हुआ और रोमन राज्य उसके एक हिस्से का वित्तपोषण करने लगा। इन वेतनभोगी अश्वारोहियों में से कुछ धनी प्लीबियन थे और उन्हें भी *एक्विटेज* में शामिल कर लिया गया था। परवर्ती गणतंत्र में *एक्विटेज* का पुनर्गठन किया गया और सीनेटरों को इस वर्ग से हटा दिया गया। उस समय तक घुड़सवार सेना रोमन सैन्य संगठन का कोई महत्वपूर्ण हिस्सा नहीं रही थी और अश्वारोही, अर्थात *एक्विटेज* वर्ग के सदस्य अब समाज के सुविधा संपन्न समूह थे और कोई धनी एवं प्रभावशाली व्यक्ति उसमें शामिल हो सकता था। कोमीशिया क्यूरियाटा के पतन के साथ अश्वारोही गैर-सीनेट अभिजातों से बने एक सामाजिक वर्ग के रूप में उभरे। आगस्टस ने अपनी नौकरशाही के निर्माण के लिए बड़ी हद तक इस वर्ग पर भरोसा किया।

आगस्टस ने परवर्ती गणतंत्र में सृजित सरकारी पदों में अपनी जरूरत के हिसाब से उलट-फेर किया। उसने रोम में व्यवस्था स्थापित करने और यह सुनिश्चित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी कि प्लीबियन हुजूम शहर में दंग-फसाद नहीं करें। उसके अलावा ऐसे कदम उठाने थे जिससे अल्पतंत्रवादी कुलीन वर्गों को शहर पर कब्जा करने से रोका जा सके। एक्टियम युद्ध के बाद रोमन सेना प्रांतों में और साम्राज्य की सीमाओं पर तैनात

थी। आगस्टस ने रोम की रक्षा के लिए सेना को इस्तेमाल करने के बजाए एक विशेष सशस्त्र बल का गठन किया जिसे प्रिटारियन गार्ड कहा जाता था। प्रिटारियन गार्ड के केंद्र में शाही अंगरक्षक थे। परवर्ती गणतंत्र में सैनिक कमांडरों ने आमतौर पर अपने कैंप मुख्यालयों (प्रिटारियन) पर अंगरक्षक तैनात किए। ये निजी अंगरक्षक प्रिटारियन गार्ड्स (कोहोर्स प्रिटारिया) के रूप में जाने जाते थे। आगस्टस ने उच्च प्रशिक्षित एवं वफादार सशस्त्र टुकडियां शामिल कर अपने प्रिटारियन गार्ड्स का विस्तार किया था और नौ दस्ते गठित किए। दस्ते पैदल सेना की टुकड़ियां होते थे जिनमें से हरेक में सामान्य रूप से छह शतियां (600 सैनिक) होती थीं। प्रिटारियन गार्ड्स के दस्तों की संरचना को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। उनका आकलन एक प्रिटारियन दस्ते में 500 से लेकर 1000 सैनिकों के बीच का है।

आगस्टस के नौ प्रिटारियन दस्तों में से तीन रोम के क्षेत्र में तैनात थे जबकि बाकी छह इर्द-गिर्द के शहरी केंद्रों में तैनात थे। शुरू में सम्राट खुद ही प्रिटारियन गार्ड्स का प्रभारी था लेकिन 2 ईसापूर्व में उन्हें एक प्रीफेक्ट (प्रशासक) की कमान में दे दिया गया। बाद में प्रीफेक्ट की संख्या बढ़ा कर तीन कर दी गई। राजधानी में अपने निर्णायक महत्व के कारण प्रिटारियन गार्ड्स आगस्टस के बाद रोमन राजनीति का एक घटक बन गए। कभी-कभी वे इतने शक्तिशाली हो गए कि उन्होंने अपने पसंद के व्यक्ति को सम्राट नियुक्त किया। वे अच्छी तरह हथियारबंद थे और युद्धकौशल में अत्यंत पारंगत थे। इसलिए उन्हें नजरअंदाज करना मुश्किल था।

रोम में शांति बनाए रखने की संपूर्ण जिम्मेदारी एक मजिस्ट्रेट को सौंपी गई थी जिसे '*प्रिफेक्टस उर्बी*' कहते थे। यह पद प्राक्-गणतंत्र काल से वजूद में था। जब भी कोई रोमन राजा शहर से बाहर जाता, एक *प्रिफेक्टस उर्बी* उसके प्रतिनिधि के बतौर नामित किया जाता और वह सरकार का अस्थायी भार संभाला करता। गणतंत्र में इस तरह का अधिकारी तब नियुक्त किया जाता था जब दोनों कौंसल अनुपस्थित होते थे। *प्रिफेक्टस उर्बी* का पद अप्रचलित हो गया था। आगस्टस ने उसे पुनरुज्जीवित किया। उसके समय में यह एक स्थायी पद बन गया। उसे राजधानी में गड़बड़ी और अशांति रोकने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। *प्रिफेक्टस उर्बी* हमेशा कोई अग्रणी सीनेटर होता था। एक पुलिस बल उसकी सहायता करता था। आगस्टस ने पहली बार इस बल का गठन किया था। लेकिन प्रिटारियन गार्ड्स *प्रिफेक्टस उर्बी* के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते थे। आगस्टस के उत्तराधिकारियों के दौर में *प्रिफेक्टस उर्बी* एक ऐसा अधिकारी बन गया जिसके माध्यम से अन्य मजिस्ट्रेट सम्राट से संवाद स्थापित करते थे। आगस्टस ने अतिरिक्त पुलिस बल के रूप में *विजिलेज* (vigiles) या रात्रि प्रहरियों के सात दस्ते गठित किए थे । उन्हें एक अलग प्रीफेक्ट के मातहत रखा गया था जो सीधे सम्राट को जवाबदेह था। विजिलेज को अन्य कार्यभार के अतिरिक्त रोम में अग्निशमन की जिम्मेदारी सौंपी गई थी।

शहर में असंतोष को नियंत्रण योग्य सीमा में बनाए रखने के लिए गरीब नागरिकों के बीच खाद्यान्नों का मुफ्त वितरण जरूरी था। मुफ्त खाद्यान्न पाने के हकदार लोगों की संख्या जूलियस सीजर ने 3,20,000 (देखें अध्याय आठ) से घटा कर 2,50,000 कर दिया था। पी.ए. ब्रंट के अनुसार यह संख्या फिर बढ़कर 5 ईसापूर्व तक 3,20,000 पहुंच गई थी। इतने बड़े पैमाने पर खाद्यान्नों के नियमित वितरण के लिए खाद्यान्न आपूर्ति एवं भंडारण की एक प्रभावी प्रणाली जरूरी थी। एक विशाल साम्राज्य का स्वामी होने के कारण रोमन राज्य अपनी राजधानी के लोगों का पेट भरने के लिए भारी मात्रा में खाद्यान्न जुटा सका। आगस्टस ने समूची प्रणाली को चुस्त-दुरुस्त बनाया। अफ्रीका का प्रांत रोम के लिए अनाज का मुख्य आपूर्तिकर्ता बना। प्रशासन की एक अलग शाखा सार्वजनिक वितरण प्रणाली की देख-देख करती थी। एक अलग प्रीफेक्ट *प्रिफेक्टस ऐनोनी* (prafectus annonae) उसका प्रमुख था। परवर्ती गणतंत्र काल में जनगणना अनियमित हो गई थी और सुल्ला के बाद तो लगभग बंद हो गई थी। आगस्टस ने उसे नियमित किया। आगस्टस के शासनकाल में तीन बार जनगणना हुई। ये जनगणनाएं नागरिकों की सूची तैयार करने और उनकी दौलत तथा संपत्ति के बारे में सूचनाएं उलब्ध कराने में उपयोगी थी। मुफ्त रसद पाने की योग्यता जनगणना से निर्धारित हुई।

आगस्टस ने सभा को दरकिनार नहीं किया, बल्कि उसका इस्तेमाल अपनी कार्रवाइयों और क्रियाकलापों को वैधता दिलाने में किया। शुरू में आगस्टस ने अपने प्रति जनसमर्थन जताने के लिए सभा की मंजूरी चाही। कोमीशिया ट्राइबूटा की बैठकें समय-समय पर होती थीं। लेकिन आगस्टस के अधिकारी उन बैठकों को बड़ी कड़ाई से नियमित करते थे। नागरिकों से महज यही अपेक्षा की जाती थी कि वे पेश प्रस्तावों या उम्मीदवारों की सूची का समर्थन कर सहमति जताएंगे। मतविभाजन की औपचारिक प्रक्रियाओं पर अब अमल नहीं होता था और आगस्टस के शासनकाल के अंतिम चरण में कोमीशिया ट्राइबूटा की बैठकें कभी-कभार ही होने लगीं। सभा के ज्यादातर विधायी कार्य धीरे-धीरे सीनेट को सुपुर्द कर दिए गए। आगस्टस ने सीनेट के सदस्यों की संख्या कम कर सुधार प्रक्रिया चलाई। उल्लेखनीय है कि सुल्ला ने सीनेट के सदस्यों की संख्या 300 से बढ़ाकर 600 कर दी थी। जूलियस सीजर के दौर में यह संख्या बढ़कर 900 तक पहुंच गई थी। आगस्टस ने पहले यह संख्या घटा कर का 800 की, फिर अंततः 600 कर दी। उसके अतिरिक्त सम्राट अपने अधिकारियों के माध्यम से सीनेट की कार्रवाइयां नियंत्रित करता था।

आगस्टस ने नए क्षेत्र जीतने के बजाए साम्राज्य को सुदृढ़ करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया। आगस्टस के शासनकाल में मिस्र के विजय के बाद साम्राज्य का कोई उल्लेखनीय विस्तार नहीं हुआ। जैसा कि हम जानते हैं कि मिस्र, सीरिया, गॉल और स्पेन के प्रांत सम्राट के सीधे अधीन थे। मिस्र और सीरिया में पहले से ही सुव्यवस्थित प्रशासनिक ढांचे थे। इन प्रांतों में आगस्टस का मुख्य कार्यभार रोमन प्रभाव सुदृढ़ करना

और वहां से रोम को मिलने वाले करों के प्रवाह को सुगम बनाना था। मिस्र को सम्राट की निजी जागीर समझा जाता था। सम्राट ने अपनी तरफ से शासन चलाने के लिए एक अधिकारी *प्रिफेक्टस इजिप्टी* (praefectus aegypti) नियुक्त किया था। आगस्टस ने पार्थियाइयों के साथ सैन्य टकरावों की नीति त्याग कर सीरिया के पूर्वी सरहद सुदृढ़ किए। उसने पार्थियाई क्षेत्रों में अपना विस्तार करने की जगह उस समय मौजूद सीरिया की सीमा सुदृढ़ करने में ध्यान केंद्रित किया।

स्पेन रोम के सबसे पुराने प्रांतों में से एक था। सर्टोरियस के नेतृत्व में हुए विद्रोह के बाद से स्पेन उथल-पुथल के एक लंबे दौर से गुजरा। आगस्टस ने प्रांत के प्रशासन का पुनर्गठन किया और उस क्षेत्र में बसने वाले कबीलों पर प्रभुत्व स्थापित किया। अब तक स्पेन में रोम की मौजूदगी उन्हीं इलाकों तक सीमित थी जो भूमध्यसागर से लगे थे। आगस्टस ने स्पेन के उत्तरी और पश्चिमी भागों में रोमनों को बसाने की नीति शुरू की। स्पेन में नए उपनिवेश स्थापित किए गए और जमीन के एक बड़े हिस्से में खेती शुरू की गई। यह नीति गॉल में भी लागू की गई। विशाल भूखंडों वाले जायदाद स्पेन और गॉल में वजूद में आए जिन्हें लैटीफुंडिया (latifundia) कहते थे। इस काल में गॉल में नए शहरी केंद्रों का विकास हुआ। गैरिसन नगर, प्रशासनिक शहरी केंद्र और रोमन आबादकारों की बस्तियां ऐसे बिंदु बनीं जहां से स्पेन और गॉल के ग्रामांचलों में लातीनी संस्कृति का प्रचार-प्रसार होता था। आगस्टस ने साम्राज्य के पश्चिम प्रांतों के लातीनीकरण को जोर-शोर से बढ़ावा दिया।

स्पेन और गॉल में रोमन/लातीनी संस्कृति को बढ़ावा देने का असर पश्चिमी भूमध्य सागरीय क्षेत्र में स्थित रोम के अधीनस्थ अफ्रीकी क्षेत्रों पर पड़ा। अफ्रीका का प्रांत लातीनी संस्कृति का एक प्रमुख केंद्र था। उससे और आगे पश्चिम में स्थित मौरिटानिया (आधुनिक मोरक्को) उसके शासक जुबा द्वितीय के प्रयासों से लातीनीकृत हुआ। जुबा द्वितीय रोम के अधीन था। उसने एक लंबा समय रोम में बिताया था तथा आगस्टस के साथ उसका निजी और करीबी रिश्ता था। पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में यूनानी और यूनानवादी परंपराएं सर्वोपरि बनी रहीं। आगस्टस के शासन में अलेक्जैंड्रिया और एंटीओक के महान यूनानवादी नगर फलते-फूलते रहे। आगस्टस ने प्राचीन यूनानी शहरों में स्थानीय अभिजात्य वर्ग को ज्यादा स्वायत्तता दी और उस तरह पोलिसों के नगरीय प्रशासन और नागरिक जीवन में सुधार किया।

मिस्र और सीरिया के विलय से समूचा भूमध्यसागरीय क्षेत्र रोमन शासन के अधीन हो गया। भूमध्यसागरीय क्षेत्र के एकीकरण ने लंबी दूरी के सामुद्रिक व्यापार को बढ़ावा दिया। साम्राज्य में शांति की स्थापना ने भूमध्यसागरीय क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों के बीच आदान-प्रदान में मदद की। भूमध्यसागर में रोमन सेना की मजबूत मौजूदगी ने समुद्री डाकुओं की रोकथाम में मदद की जो पहले अकसर सामुद्रिक व्यापार में बाधा पहुंचाते थे।

आगस्टन युग की जबर्दस्त बौद्धिक गतिविधियों ने क्लासिकी लातीनी साहित्य की बुनियाद रखी। यह लातीनी लेखन का स्वर्णयुग था और इसने लातीनी भाषा के सर्वोत्कृष्ट कवि दिए। तीन महान क्लासिकी कवियों वर्जिल, होरस और ओविड ने अपनी प्रमुख रचनाएं प्रिंसिपेट की शुरुआत में की। वर्जिल (70-19 ईसापूर्व) को आमतौर पर तीनों में महानतम माना जाता है। उसने एक महाकाव्य रचा जो *ईनीड* (Aeneid) के नाम से जाना जाता है। इसकी शुरुआत 30 ईसापूर्व में आगस्टस की निर्णायक जीत के बाद हुई। *ईनीड* में ईनियास (Aeneas) के अभियानों की गाथा है जिसने ट्राय के राजा की बेटी क्रियूसा से शादी की थी। माना जाता है कि ट्रोजन युद्ध में ट्राय की हार के बाद वह शहर से निकल भागा था। वह इटली पहुंचा और वहां राजा बन गया। ईनियास एक मिथकीय चरित्र था और यह माना जाता था कि रोमन सम्राट उसके वंशज थे। *ईनीड* दुनिया को सभ्य बनाने की रोमन नागरिकों की ऐतिहासिक नियति की चर्चा करती है। महाकाव्य में रोमन अतीत का गुणगान किया गया है और आगस्टन युग के आगमन पर खुशी सी जताई गई है। दुर्भाग्यवश वर्जिल के निधन के समय यह कृति अधूरी रही। इस युग की समृद्ध काव्यरचना के अतिरिक्त प्रिंसिपेट की शुरुआत में रोम का एक उल्लेखनीय ऐतिहासिक विवरण भी लिखा गया। प्राचीन रोम के अग्रणी इतिहासकार लिवी ने रोमन गणतंत्र और आगस्टस के शासन के पहले चरण का व्यापक इतिहास कलमबंद किया। लिवी के *इतिहास* में मूलतः 142 पुस्तकें शामिल थीं। लेकिन अब सिर्फ 35 पुस्तकों के सारांश बचे हैं। रोमन गणतंत्र से प्रिंसिपेट में संक्रमण की प्रक्रिया समझने के लिए लिवी का इतिहास अपरिहार्य है।

आगस्टस के शासन के परवर्ती काल में निरंकुशता में इजाफा हुआ। गणतंत्र काल में सरकार की जिस तरह की आलोचना संभव थी अब उसे बर्दाश्त नहीं किया जाता था। सभी असहमति/विसम्मति (dissent) का निष्ठुर दमन किया गया। विवादास्पद राजनीतिक मुद्दों पर बहस-मुबाहिसा का दौर लोकजीवन से खत्म हो गया। राज्य नागरिकों के निजी मामलों में ज्यादा से ज्यादा हस्तक्षेप करने लगा। आगस्टस ने 18 ईसापूर्व और उसके बाद नैतिक सुधारों का एक सिलसिला शुरू किया। नागरिकों पर नैतिक संहिता लादने वाला सबसे मशहूर कानून *लेक्स जूलिया* था जिसके तहत परस्त्रीगमन एवं परपुरुषगमन को एक सार्वजनिक अपराध घोषित किया गया, जिसकी सजा के रूप में उसे निर्वासित कर दिया गया। एक अन्य घटना में कवि ओविड को रोम छोड़ने का आदेश दिया गया क्योंकि वह एक कांड में संलिप्त था जिसका संबंध आगस्टस की पोती से था। ओविड शासन का तीखा आलोचक बन गया और उसने आगस्टस की निरंकुशता एवं तानाशाही पर यह कहते हुए हमले किए कि उसके तहत 'राज्य सीजर है'।

शांति बहाली में मिली सफलता ने आगस्टस को सीनेट की कीमत पर अपने हाथ में ज्यादा से ज्यादा सत्ता केंद्रित करने का मौका दिया। सीनेट आगस्टस का प्रतिरोध करने

को अनिच्छुक था क्योंकि उसने रोमन गणतंत्र में एक सदी से जारी हिंसक उथल-पुथल शांत करने की अपनी क्षमता दिखाई थी। असंतोष, गृहयुद्ध और खून-खराबा के एक अंतहीन सिलसिले ने रोमन शासक वर्ग में हताशा और असहायता की भावना भर दी थी। उनकी यह कैफियत समकालीन लेखनों और भाषणों में प्रतिबिंबित होती है। गणतंत्र के अंतिम सालों में यह आम भावना घर कर गई थी कि रोमन साम्राज्य जल्द ही ढह जाएगा। होरस ने अपनी एक शुरुआती कविता में लोगों का मन-मिजाज रेखांकित किया था जब उसने कहा था, 'रोम के लड़खड़ाते आधिपत्य को संभालने के लिए लोग अब किस भगवान का करेंगे आवाहन।' क्लिओपेट्रा के साथ मार्क एंटनी का गठबंधन (और विवाह) और एक तरफ मार्क एंटनी एवं क्लिओपेट्रा तथा दूसरी तरफ आगस्टस के बीच के टकराव ने रोम में इस तरह की दहशत फैला दी कि रोमवासियों ने आगस्टस के समर्थकों द्वारा फैलाई जा रही इन अफवाहों को सच मानना शुरू कर दिया कि मार्क एंटनी रोम को मिस्र के एक प्रांत में बदलने की कोशिश कर रहा है।

एक्टियम युद्ध के बाद लोगों का मन-मिजाज पूरी तरह बदल गया। जब एक बार यह महसूस कर लिया गया कि आगस्टस शांति बहाल करने की स्थिति में है तो रोमन अल्पतंत्रवादी कुलीन वर्ग अपने कुछ विशेषाधिकार छोड़ने को तैयार हो गया। हमें यह समझना चाहिए कि रोमन लोग गणतंत्र के परवर्ती काल की अराजक स्थिति से ऊब गए थे। अगर आगस्टस शांति बहाल कर सकता था तो उन्हें उसके स्थायी तानाशाह बनने पर एतराज नहीं था। आगस्टस ने शांति और स्थिरता की इस जोरदार आकांक्षा का दोहन किया और गणतंत्र को राजतंत्र में बदल दिया। 27 ईसापूर्व के बाद स्थितियों में इतने नाटकीय परिवर्तन हुए कि आगस्टस को रोमन साम्राज्य के उद्धारक के रूप में देखा जाने लगा। आगस्टस के काल में लेखन में निराशावाद से आत्मविश्वास की ओर तब्दीली का रुझान दिखता है।

राज्य ने अब आगस्टस की उपासना को बढ़ावा देना शुरू किया और उसे एक अर्ध-दैवी शक्ति वाले व्यक्ति के रूप में पेश किया गया। जूलियस सीजर की हत्या के बाद इस प्रक्रिया की पहले ही शुरुआत हो चुकी थी। दूसरे त्रिशासक समूह ने जूलियस सीजर को महिमामंडित कर अपनी वैधता का दावा किया था। 42 ईसापूर्व में दूसरे त्रिशासक समूह के गठन के तुरंत बाद जूलियस सीजर को एक देवता के रूप में मान्यता दी गई थी। जूलियस सीजर के दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी के रूप में आगस्टस को एक दिव्य पुरुष की संतान घोषित किया गया। आगस्टस ने सीजर नाम के साथ जुड़ी भावना को पूरा-पूरा इस्तेमाल किया और अपनी उपाधि के साथ जूलियस सीजर का पारिवारिक नाम जोड़ा। सीजर का नाम आगस्टस की निरंकुश सत्ता का औचित्य जताने के लिए महत्वपूर्ण था। अंतत: सीजर तमाम रोमन सम्राटों की एक उपाधि बन गया और यह शब्द विभिन्न रूपों में आधुनिक काल तक टिका। मसलन प्रुसियाइयों और रूसियों ने

अपने शासकों (कैसर, जार) के लिए जो शब्द इस्तेमाल किए वे सीजर शब्द की व्युत्पत्ति हैं।

साम्राज्य को व्यवस्थित करने और उसे एक नई दिशा देने में आगस्टस की उपलब्धि इस कदर ज्यादा थी कि बाद की पीढ़ियों ने उसे रोमन इतिहास में एक विशेष स्थान दिया। आगस्टस के शासनकाल को शांति और स्थिरता के एक लंबे एवं गौरवमयी काल की शुरुआत के रूप में पेश किया गया और उसके लिए एक विशेष शब्द *पैक्स रोमाना* (रोमन शांति) का इस्तेमाल किया गया। *पैक्स रोमाना* साम्राज्य की खुशहाली का आधार था। उसने रोम शासित क्षेत्रों में बसने वाले लोगों की प्रगति सुनिश्चित की। यह कहा जाने लगा कि जब तक *पैक्स रोमाना* टिकेगा, लोग खुश और सुरक्षित रहेंगे। बहरहाल, यहां यह नोट करना चाहिए कि *पैक्स रोमाना* के विचारधारात्मक निहितार्थ थे। आगस्टस के युग ने एक साम्राज्य में रोमन नगर-राज्य के रूपांतरण की प्रक्रिया पूरी कर दी। *पैक्स रोमाना* ने रोम के शासन में एक वैश्विक साम्राज्य का विचार पेश किया। लेकिन साम्राज्य के हिस्सों के लिए इसका मतलब रोमन आधिपत्य को स्वीकृति देना थी। *पैक्स रोमाना* उसी प्रकार रोमन प्रभुत्व का सूचक बना जिस तरह *पैक्स ब्रिटैनिका* (ब्रिटिश शांति) ने आधुनिक काल में उन सबके लिए औपनिवेशिक शासन को रेखांकित किया जो ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन थे। आगस्टस के काल से रोमन साम्राज्य में लोगों के एक बड़े हिस्से की समझ थी कि *पैक्स रोमाना* की स्थापना कर रोम एक महान ऐतिहासिक काम कर रहा है। बहुत तरह से आगस्टस *पैक्स रोमाना* का मुख्य प्रणेता था जो कई सदियों तक टिका।

II

आगस्टस की मौत 14 ईसवी में हुई। चूंकि उसका कोई जीवित प्रत्यक्ष पुरुष वंशज नहीं था, उसका सौतेला बेटा टाइबेरियस उसका उत्तराधिकारी बना। टाइबेरियस आगस्टस की पत्नी लिविया का उसकी पहली शादी से बेटा था। 4 ईसवी में आगस्टस ने उसे अपना वारिस बनाया। शासक के रूप में अपने परिवार के भीतर से ही किसी वारिस की नामजदी वंशगत राजशाही की स्थापना की दिशा में एक कदम था। टाइबेरियस ने 14 से 37 ईसवी तक शासन किया। उसके शासनकाल में रोमन राज्य का राजतांत्रिक चरित्र खुल कर सामने आ गया। सम्राट अब सर्वेसर्वा था। गणतंत्र की बची खुची परंपराओं और संस्थाओं को अब और भी नजरअंदाज किया गया। अंत में उनकी प्रासंगिकता ही खत्म हो गई। संभवत: टाइबेरियस के ही समय में कोमीशिया ट्राइबूटा ने काम करना बंद कर दिया। सीनेट एकमात्र ऐसी गणतांत्रिक संस्था बची जिसका महत्व बना रहा। लेकिन वह सम्राट के अधीन कर दी गई। सीनेट की सदस्यता वंशानुगत होती गई। फिर

भी कभी-कभी इटली से बाहर (मुख्यत: स्पेन, गॉल और अफ्रीका) के कुलीन परिवारों को चुनिंदा तौर पर इस अल्पतंत्रीय परिषद में जगह दी जाती थी। कौंसल अब भी नियमित रूप से नियुक्त किए जाते थे। सभा उनका चुनाव नहीं करती थी, बल्कि सम्राट उनको नामजद करता था और सीनेट उसको मंजूरी देता था। अब इस नियम का पालन नहीं किया जाता था कि कौंसल का कार्यकाल एक साल का है। अब उनका कार्यकाल दो-चार महीने का भी हो सकता था। कभी-कभार सम्राट भी कौंसल का पद ग्रहण करता था। कभी-कभी शाही परिवार के कम उम्र सदस्यों को भी कौंसल बना दिया जाता था। इस तरह यह एक नुमाइशी पद रह गया था।

रोमन सेना ने आगस्टस को बहुत ऊंचा मुकाम दिया था क्योंकि वह एक अत्यंत सफल कमांडर रहा था। आगस्टस की प्रतिष्ठा और उसके नाम (तथा जूलियस सीजर के नाम) के साथ जुड़ी भावना ने टाइबेरियस के प्रति सैनिकों का समर्थन सुनिश्चित किया। लेकिन टाइबेरियस खुद कोई श्रेष्ठ कमांडर नहीं था। सम्राट बनने का उसका दावा बस इसलिए था कि आगस्टस ने उसे अपना उत्तराधिकारी चुना था। टाइबेरियस ने महसूस किया कि एक लंबे काल में सिंहासन (हम यह शब्द सिर्फ प्रतीक के तौर पर इस्तेमाल कर रहे हैं क्योंकि रोमन राज्य में सम्राट के सिंहासन या तख्त के साथ कोई विशेष पुनीतता जुड़ी हुई नहीं थी) पर बने रहने के लिए यह दावा काफी नहीं होगा। जैसा कि हम देख चुके हैं अंतिम विश्लेषण में सम्राट का प्राधिकार क्रूर बल में निहित था। चूंकि टाइबेरियस की कोई महत्वपूर्ण सैन्य उपलब्धि नहीं थी, वह आश्वस्त नहीं हो सकता था कि संकट पैदा होने पर सेना स्वत: उसकी मदद करेगी। इसलिए पर्याप्त बल अपने पास रखने के लिए उसने प्रिटारियन गार्ड्स का पुनर्गठन किया।

आगस्टस ने रोम नगर में प्रिटारियन के सिर्फ तीन दस्ते तैनात किए थे और बाकी छह दस्ते अगल-बगल के इतालवी शहरों में तैनात किए थे। लेकिन टाइबेरियस ने सभी दस्तों को अपने पास बुला लिया। उसके बाद से प्रिटारियन गार्ड्स स्थायी रूप से रोम में तैनात रहे। गार्डों को एक प्रीफेक्ट के मातहत रखा गया था। यह प्रीफेक्ट बेहद प्रभावशाली था। टाइबेरियस ने सेजानुस नाम के एक व्यक्ति को प्रिटारियन प्रीफेक्ट नियुक्त किया। सेजानुस इस कदर शक्तिशाली बन गया कि एक दौर में तो वह लगभग सम्राट का नायब बन बैठा। सेजानुस और उसके बाद के प्रीफेक्टों ने शासन की तमाम शाखाओं में दखल देना चाहा। अकसर वह राजधानी के निवासियों के लिए दहशत का कारण होते थे। प्रिटारियन गार्ड्स ने टाइबेरियस को अपनी स्थिति मजबूत करने में मदद की। बाद के सम्राटों को खुद को सत्ता में बनाए रखने के लिए हमेशा प्रिटारियन गार्ड्स के समर्थन का मोहताज रहना पड़ा।

रोमन राजशाही ने अपने विकास के क्रम में कुछ अनूठी विशेषताएं ग्रहण कीं। तीसरी सदी ईसवी के मध्य तक रोमन राज्य *सिद्धांतत:* गणतंत्र बना रहा। यह माना जाता था कि

लोगों ने अपना प्राधिकार सम्राट को सौंप दिया है जो उनकी तरफ से शासन कर रहा है। वास्तविक व्यवहार में सम्राट का चुनाव अल्पतंत्रवादी कुलीनों के बीच से होता था। वंशानुक्रम सिद्धांत बेहद कमजोर रहा और वंशगत उत्तराधिकार के महज कुछेक मामले दिखे। राजशाही की प्रकृति अनिवार्यत: *निर्वाचन* पर आधारित थी। एडवर्ड गिब्बन (*डिकलाइन एंड फाल आफ रोमन एंपायर*) के मुताबिक, 'सम्राट का चुनाव सीनेट के प्राधिकार और सैनिकों की सहमति से होता था।' आगस्टस की मौत के बाद के सदियों में राजशाही की संस्था टिकी रही और मजबूत हुई। लेकिन वह अस्थिरता से ग्रस्त रही। ऐसे सम्राटों की संख्या बहुत ज्यादा है जिनकी हत्या कर दी गई। कई शासकों के शासनकाल बेहद छोटे थे और उत्तराधिकार को लेकर आमतौर पर युद्ध हुआ करता था।

चौदह ईसवी से लेकर 68 ईसवी तक तमाम सम्राट आगस्टस या टाइबेरियस के परिवार के थे। जब 37 ईसवी में टाइबेरियस की मौत हुई तो कैलीगुला उसका उत्तराधिकारी बना जो टाइबेरियस के भाई ड्रूसस का वंशज था। नैतिक अध:पतन और क्रूरता के कारण कैलीगुला अत्यंत अलोकप्रिय हो गया। 41 ईसवी में कैलीगुला के निजी सेवकों ने उसकी हत्या कर दी। प्रिटारियन गाड्र्स ने कैलीगुला के चाचा क्लाडियस को तख्त पर बैठाया। संयोगवश क्लाडियस की मां मार्क एंटनी की बेटी थी। क्लाडियस की नानी आक्टेविया आगस्टस की बहन थी। क्लाडियस ने एक उल्लेखनीय विजय हासिल की। 42-44 ईसवी में उसने ब्रिटेन को रोमन साम्राज्य में मिला दिया। क्लाडियस की मृत्यु 54 ईसवी में हुई। संभवत: उसे जहर दिया गया था। उसका उत्तराधिकारी नीरो बना जो आक्टेविया के साथ मार्क एंटनी के विवाह से पैदा एक अन्य बेटी का वंशज था। अविश्वास और साजिश के माहौल में नीरो उन तमाम लोगों के प्रति सशंकित था जो राजसिंहासन पर दावा कर सकते थे। उसने परिवार के अंदर से संभावित प्रतिद्वंद्वियों का सफाया करवा दिया और अनेक प्रमुख सीनेटरों की हत्या करवा दी। आलोचनाओं के प्रति उसकी असहिष्णुता लगातार बढ़ती गई। यहां तक कि उसने अपनी मां और चाची की हत्या करवा दी। प्रिटारियन गाड्र्स ने तब उससे छुटकारा पाने का फैसला किया। उसे रोम से भागने के लिए बाध्य कर दिया गया। 68 ईसवी में उसने आत्महत्या कर ली। नीरो के मृत्यु के साथ आगस्टस वंश का शासन समाप्त हो गया। कहा जाता है कि नीरो के खिलाफ विद्रोह राजशाही प्रणाली के बजाए आगस्टस के वंशजों के अत्याचारों और अनैतिक जीवन के विरुद्ध जनप्रतिक्रिया थी।

अगले एक साल तक साम्राज्य पर नियंत्रण को लेकर सैनिक कमांडरों के बीच वस्तुत: गृहयुद्ध चला। नीरो का उत्तराधिकार गाल्बा को मिला जिसे स्पेन में रोमन सेना का समर्थन प्राप्त था। क्लाडियस के शासनकाल में गाल्बा एक महत्वपूर्ण अधिकारी था। कुछ ही माह के अंदर गाल्बा प्रिटारियन गाड्र्स के हाथों मारा गया। उसके बाद प्रिटारियन गाड्र्स के प्रमुख अधिकारियों में से एक ओथो सम्राट बना। इस बीच उत्तरी

यूरोप के जर्मनी प्रांत की रोमन सेनाओं ने ओथो को सम्राट मानने से इनकार कर दिया। जर्मनी में सेना का नेतृत्व वाइटेलियस कर रहा था। वाइटेलियस ने अपनी सेना के साथ रोम की तरफ कूच किया। उसने ओथो को हरा दिया। ओथो ने खुदकुशी कर ली। वाइटेलियस को सम्राट घोषित किया गया। नीरो की मृत्यु के एक साल के अंदर (68-69 ईसवी) तीन सम्राट तख्त पर बैठे।

इस मोड़ पर सीरिया और फलस्तीन में तैनात पूर्वी सेना ने बगावत कर दी। उसने अपने कमांडर वेस्पासियन को सम्राट के रूप में मनोनीत किया। वेस्पासियन एक साधारण परिवार से आता था जो कुलीन वर्ग का एक हिस्सा नहीं था। वह सेना में एक शीर्ष स्थान पर पहुंचा था और उसने बड़ी सफलता से फलस्तीन में एक बड़े यहूदी विद्रोह (66-70 ईसवी) को कुचला था। अपनी विजेता सेना के साथ वेस्पासियन ने रोम की तरफ कूच किया। उसने 69 ईसवी में सत्ता पर कब्जा कर लिया। वाइटेलियस पकड़ा गया। उसकी हत्या कर दी गई। वेस्पासियन (69-79 ईसवी) और उसके पुत्र टाइटस (79-81 ईसवी) का शासनकाल अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण और स्थिर रहा। वेस्पासियन के परिवार (वेस्पासियन का पारिवारिक नाम फ्लेवियस था और उसका वंश फ्लेवियन वंश कहलाता है) के शासनकाल में सम्राट का प्राधिकार फिर से बहाल हुआ। 81 ईसवी में टाइटस के निधन के बाद उसका भाई डोमिशियन सम्राट बना। उसने पंद्रह साल तक राज किया और इस दौरान उसने वेस्पासियन और टाइटस की तमाम उपलब्धियों को मिटा दिया। समकालीन विवरणों में उसकी अत्यधिक क्रूरता की चर्चा मिलती है। 96 ईसवी में प्रिटारियन गार्ड्स ने उसकी हत्या कर दी।

फ्लेवियन वंश के पतन ने राज्य में एक राजनीतिक शून्यता पैदा कर दी। सीनेट ने अपना दबदबा बढ़ा कर शून्यता पाटने की कोशिश की । उसने एक नया सम्राट नियुक्त करने की पहल की। 96 ईसवी में सीनेट की ओर से नर्वा को सम्राट नियुक्त किया गया। नर्वा ने सीनेट और सेना के समर्थन से अपने जीवनकाल में ही अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने की प्रथा शुरू की । इसने अगले अस्सी साल तक सत्ता का सुगम हस्तांतरण सुनिश्चित किया। सम्राट का चुनाव बड़े एहतियात से, खासकर उनकी प्रशासनिक क्षमताओं की जांच परख के बाद होता था। अनेक इतिहासकारों ने नर्वा और उसके चार उत्तराधिकारियों को 'अच्छा सम्राट' और 96 से लेकर 180 ईसवी के काल को साम्राज्य का 'स्वर्ण काल' माना है। यहां यह इंगित किया जाना चाहिए कि 'अच्छे सम्राटों' का चयन व्यापक आम सहमति के आधार पर होता था। इन सम्राटों की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा महज सही ढंग से शासन चलाने की उनकी क्षमता का नतीजा नहीं थी, बल्कि इस तथ्य की ओर भी इशारा कर रही है कि वे अल्पतंत्रवादी कुलीन वर्ग के एक बड़े हिस्से के लिए स्वीकार्य थे।

सत्ता पर आसीन होने के तुरंत बाद नर्वा ने एक लोकप्रिय जनरल ट्राजन को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। 98 ईसवी में ट्राजन सम्राट बना। वह स्पेन के एक कुलीन

परिवार का था। पहली सदी ईसवी के अंत तक सीनेट सिर्फ एक इतालवी निकाय नहीं रह गई थी। अल्पतंत्रवादी कुलीन वर्ग ने स्पेन, गॉल, अफ्रीका वाले पश्चिमी प्रांतों में बसे कुलीन परिवारों को भी जगह दी थी। यह आकलन किया गया है कि पहले दो फ्लेवियन सम्राट के शासनकाल में 75-80 प्रतिशत सीनेटर इतालवी थे। अगले कुछ दशक में इतालवी सीनेटरों की तादाद करीब 50 प्रतिशत रह गई। आगस्टस के काल से ही प्रांतीय शासक वर्ग और म्यूनिसिपियम के अभिजात केंद्रीय राज्य ढांचा के महत्वपूर्ण हिस्सा रहे थे। आगस्टस ने कुलीन इतालवी (गैर-रोमन) और प्रांतीय परिवारों के अनेक सदस्यों को सीनेट और अश्वारोहण के पदों पर बैठाया था तथा पारंपरिक रोमन कुलीनों के प्रभाव की काट के लिए उनका समर्थन चाहा था। उसके उत्तराधिकारियों ने यह सिलसिला जारी रखा। इसका परिणाम केंद्र सरकार के 'प्रांतीकरण' में हुआ। दूसरे शब्दों में, प्रिंसिपेट के काल में इटली के बाहर के भूस्वामी वर्गों को साम्राज्यवादी व्यवस्था में धीरे-धीरे शामिल कर लिया गया। तीसरी सदी ईसवी के मध्य तक रोमन साम्राज्य के शासक वर्ग में हर क्षेत्र के लोग शामिल हो चुके थे।

ट्राजन ने साम्राज्य के विस्तार की नीति पर जोर-शोर से अमल किया। उसके शासन काल में क्षेत्रीय विस्तार के संदर्भ में रोमन साम्राज्य पराकाष्ठा पर पहुंच गया। ट्राजन की सैन्य उपलब्धियों ने उसे बेहद शक्तिशाली बना दिया तथा राजशाही की संस्था को और भी मजबूत किया। अब तक मध्य यूरोप और पूर्वी यूरोप में डैन्यूब नदी रोमन साम्राज्य की उत्तरी सीमा थी। इस क्षेत्र क तमाम रोमन प्रांत डैन्यूब नदी (यह नदी मध्य और पूर्वी यूरोप के बीच से होकर बहती है और काला सागर में गिरती है) के दक्षिण में स्थित थे। ट्राजन ने डैन्यूब के पार उत्तरी यूरोप में कुछ क्षेत्र जीते और एक नया प्रांत डेशीया (मोटे तौर पर आधुनिक रूमानिया) का गठन किया। डेशीया में बहुल स्वर्ण निक्षेप थे और संभवत: इसी के चलते उसे रोमन साम्राज्य में मिलाया गया।

पश्चिम एशिया में ट्राजन ने आगस्टस की नीति उलट दी और पार्थियाइयों को अधीन करने का प्रयास किया। जब से रोमनों ने सीरिया पर कब्जा (63 ईसापूर्व) किया था, वे पार्थिवों के साथ एक दीर्घकालीन संघर्ष में उलझे थे। आर्सासिड वंश के शासनकाल में पार्थियाई उभरे थे और धीरे-धीरे उन्होंने सेल्यूकस वंश के हाथों से ईरान और मेसोपोटामिया छीन लिया था। आठवें अध्याय में हमने देखा कि आर्सासिड वंश के मिथ्रीडाटेज प्रथम ने एक विशाल पार्थियाई साम्राज्य स्थापित किया। पार्थियाइयों ने सेल्यूकस वंश के साम्राज्य की सरहदें पीछे ढकेल दीं। पांपी के पूर्वी अभियान के समय इस वंश के पास सिर्फ सीरिया बचा था। प्रथम त्रिशासक समूह के काल में रोम को जबर्दस्त धक्का लगा था जब कैरी युद्ध (53 ईसापूर्व) में पार्थियाइयों ने क्रैसस को परास्त कर उसकी हत्या कर दी। उसके बाद आगस्टस ने पार्थियाई साम्राज्य के सैन्य विजय की नीति छोड़ दी।

सीरिया, फलस्तीन और अनातोलिया में रोमनों की मौजूदगी के बावजूद पार्थियाई

पश्चिम एशिया में एक दुर्जेय राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति बने रहे। वे समूचे क्षेत्र की सांस्कृतिक एवं भाषाई एकीकरण के लिए जिम्मेदार थे। उनका प्रभाव उनकी सरहद से परे बहुत दूर तक फैला था। पार्थियाइयों ने यूनानवादी संस्कृति के अनेक पहलू अपनाए। लेकिन उन्होंने उनमें विशिष्ट ईरानी पहलुओं को मिलाया। उन्होंने अरामाइक भाषा को बढ़ावा दिया जो सिकंदर के हमले से पहले फारसी साम्राज्य की आधिकारिक भाषा थी। अरामाइक मूलत: उत्तर मेसोपोटामिया में रहने वाले कुछ कबीलों की भाषा थी। पार्थियाई शासनकाल में यूनानी के बजाए अरामाइक पश्चिम एशिया में सबसे ज्यादा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा बन गई। अरामाइक लेखन के लिए बीस अक्षरों की वर्णमाला की एक लिपि विकसित की गई। यह सीरिया और फलस्तीन जैसे रोम शासित क्षेत्रों के भी आमजन की भाषा थी। अरामाइक भाषा में ही ईसा मसीह ने अपनी शिक्षाएं दीं।

आगस्टस की एक सदी बाद तक रोमनों ने पार्थियाई साम्राज्य के महज दूरस्थ इलाकों पर नियंत्रण करना पसंद किया। इस दौरान उनका मुख्य उद्देश्य आर्मीनिया के नाम से जाना जाने वाले पर्वतीय क्षेत्र पर दबदबा बरकरार रखना था। आर्मीनिया इराक और ईरान के उत्तर में मध्य एशिया में स्थित है। कभी-कभी रोमनों ने आर्मीनिया के कुछ हिस्सों पर थोड़े समय के लिए प्रत्यक्ष शासन भी किया। लेकिन ज्यादातर उन्होंने आर्मीनिया के तख्त पर रोमपरस्त कठपुतली शासकों को बैठाया। पार्थियाइयों ने आर्मीनिया से रोमनों को हटाने की लगातार कोशिश की क्योंकि यह उनकी उत्तरी सीमा पर स्थित सामरिक महत्व का स्थल था। यहां यह चर्चा करना प्रासंगिक होगा कि पश्चिम एशिया और मध्य एशिया को जोड़ने वाले कुछ महत्वपूर्ण व्यापार मार्ग आर्मीनिया से गुजरते थे।

ट्राजन ने आर्मीनिया और मेसोपोटामिया में पार्थियाई शक्ति नष्ट करने के लिए एक अभियान छेड़ा। आर्मीनिया को औपचारिक रूप से रोम का एक प्रांत बना लिया गया। उत्तरी इराक को मेसोपोटामिया के एक नए प्रांत के रूप में पुनर्गठित किया गया। रोमन साम्राज्य की सरहदें दजला नदी तक फैल गईं और पार्थियाई दक्षिण मेसोपोटामिया से ढकेल दिए गए। लेकिन यह काफी खर्चीला उद्यम था और ट्राजन के उत्तराधिकारी ने महसूस किया कि नवविजित प्रदेशों को सैन्य बल के आधार पर नियंत्रित करना व्यावहारिक नहीं है। 117 ईसवी में ट्राजन का निधन हो गया। उसका गोद लिया बेटा हाड्रियान उसका उत्तराधिकारी बना। हाड्रियान ने दजला से रोमन सैनिक वापस बुला लिया और उन्हें फरात पर तैनात कर दिया। फरात अब पश्चिम एशिया में रोमन क्षेत्र का आखिरी छोर रेखांकित करने लगी। आर्मीनिया में एक कठपुतली राजा को बैठा दिया गया और वहां अप्रत्क्ष राज किया जाने लगा। फिर भी ट्राजन के समय से रोमनों ने पार्थियाइयों के संदर्भ में ज्यादा आक्रामक सैन्य नीति अपनाई। इस नीति ने पार्थियाई साम्राज्य के पतन की रफ्तार तेज कर दी और ईरान में एक नई शक्ति को उभरने में मदद की। तीसरी सदी ईसवी के शुरुआती दशकों में पार्थियाई शासन वाले प्रदेश ईरान के सासानी वंश के कब्जे चले

गए। 223 ईसवी में सासानी राजा अर्ताजर्जेज प्रथम या अर्दशिर (211–241 ईसवी) ने पार्थियाई राजा अर्ताबानूस पंचम को तख्त से हटा दिया। सासानियों का उदय रोमनों के लिए पश्चिम एशिया में पार्थियाइयों के मुकाबले ज्यादा चुनौतीपूर्ण था। तीसरी सदी ईसवी में पश्चिम की दिशा में सासानी साम्राज्य का विस्तार रोमन क्षेत्रों की कीमत पर हुआ। रोम को सासानी खतरे को रोकने के लिए अत्यधिक वित्तीय और मानवीय संसाधन लगाने पड़े।

हाड्रियान अपने साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित बनाने को लेकर ज्यादा चिंतित था। कबायली हमलों को रोकने के लिए यूरोप में डैन्यूब नदी से लगे स्थायी सैन्य चौकियों की एक पूरी शृंखला स्थापित की गई। ब्रिटिश द्वीपों में एक सुरक्षा दीवार (उसे हाड्रियान की दीवार कहते हैं और उसके अवशेष अब भी मौजूद हैं) खड़ी कर प्रांत के उत्तरी हिस्से की किलाबंदी की गई। हाड्रियान ने प्रांतों के व्यापक दौरे किए और प्रांतीय राजधानियों के प्रशासन में सुधार किए। हाड्रियान के काल में रोम ने कला और वास्तुशिल्प में अनेक उपलब्धियां हासिल कीं। हाड्रियान ने अपने निधन के बाद उत्तराधिकार का मसला आसानी से हल करने के लिए एक अनूठा फार्मूला सूत्रबद्ध किया। उसने अंटोनाइनस पाइअस को अपना उत्तराधिकारी बनाया और अंटोनाइनस को कहा कि वह भी साथ ही साथ एक लड़का मार्कस आरेलियस को अपना (अंटोनाइनस का) उत्तराधिकारी तय कर दे। 138 ईसवी में हाड्रियान के निधन के बाद अंटोनाइनस पाइअस रोम का सम्राट बना। उसके बाद मार्कस आरेलियस (161–180 ईसवी) सम्राट बना। अंटोनाइनस पाइअस और मार्कस आरेलियस को एक साथ 'अंटोनाइनस' कहा जाता है।

मार्कस आरेलियस एक योग्य प्रशासक होने के साथ-साथ स्टोइक मत से जुड़ा एक दार्शनिक भी था। *मेडिटेशंस* (चिंतन-मनन) के नाम से संकलित उसकी उक्तियां और कथन आज भी पढ़े जाते हैं। उसके शासन में रोमन साम्राज्य ने पूर्वी यूरोप में डैन्यूब नदी के तट पर बसे कबायली समूहों के प्रति अधिक रक्षात्मक नीति अपनाने लगा। मार्कस आरेलियस ने पाया कि रोमन सीमाओं पर उन कबीलों के बढ़ते दबाव का प्रतिरोध सैन्य बल के सहारे करना मुश्किल होता जा रहा है। उसने उनमें से कुछ कबीलों के साथ समझौता करने की कोशिश की (देखें अध्याय 10)। उनमें से अनेक हिंद-यूरोपीय भाषाई परिवार की जर्मैनिक शाखा के थे। आरेलियस को डैन्यूब क्षेत्र से उन कबीलों को हटाने के लिए कई अभियान छेड़ने पड़े। उन अभियानों के कारण साम्राज्य पर भारी बोझ पड़ा।

मार्कस आरेलियस (180 ईसवी) की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कमोडस सम्राट बना। वह 177 ईसवी से ही शासन से जुड़ा था। लेकिन जल्द ही स्पष्ट हो गया कि वह शासन के लिए अयोग्य है। 192 ईसवी में कमोडस की हत्या कर दी गई। सेना ने पर्टिनैक्स नामक एक अनुभवी अधिकारी को गद्दी पर बैठाया। पर्टिनैक्स एक साधारण परिवार का था। लेकिन आरेलियस ने उसकी प्रतिभा देखते हुए उसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां सौंपी

थी। कमोडस ने महत्वपूर्ण अधिकारियों की हत्या करवा दी थी और पर्टिनैक्स आरेलियस के जीवित बचे कुछेक सहयोगियों में से था। पर्टिनैक्स ने सम्राट बनते ही प्रशासन में सुधार लाने और कमोडस के कारण पैदा हुई अव्यवस्था दूर करने का प्रयास किया। उसने कड़ा अनुशासन लागू करने की कोशिश की। उससे प्रिटारियन गाड्र्स नाराज होकर उसके खिलाफ साजिश करने लगे। सम्राट बनने के कुछ ही माह के बाद पर्टिनैक्स की हत्या कर दी गई। प्रिटारियन गाड्र्स ने अपनी पसंद के एक व्यक्ति को गद्दी पर बैठा दिया। लेकिन प्रांतों के ताकतवर सैनिक कमांडर उसे मानने के लिए तैयार नहीं थे। दक्षिण-पूर्व यूरोप में तैनात सेना के कमांडर सेप्टिमियस सीविरस ने अपनी सेना के साथ रोम की तरफ कूच कर दिया। सेप्टिमियस ने रोम में प्रवेश किया। 193 ईसवी में उसे सम्राट घोषित किया गया।

सेप्टिमियस सीविरस अफ्रीकी मूल का पहला रोमन सम्राट था। वह लीबिया के लेप्टिस मैग्ना में पैदा हुआ था। उससे पहले रोम के तमाम सम्राट इटली, स्पेन या दक्षिण गॉल के थे। यह लातीनी प्रभाव वाले मुख्य क्षेत्र थे जहां रोमन कुलीन परिवार भारी संख्या में थे। सीनेट मुख्य क्षेत्र से बाहर किसी व्यक्ति को सम्राट नियुक्त करने में हिचकिचाती। सेप्टिमियस सेना के समर्थन से सम्राट बना। दूसरी सदी ईसवी तक सेना रोमन या इतालवी नहीं रह गई थी। समूचे साम्राज्य से सैनिकों की भर्ती की जा रही थी। अतः सेना में सभी जगह के लोग थे और उसे सम्राट के क्षेत्र को लेकर कोई आग्रह नहीं था। बाद में यह रुझान बढ़ा और सेना के समर्थन से बने सम्राटों की सामाजिक पृष्ठभूमि बहुत विविध रही। सेप्टिमियस सीविरस ने एक सीरियाई महिला से शादी कर रोमन शासक वर्ग को सार्वभौमिक बनाने में खुद भी योगदान किया।

सेप्टिमियस ने धीरे-धीरे सरकार में सीनेट की भूमिका घटा दी। सेप्टिमियस की सत्ता का आधार सेना थी और उसके तहत राज्य को एक सैन्य राजशाही के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। उसने प्रिटारियन गाड्र्स का पुनर्गठन किया। उसके शासनकाल में प्रांतीय शहरी केंद्रों पर ज्यादा ध्यान दिया गया। लेकिन उन शहरों के नगरीय प्रशासन में सम्राट का हस्तक्षेप बढ़ गया। 211 ईसवी में सेप्टिमियस की मौत हो गई। उसके बाद उसका बेटा कैराकला सम्राट बना। उस समय तक रोमन साम्राज्य एक गंभीर संकट में फंस गया था जो सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं में परिलक्षित हो रहा था। सेप्टिमियस उन समस्याओं को अस्थायी रूप से दबाने में कामयाब रहा था। लेकिन कैराकला गहराते संकट से निबटने में अक्षम था। साम्राज्य की रक्षा के लगातार बढ़ते खर्च ने राज्य पर एक विशाल वित्तीय बोझ डाल दिया था। जैसा कि हम देखेंगे कि सम्राटों ने जो हल निकाले, उनमें से एक सिक्कों में मिलावट करना था। दूसरा उपाय कर बढ़ाना था।

कैराकला द्वारा उठाए गए महत्वपूर्ण कदमों में से एक को इसी संदर्भ में देखना चाहिए। 212 ईसवी में कैराकला ने साम्राज्य के तमाम मुक्त निवासियों को पूर्ण नागरिक

अधिकार दे दिए। यह इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि तीसरी सदी ईसवी के शुरू तक नागरिकता अधिकार के साथ जुड़े राजनीतिक विशेषाधिकार बेमानी हो चुके थे। दूसरी तरफ यह इंगित किया जाता है कि कैराकला की ओर से प्रदत्त नागरिकता अधिकार ने लोगों को विभिन्न करों के दायरे में ला दिया जिन्हें सिर्फ नागरिक अदा करते थे। उनमें मृत्यु-शुल्क और गुलामों की आजादी के लिए नागरिकों पर लगने वाले कर शामिल थे। इसके अतिरिक्त नागरिकता अधिकारों का राजनीतिक क्षेत्र में बमुश्किल कोई प्रासंगिकता थी।

कैराकला का राज लगातार अत्याचारी होता गया। 217 ईसवी में प्रिटारियन गार्ड्स ने उसकी हत्या कर दी। गार्ड्स का एक प्रीफेक्ट सम्राट बन बैठा। उसका नाम मैक्रिनस था। मैक्रिनस पहला रोमन सम्राट था जो सीनेटर नहीं था या किसी सीनेटर परिवार का नहीं था। उससे पहले के सम्राट, यहां तक कि साधारण परिवार से आने वाले भी अपनी राजनीतिक या सैनिक जीवन के क्रम में सीनेट के सदस्य बन चुके थे। मैक्रिनल सीनेट तथा सीमा पर तैनात सेना दोनों के लिए अस्वीकार्य था। सीरिया में तैनात सेना में उसके खिलाफ तीखी भावना थी। कैराकला ने एक लंबा समय मिस्र और सीरिया में बिताया था। उसकी मां जूलिया डोमना (सेप्टिमियस की पत्नी) सीरियाई थी। उसने अपने नाती एलागाबालूस के पक्ष में सैनिकों को गोलबंद किया। एलागाबालूस सीरियाई सौर देवता बाल का मुख्य पुजारी था। एशियाई सैनिकों में बाल की पूजा बहुत आम थी। 218 ईसवी में एलागाबालूस सीरियाई सेना के समर्थन से रोमन साम्राज्य का सम्राट बन गया। चार साल के अंदर प्रिटारियन गार्ड्स ने उसकी हत्या कर दी। उसके बाद 222 ईसवी में उसका चचेरा भाई सीविरस अलेक्जैंडर सम्राट बना।

हालांकि सीविरस को सेना ने सम्राट के पद पर आसीन किया था, उसने अपनी सत्ता को मजबूती देने के लिए सीनेट की मंजूरी चाही। सीनेट की मंजूरी के बदले उसने इस संस्था के कुछ अधिकार बहाल कर दिए। आंशिक रूप से उसने सीनेट के समर्थन से शासन किया। सीविरस ने राज्य का प्राधिकार एक हद तक बहाल कर दिया। लेकिन साम्राज्य का संकट बेहद गहरा गया था। जर्मनी के कबीलों से लड़ने के मुद्दे पर सम्राट और सेना के बीच तीखा विवाद छिड़ गया जिसकी परिणति सम्राट को हटाए जाने में हुआ (देखें अगला अध्याय)। 235 ईसवी में सीविरस की हत्या कर दी गई। यह माना जा सकता है कि यह तिथि प्रिंसपेट के अंत को रेखांकित करती है। प्रिंसिपेट को कभी-कभी पूर्व रोमन साम्राज्य भी कहा जाता है ताकि सीविरस अलेक्जैंडर की मृत्यु के बाद के काल के रोमन साम्राज्य से उसे अलग किया जा सके। परवर्ती रोमन साम्राज्य का ढांचा पूर्ववर्ती रोमन साम्राज्य के ढांच से कई मायने में भिन्न था।

सीविरस अलेक्जैंडर की हत्या सम्राट, सीनेट और सेना के बीच सत्ता संतुलन का प्रश्न हल करने में असफलता की एक और मिसाल है। सेना में प्रिटारियन गार्ड्स शामिल

थे। लेकिन दूसरी सदी ईसवी तक पूर्वी यूरोप और पश्चिम एशिया में तैनात सीमा सेना अधिकाधिक मुखर होती जा रही थी। सैनिक लंबे समय से सीमांत क्षेत्रों में तैनात थे और उसके बीच एकजुटता की भावना विकसित हो गई थी। उसके अलावा सैनिकों की एक बड़ी संख्या स्थानीय किसानों के बीच से आई थी। इसलिए उनकी जड़ें अगल-बगल के ग्रामीण अंचलों में थी। ऐसे में यह आश्चर्य की बात नहीं कि उनकी मुखरता सम्राट के पद पर साम्राज्य के पूर्वी भाग के अनेक दावेदारों के समर्थन में झलकी। यह सम्राट, सीनेट और सेना के बीच के त्रिकोणात्मक टकरावों में एक नया कारक बन गया। रोमन कुलीनों ने राजसिंहासन पर उन लोगों की दावेदारी स्वीकार नहीं की जो इटली, स्पेन, गॉल या अफ्रीका के नहीं थे खासकर उनकी जो साधारण परिवारों के थे।

सीविरस अलेक्जैंडर की हत्या के बाद सेना ने मैक्सीमिनस प्रथम को राजसिंहासन पर बैठाने का फैसला किया। इस मुद्दे पर सेना और सीनेट के बीच रिश्ते पूरी तरह टूट गए। मैक्सीमिनस थ्रेस के पिछड़े इलाके का था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह एक साधारण किसान परिवार का था जो सेना में शामिल हुआ था और सेप्टिमियस सीविरस और सीविरस अलेक्जैंडर के नेतृत्व में उच्च पदों पर पहुंचा था। वह टूटी-फूटी लातीनी बोलता था। फिर भी वह सैनिकों के बीच लोकप्रिय था जिन्होंने उसे सम्राट घोषित किया था। मैक्सीमिनस ने सीनेट की मंजूरी लेने की जहमत तक नहीं की। जहां तक सीनेट का मामला था, वह मैक्सीमिनस को सम्राट नहीं मानती थी। सम्राट, सीनेट और सेना के बीच का त्रिकोणात्मक संघर्ष और भी तीखा हो गया। रोमन साम्राज्य में अगले 50 साल (235 से 284 ईसवी) तक अराजकता मची रही। इस दौरान करीब 20 सम्राट सिंहासन पर बैठाए गए जिनमें से अनेक सेना समर्थित गैर-सीनेटर थे। उनमें से अठारह की हिंसा में जान गई।

डायक्लीशन के सम्राट बनने के बाद 284 ईसवी से स्थिति सुधरनी शुरू हुई। डायक्लीशन पूर्वी यूरोप का एक सैनिक था जिसके पूर्वज शायद गुलाम थे। उसने दीर्घकालीन स्थिरता पर लक्षित उपायों से राज्य का पूरी तरह पुनर्निर्माण किया। उसने सरकार को गंभीर वित्तीय संकट से उबारने के लिए भारी कर लगाए। प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त करने के लिए साम्राज्य को चार हिस्सों में बांटा गया। डायक्लीशन ने एक हिस्से पर प्रत्यक्ष राज किया जबकि बाकी तीन हिस्सों के लिए स्वायत्त शासक नियुक्त किए गए। हालांकि डायक्लीशन समूचे साम्राज्य की समग्र नीतियां तय करता था, हरेक शासक अपने क्षेत्र में सर्वोच्च था। डायक्लीशन ने थ्रेस, मिस्र, अनातोलिया और पश्चिम एशिया की जिम्मेदारी संभाली; इटली और उत्तर अफ्रीका मैक्सिमियन को सुपुर्द किया गया; गैलेरियस को डैन्यूब के क्षेत्र मिले जबकि कांस्टेनटियस को गॉल, स्पेन और ब्रिटेन का प्रशासन मिला। ज्यादातर इतिहासकार डायक्लीशन के शासन (अर्थात 284 ईसवी) से परवर्ती रोमन साम्राज्य की शुरुआत मानते हैं।

डायक्लीशन के पहले के कुछ शासकों ने भी प्रशासनिक कारणों से साम्राज्य का सह-शासकों के बीच विभाजन बतौर प्रयोग (experiment) किया था। साम्राज्य प्रभावी एकीकृत शासन के लायक नहीं रह गया था। एकीकृत प्रशासन के लिए विशाल केंद्रीय तंत्र चाहिए था और उसके लिए अकूत वित्तीय संसाधन की जरूरत थी। साम्राज्य को अलग-अलग अर्धस्वायत्त प्रशासनिक क्षेत्रों में बांटना ज्यादा आसान था। डायक्लीशन का तरीका इस रूप में अनूठा था कि उसने इस तरह की व्यवस्था को व्यवहार में उतारा। डायक्लीशन के शक्तिशाली व्यक्तित्व के कारण चार शासकों के बीच प्रतिद्वंद्विता नहीं हुई और साम्राज्य का कामकाज बाधित नहीं हुआ। इसका मतलब यह नहीं है कि शासकों के बीच कोई तनाव नहीं था। लेकिन कमोबेश यह तजुर्बा कामयाब रहा।

डायक्लीशन के शासनकाल में राज्य की गतिविधियों का दायरा बढ़ा। कुल मिलाकर उसका शासन बेहद दमनकारी था। कर वसूली प्रणाली मजबूत की गई। डायक्लीशन ने राज्य को मिल सकने वाले करों के आकलन के लिए एक जनगणना करने का आदेश दिया। कर जिंस की शक्ल में अदा करने होते थे। चूंकि कर का आकलन खेती किए गए पृथक भूखंडों (मिल्कियत से इतर) के आधार पर होता था, किसान और काश्तकार अपने जोतों से बांध दिए गए। वे उस जगह को छोड़ नहीं सकते थे जहां की जनगणना के आकलन रिकार्ड में उनका नाम दर्ज था। इस कदम से बड़े जमींदारों को खूब फायदा हुआ। हम बाद में इस पर कुछ विस्तार में चर्चा करेंगे।

डायक्लीशन ने छोटे-छोटे प्रांतों का गठन कर प्रशासनिक इकाइयों को ठोस एवं चुस्त बनाया। इस पुनर्गठन के नतीजे में प्रांतों की संख्या दुगुनी हो गई। इससे कर वसूली तो चुस्त बन गई। इससे प्रांतीय गवर्नरों की ताकत भी घटी। प्रांतीय गवर्नरों को उनकी ढेर सारी सैन्य जिम्मेदारियों से मुक्त कर दिया गया और उनसे अपेक्षा की गई कि वह राजस्व संबंधी जिम्मेदारियों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। डायक्लीशन ने नौकरशाही में मध्य वर्ग (स्थानीय कुलीन वर्ग, छोटे व्यापारी, शहरी पेशेवर तबका) को शामिल कर उसका विस्तार किया। यह वर्ग अब तक नौकरशाही के दायरे से बाहर था। सीमा पर सैन्य टुकड़ियों की विशाल मांग पूरी करने के लिए डायक्लीशन ने सेना में अनिवार्य भर्ती का कानून फिर से लागू कर दिया।

यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि डायक्लीशन ने जब साम्राज्य का बंटवारा किया तो उसने थ्रेस, मिस्र और एशियाई प्रांतों को अपने पास रखना पसंद किया। तीसरी सदी ईसवी के अंत तक साम्राज्य के उत्तरी हिस्से अपेक्षाकृत ज्यादा स्थिर थे। सम्राट, सीनेट और सेना के त्रिकोणात्मक संघर्ष ने ऐसी स्थिति बना दी थी जिसमें साम्राज्य के पश्चिमी और पूर्वी हिस्सों के बीच का फर्क उजागर हो गया था। यह फर्क इन दो हिस्सों के सामाजिक-आर्थिक अलगाव से जुड़ा था। पश्चिम (इटली, गॉल, स्पेन, अफ्रीका) में रोमन जमींदार कुलीन वर्ग का प्रभुत्व था। यह कुलीन वर्ग परंपरागत रूप से सीनेट को नियंत्रित करता

आया था। 235 ईसवी के बाद जब कुलीन वर्ग को सम्राट के पद से लगातार वंचित किया गया तो सीनेट ने अपने बचे-खुचे महत्व का अधिकांश खो दिया। सम्राट और सेना ने सीनेट को हाशिया पर ढकेलने के लिए हाथ मिला लिया। लेकिन रोमन जमींदार कुलीन वर्ग शक्तिशाली था और उसे नजरअंदाज या नियंत्रित नहीं किया जा सकता था। रोमन सम्राटों को अंततः अपनी सत्ता का नया आधार ढूंढना पड़ा। डायक्लीशन के नया राजशाही राज की जड़ें मजबूती से पूर्वी प्रांतों में जमी थीं। यहां सम्राट पश्चिमी कुलीन वर्ग की परवाह किए बगैर अपने असीम अधिकारों का इस्तेमाल कर सकता था। डायक्लीशन बस एक बार थोड़े समय के लिए रोम गया। उसने अपना ज्यादातर वक्त पूर्व में गुजारा और अंततः उसने उत्तर अनोतोलिया में काला सागर के निकट निकोमेदिया शहर को अपनी राजधानी बनाया। मजेदार बात यह है कि डायक्लीशन का सहयोगी और इटली का शासक मैक्सिमियन ने अपने प्रशासन में सीनेट और प्रिटारियन गाड्र्स की दखलअंदाजी से बचने के लिए रोम की जगह मिलान में रहना पसंद किया।

रोमन साम्राज्य के शुरुआती दौर में सम्राट (*इंपरेटर*) की मुख्य उपाधि *प्रिंसेप्स* थी। जैसा हम देख चुके हैं, यह कोई शाही उपाधि नहीं थी। रोमन सम्राट न कोई ताज पहनते थे, न ही शाही हैसियत जताने वाले किसी खास तरह के लिबास। सीनेटरों और सम्राट की लिबासों के बीच बस इतना फर्क होता था कि जहां किसी सीनेटर के बाहरी लिबास पर बैंगनी रंग का एक चौड़ा किनारा (*लैटीक्लेविया*) होता था, सम्राट का पूरा लिबास (रोमनों का मुख्य बाहरी लिबास का बगैर सिले कपड़े का एक लंबा टुकड़ा होता था जिसे 'टोगा' कहते थे) बैंगनी होता था। सम्राटों का सामान्य लिबास यह जताने के लिए था कि प्रिंसिपेट राजशाही नहीं बल्कि गणतंत्र है। डायक्लीशन ने यह दिखावा करना बंद कर दिया कि सिद्धांततः रोमन राज्य अब भी एक गणतंत्र है। उसने खुद को एक दैवी सम्राट के रूप में पेश किया। उसने बेहद शानदार राजसी लिबास पहनने की प्रथा शुरू की। उसने सिर पर रत्नजड़ित पट्टी पहनना शुरू किया। रोमन सम्राट परांपरागत रूप से ताज पहनने से हिचकते थे और डायक्लीशन की पट्टी को ताज का एक प्रतिरूप माना जा सकता है। शासकों की उपाधि भी बदली। अब सम्राट *प्रिंसेप्स* नहीं बल्कि *डोमिनस एट डियस* (दैवी स्वामी और आका) कहलाते थे। *डोमिनस* ऐसा शब्द था जिसे गुलाम अपने आकाओं के संबोधन में इस्तेमाल करते थे। परवर्ती रोमन साम्राज्य में सम्राटों के लिए इस शब्द के इस्तेमाल से प्रेरित होकर इतिहासकारों ने रोमन इतिहास के इस चरण पर 'डॉमिनेट' का लेबल चस्पां कर दिया है। जहां रोमन इतिहास का शुरुआती दौर प्रिंसिपेट कहलाता है जबकि नई शाही परंपरा वाला परवर्ती रोमन इतिहास डॉमिनेट कहलाता है। डायक्लीशन ने दरबार की परंपराएं लागू कीं जिसका उद्देश्य सम्राट की आन-बान और शान पर जोर देना था। लोगों को सम्राट की मौजूदगी में प्रवेश करने पर साष्टांग प्रणाम करने का निर्देश दिया गया था। विद्वानों का कहना है कि डायक्लीशन की राजशाही की

अवधारणा में यूनानवादी राज्यों, मिस्र और ईरान के सासानियों के राजतंत्रों की विशेषताएं शामिल थीं। जब तक सम्राट रोम में रहा उसके लिए नगर की प्राचीन गणतांत्रिक परंपराएं छोड़ना मुश्किल बना रहा। पूर्व में जाने से डायक्लीशन उन राजशाही परंपराओं को आसानी से अपना सका जो वहां के लोगों के लिए सामान्य चीज थीं।

डायक्लीशन 305 ईसवी में सार्वजनिक जीवन से हट गया। यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि उसने ऐसे समय क्यों तख्त छोड़ दिया जब वह सत्ता के शीर्ष पर था। गिब्बन का कहना है कि बिगड़ती सेहत भी एक कारण है जिसने डायक्लीशन को राजकाज से अवकाश लेने के लिए प्रेरित किया। सत्ता छोड़ने के बाद डायक्लीशन ने अपने जीवन के बाकी नौ साल सालोनी (आधुनिक यूगोस्लाविया का स्प्लिट नगर) में गुजारे। उसने सत्ता में रहते हुए ही वहां अपने लिए एक विशाल महल बनवा लिया था। सालोनी में डायक्लीशन के शानदार महल के अवशेष अब भी मौजूद हैं और वे उसके राजकाल की आन-बान और शान का संकेत देते हैं।

डायक्लीशन के अवकाश ग्रहण करने के बाद सत्ता के लिए एक छोटे अरसे तक संघर्ष चला। इस संघर्ष के अंत में कांस्टनटाइन प्रथम (कांस्टनटाइन महान) 324 ईसवी में साम्राज्य का एकछत्र सम्राट बन गया। कांस्टनटाइन कांस्टैंटियस का पुत्र था जो डायक्लीशन के सहयोगी शासकों में से एक था। कांस्टनटाइन ने एकछत्र सम्राट बनने से पहले कई साल तक दूसरे सहयोगियों के साथ मिलकर सह-सम्राट के रूप में राज किया था। डायक्लीशन के सत्ता से हटने के बाद करीब दो दशक तक साम्राज्य को बांटने की उसकी व्यवस्था चलती रही। यह व्यवस्था अंततः टूट गई और 324 ईसवी तक कांस्टनटाइन ने एक संक्षिप्त गृहयुद्ध के बाद एक समूचे साम्राज्य को अपने एकीकृत नियंत्रण में ले लिया।

कांस्टनटाइन ने सम्राट का कार्यस्थल पूर्व में ले जाने की प्रक्रिया पूरी की । 324 और 330 ईसवी के बीच उसने यूरोप के दक्षिण-पूर्वी छोर पर अपने लिए एक नई राजधानी बनवाई। उसकी राजधानी मैरमरा सागर के निकट बैंइजैंटियम के प्राचीन नगर में स्थित थी। सामरिक रूप से स्थित मरमरा सागर आधुनिक तुर्की के यूरोपीय और एशियाई हिस्सों को अलग करता है। यह सागर एक पतला मार्ग है जो काला सागर और भूमध्यसागर को जोड़ता है। कांस्टनटाइन द्वारा स्थापित नगर का नाम कांस्टनटिनोपल या कुस्तुनतुनिया (अब इस्तांबुल) रखा गया। यह साम्राज्य का प्रधान प्रशासनिक केंद्र बन गया और बाद में कई सदियों तक बैजंतिया साम्राज्य की राजधानी रही। इसके साथ रोम नगर की राजनीतिक भूमिका खत्म हो गई। उसके बाद से राजपाट के मामलों में सीनेट से सलाह लेने की औपचारिकता तक निभाई नहीं गई। कांस्टनटाइन ने प्रिटारियन गार्ड्स भंग कर दिया और इस तरह उसने प्रिंसिपेट का एक और प्रमुख अवयव खत्म किया। उसने कांस्टनटिनोपल में एक समांतर सीनेट स्थापित की। कांस्टनटिनोपल का यह सीनेट मुख्य

रूप से नगरपालिका संबंधित काम करता था। इसके सदस्य पूर्व के प्रांतीय अभिजात वर्गों से लिए गए थे। नया सीनेट पूरी तरह कांस्टनटाइन के अधीन था। विधायी शक्तियां अब सम्राट के हाथों में केंद्रित हो गई थीं। 337 ईसवी में जब कांस्टनटाइन की मृत्यु हुई तो रोमन राज्य एक और उल्लेखनीय परिवर्तन से गुजर चुका था। डायक्लीशन और कांस्टनटाइन इस रूपांतरण के प्रमुख प्रणेता थे।

चौथी सदी ईसवी के पूर्वार्द्ध में रोमन राज्य का न सिर्फ चरित्र बदल चुका था बल्कि उसका भौगोलिक केंद्र बिंदु इटली से बदल कर पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र हो गया था। चौथी सदी ईसवी के उत्तरार्द्ध में साम्राज्य के पूर्वी और पश्चिमी हिस्सा दो भिन्न इकाइयां बन चुके थे। कुछ अपवादों को छोड़कर कांस्टनटाइन के उत्तराधिकारियों के लिए दोनों हिस्सों को एकताबद्ध रखना मुश्किल हो गया। 395 ईसवी के बाद साम्राज्य स्थायी रूप से अलग-अलग दो हिस्सों यानी पश्चिमी रोमन साम्राज्य और पूर्वी रोमन साम्राज्य (इसे बैजंतिया साम्राज्य भी कहते हैं) में बंट गया। तथ्यगत रूप से चौथी सदी ईसवी के बाद किसी रोमन साम्राज्य की बात करना गलत होगा। ऐतिहासिक सच्चाई बस यही है कि पूर्व में सिर्फ एक साम्राज्य था जिसकी राजधानी कांस्टनटिनोपल थी। पश्चिम में राज्य का कोई केंद्रीकृत ढांचा नहीं था। रोम नगर के पतन के नतीजे में पश्चिमी कुलीन वर्ग इटली, स्पेन और गॉल के ग्रामीण अंचलों में अपने विशाल जायदादों पर केंद्रित हो गया। पश्चिमी साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखर गया जिस पर अंशत: शक्तिशाली कुलीन वर्ग और अंशत: जर्मनिक कबीलों के सरदारों का राज था। पश्चिम में पूरी तरह से नया सामाजिक-आर्थिक ढांचा उभरा जिसने सामंतवाद के विकास के लिए स्थितियां पैदा कीं। इन बदलावों को रोमन अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के संदर्भ में देखना होगा जिस पर हम अगले खंड में चर्चा करेंगे।

III

गणतंत्र काल पर अपनी चर्चा के क्रम में हमने रोम में वर्ग विभेदीकरण की प्रकृति की जांच पड़ताल की। गणतंत्र की शुरुआत में एक छोटा पैट्रिशियन भूपति कुलीन वर्ग था जिसने एट्रुस्कन राजाओं के निकलने के बाद सत्ता पर कब्जा कर लिया था। ज्यादातर नागरिक आम प्लीबियन किसान थे। उनमें से ज्यादातर के पास अपने खेत थे। कुछ कृषक थे जो बड़े भूस्वामियों को श्रम मुहैया कराते थे। ये मुख्यत: मुक्त काश्तकार थे। हम कुछ गैर-मुक्त खेत-मजदूरों की संभावना खारिज नहीं कर सकते जो कुलीनों के खेतों पर काम करते होंगे। लेकिन गणतंत्र की शुरुआत में उनकी संख्या अवश्य ही नगण्य रही होगी। चाहे मामला कुछ भी हो, कुलीन वर्ग के जोत इस कदर बड़े नहीं होंगे कि उनमें श्रमिकों के व्यापक इस्तेमाल की जरूरत हो।

मध्य इटली में 500–300 ईसापूर्व के दौरान रोमन विस्तार से कुलीन वर्ग को कृषि भूमि के बड़े हिस्से मिले। ज्यादातर भूमि *एगर पब्लिकस* श्रेणी की थी जो राज्य को नियंत्रित करने वाले कुलीन वर्ग को पट्टे पर दी गई थी। *एगर पब्लिकस* का एक हिस्सा कंइक्टोरीज कहे जाने वाले प्रबंधकों को पट्टे पर दिया गया था जिससे राज्य को अच्छा मुनाफा हुआ। *एगर पब्लिकस* के वितरण को लेकर कुलीन वर्गों और गरीब किसानों के बीच लगातार संघर्ष होता था। इस संघर्ष के नतीजे में कुछ *एगर पब्लिकस* निर्धन किसानों को भी मिला जबकि कुछ हिस्सा रोमन अनिवेशों की स्थापना पर खर्च हुआ। इससे रोमन किसानों को संसाधन एकत्र करने में मदद मिली और वे सैनिक सेवा में आए। इटली के बाहर और भीतर के विस्तार के दूसरे चरण के लिए यह काफी महत्वपूर्ण था बहरहाल इस संघर्ष के कारण जमीन की मात्रा पर प्रतिबंध लगाए गए कि इससे अधिक एक व्यक्ति पट्टे पर नहीं ले सकता था (देखें अध्याय आठ)। कुलीन वर्गों ने इन प्रतिबंधों को दरकिनार कर दिया और ज्यादा से ज्यादा *एगर पब्लिकस* पर कब्जा कर बड़ी–बड़ी जायदादें खड़ी कीं। इन जायदादों पर उनका लगभग स्थायी कब्जा था और वे शायद ही कभी राज्य को उसका बकाया अदा करते थे। कुछेक पीढ़ियों के बाद रोमन क्षेत्रों की सार्वजनिक भूमि वस्तुतः कुलीन वर्गों की निजी संपत्ति में बदल गई।

प्यूनिक युद्ध के बाद शुरू हुए रोमन साम्राज्य के जबर्दस्त विस्तार ने कुलीन वर्गों को अभूतपूर्व पैमाने पर जमीन हासिल करने का मौका दिया। विस्तार के लिए किए गए इन युद्धों का फायदा ज्यादातर सीनेट–सदस्यों वाले कुलीन वर्ग को मिला। दूसरी तरफ रोमन पैदल सेना के मेरूदंड ऐसीडुइ को इन युद्धों का पूरा बोझ उठाना पड़ा। युद्धों से उनकी निर्धनता बढ़ी और इनमें भारी संख्या में *ऐसीडुइ* हताहत हुए। पी.ए. ब्रंट *(इटालियन मैनपावर)* ने आकलन किया है कि हैनीबाल के साथ युद्ध की शुरुआत में लगभग एक लाख *ऐसीडुइ* थे। उनके मुताबिक दूसरे प्यूनिक युद्ध के खत्म होने तक ज्यादातर प्लीबियन संपत्तिहीन हो चुके थे। उन्हें युद्ध में ढेर सारे लोग भी खोने पड़े।

शुरुआती गणतंत्र में श्रेणियों के टकराव का एक उल्लेखनीय नतीजा यह निकला कि 326 ईसापूर्व में *नेक्सम* समाप्त कर दी गई। गरीबी से बाध्य किसानों को धनिकों से कर्ज लेना पड़ता था। कर्ज अदायगी न कर पाने पर *नेक्सम* के सख्त रोमन कानून के तहत गरीब किसानों को गुलाम बनना पड़ता था। कर्ज–गुलामी ने भूपति कुलीन वर्ग को अपनी जायदादों के लिए गैर–मुक्त श्रम हासिल करने में मदद की। 326 ईसापूर्व के बाद स्वतंत्र रोमन किसानों को गैर–मुक्त श्रमिकों में बदलना मुश्किल हो गया। करीब 300 ईसापूर्व के बाद धनी जमींदारों ने इटली और विदेशों की ज्यादा से ज्यादा जमीनें अपनी झोली में डाल लीं और उससे श्रमिकों की कमी की समस्या गहरा गई। कुलीन वर्गों की जोत के रकबा में कई गुना का इजाफा हुआ और उसी अनुपात में श्रमिकों की मांग बढ़ी।

किसान कर्ज–गुलामी के खिलाफ संघर्ष में कामयाब रहे। लेकिन अपनी जमीन पर

अपना कब्जा बरकरार रखने का उनका संघर्ष नाकाम हो गया। 300 ईसापूर्व के बाद लगातार चलने वाले सैन्य अभियानों ने *ऐसीडुइ* को उनकी रोजी-रोटी के साधन से वंचित कर दिया। हथियार और जिरह बख्तर की खरीदारी एक खर्चीला मामला था। सैन्य अभियान की अवधि के दौरान कृषक-सैनिकों को अपना और अपने परिवार का खर्च उठाना पड़ता था। करीब 270 ईसापूर्व के बाद यह अवधि बढ़ती गई। उससे भी ज्यादा सैन्य अभियानों ने खेतों से किसानों को जुदा कर दिया। वास्तव में अनेक स्वस्थ वयस्क पुरुष युद्धों में मारे गए। इन समस्याओं के नतीजे में किसानों को कुलीन वर्ग के हाथों अपनी जमीनें खोनी पड़ीं। भूमि का पुनर्वितरण इसका एक हल हो सकता था। लेकिन ग्रैकस के कृषि सुधारों की असफलता और ग्रैकस बंधुओं के कार्यक्रम बाधित करने के लिए छेड़ी गई हिंसा की लहर ने इस संभावना को हमेशा के लिए खत्म कर दिया। बहुसंख्यक किसान *प्रोलतारी* बन गए। भूमिहीन *प्रोलतारी* श्रम की मांग एक हद तक पूरा कर सकते थे। लेकिन परवर्ती गणतंत्र में व्याप्त ऐतिहासिक हालात ने *प्रोलतारी* को कुलीन वर्ग से बड़ी रियायत, मुफ्त खाद्यान्न हासिल करने में मदद की। हम पिछले अध्याय में उन हालात की चर्चा कर चुके हैं। एक बार जब *प्रोलतारी* भोजन की बुनियादी जरूरत पूरी होने को लेकर आश्वस्त हो गए तो उन्होंने रोम शहर छोड़ने और धनिकों की जायदादों पर काम करने में रुचि नहीं जताई।

नेक्सम के खात्मे के बाद के घटनाक्रम ने श्रम की आंतरिक आपूर्ति घटा दी। फिनले के अनुसार यह बड़े पैमाने पर गुलामी के विकास के पूर्वशर्तों में से एक थी। कुलीन वर्ग अब गुलाम श्रम का इस्तेमाल कर अपनी विशाल जायदादों, *लैटीफुंडिया* में उत्पादन कर सकते थे। गुलामी पहले से ही यूनान और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में बड़े पैमाने पर व्याप्त थी। गुलामों को पकड़ने और उन्हें खरीदने-बेचने का एक तंत्र मौजूद था। कई सदियों तक गुलाम भूमध्यसागरीय क्षेत्र में व्यापार का एक महत्वपूर्ण माल थे। यूनानी राज्यों ने संपत्ति के इस रूप के लिए व्यापक कानूनी प्रावधान किए थे और उसे संस्थाबद्ध कर दिया था। चूंकि 326 ईसापूर्व से बहुत पहले से ही भूमध्यसागरीय क्षेत्र में गुलाम आधारित कृषि उत्पादन की प्रणाली व्याप्त थे, यह संभव है कि गुलाम श्रम एक सीमित पैमाने पर शुरुआती गणतंत्र के रोमन जायदादों में प्रचलित हो।

सिकंदर के आक्रमण से लेकर ऐक्टियम के युद्ध तक के तीन सौ के सालों तक यूनानी-रोमन जगत को तहस-नहस करने वाले युद्धों ने गुलाम व्यापार के फलने-फूलने का अवसर दिया। फिर भी जायदादों के छोटे आकार के कारण ग्रीस में गुलाम व्यापार की संभावनाएं सीमित थीं। इटली, स्पेन, गॉल और अफ्रीका में रोमन कुलीन वर्गों की जायदादों ने वह अवसर सृजित किए जो रोमन साम्राज्य के वजूद में आने से पहले अकल्पनीय था। इन क्षेत्रों के लैटीफुंडिया ने गुलामों की लगातार बढ़ती संख्या को खपत की। रोमन लैटीफुंडिया पर ही प्राचीन गुलामी विकास के शीर्ष पर पहुंची। युद्ध और

जलदस्युता (piracy) ने उन जायदादों पर गुलाम श्रम आधारित उत्पादन को खाद-पानी दिया। गुलाम पहली बार बड़े पैमाने पर यूनानी राज्यों में ग्रामीण और शहरी उत्पादन में इस्तेमाल किए गए। लैटीफुंडिया के उद्भव के बाद श्रम के इस रूप का भरपूर दोहन रोम अर्थव्यवस्था में हुआ।

ब्रंट ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि दूसरे प्यूनिक युद्ध के अवसर पर इटली की कुल आबादी (सिस-अलपाइन गॉल समेत) करीब 50 लाख थी। 225 ईसापूर्व के लिए किए गए उनके आकलन के अनुसार उनमें से 44 लाख मुक्त निवासी (उस समय एक लाख ऐसीडुइ थे) थे, जबकि छह लाख गुलाम थे। गणतंत्र के अंत तक कुल आबादी बढ़कर 70 लाख पहुंच गई थी। ब्रंट के आंकड़े वर्ष 43 ईसापूर्व के लिए हैं। उन्होंने दलील दी है कि 225 और 43 ईसापूर्व के बीच आबादी में हुए इजाफा को गुलामों की संख्या में हुई अभूतपूर्व वृद्धि से जोड़ा जाना चाहिए। मुक्त आबादी स्थिर थी या घट रही थी जबकि गुलामों की संख्या छह लाख से बढ़कर 30 लाख पहुंच गई। यह आंकड़े सिर्फ इटली के हैं। आगस्टस द्वारा किए गए साम्राज्य के पुनर्गठन से स्पेन और गॉल में कृषि एवं गुलामी का विस्तार हुआ। गुलाम-श्रम पर आधारित लैटीफुंडिया पश्चिमी प्रांतों की कृषिगत अर्थव्यवस्था का आधार बना।

इटली में 200 ईसापूर्व के बाद किसान तेजी से लुप्त हो गए। तीसरे प्यूनिक युद्ध के बाद यह प्रक्रिया और तेज हुई। तीसरा प्यूनिक युद्ध ऐसे समय हुआ जब यूनान, मकदूनिया और सीरिया में युद्ध जारी था। इन सभी युद्धों ने मिलजुलकर गुलामों के व्यापार को बढ़ावा दिया। युद्धबंदी बड़ी संख्या में भूमध्यसागरीय बंदरगाहों पर लाए जाते थे। रोमनों ने ईजीयन सागर में डेलोस द्वीप को मुक्त बंदरगाह (167 ईसापूर्व) घोषित किया। डेलोस गुलामों के व्यापार के लिए भूमध्यसागर में सर्वप्रमुख बंदरगाह बन गया। करीब 150 से 31 ईसापूर्व के बीच पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र और पश्चिम एशिया में जारी लगातार युद्ध से इस क्षेत्र में जलदस्युता को बढ़ावा मिला। लुकुलस की वापसी के बाद जब पांपी को पूर्व में भेजा गया तो उसे सौंपे गए प्रमुख कार्य भारों में जलदस्युता का खात्मा भी शामिल था। जब आगस्टस प्रिंसेप्स बना तो उसने जिन कार्यों को प्राथमिकता दी उसमें जलदस्युता को कुचलना भी शामिल था जो मार्क एंटनी और आगस्टस के बीच गृहयुद्ध से बनी अस्थिरता के दौरान सक्रिय हो गए थे। जलदस्युता को कुछ समय के लिए रोक दिया गया। लेकिन यह कभी पूरी तरह खत्म नहीं हुआ। गुलामों की आपूर्ति बढ़ाने के लिए समुद्री डाकुओं का हमला अनिवार्य बना रहा। ऐसा खासकार *पैक्स रोमाना* की स्थापना के बाद हुआ। आगस्टस और ट्राजन के शासन के बीच महज कुछ ही बड़े सैन्य अभियान हुए। गुलाम हासिल करने के लिए साम्राज्य के दूरदराज के पिछड़े इलाकों में समुद्री डाकुओं के हमलों और सैनिक दुस्साहसियों का सिलसिला नियमित रूप से चलता रहा। काला सागर के इर्द-गिर्द के क्षेत्रों में बसने वाले कबीले उनके सर्वप्रमुख लक्ष्य थे।

गणतंत्र के परवर्ती काल में रोमन साम्राज्य में सस्ते गुलाम श्रम की बाढ़ आ गई। उन गुलामों को इटली, स्पेन, गॉल और अफ्रीका के प्रांत के लैटीफुंडिया में लगाया गया। कुलीन वर्गों ने गुलामों पर आधारित कृषि उत्पादन से अकूत अधिशेष पाया जिससे उन्हें बेशुमार दौलत मिली। आगस्टस युग के दौरान शांति और स्थिरता ने रोमन शासक वर्ग को और दौलत बटोरने में मदद की। क्लासिकी यूनान के बड़े जमींदारों की जायदादें लैटीफुंडिया की तुलना में कुछ भी नहीं थीं। यूनानी राज्यों में बड़ी जोतों का रकबा 75 से 100 एकड़ के बीच था। 100 एकड़ से ज्यादा रकबा वाली जायदादें इक्की-दुक्की ही थीं। इसके बरखिलाफ रोमन कुलीनों के लैटीफुंडिया सामान्य रूप से कई हजार एकड़ के होते थे। बहुत बड़े लैटीफुंडिस्टों के पास कई लाख एकड़ रकबे की जोत थी। नीरो के शासन के दौरान सिर्फ छह परिवार ही कथित रूप से आधा अफ्रीका प्रांत (तब तक अफ्रीकी प्रांत ट्यूनिसिया तक सीमित नहीं था बल्कि उससे बड़ा था) के मालिक थे।

यूनानी राज्यों के समान रोमन कानून गुलामों को संपत्ति के एक रूप की मान्यता देते थे। गुलामों के लिए आमतौर पर *सर्वस* शब्द का इस्तेमाल होता था। रोमन कानून ने निजी संपत्ति की अवधारणा के प्रति समग्र समझ विकसित की और यह अवधारणा गुलामों पर भी लागू होती थी। गुलाम पर उसके मालिक का पूर्ण और बेलगाम अधिकार था। गुलाम मवेशियों के समान ही बाजार में खरीदी और बेची जाने वाली जिंस थे। गुलाम वैधानिक अधिकारों से पूरी तरह वंचित थे और इसके कारण समाज में उनकी कोई हैसियत नहीं थी। गुलाम के पास कोई अधिकार नहीं था। वे महज किसी वस्तु की तरह थे। रोमन समाज में गुलामों की इतनी बड़ी आबादी को संभालने के लिए राज्य की मशीनरी, खासकर कानून और विधायी संस्थाओं के द्वारा उनका इस कदर निम्नीकरण बहुत जरूरी था।

भले ही गुलाम संपत्ति थे लेकिन वे अनोखी तरह के संपत्ति थे। आखिरकार वे मनुष्य भी थे। मनुष्य के रूप में वे सोच सकते थे, संवाद कर सकते थे, दूसरे मनुष्यों के साथ संबंध बना सकते थे और अपनी हैसियत सुधारने के लिए प्रयास कर सकते थे। रोमन राज्य के बाद यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त बल था कि गुलाम खुद को आजाद करने की कोशिश नहीं करें। लेकिन दीर्घकालिक स्तर पर लगातार बल का प्रयोग कर गुलामी की व्यवस्था को टिकाए रखना बहुत व्यावहारिक नहीं था। रोमन समाज ने कानून और अन्य तरीकों से जो मूल्य बनाए थे वे गुलामों को हर तरह की गरिमा से वंचित करते थे। ये मूल्य-मुक्त लोगों को गुलामों से कोई हमदर्दी नहीं रखने की सीख देते थे। जहां तक गुलामों का मामला था, उनके साथ इस कदर दुर्व्यवहार किया जाता था कि उन्हें यह भी होश नहीं रहता था कि वे भी इंसान हैं।

एक इलाके से पकड़े गुलामों को एक साथ नहीं रखा जाता था। उन्हें जहां तक संभव हो एक दूसरे से ज्यादा से ज्यादा दूरी पर रखा जाता और एक इलाके के गुलामों

को दूसरे इलाकों के गुलामों के साथ मिला दिया जाता था। इससे यह सुनिश्चित होता था कि गुलाम आपस में एकजुटता के संबंध नहीं बना पाएं। किसी एक जायदाद में काम करने वाले गुलाम विभिन्न बोलियां बोलते थे। गुलामों के बीच बंधुत्व पर आधारित कोई संबंध नहीं होता था और न ही उनका कोई परिवार होता था। एकमात्र रिश्ता जिससे वे बंधे थे, मालिक के साथ था और यह पूर्ण पराधीनता का रिश्ता था। गुलाम की अपनी कोई पहचान नहीं थी। वे अपना कोई नाम तक नहीं रख सकते थे। उन्हें उनके मालिक के दिए गए नाम से बुलाया जाता था।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि गुलामों ने खुद को आजाद करने का कोई प्रयास नहीं किया। गुलामों ने भागने की कोशिश की खासकर उन इलाकों में जहां स्थितियां अस्थिर थीं। उन्नीसवीं सदी के अमरीका के बरखिलाफ जहां सिर्फ अश्वेत गुलाम थे, या फिर यूनान के बरखिलाफ जहां गुलाम ज्यादातर गैर-यूनानी थे और पहचाने जा सकते थे क्योंकि वे यूनानी भाषा नहीं बोल सकते थे, रोमन गुलाम विविध भौगोलिक उत्पत्ति के थे। रोमन साम्राज्य बेहद सार्वभौमिक था और ऐसे में किसी गुलाम के निकल भागने पर उसका पता लगाना मुश्किल था। इस तरह से अकेले भागने की घटनाओं के अलावा छोटे-मोटे संगठित विद्रोह भी हुए। दुर्भाग्यवश समकालीन सूत्रों ने इस तरह के विद्रोहों का बहुत कम जिक्र किया है। हमें गुलामों के तीन प्रमुख विद्रोहों की जानकारी है। तीनों विद्रोह परवर्ती गणतंत्र में हुए। उनमें से सबसे ज्यादा गंभीर 73-71 ईसापूर्व का स्पार्टाकस विद्रोह था जिसकी हमने पिछले अध्याय में चर्चा की है।

पहला बड़ा गुलाम विद्रोह (136-132 ईसापूर्व) सिसिली में हुआ जिसे पहला गुलाम युद्ध कहा जाता है। रोमन आधिपत्य में आने के बाद से गुलाम इस विशाल द्वीप के लैटीफुंडिया में अत्यधिक खराब स्थितियों में काम करते थे। सेल्यूकस वंश के राजा एंटीओकस तृतीय के खिलाफ रोमन अभियानों के दौरान सीरियाई और अनातोलियाई युद्धबंदियों की एक भारी तादाद को गुलाम बना कर सिसिली में कृषि कार्यों में लगाया गया था। 36 ईसापूर्व में एयुनस नामक एक गुलाम ने अपने मालिक की हत्या कर डाली और सिसिली की जायदादों के गुलामों को संगठित कर रोमन भूस्वामियों के क्रूर दमन के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया। एयुनस सीरिया के अपामिया का एक धार्मिक नेता था और उसने सीरियाई गुलामों को संगठित करने के लिए धार्मिक भावनाओं का इस्तेमाल किया था। उसने एंटीओकस का नाम ग्रहण कर खुद को राजा घोषित कर दिया। सिसिली की अनेक यूनानी बस्तियों ने उसकी बादशाहत का अनुमोदन किया। 132 ईसापूर्व में यह विद्रोह कुचल दिया गया। फिर भी एयुनस सिसिली के गुलामों का प्रेरणा स्रोत बना रहा। 104 ईसापूर्व में एक दूसरा गुलाम विद्रोह सिसिली में फूट पड़ा जिसे दूसरा गुलाम युद्ध (104-102 ईसापूर्व) के नाम से जाना जाता है। सैल्वियस और ट्राइफोन ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया। ट्राइफोन पेशे से मूलतः बांसुरीवादक था। एथेंस और मुख्य

भूमि यूनान के दूसरे हिस्सों के अनेक गुलामों ने इस विद्रोह के प्रति समर्थन जुटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विद्रोह दो साल तक चला और विद्रोही गुलाम 102 ईसापूर्व में परास्त हुए।

हमने पिछले अध्याय में स्पार्टाकस विद्रोह का जिक्र किया था। विद्रोह कैपुआ (आधुनिक नेपल्स के निकट कैंपेनिया में) में शुरू हुआ था। जल्द ही यह दक्षिणी इटली के ज्यादातर इलाकों में फैल गया। एक बार फिर सिसिली गुलाम विद्रोह का एक महत्वपूर्ण केंद्र बना। स्पार्टाकस एक जबर्दस्त सैनिक नेता था। उसने 90,000 समर्थकों की एक सेना संगठित की। इनोमौस और क्रैसस स्पार्टाकस के दो प्रमुख सहयोगी थे। स्पार्टाकस की सेना में सेल्टिक और जर्मनिक कबीलों के गुलामों की बड़ी तादाद शामिल थी। दो साल से ज्यादा अर्से तक दक्षिणी इटली के ज्यादातर हिस्सों पर स्पार्टाकस की सेना का नियंत्रण बना रहा। रोमनों को इस विद्रोह का दमन करने के लिए क्रैसस के नेतृत्व में बड़े पैमाने पर एक सैनिक अभियान छेड़ना पड़ा।

रोमन अर्थव्यवस्था के हरेक क्षेत्र में गुलाम श्रम मौजूद था। कृषि, खनन और दस्तकारी उद्योग में गुलामों की संख्या सर्वाधिक थी। दस्तकारी उत्पादन में 90 प्रतिशत हिस्सा गुलामों का था। गुलामों को सरकारी दफ्तरों में क्लर्क के रूप में भी नियुक्त किया जाता था। राज्य की मिल्कियत वाले गुलामों की भी एक श्रेणी थी जिन्हें कड़ी मेहनत-मशक्कत वाले कामों के लिए प्रशासन के सबसे निचले स्तर पर लगाया जाता था। गुलामों की संख्या विशाल थी और उन्हें विविध कामों में लगाया गया था। ऐसे में यह कोई अचंभे की बात नहीं थी अगर गुलामों में भी कोई श्रेणीबद्धता हुआ करती थी। एक सिरे पर हुनरमंद गुलाम थे जिन्हें लैटीफुंडिया में कामकाज की देखरेख की जिम्मेदारी सौंपी जाती थी। शानदार कारीगरों और प्रशासनकर्मियों की एक छोटी सी जमात भी इस समूह से आती थी। उसके बाद अर्ध-कुशल और अकुशल गुलाम थे जिन्हें कृषि उत्पादन या घरेलू कामकाज में लगाया जाता था। ज्यादातर गुलाम लैटीफुंडिया में काम करते थे। अकुशल कृषक गुलामों को अकसर जंजीरों में बांध कर रखा जाता था। जंजीरों में बंधे गुलाम निम्नतम श्रेणी के थे। ये गुलाम और साथ ही खनन में लगे गुलाम बड़ी भयावह स्थितियों में काम करते थे। लैटीफुंडिया के गुलामों को छोटे-छोटे दलों में बांट दिया जाता था। हरेक दल की निगरानी के लिए एक व्यक्ति होता था जो खुद भी गुलाम हो सकता था। लैटीफुंडिया को 150-200 एकड़ों की इकाइयों में बांट दिया जाता था और गुलामों के हरेक दल को एक-एक इकाई का कामकाज सौंप दिया जाता था। लैटीफुंडिया के तमाम गुलामों को भी एक देखरेख करने वाले (*विलिकस*) को सुपुर्द कर दिया जाता था।

रोमन कुलीन वर्गों ने इटली, स्पेन, गॉल और अफ्रीका में सरकार से पट्टे पर मिली बड़ी-बड़ी जायदादों को अपनी निजी जमीनों के साथ मिला कर विशाल लैटीफुंडिया बनाए थे। एक समय के बाद दोनों के बीच फर्क करना मुश्किल हो गया और बड़े भूस्वामियों

ने सार्वजनिक जमीनों पर स्थायी रूप से कब्जा कर लिया। सम्राटों के निजी स्तर पर अपने लैटीफुंडिया होते थे। आगस्टस के समय से ही मिस्र के ज्यादातर हिस्सा को सम्राट की निजी संपत्ति माना जाता था। शाही जमीन पर उत्पादन आमतौर पर शाही अहलकार संगठित करते थे। लेकिन मिस्र में जमीन का एक हिस्सा कुछ व्यक्तियों को भी सुपुर्द किया जाता था। यूनान में लघु कृषक वर्ग महत्वपूर्ण बना रहा। पश्चिम एशिया और मिस्र गुलाम अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित नहीं हो सके और उन क्षेत्रों में उत्पादन तथा अधिशेष दोहन के प्रचलित तरीकों पर रोमन शासक वर्ग ने खुद को थोपा। रोमन शासन के समूचे काल में मिस्र का बड़ी निर्ममता से शोषण किया गया और परवर्ती रोमन साम्राज्य के दौर में इस देश में बड़े पैमाने पर मृदाक्षरण के सबूत मिले हैं। मिस्र में कृषि उत्पादकता में गिरावट ने तीसरी सदी ईसवी में साम्राज्य की आर्थिक समस्याओं को विकट बना दिया।

लैटीफुंडिया-मालिकों ने ध्यान रखा कि उनकी तमाम जमीनें एक ही जगह केंद्रित नहीं हो जाएं। जमीनों को व्यापक स्तर पर इधर-उधर वितरित किया गया था ताकि मौसम की अनिश्चितताओं से बचा जा सके। साम्राज्य की सबसे उपजाऊ जमीन पर कब्जा करने का रुझान था। रोमन गणतंत्र के अंत तक इटली में लैटीफुंडिया ने लघु कृषि की जगह ले ली थी और बचे-खुचे किसानों को खराब जमीनों की तरफ ढकेल दिया गया था। लैटीफुंडिया ने छोटे जोतों को खत्म करने का प्रयास किया। ट्राजन ने एक कानून बनाया था जिसके तहत तमाम सीनेटरों को अपनी संपत्ति की एक तिहाई (मारकस आरेलियस ने उसे घटाकर एक-एक चौथाई कर दिया था) इटली में लगाना था। इसके कारण कुलीनों ने छोटे जोतदारों की कीमत पर जमीनें ली होंगी। मध्य इटली के पश्चिमी हिस्से में स्थिति कैंपेनिया का समृद्ध मैदानी इलाका प्रायद्वीप का सर्वाधिक उपजाऊ इलाका था। यहां लगभग तमाम कृषि योग्य भूमि लैटीफुंडिया में बदल दी गई थी। पश्चिमी इटली के मुकाबले एपेनाइन क्षेत्र की मिट्टी पथरीली और खराब किस्म की थी। कुलीन वर्गों ने किसानों को पश्चिम के उपजाऊ मैदानी इलाकों से खासकर कैंपेनिया से खदेड़ दिया और उन्हें पूर्व के पर्वतीय एवं सीमांत इलाकों में सीमित कर दिया।

इटली के लैटीफुंडिया में अनाज उपजाने और भेड़ तथा मवेशी पालने पर जोर दिया गया। दरअसल इटली के कुछ हिस्सों में चरागाहों ने कृषि से ज्यादा महत्व ग्रहण कर लिया था। दक्षिण इटली में अनेक लैटीफुंडिया को घोड़ों के फार्मों में बदल दिया गया था। जैतून और अंगूर की खेतियां धीरे-धीरे स्पेन और गॉल की जायदादों में बदल दी गई थीं जबकि अफ्रीका और मिस्र इतालवी शहरों में गेहूं के मुख्य आपूर्तिकर्ता बन गए। उत्तरी इटली का सिस-अलपाइन क्षेत्र बाजरा और सुअर के मांस का केंद्र बना। स्पेन, गॉल और अफ्रीका के प्रांत के लैटीफुंडिया में होने वाली मुख्य फसलें जैतून, अंगूर और गेहूं की थीं। दक्षिणी गॉल उम्दा किस्म के शराब के निर्माण का केंद्र बनने लगा। जैतून और अंगूर की खेतियों को बढ़ावा देने के लिए सिर्फ बड़े जमींदारों के पास आवश्यक

संसाधन थे। अंगूर के पौधों को लगाने के बाद उसमें फल आने में कई साल लग जाते हैं। जैतून के मामले में पेड़ के परिपक्व होने में पूरी एक पीढ़ी खत्म हो जाती है। जैतून की फसल एक साल के अंतर पर आती है। इनकी खेती अमीर जमींदारों के लिए आसान थी।

प्राचीन रोम में जितने बड़े पैमाने पर गुलामों का इस्तेमाल हुआ वह समूचे मानव इतिहास में अभूतपूर्व है। यूनान की तरह रोम महज *गुलामों वाला समाज* नहीं था, बल्कि एक *गुलाम समाज* था। फिनले के मुताबिक यूनानी-रोमन समाज को एक गुलाम समाज माना जा सकता है क्योंकि वहां उत्पादन में गुलामों का बहुत बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होता था। ज्यादातर मार्क्सवादी चिंतकों का भी यही विचार है। मार्क्सवादी इतिहासकारों ने यूनानी-रोमन समाज-रचना को एक गुलाम समाज-रचना कहा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि प्राचीन यूनानी-रोमन समाज में तमाम उत्पादन गुलाम श्रम पर आधारित था। इसका मतलब यह हुआ कि यूनानी-रोमन जगत में गुलाम-श्रम आधारित उत्पादन मुख्य उत्पादन प्रणाली था। उत्पादन प्रणाली उत्पादन के साधन और उत्पादन संबंध का योग होती है। उत्पादन के साधन वस्तु, उपकरण और उत्पादन में इस्तेमाल होने वाली प्रौद्योगिकी होते हैं। उत्पादन संबंध का अर्थ उत्पादन के साधनों (खेत, मवेशी, उपकरण इत्यादि) के नियंत्रण की व्यवस्था, और उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल सभी के बीच का रिश्ता (मसलन गुलाम-आका, भूदास-सामंत, मजदूर-पूंजीपति) है।

उत्पादन के संबंध यह निर्धारित करते हैं कि अधिशेष का दोहन और पुनर्वितरण कैसे होगा। वर्ग-विभाजित समाज में उत्पादन की हरेक प्रणाली का अपना एक विशिष्ट तरीका होता है जिससे वह वास्तविक उत्पादनकर्ता से अधिशेष हड़प लेती है। इस तरीका को अधिशेष दोहन संबंध कहा जा सकता है और यह किसी उत्पादन प्रणाली के उत्पादन संबंध का एक विशिष्ट लक्षण होता है। अधिशेष दोहन संबंध उत्पादन प्रणाली को अपना नाम देता है। इस तरह ऐसी व्यवस्था को गुलाम उत्पादन प्रणाली कहा जाएगा जिसमें अधिशेष का दोहन गुलाम-श्रम के मार्फत होता है, अर्थात जहां वास्तविक उत्पादनकर्ता गुलाम हैं और गुलाम-मालिक अधिशेष हड़प लेते हों। किसी समाज में एक साथ कई उत्पादन प्रणाली चल सकती हैं। यूनानी-रोमन समाज में गुलामी और मुक्त-कृषक उत्पादन साथ-साथ चल रहे थे। बहरहाल, एक प्रधान उत्पादन प्रणाली होगी और यही प्रधान उत्पादन प्रणाली सामाजिक संरचना की प्रकृति निर्धारित करती है। मसलन उन्नीसवीं सदी के अमरीका में दक्षिणी राज्यों के बागानों में व्यापक स्तर पर गुलामी की व्यवस्था थी जबकि देश में पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली भी चल रही थी। गुलाम अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का स्वार्थ पूरा कर रही थी। इस तरह वह उसके अधीन थी। यही कारण है कि हम उन्नीसवीं सदी के अमरीका में पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली को प्रधान उत्पादन प्रणाली मानते हैं और उसे गुलाम सामाजिक रचना नहीं बल्कि पूंजीवादी सामाजिक

संरचना मानते हैं। उसी तरह प्राचीन यूनानी–रोमन सामाजिक संरचना एक गुलाम सामाजिक संरचना थी क्योंकि गुलाम उत्पादन प्रणाली प्रधान उत्पादन प्रणाली थी।

इतिहासकार इस बात पर एकमत हैं कि प्राचीन यूनान और रोम में (यूनान के मुकाबले रोम में ज्यादा) बड़ी संख्या में गुलाम मौजूद थे और कम से कम रोम में उनका अच्छा-खासा हिस्सा उत्पादन में लगा हुआ था। एक तरफ ऐसे विद्वान हैं, खासकर गैर–मार्क्सवादी विद्वान, जो मानते हैं कि गुलामों की भूमिका बढ़ा–चढ़ा कर पेश की गई है और अर्थव्यवस्था में गुलामों की कोई केंद्रीय भूमिका नहीं थी। गैर–मार्क्सवादियों की दलील है कि किसानों और मुक्त श्रमिकों के मुकाबले गुलामों की संख्या बेहद कम थी। गुलाम महज श्रमिकों की एक श्रेणी थे और यह कोई सबसे महत्वपूर्ण श्रेणी नहीं थी। फिर भी इस सवाल पर गैर- मार्क्सवादियों के अलग–अलग विचार हैं। जैसा कि हमने देखा इस विषय पर अग्रणी विशेषज्ञ फिनले का दृढ़ मत है कि यूनानी–रोमन समाज एक गुलाम समाज है। फिनले एक गैर–मार्क्सवादी विशेषज्ञ हैं।

दूसरी तरफ मार्क्सवादी विद्वान यूनानी–रोमन अर्थव्यवस्था के संदर्भ में गुलाम–श्रम को बहुत महत्व देते हैं। मार्क्स ने खुद ही कहा था कि गुलामी यूनानी–रोमन सामाजिक संरचना का निर्णायक आविष्कार है। हालांकि मार्क्स और एंगेल्स ने प्राचीन यूनानी–रोमन समाज के विभिन्न पहलुओं पर लिखा, उन्होंने गुलाम सामाजिक संरचना का विस्तृत अध्ययन करने का प्रयास नहीं किया। एंगेल्स ने *परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति* में प्राचीन यूनान और रोम पर मार्क्सवादी समझ पर एक अपेक्षाकृत विस्तृत टिप्पणी की। लेकिन यह एक तरह से उपयोगी खाका था जिसे बाद के इतिहासकार इस्तेमाल कर सकते थे। यह बस हाल में, *परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति* के प्रकाशन की पूरी एक सदी बाद गुलाम सामाजिक संरचना की समग्र और व्यापक मार्क्सवादी विवेचना प्रकाशित हुई है। ब्रिटिश इतिहासकार जाफरी डी स्टे क्रोआ ने *दि क्लास स्ट्रगल इन एनशिएंट ग्रीक वर्ल्ड* (1981) शीर्षक से एक वृहद अध्ययन प्रकाशित किया जिसमें अरब विजय तक यूनानी इतिहास के 1400 साल समेटे गए हैं। स्ट्रेक्रोयक्स ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से जिस विस्तार के साथ गुलाम उत्पादन प्रणाली की गत्यात्मकता तलाशने की कोशिश की वह अभूतपूर्व है। भले ही शीर्षक से लगे, लेकिन *दि क्लास स्ट्रगल इन एनशिएंट ग्रीक वर्ल्ड* यूनान तक सीमित नहीं है। उसमें रोमन गुलाम व्यवस्था की भी व्यापक चर्चा की गई है। उन्होंने यूनानी–रोमन जगत में अधिशेष दोहन संबंधों के विविध रूपों का अध्ययन किया है।

सर्वप्रथम अधिशेष दोहन के शासक वर्ग के तमाम अप्रत्यक्ष तरीकों का जिक्र किया गया है। उनमें राज्य की ओर से थोपे गए कर भी शामिल हैं। एथेंसवासियों और रोमनों ने अपने नियंत्रण वाले इलाकों से भारी खिराज वसूले। प्रिंसिपेट और डॉमीनेट में रोमन कर कई गुना बढ़े। क्लासिकी एथेंस में और रोम के परवर्ती गणतंत्र एवं शुरुआती प्रिंसिपेट

के दौरान नागरिकों पर कर के बोझ अपेक्षाकृत कम थे। एथेनियाई राज्य ने नागरिकों पर कोई नियमित कर नहीं लगाए। रोम में 167 ईसापूर्व (देखें पिछला अध्याय) के बाद इटली में रहने वाले नागरिकों को जमीन और व्यक्तियों पर लगने वाले मुख्य कर *ट्रिब्यूटम* से मुक्त रखा गया। लेकिन नागरिकों को दूसरे तरीकों से कर चुकाने पड़े। उन्हें राज्य को अवैतनिक सैनिक सेवा देनी पड़ी और खुद ही अपने हथियार खरीदने पड़े। मार्क्स के शब्दों में, युद्ध के माध्यम से 'रोमन पैट्रिशियनों ने प्लेबियन को बर्बाद किया, उन्हें सैनिक के रूप में काम करने के लिए बाध्य किया,...और उन्हें कंगाल बनाया।' स्टे क्रोआ ने अन्य अनिवार्य सेवाओं की ओर ध्यान आकर्षित कराया है जिसे राज्य के लिए करना पड़ता था। उन्होंने *अंगारिया* की मिसाल दी है जो पश्चिम एशिया में प्रचलित राज्य के लिए की जाने वाली एक अनिवार्य सेवा थी। यह श्रम तमाम तरह के आधिकारिक कार्यों मसलन बोझ ढोने, मकान मरम्मत और सड़क की देखरेख से लेकर दोषियों का वध करने जैसे अरुचिकर काम में प्रांतीय प्रशासन की मदद करने के लिए तलब किया जा सकता था।

अधिशेष दोहन के विभिन्न अप्रत्यक्ष रूपों के अलावा ऐसे बेशुमार प्रत्यक्ष तरीके थे जिनसे अधिशेष का दोहन किया जाता था। स्टे क्रोआ मानते हैं कि कृषि क्षेत्र में किसान, छोटे जोतदार, खेत मजदूर, काश्तकार और बंटाईदार बड़ी संख्या में मौजूद थे। इन श्रेणियों ने कृषि क्षेत्र में बड़ी मात्रा में अधिशेष सृजित किया। लेकिन उन्होंने उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद इस बात पर जोर दिया कि खासकर इटली और रोमन साम्राज्य के पश्चिमी प्रांतों में *गुलामी अधिशेष दोहन का प्रमुख संबंध थी।* इसका यह निहितार्थ नहीं है कि उत्पादनकर्ताओं की बहुसंख्या गुलाम थी। स्टे क्रोआ की दलील थी कि कुलीन वर्ग ने गुलामों के माध्यम से ही अधिशेष के ज्यादातर हिस्से का दोहन किया। चूंकि गुलामी अधिशेष दोहन की मुख्य संबंध थी अर्थात उत्पादन प्रणालियां उसके तहत संगठित थीं, रोमन सामाजिक संरचना को गुलाम सामाजिक संरचना कहा जा सकता है।

मार्क्सवादी विद्वानों के हाल के कुछ अध्ययनों में इस परिकल्पना पर सवाल खड़ा किया गया है कि यूनानी और रोमन सामाजिक संरचनाएं एक समान थीं। एलेन एम वुड ने अपनी किताब *पेजेंट सिटीजन एंड स्लेव : दि फाउंडेशन्स आफ एथेनियन डेमोक्रेसी* में यूनानी और रोमन गुलामी के बीच साफ-साफ फर्क किया है। उनका तर्क है कि रोमन साम्राज्य इतिहास की एकमात्र सामाजिक संरचना है जिसे सही मायने में एक गुलाम सामाजिक संरचना करार दिया जा सकता है। उनके अनुसार रोम के विपरीत यूनान अनिवार्यत: एक कृषक अर्थव्यवस्था थी। हालांकि यूनान में व्यापक स्तर पर गुलामी थी, उत्पादन प्रक्रिया में गुलामों की नगण्य भूमिका थी। यूनानी राज्यों में गुलामों का इस्तेमाल मुख्यत: खनन और शहरी इलाकों में घरेलू कामकाज में होता था। ग्रामीण अंचलों में किसानों का प्रभुत्व था जिनका अपनी जमीन और उपज पर कुछ नियंत्रण था। यह खासकर

एथेंस के लिए सच था जहां आम नागरिकों की राजनीतिक भागीदारी ने किसानों की स्थिति स्थिर करने में मदद की और छोटे किसानों का एक हद से ज्यादा शोषण करना कुलीन वर्गों के लिए मुश्किल हो गया। यूनानी जायदादें उस आकार तक नहीं पहुंची थीं जो 200 ईसापूर्व के बाद रोम में था और इटली के विपरीत यूनानी राज्यों में लघु किसान विलुप्त नहीं हुए। यूनानी कृषक सैनिक अर्थात होप्लाइट्स को उस कदर बोझ नहीं उठाना पड़ा जितना रोमन विस्तार के अभूतपूर्व स्तर के कारण रोमन किसानों को उठाना पड़ा। वुड इस नतीजे पर पहुंची कि यूनान में स्थितियां बुनियादी रूप से रोम से भिन्न थीं। रोम को उसके अभूतपूर्व विस्तार के कारण एक अपवाद के रूप में लेना चाहिए क्योंकि इस विस्तार ने उसे इस हद तक गुलाम-श्रम इस्तेमाल करने की इजाजत दी। वुड का अध्ययन इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाता कि हम एथेंस में नागरिकों की तुलना में गुलामों की इतनी बड़ी आबादी को किस तरह देखें। क्लासिकी काल में गुलामों और नागरिकों के बीच का अनुपात 3 : 1 का था। आर्थिक रूप से यह व्यवहार्य नहीं होगा कि इतनी भारी संख्या में गुलाम शहरी धनिकों के घरों में घरेलू कामकाज करें। चाहे मामला जो हो, वुड भी मानती हैं कि गुलाम-श्रम रोमन अर्थव्यवस्था के लिए बेहद जरूरी था। अगले अध्याय में हम देखेंगे कि किस तरह गुलाम उत्पादन प्रणाली की समस्याओं ने रोमन अर्थव्यवस्था में संकट पैदा किया और रोमन साम्राज्य को पतन की ओर ले गईं।

अध्याय दस

प्राचीन रोम : संकट और पतन

I

रोमन साम्राज्य के विस्तार ने इटली, स्पेन, गॉल और उत्तर अफ्रीका में गुलाम आधारित उत्पादन प्रणाली के लिए स्थितियां तैयार कर दी थीं। *पैक्स रोमाना* की स्थापना ने गुलाम आधारित उत्पादन के विकास को कायम रखा। लेकिन रोमन शांति खुद ही इस उत्पादन प्रणाली की राह में रोड़ा बन गई। आगस्टस और ट्राजन के शासनकाल के बीच साम्राज्य का बहुत कम विस्तार हुआ। 117 ईसवी में ट्राजन के निधन के बाद कोई नया क्षेत्र साम्राज्य में शामिल नहीं किया गया। साम्राज्य के विस्तार के मकसद से किए गए युद्धों ने रोम के भूस्वामी कुलीन वर्गों के इस्तेमाल के लिए गुलाम श्रमिकों की एक बहुत बड़ी जमात मुहैया की थी। आगस्टस के शासनकाल के दौरान और उसके बाद कुछ ही इलाके जीते गए। नतीजतन बड़ी संख्या में गुलामों को पकड़ने के लिए कुछ ही मौके थे। ब्रिटेन की जीत, उत्तरी गॉल में रोमन शासन के सुदृढ़ीकरण, डेशीया पर कब्जा और पूर्वी सीमाओं का विस्तार फरात के पार तक हो जाने से 117 ईसवी तक रोम गुलामों की आपूर्ति बरकरार रख सका। इसके अलावा उत्तरी अफ्रीका और मध्य एवं पूर्वी यूरोप में साम्राज्य की परिधि पर बसे कबायली समूहों के साथ अकसर होने वाली झड़पों तथा पार्थियाइयों के साथ लगातार जारी टकरावों ने गुलामों के व्यापार में मदद की। इनसे समुद्री डाकुओं को भी गुलामों को पकड़ने के लिए हमला बोलने के नियमित अवसर मिले।

बहरहाल प्रिंसिपेट के पहले सौ साल के दौरान कुल रुझान गुलामों की आपूर्ति में कमी का था। ट्राजनोत्तर काल में यह समस्या और भी गंभीर हो गई। बड़े पैमाने पर गुलामों के पकड़े जाने का दारोमदार बड़े पैमाने पर होने वाले युद्धों पर था। पड़ोस के इलाकों, खासकर कबायली बस्तियों, पर हमलों से उसकी भरपाई हो सकती थी। लेकिन यह तभी तक संभव था जब तक साम्राज्य सैन्य रूप से मजबूत था। दूसरी सदी ईसवी के अंत तक रोम के लिए कबायली हमलों के खतरे को रोक पाना मुश्किल हो रहा था। इन हालात में सेना गुलामों को पकड़ने के अभियानों में सहयोग नहीं दे सकती थी।

गुलामों की किल्लत उनकी बढ़ती कीमतों में झलकी। ए.एच.एम. जोन्स के आकलनों के अनुसार दूसरी सदी ईसवी में गुलामों की कीमत दूसरी और पहली सदी ईसापूर्व के मुकाबले आठ से दस गुना ज्यादा थी। इस काल में प्लेग की दो बड़ी महामारियों के

कारण मानवशक्ति की एक आम कमी थी। साम्राज्य को 165 ईसवी और फिर 250 ईसवी में प्लेग की महामारी से जूझना पड़ा। इससे आबादी में जदर्बस्त कमी आई। मजदूरों की तादाद घटी और भूस्वामी कुलीन वर्ग ने अधिशेष के दोहन के नए तरीके अपनाए। स्टे क्रोआ का कहना है कि दूसरी सदी ईसवी तक गुलामों में धन लगाना मुनाफेबख्श नहीं रहा।

शुरू में गुलामों की ऊंची कीमत की भरपाई उनके अधिकाधिक शोषण से की गई। लेकिन यह एक हद से ज्यादा संभव नहीं था क्योंकि कृषि से जुड़े ज्यादातर गुलाम पहले से ही जीवन निर्वाह के स्तर से बहुत नीचे पर रह रहे थे। उन्हें बमुश्किल कोई खाना और कपड़ा मिलता था। जंजीरों में जकड़े गुलामों के जत्थे लैटीफुंडिया में देर तक कमरतोड़ मेहनत करते। फिर उनसे मेहनत कराने की एक सीमा थी। गौरतलब है कि गुलामों के बीच मृत्युदर बेहद ज्यादा थी। वे बदतरीन हालत में रहते थे जो उनकी मृत्यु का एक महत्वपूर्ण कारण थी। जैसे-जैसे गुलामों की कीमतें बढ़ीं, किसी गुलाम के मरने पर उसकी जगह दूसरा गुलाम लाना आसान नहीं रहा। इस स्थिति पर लैटीफुंडिया के मालिकों की पहली प्रतिक्रिया रही गुलामों का अधिकाधिक शोषण करना। उन्होंने *शोषण की दर* में वृद्धि करने की चेष्टा की। उससे मृत्युदर बढ़ी। उसके अतिरिक्त जैसा कि हम देख चुके हैं एक हद के बाद यह कोई व्यावहारिक हल नहीं था। दूसरी सदी ईसवी के बाद संकट आ पहुंचा।

गुलाम उत्पादन प्रणाली में संकट के चलते व्यवस्था में कुछ संशोधन करने की जरूरत महसूस की गई। यह इस तथ्य के कारण भी महसूस की गई कि प्रौद्योगिकी के स्तर पर रोमन कृषि गतिरुद्ध थी और साम्राज्य में कृषि के तरीकों में शायद ही कोई उल्लेखनीय सुधार हुआ था। सस्ते गुलाम श्रम की उपलब्धि प्रौद्योगिकी के विकास के रास्ते में आड़े आ रही थी क्योंकि श्रम में कटौती करने वाली तकनीक अपनाने का रुझान कम था। गुलामों के मालिकों ने दूसरे तरीकों से संकट से निबटने की कोशिश की। गुलामों का प्रजनन एक उल्लेखनीय आर्थिक गतिविधि बन गया जिसने कुछ समय तक श्रम संकट से छुटकारा पाने में मदद की। लेकिन मानव प्रजनन एक पेचीदा मामला है। मानव प्रजनन की सफलता विभिन्न सांस्कृतिक एवं जैविक कारकों पर निर्भर करती है। स्त्री और पुरुष गुलामों के अनुपात पर ध्यान रखना पड़ता है और यह अनुपात खासकर बड़े लैटीफुंडिया के मामले में हमेशा अनुकूल नहीं होता था। स्टे क्रोआ के अनुसार गुलाम-मालिकों ने प्रजनन की संभावना बढ़ाने के लिए स्त्री और पुरुष गुलामों को ढीला-ढाला पारिवारिक संबंधों में बंधने के लिए प्रेरित किया। इस तरह के गुलाम आपस में वैवाहिक और बंधुत्व पर आधारित संबंध बनाने लगे। अब वे महज पण्य नहीं रहे। कुछ को बड़ी जायदादों में भूखंड दे दिए गए जिन्हें गुलाम अपने परिवार वालों की मदद से खुद जोतते-बोते थे। अनेक बड़े भूस्वामी अब अपने लैटीफुंडिया में खुद खेती नहीं करवाते थे। उन्होंने गुलामों

को ये जिम्मेदारी सौंपनी शुरू कर दी जो छोटे भूखंडों से जुड़े थे। उन्हें फसल का एक हिस्सा मालिक को देना पड़ता था। इस नई प्रणाली से गुलामों की हैसियत में थोड़ा सुधार हुआ।

गुलामों के प्रजनन की जरूरत ने अनेक मामलों में (पारिवारिक संबंधों के कारण, अपनी जमीन होने के कारण) अब महज पण्य या वस्तु के रूप में नहीं देखे जाने के कारण गुलामों की हैसियत में सुधार किया। शहरी इलाकों में भी कुछ तब्दीलियां आईं। रोमन कानून में एक प्रावधान था जिसके तहत गुलामों को कुछ संपत्ति रखने की इजाजत थी। इस तरह की संपत्ति को *पिकुलियम* कहा जाता था। अपने मालिक की इजाजत से गुलाम उत्पाद का कुछ हिस्सा या उसकी आमदनी *पिकुलियम* के रूप में रख सकता था। बेशक गुलाम-मालिक ही *पिकुलियम* की मात्रा निर्धारित करते थे। इस तरह की संपत्ति को कानूनी मान्यता थी और गुलाम अपनी ओर से आर्थिक गतिविधियों में उसका इस्तेमाल कर सकते थे। ऐसे गुलामों के उल्लेख मिलते हैं जिन्होंने अपना *पिकुलियम* व्यापार, सूदखोरी और उत्पादन में लगाया। वे खुद भी अपना गुलाम रख सकते थे। इस तरह से कमाए गए मुनाफे का एक हिस्सा मालिक को देना पड़ता था जबकि बाकी राशि गुलाम के *पिकुलियम* में जुड़ जाता था। *पिकुलियम* प्रोत्साहन राशि के समान था जो गुलामों को खुद अपना व्यापार स्थापित कर मुनाफा कमाने के लिए प्रेरित करता था। मुनाफा में मालिकों का भी हिस्सा होता था। यह ठीक तरह से प्रशिक्षित गुलामों के कौशल के इस्तेमाल का ज्यादा सफल तरीका था। *पिकुलियम* सिर्फ शहरी इलाकों तक ही सीमित नहीं था, बल्कि वह ग्रामीण अंचलों में भी फैला था।

यूनान में गुलामों को मुक्त करने के मामले बेहद कम थे। उसके मुकाबले रोम में *दासमुक्ति* (गुलाम को आजाद करने) के ढेर सारे मामले थे। दासमुक्ति एक औपचारिक कानून था और उसके लिए कानूनी घोषणा की जरूरत पड़ती थी। रोमन राज्य दासमुक्ति पर कर लगाता था। आजाद होने के बाद गुलाम को वही नागरिक अधिकार मिल जाते थे जो उसके मालिक को हासिल थे। आजाद किए गए गुलाम को अपने पूर्व मालिकों के प्रति कुछ दायित्व निभाने होते थे। उन्हें अकसर अपने पूर्व मालिकान के प्रतिष्ठानों में देखरेख से जुड़े ओहदे दिए जाते थे। दासमुक्ति मुख्यत: एक शहरी परिघटना थी और गुलामों के निम्नतम तबके आम तौर पर इसकी उम्मीद नहीं कर सकते थे। अर्थात जंजीरों में बंधे कृषि गुलाम दासमुक्ति की उम्मीद अपने दिल में संजो नहीं सकते थे।

स्टे क्रोआ का कहना है कि दीर्घकालीन स्तर पर गुलामों का प्रजनन उन्हें पकड़ने की तुलना में कम मुनाफाबख्श थी। गुलाम व्यवस्था में सुधार ने गुलामों की शोषण दर घटा दी। शोषण दर के घटने के बाद कुलीन वर्ग अधिशेष दोहन के दूसरे तरीके अपना कर ही अपना शाही रहन-सहन बरकरार रख सकते थे। शोषण के दीगर तरीकों के इस्तेमाल किए जाने पर ही अधिशेष दोहन की कुल मात्रा बरकरार रखी जा सकती थी। कुलीन

वर्ग ने मुक्त कृषकों, पट्टाधारकों और कृषि मजदूरों पर ज्यादा बोझ डालकर यह काम अंजाम दिया। पश्चिम (इटली, स्पेन और गॉल) में बड़े भूस्वामी का जबर्दस्त वर्चस्व था। वहां मुक्त कृषक, पट्टाधारक और कृषि मजदूर उनके शोषण का विरोध नहीं कर सके। स्टे क्रोआ के शब्दों में, 'उसके अपरिहार्य परिणाम ये हुए कि जमींदार वर्ग गुलाम श्रमिकों से अपने मुनाफे की दर बरकरार नहीं रख सके और अपने जीवनस्तर को गिरने से बचाने के लिए वे छोटे मुक्त लोगों के शोषण की दर बढ़ाने के लिए प्रेरित हुए। मेरी मान्यता है कि रोमन शासक वर्गों ने सचमुच उसे अंशों में अंजाम दिया।'

दूसरी सदी ईसवी से कुलीन वर्गों ने *कॉलोनाइ* के नाम से जाने जाने वाले मुक्त काश्तकारों का दरजा गिराना शुरू कर दिया। *कॉलोनाइ* मूलत: पट्टाधारक किसान थे। किसी उपनिवेश में बाहर से आकर बसने वालों के साथ इस वर्ग का घाल-मेल नहीं करना चाहिए। रोमन और इतालवी उपनिवेशों (*कॉलोनाइ*) के सदस्य *कॉलोनस* (बहुवचन *कॉलोनाइ*) के नाम से भी जाने जाते थे। *कॉलोनाइ* शब्द का एक और अर्थ था: यह मुक्त पट्टाधारक किसानों के लिए इस्तेमाल होता था जिनके पास अपनी कोई जमीन नहीं थी। हम यहां उनका जिक्र इन्हीं अर्थों में कर रहे हैं। इन पट्टदार किसानों के पास बेहद सीमित संसाधन थे। सामान्यत: उनके पास खुद के उपकरण नहीं थे। वे बोने के लिए बीज भी खरीद नहीं पाते थे। भूस्वामी उन्हें उपकरण और बीज मुहैया कराते थे। *कॉलोनाइ* को उपज का एक हिस्सा, आम तौर पर *अनाज* की शक्ल में चुकाना पड़ता था। *कॉलोनाइ* मूलत: बटाईदार होते थे। भूस्वामी उनसे जो हिस्सा वसूलते थे, वह जमीन का किराया और कृषि उपकरणों तथा बीज की अदायगी होती थी। *कॉलोनाइ* की गरीबी उनकी निर्भरशीलता जताती थी।

सिद्धांतत: *कॉलोनाइ* मुक्त पट्टेदार होते थे क्योंकि उन्हें एक भूखंड से दूसरे भूखंड तक अपनी मनमर्जी से जाने की इजाजत थी। लेकिन वास्तव में वे भूस्वामी से बंधे थे। दूसरी सदी ईसवी तक भूस्वामियों ने *कॉलोनाइ* की आश्रित स्थिति का फायदा उठाकर उनसे बड़ा हिस्सा वसूलना शुरू कर दिया था। *कॉलोनाइ* एक जगह से दूसरी जगह जाने की अपनी आजादी खो बैठे और वे अपने-अपने भूखंडों से बांध दिए गए। डायक्लीशन की करारोपण प्रणाली ने पट्टेदारों पर उस जगह से हटने से रोक लगा दी जहां के कर आकलन रिकार्ड में उनका नाम दर्ज था और इस व्यवस्था को एक औपचारिक रूप दे दिया। कांस्टनटाइन के शासनकाल में *कॉलोनाइ* को वहां की मिट्टी से स्थायी रूप से बांधने के लिए और भी कानूनी प्रावधान किए गए। इन प्रावधानों में यह व्यवस्था की गई कि अगर जमीन की मिल्कियत बदलती है तो उसके साथ जुड़े *कॉलोनाइ* भी नए मालिक को हस्तांतरित किए जाएं। *कॉलोनाइ* की हैसियत अब मध्यकालीन भूदासों जैसी हो गई। लेकिन *कॉलोनाइ* और भूदासों को एक बराबर नहीं कहा जा सकता क्योंकि शास्त्रीय भूदासता के तहत सामंतों के अधिकारों के संदर्भ में उसके अनेक निहितार्थ थे, जो कई

सदियों में विकसित हुए थे। लेकिन भूदासता का रंग-रूप पहले से ही *कॉलोनाइ* में मौजूद था। गुलाम आधारित उत्पादन प्रणाली में बढ़ते संकट के साथ छोटे जोतदार, मुक्त कृषि मजदूर और ग्रामीण श्रमिकों के अन्य हिस्सों को *कॉलोनाइ* की हैसियत तक पहुंचाने का प्रभुत्वशाली भूस्वामी वर्ग में रुझान बढ़ रहा था।

कभी-कभी समूचा गांव भ्रष्ट अधिकारियों की उत्पीड़न से निजात पाने या डॉमीनेट की ओर से थोपे गए भारी कर से बचने के लिए कुलीन वर्ग से शरण मांगा करता था। ऐसे में किसान किसी कुलीन के सामने अपनी तमाम जमीन और आजादी रख देते जो उन्हें पट्टेदारी के रूप में उनको प्रदान कर देता। यह *पैट्रोसिनियम* की परिघटना थी जिसने चौथी सदी ईसवी में एक व्यापकता ग्रहण कर ली। किसान स्वैच्छिक आत्मसमर्पण कर बड़े भूस्वामियों या शक्तिशाली स्थानीय कमांडरों की सुरक्षा छतरी पाते। लेकिन वे अपनी आजादी और जमीन पर अपना मालिकाना हक खो देते। अब वे कुलीनों की जायदादों से बंधे पट्टेदार थे और उनकी हैसियत वस्तुत: *कॉलोनाइ* जैसी ही हो गई थी। यहां यह बात जोड़ी जा सकती है कि इटली, स्पेन और गॉल के एक बड़े हिस्से के ग्रामीण अंचलों में कुलीन वर्ग का प्रभुत्व था और उन इलाकों में *पैट्रोसिनियम* के विस्तार से रोमन राज्य को राजस्व से वंचित होना पड़ा। इसने पश्चिम में रोमन राज्य के प्राधिकार को और कमजोर कर दिया। *पैट्रोसिनियम* ने कुलीनों के छोटे-छोटे सत्ता केंद्रों के निर्माण को बढ़ावा दिया।

इस तरह हम देखते हैं कि तीसरी सदी ईसवी तक रोमन साम्राज्य के पश्चिमी भाग में विभिन्न प्रक्रियाओं से *जमीन से बंधे आश्रित कृषक पट्टेदारों* का एक समरूप वर्ग वजूद में आया। ऐसे तमाम कृषकों को *कॉलोनाइ* (चाहे उनकी पुरानी हैसियत कुछ भी रही हो) कहा जाता था और उसमें उन गुलामों को शामिल किया जाता था जिनकी हैसियत किसी भूखंड पर सपरिवार बसने से सुधर गई थी। इस तरह के गुलामों और अन्य *कॉलोनाइ* के बीच बहुत कम का फर्क था। अपनी आजादी खो बैठे मूल *कॉलोनाइ* पट्टेदार कृषक बनने के बाद अपनी हैसियत में उल्लेखनीय सुधार करने वाले गुलाम और दलित कृषक (और साथ ही साथ *पैट्रोसिनियम* स्वीकार करने वाले किसान) उत्तर रोमन साम्राज्य में *कॉलोनाइ* के वृहद समूह का हिस्सा बने।

भूस्वामी कुलीन वर्ग ने अब तक मुक्त कृषक रहे लोगों से गुलाम-आधारित उत्पादन की समस्याओं की वजह से कम हो रहे अधिशेष की मात्रा बढ़ाने का प्रयास भारी अधिशेष वसूल कर किया। चौथी सदी ईसवी तक पश्चिम में *कॉलोनाइ* पर आधारित उत्पादन प्रणाली ने प्रमुखता ग्रहण कर ली। गुलाम उत्पादन प्रणाली के संकट ने नई प्रणाली के अभ्युदय और उसी के साथ लैटीफुंडिया के पतन को अंजाम दिया। कॉलोनेट या *कॉलोनाइ* आधारित उत्पादन प्रणाली क्लासिकी यूनानी-रोमन गुलाम व्यवस्था और क्लासिकी मध्यकालीन यूरोपीय सामंतवाद के बीच के संक्रमणकालीन चरण का प्रतिनिधित्व करती

है। लेकिन यह नहीं समझना चाहिए कि उत्तर रोमन साम्राज्य में गुलामी पूरी तरह खत्म हो गई। गुलाम प्रथा अब भी वहां थी और कुछ इलाकों में अब भी लैटिफुंडिया का दौर जारी था। पांचवीं सदी ईसवी में हमें एक लैटिफुंडिया के मालिक का साक्ष्य मिलता है। रोम नगर के बाहरी इलाकों में स्थित उसके लैटिफुंडिया में 25,000 कृषि गुलाम काम करते थे। उसके अलावा घरेलू कामकाज, खनन कार्यों और सरकार के निचले स्तर पर गुलामों का इस्तेमाल जारी था।

गुलाम उत्पादन प्रणाली में संकट के साथ ही रोमन अर्थव्यवस्था एक आम संकट में फंसी। सबसे पहले साम्राज्य को बनाए रखने के लिए सैनिक और नौकरशाही पर बढ़ते खर्च थे। इतने विशाल साम्राज्य की रक्षा के लिए ढेर सारी धनराशि की दरकार थी। कई सदियों के दौरान हुए साम्राज्य के विस्तार से एक विशाल सेना की देखरेख के लिए जरूरी संसाधन जुटा था। दूसरी सदी ईसवी तक साम्राज्य के और विस्तार की संभावना खत्म हो चुकी थी। दूसरी तरफ मारकस औरेलियस के बाद साम्राज्य को जर्मनिक कबीलों के प्रति एक रक्षात्मक नीति पर अमल करना पड़ रहा था। जैसे-जैसे उन कबीलों का दबाव बढ़ता गया, साम्राज्य की सुरक्षा का खर्च भी बढ़ने लगा। आगस्टस के निधन के समय रोमन सेना में 2,50,000 नियमित सैनिक थे। ट्राजन के राज में उनकी तादाद बढ़कर 3,00,000 हो गई और सेप्टिमियस सेवेरस के काल में सैनिकों की तायदाद 3,30,000 हो गई। तीसरी सदी ईसवी के अंत में डायक्लीशन ने सैन्य सुधार किए। नतीजतन नियमित सैनिकों की संख्या 4,50,000 हो गई। डायक्लीशन ने यह इजाफा अनिवार्य सैन्य भरती लागू कर किया। चौथी सदी ईसवी तक रोमन सेना की शक्ति 6,50,000 पहुंच गई।

इतने बड़े पैमाने पर सैन्य संगठन के लिए राज्य की ओर से भारी करारोपण जरूरी हो गया। उत्तर गणतंत्र काल के दौरान रोमन विजय ने राज्य को इटली में रहने वाले रोमन नागरिकों को मुख्य कृषि कर, *ट्रिब्यूटम,* से मुक्त रखने की इजाजत दी। लेकिन प्रिंसिपेट काल में इटली और प्रांतों पर नए कर लगाए गए। करों में लगातार इजाफा हुआ और उत्तर साम्राज्य काल में करारोपण की दर गणतंत्र के अंत के समय की तुलना में तीन गुना ज्यादा थी। जोन्स ने करारोपण की उच्च दर को 'हद से ज्यादा' बताया है। यह आम तौर पर माना जाता है कि करों का जबर्दस्त बोझ उन कारकों में से एक है जिनसे रोमन साम्राज्य के पतन की गति तेज हो गई।

डायक्लीशन के शासनकाल के दौरान करों में जबर्दस्त इजाफा हुआ। करों की वसूली के लिए एक विशाल प्रशासनिक तंत्र की जरूरत थी। उसमें हम साम्राज्य के शासन के लिए एक विशाल केंद्रीकृत नौकरशाही की जरूरत को जोड़ सकते हैं। मुफ्त अनाज वितरण से भी सरकारी संसाधन का एक बड़ा क्षरण हो रहा था। प्रिंसिपेट के प्रारंभिक काल में राज्य की ओर से मुफ्त या सब्सिडी पर गेहूं के वितरण में सस्ते तेल और शराब भी जुड़ गए। जैसा हम देख चुके हैं, आगस्टस ने मुफ्त अनाज पाने वालों की संख्या बढ़ाकर

3,20,000 कर दी। उसके बाद धीरे-धीरे यह संख्या करीब 2,00,000 पर स्थिर हो गई। जब शासन स्थल बदल कर कांस्टैनटिनोपल बना तो वहां भी मुफ्त अनाज वितरण कार्यक्रम शुरू किया गया। उत्तर-रोमन साम्राज्य काल में वहां के 80,000 निवासी सरकारी मुफ्त खाद्य वितरण से लाभान्वित हो रहे थे।

डायक्लीशन और कांस्टनटाइन ने रोमन राज्य के कामकाज को पूरी तरह से चुस्त-दुरुस्त करने की अपनी मुहिम में अधिक करारोपण और ज्यादा केंद्रीकरण की नीति पर अमल किया। यह नीति पूर्व में क़ामयाब रही, लेकिन पश्चिम में उसने संकट को और गहरा कर दिया। पश्चिमी कुलीन वर्ग ने राज्य करों के बढ़ते बोझ को किसानों, *कॉलोनाइ,* दस्तकारों और छोटे व्यापारियों पर डाल दिया। इसका कृषिगत उत्पादन, मैन्युफैक्चर और व्यापार पर बुरा असर पड़ा। कृषि अर्थव्यवस्था सबसे ज्यादा प्रभावित हुई क्योंकि यह राजस्व का मुख्य स्रोत थी। राज्य ने कर वसूली के लिए *डेकुरियोन्स* या *क्युरिएल्स* के नाम से जाने जाने वाले कर संग्राहकों को जिम्मेदार करार देकर राजस्व की पूरी वसूली सुनिश्चत करने का प्रयास किया। इस प्रणाली की उत्पत्ति प्रिंसिपेट के शुरुआती दौर तक जाती है। प्रिंसिपेट में शहरी केंद्रों का नागरिक प्रशासन नगर परिषदों को सौंपा गया था जिन्हें *क्यूरिया* (इसका घालमेल कोमीशिया क्यूरियाटा के *क्यूरिया* के साथ नहीं किया जाना चाहिए) कहते थे। उनका गठन स्थानीय अभिजातों से होता था जिसमें धनी जमींदार भी शामिल थे। ये जमींदार शहरों में रहते थे और उनकी जमीनें ग्रामीण अंचलों में होती थीं। इन नगर परिषदों के सदस्यों को *डेक्युरियोन्स* या *क्यूरिएल्स* की पदवी दी जाती थी। उनकी जिम्मेदारियों में राजस्व वसूली शामिल थी।

समय के साथ नगर पार्षद एक वंशागत समूह बन गए। प्रिंसिपेट के अंत तक वंशागत नगर पार्षदों को आम तौर पर *क्यूरिएल्स* कहा जाता था। *क्यूरिएल्स* साथ ही वंशागत कर संग्राहक होते थे। वे स्थानीय स्तर पर खासे प्रभावशाली पुरुष होते थे। उनके पास मुख्यत: जमीनों से अर्जित धन होता था। उनमें से ज्यादातर अनुपस्थित जमींदार थे। *क्यूरिएल्स* भूस्वामियों, किसानों, दस्तकारों और व्यापारियों से राज्य कर वसूलते थे। वे कम शक्तिशाली तबकों पर गैर-कानूनी उपकर थोप कर कर अदायगी की अपनी जिम्मेदारियों से अकसर बचने की कोशिश करते। *क्यूरिएल्स* दूसरे बड़े भूस्वामियों के साथ भी सांठगांठ करते और कर अदायगी से उन्हें बचाने की कोशिश करते। *क्यूरिएल्स* को उगाहे जाने वाले करों के बदले रोमन राज्य के पास बतौर जमानत अपनी संपत्ति गिरवी रखनी पड़ती थी। यह प्रथा तीसरी सदी ईसवी में प्रचलित थी। डायक्लीशन ने *क्यूरिएल्स* को संबंधित नगर परिषदों से बांधकर और कानूनी प्रावधानों से वंशागत कर संग्राहकों को अपनी जिम्मेदारियों से हटना असंभव कर *क्यूरिएल्स* पर राज्य की पकड़ मजबूत की।

जोन्स ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि पश्चिम में प्रशासनिक तंत्र पारंपरिक रूप से कुलीन वर्गों के हाथ में था। साम्राज्य के इस हिस्से में कर वसूली ढीली-ढाली थी

और कुलीन अपने ही वर्ग के लोगों पर कर लगाने के मामले में ढीले थे। पूर्व में राज्य ने स्थानीय भद्रजन और 'मध्य वर्ग से आने वाले पुरुषों' पर भरोसा किया। राज्य ने पूर्व में अपने अधिकारियों पर नियंत्रण करना आसान पाया। डायक्लीशन और उसके उत्तराधिकारी पश्चिम के मुकाबले पूर्व में कर प्रणाली को मजबूत करने में ज्यादा सफल रहे। खासकर सम्राटों के चयन के निर्धारण में असफलता और बाद में साम्राज्य के प्रशासन में रोम नगर के महत्व में गिरावट के चलते पश्चिम के कुलीन वर्ग अधिकाधिक असहयोगी होते गए। इसी के साथ *क्यूरिएल्स* के माध्यम से पश्चिम से कर वसूली एक मुश्किल काम बन गई। कुलीनों ने कर अदा करने से न सिर्फ इनकार कर दिया बल्कि *पैट्रोसिनियम* की प्रणाली के तहत वे साम्राज्य के कर संग्राहकों से कृषकों को बचाने भी लगे। इसने पश्चिम में विखंडन की प्रक्रिया तेज की। कुलीन वर्ग शहरी केंद्रों से हट गए और अपने ग्रामीण घरों में स्थायी रूप से रहने लगे। इससे राज्य के लिए उनसे नियमित कर वसूली और भी मुश्किल हो गई।

दूसरे, सरकार ने अपने बढ़ते वित्तीय दायित्व को पूरा करने के लिए सिक्के खोटा करने (सिक्कों का वजन घटाने या उनके बहुमूल्य धातुओं की मात्रा कम कर उसमें मिलावट करने) जैसे समाधान की राह अपनाई। लंबे काल में ऐसे समाधानों ने पूरी अर्थव्यवस्था को कमजोर किया। ट्राजन के शासनकाल में रजत *देनारियस* का 15 प्रतिशत अवमूल्यन कर दिया गया। इसका मतलब हुआ कि *देनारियस* में चांदी का अंश अब अंकित मूल्य का केवल 85 प्रतिशत था। मारकस आरेलियस ने *देनारियस* का छह प्रतिशत और अवमूल्यन कर दिया। तीसरी सदी के मध्य तक *देनारियस* का मूल्य प्रिंसिपेट के प्रारंभ के मूल्य का पांच प्रतिशत रह गया। डायक्लीशन और कांस्टनटाइन ने मुद्रा में सुधार करने की कोशिश की लेकिन वे ज्यादा सफल नहीं रहे। यह हमें ध्यान में रखना चाहिए कि बढ़िया किस्म की सिक्का ढलाई बहुमूल्य धातुओं की लगातार आपूर्ति पर निर्भर करती है। दूसरी सदी ईसवी के अंत तक सोना और चांदी की आपूर्ति कमोवेश स्थिर हो गई थी। बड़े युद्ध और जीतों का दौर खत्म हो गया था और साम्राज्य में नए खदानों या खनन प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नए आविष्कार नहीं हुए।

सिक्कों में बड़े पैमाने पर मिलावट ने मालों की कीमत में चौतरफा इजाफा कर दिया। तीसरी सदी ईसवी की आखिरी चौथाई में समग्र कीमत के स्तरों में 1000 प्रतिशत का इजाफा हुआ। मुद्रा के विनिमय से इस या उस प्रकार जुड़े तमाम लोगों ने इस अभूतपूर्व मूल्यवृद्धि का प्रभाव महसूस किया। यहां तक कि मुद्रा के विनिमय से नहीं जुड़े लोगों ने भी मुद्रास्फीति के कारण होने वाली हानियों की भरपाई के लिए ज्यादा से ज्यादा राजस्व की लगातार बढ़ती मांग का प्रभाव महसूस किया। उन लोगों की स्थिति खास कर खराब थी जो मासिक तनख्वाह पर बहाल थे। राज्य के लिए यह चिंता का विषय था कि सैनिक और सरकारी कर्मचारियों का गुजारा वेतन से नहीं हो पा रहा था। करों को एक खास हद

से आगे बढ़ाना व्यावहारिक नहीं था। डायक्लीशन ने मूल्यों को राज्य द्वारा नियमित करने के तजुर्बे किए। 302 सदी ईसवी में उसने एक फरमान जारी किया जिसमें करीब 900 वस्तुओं की कीमतें निर्धारित की गई थीं। वह कोशिश नाकाम रही। इसका सीधा कारण यह था कि उत्पादन और वितरण पर राज्य का वस्तुत: कोई नियंत्रण नहीं था। अंतत: चौथी सदी ईसवी तक सरकार ने खाद्य पदार्थों और कपड़ों के रसद की शक्ल में वेतन देना शुरू कर दिया। इस विकास ने मौद्रिक विनिमय को बाधित किया और स्थानीय एवं क्षेत्रीय आत्मनिर्भरता के रुझान को बढ़ावा दिया जो तीसरी सदी ईसवी के अंत में पहले ही दिखने लगा था।

मौद्रिक संकट उन कारकों में महज एक था जिनसे उत्तर रोमन साम्राज्य काल में व्यापार में गिरावट आई। व्यापार में गिरावट एक जारी प्रक्रिया थी जिसका संबंध रोमन अर्थव्यवस्था की प्रकृति से था। जब हम रोमन साम्राज्य के संदर्भ में व्यापार की चर्चा करते हैं तो हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि लंबी दूरी का व्यापार मुख्यत: भोग-विलास की वस्तुओं पर केंद्रित था। (उम्दा शराब, नफीस वर्तन, बढ़िया कपड़े या इस तरह की मूल्यवान वस्तुओं को छोड़ कर) कृषिगत उत्पाद और दस्तकारी के सामान नियमित रूप से स्थानीय बाजार में बेचे जाते थे। बदकिस्मती से हमें यह ठीक-ठीक नहीं मालूम है कि किस तरह अधिशेष उत्पाद को मुद्रा में या बहुमूल्य धातुओं में बदला जाता था और फिर किस तरह कुलीन वर्ग भोग-विलास की वस्तुओं के साथ उसका विनिमय करते थे। हमें यह भी ठीक से नहीं मालूम कि किस तरह अधिशेष का संग्रहण और बड़े शोषकों के हाथों में उसका केंद्रीकरण होता था। रोमन सामाजिक संरचना अत्यधिक शोषण पर आधारित थी। यह हिसाब लगाया गया है कि तीसरी सदी ईसवी में सीनेट से जुड़े कुलीन वर्ग की संपत्ति पहली सदी की तुलना में तकरीबन पांच गुना बढ़ गई। यहां तक कि पांच सदी ईसवी में लैटीफुंडिया के एक मालिक की जायदाद इटली, सिसिली, स्पेन, ब्रिटेन और अफ्रीका में थी तथा उसकी सालाना आमदनी 750 किलोग्राम सोना के बराबर थी! इस कदर दौलत के कारण कुलीन वर्ग ऐश-मौज की जिंदगी गुजारते थे। इससे भोग-विलास की वस्तुओं के लंबी दूरी के व्यापार को बढ़ावा मिलता था।

प्रिंसिपेट के शुरुआती दौर में कुलीन वर्ग रोम नगर और प्रमुख इतालवी नगरों में केंद्रित था। सीनेट की बैठकों में उनकी नियमित भागीदारी अपेक्षित थी और सरकारी इजाजत के बगैर इटली और दक्षिणी गॉल से उनके आगे जाने पर रोक थी। बड़े भूस्वामी अनुपस्थित भूस्वामी थे जो रोम या प्रमुख शहरी केंद्रों में रहते थे। शहरों में उनकी दौलत का रेला-पेला था। उसके अलावा भूमध्यसागरीय क्षेत्र रोमन अर्थव्यवस्था का भौगोलिक केंद्र था और तमाम प्रमुख शहर तटरेखा के बेहद निकट स्थित थे। रोमन शासन के तहत भूमध्यसागरीय क्षेत्र के एकीकरण और *पैक्स रोमाना* की स्थापना ने लंबी दूरी के सामुद्रिक व्यापार को बढ़ावा दिया। 20 दिन में कोई जहाज भूमध्यसागरीय क्षेत्र के एक छोर से

दूसरे छोर तक पहुंच सकता था। भूतल परिवहन की तुलना में समुद्र मार्ग से माल ढुलाई खासी सस्ती थी। अलेक्जैंड्रिया से रोम तक समुद्र मार्ग से माल ढुलाई जमीनी मार्ग की तुलना में 25 गुना *कम* थी (यह महज एक मोटा अनुमान ही हो सकता है क्योंकि माल ढुलाई के आकलन में और भी कारक हैं)। भूमध्यसागरीय क्षेत्र से जितना दूर जाएं, जमीनी मार्ग से माल ढुलाई उतनी ही महंगी होती जाएगी।

रोमनों के पास शानदार राजमार्ग थे जिन्होंने उनके साम्राज्य के प्रशासनिक एकीकरण में मदद की। इन राजमार्गों का निर्माण-कार्य उत्तर-गणतंत्र में शुरू हुआ था। रोम को दक्षिणी इटली से जोड़ने वाले राजमार्ग वाया अप्पिया का निर्माण 312 ईसापूर्व में शुरू हुआ। इस प्रमुख राजमार्ग के अंतिम हिस्से का निर्माण ग्रैकस बंधुओं के समय में जाकर पूरा हुआ। फिर वाया इमिलिया था जो सिस-अलपाइन गॉल के लिए मुख्य राजमार्ग था। दूसरे महत्वपूर्ण राजमार्गों में इटली को स्पेन से जोड़ने वाला वाया दोमितिया और रोम से दमिश्क तक जाने वाला वाया एगनातिया शामिल थे। इसके अलावा प्रांतीय सड़कें थीं जो प्रांतीय राजधानियों को दूरस्थ इलाकों से जोड़ती थीं। रोमन राजमार्गों का इस्तेमाल प्राथमिक रूप से सैनिक और प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए किया जाता था। व्यापार और वाणिज्य के विकास में उनकी भूमिका नगण्य थी। सड़क परिवहन प्रौद्योगिकी के पिछड़ेपन ने भूतल परिवहन को व्यावसायिक रूप से अव्यावहारिक बना दिया। भूमध्यसागर साम्राज्य का महान व्यावसायिक राजमार्ग था।

जब तक रोम रोमन जगत का प्रमुखतम शहरी केंद्र बना रहा, उसकी दिशा में मालों का सिलसिला बना रहा। गणतंत्र काल में रोम से 16 मील दूर टाइबर के मुहाने पर स्थित ओस्तिया बंदरगाह से राजधानी को आपूर्ति मिलती थी। ओस्तिया एक प्रमुख बंदरगाह के रूप में विकसित हुआ (यह नौसैनिक अड्डा भी था) जहां भूमध्यसागरीय क्षेत्र के हर हिस्से से पोत आते थे। गणतंत्र के अंतिम दौर में बंदरगाह में रेत जमा होने के कारण ओस्तिया से दो मील उत्तर एक नई गोदी स्थापित करनी पड़ी। नई गोदी का नाम पोर्टस रखा गया। ओस्तिया/पोर्टस की समृद्धि का सीधा रिश्ता भूमध्यसागरीय क्षेत्र में प्रमुखतम उपभोक्ता केंद्र के रूप में रोम की हैसियत से था।

यहां रोम नगर की शोषक प्रकृति पर जोर देने की जरूरत है। नगर में शाही अदालत, कुलीन वर्ग, सरकारी अधिकारियों और प्रीटोरियन गार्ड्स के अलावा बड़ी तादाद में अनुत्पादक गरीब लोग रहते थे जो मुफ्त अनाज वितरण पर जीवन बसर करते थे। रोम उत्पादन से ज्यादा उपभोग का केंद्र था और ओस्तिया का व्यापार अनिवार्यत: एकतरफा मामला था। नगर का गिरता राजनीतिक एवं प्रशासनिक महत्व फौरन शहर में केंद्रित तमाम आर्थिक गतिविधियों के विस्थापन में प्रकट हुआ। तीसरी सदी ईसवी तक कुलीन वर्गों में रोम या उसके इर्द-गिर्द के इलाकों में रहने की रुचि नहीं बची थी। वे इटली, गॉल और स्पेन के ग्रामीण इलाकों में स्थित अपनी जायदादों में चले गए। इसने आर्थिक

गतिविधि के विकेंद्रीकरण की रफ्तार तेज की और कुलीन वर्गों के ग्रामीण स्थलों को आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयां बना दी। रोम और ओस्तिया की प्रमुखता खत्म होने के बाद सदियों तक साम्राज्य की राजधानी की जरूरतें पूरी करने वाला लंबी दूरी का भूमध्यसागरीय व्यापार भी मंदा पड़ने लगा। इससे खासकर पश्चिम में लंबी दूरी का व्यापार का पतन हो गया।

एक संबंधित घटनाक्रम में पश्चिमी यूरोप के उत्तर इलाकों (उत्तरी स्पेन और गॉल) ने आर्थिक प्रगति की। इन इलाकों के यूरोप की दक्षिणी तटरेखा से बहुत दूर होने की बजह से वे कभी भूमध्यसागर की आर्थिक गतिविधियों के साथ जुड़ नहीं पाए थे। इन उत्तरी इलाकों में शुरू से ही आत्मनिर्भर बनने की प्रवृत्ति थी। आवश्यक वस्तुओं की स्थिर स्थानीय आपूर्ति सुनिश्चत करने के लिए राइन और डैन्यूब नदी के उत्तरी सीमांत इलाकों में बसे कुछ गैरिसन नगर उत्पादन और विनिमय के केंद्र बन गए थे। दक्षिण से उन इलाकों में सड़क मार्ग से नियमित आपूर्ति करना बेहद खर्चीला था। सैनिक गैरिसनों से विकास कर उभरने वाले कुछ प्रमुख सीमांत नगरों में पेरिस, ट्रिअर और मैन्ज शामिल थे।

इस तरह हम देख सकते हैं कि साम्राज्य के कुछ हिस्सों में उभरती नई किस्म की अर्थव्यवस्था के लिए व्यापार और मुद्रा विनिमय अनिवार्य नहीं थे। कुछ भी हो, हमें खयाल रखना चाहिए कि साम्राज्य के उत्कर्ष काल में भी रोमन अर्थव्यवस्था में व्यापार के महत्व को बढ़ा कर नहीं आंकें। विनिमय स्थानीय स्तर के होंगे और भोग-विलास की वस्तुओं को छोड़कर हम आम मालों (कम मूल्य की रोजमर्रा इस्तेमाल में आने वाली वस्तुओं) की चर्चा कर रहे हैं। यह ज्यादातर प्रांतीय शहरी केंद्रों के लिए भी सही है जो औसतन 30 मील के दायरे के भीतर के इलाके से अपनी जरूरत की तमाम चीजें हासिल करते थे। यहां यह ध्यान देना बेहतर होगा कि बड़े लैटीफुंडिया स्वयं आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रोस्ताहित करते थे, खासकर जब वे आबादी के प्रमुख केंद्रों से कुछ दूरी पर स्थित होते। लैटीफुंडिया के निवासियों की जरूरत की करीब-करीब हर चीज का उत्पादन लैटीफुंडिया पर ही किया जाता था। जब भूस्वामी ग्रामीण अंचलों में ही स्थायी रूप से बस गए और जब व्यापार में गिरावट आ गई तो उनके जायदाद और भी आत्मनिर्भर हो चले।

ग्रामीण अंचलों में अर्धस्वतंत्र प्राधिकार वाले धनी भूस्वामियों के अधीन *कॉलोनाइ* वाले आत्मनिर्भर गांव या जायदाद धीरे-धीरे इटली, स्पेन और गॉल की एक ठेठ पहचान बन गए। भूस्वामी कुलीन वर्गों के ग्रामीण अंचलों में चले जाने से केंद्रीकृत राज्य पश्चिमी हिस्से में कमजोर पड़ गया और अंततः ढह गया। दूसरी तरफ छोटे एवं मध्यम किसान तथा मध्यवर्गीय भद्रलोगों ने पूर्व में अपनी मजबूत मौजूदगी बनाए रखी। गुलाम कृषि पूर्व में कभी उस आयाम तक नहीं पहुंची जो उसने पश्चिम में हासिल किया। नतीजतन पूर्व में गुलाम उत्पादन प्रणाली में संकट इस कदर गंभीर नहीं था जो पश्चिम में था। पूर्व

की अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत स्थिर रही जिससे डॉमीनेट वाले पुनर्गठित रोमन राज्य को पूर्वी प्रांतों में केंद्रीकरण की अपनी मुहिम के लिए वित्तीय संसाधन जुटाने में मदद मिली। पूर्व में भूस्वामी कुलीन वर्ग इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह केंद्रीकरण की प्रक्रिया का विरोध कर सके।

पश्चिम के विपरीत पूर्व के पुराने शहरी केंद्र नहीं बिखरे। चूंकि पूर्व की तुलना में पश्चिम में कुछ ही शहर थे, लैटीफुंडिया मालिकान के ग्रामीण अंचलों में चले जाने के बाद इटली, स्पेन और गॉल में अर्थव्यवस्था के ग्रामीणीकरण की प्रक्रिया बड़ी तेज रही। यह पूर्व में नहीं हुआ जहां शहर और कुछ मात्रा में व्यापार अपना वजूद बरकरार रख सके। रोमन साम्राज्य के तीन सबसे बड़े शहर रोम, अलेक्जैंड्रिया और एंटियोक थे। उनमें से दो पूर्व में स्थित थे, अलेक्जैंड्रिया मिस्र में और एंटियोक सीरिया में। शायद अलेक्जैंड्रिया यूनानी-रोमन जगत का सबसे बड़ा बंदरगाह था और आर्थिक महत्व के हिसाब से वह ओस्तिया तक से आगे था। रोम के पतन के बाद एक लंबे दौर तक अलेक्जैंड्रिया और एंटियोक दोनों फलते-फूलते रहे। पूर्व के इन दो महान नगरों के साथ हम कांस्टैनटिनोपल का नाम भी जोड़ सकते हैं जो चौथी सदी ईसवी में अपनी बुलंदी पर पहुंचा। उत्तर रोमन साम्राज्य का संकट सबसे ज्यादा पश्चिम में था। यह वह क्षेत्र था जहां उत्पादन की गुलाम पद्धति का सर्वाधिक विकास हुआ। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उत्पादन की गुलाम पद्धति का आर्थिक संकट सबसे ज्यादा इटली, गॉल और स्पेन में था। रोमन साम्राज्य को आखिरी चोट जर्मनिक कबीलों के हमलों ने पहुंचाई। पश्चिम में राज्य के ढहने से यह क्षेत्र सैन्य रूप से कमजोर हो गया और इसीलिए वह जर्मनिक हमले के सामने तेजी से ढह गया। पूर्व इन हमलों का प्रतिरोध करने में सक्षम था। पूर्वी साम्राज्य पश्चिम में साम्राज्य के खात्मे के बाद भी कई सदियों तक टिका रहा।

II

रोमन साम्राज्य का आंतरिक संकट और सीमाओं पर बर्बर कबीलों का बढ़ता दबाव दोनों दिक्कतें एक साथ आईं। उनमें से कुछ बर्बर कबीले अंदर घुस गए और साम्राज्य के कई हिस्सों पर कब्जा जमा कर उसके पतन की प्रक्रिया पूरी कर दी। सदियों तक उत्तरी और मध्य यूरोप तरह-तरह के कबायली समूहों के घर बने रहे। उन कबीलों का एक अच्छा-खासा विशाल हिस्सा हिंद-यूरोपीय भाषाई परिवार का था। गॉल और मध्य यूरोप के डैन्यूब क्षेत्र को जीत कर रोमन साम्राज्य उन कबीलों के रूबरू हो गया था। उत्तरी गॉल और ब्रिटेन के सेल्टिक कबीलों को साम्राज्य में शामिल कर लिया गया था। लेकिन उत्तरी गॉल और बेल्जियम के सेल्टों को अधीन बनाने की प्रक्रिया लंबी चली थी। उत्तरी यूरोप में रोम की पूर्वी सीमा राईन नदी पर स्थापित हुई। राईन आल्प्स के ठीक उत्तर स्विट्जरलैंड

में उदित होती है और आधुनिक जर्मनी के पश्चिमी छोर से होकर दक्षिण से उत्तर की ओर बहती हुई उत्तर सागर में मिल जाती है। डैन्यूब की उत्पत्ति राईन से कुछ ही दूर दक्षिणी जर्मनी में होती है और पूर्वी दिशा में ठीक मध्य यूरोप से गुजरती हुई अपना पानी काला सागर में उड़ेल देती है। राईन और डैन्यूब ने मिलकर उत्तरी और मध्य यूरोप में रोमन साम्राज्य की अंग्रेजी के एल अक्षर के आकार की सीमा का निर्माण किया। राईन-डैन्यूब सीमा से परे, राईन से पूर्व और डैन्यूब से उत्तर जर्मनिक कबीलों का प्रमुख क्षेत्र था।

जर्मनिक लोग शुरू में दक्षिणी स्कैंडिनाविया में और बाल्टिक तट से लगे इलाकों में रहते थे। लगभग 1000 ईसापूर्व के बाद से वे दक्षिण और पश्चिम दिशा में बढ़ने लगे। सिंब्री और ट्युटन जैसे अनेक जर्मनिक कबीले उस समय राईन के निकट बसे थे जब रोमनों ने उत्तरी गॉल जीता। रोमन राईन के उत्तर स्थित विशाल अपरिभाषित इलाके को जर्मेनिया पुकारते थे। रोमन लेखक कभी-कभी इस क्षेत्र में बसने वाले सभी कबीलों के लिए ट्युटन और जर्मन पर्याय की तरह इस्तेमाल करते थे, हालांकि ट्युटन अनगिनत जर्मनिक कबीलों में महज एक था। जिन जर्मनिक कबीलों से रोमनों का सबसे पहले संपर्क हुआ, वे आदिम कृषि और पशुपालन से जुड़े थे। वे लगातार एक जगह से दूसरी जगह घूमा करते थे और किसी खास भूखंड से उनका लगाव नहीं था। भूमि और मवेशियों पर कबीले का सामूहिक स्वामित्व था। कबीलों के अंदर सामाजिक स्तरीकरण बहुत कम था। इन कबीलों की आदिम अर्थव्यवस्था में बमुश्किल कोई अधिशेष पैदा होता था और उत्पाद कबीलों के हरेक परिवारों के बीच कमोबेश बराबरी के आधार पर बांटे जाते थे। राज्य का निर्माण अभी नहीं हुआ था। कबीलों के सरदार होते थे जिन्हें युद्ध के समय कबीलों का नेतृत्व करने के लिए चुना जाता था। वंशागत सरदारी लगभग एक अनजानी चीज थी।

रोमन गुलाम पकड़ने के लिए हमले करते और साम्राज्य के हाशिए पर बसने वाले कबीले लगातार उसका शिकार बनते। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि रोमन हमलों ने स्थायी रूप से जंग लड़ने के लिए जर्मनिक कबीलों को खुद को संगठित करने के लिए बाध्य किया और इसने जर्मनिक कबीलों में राज्य निर्माण के लिए एक उत्प्रेरक का काम किया। उसके अलावा जर्मनिक कबीलों के रोमन साम्राज्य की नजदीकी ने भी जर्मनिक सामाजिक संचना पर जबर्दस्त प्रभाव डाला। साम्राज्य की सीमा के निकट रहने वाले कबीलों ने रोमनों के साथ मवेशी, दुग्धोत्पाद और वनोत्पाद के साथ रोमन मालों का विनिमय किया। गुलामों के रोमन सौदागरों को साठ-गांठ करने के लिए उन कबीलों में कुछेक लोग मिल गए होंगे जिन्होंने उन्हें गुलाम पकड़ने में मदद की होगी और बदले में रकम ली होगी। आखिर में, उन कबीलों ने जब भी मौका मिला, उन्होंने साम्राज्य के बाहरी इलाकों की बस्तियों पर हमला किया और उन मौकों पर मिली लूट ने कबीलों के अधिशेष में इजाफा किया। धीरे-धीरे धनी योद्धा सरदारों और पेशेवर योद्धाओं का एक

वर्ग वजूद में आ गया और प्रारंभिक किस्म के राज्यों का गठन हुआ। ज्यादा शक्तिशाली सरदारों ने इर्द-गिर्द के जर्मनिक कबीलों को अपने अधीन कर लिया या उनके साथ गठबंधन बनाकर अपनी शक्ति बढ़ाई। वे अब नियमित हमले संचालित करने और अपने ही कबीलों के लोगों का शोषण करने के लिए योद्धाओं की एक बड़ी कतार रख सकते थे। इन परिवर्तनों ने कबीलों के पुराने सामाजिक ढांचों को बिखेर कर वर्ग विभाजन और राज्य निर्माण की नींव रखी।

कुछ जर्मनिक कबीले साम्राज्य की राईन-डैन्यूब सीमा से परे जमीन पर बसे थे और आगस्टस के समय से ही रोमनों के इस समस्या से जूझना पड़ रहा था। प्रिंसिपेट के प्राथमिक काल में ये कबीले वर्ग समाज के निर्माण के संक्रमण से गुजर रहे थे। वे कमजोर और बिखरे हुए थे। इसलिए वे रोमन सेना को कोई गंभीर चुनौती नहीं दे सकते थे। दूसरी सदी ईसवी के मध्य में स्थिति बदलने लगी। मुख्यतः मार्कोमानी के हमलों के कारण डैन्यूब क्षेत्र में जर्मनिक कबीलों का दबाव बढ़ने लगा। मार्कोमानी ने मध्य डैन्यूब में अपने राज्य की स्थापना की थी। मारकस औरेलियस को उनसे निबटने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। उसके बाद से साम्राज्य ने जर्मनिक कबीलों के प्रति रक्षात्मक नीति पर अमल करना शुरू कर दिया। औरेलियस के उपायों में से एक जर्मनिक खेतिहरों को साम्राज्य की सरजमीन पर बसने की इजाजत देना भी था। जर्मनिक कबीलों को अब साम्राज्य पर हमले करने की रुचि नहीं रही थी। वे उर्वर कृषि भूमि प्राप्त करना चाहते थे। मध्य यूरोपीय प्रांतों की आबादी घनी नहीं थी। औरेलियस ने सोचा कि अगर जर्मनिक किसानों को वहां बसा दिया जाए तो इससे वहां श्रमिकों की कमी नहीं रहेगी और साथ ही सीमा पर दबाव भी घट जाएगा। जर्मनिक किसान कानूनन आजाद थे। लेकिन उन्हें खास-खास भूस्वामियों के जिम्मे कर दिया गया था और भूखंड के साथ बांध दिया गया था। हरेक समूह को एक रोमन अधिकारी की निगरानी में रखा गया था।

मारकस औरेलियस के उत्तराधिकारियों ने भी इसी तरह की नीतियों पर अमल किया। लेकिन जर्मनिक कबीलों को अपने काबू में रखने के लिए उन्होंने समय-समय पर उन पर बड़े हमले भी किए। दूसरी सदी ईसवी के अंत तक डैन्यूब में तैनात सेना पूरे साम्राज्य में सबसे बड़ी थी। 235 ईसवी में सेवेरस अलेक्जैंडर की हत्या के बाद साम्राज्य में आधी सदी तक अराजकता छाई रही और इस दौरान डैन्यूबियाई सेना ने सम्राट चुनने में निर्णायक भूमिका निभाई। गौरतलब है कि सेवेरस अलेक्जैंडर की हत्या उसके सैनिकों ने जर्मनिक कबीलों पर हमला करने के सवाल पर डैन्यूबियाई सेना के साथ हुए विवाद के कारण की थी। सैनिक ज्यादा आक्रामक नीति की मांग कर रहे थे। लेकिन सम्राट उससे हिचक रहा था। उसने जर्मनिक कबीलों पर हमला करने की जगह शांति स्थापना के लिए मोलतोल करने की कोशिश की थी और यही उसकी मौत का कारण बनी। जर्मनिक कबीलों के डैन्यूब सीमा पार कर कृषि भूमि कब्जा कर लेने से सीमावर्ती इलाकों में तनावपूर्ण स्थिति

पैदा हो गई थी। डैन्यूब सेना में स्थानीय किसान परिवारों से लोग भर्ती किए जाते थे। इसलिए यह स्थिति उनकी तत्काल चिंता का कारण बनी। डायक्लीशन और कांस्टनटाइन भी इसी इलाके के थे।

तीसरी सदी ईसवी के पूर्वार्द्ध में उत्तरी जर्मनिक कबीलों के दो परिसंघ, अलामनी और फ्रैंक्स, राईन सीमा पर साम्राज्य के दो दुर्जेय शत्रु थे। इन दो कबीलाई समूहों ने गॉल में लगातार छापेमारी और लूटमार की। डैन्यूब की सीमा पर साम्राज्य को गॉथ नामक एक अन्य समूह से खतरा उत्पन्न हुआ। गॉथ मध्य एवं पूर्वी यूरोप पहुंचने वाले अंतिम कबीलों में थे। उनका देशांतरण दूसरी सदी ईसवी के मध्य में दक्षिणी स्कैंडिनेविया से हुआ था। तीसरी सदी ईसवी के पहले चतुर्थांश में उन्होंने डैन्यूब सीमा पर हमला करना शुरू किया। उनके इसी आक्रमण ने सेना को सेवेरस अलेक्जैंडर के खिलाफ बगावत करने के लिए उकसाया।

वक्त के साथ साफ हो गया है कि रोमन साम्राज्य के पास अपनी विशाल यूरोपीय सीमा को जर्मनिक कबीलों के हमलों से सुरक्षित रखने के लिए सैन्य संसाधन नहीं थे। सुलह-समझौते की नीति अपरिहार्य हो गई। व्यापक रूप से इस नीति के तीन पहलू थे : (i) रोमनों ने चुन-चुन कर अलग-थलग पड़े जर्मनिक समूहों को कृषक के रूप में साम्राज्य के अंदर बसने की इजाजत दी; (ii) रोमन सेना में जर्मनिक सैनिकों की अधिकाधिक भर्ती की गई; और (iii) रोम के प्रति वफादार जर्मनिक कबीलों के कठपुतली सरदारों को सीमा के साथ स्थापित किया गया ताकि वे अपेक्षाकृत ज्यादा विरोधी कबीलों के खिलाफ प्रतिरोधक के रूप में काम करें। बेशक कई कबीलों से टकराना जरूरी था और सैन्य विकल्प को त्याग नहीं दिया गया था। बहरहाल, सुलह-समझौता की रोमन नीति से साम्राज्य में शांतिपूर्ण जर्मनिक प्रवेश का रास्ता साफ हो गया। तीसरी सदी ईसवी के अंत तक डैन्यूबियाई और बाल्कन प्रांतों में जर्मनिक कबीलों की एक अच्छी-खासी आबादी हो गई। रोमन सेना में भी अच्छी जर्मनिक उपस्थिति थी। कांस्टनटाइन ने जर्मनिक सैनिकों की बड़े पैमाने पर भर्ती की थी। उसके निजी अंगरक्षकों में मुख्यत: जर्मनिक टुकड़ियां थीं। उसने अनेक जर्मनों को सेना में प्रमुख पद भी सौंपे।

रोमन साम्राज्य धीरे-धीरे जर्मनिक कबीलों के एक हिस्से को आत्मसात कर सका। लेकिन वह कुछ सबसे आक्रामक कबीलों के लगातार बढ़ते दबाव का प्रतिरोध नहीं कर सका। ये कबीले इस चरण में आ चुके थे जहां एक स्थिर कृषक अर्थव्यवस्था विकसित करने के लिए स्थायी रूप से बसने की जरूरत थी। इसके लिए उन्हें जमीन की जरूरत थी। ये कबीले सैन्य स्तर पर पहले से ही पूरी तरह संगठित थे। कांस्टनटाइन के निधन (337 ईसवी) के कुछ दशकों के अंदर पूर्वी यूरोप में कबायली आंदोलन की एक नई लहर उभरी। रोमनों को पहला खतरा गॉथ से हुआ। तीसरी सदी ईसवी के पूर्वार्द्ध में गॉथ ने शुरुआती हमले किए थे। लेकिन रोमन सेना ने उन्हें नाकाम कर दिया था। बाद

में यूरोप में अपने भ्रमण के क्रम में गॉथ दो समूहों में, विसीगॉथ (पश्चिमी गॉथ) और आस्ट्रोगॉथ (पूर्वी गॉथ) में बंट गए। विसीगॉथ डैन्यूब की सीमा पर और आस्ट्रोगॉथ और भी पूर्व दक्षिणी रूस में रहते थे।

चौथी सदी ईसवी के मध्य के लगभग कबायली आंदोलनों का एक सिलसिला चला। मध्य एशिया के घटनाक्रम से उनकी उत्पत्ति हुई। उनसे घटनाओं के एक सिलसिले की शुरुआत हुई जिसका नतीजा रोमन साम्राज्य के लिए अनर्थकारी निकला। पश्चिम में दक्षिण रूस से लेकर पूर्व में गोबी के रेगिस्तान तक फैले विशाल घास के मैदान लंबे समय तक अनेक कबीलों की सरजमीन रहे थे। ये कबीले विशिष्ट खानाबदोश पशुचारण में लगे थे। यह इस क्षेत्र के संसाधनों के इस्तेमाल की एक विशिष्ट रणनीति थी। खानाबदोश कबीले बड़े पैमाने पर मवेशी पालते थे। वह अपने मवेशियों के चारा-पानी जुटाने के लिए एक जगह से दूसरी जगह गमन की एक जटिल प्रक्रिया अपनाते थे। पेरी एंडरसन यायावरी पशुचारण को एक विशिष्ट उत्पादन पद्धति की संज्ञा देते हैं। 'जिसकी अपनी गत्यात्मकता, सीमाबद्धता और अंतर्विरोध हैं जिसका घालमेल कबायली या सामंती कृषि के साथ नहीं किया जाना चाहिए।' यह उत्पादन पद्धति मध्य एशिया की अर्धशुष्क जलवायु के अनुकूल थी। यह जीवन निर्वाह की आदिम कृषि की तुलना में विकास के एक उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व करती है। यायावरी पशुचारण की यह अत्यंत विशिष्ट रणनीति मध्य एशियाई मैदानों के अनुकूल खुद को ढालने का एक सफल कदम था और यह अधिशेष का उत्पादन करने में सक्षम था। इसके तहत भूमि के बजाए पशुधन संपत्ति का मुख्य रूप था। अधिशेष उत्पादन ने वर्ग विभाजन को बढ़ावा दिया। कबायली सरदारों ने अपेक्षाकृत एक सरल राज्य मशीनरी का नेतृत्व किया जिसमें योद्धा और शक्तिशाली कुलों के प्रमुख शामिल थे।

इन खानाबदोश कबीलों के लिए अच्छे चरागाहों की तलाश एक मुख्य मुद्दा था। वे जिन क्षेत्रों में रहते थे, वहां की मिट्टी अपेक्षाकृत कम उर्वर थी। इसलिए उन्हें अपने पशुओं के लिए विशाल भूखंडों की जरूरत पड़ती थी। जितना बड़ा कबीला होता था और पशुचारण में वह जितना सफल रहता था, उतना ही उस पर और चरागाहों के लिए दबाव होता था। ऐसे में यायावरी पशुचारण पर आश्रित पड़ोसी कबीलों के साथ उनका टकराव होता था। इन टकरावों का नतीजा एक कबीले का दूसरे कबीले के अधीन होना (और प्रभुत्वशाली कबीलों को खिराज देना) हो सकता था या फिर दोनों कबीलों में गठबंधन हो सकता था जिससे एक शक्तिशाली संघ का उदय होता। लेकिन खानाबदोश समाज में अपनी कुछ कमियां थी, मसलन शहरीकरण का पूरा अभाव और प्रौद्योगिकी के निम्न स्तर। इसने सिर्फ अपने बल पर ऐतिहासिक विकास के उच्चतर चरणों में पहुंचना उनके लिए मुश्किल कर दिया।

खानाबदोश पशुपालक अलग-थलग नहीं रहते थे। वह विकसित कृषक समाजों

की सीमाओं पर बसते थे और उनके साथ उनका एक अंतरंग संबंध था। खानाबदोश कबीले उन्नत कृषक समाजों को उनके विविध उत्पादों के बदले मांस, दुग्धोत्पाद, खाल, ऊन, फर, मवेशी और घोड़े देते थे। कबायली सरदारों के लिए पूर्णरूपेण सशस्त्र सेना रखना संभव हो गया था। तेज सैन्य अभियान के क्रम में खानाबदोश टुकड़ियों की अंतर्निहित गतिशीलता, ऊखड़-खाबड़ प्रदेश के चप्पे-चप्पे की उनकी जानकारी, उनकी सीमित जरूरतों और एक घुड़सवार तथा एक तीरंदाज के रूप में उनकी महारत से अकसर उन्हें फायदा होता था। ऐसी अनेक घटनाएं हैं जब खानाबदोश कबीले एक बड़े क्षेत्र पर काबिज होने में कामयाब रहे। बेशक ये कब्जे लंबे समय तक बरकरार नहीं रहे।

इस तरह की एक घटना चौथी सदी ईसवी की है। खानाबदोश पशुचारकों का एक समूह गोबी रेगिस्तान और उत्तर चीन से पश्चिम की तरफ बढ़ चला। हूण नामक इस समूह ने मध्य एशिया पार किया। करीब 350 ईसवी में वह पूर्वी यूरोप पहुंचा। यहां उन्होंने दक्षिण रूस में बसने वाले कबीलों पर हमला किया और उन्हें वहां से भगा दिया। भागने वाले कबीलों में आस्ट्रोगॉथ प्रमुख थे। आस्ट्रोगॉथ को अपनी सरजमीन से हटने के लिए मजबूर किया गया। वे और भी पश्चिम की ओर गए जहां उसका टकराव विसीगॉथों से हुआ। विसीगॉथों को आस्ट्रोगॉथ और हूणों, दोनों के संयुक्त दबाव का सामना करना पड़ा। उन्हें पूर्वी यूरोप में रोमन सीमा पर भागना पड़ा। विसीगॉथ ने निम्न डैन्यूब पार की। 378 ईसवी में हाद्रियानोपोलिस (उसे आद्रियानोपल भी कहते हैं। इसका नामकरण सम्राट हाद्रियान पर किया गया। अब यह एदिर्ने कहलाता है और आधुनिक तुर्की के यूरोपीय हिस्से में स्थित है।) में रोमन सेना के साथ एक जबर्दस्त जंग हुई। इस जंग में विसीगॉथ का नेतृत्व उनका प्रमुख फ्रीटीजर्न कर रहा था। इस जंग में रोमन सेना की हार हुई। जंग में रोमन सम्राट वैलेंस मारा गया। यह जर्मनिक कबीले के हाथों रोमनों की पहली प्रमुख हार थी। गिब्बन ने हाद्रियानोपोलिस की जंग को उत्तर रोमन साम्राज्य के इतिहास का एक निर्णायक मोड़ करार दिया है। साम्राज्य कभी इस धक्के से उबर नहीं सका।

हाद्रियानोपोलिस की जंग ने और बर्बर हमलों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। 406 ईसवी में वैंडल, सुएबी और अलानी समेत अनेक जर्मनिक कबीलों ने राईन नदी पार कर रोम के पश्चिमी प्रांतों पर कब्जा करना शुरू किया। इसी के साथ जर्मनिक कबीलों ने धीरे-धीरे पश्चिमी साम्राज्य पर कब्जा जमाना शुरू कर दिया। वैंडल, सुएबी और अलानी के अलावा विसीगॉथ, आस्ट्रोगॉथ और बर्गंडियन कुछ अन्य प्रमुख कबीले थे। हाद्रियानोपोलिस में अपनी जीत के बाद विसीगॉथों ने यूनान में लूटमार की और इटली चले गए। 410 ईसवी में विसीगॉथों के सरदार एलारिक ने रोम पर हमला किया और तीन दिन तक नगर में लूटमार की। लोगों पर इस घटना का गहरा मनोवैज्ञानिक असर पड़ा। राजनीतिक प्रासंगिकता खो देने के बावजूद रोम नगर की मान-मर्यादा इतनी बाकी थी कि लोग यह सोच भी नहीं सके थे कि कोई उस पर कब्जा कर सकता है और वहां

लूटमार मचा सकता है। चौथी सदी ईसवी से रोम रोमन साम्राज्य का महज एक प्रतीक था। लेकिन यह अब भी एक शक्तिशाली प्रतीक था। एलारिक के हमले से पूरे साम्राज्य का मनोबल पस्त हुआ।

हाद्रियानोपोलिस की जंग के बाद साम्राज्य में एक स्थायी विभाजन हो गया। राजसिंहासन के प्रतिद्वंद्वी दावेदारों ने साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों पर अपना शासन स्थापित करने के लिए जर्मनिक कबीलों का समर्थन लिया। 395 ईसवी के बाद आर्केडियस पूर्व में सम्राट था और कांस्टैनटिनोपल उसकी राजधानी थी। उसे एलारिक का समर्थन प्राप्त था। हानोरियस रोम का सम्राट था और उसे वैंडल कबीले के सरदार स्टिलिचो का समर्थन मिला हुआ था। जर्मनिक कबीलों के सरदारों ने विरोधी शाही उम्मीदवारों के हितों का बढ़ावा देकर अपनी स्थिति मजबूत की। पांचवीं सदी ईसवी में दो सम्राटों का होना एक सामान्य बात बन गई। एक सम्राट पूर्व में और एक पश्चिम में होता था। अंतत: पश्चिमी सम्राट रोमन साम्राज्य अनेक जर्मनिक राज्यों में बंट गया।

विसीगॉथों ने रोम में लूटमार करने के बाद अफ्रीका प्रांत पर हमला करने की कोशिश की। लेकिन वे इसमें नाकाम रहे। इसके बाद वे गॉल और स्पेन की तरफ बढ़े। वहां 475 ईसवी में उन्होंने अपनी सल्तनत कायम की। यूरिक उनका राजा बना। 507 ईसवी में एक अन्य जर्मनिक कबीले फ्रैंक ने उन्हें गॉल से खदेड़ बाहर किया। लेकिन स्पेन में विसीगॉथों का राज आठवीं सदी के अरबों के आक्रमण तक टिका रहा। इस बीच वैंडल अफ्रीका पहुंच चुके थे। उन्होंने 439 ईसवी के कार्थेज पर कब्जा कर लिया। वैंडल कबीला के सरदार जेनसेरिक ने अफ्रीका के रोमन प्रांत में एक नई जर्मनिक सल्तनत कायम की। यह रोम के लिए अनर्थकारी था क्योंकि अफ्रीका से ही नगर को अनाजों की मुख्य आपूर्ति होती थी। बाद में वैंडल राज का विस्तार उत्तर अफ्रीका के पश्चिमी भूमध्यसागरीय तटरेखा के अन्य हिस्सों तक हो गया।

पांचवीं सदी ईसवी के मध्य में पूर्वी यूरोप पर नए सिरे से और बड़े जोरदार ढंग से हूणों का हमला हुआ। उस समय तक हूण एक शक्तिशाली राजतंत्र स्थापित कर चुके थे। हूण शासक एट्टिला ने पांचवीं सदी ईसवी के पूर्वार्द्ध में एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। यह साम्राज्य एशिया से लेकर मध्य एवं पूर्वी यूरोप तक फैला था। कुछ समय तक एट्टिला ने पश्चिमी रोमन सम्राट से खिराज वसूल किया। 451 ईसवी में एट्टिला को रोम और जर्मनिक कबीलों की संयुक्त सेना के हाथों हार खानी पड़ी। 453 ईसवी में एट्टिला की मौत के साथ ही हूण साम्राज्य ढह गया। लेकिन हूणों के हमलों ने जर्मनिक कबीलों को रोमन साम्राज्य पर अपनी पकड़ मजबूत करने का एक और मौका दिया।

वैंडलों ने 455 ईसवी में रोम पर हमला किया और लूटमार मचाई। फिर 476 ईसवी में अंतिम रोमन सम्राट रोमुलस आगस्टुलस को अपदस्थ कर दिया गया। उसके बाद पश्चिम में कोई सम्राट नहीं हुआ। बस पूर्व में रोमन साम्राज्य का अवशेष बचा जिसकी

राजधानी कास्टैनटिनोपल थी। इस आधे-अधूरे साम्राज्य को बैजंतिया साम्राज्य (या पूर्वी रोमन साम्राज्य) कहा जाता है। बैजंतिया साम्राज्य ने मूल रोमन साम्राज्य का वैध उत्तराधिकारी होने का दावा किया। एक अर्थ में यह सही भी है क्योंकि पांचवीं सदी ईसवी के बाद पश्चिम में रोमन साम्राज्य जैसी कोई चीज नहीं थी। लेकिन बैजंतिया साम्राज्य की प्रकृति रोमन साम्राज्य से बेहद भिन्न थी। बैजंतिया साम्राज्य पर विस्तृत चर्चा इस अध्ययन के दायरे में नहीं आता है। यहां यह गौर करना पर्याप्त है कि बैजंतिया साम्राज्य में रोमन साम्राज्य के पूर्वी प्रांत शामिल थे और वह राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से ज्यादा स्थिर था। इसने बैजंतिया साम्राज्य को कई सदियों तक टिके रहने में मदद की।

बैजंतिया साम्राज्य जर्मनिक हमलों से उत्पन्न उथल-पुथल से जल्द ही उबर गया। इसने उत्तर अफ्रीका में कुछ रोमन इलाकों को फिर अधीन कर लिया। बैजंतिया सम्राट जस्टिनियन प्रथम (527-65 ई.) ने इटली जीत कर कुछ समय के लिए पूर्वी और पश्चिमी प्रांतों को एक कर लिया। बैजंतिया साम्राज्य ने पश्चिम एशिया में अपनी स्थिति मजबूत कर ली। लेकिन सासानियों ने पूर्व दिशा में उसकी पेशकदमी रोक दी। बैजंतिया साम्राज्य को रोमन सभ्यता की कुछ उपलब्धियां विरासत में मिलीं जिन्हें उसने कायम रखा। यहां यह खास तौर पर उल्लेखनीय है कि बैजंतिया साम्राज्य ने रोमन कानून की महान परंपरा को आगे बढ़ाया। दरअसल यह पूर्व के ही शासक थे जिन्होंने रोमन कानून को व्यवस्थित और संहिताबद्ध करने में पहल की। सम्राट थियोडोसियस ने तमाम कानूनों को संकलित करवाया। ये कानून सम्राट डायक्लीशन के समय से सूत्रबद्ध किए गए थे। बाद में जस्टिनियन के तहत रोमन कानून की एक समग्र संहिता तैयार की गई। यह एक लंबा-चौड़ा कवायद था। रोमन कानून के एक विशाल संग्रह को छांटकर उनका वर्गीकरण करना था। यह याद रखना चाहिए कि रोमन कानून की इमारत बारह खड़ी के प्रकाशन के बाद कई सदियों के दौरान तैयार हुई। जस्टिनियन ने यह कार्यभार 16 सदस्यों की एक परिषद को सौंपी। परिषद ने कानूनों, फैसलों, न्यायविदों की टिप्पणियों और शाही व्यवस्थाओं के सारांश तैयार किए जो सम्मिलित रूप से जस्टिनिया की संहिता के नाम से जाने जाते हैं। संहिता का एक सरलीकृत रूप दो खंडों में जारी किया गया। यह *डाइजेस्ट* के नाम से जाना गया। *डाइजेस्ट* ने पश्चिम के जर्मनिक राज्यों में रोमन कानूनों को लोकप्रिय बनाने में मदद की। *डाइजेस्ट* में रेखांकित जस्टिनियन की संहिता के माध्यम से ही रोमन कानून की अवधारणाएं आधुनिक यूरोपीय कानून संहिताओं में पहुंची। मौजूदा विधि प्रणालियों पर जस्टिनियन की संहिता के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

साम्राज्य के पश्चिमी प्रांतों में विभिन्न जर्मनिक कबीलों ने अपने-अपने राज कायम कर लिए थे। विसीगॉथों का राज स्पेन में था, वैंडलों का अफ्रीका में, बर्गंडियनों का दक्षिणी गॉल में और आस्ट्रोगॉथों का इटली में शासन था। जब विसीगॉथ स्पेन की तरफ कूच कर गए तो आस्ट्रोगॉथों ने पूर्वी और मध्य यूरोप के हिस्सों पर कब्जा कर लिया।

उनसे पूर्व में रोमन साम्राज्य को खतरा पैदा हो गया। बैजंतिया साम्राज्य ने उन्हें इटली जीतने के लिए प्रेरित किया और इस जर्मनिक दबाव को पूर्व में कम कर दिया। 493 ईसवी में उत्तरी इटली में आस्ट्रोगॉथों का राज्य स्थापित हुआ। आस्ट्रोगॉथों ने अपने सरदार थियोडोरिक को शासक घोषित किया।

अनेक इतिहासकारों का कहना है कि हमें जर्मनिक राज्यों की ओर से रोमन समाज को पहुंची क्षति को बढ़ा-चढ़ा कर देखने की प्रवृत्ति के प्रति सचेत रहना चाहिए। पश्चिम में जर्मनिक कब्जे का *पहला चरण* करीब 406 ईसवी में शुरू हुआ और उसने रोमन संस्थानों या रोमन सामाजिक-आर्थिक ढांचे को खत्म नहीं किया। 1920 के दशक में अल्फोंस डोप्श ने यह विचार *(इकानामिक एंड सोशल फाउंडेशन ऑफ यूरोपियन सिविलाइजेशन)* पेश किया कि जर्मनिक हमले अतीत से संपूर्ण संबंध-विच्छेद का प्रतिनिधित्व नहीं करते और जर्मनिक राज्य रोमन साम्राज्य की परंपराओं के साथ जारी रहे। उनकी दलील थी कि जर्मनिक राज्यों ने ऐसे समय में रोमन संस्थाओं को आत्मसात किया और उनका संरक्षण किया जब रोमन साम्राज्य पश्चिम में बिखर चुका था। इस तरह जर्मनिक कबीलों ने रोमन सभ्यता की महान उपलब्धियों को परवान चढ़ाने की ऐतिहासिक जिम्मेदारी निभाई। जर्मनिक समाजों ने रोमन समाज की अनेक विशेषताएं अपनाईं जिनसे उनकी अपनी सामाजिक ढांचों में तब्दीली आई।

डोप्श की दलील को उसको संपूर्णता में स्वीकार करना मुश्किल है। रोमन संस्थाएं जर्मनिक हमलों से अप्रभावित नहीं रहीं और उन्हें गंभीर नुकसान पहुंचा। डोप्श के अध्ययन का असली महत्व उत्तर रोमन साम्राज्य और आरंभिक जर्मनिक राज्यों के ढांचों के बीच की *धारावाहिकता* पर उनकी ओर से दिया गया जोर है। डोप्श इस तथ्य को उजागर करते हैं कि जर्मनिक हमलों ने रोमन समाज से ज्यादा खुद जर्मनिक समाजों को रूपांतरित कर दिया। जर्मनिक कबीले विजित रोमन प्रदेश में बसने वाले समाजों की तुलना में विकास के बहुत निचले स्तर पर थे। अत्यंत विकसित रोमन साम्राज्य पर राज करने के लिए उनके पास बुनियादी ढांचा नहीं था। लिहाजा उन्होंने पहले से कायम राजनीतिक और आर्थिक ढांचों को अपना लिया। जर्मनिक राज्यों के इस कदम ने उत्तर साम्राज्य की सामाजिक संरचना को कायम रखा।

तीसरी और चौथी सदी ईसवी के आर्थिक रुझान पांचवीं सदी ईसवी में बरकरार रहे। इस बीच सिर्फ एक यही बड़ा परिवर्तन हुआ कि एक जर्मनिक जमींदार कुलीन वर्ग का उदय ग्रामीण अंचलों में हुआ। आस्ट्रोगॉथ, विसीगॉथ और बर्गंडियनों ने *हॉस्पिटलिटास* की प्रणाली शुरू की जिसके मार्फत जर्मनिक जमींदारों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जगह पाई। *हॉस्पिटलिटास* एक ऐसी प्रणाली थी जिसके तहत जर्मनिक सरदारों और कुल प्रमुखों के 'आतिथ्य' के लिए रोमन जमींदारों को बाध्य किया जाता था। रोमन भूस्वामियों को अपनी जायदाद में जर्मनिक कबीलों को हिस्से देने पड़ते थे। जायदादों को जर्मनिक शासकों

द्वारा तय अनुपात के हिसाब से बांटा जाता था। विसीगॉथों के अधीनस्थ स्पेन में जमीन के मालिकों को अपनी दो तिहाई कृषि भूमि जर्मनिक नेताओं के हवाले करना पड़ता था। इटली में आस्ट्रोगॉथ शासन में रोमन भूस्वामी कुलीन वर्ग को एक तिहाई जमीन जर्मनों के सुपुर्द करनी पड़ती थी। यह विभाजन व्यक्तिगत भूसंपत्तियों के लिए था और उसमें समूची कृषि भूमि के बंटवारे का मामला नहीं था। कुल मिलाकर *हॉस्पिटलिटास* से प्रभावित होने वाली समग्र कृषि भूमि बहुत ज्यादा नहीं थी। इसमें सिर्फ बड़ी भूसंपित्तयों का विभाजन होता था।

जर्मनिक कबीलों के सदस्यों की तादाद आम तौर पर औसतन एक लाख से ज्यादा नहीं होती थी। इसलिए जर्मनिक कबीलों ने *हॉस्पिटलिटास* के तहत जो जमीनें लीं, वे इतनी ज्यादा नहीं थीं कि उनसे अर्थव्यवस्था में कोई गंभीर उलट-फेर होता। इससे जमीन की मिल्कियत के रूप में भी कोई उल्लेखनीय फर्क नहीं आया। कबीलों के बीच के सामाजिक विभेदीकरण ने यह सुनिश्चित कर दिया था कि सिर्फ प्रभावशाली सदस्य ही इस तरह से जमीनें हासिल कर सकें। कम हैसियत वाले सदस्यों को कबायली नेताओं की जमीनों पर खेतिहरों के रूप में बसा दिया गया। समय के साथ जर्मनिक खेतिहर *कॉलोनाइ* में बदल गए। जर्मनिक जमींदारों ने रोमन प्रांतीय कुलीन वर्गों की जीवन शैली की नकल की। सामाजिक रूप से दोनों में भिन्नता नहीं रही।

जर्मनिक कबीलों ने भूसंपित्तयों के जिन हिस्सों पर कब्जा किया था, उनमें रोमन *कॉलोनाइ* और भूदास मौजूद थे। उनकी इस मौजूदगी से स्वतंत्र जर्मनिक किसानों की हैसियत गिराने की प्रक्रिया को बल मिला। जब भूमि हस्तांतरित की गई तो उसके साथ ही उससे जुड़े *कॉलोनाइ* भी हस्तांतरित हुए। यहां यह याद किया जा सकता है कि चौथी सदी ईसवी से ही रोमन *कॉलोनाइ* को कानूनन जमीन से जोड़ दिया गया था। साथ ही *हॉस्पिटलिटास* प्रणाली के तहत रोमन और जर्मनिक भूस्वामियों के बीच गुलामों का बंटवारा भी होता था (मसलन बरगंडियन राज्य में कुल भूदासों में से आधे जर्मनिक नेताओं को सुपुर्द करने होते थे)। उत्पादन की बुनियादी पद्धति नहीं बदली थी। इटली, स्पेन और गॉल में *कॉलोनाइ* तथा गुलाम आधारित कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख लक्षण थी। वैंडल के शासन में अफ्रीका में हालात थोड़े भिन्न थे। वहां वैंडलों ने रोमन भूस्वामी कुलीन वर्ग को बिलकुल खत्म कर डाला था और उनकी भूसंपत्तियां ले ली थीं। तमाम जर्मनिक शासक वर्गों में वैंडल शासक वर्ग को सबसे क्रूर शोषणकारी माना जाता है।

जर्मनिक हमलों के पहले चरण के दौरान राज्य के द्वारा जो प्रशासनिक एवं न्यायिक मशीनरी विकसित हुई, उसमें द्वयात्मकता रेखांकित होती है, अर्थात शासन की द्वयात्मक पद्धति की एक किस्म उभरी। मौजूदा रोमन ढांचा ध्वस्त नहीं किया गया। शहरों में और आम तौर पर स्थानीय स्तर पर रोमन प्रशासनिक निकायों ने दैनंदिन प्रशासन की जिम्मेदारी

निभाई। जर्मनिक कबीलों की जीत से पहले जिन निकायों पर जिन समूहों का नियंत्रण था, उन्होंने कमोबेश अपना नियंत्रण कायम रखा। रोमन कानून खासकर रोमन आबादी के लिए प्रभावी रहे। जर्मनिक बाशिंदों पर उनके अपने कानून और प्रथाएं लागू होती थीं। रोमन कानून ने जर्मनिक कानूनों को प्रभावित और संशोधित किया। निजी संपत्ति जैसे मामलों के कानूनों को बिना ज्यादा फेरबदल किए अपना लिया गया। लेकिन नागरिक और सैन्य प्रशासन के बीच एक तीखा विभाजन था। सेना पूरी तरह जर्मनिक नियंत्रण में थी। जर्मनिक राज्यों की द्वयात्मकता ने पश्चिम में रोमन साम्राज्य के खात्मे के बाद भी कुछ समय तक रोमन संस्थाओं को फलने-फूलने की इजाजत दी। जर्मनिक हमलों के दूसरे चरण ने इस द्वयात्मकता को नष्ट कर दिया और रोमन सामाजिक ढांचे पर उसका एक जबर्दस्त विनाशकारी प्रभाव पड़ा। इसी दूसरा चरण में क्लासिकी यूरोपीय सामंतवाद की नींव पड़ी।

अध्याय ग्यारह

अरब, इसलाम और शुरुआती अब्बासी खिलाफत

सातवीं सदी (जब तक विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया जाए, अब से तमाम तारीखें ईसवी सन् में होंगी) की शुरुआत में ऐतिहासिक महत्व की एक महान घटना अरब प्रायद्वीप (यह मोटे तौर पर आधुनिक सऊदी अरब से मिलता-जुलता है) में हुई। अब तक हमने इस क्षेत्र का न के बराबर जिक्र किया है क्योंकि वहां के बाशिंदे पश्चिम एशिया के एक जगह बसे हुए (settled) समाजों से अलग-थलग रह रहे थे। दक्षिण-पश्चिम में यमन की उर्वर पर्वतीय घाटियों और दक्षिण-पूर्व में ओमान को छोड़ पूरा प्रायद्वीप छुटपुट आबादी वाला एक शुष्क क्षेत्र है। इस बंजर इलाके में खानाबदोश कबीलाई समुदाय रहा करते थे जिन्हें 'बद्दू' कहा जाता है। सातवीं सदी में अरब एक नए धार्मिक आंदोलन, इसलाम, का केंद्र बना।

I

अरब व्यापक आयामों वाला एक प्रायद्वीप है। यह पश्चिम में लाल सागर से, दक्षिण में अरब सागर से और पूर्व में फारस की खाड़ी से घिरा है। प्रायद्वीप का ज्यादातर हिस्सा या तो रेगिस्तान है या फिर शुष्क चरागाह। इस क्षेत्र में नियमित रूप से बारिश बेहद कम होती है। तीन-तीन साल तक सूखा पड़ना इस क्षेत्र के लिए एक सामान्य बात है। प्रायद्वीप के कुछ हिस्सों में तो लगातार 10 साल तक बारिश नहीं है। अंदरूनी इलाकों की तुलना में तटीय क्षेत्रों में बारिश कुछ ज्यादा होती है। मुख्यत: सर्दियों और वसंत के महीनों में थोड़ी बारिश होती है। अरब में कोई स्थायी नदी नहीं है। लेकिन वहां चश्मों या कुओं से बने अनेक नखलिस्तान हैं।

प्रायद्वीप के बीचोंबीच में एक विशाल अखंड शुष्क क्षेत्र है जिसे नज्द कहते हैं। उत्तर में नज्द सीरियाई रेगिस्तान या नफूद से मिलता है। उत्तर-पूर्व में नज्द का यह इलाका दक्षिण इराक में फरात नदी के किनारों तक फैला है। पश्चिम में यह भूपट्टी लाल सागर के समांतर चलती है और अनेक छोटी पहाड़ियों को अपने दामन में समेटे है। पश्चिमी अरब के मध्य भाग को हिजाज कहते हैं। इसलाम के उद्भव स्थल मक्का और मदीना हिजाज में स्थित हैं। हिजाज की पहाड़ियां और चट्टानें बंजर हैं और पूरा इलाका शुष्क है। यमन (दक्षिण अरब) प्रायद्वीप के दक्षिणी-पश्चिमी किनारे पर स्थित है। वहां पर्वत

और उर्वर घाटियां हैं। यमन में मानसून की वर्षा होती है। इसलिए वहां का पर्यावरण प्रायद्वीप के अन्य इलाकों से पूरी तरह अलग है। दक्षिण-पूर्वी अरब ओमन कहलाता है। यह भी नज्द और हिजाज के मुकाबले कम शुष्क है। फारस की खाड़ी के प्रवेश मार्ग पर स्थित ओमन अरब की परिधि पर विद्यमान एक हद तक दूरदराज की जगह थी। वह सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत देर से प्रायद्वीप के अन्य हिस्सों के साथ जुड़ा।

मध्य, उत्तर और पश्चिमी अरब के निवासियों ने सदियों तक खानाबदोश जिंदगी गुजारी। ऊंटों को पालतू बनाने (करीब 2000 ईसापूर्व के बाद किसी समय) से ऊंट पालन पर आधारित एक खास किस्म के पशुचारी खानाबदोश जीवन की उत्पत्ति हुई। ऊंट 50 डिग्री सेंटीग्रेड तक के उच्च तापमान पर तीन हफ्ते तक बिना किसी भोजन-पानी पाए लगातार सफर कर सकता है। उन्हें अरब के रेगिस्तान के अल्प संसाधनों की तलाश करने और उनका दोहन करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था। नखलिस्तानों में जानवरों के लिए चरागाह उपलब्ध होता था और पानी मिलता था। नखलिस्तानों में प्राकृतिक चश्मों से या कुंए खोद कर उनकी मदद से खजूर, फल और कुछ अनाज उगाए जा सकते थे। खजूर और ऊंट का दूध उस क्षेत्र का मुख्य भोजन था। ऊंट आधारित पशुचारी बद्दू के नाम से जाने जाते थे। वह अपने जानवरों के साथ एक नखलिस्तान से दूसरे नखलिस्तान में घूमते थे। एक समयकाल में उन्होंने कठोर वातावरण की अंतरंग जानकारी हासिल की। नज्द और हिजाज के कठिन भूभाग से अंतरंगता उनके जिंदा रहने के लिए जरूरी थी। बद्दुओं को ठीक-ठीक पता था उनको अपने और अपने जानवरों (मुख्यतः ऊंट, लेकिन कभी-कभार कुछ घोड़े भी) के जीवनयापन के लिए कहां थोड़ा बहुत भोजन-पानी मिल सकेगा और किसी खास जगह पर कितने दिनों तक वे टिक सकेंगे।

बद्दू हमेशा घूमते-फिरते थे। उनका सामाजिक संगठन स्वतंत्र *कबीलों* पर आधारित था। हरेक कबीला अपना एक पूर्वज (वास्तविक या काल्पनिक) मानता था। बद्दू कबीले आम तौर पर छोटे आकार की इकाइयां थे जो कुलों या विस्तारित परिवारों में विभाजित थे। जैसे-जैसे कुल बड़े होते गए वे खुद अपनी स्वतंत्र इकाई स्थापित करने के लिए अलग हो गए। इसने कबीलों को ज्यादा भारी-भरकम बनने से रोका। वहां का शुष्क वातावरण ज्यादा घनी आबादी की इजाजत नहीं देता था। बद्दू जीवन शैली अरब की एक विशेषता बन गई। कुछ ही समुदाय बसी-बसाई जिंदगी गुजारते थे। कुछ जगहें ऐसी थीं जहां बारिश ज्यादा नियमित रूप से होती थी या जहां चश्मों और कुओं से सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध हो जाता था और उनसे खजूर, फल और सब्जियों के अलावा कुछ अनाज उपजाने की सीमित संभावनाएं थीं। खासकर हिजाज में ऐसी जगहें थीं। बद्दू ऐसी बस्तियों पर हमले करते। बद्दूओं ने अपने संसाधन बढ़ाने के लिए पशुचारण के साथ आसपास के बद्दू कबीलों और स्थानबद्ध समुदायों पर हमले करते। बद्दू किसानों से

कभी-कभी खिराज भी वसूल करते जिसे *खुव्वा* कहते थे। यह किसानों की रक्षा करने और उन्हें लूटमार का निशाना नहीं बनाने के आश्वासन के एवज में लिया जाता था।

इस तरह ऊंटचारी खानाबदोशों ने स्थानबद्ध लोगों पर एक हद तक नियंत्रण स्थापित किया। बेशक वे इस क्षेत्र के प्रमुखतम बाशिंदे थे। ऊंटचारी खानाबदोशी अरब की प्राक्-इसलामी सामाजिक संरचना की प्रमुख विशेषता थी। साथ ही निम्न स्तर के पशुचारी भी थे जो भेड़-बकरियां पालते थे। दूसरी तरफ ऐसे कुछ समुदाय थे जो खजूर, फल और अनाज की खेती कर जिंदगी गुजारते थे। अंत में, सभी समूह विनिमय और व्यापार से कुछ हद तक जुड़े थे। हम देखेंगे कि छठी सदी ईसवी तक व्यापार में विशेषता हासिल किया एक वर्ग उभर चुका था। यह ध्यान में रखना चाहिए कि उस वक्त तक मुख्य अरब में कोई शहरी केंद्र नहीं था और राज्य का निर्माण नहीं हुआ था।

बद्दू कबीलों और प्रायद्वीप के लोग आम तौर पर खुद को *अरब* कहते थे। प्राचीन यूनानी उनके लिए *सैराकेनोइ* (लैटिन *सैरासेनी*, अंग्रेजी *सैरासेन*) शब्द का इस्तेमाल करते थे। अभी हाल तक पश्चिमी साहित्य में *सैरासेन* और *अरब* का इस्तेमाल समानार्थी शब्दों के रूप में किया जाता था। अरबों की भाषा शामी का एक रूप थी जो खुद अरमाइक का परिवर्तित रूप है। अरबी भाषा के तहत अनेक बोलियां थीं, लेकिन पांचवीं सदी के अंत में इसने एक विशिष्ट भाषाई पहचान पाई। इसकी सर्वाधिक अभिव्यक्ति मौखिक काव्य के विकास में हुई। करीब 500 ईसवी से अरबी में कविताएं (उसे पहले के काल का कोई रिकार्ड नहीं है) एक खास शैली में की जाती थी जिसे *राजज़* कहते हैं। अनेक कवियों ने इस शैली में कविताएं कीं, वह भी बिना किसी तैयारी के। हरेक कबीले के अपने कवि होते थे जो कबीले की गौरव गाथा सुनाकर अपने लोगों का मनोरंजन करते थे। *राजज़* शैली के बाद कविता की एक अत्यंत उच्च शैली *कसीदा* विकसित हुई। ये लंबी कविताएं होती थीं जिन्हें गाया जा सकता था। *कसीदा* के एक खास रूप ने समूचे अरब में बड़ा नाम पाया। ये संबोध-गीति थे और उन्हें कुछ अस्पष्ट कारणों से *मुआल्लकात* या लंबित कविताएं कहा जाता था। प्राचीनतम और सर्वाधिक लोकप्रिय लंबित कविताएं इमरूल कैस की थी जिसे प्राक्-इसलामी अरब का सर्वप्रमुख कवि माना जाता है। *मुआल्लकात* कहने वाले अन्य कवियों में तराफा, जुहैर और लबीद शामिल हैं। ये कविताएं दूर-दूर तक गाई जाती थीं और उनसे भाषा को एक उल्लेखनीय एकरूपता मिली। अरबों के पास राज्य के ढांचे या राजनीतिक संबद्धता नहीं था। फिर भी एक समान भाषा ने बिखरे हुए अरब कबीलों को एक सांस्कृतिक एका दी। पैट्रिशिया क्रोन ने छठी सदी में अरब कबीलों की उल्लेखनीय 'सांस्कृतिक समरूपता' पर टिप्पणी की है।

यह मान लेना गलत होगा कि अरब बाहरी दुनिया से पूरी तरह अलग-थलग रहते थे। उत्तर में (सीरिया और फलस्तीन के साथ), उत्तर-पूर्व में (इराक के साथ), दक्षिण में (यमन के साथ) और लाल सागर के पार (इथोपिया के साथ) उनके अनेक संपर्क

बिंदु थे। सीरिया, फलस्तीन, इराक और कुछ हद तक यमन स्थानबद्ध समाज थे। छठी सदी में सीरिया और फलस्तीन बैजंतिया साम्राज्य (पूर्व में रोमन साम्राज्य का उत्तराधिकारी) के हिस्से थे। इराक पर सासानियों का शासन था जिसकी राजधानी तेसिफोन अरब रेगिस्तान के किनारे से कुछ ही दूर दक्षिण इराक की दजला नदी के तट पर स्थित थी। यमन एक आबाद इलाका था जिसकी कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था राज्य निर्माण की प्रक्रिया शुरू करने के लिए पर्याप्त अधिशेष पैदा कर रही थी। यमन में कृषि के साथ व्यापार भी था।

पांचवीं सदी की शुरुआत तक यमन में कुछेक शहरी केंद्र उभर आए थे। क्षेत्र में स्वतंत्र सरदारों का राज्य था जिन्होंने छोटे राज्य बना लिए थे। पांचवीं सदी के मध्य में अबकारिब असद ने यमन का एकीकरण किया। उसने कुछ बद्दू कबीलों से खिराज भी वसूला। उस समय किंदा कबीला के नेतृत्व में अनेक दक्षिणी बद्दू कबीलों ने परिसंघ बनाया। किंदा के सरदारों का यमन के शासक के साथ गठबंधन था, जिसे वे खिराज देते थे। यमन के लोगों की भाषा अरबी से संबंध रखती थी, लेकिन उससे बिलकुल भिन्न थी। पांचवीं सदी में यमनियों का एक अच्छा-खासा हिस्सा यहूदी धर्म का पालन करता था। पहली सदी से ही हिजाज और यमन में यहूदियों की मौजूदगी थी। असद खुद भी धर्म बदल कर यहूदी बन गया था। यमन में ईसाइयों की भी एक छोटी तादाद थी।

बैजंतिया और सासानी साम्राज्य दोनों छठी सदी के समूचे उत्तरार्द्ध में (करीब 540 ईसवी से) सीरिया और फलस्तीन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए तीखी झड़पों में उलझे रहे। यहां यह याद करना बेहतर होगा कि सीरिया लंबे समय तक रोमन साम्राज्य का हिस्सा रह चुका था। सासानियों ने उत्तरी मेसोपोटामिया में अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी और बैजंतिया साम्राज्य को सीरिया से हटाने का प्रयास कर रहे थे। पश्चिम एशिया पर वर्चस्व की इस लड़ाई में बैजंतिया और सासानी साम्राज्यों ने अरब प्रायद्वीप के कुछ हिस्सों को नियंत्रण में किया। इसके लिए उन्होंने सासानी या बैजंतियाई आधिपत्य स्वीकार करने के लिए तैयार कुछ कबायली समूहों के साथ असमान संधियां कीं। यहां यह जिक्र किया जा सकता है कि अरब गए बहुतेरे धीरे-धीरे सीरिया और इराक में घुस गए थे और उन्होंने सासानी तथा बैजंतिया सेना में जगह पा ली थी। पांचवीं सदी में एक बद्दू कुल, बनु लख्म ने पूर्वोत्तर अरब में सासानी साम्राज्य की सीमा पर एक राज्य स्थापित किया था। लख्मी राज्य सासानियों के मातहत था। इस राज्य की राजधानी निम्न फरात के तट पर स्थित हिरा थी। छठी सदी की शुरुआत में जार्डन का एक खानाबदोश कबीला गस्सान ने सीरिया के निकट अपना राज्य स्थापित किया। गस्सानी बैजंतिया साम्राज्य की अधीनता स्वीकारते थे। सासानी और बैजंतिया दोनों लख्मियों तथा गस्सानियों को बद्दुओं के हमलों से अपने बचाव के लिए ढाल के तौर पर और अरब सैनिकों की नियुक्ति के लिए इस्तेमाल करते थे।

अरब प्रायद्वीप के सामने लाल सागर के तट पर पूर्वी अफ्रीकी देश इथोपिया स्थित है। इथोपिया एक राजतांत्रिक देश था जिसकी राजधानी अक्सूम थी। इथोपियाई राजाओं ने चौथी सदी में ईसाइयत कबूल कर ली। इथोपियाइयों ने एक खास किस्म की ईसाइयत को अपनाया था जिसे काप्टिक कहते हैं। काप्टिक चर्च शुरुआती मिस्री ईसाइयत से सीधे विकसित हुआ था। इथोपिया बैजंतिया साम्राज्य का एक निकट सहयोगी था। बैजंतियाई उसका इस्तेमाल अरब में, खासकर यमन में, अपना प्रभाव बरकरार रखने के लिए करते थे। जब करीब 510 ईसवी में यहूदी शासक धू नुवास दक्षिण अरब में सत्ता में आया और ईसाइयों को यातनाएं देने लगा तो इथोपिया ने इसे यमन पर हमला करने का बहाना बनाया। शुरू में वे नाकाम रहे। लेकिन बाद में 525 ईसवी में वे धू नुवास को हराने में सफल रहे। धू नुवास के समर्थकों ने दक्षिण अरब पर से इथोपियाई और बैजंतियाई वर्चस्व खत्म करने के लिए ईरानियों से मदद मांगी। करीब 570 तक यमन पर सासानी प्रभाव हो चुका था। इस तरह अरब विभिन्न तरीकों से महाशक्तियों की राजनीति में भागीदार बन गए।

छठी सदी के दौरान अरब के अंदर धीरे-धीरे परिवर्तन रूप ले रहा था। कुछ कबीलों ने खानाबदोशी छोड़ दी और व्यापार को अपना मुख्य पेशा बनाया। परिवर्तन की यह धारा हिजाज में सबसे मुखर थी। सासानियों और बैजंतियों के बीच टकाराव के कारण फारस की खाड़ी और इराक से होकर गुजरने वाला अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मार्ग अवरुद्ध हो गया था। इससे अरब व्यापार को बढ़ावा मिला। अब कुछ व्यापार लाल सागर से होकर या यमन से सीरिया के जमीनी रास्ते से होने लगा। यमन और सीरिया-फलस्तीन के बीच पहले से ही व्यापार संबंध थे। व्यापारियों के कारवां हिजाज होकर जाते थे जहां रास्ते में अनेक नखलिस्तान थे। यमन अब अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक महत्वपूर्ण पारगमन बिंदु बन गया। नतीजतन हिजाज के रास्ते का महत्व बढ़ गया। व्यापार को बुनियादी पेशा बनाने वाले कबीलों और कुलों के लिए यह एक शानदार मौका था। उन्होंने माल ढोने के लिए ऊंट उपलब्ध कराए या खुद ही कारवां गठित किए। बद्दुओं से बचाव का प्रबंध करना जरूरी था और उसके लिए पड़ोसी कबीलों के साथ गठबंधन कायम किए गए। हिजाज में व्यापार के विकास के बावजूद छठी सदी में कम से कम 80 प्रतिशत आबादी खानाबदोश थी।

इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हिजाज में व्यापारियों की बस्ती मक्का छठी सदी में उत्कर्ष पर पहुंची। यह बस्ती एक नखलिस्तान में बसी थी। उसमें जमजम नाम का एक कुआं था जिसके पानी को मुसलमान मुकद्दस मानते हैं। मक्का दो व्यापार मार्गों के संधि स्थल पर स्थित था। एक मार्ग उत्तर से दक्षिण को जाता था और फलस्तीन तथा यमन को जोड़ता था। दूसरा अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण था और पश्चिम के इथोपिया तथा लाल

सागर को पूर्व की फारस की खाड़ी से जोड़ता था। मक्का का थोड़ा महत्व उसके तीर्थस्थल होने से भी था जिसे बस्ती के व्यापारी समुदाय ने शायद अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए बढ़ावा दिया। मक्का का मुख्य धर्मस्थल एक वर्गाकार ढांचा था जिसे काबा (घन) कहते हैं। काबा में मूर्तियां और अन्य चीजें थीं जिन्हें विभिन्न कबीले और कुल मुकद्दस मानते थे। उन मुकद्दस चीजों में एक काला पत्थर भी शामिल था जो वहां की दीवार में लगा था। हर साल एक खास मुकद्दस काल में लोग वहां तीर्थ करने पहुंचते थे। उस समय एक मेला सा लगता था और बदले की कार्रवाइयों तथा परस्पर विरोधी कबीलों के बीच युद्ध निलंबित रहता था। मेले में शांतिपूर्ण ढंग से व्यापार हो सकता था। इसी तरह के मेले अगल-बगल की कुछ बस्तियों में भी होते थे। उकाज का वार्षिक मेला 20 दिन तक चलता था।

पांचवीं सदी के अंतिम वर्षों में मक्का पर कुरैश कबीले के एक व्यक्ति का शासन हुआ जिसका नाम कुसै था। कुरैश कबीले में अनेक कुल थे जो व्यापार में लगे थे। जल्द ही कुरैश बस्ती का अग्रणी कबीला बन गया। उसने थकीफ और उस जैसे कुछ पड़ोसी कबीलों के साथ गठबंधन किया। थकीफ मक्का के बगल में स्थित ताइफ का प्रभुत्वशाली कबीला था। ताइफ एक उर्वर नखलिस्तान था जहां फल और अनाज उगाए जाते थे। मुहम्मद की अपनी जीवनी में मैक्सिम रॉडिंसन कुरैश के उत्थान का जिक्र करते हुए कहते हैं कि 'अगले पांच सौ साल के इतिहास को इस एक कबीले के एक विश्व शक्ति में विस्तार के आलोक में देखा जा सकता है।'

व्यापारिक गतिविधि मक्का का मुख्य आधार थी क्योंकि वहां कृषि के लिए मुश्किल से कोई गुंजाइश थी। व्यापार से संभवतः इतनी आमदनी हो जाती थी जिससे बस्ती के लोगों का जीवन निर्वाह हो सके। वहां ऊंट, भेड़ और बकरियां भी पाली जाती थीं। लेकिन यह एक गौण गतिविधि थी। भोजन के लिए खजूर उगाए जाते थे। व्यापार से मिलने वाला अधिशेष छठी सदी तक कबायली एकता में बाधक बनना शुरू हो गया था। सबसे पहले कुरैश में विभाजन हुआ। जो लोग शहर के बाहरी इलाके में बसे थे, वे कुरैश अज-जवाहिर कहलाए। मक्का के मध्य में जमजम के निकट बसने वाले कुरैश अजबताएह कहलाए। व्यापार से कुछ परिवार और कुल समृद्ध हो गए थे जिसने सामाजिक विभेदीकरण की एक प्रक्रिया को जन्म दिया। कुरैश में वर्गभेद दिखना शुरू हो गया। अभ्रमणशील जीवनशैली अपनाने से टकरावों को रोकने के लिए प्रशासन का एक प्राथमिक ढांचा बनाना जरूरी हो गया था। परिवारों के मुखियों ने कुल-परिषद का गठन किया था जो राजनीतिक संगठन का आधार थी। कबायली समाज के बिखराव से उत्पन्न तनाव और झड़पों के कारण सीमित राजनीतिक प्राधिकार वाला एक समूह उभर कर आया। छठी सदी के अंत और सातवीं सदी की शुरुआत तक इस समूह में जोरदार गुटीय टकराव चल रहे थे। ये गुट कुलों के आधार पर विभाजित थे और उनके टकराव एक हद तक मक्का

के व्यापार में बड़ा हिस्सा पाने के लिए थे। इसी ऐतिहासिक परिस्थिति में सातवीं सदी की शुरुआत में मोहम्मद ने अपना धार्मिक संदेश देना शुरू किया।

II

मोहम्मद की शुरुआती जिंदगी के बारे में हमारे पास बहुत कम जानकारी है। उनके प्रथम विवरण उनके निधन के एक सौ साल से ज्यादा अरसे बाद लिखे गए। इस पर आम तौर पर सहमति है कि उनका जन्म करीब 570 में हुआ। वह कुरैश कबीले में हाशिम कुल के थे। मोहम्मद के पिता अब्दुल्ला एक सीमित संसाधनों वाले व्यक्ति थे। मोहम्मद जब बहुत छोटे थे, उनके मां-बाप दोनों का निधन हो गया। उनका लालन-पालन उनके चाचा अबूतालिब ने किया। अबूतालिब एक खुशहाल सौदागर थे। जब मोहम्मद बड़े हुए, उन्होंने खदीजा नामक एक धनी विधवा के यहां नौकरी की। खदीजा एक सफल व्यापारी थीं। वह सीरिया और फलस्तीन से व्यापार करती थीं। मोहम्मद ने उन्हें इसमें सहयोग दिया। बाद में मोहम्मद ने खदीजा से शादी कर ली। शादी के वक्त मोहम्मद की उम्र करीब 25 साल की थी जबकि खदीजा उम्र में उनसे बहुत बड़ी थीं।

करीब 610 में मोहम्मद को एक तीव्र आध्यात्मिक अनुभव हुआ जिसे उनकी पैगंबरी की शुरुआत माना जाता है। उन्हें दैविक समझी जाने वाली कई प्रकटन हुए। ये उनके धार्मिक अभियान या तबलीग के आधार बने। मोहम्मद ने ऐलान किया कि वह सर्वशक्तिमान अल्लाह के दूत या पैगंबर है। अल्लाह के संदेश मोहम्मद के मार्फत इंसान तक पहुंचाए जा रहे हैं। इन ईश्वरीय श्रुतियों (वही) पर मुसलमानों का धर्मग्रंथ कुरान आधारित है। खदीजा उन लोगों में शामिल थी जिन्होंने मोहम्मद की पैगंबरी पर सबसे पहले यकीन किया और ईमान लाया। कुछेक साल में मोहम्मद के पास मक्की अनुयायियों का एक छोटा समूह हो गया जिसने उनके धार्मिक विचार स्वीकार कर लिए थे। वे लोग *मुसलिम* (बहुवचन *मुसलिमून*), अर्थात (अल्लाह की) अधीनता स्वीकार करने वालों के नाम से जाने गए। धर्म खुद इसलाम के नाम से जाना गया जिसका मतलब अधीनता होता है। इसलाम और *मुसलिम* दोनों की उत्पत्ति एक है।

मोहम्मद के मजबह का उसूल दृढ़प्रतिज्ञ एवं अटल एकेश्वरवाद था। उन्होंने बताया ईश्वर या अल्लाह एक और सिर्फ एक है। बाकी तमाम देवी-देवता खारिज कर दिए गए। अनुयायियों को अल्लाह की अनन्यता पर यकीन करना और किसी भी देवी या देवता को स्वीकार नहीं करना होता था। मूर्तियों की पूजा पर सख्त रोक लगा दी गई। मोहम्मद ने अरब कबीलों की विविध धार्मिक प्रथाओं की जगह एकल आस्था पेश की और उसे कबायली एकता का विचारधारात्मक आधार बनाया। इसलाम में अल्लाह और पैगंबर को स्वीकार करने वाले तमाम लोगों की एकता और बराबरी पर बेहद जोर है।

मोहम्मद का मजहब मक्कावासियों की धार्मिक प्रथाओं से सर्वथा भिन्न था। उनका जबर्दस्त विरोध किया गया क्योंकि उन्होंने मक्कावासियों के परंपरागत विश्वासों की निंदा-आलोचना की थी। कुछ साल तक अपने प्रभावशाली चाचा अबुतालिब से मिली सुरक्षा के कारण वह मक्का में अपना धर्म का प्रचार करते रह सके। लेकिन 619 में, एक ही साल में, अबूतालिब और खदीजा (वह उनकी शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत थी) दोनों के निधन से मक्का में मोहम्मद के लिए परेशानियां बढ़ गईं। दिनोंदिन मक्का के हालात खराब होते गए और अंततः मोहम्मद को मक्का छोड़कर हिजाज की एक दूसरी बस्ती यथरिब जाने का फैसला करना पड़ा जो मक्का से 200 मील उत्तर में स्थित है। यथरिब का बाद में नाम मदीना (मदीना का शाब्दिक अर्थ 'शहर' है) हो गया। मोहम्मद और उनके अनुयायी 622 में मदीना चले गए। अरबी में मक्का से मदीना के इस स्थानांतरण को *हिजरत* कहते हैं। बाद में इसलामी युग की शुरुआत इसी साल से मानी गई।

मदीना छोटे गांवों का एक समूह था जहां विभिन्न कबीले रहते थे। ये गांव चश्मों और कुओं से भरपूर एक नखलिस्तान के इर्द-गिर्द उभर आए थे जिनमें प्रचुर जलराशि थी। वहां फल और अनाज उगाना संभव था इसलिए वह किसान बस्ती ही ज्यादा थी। मदीना में खानाबदोशी से स्थानबद्ध कृषि में संक्रमण रूप ले रहा था। मक्का में कुरैश प्रभुत्वशाली थे। उसके विपरीत मदीना में अनेक कबीले थे और उनमें से ढेर सारे बस्ती पर नियंत्रण कायम करने के लिए संघर्षरत थे। कुछ कबीले यहूदी थे। मोहम्मद को मदीनावासियों की मदद का आश्वासन मिला था। वह कबायली विवादों के एक मध्यस्थ के रूप में उभरे जिससे उन्हें जल्द ही कुछ प्रभाव हासिल हो गया। इससे उन्हें अपने प्रचार-प्रसार करने में मदद मिली। मदीना में उनके कई अनुयायी बन गए। मोहम्मद के साथ हिजरत कर मदीना पहुंचे उनके मक्की अनुयायी *मुहाजिरून* (प्रवासी) कहलाए जबकि मदीना के उनके समर्थक *अंसार* (मददगार) कहलाए। इन विभाजनों ने बाद में राजनीतिक विवादों में भूमिका निभाई।

मोहम्मद ने मदीना में एक नए राजनीतिक ढांचे की नींव रखी। अब वह महज एक धार्मिक नेता नहीं रहे, बल्कि मदीना पर केंद्रित एक नवजात राज्य के प्रमुख भी हो गए। उन्हें कानूनदाता के तौर पर देखा गया। उन्होंने शासन के कायदे-कानून तय किए। उनके अनुयायी (वयस्क पुरुष अनुयायी) उनके सैनिक बने। आसपास के इलाकों के कुछ कबीलों के साथ गठबंधन स्थापित किए गए। अनेक कबीलों ने इसलाम कबूल कर लिया और इस तरह वे मुसलिम धार्मिक समुदाय (*उम्मा*) और साथ ही मोहम्मद की एकीकृत राज्यव्यवस्था के हिस्सा बन गए। हमला अब भी इस राज्य की आमदनी का एक अपरिहार्य स्रोत था। माल-ए-गनीमत के समतामूलक बंटवारे का एक सूत्र तय किया गया। माल-ए-गनीमत का पांचवां हिस्सा सीधे पैगंबर के पास पहुंचता ताकि राज्य को स्वतंत्र वित्त व्यवस्था मिल सके। उसके अतिरिक्त मोहम्मद का नेतृत्व स्वीकार करने वाले कबीलों पर नियमित स्वैच्छिक योगदान का नियम लागू किया जाता। यह एक कर

में विकसित हुआ जिसे *जकात* कहते हैं। तमाम मुसलमानों को राज्य को *जकात* अदा करना होता था। *जकात* मुसलमानों के कमजोर तबकों में वितरण के लिए था।

जब एक बार प्रशासनिक प्रणाली और सेना का गठन हो गया, और बद्दू कबीलों के साथ संबंध स्थापित हो गए, मोहम्मद कुरैशों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष छेड़ने की स्थिति में आ गए। दरअसल दोनों प्रक्रियाएं साथ-साथ चलीं। मक्का से उत्तर में सीरिया और फलस्तीन जाने वाले कारवां को मदीना के पास से गुजरना पड़ता था। इस मार्ग से गुजरने वाले कुरैश के व्यापारिक कारवों पर लगातार हमले हुए। कुरैश कारवों पर सफल हमलों ने अंतत: मक्का का व्यापार चौपट कर दिया। कुरैशों को शांति के लिए अनुनय-विनय करना पड़ा। 630 में मोहम्मद मक्का हासिल करने में कामयाब रहे। मक्कावासियों ने सामूहिक रूप से इसलाम ग्रहण कर लिया। मोहम्मद ने शक्तिशाली कुरैश कबीले (और ताइफ के थकीफ जैसे उनके सहयोगियों) की मदद से अरब पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली। मक्का में काबा इसलाम का सबसे मुकद्दस धर्मस्थल बन गया। काबा से तमाम कबायली मूर्तियां और पूजा की वस्तुएं हटा दी गईं। काबा में इसलामी प्रतीक था एक काला पत्थर जो पारंपरिक रूप से इब्राहीम से जुड़ा था। इब्राहीम को तमाम अरबों का साझा पूर्वज माना जाता है। मुसलमानों को हमेशा काबा की ओर मुंह करके इबादत करने का आदेश दिया गया और काबा की ज़ियारत (*हज*) को सर्वश्रेष्ठ धार्मिक कृत्य माना गया।

मोहम्मद का निधन 632 में हो गया। वह कबायली संगठन की जगह एक राज्य की स्थापना में सफल रहे थे जिसमें बड़ी संख्या में अरब कबीले शामिल थे। मोहम्मद के निधन के समय ज्यादातर बद्दू कबीले (खासकर हिजाज और नज्द के) उनका नेतृत्व स्वीकार कर चुके थे। शुरू में राज्य क्षेत्रीय रूप से ठीक से परिभाषित नहीं था। इसमें आश्चर्य की शायद ही कोई बात हो क्योंकि यह एक ऐसा राज्य था जिसमें खानाबदोश कबीले आते थे। मदीना और कुछ हद तक मक्का भी सत्ता के केंद्र बिंदु थे। लेकिन इस राज्य की जबर्दस्त सैन्य क्षमता का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि जब मोहम्मद ने अपने निधन से कुछ समय पहले सीरिया की दिशा में अभियान का नेतृत्व किया था तो उनकी सेना में 30,000 लोग थे। 632 के बाद आधी सदी में अरब राज्य ने एक ठोस शक्ल अख्तियार कर ली।

डब्ल्यू.एम. वाट का शोध हमें यह समझने में मदद करता है कि क्यों इतने छोटे से समय में इसलाम ने अरब कबीलों में इस कदर व्यापक स्वीकृति पाई। वाट ने इस नए धार्मिक आंदोलन के अवसर पर अरब समाज की प्रकृति की जांच पड़ताल की (*मोहम्मद एट मक्का; इसलाम एंड दि इंटिग्रेशन आफ सोसाइटी*)। वह इसलाम के उदय और उत्थान को समाज के उस परिवर्तन के जवाब के रूप में देखते हैं जो कुछ कबीलों द्वारा व्यापार और गैर-खानाबदोश स्थिर जीवनशैली अपनाने से हो रहा था। यह मक्का था जहां सबसे ज्यादा परिवर्तन हुए। मक्की व्यापार के विस्तार ने पारंपरिक सबंधों को कमजोर किया

और समाज में तनाव पैदा किए। व्यापार के मुनाफों और हज से मक्का में आने वाली दौलत से सभी को एकसमान फायदा नहीं हुआ। इससे विभिन्न स्तर पर टकराव पैदा हुए। कुरैश के अपेक्षाकृत सरल कबायली संगठन के पास नए हालात से निबटने का कोई तरीका नहीं था। इसी तरह की प्रक्रियाएं अन्य जगहों पर, खासकर उन कबीलों में शक्ल ले रही थीं जिन्हें वाणिज्यिक विनिमय के दायरे में ले आया गया था। ऐसे ढेर सारे कबीले मक्की प्रणाली का एक हिस्सा बन गए थे। उसके अलावा ऐसे कबीले थे जो सीमित रूप से कृषि से जुड़ रहे थे जबकि दूसरे अरब की सीमाओं (बैंजंतियाई और ईरानी साम्राज्य; इथोपिया; यमन) पर स्थिर समाज के दायरे में आ रहे थे। मोहम्मद की एकता का संदेश इस सामाजिक हलचल का जवाब था और इसलाम ने कबीलों को राज्य निर्माण की एक योजना दी।

वाट की व्याख्या ने 1950 के दशक के अंत और उसके बाद के काल में इस विषय में लेखन को जबर्दस्त रूप से प्रभावित किया। रॉडिंसन (*मोहम्मद*) और मार्शल हाड्जसन (*दि वेंचर आफ इसलाम*) ने वाट की अवधारणा स्वीकार की और उसे और भी विकसित किया। दूसरी तरफ कुछ इतिहासकार, मसलन पैट्रिशिया क्रोन का विचार है कि वाट की 'मक्की व्यापार परिकल्पना' असंतोषजनक है। क्रोन ने *मक्कन ट्रेड एंड दि राइज आफ इसलाम* में एक वैकल्पिक अवधारणा पेश की है। क्रोन ने यह प्रदर्शित करने की कोशिश की है कि मक्का का व्यापार इतने बड़े पैमाने पर नहीं हो रहा था जो पारंपरिक समाज को कमजोर कर सके। व्यापार कम कीमत की वस्तुओं का था जो बहुत ज्यादा दौलत पैदा करने में सक्षम नहीं था। सौदागरी अर्थव्यवस्था से पैदा अधिशेष की मात्रा इतनी ज्यादा नहीं थी कि वह समाज में विशाल विषमता पैदा कर सके। दूसरे शब्दों में, पारंपरिक जीवनशैली अब भी बरकरार थी। क्रोन के अनुसार साक्ष्य बताते हैं कि पारंपरिक जीवनशैली 'बहुत ही अच्छे ढंग से कार्यरत' थी। शुरू में मक्कावासी इसलाम के खिलाफ थे 'क्योंकि उन्हें अपनी पारंपरिक जीवनशैली पसंद थी।' साथ ही बद्दू कबीलों के लिए हमला करना और लूटमार करना अपने अल्प संसाधनों को बढ़ाने का एक उपयोगी तरीका था। नया मजहब उन्हें अच्छा लगा क्योंकि उसने 'हमलों को वैध ठहराने' में मदद की। कबीलों के सामने जो कुछ पेश किया गया वह एकीकरण और विजय अभियान के माध्यम से राज्य के निर्माण का एक कार्यक्रम था। क्रोन सामान्य रूप से शुरुआती इसलाम को एक देशीयतावादी आंदोलन, अर्थात विदेशी प्रभावों की घुसपैठ के खिलाफ अरब जीवनशैली से गहरे जुड़ाव से पैदा एक आंदोलन करार देती हैं। उन्होंने विदेशी प्रभाव के रूप में बैंजंतियाई द्वारा लाए गए मूल्यों और अरब पर प्रभुत्व स्थापित करने की फारस की कोशिशों को चिह्नित किया है। बहरहाल क्रोन वाट के इस विचार पर सहमत हैं कि अरब के कुछ हिस्सों में खानाबदोशी के खात्मे और स्थिर जीवन शुरू होने के चलते कबायली रिश्तों की कीमत पर राज्य ढांचा का विकास जरूरी हो गया था।

III

मोहम्मद के निधन ने एक राजनीतिक शून्यता पैदा कर दी। उन्होंने संदेश दिया था कि मानवता को सही राह दिखाने के लिए अल्लाह की ओर से भेजे गए पैगंबरों की एक लंबी कतार में वह अंतिम हैं। इस कतार में यहूदियत और ईसाइयत के पैगंबर (मूसा, ईसा इत्यादि) भी शामिल हैं। यह माना गया कि मोहम्मद के बाद और कोई दूसरा पैगंबर इस धरती पर नहीं आएगा। लेकिन वह सिर्फ पैगंबर नहीं बल्कि मुसलमानों के धार्मिक नेता और नवगठित अरब राज्य के प्रमुख भी थे। उनकी शिक्षा में कुरान था, जिसे अल्लाह का कथन माना गया। उसमें अनुयायियों के लिए जीवन के हर पहलुओं पर दिशा-निर्देश हैं। उनके निधन के बाद पैगंबर के रूप में किसी अन्य का स्थान ग्रहण करने का कोई सवाल नहीं था। लेकिन किसी को राज्य की जिम्मेदारी उठानी थी और धार्मिक समुदाय का दिशा-निर्देश करना था। इस मकसद के लिए पहले से कोई कायदा-कानून तय नहीं था। इसलिए इस बिंदु पर विवाद की खासी गुंजाइश थी। समय गुजरने के साथ यह मुद्दा विवादास्पद होता गया कि मोहम्मद के बाद धार्मिक और राजनीतिक प्राधिकार किसको मिले। इस पर तीखी झड़पें हुईं जिससे अनुयायी बंट गए। अकसर इस मुद्दे पर विभिन्न समूहों के बीच तीखे सैद्धांतिक मतभेद हुए।

मोटे तौर पर तीन समूह थे जिन्होंने विरासत की दावेदारी की। उनमें सबसे पहले मक्का के *मुहाजिरून* या प्रवासी थे जो मोहम्मद के शुरुआती अनुयायी थे। फिर *अंसार* या मदीनी 'मददगार' थे जिन्होंने 622 में *हिजरत* के बाद इस मकसद को समर्थन दिया था। उनका मानना था विरासत उन्हें मिलनी चाहिए क्योंकि वे इसलाम कबूल करने वालों में पहले थे और वे मोहम्मद के सबसे कठिन दौर में उनके साथ खड़े हुए थे। दूसरे समूह में वे लोग थे जिनकी दलील थी कि उत्तराधिकार मोहम्मद के परिवार के अंदर हो। मोहम्मद को कोई जीवित प्रत्यक्ष वारिस नहीं था। इसका निहितार्थ यह था कि मोहम्मद का चचेरे भाई अली उत्तराधिकारी बनें। अली मोहम्मद के चाचा अबुतालिब के बेटे थे। उनकी शादी मोहम्मद और खदीजा की बेटियों में से एक फातिमा के साथ हुई थी। उनकी एक अतिरिक्त योग्यता यह थी कि वह *मुहाजिरून* में शामिल थे। आखिर में कुरैश के कुलीन वर्ग, खासकर बनी उमैया थे। हम पहले ही नोट कर चुके हैं कि मोहम्मद कुरैश कबीला के हाशिम कुल के थे। सातवीं सदी के शुरू में यह कबीले का अग्रणी कुल नहीं था। उस वक्त सबसे शक्तिशाली कुल बनी उमैया (मोहम्मद के दादा अब्दुल मुत्तलिब उमैया के चचेरे भाई थे) का था। उन्होंने बहुत बाद में इसलाम कबूल किया। लेकिन उनका राजनीतिक प्रभाव जबर्दस्त था।

इन समूहों के बीच परस्पर ख्याति वफादारियां भी थीं और साथ ही आंतरिक विभाजन भी था। मसलन सभी *मुहाजिरून* मक्की थे और कुरैश के साथ उनके कुल और परिवार के संबंध थे। कई मौकों पर जब *मुहाजिरून* ने अपने कबीले के लोगों का पक्ष लिया,

मदनी *अंसार* ने शिकायत की कि वे धार्मिक रिश्तों के बजाए कबायली रिश्तों को तरजीह दे रहे हैं। कुल मिला कर 632 के बाद राजनीतिक सत्ता कुरैश के अग्रणी परिवारों के हाथ में गई। मोहम्मद के तात्कालिक उत्तराधिकारी उनके निकट सहयोगी बने। अली भी उनके उत्तराधिकारी बने, लेकिन बाद में। बाद में उम्मावियों और हाशिमियों ने सत्ता पर एकाधिकार स्थापित कर लिया।

मोहम्मद के निधन पर उनके वरिष्ठतम सहयोगियों में से एक, अबु बक्र उनके उत्तराधिकारी या *खलीफा* चुने गए। *खलीफा* का शाब्दिक अर्थ उत्तराधिकारी होता है जो यहां 'मोहम्मद के उत्तराधिकरी' का सूचक है। अगली कुछ सदियों तक *खलीफा* मुसलमानों के धार्मिक नेता और मोहम्मद द्वारा स्थापित राज्य के प्रमुख की मुख्य उपाधि रही। शुरुआती इसलामी साहित्य में *खलीफा* और *इमाम* को समानार्थी शब्दों के रूप में इस्तेमाल किया गया है। लेकिन अधिकतर *इमाम* शब्द का इस्तेमाल एक सीमित अर्थ में ऐसे व्यक्ति के लिए किया जाता था जो नमाज में समुदाय का नेतृत्व करता हो। *इमाम* की उपाधि इसलाम के अंदर विकसित हुए पंथों के नेताओं के लिए भी किया जाता था।

पहले खलीफा (632-34) के रूप में अबु बक्र का सत्तारोहण खासा आसान रहा। अबु बक्र को पैगंबर के निकटतम सहयोगी के रूप में व्यापक सम्मान हासिल था। वह मोहम्मद के ससुर (मोहम्मद ने खदीजा के निधन के बाद अबु बक्र की बेटी आइशा से निकाह किया था) भी थे। जब अबु बक्र ने सत्ता संभाली, नवगठित राज्य के सामने बिखरने का खतरा पैदा हो गया था क्योंकि अनेक बद्दू कबीलों ने मदीना से रिश्ता तोड़ लिया था। अरब के खानाबदोश लोगों के लिए किसी राज्य का एक स्थायी हिस्सा बनने का विचार बिलकुल नया था। वे इस तरह की औपचारिक संस्थाओं के आदी नहीं थे। उनकी समझ थी कि मोहम्मद के प्रति उनकी निजी निष्ठा थी जिन्हें वे अपना धार्मिक नेता मानते थे। कबीलों के साथ गठबंधन अब भी बहुत कमजोर था और इसने कुछ शक्तिशाली कबायली नेताओं को अपनी आजादी का दावा करने का मौका दिया। नवजात इसलामी राज्य के लिए हालत और भी नाजुक हो गई क्योंकि कुछ कबायली धार्मिक नेताओं ने खुद को पैगंबर घोषित कर दिया। उनमें से एक मध्य अरब के हनीफा कबीला का मसलमा (मुसायलिमा) था। मसलमा ने बड़ी संख्या में समर्थक जुटा लिए। मक्का और मदीना के मुसलमानों ने उन नेताओं की निंदा की और उन्हें 'झूठा पैगंबर' कहा। अबु बक्र को उन कबीलों पर नियंत्रण बहाल करने के लिए कई अभियान छेड़ने पड़े। उन अभियानों को 'रिद्दा का युद्ध' (रिद्दा का अर्थ है धर्म परित्याग) कहा जाता है।

अबु बक्र का निधन (634) *खलीफा* बनने के दो साल के अंदर ही हो गया। उनकी जगह उमर ने ली जिन्हें उन्होंने अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। उमर 634 से 644 तक *खलीफा* रहे। वह मोहम्मद के सबसे शुरुआती अनुयायियों में से एक थे। उमर अरब साम्राज्य के वास्तविक निर्माता थे। अरब का एकीकरण उनके नेतृत्व में संपन्न

हुआ और अरब के बाहर इसलामी राज्य का बड़े पैमाने पर विस्तार शुरू हुआ। अरबों ने इराक, सीरिया, फलस्तीन और मिस्र जीत लिए। पश्चिम एशिया में अरबों की ये विजय सासानी और बैजंतियाई साम्राज्यों की कीमत पर मिले।

इसलाम के उदय से पहले 80 से ज्यादा सालों तक सासानी और बैजंतियाई साम्राज्य पश्चिम एशिया पर वर्चस्व के लिए जोरदार संघर्ष में उलझे रहे। सीरिया और उत्तरी मेसोपोटामिया दोनों साम्राज्यों के बीच के युद्ध के मुख्य स्थल बने। सातवीं सदी की शुरुआत में इस युद्ध में ईरानियों का पलड़ा भारी था। उनकी सेनाएं सीरिया से होती हुई फलस्तीन पहुंच गई और उन्होंने 615 में यरूशलम पर कब्जा कर लिया। उसके बाद ईरानी सेना मिस्र (619) में घुस गईं। यहां तक कि कांस्टनटिनोपल (626) को उनसे खतरा उत्पन्न हो गया। सासानी अपनी आंतरिक समस्याओं के कारण उन जीतों को सुदृढ़ नहीं कर पाए। साथ ही, बैजंतियाई सम्राट हेराक्लियस ने अपनी सेना का पुनर्गठन किया और इरानियों के खिलाफ जवाबी हमले किए। ईरानियों को पीछे हटना पड़ा और बैजंतियाई साम्राज्य ने पश्चिम एशिया के अपने इलाकों पर अपना नियंत्रण बहाल कर लिया।

अंततोगत्वा इस युद्ध ने दोनों साम्राज्यों को कमजोर कर दिया। जब अरबों ने 633-34 में बैजंतियाई और सासानी सरजमीन पर दोतरफा हमले किए, दोनों पश्चिम एशियाई शक्तियां सैन्य रूप से इतने कमजोर हो चुकी थीं कि वे कोई सार्थक प्रतिरोध नहीं कर सकीं। अरबों को सासानियों से इराक छीनने और बैजंतियाई को सीरिया, फलस्तीन तथा मिस्र से हटाने में महज दो साल लगे। 633 में अरबों ने पूर्वोत्तर सीमा पर निम्न फरात से लगे सासानी क्षेत्रों में शुरुआती हमला करना शुरू कर दिया। हिरा की लख्मी राजधानी की घेरेबंदी कर दी गई और उस पर कब्जा कर लिया गया। 636 में कदसिया के युद्ध में ईरानी सेना को परास्त कर दिया गया। अगले साल अपने अग्रणी सेनापति साद के नेतृत्व में अरब सेना ने सासानी राजधानी टेसीफोन (अरब उसे मदायन कहते हैं) पर कब्जा कर लिया। इसके साथ ही इराक में सासानी शासन खत्म हो गया। साद को इराक का सैनिक और असैनिक (civil) प्रमुख नियुक्त किया गया। सीरिया में दमिश्क शहर पर पहले 634 में हमला किया गया। 635 में उस पर अरबों का नियंत्रण हो गया। दमिश्क की जीत ने सीरिया और फलस्तीन के विलय का मार्ग प्रशस्त किया। साद के अलावा खालिद बिन वलीद अरबों के एक प्रमुख सेनापति थे। खालिद ने इराक और सीरिया की जीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 639 में अरबों ने मिस्र पर हमला किया और एक साल के अंदर करीब-करीब समूचे देश पर कब्जा कर लिया। अलेक्जैंडरिया पर 642 में कब्जा किया गया और उसके साथ मिस्र की जीत पूरी हो गई। पूर्व में अरब सेना ने 642 में खास ईरान पर हमला करना शुरू किया। इराक खोने के बाद सासानी जाग्रोस पर्वत से भी पीछे हट गए थे। 642 में ही ईरान में नेहावंद के युद्ध में मुख्य सासानी सेना अरबों के हाथों नष्ट हो गई। करीब 650 तक अरबों ने ईरान के ज्यादातर हिस्सों पर कब्जा कर

लिया था जिसमें खुरासान का पूर्वोत्तर क्षेत्र भी शामिल है। सासानियों का अंतिम सम्राट यज्दागिर्द खुरासान (651) में मारा गया। अब तक अरब साम्राज्य में अरब प्रायद्वीप, मिस्र, फलस्तीन, सीरिया, इराक और ईरान शामिल हो चुके थे।

जी.ई. फॉन ग्रुनेबॉम ने अरबों के तेज विस्तार के लिए ऊंट सवार अरबों की गतिशीलता को अंशत: और बैजंतियाई एवं सासानी सैन्य शक्ति में गिरावट को अंशत: जिम्मेदार ठहराया है। अरब ऊंटों की मदद से रेगिस्तान की मुश्किल दूरियां तेज रफ्तार से तय कर सकते थे। खानाबदोश सेना बहुत तेज रफ्तारी से सैनिक दांव-पेंच चलने और बदलने में सक्षम थी क्योंकि सैनिक सैन्य साजोसामान की बोझ से दबे नहीं होते थे। बल्लम और तलवार अरब युद्ध कौशल के पारंपरिक हथियार थे। सेना में तीरंदाजों को शामिल करने का श्रेय साद को जाता है। बद्दुओं ने घोड़े भी इस्तेमाल किए। कुछ बद्दू कबीले जीवननिर्वाह के पारंपरिक तरीकों के एक हिस्से के रूप में लंबे समय से घोड़े भी पालते आ रहे थे। जैसा कि पहले ही जिक्र किया जा चुका है सासानी और बैजंतियाई इस तरह के दृढ़संकल्प हमलों का सामना करने के लिए तैयार नहीं थे। अरबों से शुरुआती टकरावों में इन साम्राज्यों को जो मात मिली उससे उनकी सेनाओं का मनोबल और भी गिर गया। अरबों की धार्मिक प्रेरणा एक अतिरिक्त कारक थी जिसने उनकी जीत में योगदान किया। अरब विस्तार के नतीजे बैजंतियाइयों के मुकाबले सासानियों के लिए ज्यादा विनाशकारी हुए। सासानियों का शासन पूरी तरह से खत्म हो गया जबकि बैजंतियाई साम्राज्य कई सदियों तक टिका रहा। बेशक उसके क्षेत्र अनातोलिया, यूनान और दक्षिण-पूर्वी यूरोप के कुछेक हिस्सों तक सीमित रह गए।

उमर की हत्या 644 में एक ऐसे व्यक्ति ने कर दी जिसकी उनसे निजी रंजिश थी। उमर ने अपने बाद अपने उत्तराधिकारी के चयन के लिए छह चयनकर्ताओं की एक परिषद गठित की थी। चयनकर्ता अपने बीच से किसी को खलीफा नहीं चुन सकते थे। मक्का में आरंभ में ही इसलाम कबूल करने वाले उस्मान को उमर का उत्तराधिकारी मनोनीत किया गया। उस्मान तीसरे खलीफा (644-56) बने। उस्मान *मुहाजिरून* में से एक थे। लेकिन वह उमैया कुल के थे। इससे हाशिमियों में खासा रोष हुआ। सबसे ज्यादा विरोध अली के समर्थकों की तरफ से किया गया। यहां यह जिक्र किया जा सकता है कि मोहम्मद के निधन के समय से ही अली का नाम पेश किया जाता रहा था। लेकिन हर बार उत्तराधिकारी के चयन में उनको नजरअंदाज कर दिया गया। उस्मान ने उमैया कुल के सदस्यों को तमाम प्रमुख पदों पर कब्जा करने की इजाजत देकर खुद को अलोकप्रिय बना लिया। हालांकि ईरान की जीत उस्मान के शासनकाल में पूरी हुई, करीब 650 के बाद अरबों के विस्तार का शुरुआती चरण सुस्त पड़ गया। इससे उस्मान के शासन के खिलाफ असंतोष और बढ़ गया। दक्षिणी इराक और मिस्र की कुछ अरब बस्तियां खलीफा के विरोध का केंद्र बन गईं। मिस्री सेना ने विद्रोह कर दिया और उससे उभरी अव्यवस्था में उस्मान की 656 में हत्या कर दी गई।

उस्मान की हत्या अरब साम्राज्य के निर्माण के एक चरण की समाप्ति को रेखांकित करती है। इस दौरान मदीना राजधानी रही। अबु बक्र के समय तक इसलामी राज्य अरब तक सीमित था। उमर और उस्मान ने एक विशाल साम्राज्य बनाया जो नील नदी से मध्य एशिया के किनारों तक फैला था। इसीलिए उन्हें इतनी विशाल राजनीतिक सत्ता का प्रशासन चलाने के लिए बुनियादी ढांचा विकसित करना पड़ा। उमर ने *अमीर उल-मोमीनीन* (निष्ठावानों का कमांडर) की उपाधि अपना कर खलीफा के सैन्य प्राधिकार पर जोर दिया। *अमीर-उल-मोमीनीन* की हैसियत से खलीफा सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। इसने उनकी धार्मिक और राजनीतिक सत्ता मजबूत की। दूसरे शब्दों में, शुरू में राजनीतिक, सैनिक और धार्मिक सत्ता एक ही आदमी में, खलीफा में सिमटी थी। अरब कबीलों पर मुसलिम समुदाय या *उम्मा* आधारित था और वे राज्य के सशस्त्र बल थे। उम्मा के सभी स्वस्थ वयस्क पुरुषों को सैनिक सेवा देनी पड़ती थी। सैनिकों को संबंधित कबीलों के तहत समूहबद्ध किया गया था। वे अपने कबायली सरदारों के नेतृत्व में युद्ध में लड़ते थे (हालांकि सेना की समग्र कमान*अमीर-उल-मोमीनीन* या उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के पास होती थी)।

अरब के विपरीत बाहर इराक, ईरान, सीरिया, फलस्तीन और मिस्र में अरब बाहरी थे। कई साल तक वे प्रथमत: इलाके पर कब्जा करने वाली सेना मात्र थे। सिर्फ बाद में वे विजित इलाकों के साथ क्रमश: एकजुट हो सके। सेना किलाबंद शिविरों या गैरिसन में रहती थी जिसे *अमसार* (एक वचन *मिस्र*) कहते थे। ये सामरिक बिंदुओं पर स्थित होते थे। इराक में अरबों ने अपना खुद का गैरिसन शहर बसाना पसंद किया जबकि वे सीरिया में उन शहरों में रहते थे जिन्हें पीछे हटने के क्रम में बैजंतियाइयों ने खाली किया था। उल्लेखनीय है कि अरबों ने सासानी राजधानी टेसिफोन जीतने के बावजूद उस पर कब्जा नहीं किया। उन्होंने दक्षिणी इराक में दो नए शहर स्थापित किए जहां सेना और प्रशासनिक कर्मियों को रखा गया। ये शहर थे कूफा और बसरा, जिनकी स्थापना करीब 635 और 638 के बीच हुई। कूफा हिरा से बहुत नजदीक फरात के तट पर स्थित था जबकि बसरा फारस की खाड़ी के मुहाने पर स्थित था। बसरा एक प्रमुख वाणिज्यिक केंद्र के रूप में विकसित हुआ। सीरिया में अरबों ने पुरानी बाजार नगरी दमिश्क को अपना मुख्य सैनिक सह प्रशासनिक केंद्र के रूप में चुना। मिस्र में करीब 641 में नील नदी के डेल्टा के छोर पर फुस्तात की बस्ती बसाई गई जो बाद में विकसित होकर काहिरा बन गई।

चूंकि सैन्य विजय को एक सामूहिक उद्यम की तरह देखा जाता था, युद्ध का माल-ए-गनीमत समूचे समुदाय में बांटना होता था। पैगंबर के बनाए उसूलों के अनुसार उसका पांचवां हिस्सा राज्य को जाता और बाकी *उम्मा* में बंटता। विजय के अभूतपूर्व पैमाने को देखते हुए उमर को सुनिश्चित करना था कि माल-ए-गनीमत का बंटवारा जैसे-तैसे

और लापरवाही से नहीं हो। राज्य ने उसका वितरण एकमुश्त सैनिक वजीफा या वृत्तिका के रूप में किया। वजीफा की राशि का निर्धारण व्यक्ति की सेवाओं की प्रकृति के अलावा इस पर भी निर्भर करता था कि उसके परिवार ने किस चरण में इसलाम ग्रहण किया था। इस तरह *मुहाजिरूम* को पहला दर्जा दिया जाता। आवंटन केंद्रीय रूप से होता जबकि वास्तविक वितरण उस क्षेत्र में हो सकता था जहां वह व्यक्ति सेवारत होता। सभी मुसलमानों को *जकात* कर देना होता था और उसका आकलन उनकी संपत्ति के आधार पर की जाती थी।

अरब परिवारों के बीच वितरित करने के बजाए राज्य के नियंत्रण में रखकर जमीन के जटिल सवाल को कुछ समय के लिए हल कर लिया गया। जमीन को *उम्मा* की तरफ से केंद्रीय शासन के अधीन रखा गया। अरब राज्य के अधीन जो जमीनें आईं, उनमें (i) बैजंतियाई या सासानी शाही जमीन; (ii) पूर्व मालिकों की छोड़ी हुई जमीनें; और (iii) वे जमीनें शामिल थीं जिन पर अरबों का प्रतिरोध करने के दंडस्वरूप लोग अपना मालिकाना हक खो चुके थे। इन तमाम मामलों में उपज का एक हिस्सा काश्तकारों या मध्यस्थों से वसूला जाता था और अनुवृत्ति के रूप में अरबों में वितरित कर दिया जाता। इसका वितरण भी माल-ए-गनीमत के तर्ज पर किया जाता। हमें अवश्य ही यह ध्यान रखना चाहिए कि यह पहला मौका था जब अरबों को भूमि से इतनी बड़ी मात्रा में कृषिगत अधिशेष हासिल हुआ था। इसलिए भूमि प्रशासन की कोई नियमित प्रणाली विकसित करने में उन्हें थोड़ा समय लगा। करीब आधी सदी से ज्यादा अर्सा तक जमीन की मिल्कियत और भूराजस्व की श्रेणियों को लेकर विभ्रम की स्थिति बनी रही। हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि राज्य की ओर से वितरित वजीफा या अनुवृत्ति से संपत्ति का न्यायसंगत वितरण हो रहा था। पुरानी विषमता मजबूत हुई और जल्द ही विजित इलाकों में एक अभिजात मुसलिम कुलीन वर्ग उभर आया। फिर भी उमर और उस्मान के प्रयासों से विस्तार के पहले चरण में *उम्मा* में एकजुटता बरकरार रखने में मदद मिली। उस्मान ने जब पाया कि उमर के नियम-कायदों का उल्लंघन हो रहा है तो उन्होंने दक्षिण इराक में जमीन की निजी खरीदारी के संबंध में धनी मक्कावासियों पर कठोर रोक लगा दी।

उमर ने इस्लामी कृत्यों या अनुष्ठानों को व्यवस्थित किया। मसजिद में समुदाय के पुरुष इबादत के लिए इकट्ठा होते थे। वह मुसलमानों के धार्मिक जीवन का केंद्र बन गई। *अमसार* में सामूहिक इबादत एक तरीका था जिससे विभिन्न कबीलों से आए अरब सैनिकों में एकात्मकता की एक मजबूत भावना भर कर *उम्मा* को एकजुट किया जा सकता था। उमर ने कारियों (कुरान का पाठ करने वाले लोग) को गैरिसन शहरों में भेजा ताकि वहां के लोगों को उसके आलेख से परिचित करवाया जा सके। हालांकि उस समय तक कुरान का एक हिस्सा कलमबंद किया जा चुका था, उसका प्रचार-प्रसार ज्यादातर मौखिक रूप से हो रहा था। उमर और उस्मान ने समूचे आलेख को कलमबंद करने और उसका

मानकीकरण करने का कार्य शुरू किया। यह उस्मान के शासनकाल में पूरा हुआ और मानक आलेख उस समय का है। उमर ने एक नया इसलामी कैलेंडर शुरू किया जो *हिजरत* के साल (622) से शुरू होता है। यह चांद पर आधारित है और उसमें 12 बराबर महीने हैं। यह 365.25 दिनों के वास्तविक वर्ष से 11 दिन छोटा है।

IV

उस्मान के बाद उत्तराधिकार के सवाल पर हिंसक संघर्ष हुए। उत्तराधिकार के सवाल पर कोई सर्वसम्मति नहीं बन सकी। राजनीतिक संकट इस बिंदु तक गहराया कि वस्तुत: अरब साम्राज्य में एक गृहयुद्ध सा फूट पड़ा। उस समय जो विवाद और मतभेद उभरे, उनमें से कुछ इसलाम के अंदर विभिन्न धार्मिक पंथों की शक्ल में अब भी बरकरार हैं। मदीना में अली के समर्थकों ने मिस्र के विद्रोहियों से हाथ मिला लिया और अली को खलीफा घोषित कर दिया। यह भी उमैयों को कबूल नहीं था। अली के खिलाफ एक और गुट था जिसका नेतृत्व मोहम्मद के सहयोगी जुबैर और पैगंबर की विधवा आइशा कर रहे थे। सबसे गंभीर चुनौती सीरिया के गवर्नर मुआविया की तरफ से आई जो उमैया के वंशज और उस्मान के चचेरे भाई थे। सीरिया के अरबों के बीच मुआविया का एक मजबूत आधार था। उन्होंने अली के खिलाफ खुला विद्रोह कर दिया। अली ने अपनी राजधानी मदीना से हटा कर इराक में कूफा कर ली थी। सीरिया को छोड़कर बाकी तमाम क्षेत्रों ने अली को खलीफा मान लिया। मुआविया को अधीन करने के लिए अली ने अपनी सेना के साथ सीरिया कूच किया। अली और मुआविया की सेनाओं के बीच उत्तरी मेसोपोटामिया के सिफ्फिन में युद्ध (657) हुआ। युद्ध का कोई नतीजा नहीं निकला और दोनों पक्ष मध्यस्थता पर राजी हो गए। लेकिन वार्ताओं से कोई नतीजा नहीं निकला और मुआविया वस्तुत: सीरिया के शासक बन बैठे। अली ने कूफा (मदीना की भौगोलिक स्थिति सत्ता के केंद्र बनने के लिए उपयुक्त नहीं थी) से बाकी साम्राज्य पर शासन किया।

सिफ्फिन से अली की वापसी के पहले के घटनाक्रम ने इसलाम में पहले बड़े पंथीय विभाजन की शुरुआत की। एक दल था जिसका मानना था कि पैगंबर के परिवार से होने के कारण अली को अल्लाह ने नेतृत्व के विशेष गुण दिए हैं और वह 'वास्तविक' उत्तराधिकारी हैं। वह कोई गलती नहीं कर सकते। यह समूह *शिया* (*शिया* का साहित्यिक अर्थ होता है 'पक्ष' 'दल' और वहां यह 'अली के दल' का सूचक है) कहलाया। उसका अली पर अडिग विश्वास था और उसने सिफ्फिन में अली की कार्रवाई का पूरा समर्थन किया। दूसरी तरफ अलग हुआ एक समूह था जो मुआविया और अली के बीच किसी भी मध्यस्थता का विरोधी था। उनके विचार से अली का यह कदम बनी उमैया के साथ समझौता करने के समतुल्य था। इस समूह के अनुसार अली अब मुसलिम समुदाय के

नेता नहीं रहे। इस तरह के चरम रुख अपनाने वाले खराजी या अलगाववादी कहलाए। खराजी अली से अलग हटे थे और मुआविया तथा बनी उमैया से तो अलग ही थे। खराजी कम से कम आधी सदी तक अरब राज्य के लिए दिक्कतें पैदा करते रहे। खराजी विद्रोहियों के छोटे समूह साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में सरकार के लिए परेशानियां पैदा करते। खराजियों ने अपनी अलग धार्मिक व्याख्याएं ईजाद कीं। आठवीं सदी के शुरू में यह आंदोलन खत्म हो गया लेकिन उसके बाद भी उसकी अवधारणाएं इसलामी धर्म विज्ञान को प्रभावित करती रहीं। उत्तर सिफ्फिन काल का इतिहास बनी उमैया, खराजियों और शियाओं के बीच एक असमान संघर्ष का है। इस संघर्ष में बनी उमैया विजयी हुए। बेशक मुसलमानों की एक बड़ी संख्या थी जिसने इस संघर्ष में कोई पक्ष नहीं लिया।

एक खराजी ने 661 में अली की हत्या कर दी। मुआविया ने अब औपचारिक रूप से खुद को खलीफा घोषित कर दिया। अली के बड़े बेटे हसन की उम्मीदवारी को आगे बढ़ाने की एक छोटी कोशिश हुई। लेकिन शिया उनके पक्ष में ज्यादा समर्थन नहीं जुटा सके। अब दमिश्क अरब साम्राज्य की नई राजधानी बनी। मुआविया ने खिलाफल को राजतंत्र में बदलने की प्रक्रिया शुरू की। 661 और 750 के बीच सभी खलीफा उमैया कुल के हुए। इसे उमैया खिलाफत का काल माना जाता है। मुसलिम इतिहास लेखन में पहले चार खलीफों और उमैया खिलाफत एवं बाद के खिलाफत में एक स्पष्ट फर्क किया जाता है। अबु बक्र, उमर, उस्मान और अली का जिक्र 'धर्मनिष्ठ खलीफा' या *राशिदून* (सही मार्गदर्शक) के रूप में किया जाता है। मुआविया से वंशागत राजतंत्र की स्थापना हुई। उमैया खलीफों ने खुद को धार्मिक नेता के रूप में पेश किया। लेकिन अंततः उनकी सत्ता शक्ति के बल पर टिकी थी।

मुआविया ने 661 से 680 तक शासन किया। उन्होंने अपने बेटे यजीद को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर वंशागत उत्तराधिकार की अवधारणा मजबूत की। यजीद (680–83) अपने पिता के निधन के बाद खलीफा बना। शियाओं ने एक बार फिर अली के परिवार का दावा पेश किया। उन्होंने अली के छोटे बेटे हुसैन (669 में हसन की मृत्यु हो चुकी थी) के पक्ष में अपने समर्थन की घोषणा की। हुसैन के समर्थक दक्षिणी इराक (मुख्यतः कूफा) में केंद्रित थे। उन्होंने बनी उमैया के खिलाफ प्रतिरोध करने के लिए एक सेना गोलबंद की। 680 में हुसैन ने बनी उमैया की सेना से युद्ध करने के लिए अपने अनुयायियों के एक छोटे से समूह का नेतृत्व किया। युद्ध करबला में हुआ जो कूफा से ज्यादा दूर नहीं था। हुसैन की सेना का कत्लेआम कर दिया गया। खुद हुसैन भी मारे गए। युद्धभूमि में मारे जाने से हुसैन न सिर्फ शियाओं के लिए बल्कि उन तमाम लोगों के लिए शहीद बन गए जो खिलाफत के बदलते रूप-रंग के विरोधी थे। हुसैन की शहादत शियाओं के लिए एक शक्तिशाली धार्मिक प्रतीक बन गई और बाद में उनके लक्ष्य के लिए गोलबंदी का बिंदु बन गई। इस घटना को हर साल मुहर्रम के इसलामी महीने में

एक शोककाल के रूप में मनाया जाता है। इसी माह में कर्बला का युद्ध हुआ था।

यजीद के संक्षिप्त शासनकाल में ढेर सारे विद्रोह हुए। शियाओं और खराजियों के अलावा मदीनावासियों के अनेक हिस्से भी उसके सत्तारोहण के विरोधी थे। यजीद को बमुश्किल स्थिर होने का समय मिला। 683 में यजीद की मौत हो गई। उसके कम उम्र बेटे मुआविया द्वितीय को खलीफा बनाया गया, लेकिन वह थोड़े ही समय बाद चल बसा। उमैया कुल के विरोधियों के लिए यजीद और मुआविया द्वितीय दोनों का खलीफा बनना खिलाफत के उसूलों के विपरीत था। 684 से अरब साम्राज्य एक लंबे गृहयुद्ध में उलझ गया। उमैया कुल के प्रमुख विरोधी मक्का और मदीना के पुराने मुसलिम परिवार थे। उन्होंने दक्षिण अरब के कैस कबीला के नेतृत्व वाले कबायली परिसंघ के साथ गठबंधन कर रखा था।

राजनीतिक सत्ता का केंद्र सीरिया की तरफ (और कुछ हद तक इराक की तरफ) चले जाने से अरब अधिकाधिक हाशिए पर चला गया। मक्का और मदीना का अलगाव बढ़ने लगा। और उसने विद्रोह का रूप ले लिया। विद्रोह का नेतृत्व इब्न जुबैर ने किया। 684 में इब्न जुबैर को नया खलीफा घोषित किया गया और मदीना को राजधानी बहाल कर दिया गया। अगले कुछ साल तक अरब वस्तुतः स्वतंत्र रहा। कुछ इलाकों पर इब्न जुबैर का नियंत्रण था, बाकी पर खराजियों का कब्जा। इराक का ज्यादातर हिस्सा इब्न जुबैर के प्रति वफादार था। खराजियों ने कुछ समय तक इब्न जुबैर का दावा स्वीकार किया। लेकिन कुल मिलाकर दोनों एक-दूसरे के विरोधी थे। साम्राज्य में हर जगह अरब समुदाय तीनों संघर्षरत गुटों : इब्न जुबैर, बनी उमैया और खराजी में विभाजित थे।

इस बीच उमैया कुल का नेतृत्व कुल की एक अन्य शाखा के हाथों में आ गई। यह मरवान परिवार था। मुआविया, यजीद और मुआविया द्वितीय तीनों उमैया के पोते अबु सुफियान के परिवार से थे। इसलिए उन्हें अकसर सुफियानवी उमैया कहा जाता है। मरवान अबु सुफियान के चचेरे भाई का वंशज था। वह और उसके उमैया उत्तराधिकारी मरवानी उमैया कहलाते हैं। मरवान खलीफा उस्मान का मुख्य सलाहकार (वह उनसे नजदीक से जुड़ा था) रह चुका था। 684 में मरवान ने मर्ज राहत के युद्ध में इब्न जुबैर को हटा दिया। इससे बनी उमैया सीरिया हासिल कर सके।

मरवान का निधन 685 में हुआ। उसका उत्तराधिकारी अब्द अल-मलिक (685-705) हुआ। अब्द अल-मलिक ने उमैया राज्य का पुनर्निर्माण किया, खिलाफत को सुदृढ़ किया और साम्राज्य की सरहदें बढ़ाईं। इब्न जुबैर और खराजी विद्रोहियों को परास्त करने के लिए उनके खिलाफ अनेक अभियान छेड़े गए। 691 तक सारा इराक अब्द अल-मलिक के पक्ष में आ गया। 692 में मक्का और मदीना पर कब्जा कर लिया गया। इब्न जुबैर मारा गया। 692 के बाद ही उमैया शासन स्थिरता पा सका। इब्न जुबैर के खिलाफ सैन्य अभियान में जिस शख्स ने सर्वप्रमुख भूमिका निभाई, वह अल-हज्जाज नामक एक

सैनिक कमांडर था। वह ताइफ के थकीफ कबीले का था और मक्का में सैन्य कार्रवाई का प्रभारी था। अल-हज्जाज को बाद में इराक और साम्राज्य के पूर्वी क्षेत्रों का गवर्नर नियुक्त किया जहां उसने 714 में अपनी मृत्यु तक बड़ी कठोरता से शासन किया।

अब्द अल-मलिक के शासनकाल में खिलाफत पूरी तरह राजतंत्र में बदल गया। राजनीतिक और सैनिक सत्ता खलीफा की अध्यक्षता में एक छोटे से आभिजात्य वर्ग के हाथों में केंद्रित थी। खलीफा के पास सर्वोच्च प्राधिकार था। अब्द अल-मलिक ने साम्राज्य के प्रशासन के लिए एक नौकरशाही विकसित की। अब तक सेना कबायली सेनाओं का संघ थी। उसे पुनर्गठित कर एक पेशेवर और नियमित सेना बनाया गया। पूर्व बैजंतियाई और सासानी शासनों से चले आ रहे कई तौर-तरीके खत्म कर दिए गए। बैजंतियाई सरकारी भाषा के रूप में यूनानी का इस्तेमाल करते थे जबकि सासानी पहलवी (एक किस्म की फारसी जिसे भाषा विज्ञानी 'मध्य फारसी' भी कहते हैं) का इस्तेमाल करते थे। जब अरबों ने उन साम्राज्यों के हिस्सों पर कब्जा किया तो उन्होंने संबंधित क्षेत्रों में ज्यादातर प्रशासनिक कार्य यूनानी और पहलवी में जारी रखा। यह एक हद तक हालात की बाध्यता के कारण हुआ क्योंकि निम्न और मध्यम स्तर के प्रशासनिक अधिकारियों का एक बहुत बड़ा हिस्सा पूर्व शासकों ने बहाल किया था। अब्द अल-मलिक ने जोर-शोर से अरबीकरण की नीति पर अमल किया। उसने प्रशासन की भाषा के रूप में यूनानी और पहलवी की जगह अरबी को रखा। एक अनूठे किस्म का सिक्का चलाया गया जो बैजंतियाई और सासानियों के सिक्कों से बिलकुल जुदा था। अब्द अल-मलिक के सिक्कों पर कोई तसवीर नहीं उकेरी होती थी। उन पर महज कुछ आलेख खुदा होता था। ये आलेख अरबी में होते थे जो कुरान से लिए गए होते थे। पूरी दुनिया में जारी मुसलिम शासकों के सिक्कों का यही मुख्य रंग-रूप रहा। अब्द अल-मलिक के काल में भवन-निर्माण पर बेहद जोर दिया गया। साम्राज्य के प्रमुख शहरों में बड़ी संख्या में विशाल सार्वजनिक इमारतें, खासकर मसजिद और महल, निर्मित कराए गए। राजधानी दमिश्क में अनेक विशाल इमारतें वजूद में आईं। अब्द अल-मलिक की पहल पर निर्मित होने वाली सबसे मशहूर इमारत यरूशलम में बनी *मसजिद अल-अक्सा* (692) है। मसजिद अल-अक्सा के स्थल का संबंध इब्राहीम से है और इस कारण यहूदी और मुसलमान दोनों इस स्थल को मुकद्दस मानते हैं। मसजिद के विशाल गुंबद ने स्थापत्य कला में एक आयाम जोड़ा और यह इसलामी स्थापत्य कला का एक अभिन्न अंग बन गया।

अब्द अल-मलिक और उसके उत्तराधिकरी अल-वलीद प्रथम (705-15) ने अरब साम्राज्य के क्षेत्रीय विस्तार का एक नया चरण शुरू किया। इस चरण में सर्वाधिक उल्लेखनीय विजय उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी भूमध्यसागर में प्राप्त किए गए। मिस्र को आधार बना कर उत्तरी अफ्रीका के पश्चिमी हिस्सों पर हमले किए गए। अरब मिस्र की पश्चिमी सीमा से लेकर अटलांटिक तट तक समूचे उत्तरी अफ्रीका को 'मगरिब'

कहते थे। मगरिब उत्तर में भूमध्यसागर से और दक्षिण में सहारा से घिरा है। उसमें आज के लीबिया, ट्यूनिशिया, अलजीरिया और मोरक्को शामिल हैं। अरबों ने सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मगरिब में प्रवेश करना शुरू किया और सदी समाप्त होते-होते अफ्रीका के रोमन प्रांत (अरब इफ्रिकिया कहते थे, अब ट्यूनिशिया कहलाता है) पर उनका कब्जा हो गया। इफ्रिकिया में अरबों का अग्रणी गैरिसन शहर कैरावान (दक्षिण-पूर्व ट्यूनिशिया में स्थित केरवान) था जिसकी स्थापना लगभग 670 में हुई थी। कैरावान मगरिब में पहला अरब शहरी केंद्र बना। आठवीं सदी की शुरुआत तक समूचा मगरिब उमैया शासन के अधीन आ गया। अरबों ने बर्बर के नाम से जाने जाने वाले स्थानीय खानाबदोश समुदाय के साथ रिश्ता बनाया जिससे मगरिब पर पकड़ मजबूत करने में अरबों को मदद मिली। अनेक बर्बर कबीलों ने इसलाम कबूल कर लिया जिससे उनका अरबकरण हो गया। पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के बाद के अभियानों में अरब और बर्बर साथ-साथ रहे। 711 तक उमैया सेनाओं ने पश्चिमी यूरोप पर हमला कर दिया। विसिगॉथों को स्पेन से ढकेल दिया और उसे अरब साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। लेकिन फ्रैंको ने अरबों को यूरोप में आगे बढ़ने से रोक दिया।

उमैया सत्ता मुख्य रूप से सीरियाई समर्थन पर आधारित थी। सीरियाई अर्थव्यवस्था में जनित अधिशेष ने उमैया शासकों को अपने शासन के विस्तार के लिए प्राथमिक संसाधन उपलब्ध कराया। मरवानी काल में इराक के दजला और फरात के बीच की समृद्ध और उर्वर जमीन की उपज उमैया अर्थव्यवस्था का एक अन्य महत्वपूर्ण हिस्सा थी। अल-हज्जाज की प्रांतीय सरकार ने दक्षिणी इराक में सिंचाई प्रणाली में सुधार पर बहुत जोर दिया। ऐसे साक्ष्य हैं जिनसे ये संकेत मिलते हैं कि आठवीं सदी के शुरुआती दशकों में इस क्षेत्र में कृषि में कुछ विस्तार हुआ। यह ध्यान में रखना चाहिए कि दक्षिणी इराक सासानी साम्राज्य का मुख्य राजनीतिक और आर्थिक केंद्र था।

इस चरण में उमैया समाज पर कुछ सामान्य टिप्पणियां की जा सकती हैं। पहली, इसलामी विजय के समय सीरिया और इराक दोनों जगहों में अरबों की एक खासी बड़ी आबादी थी। दूसरी, इराक की तुलना में सीरिया में अरब ज्यादा बड़ी संख्या में मौजूद थे। तीसरी, जब अरबों ने सीरिया पर हमला किया तो वहां का यूनानीभाषी बैजंतियाई भूस्वामी कुलीन वर्ग देश से भाग गया। लेकिन इराक में फारसी भूस्वामी जमे रहे और उन्हें शुरू में भूराजस्व प्रणाली में बिचौलियों की जगह दी गई। चौथी, अरबों ने इराक की तुलना में सीरिया में ग्रामीण क्षेत्रों में पहले प्रवेश करना शुरू किया था। पांचवीं, आठवीं सदी की शुरुआत तक इराक के अरब अधिवासी सिर्फ शहरों तक ही सीमित नहीं रहे थे। उन्होंने दक्षिण इराक में निजी संपत्ति के रूप में जमीनें भी हासिल करना शुरू कर दिया था। छठी, सीरिया और इराक में व्यापक अरब उपनिवेशीकरण हुआ लेकिन अरबों ने ईरान (अर्थात जाग्रोस पर्वत के पूर्व का क्षेत्र) का उपनिवेशीकरण नहीं किया। खुरासान

को इस सिलसिले में एक अपवाद माना जा सकता है। ईरान के इस पूर्वोत्तर सीमांत क्षेत्र में अरबों की अच्छी-खासी आबादी थी। अंततः सीरिया पर, और फिर उसके मार्फत अरब साम्राज्य पर उम्मावी प्रभुत्व के पीछे कुजा (या क्लब) कबायली परिसंघ के साथ उनका गठबंधन था। कुजा परिसंघ के कबीले संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक थे। पैट्रिशिया क्रोन ने *स्लेव्ज आन हार्सेज* में लिखा है, 'सीरिया एक अनोखा प्रांत था। प्रथमतः वहां अरब आबादी ग्रामीण अंचलों में एक समान फैली हुई थी। दूसरे कुजा परिसंघ संख्या में दूसरे कबीलों से कहीं ज्यादा था। इसलिए दूसरे गवर्नरों के मुकाबले सीरियाई गवर्नर के लिए एक स्थानीय समूह पर भरोसा करना संभव था।'

जब अरब पहली बार बैजंतियाई और सासानी क्षेत्रों में *अमसार* में बसे तो उन्हें उनके कबीलाई रिश्तों के आधार पर समूहबद्ध किया गया जिन्हें जोड़कर अर्धप्राकृतिक कबायली इकाइयां बनाई गईं। हरेक गैरिसन शहरों को सेक्टरों या हिस्सों में बांटा गया जिन्हें अलग-अलग कबीलों को आवंटित किया गया। अरब कबीले सैनिक और प्रशासनिक संगठन के आधार थे। कबीलों के निवास वाले सेक्टर उनके सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन केंद्र थे। ये सेक्टर वस्तुतः शहरी अधिवास के स्वायत्त हिस्से थे। इस तरह शहर मुख्यतः कबीलाई इलाकों का एक समुच्चय था। इरा लैपिडस का कहना है, 'सेक्टर शहरी समष्टि में गांव जैसे समुदाय थे। बल्कि कुछ सेक्टर तो उपनगरीय क्षेत्र थे जहां वे लोग बसे थे जो हाल तक गांव में रह रहे थे या बद्दू मूल के थे। पूरी तरह विभाजित शहरी आबादी के पास कुछेक ही ऐसी संस्थाएं थीं जो इन विभाजन से परे उन्हें आपस में जोड़ती हों।'

शुरू में हरेक सेक्टर को वहां रह रहे प्रभुत्वशाली कबीले के सरदार के मातहत रखा गया। ये सरदार या *रईस अल कबीला* सेक्टरों और केंद्रीय या प्रांतीय सरकारों के बीच संपर्क की मुख्य कड़ी होते थे। वे अपने मातहत कबीलों के प्रति जवाबदेह होते थे। *रईस अल कबीला* के मार्फत वजीफे या अनुवृत्तियां बांटी जाती थीं और कर उगाही की जाती थी। सैन्य अभियानों के लिए कबीलाई इकाइयों से सैनिक जुटाना भी *रईस अल कबीला* के कार्यों में शामिल था। *रईस अल कबीला* शुरुआती उम्मावी राज्य के शासक अभिजात वर्ग (*अशरफ*) थे। कम से कम सीरिया में तो *अशरफ* अनिवार्यतः उन कबीलों से लिए गए जो उमैया परिवार के प्रति वफादार थे। अब्द अल-मलिक ने राज्य की देखरेख में रहने वाली नियमित सैनिकों पर आधारित एक स्थायी सेना के गठन के लिए इस प्रणाली में सुधार किया। कबायली इकाइयां रेजिमेंटों में पुनर्गठित की गईं जो *जुंद* कहलाईं। *जुंद* कुटुंब आधारित नहीं थे। *जुंद* का नेतृत्व *कायद* करते थे जो सिपहसालार थे। जरूरी नहीं था कि *कायद* कबीले का सरदार ही हो। यह सेना के अंदर कबीलाई वफादारियां खत्म करने और उसे एक पेशावर दिशा देने का प्रयास था।

पश्चिम एशिया में अरब विस्तार के पहले चरण में पूर्व बैजंतियाई और सासानी

इलाकों में इसलाम के प्रसार की रफ्तार बेहद कम थी। एकदम शुरुआती मुसलमानों ने इसलाम को अरबों के साथ चिह्नित किया। इसलाम को अरब कबीलों का मजहब माना गया। आम तौर पर इसलाम ग्रहण करना एक व्यक्तिगत नहीं बल्कि कबीला का मामला माना गया। समूचा कबीला एक नया मजहब कबूल करता (बेशक उसके कुछेक अपवाद भी हैं)। जैसा कि हम देख चुके हैं कि अरब मुसलमानों का सैन्य, प्रशासनिक और सामाजिक संगठन कबीला के आधार पर था। शुरुआती दौर में विजित इलाकों में कबीला और कुल का रिश्ता मजबूत बना रहा। सीरिया, इराक और मिस्र में मुसलमान गैरिसन शहरों में रहे और वहीं से उन्होंने नजदीक के ग्रामीण अंचलों को नियंत्रित किया। उन्हें स्थानीय लोगों के साथ मेलजोल बढ़ाने के लिए ज्यादा उत्साहित नहीं किया गया। गैरिसन शहर इन देशों में अरब उपस्थिति के द्वीप थे। फिर भी पूर्ण अलगाव का कोई सवाल नहीं था। बेहद विकसित अर्थव्यवस्थाओं वाले इन विशाल क्षेत्रों के प्रशासन के लिए गैर-अरब प्रजा के साथ थोड़ा-बहुत संपर्क रखना जरूरी था। अधिशेष के एक व्यवस्थित दोहन के लिए अरब शासक वर्गों को स्थानीय अभिजात वर्गों के साथ साठ-गांठ करने की जरूरत पड़ी। सीरिया में स्थिति विशेष रूप से जटिल थी क्योंकि वहां बैजंतियाई उच्च वर्गों ने उन इलाकों में शरण ले ली जो अब भी कास्टैनटिनोपल के अधीन थे। बहरहाल कुछ एक अधिकारी उन इलाकों में टिके और उन्होंने अरबों को अपनी सेवाएं पेश कीं।

जहां तक ईरान और इराक का मामला है वहां जमींदारों और गांवों के प्रमुखों की एक जमात थी जिनकी गहरी पैठ थी और जिन्होंने भूराजस्व की उगाही में सासानी शासकों की मदद की थी। उन्हें *दिहकां* कहा जाता था। अरब शासन में *दिहकां* के ढेर सारे विशेषाधिकार छिन गए। फिर भी उनकी स्थिति बरकरार रही। वे ग्रामीण अंचलों में प्रभुत्वशाली वर्ग बने रहे। *दिहकां* गांवों से भू-कर वसूलते और उसे अरब शासकों को सौंपते। वे अनेक प्रकार के अन्य प्रशासनिक काम भी करते। एक कालखंड में उनमें से अनेक स्थायी रूप से अरब शहरों में बस गए और इसलाम अपना लिया। उधर अरब ग्रामीण अंचलों में प्रवेश कर रहे थे। यह परिघटना खासकार सीरिया में ज्यादा उजागर थी। जैसे-जैसे गैरिसन शहरों से बाहर के इलाकों के साथ अरबों का आर्थिक और सामाजिक संबंध बढ़ा, अनेक स्थानीय लोगों ने इसलाम कबूल कर लिया। सातवीं सदी के अंत तक गैर-अरब मुसलमान शहरी और ग्रामीण दोनों इलाकों में दिखने लगे थे।

चूंकि मुसलमानों को सिर्फ विशेष अरब कबीलों के साथ जोड़कर देखा जाता था और ये कबीले सैन्य एवं प्रशासनिक संगठन के मुख्य आधार थे, गैर-अरब मुसलमानों को इस ढांचे में कोई जगह देने के लिए रास्ता ढूंढना जरूरी था जो अकसर छोटे-छोटे दस्तों में इसलाम कबूल कर रहे थे। गैर-अरबों को अरब कबीलों में आवंटित करके इस समस्या को हल करने की कोशिश की गई। यहां महत्वपूर्ण है कि प्रवेश करने वालों को निचला दर्जा दिया गया। गैर-अरबों को संबंधित कबीलों का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा

जिनके साथ उनको जोड़ा गया था। इस तरह इस दर्जेबंदी को एक संस्थाबद्ध रूप दिया गया। धर्मांतरण करने वाले गैर-अरबों को *मौला* (बहुवचन *मवाली*) या कबीले पर आश्रित के रूप में वर्गीकृत किया गया। कबीले के अंदर मवाली का दर्जा नीचे था। बाद में जब राज्य के सैनिक और प्रशासनिक संगठन में कबीले की भूमिका समाप्त हो गई तो गैर-अरब मुसलमान व्यक्तियों या परिवारों के *मवाली* बन गए।

आठवीं सदी की शुरुआत में गैर-अरब मुसलमानों के अनुपात में खासा इजाफा हुआ। क्रोन का कहना है कि उम्मावी शासन के शुरुआती दौर में इसलाम ग्रहण करने वालों में से ज्यादातर युद्धबंदी थे जिन्हें गुलाम बनाया गया था। इसलाम कबूल करने के बाद उन गुलामों को मुक्त (सिद्धांततः मुसलमान गुलाम नहीं बनाए जा सकते) कर दिया गया। उनका कहना है कि शुरुआती अरब अभियानों के क्रम में लोगों को बड़ी संख्या में गुलाम बनाया गया। इसलाम कबूल करने के बाद गुलामी से मुक्त किए गए लोगों को मुसलिम समाज में एक निचला दर्जा दिया गया। *मवाली* की निचली हैसियत का एक कारण यह भी था।

जब भूस्वामी वर्गों (*दिहकां* इत्यादि) और इराक तथा ईरान के पूर्व सासानी अधिकारियों ने इसलाम कबूल करना शुरू किया तो *मवाली* की स्थिति में एक हल्का सा सुधार हुआ। इन समूहों को राज्य के प्रशासनिक ढांचे में शामिल करने के बाद यह प्रक्रिया तेज हुई। अल-हज्जाज ने भूराजस्व की उगाही को केंद्रीकृत कर और उसकी जिम्मेदारी *मवाली* को सुपुर्द कर *दिहकां* की स्वायत्तता घटा दी थी। दिहकां के पास धर्मांतरण करने के लिए अब एक और वजह थी। जब *दिहकां* इसलाम कबूल करते तो उनके साथ उनके अधीन गांव भी इसलाम के दायरे में शामिल हो जाते थे। कुछ मरवानी उम्मावी शासकों ने, मसलन उमर द्वितीय (717-20) ने सक्रिय रूप से धर्मांतरण को प्रोत्साहन दिया। इसके अलावा अरब अधिवासी और स्थानीय आबादी के बीच विभिन्न स्तरों पर अन्योन्यक्रिया (intuition) हुई जिसने अरब अपवर्जिता खत्म की। गैर-अरब मुसलमान अब *मौला* की हैसियत से संतुष्ट नहीं थे। उनकी आकांक्षा समुदाय में बराबरी पाने की थी। इसने खासकर इराक और ईरान में उम्मावी शासन के खिलाफ व्यापक असंतोष को हवा दी।

अरबों के अनेक हिस्सों के बीच भी उम्मावी शासक अलोकप्रिय थे। उसके शासन को निरंकुश और भ्रष्ट माना जाता था। राज्य सैनिक रूप से कमजोर पड़ गया था और उम्मावी शासकों के लिए दूरदराज के इलाकों पर नियंत्रण बनाए रखना कठिन हो गया था। कुछ कमांडरों ने इन हालात का फायदा उठाया और अपनी-अपनी जगहों पर खुद को मजबूत बना लिया। पूर्व सासानी इलाकों में अरब सौदागरों, सरकारी अधिकारियों, गैर-हाजिर भूस्वामियों और ग्रामीण बिचौलियों की एक नई जमात उभर कर सामने आ गई थी। यह जमात सत्ता में थोड़ी हिस्सेदारी चाहती थी। उम्मावी शासकों का सामाजिक

आधार बहुत संकीर्ण और मुख्यतः सीरिया में सीमित था। इस कारण राज्य को टिकाए रखने वाले कबायली गठबंधन के नाजुक संतुलन को बिगाड़े बगैर इन समूहों को समायोजित करना संभव नहीं था। उम्मावी शासकों के विरोधी कबीले और कुल भी समय-समय पर विद्रोह करते रहते थे। हाशमी और अलवी उम्मावी शासकों का निरंतर विरोध कर रहे थे। इस तरह *मवाली* के असंतोष और विभिन्न अरब समूहों के विरोध के कारण आठवीं सदी के मध्य तक साम्राज्य के अंदर उम्मावी शासक-विरोधी एक तेज लहर बन गई।

इसी क्रम में 740 के दशक में उम्मावी शासन को खत्म करने के लिए एक संगठित आंदोलन वजूद में आया। इस आंदोलन का नेतृत्व अंतिम क्षण तक भूमिगत रहा। उसने पूरी गोपनीयता के साथ उन तमाम शक्तियों को गोलबंद करने की कोशिश की जो किसी न किसी कारण से उम्मावी शासकों की विरोधी थीं। इस आंदोलन की उत्पत्ति धुंधली है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि उसका वास्तविक नेतृत्व हाशिमियों के हाथ में था। हाशिमी उम्मावी प्रभुत्व को कभी पचा नहीं पाए थे। हाशिमियों की एक शाखा अब्बासियों ने आंदोलन को मार्ग निर्देश दिया था जो पैगंबर मोहम्मद के चाचा अल-अब्बास के वंशज थे। अब्बासियों का मुख्यालय एक अलग-थलग गांव अल-हुमैमा में था जो सीरिया के दक्षिण एक रेगिस्तान में स्थित था। अब्बासियों के उद्देश्यों के प्रति समर्थन जुटाने के लिए अल-हुमैमा से अनेक कारिंदे भेजे गए। आंदोलन की मुख्य शक्ति खुरासान में थी जहां, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, अरबों की एक बड़ी आबादी थी। यहां अबू मुसलिम ने एक अग्रणी भूमिका निभाई। वह एक सैनिक कमांडर और साथ ही एक बढ़िया संगठनकर्ता भी था। अबू मुसलिम खुरासान के अरब बाशिंदों के बीच से एक बड़ी सेना गठित करने में सफल रहा। उसने स्थानीय *मवाली* से भी समर्थन जुटाया। अब्बासी प्रचारकर्ताओं ने अलवियों की उम्मावी विरोधी भावनाओं का इस्तेमाल किया। उन्होंने गोल-मोल ढंग से यहां तक संकेत दिया कि अलवियों के बीच से किसी को खलीफा बनाया जा सकता है। लेकिन बाद में साफ हो गया कि अलवियों को सत्ता सौंपने का अब्बासियों का कोई इरादा नहीं था। जब तक आंदोलन सफल नहीं हो गया, अब्बासियों ने यह मुद्दा दबाए रखा। उन्होंने अंत में साफ किया कि उम्मावी शासन के अंत के बाद सत्ता की बागडोर कौन संभालेगा।

उम्मावी शासन का अंत 749-50 में हुआ। उन्हें सत्ता से हटाने में खुरासानी सेना की भूमिका प्रमुख रही जिसका गठन अबू मुसलिम ने किया था। आखिरी उम्मावी खलीफा मरवान द्वितीय मिस्र भाग गया जहां उसकी हत्या कर दी गई। जब अबू मुसलिम ने अपना काम निबटा दिया तब अब्बासी नेता अबूल अब्बास अल-सफ्फाह (*अल-सफ्फाह* का मतलब होता है 'बदला लेने वाला') को नया खलीफा घोषित किया गया। इसके साथ ही अब्बासियों के 500 साल के लंबे शासन की शुरुआत हुई। अब्बासी खिलाफत 1258

तक चली। लेकिन अब्बासी शासकों को महज एक सौ साल तक सर्वोच्च सत्ता मिली। उसके बाद वे कमोबेश नाम के लिए शासक रहे। दसवीं सदी के बाद उनकी हैसियत नामधारी शासकों की रह गई।

V

अब्बासियों के उत्थान के बाद राजनीतिक शक्ति का केंद्र सीरिया से हटकर दक्षिण इराक चला गया। इसके साथ ही सीरिया राजनीति के हाशिए पर चला गया। खुरासानी अब्बासियों के पक्के सहयोगी थे। लेकिन खुरासान एक सीमांत क्षेत्र था और इसलिए इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करने के लिए उपयुक्त नहीं था। दक्षिण इराक की अर्थव्यवस्था अब्बासिया शाही प्रशासन चलाने के लिए जरूरी संसाधन मुहैया करा सकती थी। फारस का सासानी साम्राज्य का केंद्रक भी इसी क्षेत्र में था। यहीं सासानी प्रशासनिक ढांचा केंद्रित था। इस उर्वर क्षेत्र में *मवाली* बन चुके *दिहकां* और पूर्व सासानी अधिकारियों की अच्छी उपस्थिति थी। उन्होंने उम्मावी शासकों के खिलाफ संघर्ष में अब्बासियों का समर्थन किया था। इसलिए अब्बासिया शासन में उन्हें एक स्तंभ बनना था। आठवीं सदी के मध्य से फारस के *मवाली* बड़े पैमाने पर नागरिक प्रशासन और सेना में भर्ती किए गए। *मवाली* उच्च पदों तक पहुंचे और उनके बीच से स्थानीय तथा क्षेत्रीय अभिजातों को राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी मिली। बाद के दो सदियों के दौरान ज्यादातर ईरानियों ने इसलाम ग्रहण कर लिया। इससे पश्चिम एशिया में ईरानी मुसलमान संख्या में अरबों से बढ़ गए। जो पहले फारस के *मवाली* थे, वे अब शासन वर्ग के हिस्सा बन गए। इस तरह अरब और गैर-अरब मुसलमानों का कोई मतलब नहीं रह गया। अब मुसलमानों के बीच सामाजिक अंतर मुख्यत: वर्गीय आधार पर था। *मौला* शब्द का इस्तेमाल भी धीरे-धीरे खत्म हो गया।

ईरानी जगत (अब्बासिया खिलाफत के संदर्भ में उसमें मौजूदा अफगानिस्तान के हिस्से शामिल थे और यह आक्सस नदी से आगे तक फैला था) में अरब विस्तार इसलाम के विकास के लिए एक युगांतरकारी मोड़ था। अब्बासिया खिलाफत के तहत ईरान में इसलामी सुदृढ़ीकरण ने अरब और ईरानी परंपराओं के सम्मिश्रण से एक समृद्ध संस्कृति वजूद में आई। शुरुआती अब्बासिया शासकों के तहत जो सभ्यता फली-फूली, उसकी जड़ें इसी संश्लेषण में गहरी जमी थीं। इस संश्लेषण के कारण सासानी राजतांत्रिक राज्य की ढेर सारी विशेषताएं इसलाम तक पहुंचीं। इस तरह जिसे 'अब्बासी क्रांति' की संज्ञा दी जाती है, उसके दूरगामी प्रभाव अरब-ईरान इसलामी इतिहास पर पड़े।

अल-सफ्फाह की मृत्यु 754 में हुई। उसके बाद उसका भाई अल-मंसूर (754-75) खलीफा बना। मार्शल हाजसन अल-मंसूर के सत्तारोहण से लेकर 833 में अब्बासी खलीफा अल-मामून के निधन तक के 80 साल को शानदार खिलाफत का उत्कर्ष काल

बताया है। हाजसन ने इसलामी इतिहास के अपने कालनिर्धारण में मरवानी उम्मावी युग और शुरुआती अब्बासी युग (684 से करीब 900) को 'उत्कृष्ट खिलाफत' बताया जबकि उसके पहले के काल (632 से 683) को 'आदि खिलाफत' करार दिया। शुरुआती अब्बासी खलीफों में अल-मंसूर, हारून अल रशीद (786-809) और अल-मामून (813-33) सर्वश्रेष्ठ थे।

मरवानियों के शासनकाल में खिलाफत एक निरंकुश राजतंत्र का रूप लेने लगा था। अल-मंसूर के दौर में यह और मजबूत हुआ। खलीफा की सर्वोच्च सत्ता को बुलंद करने के लिए लौकिक और आध्यात्मिक प्राधिकार को जोड़ने वाली राजशाही की सासानी अवधारणा स्वीकार की गई। शाही आदाब और दरबारी दस्तूर अपनाया गया जिसका ज्यादातर हिस्सा सासानियों से (कुछ बैजंतियाइयों से भी) लिया गया। अब खलीफा आम पहुंच से बाहर हो गया जो शासक और प्रजा के बीच की दूरी इंगित करता है। अगर किसी को खलीफा के सामने हाजिर होने की इजाजत दी जाती तो उसे कोरनिश बजाना और सज्दा करना पड़ता था। दरबार की शान-शौकत खलीफा की प्रतिष्ठा और जाहोजलाल की सूचक थी।

उस समय दक्षिण इराक में तीन प्रमुख अरब शहर थे। हम पहले ही कूफा और बसरा का जिक्र कर चुके हैं। उसके अतिरिक्त वासित बसरा से उत्तर दजला के किनारे बसा था। अल-हज्जाज ने करीब 702 में वासित की नींव रखी थी। यह उसका मुख्यालय था। अल-मंसूर ने पाया कि उनमें से कोई शहर उसकी जरूरतें पूरी नहीं कर सकता। सासानियों की राजधानी तेसीफोन (मदायन) उतार पर थी। खलीफा ने दक्षिण इराक में अपने लिए एक शानदार राजधानी बनाने का फैसला किया। उसने 762 में दजला के किनारे बगदाद शहर की नींव रखी। शहर का स्थल प्राचीन स्तेसीफोन से बहुत दूर नहीं था। शुरू में यह अब्बासियों की खुरासानी सेना की छावनी था। अनेक इतिहासकार मानते हैं कि बगदाद की स्थापना का एक गहरा प्रतीकात्मक संदर्भ है जिसके तहत अल-मंसूर ने खुद को सासानियों और उनके पूर्ववर्ती यूनानवादियों की परंपरा के एक शासक के रूप में खुद को पेश करने की कोशिश की।

सिकंदर महान के समय से ही शहरों की औपचारिक स्थापना एक प्रतीकात्मक कृत्य थी जो शाही शक्ति को प्रदर्शित करती थी। यह अरब के लिए एक अजनबी चीज थी। वहां शहरी केंद्र नहीं थे। बैजंतियाई और सासानी क्षेत्रों में पहले अरब शहर *अमसार* से विकसित हुए। उम्मावी खिलाफत की राजधानी दमिश्क एक रोमन शहर था। उसे एक सैन्य सह-प्रशासनिक केंद्र में तब्दील किया गया। दूसरी तरफ बगदाद को शुरू से ही बड़े पैमाने पर बनाया गया। उसे एक वृत्ताकार शहर के रूप में ढाला गया जो खलीफा के महल और एक विशाल मसजिद के इर्द-गिर्द विकसित हुआ। शहर के इर्द-गिर्द दीवारें थीं और उनमें कई द्वार थे। बगदाद अंत तक अब्बासी खलीफों का (एक बेहद छोटे

काल को छोड़कर जब राजधानी समर्रा स्थानांतरित हुई थी) निवासस्थल रहा। यह विश्व के महान महानगरों में से एक के रूप में विकसित हुआ। शायद यह मध्यकाल का सबसे बड़ा शहर था।

आठवीं और नौवीं सदी इसलामी जगत में शहरी विस्तार का काल थी। बगदाद, कूफा, बस्रा और वासित इराक के मुख्य शहर थे। अल-मंसूर ने कूफा और बस्रा की चारों तरफ दीवारें बनवाई थीं (करीब 770)। आठवीं सदी के शुरू में बस्रा की आबादी अनुमानत: दो लाख थी जबकि कूफा की एक लाख थी। बस्रा बगदाद के लिए मुख्य बंदरगाह बन गया था और यह फारस की खाड़ी से होकर गुजरने वाले हिंद महासागर व्यापार मार्ग का एक महत्वपूर्ण पारगमन बिंदु था। ईरान के प्रमुख शहरी केंद्र नीशापुर, मार्व और तुस खुरासान में थे। खुरासान के शहरों की खुशहाली का सीधा रिश्ता अब्बासी खिलाफत के शुरुआती दौर में उस क्षेत्र को मिले महत्व से था। नीशापुर खुरासान का एक प्रमुख शहर था। यह मध्य एशियाई व्यापार मार्ग पर स्थित था और उस मार्ग पर होने वाले व्यापार से लाभान्वित हुआ। नीशापुर शिक्षण का भी एक प्रमुख केंद्र था। मध्य एशिया में खुरासान से आगे बल्ख और बुखारा जैसे नए शहरी केंद्र तेजी से प्रमुखता ग्रहण करते जा रहे थे।

पश्चिम में सीरिया ने अपनी पुरानी प्रतिष्ठा खो दी। करीब एक सदी तक विशाल अरब साम्राज्य की राजधानी रहे दमिश्क की हैसियत अब महत एक प्रांतीय शहर की रह गई थी। बहरहाल यह अब भी सीरिया का एक प्रमुख शहर था। अलेप्पो और एंतियोक (रोमन शासन में प्रांतीय राजधानी) सीरिया के अन्य प्रमुख शहर थे। पूर्वी भूमध्यसागर में जबर्दस्त वाणिज्यिक गतिविधियों के कारण लेबनानी तट पर स्थित बाइबलोस, सिडान और तायर के प्राचीन बंदरगाह फल-फूल रहे थे। फलस्तीन में यरूशलम 690 के दशक में मुसलमानों का एक धार्मिक केंद्र बन गया। इससे यरूशलम के विकास को नई गति मिली। यरूशलम पहले से ही यहूदियों और ईसाइयों का एक प्रमुख तीर्थस्थल था।

मिस्र में रोमन साम्राज्य के पतन के साथ ही शहरी क्षेत्र भी बिखरने लगे थे। अरबों के विजय के समय मिस्री अर्थव्यवस्था के ग्रामीणीकरण की प्रक्रिया लगभग पूरी हो चुकी थी। जैसा कि हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं, मिस्र में मुख्य अरब गैरिसन डेल्टा के किनारे नील नदी से लगे स्थित था। उसका नाम फुस्तात था और वह मिस्र का सबसे बड़ा शहर बन गया। जब दसवीं सदी में फुस्तात के बगल में काहिरा की स्थापना की गई तो फुस्तात का उसमें विलय (फुस्तात अब पुराने काहिरा का एक हिस्सा है) हो गया। इस्कंदरिया का महान भूमध्यसागरीय बंदरगाह पहले ही अपनी आन-बान खो चुका था। फुस्तात के उत्थान से अब उसका पूरा पतन हो गया। मगरिब में कयारवान की स्थापना के बाद भूमध्यसागरीय तट के निकट एक और शहर की नींव रखी गई। यह प्राचीन कार्थेज के बाहरी इलाके में स्थित एक रोमन बस्ती के स्थल पर बसाया गया था जिसे

टाइनस कहा जाता था। टाइनस, या ट्यूनिस, से ही मौजूदा ट्यूनिशिया (इफ्रीकिया के सदृश) का नाम पड़ा। मगरिब के बाकी इलाकों में नए शहरों की स्थापना की रफ्तार कुछ सुस्त थी। ज्यादातर रोमन शहर लुप्त हो गए थे। मगरिब के पश्चिमी छोर पर फेज (अब मोरक्को में) की स्थापना 808 में जाकर हुई। यह एक प्रमुख शहरी केंद्र के रूप में विकसित हुआ। स्पेन में अरब शासित क्षेत्रों की राजधानी कोरदोबा (कुरतुबा) थी। अरब स्पेन को अंदलूस कहते थे। गुआदलकुइविर नदी के किनारे कोरदोबा की स्थापना करीब 719 में हुई थी। जैसे-जैसे उसका विस्तार हुआ, यह पश्चिमी यूरोप का प्रमुख अरब शहर बन गया। फिर भी कोरदोबा का वास्तविक और व्यापक विकास दसवीं सदी में ही हुआ।

इस काल के शहरी विस्तार न सिर्फ अरबों के सैनिक और प्रशासनिक जरूरतों के अनुरूप थे बल्कि व्यापार के क्षेत्र में हुए विस्तार को भी प्रतिबिंबित करते थे। पश्चिमी भूमध्यसागर से लेकर मध्य एशिया तक इतने विशाल इलाके के राजनीतिक एकीकरण ने वाणिज्यिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया। आठवीं और नौवीं सदी की सापेक्षिक स्थिरता भूमध्यसागरीय जगत और हिंद महासागर तथा मध्य एशिया के बीच लंबी दूरी के व्यापार में मददगार रही। माल भारत के रास्ते चीन से फारस की खाड़ी तक पहुंचते थे। खाड़ी में दो प्रमुख अब्बासिया बंदरगाह थे : ईरान में सिराफ और इराक में बस्रा। सिराफ और बस्रा से दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न स्थानों के लिए सामुद्रिक व्यापार की देखरेख अरब और ईरानी सौदागरों के हाथ में थी जिसमें अनेक यहूदी भी शामिल थे। अरब और ईरानी सौदागरों का जोर आम तौर पर व्यापार मार्ग के अरब सागर वाले हिस्से पर रहता था। फिर भी चीन तक जहाज नियमित रूप से भेजे जाते थे। सिराफ या बस्रा से माल पहले जमीनी रास्ते से सीरिया और फलस्तीन जाता था। फिर वहां से भूमध्यसागर के व्यापार मार्गों के संजाल में प्रवेश करता था। कुछ माल बिक्री के लिए बगदाद भेजे जाते जबकि एक छोटा हिस्सा मध्य एशिया की मंडियों में प्रवेश के लिए नीशापुर जाता। चीन को पश्चिम एशिया और भूमध्यसागर से जोड़ने वाला पारंपरिक मध्य एशियाई जमीनी व्यापार मार्ग अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य का एक और व्यस्त राजमार्ग था।

इस काल में भूमध्यसागरीय वाणिज्यिक संजाल में एक तब्दीली आई। पूर्व मध्यकालिक यूरोप में व्यापार में गिरावट आने के चलते भूमध्यसागर में लंबी दूरी के व्यापार की दिशा दक्षिण की तरफ मुड़कर उत्तर अफ्रीका (मिस्र और मगरिब) हो गई। मालों से लदे जलपोत मिस्र या लेबनानी बंदरगाहों और स्पेन के बीच चक्कर लगाते। इस मार्ग के मध्य में स्थित ट्यूनिस पारगमन का एक प्रमुख बिंदु था। सिसिली भी इस व्यापारिक संजाल का एक हिस्सा था क्योंकि उस पर अरबों का शासन था। बाद में वेनिस भी इस व्यापार में हिस्सा लेने लगा। भूमध्यसागरीय क्षेत्र के व्यापार जगत में यहूदियों की एक प्रमुख भूमिका थी। मिस्र में यहूदी सौदागरों की एक अच्छी-खासी आबादी थी।

भूमध्यसागर और लाल सागर के व्यापार का एक बड़ा हिस्सा उनके हाथों में था जिसमें हिंद महासागर और भूमध्यसागर के बीच का व्यापार भी शामिल था। कुछ दशक पहले (काहिरा जेनीजा के) गोदाम से फुस्तात के यहूदी व्यापारी समुदाय के दस्तावेजों का एक बड़ा जखीरा बरामद हुआ जो अरब साम्राज्य में यहूदियों की वाणिज्यिक गतिविधियों पर खासी रोशनी डालते हैं।

मसाले, बढ़िया किस्म के रेशमी और सूती कपड़े, कीमती पत्थर, फर और चीनी मिट्टी के बरतन जैसे विलास के कुछ अन्य सामान दक्षिण-पूर्व एशिया और भारत से पश्चिम एशिया तथा यूरोप ले जाए जाते थे। अरब साम्राज्य के नए शहरी केंद्रों में इन सामानों की मांग थी। इस अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने उन शहरों में भोग-विलास के सामानों की विशाल मंडी की जरूरतें पूरी कीं जहां शासक रहते थे और उसके दरबार सजते थे। खलीफा बड़ी शानो-शौकत से रहता था। प्रांतों का कुलीन वर्ग उसकी इस विलासिता की नकल करता था। इससे भोग-विलास की विभिन्न वस्तुओं की मांग सृजित होती थी। इन वस्तुओं के सबसे ज्यादा उपभोक्ता बगदाद, दमिश्क, नीशापुर, फुस्तात और कोरदोबा में थे। मुसलिम जगत के शहर खुद दस्तकारी के केंद्र भी थे और वहां उत्पादित कुछ वस्तुओं का विनिमय आयातित वस्तुओं के साथ किया जाता था। अरब शासित इलाके हथियार, कागज, हाथी दांत, चीनी, जैतून का तेल, गुलाम, सोना और घोड़ा भेजते थे। इस व्यापार में वृद्धि से एक मुसलिम शहरी मध्य वर्ग तेजी से उभरा जो व्यापारियों, दुकानदारों, दलालों और जहाज मालिकों पर आधारित था। लेकिन शहरों पर नियंत्रण कायम करने वाले मध्यकालिक यूरोप के बुर्जुआ वर्ग के विपरीत मुसलिम मध्य वर्ग की अपने शहर की राजनीतिक संस्थाओं पर बेहद कम पकड़ थी। जैसा कि एस.डी. गोइतीन कहते हैं कि इसका कारण यह था कि राज्य ने अरब शहरी केंद्रों का विकास बुनियादी रूप से प्रशासनिक और सैनिक लक्ष्यों से किया था और इसलिए उन पर कड़ी निगाह रखी जाती थी। ऐसी हालत में मध्य वर्ग शहर के प्रशासन में कोई स्थान पाने की बमुश्किल कोई उम्मीद कर सकता था। शायद यह कुछ हद तक यह व्याख्या करती है कि आखिर क्यों ये शहर पूंजीवाद में संक्रमण के प्रस्थान बिंदु नहीं बन सके।

बहरहाल, अब्बासी अर्थव्यवस्था में व्यापार के महत्व को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर नहीं देखा जाना चाहिए। भूमि संपत्ति का प्राथमिक स्रोत थी। प्रारंभिक अब्बासी खलीफा दक्षिण इराक की कृषक अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने में रुचि रखते थे क्योंकि यह उनके राज्य का प्रमुख क्षेत्र था। वे अपने संसाधनों के लिए इसी क्षेत्र पर सबसे ज्यादा निर्भर थे। उन्होंने कृषि का दायरा बढ़ाकर और सिंचाई प्रणाली बेहतर बनाकर उत्पादन बढ़ाने की कोशिश की। अल-हज्जाज ने सासानियों के सिंचाई तंत्र की मरम्मत करने के लिए एक अभियान चलाया था। अब्बासियों ने उस बिंदु से काम शुरू किया जहां अल-हज्जाज ने छोड़ा था। उन्होंने दक्षिण इराक में नहरों के जटिल संजाल को चुस्त-दुरुस्त किया और उसका विस्तार

किया। उन्होंने सिंचाई की मौजूद तकनीकों को सुधारा और खेतों की सिंचाई के लिए बेहतर तरीके अपनाए। इस संबंध में पनचक्की (*नौरा*) सबसे बड़ी उपलब्धि थी। सीरिया में इस उपकरण का पहले से ही इस्तेमाल हो रहा था। यह डोल और रस्सी की मदद से पानी ऊपर उठाने की सीधी पद्धति का एक विकसित रूप था। *नौरा* एक ऐसी मशीन थी जिसे चलाने के लिए बैल या दूसरे जानवरों के श्रम का इस्तेमाल किया जाता था। ऊपर से नीचे की ओर आपस में गुथी चक्की में ढेर सारी बाल्टियां लगी होती थीं जो पानी उठाती थीं और उसे एक चैनल में डालती थीं। चैनल से पानी खेतों में भेजा जाता था। *नौरा* और उसके परिवर्तित-परिवर्धित रूप बड़े पैमाने पर इराक और मिस्त्र में इस्तेमाल हुए। उनका प्रसार स्पेन तक हुआ।

ईरान में सासानी काल से ही खेतों की सिंचाई के मकसद से चश्मों से पानी ले जाने के लिए भूमिगत नहर बनाने की पद्धति जारी थी। इन नहरों को *कनात* कहा जाता था। शुरुआती *कनात* कृत्रिम जलधाराएं थीं जिन्हें ढक दिया जाता था ताकि उनका पानी भाप बनकर उड़ नहीं जाए। *कनात* सिंचाई प्रणाली मुख्यत: पहाड़ों की तलहटी वाले इलाकों में प्रचलित थी। इस प्रक्रिया से पहाड़ी चश्मों का दोहन किया जाता था। ईरान में (रेत जम जाने या दीवार गिर जाने से) बेकार पड़ गए प्राचीन *कनातों* का पुनर्निर्माण किया गया। ईरान के अंदर और बाहर *कनात* के संजाल का विस्तार किया गया। यह रेगिस्तानी चश्मों के अनुरूप ढला था। जहां भी पानी की कमी थी, यह तकनीक अपनाई गई।

आठवीं और नौवीं सदी में भूराजस्व उगाही एक समान बनाई गई। हम इस तथ्य पर चर्चा कर चुके हैं कि बैजंतियाई और सासानी इलाकों की विजय से अरबों के हाथ में विशाल कृषिगत अधिशेष आया। यह सर्वथा एक नई स्थिति थी जिसमें खानाबदोश कबीलों में उथल-पुथल मचा देने की पूरी क्षमता थी। शुरुआती खलीफों ने मुसलमानों को विजित इलाकों की भूमि को निजी संपत्ति में बदलने से रोकने का प्रयत्न किया था। बाद में जब अरब अधिवासी जमीनें हासिल करने लगे, मुसलिम और गैर-मुसलिम भूस्वामियों के बीच अंतर स्थापित किया गया। मुसलमानों की ओर से अदा किया जाने वाला मुख्य कर *जकात* था जो सिद्धांतत: धर्मार्थ मामलों के लिए था। इसका आकलन सामान्य रूप से करदाता की संपत्ति (जमीन छोड़कर) के ढाई प्रतिशत की दर से किया जाता था। भूस्वामी मुसलमानों को जमीन पर एक कर अदा करना होता था जो *उश्र* कहलाता था। *उश्र* का आकलन उपज के दसवें हिस्से की दर से किया जाता था।

सभी गैर-मुसलिमों को एक आम कर अदा करना होता था जो *जजिया* कहलाता था। *जजिया* उन लोगों पर लागू होता था जिन्हें (इसलाम) धर्म नहीं मानने वाले (*जिम्मी*) के रूप में वर्गीकृत किया जाता था, अर्थात जो मुसलिम समुदाय या *उम्मा* से बाहर है। यह संपत्ति या आमदनी पर लगाया गया कर नहीं था और प्रति व्यक्ति के हिसाब से लिया जाता था। लेकिन *जजिया* के आकलन के लिए *जिम्मियों* का वर्गीकरण उनकी

संपत्ति के आधार पर किया जाता था। गैर-मुसलिमों को जमीन पर अलग कर अदा करना पड़ता था जिसे *खराज* कहते थे। *खराज* के आकलन की दर विभिन्न कारकों (मिट्टी की प्रकृति, सिंचाई की किस्म, मिल्कियत का दर्जा इत्यादि) पर निर्भर करती थी। लेकिन यह शायद ही कभी कुल पैदावार की एक तिहाई से कम होती थी।

इस तरह हम देखते हैं कि दो तरह के भू-कर थे : (1) *उश्र,* जिसे मुसलिम भूस्वामियों को अपनी उपज के दसवें हिस्से की दर से अदा करना पड़ता था, और (2) *खराज* जिसे गैर-मुसलिम भूस्वामियों को अपने पैदावार की एक तिहाई या उससे ज्यादा की दर से अदा करना पड़ता था। जब तक मुसलिम भूस्वामी संख्या में थोड़े रहे, *उश्र* और *खराज* के बीच के फर्क ने ज्यादा समस्या खड़ी नहीं की। ज्यादातर भूस्वामी गैर-मुसलिम थे। यह मामला खासकर सासानी इलाकों में था जहां जमीन पर *दिहकां* की पकड़ बरकरार थी। उन्हें अपनी उपज का एक बड़ा हिस्सा देना पड़ता था। एक साथ दो प्रक्रियाएं हुईं जिनसे हालात बदल गए। प्रथमत: आठवीं सदी की शुरुआत में मुसलमानों के बीच एक बड़ा भूस्वामी वर्ग उभरा। दूसरी बात यह हुई कि प्राक्- इसलामी भूस्वामियों ने बड़ी तादाद में इसलाम ग्रहण किया और उन्हें मुसलिम भूस्वामियों के वर्ग में शामिल कर लिया गया।

दोहरी कर प्रणाली जारी रखने से राज्य की आमदनी घट जाती क्योंकि ढेर सारी जमीनें जिन पर पहले *खराज* (उच्च दर) अदा किया जाता था अब *उश्र* (निम्न दर) अदा करतीं। शब्दावली चाहे जो भी हो, अंतत: यह मामला दर का था जिस पर कर का आकलन किया जाना था। उम्मावी खलीफों ने इस समस्या से निबटने के लिए अनेक तरीके आजमाए। अल-हज्जाज ने फरमान जारी किया कि एक बार *खराज* जमीन के रूप में चिह्नित हो जाने के बाद कोई जमीन *उश्र* जमीन में नहीं बदल सकती, भले ही उसका मालिक मुसलमान क्यों नहीं बन गया हो। उमर द्वितीय तो मुसलमानों पर *खराज* जमीनें खरीदने पर प्रतिबंध लगाने की हद तक चला गया। एक लंबे काल में दो प्रकार के करों के बीच का फर्क मिट गया। नौवीं सदी की शुरुआत तक तमाम जमीनों पर *खराज* अदा किया जाने लगा, चाहे उसका मालिक मुसलिम हो या गैर-मुसलिम। इससे यह सुनिश्चित हो गया कि राज्य राजस्व के उच्च स्तर से वंचित नहीं हो। अब्बासिया खिलाफत में *खराज* कृषिगत राजस्व का मुख्य स्रोत था। उसके अतिरिक्त राज्य ने मुसलमानों पर लगाए गए *जकात* और गैर-मुसलमानों पर लगाए गए *जजिया* से आमदनी हासिल की। आखिर में व्यापार पर शुल्क और अनेक प्रकार के उपकर (cess) लगाए गए थे जिनमें से कोई भी इसलामी कानून के हिसाब से वैध नहीं था।

अब्बासिया खिलाफत में राज्य केंद्रीकृत था और एक विशाल नौकरशाही उसका प्रबंध करती थी। सासानी विरासत पर इस नौकरशाही की नींव रखी गई थी। हमें यह याद रखनी चाहिए कि सासानी शाही व्यवस्था चार सदियों में विकसित हुई थी। फारस

की राजतांत्रिक परंपराओं की जड़ें यूनानवादी युग तक जाती हैं। उन्होंने अब्बासिया एकच्छत्रवाद के लिए एक बना-बनाया माडल मुहैया किया। लेकिन यह सासानियों का प्रशासन तंत्र था जिसने अब्बासियों को निरंकुश सत्ता की स्थापना में मदद की। न सिर्फ इतना, बल्कि अब्बासियों ने अपने ढेर सारे कर्मी उन परिवारों से बहाल किए जिनका सासानी शासन में नागरिक प्रशासन में काम करने का एक इतिहास था।

अल-मंसूर के काल से नागरिक प्रशासन एकीकृत था और उसे एक शक्तिशाली अधिकारी के मातहत रखा गया था जो 'वजीर' कहलाता था। वजारत इसलामी राज्य की सर्वाधिक विशिष्ट संस्थाओं में से एक थी। वजीर एक शक्तिशाली अधिकारी होता था जो अमूमन सुशिक्षित और सैन्य मामले समेत प्रशासन की विभिन्न शाखाओं में दक्ष होता था। वह नौकरशाही की अध्यक्षता (लेकिन सेना की नहीं) करता था। वजीर से नागरिक प्रशासन की देखरेख अपेक्षित थी। यह एक ऐसा काम था जिसके लिए कुछ विशेष अनुभव की जरूरत थी। अधिकारी उसी के मार्फत खलीफा से संवाद करते थे। इस शब्द को कई बार गलत ढंग से प्रधानमंत्री के रूप में भी पेश किया जाता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि वजारत की संख्या की उत्पत्ति फारस के सासानी शासन में हुई थी। लेकिन दूसरे विद्वानों ने इस विचार को चुनौती दी है। उनका कहना है कि हमें महज इस कारण वजीर के पद की फारसी उत्पत्ति नहीं मान लेनी चाहिए कि अब्बासियों ने सासानियों से ढेर सारी चीजें अपना लीं। गोइतीन की दलील है कि वजारत शुरुआती अब्बासिया राज्य की एक विशिष्ट उत्पत्ति थी। उनका कहना है कि यह शब्द भी फारस. नहीं, बल्कि अरबी (वजीर का शब्दश: मतलब अरबी में सहायक है) का है। इसका सबसे पहले इस्तेमाल एजेंटों के लिए किया गया जो खिलाफत पाने के अब्बासियों के लक्ष्य में उनके 'सहायक' या वजीर थे। अल-मंसूर के समय तक यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकारी की उपाधि बन गया जो खलीफा की मदद करता था।

अब्बासियों के शुरुआती वजीरों में सबसे मशहूर बरमेकी परिवार के थे। बरमेकी परिवार से वजीर नियुक्त होने वाला पहला व्यक्ति खालिद बिन बरमेक था। खालिद बौद्ध भिक्षुओं के परिवार से आया था। उसके पूर्वज बल्ख में बौद्ध विहार के मुख्य पुजारी थे। खालिद ने अल-सफ्फाह की खिलाफत में अपना प्रशासनिक जीवन शुरू किया और वजीर के ओहदे तक पहुंचा। वह बाद में अल-मंसूर का वजीर बना। यह कहा जा सकता है कि खालिद ने वजारत को एक संस्था का उचित रूप दिया। अल-मंसूर ने प्रशासन के ज्यादातर सामान्य कार्य खालिद को सुपुर्द कर रखा था। वजारत की उत्पत्ति के साथ भावी खलीफा और अन्य शहजादों की शिक्षा-दीक्षा के लिए किसी वरिष्ठ नौकरशाह को नियुक्त करने की प्रथा गहराई से जुड़ी थी। शहजादों के सत्ता संभालने के बाद आम तौर पर उनके उस्तादों को वजीर नियुक्त किया जाता था। खालिद का बेटा यूसुफ हारून अल-रशीद का उस्ताद था और वह बाद में उसका वजीर बना। यूसुफ के बेटे हारून अल-

रशीद के बेटों के उस्ताद बने। यूसुफ के बेटों में से एक जाफर ने हारून अल-रशीद के वजीर के रूप में अपने पिता का कार्यभार संभाला। हारून अल-रशीद और जाफर के बीच का रिश्ता किंवदंती बन गया। *अलिफ लैला* की दास्तानों में इन रिश्तों की खूब चर्चा है। खलीफा के साथ इन रिश्तों के बावजूद जाफर दरबारी सियासत और उठापटक का शिकार बन गया। जाफर के पतन के बाद बरमेकी परिवार अपनी विशेष हैसियत खो बैठा। बरमेकियों का पतन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि वजीर अंतत: एक सहकारी नौकर ही था जिसकी सारी ताकत शासक के कारण होती थी। फिर भी इस संस्था का महत्व बढ़ता गया और यह 11वीं सदी में अपने उत्कर्ष पर पहुंची।

अब्बासिया खिलाफत के शुरुआती दौर की समृद्धि उस काल की वैज्ञानिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों में झलकती है। विविध सांस्कृतिक परंपराओं के मेलजोल ने नए-नए विचारों को जन्म दिया और चिंतन को समृद्ध बनाया। अब्बासी शासकों, खासकर अल-मामून, ने प्राचीन यूनानी दार्शनिक एवं वैज्ञानिक ग्रंथों के अनुवाद का काम शुरू करवाया। प्रमुख यूनानी ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किया गया। इससे यूनानी-रोमन ज्ञान के समृद्ध जखीरे तक मुसलिम बुद्धिजीवियों की पहुंच बनी। अफलातून (प्लेटो) और अरस्तू की कृतियों का अनुवाद किया गया और वे मुसलिम विचारकों के बीच व्यापक रूप से लोकप्रिय हो गए। हुनयान बिन इसहाक उन सर्वप्रमुख मुसलिम विद्वानों में से एक था जिन्होंने महत्वपूर्ण यूनानी ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किया। वह नौवीं सदी का था। हिप्पोक्रेटीज के महान ग्रंथ समेत चिकित्सा पर यूनानी पुस्तकों के अनुवाद से इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ। यूनानी विरासत के आधार पर अरब चिकित्सा की एक नई प्रणाली (यूनानी चिकित्सा प्रणाली) परवान चढ़ी। इसके चलते रसायनशास्त्र जैसे दूसरे क्षेत्रों में भी विकास हुआ। अरब वैज्ञानिकों ने कीमियागिरी में बेहद दिलचस्पी दिखाई। इसे रसायनशास्त्र का शुरुआती चरण कहा जा सकता है। उन्होंने इस तरह रासायनिक प्रक्रियाओं की अधिक सम्यक समझदारी हासिल कर ली।

अरबों ने खगोल विज्ञान और गणित पर यूनानी कृतियों का बड़ी उत्कंठा और उत्सुकता से अध्ययन किया। अल-ख्वाराजमी अब्बासी काल के मशहूर गणितज्ञों में से एक था। वह नौवीं सदी के शुरुआती दौर का था। अल-ख्वाराजमी को गणित के क्षेत्र में भारतीय उपलब्धियों की जानकारी थी और वह अपने आकलन में अंकों की भारतीय प्रणाली का इस्तेमाल करता था। अरब भारतीय विज्ञान और गणित को बहुत महत्व देते थे। भारतीय ज्ञान के प्रति अरबों की चाह और लगाव को अल-बिरूनी (973-1050) की सुप्रसिद्ध कृति में दर्ज किया गया है। अल्बर्ट हुरानी के शब्दों में अल-बिरूनी 'इसलाम की दुनिया से आगे जाकर दूसरी सांस्कृतिक परंपराओं की मूल्यवान चीजों को आत्मसात करने का (मध्यकाल के) किसी मुसलिम लेखक का शायद महानतम अविच्छिन्न प्रयास था।' अब्बासी साम्राज्य ने एक तरफ यूनानी-रोमन जगत से तो दूसरी तरफ भारत (और चीन)

से ज्ञान के मोती चुने। इस तरह वह पूरब से पश्चिम और पश्चिम से पूरब दोनों दिशाओं में विचारों का संप्रेषक बना।

इतिहास लेखन पर यूनानी-रोमन परंपराओं का गहरा प्रभाव पड़ा। अरबों की ओर से गंभीर इतिहास लेखन नौवीं सदी में सामने आना शुरू हुआ। अल-तबरी (839-923) प्रथम इसलामी इतिहासकारों में से एक था। उसे कभी-कभी 'अरबों का लिवी' भी कहा जाता है। उसकी *तारीख* शुरुआती अब्बासिया खिलाफत का इतिहास है। दूसरे प्रमुख इतिहासकारों में अल-मसूदी, और बेशक अल-बिरूनी थे।

देशज ईरानी मुसलमानों के साथ अरब अधिवासियों के सम्मिलन के कारण अब्बासी साम्राज्य के भीतर होने वाले सामाजिक रूपांतरण ने प्रारंभिक इसलाम का भाषाई चरित्र बदल दिया था। अरबी अब शासक आभिजात्य वर्गों के बीच इस्तेमाल होने वाली एकमात्र भाषा नहीं रह गई। आभिजात्य वर्गों के एक हिस्सा, और अवश्य ही आमजन की बहुसंख्या, की भाषा फारसी थी। फारसी पहलवी से विकसित हुई थी और एक संशोधित अरबी लिपि में लिखी जाती थी। अरबी सरकारी भाषा और ऐसी भाषा जिसमें तमाम धार्मिक और कानूनी मजमून लिखे जाते थे। दूसरी तरफ फारसी जल्द ही रोजमर्रा के प्रशासनिक मामलों और गैर-धार्मिक साहित्य में इस्तेमाल होने वाली भाषा बन गई। फारसी और अरबी के बीच खुलकर आदान-प्रदान हुआ जिसने दोनों भाषाओं को एक विशाल और समृद्ध शब्दावली बनाने में मदद की। ज्यादातर शिक्षित लोग द्विभाषी थे। 11वीं सदी तक फारसी की एक शानदार साहित्यिक परंपरा वजूद में आ गई जिसने निजामी और सादी जैसे महान कवि दिए।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि खिलाफत की संकल्पना प्राथमिकत: धार्मिक थी। अब्बासी खलीफे एक भूखंड पर राज करने वाले निरंकुश राजा थे। लेकिन वे खुद को मुसलिम समुदाय का नेता भी मानते थे। उनकी शक्ति वास्तव में उनके सैन्य बल में निहित थी लेकिन वे उसे धार्मिक रूप से वैधता प्रदान करते थे। यह महज कोई सैद्धांतिक सवाल नहीं था। इसकी जड़ें उत्तराधिकार के मुद्दे पर हो रहे वास्तविक संघर्ष में थीं। पैगंबर मोहम्मद के निधन के बाद खिलाफत के इतिहास के हरेक चरण में उत्तराधिकार को लेकर विवाद रहा था। विवाद ने इसलाम में धार्मिक पंथों को जन्म दिया और हरेक पंथ खिलाफत के किसी न किसी खास दावेदार के इर्द-गिर्द घूमता था। इस तरह धार्मिक बहस-मुबाहिसे उत्तराधिकार के सवाल के साथ गुथे हुए थे। इससे हमें यह समझने में मदद मिलती है कि अब्बासी अपनी धार्मिक भूमिका को लेकर आखिर इतने आग्रही क्यों थे।

शिया अब्बासियों के सर्वाधिक दृढ़ विरोधी थे। फिर भी वे खिलाफत को कोई ज्यादा चुनौती नहीं दे सके क्योंकि वे ढीले-ढाले समूह थे। उनको ज्यादा राजनीतिक या सैनिक समर्थन हासिल नहीं था (ईरान में शियावाद का उत्थान बहुत बाद की घटना है)। अब्बासियों ने उम्मावियों को सत्ता से हटाने के लिए अलवियों के समर्थन का इस्तेमाल

किया। लेकिन जैसे ही वे सत्ता में आए, उन्होंने अलवियों को हाशिए पर डाल दिया। अलवी इस तथ्य से अवगत थे कि वे साम्राज्य पर नियंत्रण करने की स्थिति में नहीं हैं। 680 में कर्बला की पराजय के बाद शियाओं ने करीब दो सौ साल तक खिलाफत के खिलाफ कोई संगठित आंदोलन नहीं छेड़ा। उन्होंने चुपचाप खलीफों का राजनीतिक शासन स्वीकार कर लिया, लेकिन उनका धार्मिक नेतृत्व मानने से इनकार कर दिया। उनके लिए राजनीतिक नेतृत्व अली और हुसैन के परिवार के पास होना चाहिए था। हुसैन के वंशज शिया समुदाय के धार्मिक नेता या *इमाम* माने जाते थे। *इमाम* खुद राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेते थे।

कर्बला की जंग में हुसैन के मारे जाने के बाद उनका बेटा जैन अल-आबिदीन *इमाम* घोषित हुए। जब 714 में जैन अल-आबिदीन का निधन हुआ तो उनके बेटों, मोहम्मद अल-बाकिर और जैद के बीच विवाद हुआ। शियाओं का एक समूह अल-बाकिर को *इमाम* मानता था जबकि एक छोटा सा समूह जैद का समर्थन करता था। जैद के अनुयायी शियाओं के एक स्पष्ट उपपंथ जैदी बने। अल-बाकिर के बाद *इमाम* बने जाफर अल-सादिक के निधन पर एक दूसरा विवाद हुआ। कुछ शिया अल-सादिक के बेटों में से एक मूसा अल-काजिम को *इमाम* मानते थे। लेकिन कुछ शिया ऐसे भी थे जिनका दावा था कि अल-काजिम के भाई इस्माइल (जिनका निधन जाफर अल-सादिक से पहले हो चुका था) न्यायोचित *इमाम* थे। उनकी मान्यता थी कि दुनिया के अंत होने के समय इस्माइल फिर आएंगे। इस्माइल के मानने वालों को इस्माइली शिया कहा गया। इस्माइली एक बेहद शक्तिशाली उपपंथ के रूप में विकसित हुए और दसवीं तथा 11वीं सदी में इस्माइली झुकाव वाले फातिमी वंश ने मिस्र और ट्यूनिशिया पर शासन किया। फातिमियों ने अब्बासी खिलाफत के राजनीतिक और धार्मिक प्राधिकारों को चुनौती देकर खलीफा की उपाधि ग्रहण की।

शियाओं का एक दूसरा हिस्सा मूसा अल-काजिम और उनके वंशजों के प्रति वफादार था। नौवीं सदी के अंत तक उत्तराधिकार का सिलसिला अल-काजिम के परिवार में चलता रहा। इस शृंखला में मोहम्मद अल-मुंतजर आखिरी (12वें) इमाम थे। यह हिस्सा अली से लेकर अल-मुंतजर तक कुल मिलाकर 12 इमामों को मानता है। इसलिए उन्हें द्वादशी शिया (Twelever Shiyes) कहा जाता है। उनकी मान्यता थी कि मुंतजर के बाद के *इमाम* गुप्त *इमाम* हैं, अर्थात वे दुनिया के सामने जाहिर नहीं हैं लेकिन दुनिया के खात्मा के वक्त सामने आएंगे।

शुरुआती अब्बासी काल में शिया और उनके उपपंथ (द्वादशी, इसलामी और जैदी) के सदस्यों की संख्या बेहद कम थी। मुसलमानों की बहुसंख्या ने अब्बासियों को खलीफा और *इमाम* के रूप में स्वीकार कर लिया था। यहां यह इंगित करना जरूरी है कि नौवीं सदी तक अब्बासी साम्राज्य राजनीतिक दृष्टिकोण से बुनियादी रूप से एक पश्चिम एशियाई

स्वरूप ग्रहण कर चुका था। साम्राज्य इस कदर बेढब बड़ा हो चुका था कि इराक और ईरान से दूर तक इलाकों पर प्रत्यक्ष रूप से शासन करना मुश्किल हो गया था। पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र धीरे-धीरे अब्बासी नियंत्रण से निकल गया। पहले स्पेन में, फिर मगरिब और आखिर में मिस्र में एक स्वतंत्र अरब राजवंश स्थापित हुए। अब्बासियों के सत्ता में आने के तुरंत बाद उम्मावी परिवार के एक सदस्य ने स्पेन में एक स्वतंत्र अरब राज्य कायम करने में सफलता पाई थी। उम्मावी वंश ने 756 से लेकर 11वीं सदी तक स्पेन पर राज किया। उनके तुरंत बाद एक अरब वंश (इदरीसिया) ने 789 में मोरक्को पर अपना शासन कायम किया। ट्यूनिशिया हारून अल-रसीद के शासनकाल में खिलाफत के हाथों से निकल गया। अगलाबी वंश ने एक सदी तक उस पर राज किया। फातिमियों ने 909 में अगलाबियों को सत्ता से बाहर कर दिया। फातिमियों ने पहले ट्यूनिशिया को अपने कब्जे में लिया। फिर उन्होंने मिस्र को जीत लिया। उन्होंने मिस्र पर 12वीं सदी तक शासन किया। इन वंशों में से सिर्फ फातिमी और उम्मावी ने खलीफा (स्पेन के उम्मावियों ने अर्से बाद 10वीं सदी में जाकर खुद को खलीफा घोषित किया।) होने का दावा किया। वैसे सामान्यत: अब्बासियों को धार्मिक नेता के रूप में स्वीकार किया गया।

खिलाफत के साथ जुड़े धार्मिक महत्व के मद्देनजर अब्बासी यह जताने के लिए आतुर थे कि उनका राज्य इसलामी आदर्शों पर आधारित है। वे कम से कम सिद्धांतत: तो कुरान में स्थापित समादेशों (injunction) से निर्दिष्ट होते थे। कुरान ने इसलामी राज्य के बुनियादी उसूलों को रेखांकित किया था। लेकिन उनके अनेक प्रावधानों की उचित ढंग से व्याख्या और विवेचना होनी थी। जब भी कोई शंका होती, उसके समाधान के लिए यह पता लगाने की कोशिश की जाती कि पैगंबर ने समान स्थिति में किस तरह का कदम उठाया था। शुरुआती खलीफा पैगंबर के सहयोगी भी रहे थे। वे निजी तौर पर जानते थे कि पैगंबर ने किसी खास समस्या से कैसे निबटा था। वे लगातार *सुन्नत* या पैगंबर के वचनों और आदतों पर ध्यान देते थे। *सुन्नत* समुदाय के दिशा-निर्देश के लिए सिद्धांतों का सहायक स्रोत बन गया। शुरुआती खलीफों के बाद उन्हें औपचारिक रूप से दर्ज किया जाने लगा था। पैगंबर की *सुन्नत* का संकलन *हदीस* कहलाता है। *हदीस* श्रुति परंपराओं पर आधारित था जो उन लोगों से आईं जिन्होंने वास्तव में पैगंबर के वचन सुने या उनके कार्य देखे थे। *सुन्नत* को वर्गीकृत करने, उसे दर्ज करने और साथ ही उसके सत्यापन के लिए सुव्यवस्थित प्रयास किए गए। श्रुति प्रेषण की शृंखला की कड़ाई से जांच की गई और गवाहों/प्रेषकों की विश्वसनीयता का एहतियात से आकलन किया गया। *हदीस* का अध्ययन और संकलन धर्म विज्ञान की एक अलग विधा के रूप में विकसित हुआ जिसकी अपनी एक प्रणाली है।

उम्मा का क्रियाकलाप *सुन्नत* (और सर्वोपरि कुरान) के मुताबिक होना आवश्यक था और अब्बासियों ने खुद को *सुन्नत* पर आधारित सही व्यवहार को बुलंद करने वाले

के रूप में पेश किया। बहुसंख्यक को स्वीकार्य सुन्नत (इस बात के लिए असहमति जताने की भरपूर गुंजाइश थी कि कोई खास *हदीस* सही है या नहीं, इसलिए सहमति की जरूरत थी) के अनुरूप चलने वाले आम तौर पर सुन्नी कहलाए। ऐसा प्रतीत होता है कि शुरू में यह शब्द उन तमाम लोगों के लिए था जो बहुमत द्वारा अनुमोदित और अब्बासियों द्वारा पुष्ट सुन्नत स्वीकार करते थे। धार्मिक मामलों में अब्बासियों का प्राधिकार स्वीकार करने से शियाओं के इनक़ार के चलते उन्हें सुन्नियों के दायरे से बाहर माना गया। अंतत: सुन्नीवाद मुसलमानों के बहुसंख्यक को शियाओं से अलग दिखाने के लिए एक शब्दावली बन गया। एक अत्यंत सीमित मायने में यह 'उन लोगों को इंगित करता है जो शिया नहीं हैं।' हाजसन ने टिप्पणी दी है कि जब *सुन्नी* शब्द का इस्तेमाल शियाओं और सुन्नियों के बीच फर्क करने के लिए किया जाता है तो उसमें त्रुटि का एक तत्व रह जाता है क्योंकि यह सोचना गलत होगा कि शिया *सुन्नत* पर अमल नहीं करते। बात सिर्फ इतनी है कि परंपराओं की उनकी शृंखला अलग है। उनमें से कुछ मुसलमानों के बहुसंख्यक की स्वीकृत *सुन्नत* से भिन्न हैं।

हदीस के दो प्रमुख संकलन नौवीं सदी के दौरान किए गए। ये दो महान इसलामी धर्म वैज्ञानिक अल-बुखारी और मुसलिम के *हदीस* संकलन हैं। बुखारी और मुसलिम ने उस समय उपलब्ध तमाम *हदीसों* की गहराई से जांच-पड़ताल की और अपना बृहद सार-संग्रह तैयार किया। लगभग साथ-साथ विधिशास्त्र के अलग-अलग वाद वजूद में आ रहे थे जो इसलामी कानूनों *(शरियत)* की अलग-अलग तरह से (कानून की बुनियाद कुरान और *हदीस* थे) व्याख्या कर रहे थे। अब्बासिया खिलाफत के शुरुआती दौर में इसलामी कानून के चार प्रमुख मत विकसित हुए। आज भी ये चार सुन्नी श़रीयत परंपराएं हैं। ये चार व्याख्याएं अबू हनीफा (हनफी), मालिक (मालिकी), अल शाफी (शाफी) और इब्न हनबल (हनबली) हैं। शियाओं के विधिशास्त्र के अपने मत हैं। इन सबने इसलामी राज्य की जटिल कानूनी प्रणाली की नींव डाली।

नौवीं सदी के अंत तक अब्बासी ताकत ढलने लगी। स्पेन और मगरिब पहले ही साम्राज्य से टूट चुके थे। मिस्र पर से भी नियंत्रण कमजोर पड़ने लगा था। पूर्व में प्रांतीय गवर्नर अर्ध स्वतंत्र ही रहे थे। अंतत: उन्होंने अपना वंशागत शासन कायम कर लिया। खुरासान और अब्बासियों के मध्य एशियाई क्षेत्र पर समानी वंश (819-1005) का शासन हुआ। उनकी राजधानी बुखारा थी। समानी खुरासान में अब्बासियों के गवर्नर थे। बगदाद में अब्बासियों को उनके सैनिक कमांडारों में से एक के परिवार, बुईद ने वास्तविक सत्ता से वंचित कर दिया। बुईद (जो शिया थे) दसवीं सदी के मध्य के बाद अब्बासी राज्य के वास्तविक शासक बन बैठे। 11वीं सदी तक मध्य एशिया के खानाबदोशों, तुर्कों, ने अब्बासी साम्राज्य पर कब्जा जमा लिया। बाद में मंगोलों ने तुर्कों की जगह ले ली। मंगोलों ने 1258 में बगदाद पर कब्जा कर लिया और उसी के साथ अब्बासी शासन का औपचारिक रूप से खात्मा हो गया।

अध्याय बारह

पूर्व मध्यकालीन पश्चिम एशिया

I

दसवीं सदी की शुरुआत में एक एकीकृत अरब साम्राज्य की जगह अनेक स्वतंत्र इसलामी राज्यों ने ले ली थी। उनमें से कुछ का अब्बासी खिलाफत के साथ महज नाम का नाता था जबकि मिस्र, मगरिब और स्पेन के राज्य उसे औपचरिक रूप से मानते तक नहीं थे। एशिया में अब्बासी ताकत दक्षिण इराक और पश्चिमी ईरान के कुछ हिस्सों तक तेजी से सीमित होती जा रही थी। ईरान, मध्य एशिया, सीरिया, यमन और उत्तरी इराक में स्वतंत्र या अर्धस्वतंत्र रियासतें उभर कर आ गई थीं। उनमें से अनेक रियासतों पर वंशों का राज था जिसकी स्थापना प्रांतीय गवर्नरों (मसलन उत्तर-पूर्वी ईरान में समानी) या सैनिक कमांडर ने की थी। सिद्धांतत: एशिया के ज्यादातर उत्तरवर्ती राज्य अब्बासी खिलाफत के हिस्सा थे, लेकिन यथार्थ में उनका एक स्वतंत्र राजनीतिक वजूद था।

अब्बासी सत्ता का पतन नौवीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ। अगले एक सौ साल के लगभग, अर्थात नौवीं सदी के अंत से लेकर दसवीं सदी के अंत तक, अब्बासी राज्य के मुख्य क्षेत्रों (इराक और ईरान) पर ईरानी मूल के वंशों का नियंत्रण रहा। इनमें से दो सर्वप्रमुख वंश समानी और बुईद थे। समानियों की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। समानियों ने खुरासान और ट्रांसोक्सियाना (आक्सस और सिर नदियों के बीच स्थित मध्य एशियाई क्षेत्र जिसे अरब मावरा अल-नहर कहते थे) के अलावा उस क्षेत्र के एक हिस्से पर शासन किया जिसे आज हम अफगानिस्तान कहते हैं। बुईद (या बुवैहिद) की उत्पत्ति उत्तरी ईरान में दैलाम के इलाके में हुई। दैलाम कैस्पियन सागर के दक्षिण-पश्चिम तट से लगे एक छोटे पर्वतीय इलाके का नाम है। बुईदों ने ईरान के ज्यादातर इलाकों पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया और अंतत: इराक को अपने नियंत्रण में ले लिया। उन्होंने बगदाद से शासन किया जहां खलीफा को उसकी तमाम शक्तियों से वंचित कर दिया गया।

इस वंश का नाम बुएह पर रखा गया जो अब्बासी सेना में एक अदना सैनिक था। उसके बेटे सैनिक कमांडर बने और मध्य ईरान के फार्स क्षेत्र पर सत्ता हथिया ली। नौवीं सदी के शुरुआती दशकों में इस्फहान, किरमान और शीराज के शहरों में बुईद मजबूती से जमे हुए थे। 945 में बुईदों ने बगदाद पर कब्जा कर लिया और अब्बासी राज्य के

वास्तविक शासक बन बैठे। बुईद के एक पोते ने करीब 977 में इराक और ईरान के विभिन्न हिस्सों में बिखरे बुईद राज्यों (बुईद परिवार के सदस्य स्वायत्त शासकों के रूप में विभिन्न प्रांतों पर शासन कर रहे थे) को एकीकृत किया। खलीफा ने उसे अजुद-उद-दौला की उपाधि दी। अजुद-उद-दौला को आम तौर पर बुईद वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक माना जाता है। बुईद शियाओं के प्रति सहानुभूति रखने वाले थे। फिर भी उन्होंने अब्बासियों को दरकिनार नहीं किया। उन्होंने खलीफा की उपाधि भी नहीं अपनाई। उन्होंने अब्बासी खलीफों पर मजबूत गिरफ्त बनाए रखी और उनका इस्तेमाल अपनी सत्ता को वैधता प्रदान करने में किया। बुईद शासकों के दौर में शिया और सुन्नी मतों का सहअस्तित्व रहा।

अब खलीफों का नाम मात्र का शासन था। उन्हें कुछ प्रतीकात्मक धार्मिक समारोह (सिर्फ बगदाद में) करने की इजाजत थी। लेकिन नागरिक प्रशासन या सैनिक मामलों में उनका कोई दखल नहीं था। बुईदों ने सेना के समर्थन से शासन किया। शुरू में उन्होंने अपने गृहक्षेत्र दैलाम से नियुक्त सैनिकों से मुख्य समर्थन हासिल किया। बाद में उन्होंने तुर्क सैनिकों पर ज्यादा भरोसा किया। बुईदों ने सासानी राजाओं की शाही उपाधि *शहंशाह* (राजाओं का राजा) अपनाई। उन्होंने यहां तक दावा किया कि वे सासानियों के वंशज हैं।

बुईद राज्य की एक विशेषता *इकता* प्रणाली का विकास था। *इकता* राज्य की ओर से आवंटित भूराजस्व थे। इस प्रणाली की उत्पत्ति अरबों के शुरुआती विजय अभियानों में हुई। बैजंतियाई या सासानी राज्य की मिल्कियत (शाही जमीन) जब्त की गई और उसका कुछ हिस्सा शक्तिशाली सैनिक कमांडरों के बीच वितरित किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस चरण में किए गए निर्धारणों में कुछ तरह के मालिकाना हक शामिल थे (जो शायद पूरी तरह से परिभाषित नहीं होंगे)। एक अन्य किस्म का हस्तांतरण किसी खास क्षेत्र की राजस्व उगाही के अधिकार का आवंटन था। इस तरह का हस्तांतरण आठवीं और नौवीं सदी के दौरान*इकता* में विकसित हुआ। अल्बर्ट हुरानी ने टिप्पणी की है, 'शायद ही किसी शासक की मंशा कर को स्थायी रूप से हस्तांतरित करने या उनको जमीन पर स्थायी कब्जा सुपुर्द करने की रही होगी जिन्हें *इकता* दिया गया था।'

इकता का बुनियादी अर्थ *उपज में राज्य के हिस्से में अधिकार* था। सैद्धांतिक रूप से कहा जाए तो यह आवंटन पाने वाला*मुकता* (या *इक्तादार*) को कोई मालिकाना हक नहीं सौंपता था। *मुकता* को सिर्फ राजस्व हासिल करने का अधिकार था जो राज्य को आवंटित क्षेत्र की ओर से बकाया थे। आवंटनों की प्रकृति में खासा अंतर था। बुईदों के शासनकाल तक *इकता* की चार किस्में विकसित हो चुकी थीं : (1) एक बड़ा भूभाग शाही खानदान के सदस्यों या शक्तिशाली अधिकारियों को *इकता* के बतौर सौंपा जाता जो उस पर कमोबेश स्वायत्तता से राज करते; (2) *इकता* एक बड़ी सी प्रशासनिक इकाई हो सकती थी जिसमें*मुकता* को प्रशासन और राजस्व वसूली और कभी-कभी कुछ सैनिक कार्य भार भी सौंपे जाते; (3) *इकता* जो तनख्वाह के बदले दिए जाते; (4) *इकता* जिसके

साथ शर्त होती कि राजस्व वसूली से एक खास संख्या में सैनिकों का संपोषण करना होगा। *इकता* की अंतिम दो किस्मों में *मुकता* का अपनी जमीन से निजी संपर्क रखना जरूरी नहीं था। अकसर राज्य अलग से कुछ अधिकारी बहाल करता जो राजस्व वसूल कर *मुकता* को दे देता।*इकता* की तमाम किस्मों में एक समान बात यह थी कि जब भी मौका मिला, *मुकता* ने हमेशा आवंटित क्षेत्र पर वंशागत अधिकार कायम करना चाहा। इससे एक तरफ राज्य से और दूसरी तरफ स्थानीय भूस्वामी तबके से उनका टकराव हुआ।

दसवीं सदी की शुरुआत तक वेतन अदायगी के लिए*इकता* के आवंटन का व्यापक परिचलन हो गया। बुईदों को यह व्यवस्था विरासत में मिली। उन्होंने उसका विस्तार किया। अधिकारियों को वेतन ज्यादातर*इकता* की शक्ल में अदा किया जाता था। बुईद*मुकताओं* से सामान्यत: यह अपेक्षा नहीं की जाती थी कि वे अपने*इकता* से प्राप्त राजस्व से सैनिकों की देखरेख करेंगे क्योंकि सैनिकों को वेतन केंद्रीय स्तर पर दिया जाता था। बहरहाल सभी अधिकारी *इकता* की शक्ल में वेतन नहीं पाते थे। बुईद राज्य ने अपनी मिल्कियत वाली जमीन का एक हिस्सा अपने पास रखा और अपनी तमाम संपत्तियों को हस्तांतरित नहीं किया। फिर भी राज्य की ओर से वसूला गया अधिशेष उससे कहीं ज्यादा था जो खलीफों के वक्त में वसूला जाता था। इस विशाल अधिशेष ने एक शासक वर्ग को बने रहने का मौका दिया जिसमें सैन्य नेताओं ने महत्वपूर्ण हैसियत बना ली थी। बुईद सैन्य कुलीन वर्ग जल्द ही ग्रामीण अंचलों में भी वर्चस्व स्थापित करने लगा। यहां यह जोर देना आवश्यक है कि यह कुलीन वर्ग पूरी तरह बुईद शासकों के अधीन बना रहा।

बुईद शासकों का राज्य मुख्यत: इराक और ईरान में सीमित था। पूर्व में समानियों ने ट्रांसोक्सियाना और अफगानिस्तान के कुछ हिस्सों में उपस्थिति बनाए रखी थी। पश्चिम में बुईदों को मिस्र के फातिमियों से टकराना पड़ता था। जैसा कि हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं फातिमी सबसे पहले दसवीं सदी की शुरुआत में इफ्रीकिया (ट्यूनिशिया) में सत्ता में आए। वहां आठवीं सदी के मध्य से अगलाबियों का शासन था। 909 में उबैदुल्ला अल-महदी नाम के एक आदमी ने अगलाबियों को सत्ता से हटा कर खुद शासन संभाल ली। उबैदुल्ला का दावा था कि वह मोहम्मद की बेटी और अली की पत्नी फातिमा (अल-महदी की वंशावली अस्पष्ट है) का वंशज है। अल-महदी ने खुद को इस्माइली शियाओं का *इमाम* या नेता घोषित कर दिया। उसने और उसके उत्तराधिकारियों ने खलीफा की उपाधि ली और इस तरह अब्बासियों के प्राधिकार को सीधी चुनौती दी। अल-महदी के वंश को फातिमी खिलाफत कहा जाता है। फातिमियों ने इफ्रीकिया के अपने आधार से उत्तर अफ्रीका के दूसरे इलाकों में विस्तार करना शुरू किया। उन्हें शुरू में पश्चिमी भूमध्य-सागरीय क्षेत्र में असफलता का मुंह देखना पड़ा। वहां मोरक्को के इद्रीसिया शासकों ने (वे भी अली के वंशज थे) और स्पेन के उम्मावी शासकों ने आगे बढ़ने से रोक दिया। बहरहाल फातिमियों ने मिस्र में अब्बासियों/बुईदों की कमजोर होती सत्ता का फायदा

उठाया। फातिमी खलीफा अल-मुईज (953-75) ने करीब 969 में मिस्र को अधीन कर लिया। पश्चिम में अल-मुईज का विजय अभियान मोरक्को तक फैला था। इद्रीसियों को सत्ता से बाहर कर दिया गया और अगले कुछ दशकों तक उत्तर अफ्रीका का पूरा क्षेत्र (मिस्र और मगरिब) फातिमी शासन के तहत एकीकृत रहा। फातिमी शासक अरब और सीरिया-फलस्तीन के भी कुछ हिस्सों पर कब्जा करने में सफल रहे। इस तरह वे पश्चिम एशिया में बुईदों के लिए एक गंभीर खतरा बन गए। 970-71 में मक्का और मदीना पर उनका कब्जा हो गया। इसलाम के इन दो मुकद्दसतरीन जगहों पर 11वीं सदी के अंत तक फातिमियों का कब्जा बना रहा। फातिमियों ने एक केंद्रीभूत राज्य की स्थापना की। जिसका राजनीतिक ढांचा अब्बासिया खलीफा से मिलता-जुलता था।

अल-मुईज ने 973 में राजकीय कामकाज का केंद्र मिस्र को बना दिया। उसने फुस्तात के बाह्यांचल में अपनी नई राजधानी बसाई। नई राजधानी का नाम अल-काहिरा (मंगल ग्रह की उठान के समय स्थापित शहर) दिया गया। कुछ ही दशकों में काहिरा एक प्रमुख शहरी केंद्र बन गया। 11वीं सदी के पूर्वार्द्ध में उसकी आबादी करीब पांच लाख की थी। एक बड़े महानगर के रूप में बगदाद के साथ उसका टक्कर था। शहर में अनेक शानदार इमारतें थीं जिनमें अल-मुईज के शासनकाल में निर्मित भव्य मसजिद, मसजिद अल-अजहर शामिल हैं। काहिरा शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र भी बन गया। वहां अंतर्राष्ट्रीय व्यापार खूब फल-फूल रहा था।

करीब 1000 तक हिंद महासागर और भूमध्यसागर के बीच होने वाला ज्यादातर सामुद्रिक व्यापार लाल सागर से होकर जाने लगा। सामुद्रिक व्यापार फारस की खाड़ी से हटकर लाल सागर से होकर होने लगा था। इसका एक कारण यह था कि फारस की खाड़ी का प्रमुख बंदरगाह सिराफ तबाह हो गया था। परवर्ती अब्बासी शासकों के समय के राजनीतिक उथल-पुथल ने भी फारस की खाड़ी के व्यापार मार्ग के पतन में भूमिका निभाई। फातिमियों ने इसका फायदा उठाया। उन्होंने सक्रिय रूप से लाल सागर के व्यापार मार्ग को बढ़ावा दिया। यहां यह जिक्र किया जा सकता है कि प्राचीन समय से ही एक नहर थी जो लाल सागर को नील नदी से उस बिंदु पर मिलाती थी जहां से डेल्टा शुरू होता है। फातिमियों ने इस नहर की मरम्मत कराई और उसमें सुधार किया ताकि लाल सागर और काहिरा के बीच मालों का आवागमन आसानी से हो सके। काहिरा उपभोक्ता केंद्र होने के साथ-साथ दस्तकारी (यह अपने रेशमी कपड़ों के लिए मशहूर था) का भी केंद्र था। कुछ वस्तुएं राजधानी में बेची जाती थीं जबकि कुछ चीजें नहर के रास्ते लाल सागर भेजी जाती थीं। अन्यथा वस्तुएं भूमध्यसागर से लाई जाती थीं या वहां ले जाई जाती थीं।

फातिमियों के शासनकाल में अफ्रीका की समूची भूमध्यसागरीय तटरेखा के एकीकरण से लंबी दूरी के सामुद्रिक व्यापार को बढ़ावा मिला। मगरिब और इतालवी

शहरों (वेनिस और जिनोआ) के अलावा यूरोप के विभिन्न हिस्सों के साथ मिस्र का अच्छा व्यापार था। बैजंतियाई और फ्रैंकिश साम्राज्यों के साथ फातिमियों के खासे अच्छे संबंध थे। मजे की बात है कि फातिमी नौकरशाही के अनेक शीर्ष अधिकारी ईसाई थे। उनमें से कुछ तो वजीर के पद तक पहुंचे। पिछले अध्याय में हम फुस्तात (प्राचीन काहिरा) के यहूदी समुदाय के गेनीजा दस्तावेजों की चर्चा कर चुके हैं। इन दस्तावेजों से हिंद महासागर और पश्चिम एशिया के बीच अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में काहिरा के यहूदियों की प्रमुख भूमिका की जानकारी मिलती है। भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया में जिन वस्तुओं का निर्यात किया जाता था उनमें रेशमी कपड़े, शाल, कागज, चीनी, बर्तन, शीशे, साबुन और किशमिश शामिल थे। बदले में हिंद महासागर से सुपारी, भारतीय ताले, कांसे के बर्तन, बादाम, सुगंधित द्रव्य, चीनी रेशम और पोर्सिलेन का आयात किया जाता था।

फातिमी न सिर्फ पश्चिम एशिया में बुईदों की राजनीतिक और सैनिक शक्ति के लिए खतरा बन गए थे, बल्कि उन्होंने अब्बासी खलीफा के धार्मिक प्राधिकार को भी नुकसान पहुंचाया था। यह ज्यादा मायने नहीं रखता था कि बुईद भी फातिमियों की तरह शिया थे (यह इंगित किया गया है कि बुईद शिया पंथ के प्रति बड़ी दृढ़ता से प्रतिबद्ध नहीं थे)। उससे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह थी कि फातिमियों ने समूची मुसलिम *उम्मा* का धार्मिक नेता होने का दावा किया और वे इसलामी शासन वाले क्षेत्रों के एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना प्राधिकार लागू करने में सफल रहे थे। एक तरफ दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और 11वीं सदी के पूर्वार्द्ध में फातिमियों के उत्थान ने अब्बासियों के पतन को अंजाम दिया तो दूसरी तरफ उसने बुईदों के लिए अपनी स्थिति सुदृढ़ करना मुश्किल कर दिया।

ग्यारहवीं सदी के मध्य तक विभिन्न आंतरिक और बाह्य कारणों से बुईद सत्ता खासी कमजोर हो गई थी। अर्थव्यवस्था मुख्यत: (क) फारस की खाड़ी के व्यापार संकट और (ख) कृषि उपज में गिरावट के कारण समस्याग्रस्त हो गई थी। इतिहासकार इस पर आम तौर से सहमत हैं कि *खिलाफत* की आर्थिक खुशहाली के लिए अनिवार्य दक्षिण इराक की सिंचाई प्रणाली दसवीं सदी के अंत तक अच्छी हालत में नहीं रह गई थी। बुईदी इस क्षेत्र में नहरों के संजाल की देखरेख नहीं कर सके। सिंचाई प्रणाली की देखरेख में लापरवाही से नहरों में गाद जमा हो गया। इससे जल जमाव की समस्या हो गई। बिना बढ़िया तकनीक के इस्तेमाल ने भूमि के अत्यधिक दोहन से संभवत: पर्यावरण को बिगाड़ दिया। जमीन के बड़े हिस्सों पर दलदल हो गया। 11वीं सदी के शुरू तक कृषि योग्य भूमि में निस्संदेह कमी आ गई थी। इसके जवाब में बुईदियों ने कराधान का स्तर ऊपर कर दिया। लेकिन इससे संकट और भी गहरा गया। इस मोड़ में चांदी के सिक्कों में मिलावट की गई (चांदी का अंश घटा दिया गया)। इससे व्यापार में और भी रुकावट आई।

हालांकि बुईदी राज्य को एक एकल इकाई माना जाता था, वास्तव में साम्राज्य के

विभिन्न हिस्सों पर शाही परिवार के विभिन्न सदस्य अर्ध-स्वायत्त इकाइयों के रूप में अलग-अलग शासन करते थे। अजुद-उद-दौला के समय में एकीकृत बुईदी क्षेत्र उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में बुईदी परिवार की विभिन्न शाखाओं के बीच धीरे-धीरे बंट गए। स्वभाविकत: इसने केंद्रीय प्राधिकार को कमजोर कर दिया और बुईदियों के पतन की रफ्तार तेज कर दी। वास्तव में 11वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बुईदी सत्ता इस कदर कमजोर हो चुकी थी कि अब्बासी खलीफा अल-काएम (1031-75) थोड़े समय के लिए बगदाद में अपना प्राधिकार बहाल करने में सक्षम रहा था। बहरहाल, बुईदियों के पतन का सर्वप्रमुख कारण तुर्कों का उदय था।

नौवीं सदी के उत्तरार्द्ध से दो अंतर संबंधित घटनाएं मुसलिम शासन वाले क्षेत्र में हो रही थीं। पहली घटना थी गुलाम सैनिकों की सशस्त्र टुकड़ियों का गठन जबकि दूसरी घटना थी मध्य एशिया से पश्चिम एशिया और उत्तर अफ्रीका में तुर्कों का घुसना। बड़ी हद तक दोनों घटनाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं क्योंकि गुलाम सैनिकों की एक खासी संख्या तुर्क मूल की थी। अब्बासी खलीफाओं, उनके प्रांतीय गवर्नरों और स्थानीय शासक वंशों ने शुरू में गुलाम सैनिकों को अपने निजी अंगरक्षकों के रूप में बहाल किया था। गुलाम अंगरक्षक उच्च प्रशिक्षण-प्राप्त थे। उनमें अपने आकाओं के प्रति वफादारी की जबरदस्त भावना थी। दसवीं सदी तक गुलाम सैनिक (वे ममलूक के नाम से जाने जाते थे) पश्चिम एशिया, मिस्र और मगरिब में सेनाओं के अपरिहार्य हिस्सा बन चुके थे। हालांकि सभी को नहीं, लेकिन इसलाम ग्रहण करने पर कुछ ममलूकों को आजादी दे दी गई थी। ममलूक टुकड़ियां आम तौर पर उन लोगों की कमान में दी जाती थीं जिन्हें गुलामी से आजाद किया गया था।

विशेष शाही रेजिमेंट (अर्थात अत्यंत प्रशिक्षित रेजिमेंट) और निजी अंगरक्षकों के केंद्रक गुलाम सैनिकों से बने होते थे। दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई हजार तुर्क सैन्य गुलाम बुईदी और समानी सेनाओं में सेवारत थे। उसके अलावा प्रांतीय गवर्नर और उच्चाधिकारी अपनी निजी सेनाओं में भर्ती के लिए गुलाम सैनिकों पर भरोसा करते थे। ममलूक क्षेत्र की राजनीति में एक नए घटक के रूप में उभरे। गुलाम सैनिकों के कमांडरों ने राजनीतिक और सैनिक मामलों में लगातार दखलअंदाजी कर अपनी ताकत और हैसियत जताने की कोशिश की । ममलूक दस्ते अकसर एक अस्थिरकारी कारक थे क्योंकि उनका इस्तेमाल गुटीय टकरावों और सत्ता हथियाने में किया जा सकता था। पैट्रिशिया क्रोन ने गुलाम सैनिकों की परिघटना पर अपने अध्ययन (*स्लेव्ज आन हार्सेज*) में अब्बासियों के पतन को ममलूकों पर उनकी बढ़ती निर्भरता से जोड़ा है।

पूर्व मध्यकालिक पश्चिम एशिया में गुलामी का एक विशिष्ट लक्षण सेना में बड़े पैमाने पर गुलामों की भर्ती थी। अनेक ममलूकों के पास प्रशासनिक क्षमता थी और उन्हें असैनिक पदों पर भी बहाल किया गया था। प्राचीन यूनान और रोम के विपरीत गुलामों

को व्यापक रूप से उत्पादन में नहीं लगाया गया था। संभव है कि कुछ गुलाम उत्खनन और दस्तकारी में लगे हों। बहरहाल हम निश्चित हो सकते हैं कि कृषिगत उत्पादन गुलाम श्रम पर निर्भर *नहीं* था। इसका यह मतलब नहीं है कि कृषि गुलाम थे ही नहीं। हमारे पास साक्ष्य हैं कि इराक में गन्ने के बागानों में गुलाम लगाए गए थे। 868 में दक्षिण इराक के जान्ज में गुलामों का एक बड़ा विद्रोह हुआ। जान्ज में चीनी उत्पादन के लिए गन्ने के अनेक बागान थे जो गुलाम श्रम पर निर्भर थे। वहां मुख्यत: अश्वेत गुलाम थे। जान्ज का विद्रोह अश्वेत गुलामों ने किया था और यह 883 तक चला। लेकिन आम तौर पर गुलाम श्रम कृषि में व्यापक रूप में इस्तेमाल नहीं होता था। गुलामों को सैनिक के रूप में काम करने के लिए बाध्य करने के साथ घरेलू काम में भी लगाया जाता था। गुलामों के संबंध में यह नहीं समझा जाना चाहिए कि उनके अंदर विभेदीकरण नहीं था। एक तरफ घोड़ों पर बैठकर जंग करने वाले दक्ष और प्रशिक्षित योद्धा थे तो दूसरी तरफ ऐसे अनेक गुलाम थे जो सिर्फ भृत्योचित श्रम करते थे।

आक्सस नदी से आगे अब्बासिया खिलाफत के विस्तार ने उसे मध्य एशियाई खानाबदोशों के चरागाहों के छोर पर ला दिया था। यह वह इलाका था जहां तुर्की भाषी कबीले बसते थे। तुर्क कबीले मुख्यत: खानाबदोश पशुचारी थे। नौवीं सदी और उसके बाद से हम ओगुज, किपचक, कारलुग और किरजीज जैसे अनेक तुर्क कबायली परिसंघों का जिक्र पाने लगते हैं। एक समय काल में इन परिसंघों के छोटे दल ट्रांसोक्सियाना और पूर्वोत्तर ईरान में प्रवेश करते रहे। उनमें से कुछ दल (आम तौर पर ये कुछ परिवारों पर आधारित होते थे) चरागाहों की तलाश में आए थे और खानाबदोशों की तरह रहते थे। लेकिन कुछ दलों ने बसना भी शुरू किया। वे स्थानीय आबादी के साथ घुल-मिल गए। तुर्क ग्रामीण और शहरी दोनों इलाकों में पाए जाते थे। यह समझना गलत होगा कि तमाम तुर्क सैनिक गुलाम थे। अनेक मुक्त तुर्क भाड़े के सैनिकों के रूप में काम करते थे। फिर भी यह एक सच्चाई है कि ज्यादातर गुलामों को आक्सस के पार अपेक्षाकृत पिछड़े मध्य एशियाई क्षेत्रों से पकड़ा गया था। अब्बासियों और उनके उत्तराधिकारी राज्यों के विजय अभियानों से बड़ी व्यापक उथल-पुथल हुई थी जिसके कारण तुर्क खानाबदोश गुलामों के सौदागारों के आसान चारा बन गए। बराबर होने वाले युद्धों ने भी अनेक कबीलों की एकमुश्त गुलामी को अंजाम दिया।

मध्य एशिया के तुर्क खानाबदोशों और पश्चिम एशिया के स्थिर समाज के बीच की पारस्परिक क्रिया ने मौजूदा तुर्क सामाजिक संरचना के अंदर परिवर्तन की रफ्तार तेज की। खानाबदोश सामाजिक संरचना में कुछ तब्दीलियां चरागाहों पर नियंत्रण को लेकर कबायली परिसंघों के बीच के टकरावों से जुड़ी हैं। कबायली परिसंघों के रूप में कबीलों के संगठन ने नए राजनीतिक ढांचों को जन्म दिया। इसी के साथ एक तुर्क योद्धा कुलीन वर्ग भी अस्तित्व में आया। फिर इसके चलते कबीलों के अंदर सामाजिक विभेदीकरण

आया। स्थानबद्ध बस्तियों पर लगातार किए गए हमलों से मिली गनीमत से कुलीन वर्ग को उपलब्ध अधिशेष में इजाफा हुआ।

गुलामों के फलते-फूलते व्यापार ने भी इस तब्दीली में एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाई। अनेक तुर्क इस व्यापार में खुद भी लगे थे। उन्होंने इससे भारी मुनाफा कमाया। फिर ऐसे तुर्क भी थे जो मुसलिम शासित राज्यों की सेना में भाड़े के सैनिक के रूप में कार्यरत थे। इन सैनिकों ने अपने कबीलों से अन्य लोगों की भर्ती में मदद की। इस तरह पश्चिम एशियाई राज्यों की सेनाओं में तुर्क सैनिकों के ठोस दस्ते बने। अंत में ऐसे तुर्क परिवार या कुल थे जो आबाद इलाकों में जा बसे थे। ये तुर्क ग्रामीण इलाकों में जाकर या तो कृषक बन गए या फिर शहरी इलाकों में पहुंच कर विभिन्न पेशों से जुड़ गए। इस तमाम विकासक्रम ने तुर्क खानाबदोश समाज को रूपांतरित किया।

यह पृष्ठभूमि हमें यह समझने में मदद करती है कि तुर्क किस तरह राज्य-निर्माण की प्रक्रिया में शामिल हुए। ज्यादातर तुर्क कबीलों के इसलाम ग्रहण (और ममलूकों के धर्मांतरण) ने तुर्क राज्य के निर्माण की विचारधारात्मक रूपरेखा दी। तुर्क कबीले घुसे और अंततः पश्चिम एशिया का एक बड़ा हिस्सा जीत लिया। तुर्कों ने इसलाम धर्म ग्रहण करने के साथ ईरानी संस्कृति, या यह कहना बेहतर होगा कि उस संस्कृति जो अरब और ईरानी तत्वों का संश्लेषण थी, से ढेर सारी चीजें ग्रहण कीं। बाद में तुर्कों ने इस ईरानी संस्कृति में अपने कबायली रस्म-रिवाज जोड़े। 10वीं और 11वीं सदी में तुर्कों की बढ़ती मौजूदगी से ट्रांसोक्सियाना, अफगानिस्तान, ईरान, और इराक के एक बड़े हिस्से का सामाजिक और भाषाई चरित्र बदल रहा था।

सी.ई. बोसवर्थ ने इंगित किया है कि शुरुआती अब्बासी खिलाफत की खुशहाली ने एक ऐसी पेशावर नियमित सेना के गठन के उद्देश्य से तुर्की गुलामों के क्रय और प्रशिक्षण के लिए संसाधन उपलब्ध कराई जो खलीफा की वफादार थी। बुईदी शासकों ने तुर्क ममलूकों के सैन्य दस्ते खड़े करने के लिए *इकता* आवंटित करने का रास्ता अपनाया। समानियों ने सैन्य गुलामों की भर्ती को और भी सुव्यवस्थित किया। उनके ही दौर में सेना में पहली बार ममलूकों की भरपूर भर्ती हुई। समानी राज्य मध्य एशिया और ईरान के गुलाम व्यापार का मुख्य केंद्र बन गया। तुर्क खानाबदोश पशुचारियों के गृह प्रदेश से समानी क्षेत्रों की नजदीकी ने उसमें मदद की।

करीब 950 के बाद कुछ एक ममलूक कमांडर समानी राज्य में युद्धनेता के रूप में उभरे। अल्प-तेगिन उनमें से एक था। अल्प-तेगिन एक तुर्क था और ममलूकों के अनेक सैन्य दल उसके अधीन थे। अपनी सेना की मदद से वह अफगानिस्तान के समानी क्षेत्र में वस्तुतः स्वतंत्र हो गया। गजना अल्प-तेगिन का मुख्य गढ़ था। जब 977 में अल्प-तेगिन की मृत्यु हुई, उसका प्रमुख गुलाम कमांडर सिबुक-तेगिन उसका उत्तराधिकारी बना। सिबुक-तेगिन ने गजनवी वंश की स्थापना की जिसने 11वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कुछ

समय के लिए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। यह साम्राज्य पूर्वी ईरान से उत्तर-पश्चिम भारत तक फैला था।

सिबुक-तेगिन तुर्कों के कारलुक कबीले का था। वह मूलत: मध्य एशिया के सिर दरिया के इर्द-गिर्द के इलाके का था। उसे एक कबायली लड़ाई में पकड़ा गया था और गुलाम के रूप में बेच दिया गया था। वह एक गुलाम सैनिक बना और तरक्की करते हुए समानी सेना में कमांडर बना। उसने अल्प-तेगिन के अधीन काम किया। वह 977 में अपने आका का उत्तराधिकारी बना। गजना उसके राज्य की राजधानी थी। दो दशक के अंदर सिबुक-तेगिन ने समानी क्षेत्र के दक्षिणी हिस्से (आक्सस नदी के दक्षिण स्थित इलाकों) पर नियंत्रण स्थापित किया। उसने खुरासान को भी मिला लिया।

सिबुक-तेगिन के निधन के बाद उसका बेटा महमूद (998-1030) गजनवी राज्य का शासक बना। महमूद के शासनकाल में गजनवी राज्य अपने क्षेत्रीय विस्तार की बुलंदी पर पहुंचा। महमूद ने आक्रामक विस्तार नीति अपनाई और ट्रांसोक्सियाना, अफगानिस्तान और ईरान के विभिन्न हिस्सों पर राज कर रहे स्थानीय वंशों को खत्म कर डाला। 999 में समानी शासन पूरी तरह मिटा दिया गया। उसने आरल सागर और मध्य आक्सस के बीच स्थित ख्वाराज्म राज्य जीत लिया। बुईदी मुख्यत: इराक में ही सिमट कर रह गए। पूर्व में महमूद ने उत्तर भारत पर हमले किए और पंजाब के कुछ हिस्सों पर कब्जा कर लिया।

महमूद ने बुईदियों के विरुद्ध संघर्ष में रूढ़िवादी सुन्नी पंथ का परचम बुलंद किया। उसने खुद को ऐसे धर्मयोद्धा के रूप में पेश कर अपने प्राधिकार को वैधता प्रदान करने का प्रयास किया जो बुईदियों के शिया रुझानों के खिलाफ संघर्ष कर रहा था उसने खुद को अब्बासी खलीफों के धार्मिक नेतृत्व का समर्थक घोषित किया। इस तरह उसने अपनी सत्ता बुलंद करने के लिए अब्बासी खलीफों की मंजूरी लेनी चाही। महमूद के समय से हम शासकों और खलीफों के बीच किया जा रहा एक गहरा फर्क देखते हैं। शासकों के पास सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता होती थी जबकि खलीफा को मुसलिम *उम्मत* के धार्मिक अध्यक्ष के रूप में देखा जाता था। शासक को 'सुलतान' की उपाधि देना एक प्रथा बन गई। इसका शाब्दिक अर्थ 'सत्ता रखने वाला' होता है। सुलतान की उपाधि का अब बादशाह को खलीफा और *इमाम* से भिन्न करने के लिए आम तौर पर इस्तेमाल किया जाने लगा।

महमूद का शासन एक नई तरह के राजतांत्रिक राज्य की शुरुआत को रेखांकित करता है। राजतंत्र के प्रति महमूद की अवधारणा के अनुसार अब्बासी खलीफा द्वारा दी गई मान्यता से ही सुलतान को उसका प्राधिकार हासिल होता है। लेकिन यथार्थ में सुलतान की ताकत बल पर टिकी थी। महमूद ने एक निरंकुश तानाशाह की तरह राज किया। उसने राज्य मशीनरी के जोरदार केंद्रीकरण की नीति पर अमल किया। इस नीति की सफलता एक विशाल और अनुशासित सेना पर निर्भर थी। तुर्क ममलूक महमूद की सेना के मुख्य आधार

थे। इस तरह की सेना के लिए महमूद को पर्याप्त संसाधन की जरूरत थी। महमूद के प्रति वफादार शासक आभिजात्य वर्ग की एक छोटी सी जमात के हाथों अधिशेष का एक बहुत बड़ा हिस्सा केंद्रित था। इस जमात में मुख्यत: तुर्क मूल के लोग थे। लेकिन उनमें ईरानी, अरब और कुछ स्थानीय लोग भी शामिल थे।

महमूद ने कराधान का स्तर बढ़ा कर खास कर खुरासान से कर वसूली अधिकतम करने का प्रयास किया। ज्यादातर इतिहासकार इस पर सहमत हैं कि गजनवी शासन आम तौर पर ईरानी किसानों के लिए और खास कर खुरासान के किसानों के लिए बड़ा कष्टकर था। इसने गजनवियों को इस इलाके में अलोकप्रिय बना दिया। महमूद ने अपने खजाना में इजाफा करने के लिए भारत पर लगातार हमले किए। उसने सैनिकों की देखरेख के लिए धनराशि मुहैया करने के मकसद से *इकता* प्रणाली का विस्तार किया। दरअसल महमूद के काल में *इकता* का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल सैनिक उद्देश्यों के लिए होने लगा। *इकता* धारियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे आवंटित भूमि से प्राप्त राजस्व से एक खास संख्या में सैनिकों की देख-रेख करेंगे। महमूद के उत्तराधिकारियों के दौर में इस तरह के *इकता* का प्रचलन और भी बढ़ गया। बोसवर्थ कहते हैं, 'गजनवी शासक एक माध्यम बन गए जिनके मार्फत *इकता* व्यवस्था (बुईदियों से) गोरियों तक पहुंची और दिल्ली सुलतानों तथा उनके उत्तराधिकारियों के तहत उत्तर भारत में मजबूती से स्थापित हो गई।' गजनवी राज्य और उसके प्रति वफादार तुर्क सैन्य कुलीन वर्ग ने ईरानी भूस्वामी वर्ग की आर्थिक और राजनीतिक सत्ता कमजोर कर दी। इसने निरंकुश राजतंत्रवादी राज्य को अपनी स्थिति और मजबूत करने का मौका दिया। यह प्रक्रिया महमूद के बाद इस क्षेत्र की अग्रणी शक्ति बने सलजुकों के दौर में अपनी परिणति तक पहुंची। बहरहाल, गजनवियों और सलजूकों, दोनों के ही नागरिक प्रशासन में नौकरशाही में महत्वपूर्ण पदों पर इरानियों का वर्चस्व जारी रहा।

गजनवी राज्य 1030 में महमूद के निधन के बाद लंबे समय एक एकजुट नहीं रह सका। महमूद के बाद उसका बेटा मसूद उसका उत्तराधिकारी बना। गद्दी पर बैठने के एक दशक के अंदर मसूद ने महमूद का निर्मित साम्राज्य गंवा दिया। 1040 में मसूद को उसे सैनिक कमांडरों ने गद्दी से उतार दिया और उसकी जगह उसके भाई मोहम्मद को तख्त पर बैठाया। उसके बाद से गजनवी एक छोटा और स्थानीय वंश बनकर रह गया जिसका राज गजना और उसके इर्द-गिर्द के इलाके पर था। ट्रांसोक्सियाना और पश्चिम एशिया में तुर्की प्रवेश के बढ़ते दबाव से गजनवी साम्राज्य के विखंडन की रफ्तार तेज हुई। बोसवर्थ का कहना है कि 11वीं सदी में जाकर पश्चिम एशिया के आबाद क्षेत्रों में तुर्क कबायलियों के प्रवेश की प्रक्रिया ने जोर पकड़ा। उनके मुताबिक पिछली दो सदियों में तुर्कों के प्रवेश की धीमी रफ्तार और 11वीं सदी में भारी पैमाने पर उनकी गतिविधियों

ने 'पश्चिम एशिया के उत्तरी छोर के ज्यादातर हिस्सों की जातीय संरचना धीरे-धीरे बदल दी।'

एक छोटे से ही समय में नवागंतुक तुर्क समूहों ने गजनवियों और बुईदियों को हटा कर उनकी जगह ले ली। 1030 के दशक में सलजूक गजनवियों और बुईदियों के राज्यों पर हमला करने वाले प्रमुख तुर्क सैन्यदल के रूप में उभरे। सलजूक किनिक कबीले के एक छोटे से कुल थे जो ओगुज कबायली परिसंघ का हिस्सा था। हम लोग पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि ओगुज प्रमुख तुर्क कबायली परिसंघों में से एक था। सलजुक 11वीं सदी के प्रारंभिक दशकों में पूर्वी ईरान पर हमले कर रहे थे। महमूद के निधन होने तक सलजूकों का हमला एक नियमित चीज बन चुकी थी। उस समय तक सलजूकों ने एक खासी बड़ी सेना खड़ी कर ली थी। उनको खुरासान के ज्यादातर हिस्सों को रौंदने में ज्यादा समय नहीं लगा। समकालीन वृत्तांतों के अनुसार इस इलाके में गजनवी शासन इस कदर दमनकारी हो गया था कि खुरासान के प्रमुख शहरों के निवासियों ने सलजूकों को खुद ही दावत दी।

निश्चय ही गजनवियों की अलोकप्रियता ने पूर्वी ईरान में सलजूकों की जीत आसान कर दी। 1037 में मार्व के निवासियों ने उनके समक्ष आत्मसमर्पण किया। अगले साल नीशापुर ने हथियार डाले। फिर 1040 में मार्व के पश्चिम दंदानकान में मसूद की सेना के साथ सलजूकों का टकराव हुआ। सलजूकों ने मसूद की सेना को परास्त कर गजनवियों को उत्तरी ईरान से निकाल बाहर किया। अब यह इलाका सलजूकों के हाथ में आ गया। एक बार खुरासान में ठीक से जम जाने के बाद सलजूकों ने पश्चिम की तरफ विस्तार के लिए उसका इस्तेमाल आधार के रूप में किया।

इस चरण में सलजूकों का नेतृत्व तोगरिल और उसका भाई चगरी बेग कर रहा था। अगले पंद्रह साल के दौरान सलजूकों ने कई सैन्य अभियानों के बाद इराक और पश्चिम ईरान को अपने नियंत्रण में लाने में सफलता पाई। 1055 में तोगरिल ने बगदाद पर कब्जा किया। अंतिम बुईदी बादशाह अल-मलिक अल-रहीम बंदी बना लिया गया। तोगरिल इराक और पश्चिम ईरान का बादशाह बना जबकि चगरी बेग ने खुरासान और सलजूक राज्य के पूर्वी हिस्से पर राज किया। चगरी की राजधानी मार्व थी। 1060 में चगरी बेग का निधन हो गया। उसका बेटा अल्प अरसलान तख्त पर बैठा। तीन साल बाद तोगरिल बिना कोई पुरुष वारिस छोड़े मर गया (1063)। इसके बाद उत्तराधिकार के लिए थोड़े समय तक रस्साकशी चली। अंत में अल्प अरसलान ने खुद को समूचे सलजूक क्षेत्र (अर्थात राज्य के पूर्वी और पश्चिमी दोनों हिस्सों) के मालिक के रूप में स्थापित कर लिया। अल्प अरसलान ने एक महान सलजूक साम्राज्य की बुनियाद रखी।

ग्यारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध सलजूक साम्राज्य का सर्वाधिक शानदार दौर था। अल्प अरसलान (1063-73) और उसके बेटे मलिक शाह (1073-1092) के शासनकाल

में साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर पहुंचा। सलजूक वंश का जिन क्षेत्रों पर राज था, उनमें ट्रांसोक्सियाना, ख्वारज्म, पश्चिमी अफगानिस्तान, ईरान, इराक, सीरिया, और अनातोलिया के हिस्से शामिल थे। उन्होंने मक्का और मदीना को भी नियंत्रित किया और अरब के कुछ हिस्सों से खिराज वसूले। गजनवी राज्य का केंद्र अफगानिस्तान (गजना) में स्थित था जबकि सलजूक सत्ता का आधार मुख्यत: ईरान में था। अल्प अरसलान की राजधानी खुरासान में मार्व थी। मलिक शाह की राजधानी इस्फहान थी जो ईरान के मध्य में है। दूसरे शब्दों में, अब्बासियों, बुईदियों या गजनवियों के मुकाबले सलजूक ईरान से ज्यादा गहराई से जुड़े थे। इसने सलजूक राज्य को एक विशेष ईरानी चरित्र दिया।

सलजूकों ने गजवनी राज्य की शाही परंपराओं को आगे बढ़ाया। महमूद गजनी के दौर में सल्तनत का विकास शुरू हो गया था जो सलजूकों के दौर में चरम बिंदु पर पहुंच गया। जैसा कि हम चर्चा कर चुके हैं, अवश्य ही सल्तनत को एक प्रकार के राजतांत्रिक राज्य के रूप में देखा जाना चाहिए जिसमें सर्वोच्च राजनीतिक और सैनिक सत्ता सुलतान के पास होती थी। अब्बासिया खिलाफत के धार्मिक प्राधिकार को महज नाम के लिए मंजूर कर सुलतान की सत्ता को वैधता प्रदान की जाती थी। गजनवियों के शासन की तरह ही सलजूकों के शासन का ढांचा काफी केंद्रीकृत था। सुलतान का दरबार बड़ा शानदार था जिस पर बेतहाशा धन खर्च किया जाता था। दरबार की शान-शौकत और उसके आदाब का मकसद सुलतान का जाहो-जलाल जताना था। दरबार के आदाब और शिष्टाचार पर फारसी तथा अब्बासी परंपराओं की छाप थी।

सलजूकों की एक विशाल नियमित सेना थी जिसका एक हिस्सा ममलूकी पर आधारित था। सेना में तुर्क, मंगोल, अरब, ईरानी, यूनानी, आरमेनी और अफ्रीकी सैनिक थे। सलजूक सैन्य संगठन *इकता* प्रणाली से गहराई से जुड़ा था। सैनिकों की देखरेख के लिए *इकता* विशेष रूप से आवंटित थे। इस उद्देश्य से *इकता* की आवंटन प्रणाली का खासा विस्तार किया गया था। केंद्रीय सरकार की ओर से सीधे नियुक्त अधिकारियों की एक अलग जमात के मार्फत *इकताओं* से राजस्व वसूली का तरीका कमोबेश छोड़ दिया गया। *इकता* धारी या *इकतादार* खुद ही राजस्व इकट्ठा करते। वे उसका एक हिस्सा सैनिकों के रख-रखाव में खर्च करते और बाकी वेतन के रूप में उनके पास रहता। राज्य को मिलने वाले मुख्य कर *खराज, उश्र, जकात* और *जजिया* शामिल थे। अर्द्ध-स्थायी आधार पर *इकता* देने का रुझान था क्योंकि यह अपेक्षाकृत लंबे समय के लिए दी जाती थी। इसका नतीजा यह निकला कि 12वीं सदी तक ढेर सारे *इकता* वंशागत निजी संपत्ति (*मिल्क* या *मुल्क*) में बदल दिए गए। सलजूक *इकता* प्रणाली ने एक शक्तिशाली सैन्य कुलीन वर्ग को कायम रखा जो मुख्यत: तुर्क मूल का था। इस सैन्य कुलीन वर्ग को सुलतान से प्राधिकार मिला और वह शासक अभिजात वर्गों का एक महत्वपूर्ण घटक था।

सलजूकों ने यह मिथक बनाए रखा कि वे अब्बासी खलीफा की मंजूरी से शासन

करते हैं। खलीफा के पास कोई वास्तविक सत्ता नहीं थी। लेकिन सुलतान औपचारिक रूप से उसकी सर्वोच्चता की घोषणा करते थे। बगदाद में खलीफा का अपना दरबार था। खलीफों के साथ अपने संबंधों में सलजूक परंपरागत शिष्टाचार का पालन करते थे। खलीफा के दरबार में सुलतान का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सैनिक अधिकारी स्थायी रूप से बगदाद में तैनात रहता था। उसे *शाहना* कहते थे। बेशक *शाहना* के राजनयिक कामकाज गौन महत्व के थे। उसकी मुख्य जिम्मेदारी खलीफा की गतिविधियों पर निगाह रखनी थी। यह ध्यान में रखना चाहिए कि खलीफा के गृहनगर बगदाद का महज सांकेतिक महत्व था। शहर ने अपना राजनीतिक महत्व खो दिया था। अल्प अरसलान एक बार भी बगदाद नहीं गया।

सलजूक शासकों ने ईरानी अधिकारियों को नागरिक प्रशासन की जिम्मेदारियां सौंपने की प्रथा जारी रखी। ऐसा इसलिए भी था कि ईरान सलजूक राज्य का केंद्र बिंदु था। सलजूकों के काल में ईरानी नौकरशाही ने एक नया महत्व ग्रहण कर लिया। यह कहा जा सकता है कि यह काल पूर्व मध्यकालीन ईरानी प्रशासनिक ढांचा के विकास के चरम बिंदु को रेखांकित करता है। इस युग का सर्वश्रेष्ठ नौकरशाह अबुअली हसन तुसी था जो अपनी उपाधि निजाम अल-मुल्क से बेहतर जाना जाता है। निजाम अल-मुल्क अल्प अरसलान और मलिक शाह का वजीर था। सलजूक राज्य जितना सलजूक सुलतानों की कृति था, उतना ही निजाम अल-मुल्क की विलक्षण शख्सियत की देन भी। बोसवर्थ के शब्दों में 1063 से लेकर 1092 तक के तीस सालों को महान वजीर निजाम अल-मुल्क के युग के तौर पर भी रेखांकित किया जा सकता है जो इन ईरानी सचिवों और अधिकारियों के वर्ग का प्रतीक था जिस पर सुलतान निर्भर थे। निजाम अल-मुल्क सिर्फ एक प्रशासक ही नहीं बल्कि एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान भी था। उसने शासन-कला पर प्रसिद्ध पुस्तक *सियासतनामा* (राजनीतिशास्त्र) लिखी। इसमें शासन के सामान्य सिद्धांत पेश किए गए हैं। साथ ही इसमें व्यापक विषयों पर शाहों और शहजादों के लिए हिदायत है कि उन्हें किस तरह शासन करना चाहिए।

निजाम अल-मुल्क का जन्म 1017 में हुआ था। उसने प्राथमिक शिक्षा खुरासान के शहर नीशापुर में पाई। उसने प्रशासनिक सेवा का अपना सफर गजनवी शासन के एक अधिकारी के रूप में शुरू किया। बाद में उसने सलजूकों के यहां नौकरी की। वह अल्प अरसलान का वजीर बना। उसे उस वक्त वजीर नियुक्त किया गया था जब अल्प अरसलान समूचे सलजूक साम्राज्य का शासक नहीं बना था। जब 1063 में तोगरिल की मौत हुई तो निजाम अल-मुल्क ने सत्ता संघर्ष में अल्प अरसलान की मदद की। अल्प अरसलान की जीत ने निजाम अल-मुल्क को और भी शक्तिशाली बना दिया। वह अल्प अरसलान के उत्तराधिकारी मलिक शाह के शासनकाल में वजीर बना रहा। 1092 में निजाम अल-मुल्क की हत्या कर दी गई। यह संयोग है कि अपने वजीर की हत्या के कुछ ही दिनों

बाद मलिक शाह भी चल बसा। इस तरह निजाम अल-मुल्क की हत्या और महान सलजूकों के अंतिम सुलतान (तोगरिल, अल्प अरसलान और मलिक शाह को उत्तर सलजूकों से भिन्न महान सलजूक कहा जाता है) की मृत्यु एक ही समय हुई। ग्यारहवीं सदी के आखिरी सालों के साथ ही इसलामी राज्य के इतिहास के एक महत्वपूर्ण युग का अंत हो गया।

निजाम अल-मुल्क नागरिक प्रशासन या *दीवान-ए-वजीर* का प्रमुख था। *दीवान-ए-वजीर* की अपनी एक विस्तृत नौकरशाही थी जिसमें एक प्रधान सचिव (*मुंशी*) और एक प्रधान लेखापाल (*मुस्तौफी*) शामिल थे। निजाम अल-मुल्क ने शैक्षणिक संस्थानों का एक संजाल स्थापित कर अधिकारियों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया को चुस्त-दुरुस्त किया। इन संस्थानों को *मदरसा* कहा जाता था और उनका मकसद उच्च शिक्षा प्राप्त नागरिक प्रशासकों का एक वर्ग तैयार करना था। ये *मदरसे* राज्यपोषित थे। निजाम अल-मुल्क के *मदरसों* को *निजामिया* कहा जाता था। *मदरसों* की उत्पत्ति दसवीं सदी में खोजी जा सकती है। प्राचीनतम अब्बासी *मदरसे* सुन्नी धार्मिक मत की शिक्षा देने वाले संस्थान थे। *मदरसा* शिक्षा नि:शुल्क थी। यह कहा जाता है कि शुरू में अब्बासी *मदरसे* फातिमियों के शिया प्रचार के काट के लिए थे। यह ध्यान रखना चाहिए कि फातिमियों ने इस्माइली विचारों के प्रचार-प्रसार में लगे संस्थानों को बढ़ावा दिया और उन्हें वित्त मुहैया कराया। सलजूक काल तक *मदरसे* कई विषयों की शिक्षा देने लगे थे जिनमें सुन्नी धर्मविज्ञान, कानून, विधिशास्त्र, इतिहास और राजनीतिक सिद्धांत शामिल हैं। *निजामिया मदरसों* ने शिक्षण का अत्यंत उच्च स्तर कायम किया। इन मदरसों में शिक्षक के रूप में प्रख्यात विद्वानों को लाया जाता था। बेहतरीन प्रतिभाओं को आकर्षित करने के लिए प्रचुर छात्रवृत्तियां दी जाती थीं। सबसे मशहूर *निजामियाओं* में बगदाद (1067 में स्थापित), नीशापुर, मार्व, इस्फहान और बसरा के मदरसे थे। *निजामिया मदरसों* ने सलजूक राज्य के लिए एकरूप धार्मिक दृष्टिकोण के विकास की विचारधारात्मक जरूरत पूरी की। इन संस्थानों से शिक्षा ग्रहण करने वाले अधिकारी इस तरह के दृष्टिकोण का प्रसार करने का माध्यम बने

निजाम अल-मुल्क के ही कारण वजीर का पद विकसित हुआ। उसके तहत मध्यकालिक इसलामी राज्य के प्रशासिनक ढांचे के अंदर वजारत का प्रमुख स्थान बना। वजीर का सचिवालय नागरिक प्रशासन के तमाम पहलुओं को देखता था। यह एक जटिल जिम्मेदारी थी जिसके लिए तमाम बारीकियों पर भरपूर ध्यान देना जरूरी था। रोजमर्रा के प्रशासन का कार्यभार पूरा करने के लिए एक बड़ी आधिकारिक मशीनरी जरूरी थी। सलजूक सुलतानों ने निजाम अल-मुल्क और उसके दल के सहयोग से अब्बासियों, बुईदियों, समानियों और गजनवियों से विरासत में मिले बुनियादी ढांचे को विस्तार दिया। यहां सचेत करना आवश्यक है। हमें एक प्राक्-आधुनिक राज्य में केंद्रीकरण के स्तर को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं आंकना चाहिए। राज्य के नियमित प्रशासनिक कामकाज का

ज्यादातर हिस्सा स्थानीय या प्रांतीय स्तर पर पूरा होता होगा। इन स्तरों पर प्रबंध अकसर अनौपचारिक प्रकृति का होता था और स्थानीय अधिकारी हमेशा नौकरशाही के केंद्रीय तंत्र का हिस्सा नहीं होते थे। वे गांवों के प्रमुख, इकतादारों के रिश्तेदार, कबीलाई सरदार या कुछ स्थानीय प्रभाव वाले व्यक्ति हो सकते थे। बहरहाल निजाम अल-मुल्क ने वजीर के सचिवालय को ऐतिहासिक परिस्थितियों के मद्देनजर जहां तक संभव हो सका समग्र और व्यापक बनाने की कोशिश की। यहां यह बात जोड़ी जा सकती है कि निजाम अल-मुल्क का दर्जा और हैसियत एक अपवाद सा था। उसके बाद कुछ ही वजीर ऐसे हुए जो उसकी बुलंदी तक पहुंच पाए।

निजाम अल-मुल्क के कार्यकाल में एक और संस्था का विकास हुआ। यह संस्था *अताबेग* की थी। *अताबेग* वरिष्ठ और बेहद भरोसेमंद अधिकारी थे जिन्हें शाही परिवार के शहजादों, खासकर जानशीन (युवराज) को प्रशिक्षित करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती थी। हमने देखा है कि शहजादों की शिक्षा-दीक्षा के लिए शिक्षक बहाल करने की परंपरा अब्बासी खिलाफत के शुरुआती दौर से प्रारंभ होती है। लेकिन *अताबेग* एक विशिष्ट तुर्क परिघटना है। असल में *अताबेग* सलजूक काल की देन है। *अताबेग* की नियुक्ति सामान्य शिक्षकों की तुलना में ज्यादा औपचारिक मामला था। *अताबेग* के पदनाम का एक सामाजिक संदर्भ भी था। *अताबेग* की हैसियत पिता-तुल्य थी। उसकी बात आसानी से नहीं टाली जा सकती थी। सलजूकों के दौर में *अताबेगों* की नियुक्ति सिर्फ शहजादों तक के लिए सीमित नहीं थी। *इकतादारों* के युवा पुत्रों (विशाल वंशागत इकता के शाही वारिसों) के भी *अताबेग* थे। ए.के.एस. लैंबटन का कहना है कि *अताबेग* की नियुक्ति का एक अतिरिक्त राजनीतिक उद्देश्य था। उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे शहजादों पर निगाह रखेंगे और किसी विद्रोह की संभावना को दूर करेंगे। निजाम अल-मुल्क जब अल्प अरसलान के बेटे और राजगद्दी के वारिस मलिक शाह का *अताबेग* नियुक्त हुआ तो उसने इस संस्था को एक ठोस रूप दिया। जब मलिक शाह सुलतान बना तो उसने निजाम अल-मुल्क को अपना वजीर बनाया। उत्तर सलजूक काल में *अताबेग* के पद का अकसर दुरुपयोग किया गया। अनेक *अताबेग* स्वतंत्र ताकत वाले रीजेंट बन बैठे। यहां तक कि उन्होंने अपना राजवंश स्थापित कर लिया।

II (क)

1092 में मलिक शाह की मौत के बाद उत्तराधिकार को लेकर एक लंबा संघर्ष चला। मलिक शाह के बेटों में से एक संजार 1118 तक सलजूक राज्य का ज्यादातर इलाका अपने अधीन करने में सफल रहा। उस वक्त तक इराक और पश्चिमी ईरान पर सलजूक राज्य की पकड़ काफी कमजोर हो चुकी थी। सत्ता के दावेदारों के बीच संघर्ष ने साम्राज्य

की एकता भंग कर दी। संजार को बड़ी मुश्किल से पूरे साम्राज्य के सुलतान की मान्यता मिल सकी। सुलतान संजार का मुख्य आधार खुरासान में था जहां उसने अपने पिता की मौत के बाद खुद को मजबूती से स्थापित किया था। बारहवीं सदी के दौरान खुरासान सलजूक साम्राज्य का केंद्रक बना रहा। संजार ने 1157 तक राज किया लेकिन उसके शासन के अंतिम सालों में तुर्क कबीलों के हमलों के कारण हिंसक उथल-पुथल चला।

संजार की मौत और 1258 में बगदाद पर मंगोलों के कब्जे के बीच का एक सौ साल जटिल राजनीतिक इतिहास का काल है। पश्चिम एशिया, ट्रांसोक्सियाना और अफगानिस्तान के विभिन्न हिस्सों पर अनेक वंशों ने राज किया और सलजूक उनमें से महज एक थे। ये सारे राजवंश तुर्की नहीं थे। यहां तक कि दक्षिण इराक में एक बार फिर अब्बासी शासन स्थापित हो गया। अब्बासियों ने सलजूक परिवार के अंदर के संघर्ष का फायदा उठाकर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा का कुछ अंश प्राप्त कर लिया। खलीफा अल-नासिर (1180-1225) पश्चिम एशिया की राजनीति में एक अहम शख्सियत समझा जाता था। उसे अकसर विभिन्न समूहों के बीच झगड़ों में सुलह-सफाई कराने के लिए निमंत्रित किया जाता था। इसका यह मतलब नहीं था कि अब्बासियों को उनका पुराना प्राधिकार मिल गया था। वे बगदाद और उसके इर्द-गिर्द के इलाकों में ही प्रभावी थे।

चंगेज खान और हलाकू के नेतृत्व में हुए मंगोलों के हमलों ने अब्बासी खिलाफत और पश्चिम एशिया की तमाम सल्तनतों को खत्म कर दिया। हलाकू 1258 में बगदाद में घुसा। उसने आखिरी खलीफा (अल-मुस्तकीम) को मार डाला। उसके बाद मंगोल मध्य एशिया में और पश्चिम एशिया के हिस्सों में प्रभुत्वकारी जातीय समूह बन गए। समय के साथ उन्होंने इसलाम ग्रहण कर लिया। तुर्क इस क्षेत्र की राजनीति में एक महत्वपूर्ण घटक बने रहे। फातिमियों ने 1171 तक मिस्र पर राज किया। उन्हें एक ऐसे राजवंश ने सत्ता से बाहर किया जिसकी स्थापना एक *अताबेग* ने उत्तरी इराक में की थी। विस्तार की प्रक्रिया में यह राजवंश मिस्र में स्थापित हो गया था। इस परिवार का एक सदस्य सलाह अल-दीन (सलाउद्दीन) मिस्र का शासक बना। उसने फातिमियों की सत्ता उखाड़ फेंकी और एक नए राजवंश अय्यूबी की स्थापना की। अय्यूबियों ने 1252 तक मिस्र पर शासन किया। बाद में ममलूक सैनिकों पर आधारित एक सैन्य कुलीन वर्ग ने अय्यूबियों को सत्ता से बाहर कर दिया।

हालांकि बारहवीं सदी सलजूकों के उत्थान और पतन की साक्षी बनी, यह सांस्कृतिक प्रस्फुटन का दौर था। उत्तर-संजार काल क्लासिकी फारसी साहित्य का एक महान युग था। ग्यारहवीं सदी की शुरुआत तक महान महाकाव्य *शाहनामा* की रचना के साथ ही एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा वजूद में आ चुकी थी। *शाहनामा* की रचना फिरदौसी (करीब 940-1020) ने की थी। निजामी ने अपनी शायरी से इस परंपरा को और भी समृद्ध बनाया। निजामी को फारसी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक माना जाता है। निजामी (करीब

1140-1209) आजरबायजान (उत्तरी ईरान) के शहर गंजा के थे। वह अपने रोमानी महाकाव्यों के लिए सबसे ज्यादा मशहूर हैं जो आज भी लोकप्रिय हैं। उनका एक अत्यंत सुंदर महाकाव्य है *लैला-ओ-मजनू*। यह करीब चार हजार पंक्तियों वाली एक कविता है। निजामी की एक और सुप्रसिद्ध कविता *खुसरू और शीरीन* है। निजामी के अन्य महाकाव्यों में *हफ्त पैकर* और *इस्कंदर नामा* शामिल हैं। निजामी के अनेक महाकाव्य प्राचीन ईरानी किंवदंतियों से प्रेरित थे।

सलजूक साम्राज्य के अंत और मंगोल-हमलों से उत्पन्न अव्यवस्था के बावजूद क्लासिकी फारसी साहित्यिक परंपरा तेरहवीं सदी में फलती-फूलती रही। सांस्कृतिक गतिविधियों का जबर्दस्त दौर चला और प्रांतीय दरबार उनके केंद्र बने। उस काल में साहित्यकारों की एक लंबी कतार सामने आई। लेकिन उनमें से दो विलक्षण साहित्यिक हस्तियां, सादी और जलालुद्दीन रूमी विशेष चर्चा के पात्र हैं। सादी (करीब 1213-1292) ईरान के शहर शीराज के थे। उनकी दो प्रमुख रचनाएं *बोस्तान* (फलवाटिका) और *गुलिस्तान* (गुलाबबाग) हैं। *बोस्तान* एक महाकाव्य है जबकि *गुलिस्तान* का एक हिस्सा कविता में और बाकी गद्य में है। उसमें अनेक उपाख्यान और किस्से हैं जिनका मकसद कतिपय नैतिक आचारों पर जोर देना है। सादी का लेखन सूफी रहस्यवाद से ओतप्रोत है। जलालुद्दीन रूमी (1207-73) ने सूफीवाद पर एक विश्वकोश की रचना की। *मस्नवी-ए-मनावी* के नाम से मशहूर यह विश्वकोश पद्य में है और उसमें करीब 27,000 पंक्तियां हैं।

अरब और ईरानी जगत में प्राकृतिक विज्ञान की बुनियाद आद्य-अब्बासी काल में रखी गई थी (देखें अध्याय ग्यारह)। प्राचीन यूनानी ग्रंथों के अरबी में अनुवाद ने चिकित्साशास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित और खगोलशास्त्र के विकास की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया। हम चर्चा कर चुके हैं कि चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में यूनानी विरासत अरब चिकित्साशास्त्र की एक नई पद्धति का आधार बनी जिसे यूनानी चिकित्सा पद्धति का नाम दिया गया। इब्न सीना (यूरोपीय उन्हें अवीसेन्ना कहते हैं) इस पद्धति के सबसे प्रतिष्ठित विशेषज्ञ थे। इब्न सीना (980-1037) बुखारा के थे। उन्होंने प्राचीन यूनानी वैज्ञानिकों और दार्शनिकों का गहराई से अध्ययन किया। अरस्तू ने उन्हें सबसे ज्यादा प्रभावित किया। इब्न सीना ने सबसे महत्वपूर्ण योगदान चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में किया। उन्होंने एक पुस्तक की रचना की जो आम तौर पर *कानून* या *चिकित्साशास्त्र के सिद्धांत* के नाम से जाना जाता है। इब्न सीना ने अपनी इस कृति से हिप्पोक्रेटीज और गालेन की रचनाओं को लोकप्रिय बनाया। *कानून* में कुछ सर्वप्रमुख यूनानी वैज्ञानिकों के विचारों को शामिल किया गया। यह न सिर्फ अरब और ईरानी जगत बल्कि यूरोप में भी एक मानक पाठ्यपुस्तक बन गई। *कानून* का अनुवाद लैटिन और अन्य यूरोपीय भाषाओं में किया गया। यह सोलहवीं सदी तक यूरोप में चिकित्सा विज्ञान का बुनियादी संदर्भ ग्रंथ था। सलजूक काल का एक अन्य अग्रणी विद्वान उमर खय्याम था जो निजाम अल-मुल्क

का समकालीन था। यहां यह ध्यान देना चाहिए कि उमर खय्याम राजनीतिक स्तर पर सलजूक राज्य का विरोध करता था। वह विभिन्न रुचियों-अभिरुचियों वाला विद्वान था। उमर खय्याम एक शायर के रूप में अर्थात *रूबाई* के नाम से जाने जाने वाले फारसी शायरी के एक रूप के रचियता के बतौर मशहूर है। लेकिन प्राथमिक रूप से वह एक गणितज्ञ था और उसने अलजबरा, ज्यामिति, भौतिकशास्त्र और खगोलशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किए। वह एक गंभीर दार्शनिक भी था। इसमें कोई शक नहीं होना चाहिए कि उमर खय्याम मध्यकालीन पश्चिम एशियाई विद्वत्ता की सर्वाधिक विलक्षण देन है।

II (ख)

खिलाफत के पतन और राजनीतिक रंगमंच के केंद्र में खलीफा की जगह सुलतान के चले आने से सल्तनत की एक सांविधानिक व्याख्या की तत्काल आवश्यकता पैदा हो गई। एक शासनतंत्र के रूप में सल्तनत अपेक्षाकृत एक नई परिघटना थी। इसकी शुरुआत दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में खोजी जा सकती है। इसलामी राजव्यवस्था की मुख्य दुविधा यह थी कि उसमें राजतंत्र के लिए कोई प्रावधान नहीं था। फिर भी उम्मावी खलीफों के समय से ही इसलामी राज्य की प्रकृति राजतांत्रिक थी। जब तक राजनीतिक और धार्मिक प्राधिकार खलीफा के हाथों में रहा, राज्य की राजतांत्रिक प्रकृति ने कोई गंभीर सैद्धांतिक संकट पैदा नहीं किया। खलीफा के बारे में यह समझा जाता रहा कि वह मुसलिम समुदाय (*उम्मत*) के धार्मिक नेता या *इमाम* होने के नाते अपने राजनीतिक प्राधिकार का इस्तेमाल कर रहा है। बाद के अब्बासियों के समय में यह स्थिति नहीं थी।

इफ्रीकिया में अगलाबियों या उत्तर-पूर्व ईरान और मध्य एशिया में समानियों जैसे प्रांतीय राजवंशों के उत्थान ने अब्बासी खलीफों की स्थिति बदल दी थी। इन राजवंशों के शासकों ने सिर्फ दिखावे के लिए खलीफों की मातहती (समानियों का कहना था कि वे खलीफा की ओर से शासन कर रहे हैं) की घोषणा की और मोटे तौर पर उनके धार्मिक प्राधिकार को कबूल किया। लेकिन तमाम व्यावहारिक मामलों में वे स्वतंत्र रहे। दसवीं सदी शुरू होने तक उत्तर अफ्रीका और स्पेन से अब्बासियों का कोई सरोकार नहीं रह गया था क्योंकि वहां के मुसलिम समाज में उनकी कोई धार्मिक या राजनीतिक भूमिका नहीं बची थी। उत्तर अफ्रीका में फातिमी साम्राज्य की स्थापना हुई जबकि स्पेन पर उम्मावियों की गिरफ्त थी। फातिमी और उम्मावी दोनों ही खिलाफत का दावा कर रहे थे। इससे अब्बासी शासन पश्चिम एशिया में सिमट गया था।

पश्चिम एशिया में बुईदियों के उत्थान ने खलीफाओं की हैसियत में एक निर्णायक तब्दीली ला दी। अब्बासी अब बुईदी शासकों के कैदी के समान बन कर रह गए थे।

फिर भी बुईदियों ने खलीफाओं को नहीं हटाया क्योंकि उन्होंने पाया कि खलीफाओं के धार्मिक प्राधिकार की मान्यता की परंपरा जारी रखना फायदेमंद है। इसने राजनीतिक सत्ता पर उनके कब्जा को वैधता प्रदान की। दसवीं सदी के मध्य से इसलामी राज्य के प्रमुख और *उम्मत* के नेता के रूप में खलीफा की वैधानिक हैसियत और वास्तविक शासक के बीच एक स्पष्ट फर्क कायम हुआ।

यहां यह दोहराना उचित होगा कि बुईदियों ने शहंशाह जैसी राजतांत्रिक उपाधियां अपनाईं। यहां यह जिक्र करना उचित होगा कि फातिमियों ने और स्पेन के उम्मावियों ने खलीफा की उपाधि अपना कर अपनी सत्ता को वैधता देने की कोशिश की। कुछ इतिहासकार आश्चर्य जताते हैं कि बुईदियों ने भी खुद को खलीफा क्यों नहीं घोषित किया। इसका कारण यह हो सकता है बुईदियों का झुकाव शियाओं की तरफ था और सुन्नी बहुल क्षेत्र में शासन करने के कारण खुद को असुरक्षित सा महसूस करते थे। उसके अलावा अब्बासी पश्चिम एशिया की सुन्नी परंपराओं के साथ गहराई से जुड़े थे। उनकी उपस्थिति का एक प्रतीकात्मक महत्व था। शायद बुईदियों ने महसूस किया कि अब्बासियों के साथ जुड़ी जनभावनाओं का अनादर करना आसान नहीं होगा। जहां तक गजनवियों और सलजूकों का सवाल है, दोनों ने अपने-अपने साम्राज्य के निर्माण काल के दौरान खुद को अब्बासियों के मुक्तिदाता के रूप में पेश किया। यह उनका एक तरीका था जिससे उन्होंने व्यापक स्वीकृति हासिल करने की कोशिश की। प्रसंगवश, एक बार जब सलजूक शासन ने मजबूती पा ली, सुलतान मलिक शाह ने अब्बासियों को हटाने की अपनी मंशा जताई थी। अपनी जिंदगी के आखिरी साल (1092) में मलिक शाह अब्बासी खलीफा अल-मुक्तदी को हटाने की योजना बना रहा था। वह अब्बासी खिलाफत खत्म करना चाहता था और संभवत: किसी दूसरे को खलीफा बनाना चाहता था। मलिक शाह की मौत से यह योजना अधूरी रह गई। निजाम अल-मुल्क इस कदम का समर्थन नहीं कर रहा था। इससे यह संकेत मिलता है कि इस मोड़ पर भी अब्बासियों की प्रतीकात्मक प्रतिष्ठा बरकरार थी।

खलीफा की जो भी प्रतीकात्मक या नामधेय हैसियत थी, यह एक सच्चाई थी कि दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक राज्य के कामकाज में उनका कोई दखल नहीं था। वास्तविक सत्ता बुईदियों और समानियों (छोटे-छोटे अनेक राजवंश भी थे), और बाद में गजनवियों तथा सलजूकों के हाथों में केंद्रित थी। एक नए किस्म का राजतांत्रिक राज्य—सल्तनत—वजूद में आ चुका था। सुलतान अपनी निरंकुश सत्ता का इस्तेमाल करता था। लेकिन साथ ही वह खलीफा का अनुमोदन लेकर अपनी सत्ता को वैधता भी प्रदान करने की कोशिश करता था। महमूद गजनवी का शासन एक शासन पद्धति के रूप में सल्तनत के एक परिपक्व दौर की शुरुआत को रेखांकित करता है। हालांकि महमूद ने एक विशाल और केंद्रीकृत साम्राज्य पर एक निरंकुश शासक की तरह राज किया, वह जताता रहा कि

उसे खलीफा से प्राधिकार मिला है। समकालीन पर्यवेक्षकों और मुसलमान सिद्धांतकारों ने महमूद को एक नवाचारी शासक माना है तथा सल्तनत को सरकार का नवाचारी रूप कहा है। सलजूकों के अधीन इस प्रकार के शासन का आगे विकास हुआ।

एक चीज एकदम साफ थी कि खलीफा के प्रति सम्मान के तमाम दिखावों के बावजूद, सुलतान की सत्ता निरंकुश थी और अंततः यह बल पर टिकी थी। सुलतान हर अर्थ में एक बादशाह था। सिर्फ वह खुद को (कम से कम औपचारिक रूप से) खलीफा का प्रतिनिधि जताता था। यह एक अंतर्विरोध था जिसका हल विधिशास्त्र या राजनीतिक सिद्धांत पर उपलब्ध रचनाओं में नहीं था। निजाम अल-मुल्क के पहले भी कुछ इसलामी विद्वानों ने इस समस्या से निबटने की कोशिश की। सल्तनत के राजनीतिक सिद्धांत पर पहला प्रमुख शोध-प्रबंध (थीसिस) ग्यारहवीं सदी के मध्य के लगभग सामने आया। यह अल-मावर्दी (मृत्यु 1058) का लिखा शोध-प्रबंध *अहकाम अल-सुलतानिया* (शासन के सिद्धांत) था। अल-मावर्दी ने राज्य की इसलामी अवधारणा के साथ सल्तनत के ऐतिहासिक यथार्थ का सामंजस्य बैठाने का प्रयास किया। उसने साफ तौर पर कहा कि खलीफा का प्राधिकार सर्वोच्च है। *अहकाम अल-सुलतानिया* का प्रत्यक्ष उद्देश्य खलीफाओं के प्राधिकार के पक्ष में वकालत करना था। एच.ए.आर. गिब इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि अल-मावर्दी यह शोध-प्रबंध उस समय तैयार कर रहा था जब बुईदी सत्ता पतनशील थी और अब्बासी, खासकर अल-कायम (देखें ऊपर)के तहत अपना दावा जताने लगे थे। यह संभव है कि अल-कायम ने *अहकाम अल-सुलतानिया* लिखने के लिए अल-मावर्दी को नियुक्त किया होगा। यह बताना ज्यादा प्रासंगिक होगा कि अल-मावर्दी ने अब्बासी खिलाफत का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया। फिर भी उसने सल्तनत को तर्क-संगत बनाने के लिए सिद्धांत गढ़ा। इसके लिए गजनवी (सलजूक अभी सत्ता में नहीं आए थे) उसके मुख्य संदर्भ बिंदु थे। अल-मावर्दी की मुख्य दलील यह थी कि खिलाफत का फैसला अल्लाह करता है और इसलिए वह सर्वोच्च है। लेकिन खलीफा किसी को अपनी सत्ता का प्रतिनिधि नियुक्त कर सकता है। खलीफा की ओर से सुपुर्द यह सत्ता सीमित या असीमित हो सकती है। जिस व्यक्ति को यह सत्ता सौंपी गई है, उसे इसका इस्तेमाल *शरियत* के अनुरूप करना चाहिए। अल-मावर्दी ने इस शर्त के आधार पर बलपूर्वक सत्ता पर कब्जा को उचित ठहराया कि अगर सत्ता पर कब्जा करने वाला व्यक्ति खलीफा के प्राधिकार को मानता है तो इस तरह की सत्ता वैध है। स्पष्ट है कि वह जब इस तरह के शासन की बात कर रहा था तो उसके दिमाग में सुलतान महमूद जैसा कोई व्यक्ति था।

इस संदर्भ में निजाम अल-मुल्क के योगदान की चर्चा की जा सकती है। निजाम अल-मुल्क का *सियासतनामा* सल्तनत पर केंद्रित है। यह कोई सैद्धांतिक कृति नहीं है। लेकिन इसमें सलजूक सल्तनत का एक विस्तृत विवरण है। निजाम अल-मुल्क का अपने

समकालीन मुसलिम विद्वानों पर बड़ा प्रभाव था। वह ईरानी नौकरशाही में भी बेहद लोकप्रिय था। इसके मद्देनजर यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि *सियासतनामा* ने सैद्धांतिक स्तर पर एक शासन पद्धति के रूप में सल्तनत को नियमित करने में मदद की। निजाम अल-मुल्क ने सुलतान की सत्ता के निरंकुश रूप पर जोर दिया। अंतिम विश्लेषण में यह सत्ता बल पर टिकी थी। निजाम अल-मुल्क ने बहुत आगे तक बढ़ कर कहा कि सुलतान को अपने प्राधिकार के लिए किसी वैधानिक स्वीकृति की कोई जरूरत नहीं है। सुलतान में निहित निरंकुश सत्ता समाज में व्यवस्था बनाए रखने के लिए जरूरी है और इस तरह इसे दैविक स्वीकृति हासिल है।

ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इसलामी विधिशास्त्र के अग्रणी विद्वान अल-गजाली (1058-1111) ने ग्रंथों की एक श्रृंखला प्रकाशित की जिसमें उन्होंने सल्तनत का एक विस्तृत राजनीतिक सिद्धांत सूत्रबद्ध किया। अल-गजाली ने इस प्रस्तावना के साथ अपनी बात शुरू की कि राज्य की इसलामी अवधारणा के दृष्टिकोण से मुसलिम *उम्मत* के प्रमुख होने के नाते तमाम शक्तियां खलीफा में निहित होती हैं। आखिरकार खलीफा पैगंबर का उत्तराधिकारी है। एक संस्था के रूप में खिलाफत तीन तत्वों को जोड़ता है: (1) खलीफा पैगंबर का वैधानिक उत्तराधिकारी है; (2) खलीफा राजनीतिक प्राधिकार का इस्तेमाल करता है; और (3) खलीफा इसलामी समुदाय का धार्मिक नेता है। एक आदर्श स्थिति में तीनों तत्व एक ही व्यक्ति में केंद्रित होना चाहिए। लेकिन अगर ऐतिहासिक स्थितियां इसकी इजाजत नहीं देती हैं तो इन तीनों तत्वों को विभिन्न व्यक्तियों में बांट देना सर्वथा उचित होगा। तब खलीफा सिर्फ पैगंबर का वैधानिक उत्तराधिकारी होगा और वह राज्य का वैधानिक, लेकिन प्रतीकात्मक प्रमुख होता है। सुलतान राजनीतिक और सैनिक शक्तियों का प्रयोग करेगा। *उलेमा* या धार्मिक विद्वान धार्मिक मामलों में समुदाय को दिशा-निर्देश देंगे।

हम यहां देख सकते हैं कि अल-गजाली की योजना में खलीफा हाशिए पर चला गया है। अल-गजाली का ज्यादा सरोकार सुलतान के प्राधिकार को एक वैधानिक औचित्य प्रदान करना था। उसने अपनी कृति *नसीहत अल-मुलूक* में शासन की एक प्रणाली के रूप में सल्तनत की गहरी विवेचना की। उसके मुताबिक सुलतान को खलीफा की सर्वोच्चता स्वीकार करनी चाहिए और *शरियत* के हिसाब से शासन करना चाहिए। लेकिन वास्तविक व्यवहार में सुलतान की शक्तियों की कोई सीमा नहीं थी। अल-गजाली का तर्क है कि सुल्तान को अल्लाह की तरफ से अधिकार मिले हैं। सुलतान 'जमीन पर अल्लाह का साया' था। इसके लिए पूरी प्रजा को उसकी आज्ञा का पूरी तरह से पालन करना अनिवार्य हो गया। किसी तरह का विद्रोह, यहां तक कि जालिम के खिलाफ भी, गैर-कानूनी था। अल-गजाली के लेखन में सुलतान की निरंकुश सत्ता की सर्वाधिक सुस्पष्ट विवेचना है। अल-मावर्दी और निजाम अल-मुल्क के साथ इन कृतियों को एक लंबे समय तक के

लिए सल्तनत शासन-पद्धति का विचाधारात्मक आधार बनना था। 1258 में मंगोलों ने अब्बासी खिलाफत का खात्मा कर दिया। इसके बाद इन लेखों ने और महत्व ग्रहण कर लिया। चूंकि अब यह भ्रम कायम रखना संभव नहीं था कि सुलतान खलीफा की ओर से राजनीतिक शक्तियों का उपयोग कर रहा है, सुलतान की सत्ता के स्वतंत्र एवं दैविक स्वरूप पर जोर देने वाले सिद्धांत तेरहवीं सदी के बाद से इसलामी राजतांत्रिक राज्यों को विधान सम्मत बनाने में उपयोगी थे।

अध्याय तेरह

जर्मनिक हमले और उनके बाद

मध्यकालीन यूरोप की उत्पत्ति

हमने अध्याय 10 में देखा कि पांचवीं सदी के शुरू होते-होते रोमन साम्राज्य एक एकीकृत राजनीतिक इकाई नहीं रह गया था। सबसे पहले साम्राज्य के पूर्वी और पश्चिमी हिस्से अलग हो गए। पूर्वी प्रांत अपेक्षाकृत स्थिर रहे। वहां कांस्टैनटिनोपल से अब शासन होने लगा। वह एक राज्य के रूप में टिका रहा और उसे बैजंतियाई साम्राज्य के रूप में जाना गया। दूसरी तरफ पश्चिमी साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों पर विभिन्न जर्मनिक कबीलों का शासन हुआ। पूर्वी साम्राज्य के सैनिक और राजनीतिक तंत्र पर भी कुछ जर्मनिक कबीलों के सरदारों का अच्छा-खासा नियंत्रण था। बेशक यह लंबे समय तक नहीं चला। पश्चिम में जर्मनिक कबीलों को रोमन साम्राज्य पर पूरा कब्जा करने में सफलता मिली।

I

चौथी सदी के दौरान रोमन शासन का केंद्र पूर्व में चला गया था और कांस्टनटाइन के काल से कांस्टैनटिनोपल साम्राज्य की वास्तविक राजधानी बन गया। शुरू में पूर्व को ही जर्मनिक कबीलों के सर्वाधिक विनाशकारी हमले झेलने पड़े। यहां यह याद दिलाया जा सकता है कि 378 का हाद्रियानोपोलिस का युद्ध रोमन साम्राज्य के लिए भारी तबाही का कारण बना। यह युद्ध पूर्व में उस समय हुआ जब रोमन सेना विसिगॉथों को निम्न डैन्यूब से लगे इलाकों को रौंदने से रोकने का प्रयास कर रही थी। विसिगॉथों ने रोमन सेना को परास्त कर दिया था और सम्राट वैलेंस इस जंग में मारा गया था। इस जंग के बाद विसिगॉथ कई दशक तक दक्षिण-पूर्व यूरोप में रोमन क्षेत्रों, खासकर यूनान और बाल्कन इलाके में, उथल-पुथल का कारण बने रहे। लेकिन नया सम्राट थियोडोसियस प्रथम (करीब 378-395) चौथी सदी के अंतिम चतुर्थांश में साम्राज्य के पूर्वी हिस्सों में कुछ व्यवस्था कायम करने में सफल रहा।

थियोडोसियस की 395 में मृत्यु हो गई। उसके बाद कांस्टैनटिनोपल और रोम दोनों पर प्रमुख जर्मनिक सैन्य सरदारों का प्रभाव सर्वोपरि हो गया। कुछ हद तक इसमें यह तथ्य भी सहायक रहा कि निम्न डैन्यूब और भूमध्यसागर के बीच स्थित रोमन साम्राज्य

के इलाकों में पहले से ही जर्मनिक लोगों की एक बड़ी आबादी थी। सेना और सरकार में भी, खासकर पूर्व में, जर्मनिक लोगों की एक मजबूत मौजूदगी थी। बेशक रोमन साम्राज्य में पहले से बसे जर्मनिक समूहों का रुख अकसर नवांगतुकों के प्रति दोस्ताना नहीं था। रोमन सेना में तैनात जर्मनिक सैन्यकर्मी जर्मनिक हमलावरों से उसी जोर-शोर से लड़े जिस तरह से गैर-जर्मनिक सैनिक लड़े। जर्मनिक सैनिक पूर्वी प्रांतों में तैनात रोमन सेना के एक प्रमुख हिस्सा थे और अगर ये जर्मनिक सैनिक हमलावरों से डटकर नहीं लड़े होते तो पूर्व में साम्राज्य का टिकना मुश्किल था। फिर भी डैन्यूब के क्षेत्र की जातीय संरचना में तब्दीली ने गॉथिक और अन्य जर्मनिक सरदारों को अपने लिए समर्थन जुटाने में मदद की। अंतत: यह साम्राज्य के केंद्रीय तंत्र का बिखराव ही था जिसने जर्मनिक कबीलों को अपनी स्थिति मजबूत करने का मौका दिया।

थियोसियस के उत्तराधिकारी उसके बेटे आर्केडियस (वह 408 में अपनी मृत्यु तक साम्राज्य के पूर्वी प्रांतों का सम्राट था) और आनोरियस (वह 423 में अपनी मृत्यु तक पश्चिम का सम्राट रहा) थे। दोनों ने कम उम्र में अपने-अपने इलाकों की सत्ता संभाली। उस वक्त उनके पास कोई तजुर्बा नहीं था। दोनों ने महज नाम के लिए शासन किया। असली सत्ता सेना के विभिन्न गुटों के हाथों में थी। थियोडोसियस की मौत के बाद कई साल तक स्टिलिचो नामक एक वैंडल सैनिक कमांडर (देखें अध्याय दस) साम्राज्य का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति रहा। अंतत: स्टिलिचो का नियंत्रण पश्चिम में सिमट गया जहां आनोरियस उसकी कठपुतली था। यहां यह जिक्र किया जा सकता है कि स्टिलिचो को राइन सीमा से रोमन सेना हटाना मुनासिब लगा ताकि इटली के बचाव के लिए ज्यादा सैनिक उपलब्ध हो सकें। इस कदम से गॉल में रोमन क्षेत्र खुले रह गए। इससे वैंडल, सुएबी और अलानी (अलानी जर्मनिक समूह का सदस्य नहीं, बल्कि काकेशियाई मूल का एक कबीला था जो राइन क्षेत्र में रहने वाले जर्मनिक कबीलों के साथ जुड़ गया था) कबीलों को 406 में राइन पार करने और बड़े पैमाने पर देशांतरण करने का मौका दिया। इसी के साथ पश्चिमी साम्राज्य पर जर्मनिक कब्जा के पहले चरण की शुरुआत होती है।

इस बीच पूर्व में विसिगॉथ एक दुर्जेय शक्ति बने रहे। उन्होंने अपने सरदार एलारिक के नेतृत्व में यूनान और बाल्कन के क्षेत्र को बार-बार लूटा। पूर्व के सम्राट आर्केडियस को कांस्टैनटिनोपल में एलारिक की सर्वोच्चता स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। एलारिक की बढ़ती शक्ति भी एक कारण था जिसके चलते स्टिलिचो को पश्चिम में केंद्रित होना पड़ा। यही हालात आर्केडियस के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थियोडोसियस द्वितीय (408-50) के शासनकाल में भी कुछ समय तक बने रहे। थियोडोसियस खुद एक बहुत प्रभावी शासक नहीं था। लेकिन पूर्वी साम्राज्य के शासक वर्गों में सैन्य नेतृत्व की एक प्रमुख भूमिका थी। पूर्वी साम्राज्य के शासक वर्गों ने कांस्टैनटिनोपल से शासित प्रदेशों पर अपनी पकड़ जल्द ही मजबूत कर ली। शासक वर्गों का बड़ा हिस्सा यूनान, बाल्कन

और अनातोलिया से आता था। उनके पास मिस्र और सीरिया (पूर्वी साम्राज्य में मोटे तौर पर यूनान, बाल्कन प्रदेश, अनातोलिया, सीरिया, फलस्तीन और मिस्र आते थे; जर्मनिक हमले मुख्यतः साम्राज्य के यूरोपीय प्रांतों में हुए) के अकूत संसाधन थे। हम पहले ही देख चुके हैं कि उत्पादन की गुलाम पद्धति समेत उत्तर-रोमन साम्राज्य का आर्थिक और राजनीतिक संकट पूर्व की तुलना में पश्चिम में ज्यादा गहरा था। पूर्वी प्रांतों में राज्य के विभिन्न अवयव कमोबेश अक्षुण्ण रहे। वहां शासन काफी प्रभावी ढंग से चलता रहा और इसका प्राथमिक कारण यह था कि वहां एक केंद्रीकृत नौकरशाही का वजूद बरकरार था। इस नौकरशाही पर कांस्टैनटिनोपल में स्थित सैनिक और राजनीतिक नेतृत्व का अच्छा-खासा नियंत्रण था। इसके अलावा पश्चिम के बरखिलाफ पूर्व को सीनेटरों के एक शक्तिशाली वर्ग से टकराना नहीं पड़ा। तीसरी सदी में संकट में फंसने के बाद इसी वर्ग की उपस्थिति के कारण शासन के लिए पश्चिम में अपना पुराना प्राधिकार बहाल करना वस्तुतः असंभव हो गया। इसके साथ ही कांस्टैनटिनोपल शहर की सैनिक सुरक्षा व्यवस्था मजबूत थी।

पांचवीं सदी की पहली दहाई तक बैजंतियाइयों (हम इसे कांस्टैनटिनोपल से शासित रोमन साम्राज्य के पूर्वी प्रांतों के लिए एक सुविधाजनक समानार्थी शब्द के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं) ने विसिगॉथों के हमलों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। विसिगॉथ तब पश्चिम में इटली की तरफ बढ़ गए जहां हमला करना उनके लिए आसान था। 410 में एलारिक ने रोम शहर पर हमला किया और लूटमार मचाई। इसके विनाशकारी परिणामों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। इटली के बाद विसिगॉथों ने गॉल और स्पेन पर हमला किया और वहां अपना शासन स्थापित किया। हम विसिगॉथों की चर्चा पर बाद में लौटेंगे।

एक बार जब विसिगॉथों का दबाव कम हुआ तो बैजंतियाइयों ने अपनी संस्थाओं के पुनर्निर्माण पर थोड़ा ध्यान दिया। हम पूर्व-बैजंतियाई साम्राज्य के विस्तृत ब्योरे में गए बिना ही एक महत्वपूर्ण उदाहरण पेश करना चाहेंगे जो संकट से उबरने की प्रक्रिया को दर्शाता है। उबरने की यह प्रक्रिया थियोडोसियस द्वितीय के शासनकाल में ही शुरू हो गई थी। यह रोमन कानून का संहिताकरण था। थियोडोसियस द्वितीय के तहत डायक्लीशन के समय से लेकर, अर्थात करीब एक सदी के समय काल के तमाम कानूनों को सुव्यवस्थित ढंग से संकलित किया गया। इसने कानूनों के एक समग्र संहिताकरण का आधार तैयार किया जिसे जस्टीनियन के तहत पूरा किया गया और जिसकी परिणति *डाइजेस्ट* (देखें अध्याय दस) के प्रकाशन में हुई।

इससे पहले कि पूर्वी साम्राज्य जर्मनी कबीलों के कारण हुए विघटन से उबरता, उसे पांचवीं सदी में एक और बड़े खतरे से जूझना पड़ा। पांचवीं सदी के मध्य में यूरोप (पूर्व और पश्चिम दोनों) का एक बड़ा भाग एटीला के अल्पकालिक हूण साम्राज्य का एक हिस्सा बन गया। यूरोप में एटीला साम्राज्य के विस्तार ने रोमन क्षेत्रों में जर्मनिक

कबीलों की अग्रगति अस्थायी रूप से रोक दी। यहां तक कि हूणों को पछाड़ने के लिए कुछ जर्मनिक समूहों ने रोमन सेना से भी हाथ मिला लिया। 451 में एटीला की हार हो गई। 453 में उसकी मौत हो गई। इसके साथ ही यूरोप में हूण साम्राज्य खत्म हो गया। इसके बाद जर्मनिक कबीलों ने नए सिरे से हमले शुरू किए। पूर्व के मामले में विसिगॉथ की जगह अब गॉथों की एक अन्य शाखा आस्ट्रोगॉथ ने ले ली। हूण आक्रमण आस्ट्रोगॉथों को निम्न डैन्यूब की दिशा में ढकेलने के लिए उसी तरह जिम्मेदार कारकों में से एक है जिस तरह चौथी सदी के उत्तरार्द्ध में हूण आक्रमण के पहले दौर ने कबायली उथल-पुथल की एक शृंखला शुरू कर दी थी। इसने विसिगॉथों को साम्राज्य में प्रवेश करने के लिए बाध्य कर दिया था। इसकी परिणति हैड्रीयानोपोलिस के युद्ध में हुई थी।

पांचवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, अर्थात एटीला के बाद के काल में निम्न डैन्यूब क्षेत्र में आस्ट्रोगॉथों की बस्तियों में जबर्दस्त इजाफा हुआ। इस इलाके में आस्ट्रोगॉथों की बढ़ती मौजूदगी पूर्वी साम्राज्य की स्थिरता बिगाड़ सकती थी। फिर भी बैजंतियाई इस दबाव को सहने में सक्षम रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने आस्ट्रोगॉथों को इटली की तरफ रुख करने के लिए प्रेरित किया।

उस समय इटली में एक राजनीतिक शून्यता थी। पश्चिम का सम्राट हानोरियस के समय से ही सिर्फ नाम का शासक था। यह स्थिति 476 तक चली जब पश्चिमी सेना ने ओडोएसर (या ओडोवेसर) को अपना शासक चुना। पश्चिमी सेना में अब तक जर्मनिक लोगों की बहुसंख्या हो गई थी। ओडोएसर एक जर्मनिक कमांडर था। ओडोएसर ने रोमुलस आगस्टुलस का सत्ता से हटा दिया। पारंपरिक ऐतिहासिक विवरण आगस्टुलस को पश्चिम का आखिरी रोमन सम्राट करार देते हैं। इसी के साथ इटली में रोमन राज्यतंत्र के ढहने की प्रक्रिया पूरी हो गई। यह ध्यान में रखना चाहिए कि पश्चिम में साम्राज्य ने अफ्रीका का प्रांत वैंडल के हाथों और स्पेन विसिगॉथ के हाथों गंवाया था जबकि गाल सुएबी, एलानी, फ्रैंक और बरगंडियाइयों जैसे अनेक जर्मनिक कबीलों के हाथ लगा था।

आस्ट्रोगॉथों ने इटली में व्याप्त अव्यवस्था का फायदा उठाया और उस पर हमला कर दिया। उनका नेतृत्व उनके सरदार थियोडोरिक ने किया। वास्तव में बैजंतियाई सम्राट जेनो (474-497) ने थियोडोरिक से इटली के राजा की उपाधि ग्रहण करने का आग्रह किया था। 490 तक आस्ट्रोगॉथों ने इटली पर कब्जा कर लिया और 493 में थियोडोरिक ने राजा की उपाधि ग्रहण कर ली। थियोडोरिक ने कास्टैनटिनोपल के साथ महज नाम के लिए संबंध रखा। जर्मनिक कबीलों का रुख पश्चिम की तरफ मोड़ने की बैजंतियाई रणनीति दूसरी बार कामयाब रही, पहली बार विसीगॉथ के मामले में और दूसरी बार आस्ट्रोगॉथ के मामले में। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि गॉथों ने पाया कि सेना के सहारे कांस्टैनटिनोपल को रौंदना मुश्किल है। दूसरी तरफ पश्चिम उनके लिए आसान चारा था।

छठी सदी के शुरू में पूर्वी साम्राज्य के पुनरुज्जीवन के और विस्तार के लिए स्थितियां अनुकूल थीं। इसे जस्टिनियन के शासनकाल में पूरा किया गया। हमने रोमन सभ्यता की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियों के संरक्षण और विकास में उसकी भूमिका पर गौर किया था। जस्टिनियन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रोमन कानून का संहिताकरण है। यहां जस्टिनियन के विजय अभियानों का एक संक्षिप्त वर्णन देने की जरूरत है जिससे कुछ पश्चिमी प्रांत कांस्टैनटिनोपल के नियंत्रण में आ गए। जस्टिनियन के नेतृत्व में पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में बैजंतियाई विस्तार का पश्चिम में कुछ जर्मनिक राज्यों के इतिहास पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा और सिर्फ इसी परिप्रेक्ष्य में हम उसकी नीतियों को रेखांकित करेंगे।

जस्टिनियन प्रथम (या जस्टिनिएनस प्रथम) बाल्कन क्षेत्र का था। उसका परिवार किसानों का था। लेकिन सैन्य सेवा से वह इस बुलंदी पर पहुंचा। जस्टिनियन का चाचा, जस्टिन प्रथम 518 में बैजंतियाई साम्राज्य का सम्राट बना और उसने 527 तक शासन किया। जस्टिन ने अपने भतीजे जस्टिनियन को अपना उत्तराधिकारी चुना। जस्टिनियन 518 से ही साम्राज्य के शासन से जुड़ा था। 527 में जस्टिन के मरने पर वह सम्राट बना। अपने शासनकाल की शुरुआत में उसे बैजंतियाई साम्राज्य की पूर्वी सीमा को मजबूत और सुरक्षित करने पर पहला ध्यान देना पड़ा। बैजंतियाइयों और उसके पूर्व में स्थित सासानियों के ईरानी साम्राज्य के बीच एक लंबी सीमा थी। फरात नदी दोनों साम्राज्यों के बीच पारंपरिक सीमा को रेखांकित करती थी। दोनों साम्राज्यों ने अपना विस्तार करने की लगातार कोशिश की जिससे दोनों के बीच अकसर झड़पें होती थीं। उत्तरी मेसोपोटामिया और आरमीनिया इन युद्धों की दो प्रमुख जगहें थे। यहां यह याद किया जा सकता है कि छठी सदी के इन टकरावों ने दोनों साम्राज्यों को पस्त कर दिया और पश्चिम एशिया में अरब प्रभुत्व का मार्ग प्रशस्त कर दिया। जस्टिनियन ने 532 में सासानियों के साथ एक अल्पकालिक शांति संधि की। इससे उसे बैजंतियाई सेना को कहीं और तैनात करने का मौका मिला। लेकिन 540 के बाद फारस के साथ समय-समय पर युद्ध जारी रहा और सातवीं सदी में अरब हमलों तक यह चलता रहा (देखें अध्याय ग्यारह)।

फारस के साथ एक अस्थायी समझौता तक पहुंचने के बाद जस्टिनियन अपनी सेना पश्चिमी मेसोपोटामिया की तरफ ले गया। यहां उसने जर्मनिक कबीलों के हाथों खोए कुछ रोमन प्रांत फिर से प्राप्त करने की कोशिश की 1534 में जस्टिनियन को अफ्रीकी प्रांत पर शासन कर रहे वैंडलों को परास्त करने में सफलता मिली। उसने पश्चिमी भूमध्य-सागरीय क्षेत्र में कुछ बड़े द्वीपों, मसलन सार्डिनिया और कौर्सिका का विलय कर लिया। बेलीसारियस नामक एक बैजंतियाई जनरल ने इन जीतों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जस्टिनियन ने उसके बाद इटली पर हमला किया। थियोडोरिक के समय से ही इटली आस्ट्रोगॉथों के अधीन था। थियोडोरिक ने कांस्टैनटिनोपल का नाममात्र का प्रभुत्व

स्वीकार किया था। 526 में उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के लिए लंबे समय तक संघर्ष चला। जस्टिनियन ने वहां के इन हालात का फायदा उठाया और इटली को अपने साम्राज्य में मिलाने के लिए 540 से हमलों का एक तांता लगा दिया। 552 में कहीं जाकर आस्ट्रोगॉथों को पूरी तरह परास्त किया जा सका। हालांकि जस्टिनियन ने इटली में आस्ट्रोगॉथ शासन का चिराग बुझा दिया, बैजंतियाई वहां अपनी पकड़ मजबूत करने में असफल रहे। 565 में जस्टिनियन की मौत के कुछ ही अरसे बाद एक अन्य जर्मनिक कबीला लोंबार्ड इटली में घुस गया और उसने प्रायद्वीप के एक बड़े हिस्से पर अपना राज कायम कर लिया।

इस तरह पूर्वी साम्राज्य न सिर्फ जर्मनिक हमलों के सामने टिकने में, बल्कि अनेक हमलावर जर्मनिक कबीलों का रुख पश्चिम की तरफ मोड़ देने में सफल रहा। इसके साथ ही जस्टिनियन के शासनकाल में बैजंतियाइयों ने पश्चिम में दो प्रमुख जर्मनिक राज्यों (वैंडल शासित अफ्रीका और आस्ट्रोगॉथ के शासन वाले इटली) को नष्ट करने में भी सफलता पाई। हमें इसी पृष्ठभूमि में पश्चिम में हो रहे संक्रमण को देखना चाहिए।

II

पश्चिमी यूरोप में इटली, गॉल और स्पेन रोमन साम्राज्य के मुख्य क्षेत्र थे। पश्चिम पर जर्मनिक कब्जे के पहले चरण में राइन नदी के पूर्व के क्षेत्र (रोमन आमतौर पर उस क्षेत्र को 'जर्मनिया' कहते थे) में मूल रूप से बसे अनेक जर्मनिक कबीलों ने 406 में बड़े पैमाने पर देशांतरण के क्रम में राइन नदी पार की। इन कबीलों में सुएबी, अलानी, वैंडल और बरगंडी शामिल थे। जर्मनिक कबीलों के देशांतरण को जर्मन में *फोल्करवांडरूंग* कहा जाता है। गॉथ और लोंबार्ड भी इस महान देशांतरण आंदोलन या *फोल्करवांडरूंग* का एक हिस्सा थे। पांचवीं सदी की शुरुआत में राइन के पार फोल्करवांडरूंग करने वाले कबीले गॉल के विभिन्न हिस्सों में बस गए। अलानी गॉल और स्पेन में बिखर गए। सुएबी स्पेन की दिशा में पश्चिम की तरफ चले गए। बरगंडियों ने दक्षिण-पश्चिम और मध्य गॉल में अपना राज्य स्थापित किया। वैंडल अफ्रीका जीतने से पहले इटली और स्पेन की तरफ बढ़े। गॉथ के संबंध में हम देख चुके हैं कि विसीगॉथ और आस्ट्रोगॉथ निम्न डैन्यूब और दक्षिणी यूरोप के रास्ते पश्चिमी यूरोप में घुसे। पश्चिम में जर्मनिक हमलों के पहले चरण के नतीजों पर अध्याय दस में चर्चा हो चुकी है।

जर्मनिक हमलों का दूसरा चरण पांचवीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ। यह तकरीबन एक सौ साल तक चला। दरअसल यूरोप को एक एकल संगठित कबायली संचलन की जगह जर्मनिक हमलों/देशांतरणों की कई लहरों से गुजरना पड़ा। *दूसरे चरण* में हिस्सा लेने वाले प्रमुख कबीलों में फ्रैंक, आंग्ल, सैक्सन, अलामानी (या अलेमान) और लोंबार्ड

शामिल थे। फ्रैंकों ने उत्तरी गॉल पर कब्जा किया, आंग्ल और सैक्सन (बाद में ये आंग्ल-सैक्सन कहलाए) ब्रिटेन में बसे। अलामानी राइन के इलाके में बस गए जबकि लोंबार्डों ने इटली में अपना शासन स्थापित किया। इन प्रमुख कबीलों में से लोंबार्ड सबसे बाद में (छठी सदी के उत्तरार्द्ध में) पहुंचे। लेकिन चूंकि वे रोमन साम्राज्य का हृदय प्रदेश इटली के प्रमुख जर्मनिक कबीला बन गए, हम पहले उनके देशांतरण या *वोल्करवांडरूंग* का अध्ययन करेंगे।

लोंबार्ड (लैटीन में लोंगोबार्डी) एक जर्मनिक कबीला था जो मूलत: स्कैंडिनेविया में रहता था। वे सुएबी की एक शाखा थे। लोंबार्डों ने कई सदियों के दौरान दक्षिण की तरफ गमन किया। पांचवीं सदी तक उनकी बस्तियां डैन्यूब के उत्तर में (मोटे तौर पर आज के आस्ट्रिया) मध्य यूरोप में बस चुकी थी। पांचवीं सदी के उथल-पुथल ने लोंबार्डों को अव्यवस्थित कर दिया। वे दक्षिण की तरफ बढ़े और छठी सदी की शुरुआत में आल्पस के उत्तर में बस गए। उस वक्त तक लोंबार्ड कोई आदिम कबीलाई लोग नहीं रह गए थे। उनके अंदर सामाजिक विभेदीकरण पैदा हो गया था। साथ ही, राजशाही की संस्था भी वजूद में आ चुकी थी। 546 में औडोइन लोंबार्ड का राजा बना। उसके राजवंश ने अगली कई सदियों तक लोंबार्ड और उनके इलाके पर राज किया।

लोंबार्ड ने करीब 568 में आल्पस पार कर इटली पर हमला किया। उनका नेतृत्व औडोइन के उत्तराधिकारी अलबोइन (568-73) ने किया। यह घटना जस्टिनियन की मौत के कुछ ही समय बाद हुई। इटली पर जस्टिनियन के हमले से आस्ट्रोगॉथों के राज्य का पतन हो गया था। फिर भी बैजंतियाई इटली पर मजबूत पकड़ नहीं बना सके। जस्टिनियन के बाद इटली में एक बार फिर राजनीतिक शून्यता आ गई। लोंबार्डों ने इस शून्यता को भरा। 570 तक आल्पस और पो नदी के बीच का इलाका लोंबार्डों के शासन के अधीन आ गया। लोंबार्डों ने अपना नियंत्रण मध्य और दक्षिणी इटली के हिस्सों तक कर लिया। बहरहाल उत्तरी इटली उनके राज्य का केंद्रक बना रहा। आज भी इटली का यह हिस्सा लोंबार्डी (मिलान लोंबार्डी का सर्वप्रमुख नगर है) कहलाता है। लोंबार्ड राज्य की राजधानी पाविया था। यह राज्य दो सदियों तक टिका रहा।

लोंबार्डों ने आस्ट्रोगॉथ राज्य को रेखांकित करने वाले द्वैतवात का खात्मा कर दिया। यह दूसरे चरण में स्थापित अन्य जर्मनिक राज्यों में से कई के लिए भी सही था। अब तक नागरिक और न्यायिक प्रशासन का एक समांतर रोमन-इतावली दायरा था जो स्थानीय आबादी के अधीन था। उसे खत्म कर दिया गया और समूचे प्रशासनिक उपकरण को सीधे जर्मनिक नियंत्रण के अधीन कर दिया गया। पहले *हास्पीटालिटास* योजना के तहत जागीरों और आश्रित मजदूरों को जर्मनिक सरदारों और रोमन भूस्वामियों के बीच बांटा जाता था। लोंबार्डों ने उसे जारी रखने के बजाए रोमन भूस्वामी कुलीन वर्गों की जमीनों को बड़ी बेरहमी से हथिया लिया। आस्ट्रोगॉथों और राज्य के रोमन घटकों (आस्ट्रोगॉथों

ने राजस्व की एक तिहाई की मांग की थी) के बीच करों के बंटवारे की आस्ट्रोगॉथों की व्यवस्था खत्म कर दी गई। सभी कर अब लोंबार्ड राज्य को मिलते थे। लेकिन केंद्रीय स्तर पर कर वसूली का मामला एक बड़ी समस्या बनी रही। रोमन और जर्मनिक बाशिंदों के लिए अलग-अलग कानून का प्रावधान खत्म कर दिया गया। उसकी जगह एक समान लेकिन अपेक्षाकृत ज्यादा आदिम और अपरिष्कृत जर्मनिक कानूनी व्यवस्था स्थापित की गई। दूसरे शब्दों में, रोमन राज्य की संस्थाओं को खत्म करने की प्रक्रिया लोंबार्ड काल में पूरी हो गई। एक नए तरह के राज्य के विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। यह प्राधिकारों के विकेंद्रीकरण, भू-अनुदान के रूप में वेतन अदायगी और (केंद्रीकृत नियमित सेना रखने के बजाए) जर्मनिक सरदारों पर युद्ध के समय सैनिक उपलब्ध कराने के दायित्व निर्धारण पर आधारित था। इस घटनाक्रम ने इटली में क्लासिकी सामंतवाद को उभरने में मदद की। फिर भी, रोमन सभ्यता की मूल भूमि होने के कारण इटली पश्चिमी यूरोप के अन्य हिस्सों के कुछ हद तक भिन्न था। यहां रोमन संस्थाओं को उस बुरी तरह नष्ट नहीं किया गया जो अन्य स्थानों पर किया गया था। खासतौर पर कानून और साक्षरता के क्षेत्र में यह बात ज्यादा सही है।

लोंबार्ड राज्य आठवीं सदी के शुरू में राजा लियुडप्रांड (712-44) के शासन-काल में अपने उत्कर्ष पर पहुंचा। लियुडप्रांड लोंबार्ड शासकों में सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। इस दौरान लोंबार्ड शासन का इटली में विस्तार हुआ। क्षेत्रीय विस्तार का लोंबार्डों का प्रयास लियुडप्रांड के बाद भी जारी रहा। इस के चलते वे अनेक झड़पों में उलझे और अधिकाधिक अलोकप्रिय होते गए। जैसा कि हम देखेंगे, गॉल के फ्रैंक शासक शार्लमेन ने इस संघर्ष में हस्तक्षेप किया और लोंबार्डों को परास्त (773) किया। शार्लमेन की जीत ने लोंबार्ड राज्य को खत्म कर डाला।

स्पेन का विशाल प्रांत (और साथ ही आधुनिक पुर्तगाल) उन इलाकों में से है जिसे रोमनों ने अपने समुद्र पार अभियान में सबसे पहले जीता था। स्पेन के लिए 'प्रांत' का शब्द यहां बेहद ढीले-ढाले अर्थों में उपयोग किया जा रहा है, क्योंकि इस चरण में उसे 'देश' कहना भ्रामक और गलत होगा। गॉल जैसे अनेक अन्य प्रांतों के समान स्पेन में भी कोई एक प्रशासनिक इकाई नहीं थी, बल्कि वह अनेक प्रांतों में विभाजित था (हम स्पेन, गॉल इत्यादि के लिए प्रांत शब्द का इस्तेमाल महज सुविधा के लिए कर रहे हैं; हमें याद रखना चाहिए कि सही अर्थ में इटली प्रांत की श्रेणी में नहीं आता था)। अपने व्यापक लैटीफुंडिया के साथ स्पेन गुलाम श्रम पद्धति का एक मुख्य केंद्र था और गुलाम-आधारित उत्पादन के संकट से उसकी अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो गई थी।

चौथी सदी के अंत तक स्पेन में रोमन प्रशासन ढह चुका था। राजनीतिक सत्ता भूस्वामी कुलीन वर्ग के हाथों में केंद्रित हो गई थी जिन्होंने गुलाम श्रम में आए संकट के कारण मुक्त कृषकों का बेदर्दी से शोषण करना शुरू कर दिया था। पांचवीं सदी की शुरुआत में

वैंडलों, सुएबियों और आलानियों ने गॉल के कुछ हिस्सों पर कब्जा करने के बाद स्पेन में प्रवेश किया। कुछ वैंडल समूह ने दक्षिणी स्पेन पर कब्जा किया जो उसके बाद वैंडालुसिया (यह क्षेत्र अब भी एंडालुसिया कहलाता है और शायद वैंडालुसिया से उसकी उत्पत्ति हुई है) कहलाने लगा। अलानी और सुएबी ने भी स्पेन के विभिन्न हिस्सों में अपनी बस्तियां बसाईं। लगभग उसी समय विसिगॉथों ने अलाटिक द्वारा इटली की लूट-खसोट के बाद स्पेन पर हमला किया। इस प्रांत में जारी उथल-पुथल ने विसिगॉथों को अपना पांव जमाने का मौका दिया।

शुरू में विसिगॉथों ने पाइरेनीस पर्वत के निकट के इलाके को अपना घर बनाया। पाइरेनीस दक्षिण-पश्चिम फ्रांस में स्थित है और फ्रांस (गॉल) को स्पेन से विभाजित करता है। विसिगॉथों का पाइरेनीस की दोनों तरफ, दक्षिण-पश्चिम गॉल और उत्तर-पूर्व स्पेन, के बड़े इलाकों पर नियंत्रण था। 418 में इस क्षेत्र में विसिगॉथों का एक नया राज्य स्थापित हुआ जिसकी राजधानी दक्षिण-पश्चिम गॉल में (पाइरेनीस से लगे) टुलूज में थी। कुछ समय तक विसिगॉथों ने रोमन सम्राट के प्रति नाममात्र की वफादारी जताई। दरअसल रोम ने विसिगॉथों से अपील की थी कि वह वैंडल, सुएबी और अलाबी से निबटें। विसिगॉथ पांचवीं सदी के बाकी हिस्से में उन कबीलों से निबटने में जुटे रहे। 475 में विसिगॉथ के राजा यूरिक ने अंततः खुद को रोम से स्वतंत्र घोषित कर दिया। यह नए राज्य की स्थिरता और मजबूती का प्रदर्शन था।

बहरहाल छठी सदी की शुरुआत में विसिगॉथों को एक जबर्दस्त झटका लगा। फ्रैंकों ने गॉल में अपने विस्तार के क्रम में उन्हें जंग (507) में परास्त कर दिया था। विसिगॉथ गॉल से पीछे ढकेल दिए गए। उन्हें पाइरेनीस के पार हटना पड़ा। इसके बाद विसिगॉथों ने स्पेन में अपने राज्य के विस्तार पर जोर दिया। छठी सदी में विसिगॉथों ने स्पेन के ज्यादातर हिस्सों को अपने राज्य में मिला लिया। स्पेन के मध्य में स्थित टोलेडो (टोलेडो आधुनिक मैड्रिड के ठीक दक्षिण में स्थित है) करीब दो सदियों तक विसिगॉथों के स्पेनी राज्य की राजधानी बना रहा। यह राज्य 711 में अरबों के स्पेन विजय तक कायम रहा।

विसिगॉथों ने रोमन संस्कृति की अनेक विशेषताएं अपनाईं। पांचवीं सदी तक उनका पर्याप्त रोमनीकरण हो चुका था। उन्होंने रोमन साम्राज्य के उत्तराधिकारी होने का दावा कर अपने शासन को वैधता प्रदान की। विसिगॉथों ने रोमन संस्थाओं को पूरी तरह नहीं नकारा। उनमें से अनेक संस्थाएं एक नया प्रशासनिक ढांचा खड़ा करने में लाभदायक साबित हुईं। बहरहाल राज्य प्रणाली के बिखराव के मद्देनजर उन्हें शासन की समस्याओं के नए हल तलाश करने थे। उनमें से एक हल जर्मनिक सरदारों, शक्तिशाली जमींदारों और सैनिक नेताओं को अपने संबंधित प्रभाव क्षेत्र के निवासियों के प्रति आधिकारिक स्तर पर जिम्मेदार बना देना था। यह एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था में विकसित हुई जिसके तहत बड़े क्षेत्रों की देखरेख करने वाले अपने क्षेत्र के स्थानीय अभिजातों को संबंधित

क्षेत्र के निवासियों का उत्तरदायित्व सौंपते थे। यह शृंखला गांव या कुल के स्तर तक जाती। ज्यादा शक्तिशाली व्यक्ति कम शक्तिशाली व्यक्तियों को संरक्षण पेश करता।

यहां हम सामंती रिश्तों पर आधारित प्रशासनिक ढांचा को भ्रूण रूप में देख सकते हैं। मार्क ब्लॉख (*फ्युडल सोसाइटी*) के शब्दों में, '(पूर्व मध्यकालिक पश्चिमी यूरोप में) जबरी सेवाएं प्राप्त करने और आवश्यक दंड लागू कराने में केंद्रीय सरकार को जो प्रमुख दिक्कत पेश आई वह व्यक्तिगत स्तर पर प्रजा तक पहुंचना था।' उनके मुताबिक इससे 'प्रशासन के उद्देश्य से सुरक्षात्मक संबंधों के दृढ़ स्थापित तंत्र के इस्तेमाल' का विचार उत्पन्न हुआ। ब्लॉख कहते हैं कि इस तरह का ढांचा सबसे पहले विसिगॉथों के स्पेन में वजूद में आया। फिर यह पश्चिमी यूरोप के दूसरे हिस्सों में फैल गया। फ्रैंकों ने गॉल में इसे अपनाया और यह सामंती व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अवयव बन गया।

ऐसा आकलन किया गया है कि विसिगॉथों की संख्या 2,00,000 के लगभग थी जबकि स्पेन की स्थानीय आबादी 30 से 40 लाख के करीब थी। फिर भी विसिगॉथों के शासक वर्ग ने अधिशेष के एक बहुत बड़े हिस्से पर दखल किया। बड़े भूस्वामियों को अपनी जायदादों का दो तिहाई हिस्सा विसिगॉथ सरदारों को सुपुर्द करना पड़ा। राज्य ने दो तिहाई राजस्व अपने इस्तेमाल के लिए आरक्षित रखा। शहरी केंद्रों और व्यापार के पतन का सिलसिला जारी रहा।

विसिगॉथों के लागू किए गए अनेक कानून विसिगॉथों और स्थानीय निवासियों के बीच भेदभाव करते थे। शुरू से ही विसिगॉथ शासकों ने राज्य के संचालन के लिए कानूनों को संहिताबद्ध करने की प्रक्रिया शुरू कर दी थी। ये रोमन और जर्मनिक कानूनों के मिश्रण थे। विसिगॉथों के शासन के अधीन इलाकों के कानून यूरिक की संहिता (*कोडेक्स यूरिसिएनस*) और उसके पुत्र एलरिक द्वितीय (उसने 484-507 तक शासन किया तथा फ्रैंकों के हाथों पराजित हुआ) की संहिता में शामिल हैं। विसिगॉथों का राज्य अत्यंत शोषणकारी और बेरहम था। शायद यह भी एक कारण था जिसके चलते अरबों ने इतनी आसानी से स्पेन सर कर ली।

हम स्पेन को एक अपवाद मान सकते हैं क्योंकि जर्मनिक हमलों का इस प्रांत पर वह दूरगामी नतीजा नहीं निकला जो पश्चिम यूरोप के अन्य हिस्सों में दिखा। स्पेन में विसिगॉथों के शासनकाल में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियां जर्मनिक हमलों के पहले चरण का ही विस्तार थीं। पहले चरण में द्वैतवाद संशोधित कर दिया गया था, लेकिन उसका परित्याग नहीं किया गया था। आठवीं सदी से स्पेन अरबों के शासन में आ गया। इसलिए अगली कुछ सदियों के दौरान वह कुछ दूसरे रास्ते पर चला। *यह गॉल था जहां जर्मनिक आक्रमण के दूसरे चरण ने सबसे गहरा असर छोड़ा।* यहां फ्रैंकों के नियंत्रण वाले क्षेत्र में क्लासिकी सामंतवाद का जन्म हुआ। हम अगले खंड में फ्रैंकों के उत्थान पर चर्चा करेंगे।

III

फ्रैंक जर्मनिक कबीलों में से एक थे। वे राईन के पूर्व में, जर्मेनिया में, कई सदियों तक रहे। दूसरे अन्य जर्मनिक कबीलों के समान ही फ्रैंकों ने भी चौथी सदी के अंत तक छोटे-छोटे समूहों में रोमन गॉल में धीरे-धीरे घुसपैठ किया होगा। उसके बाद पांचवीं सदी की शुरुआत में, राईन सीमा से रोमन सेना के हटाए जाने के बाद फ्रैंक भारी तादाद में गॉल पहुंचे। पांचवीं सदी के मध्य तक वे उत्तरी गॉल की आजादी का एक बड़ा हिस्सा बन चुके थे।

पांचवीं सदी के गॉल में विभिन्न जातीय एवं भाषाई समूहों का वास था। सबसे पहले सेल्ट थे जो प्राक्-रोमन काल से वहां रह रहे थे। फिर रोमन अधिवासी थे जिनकी बड़ी संख्या कोलोनाइ भाषा बोलती थी (वहां रोमन साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों के गैर-लातीनी गुलाम, कोलोनी और मुक्त किसान भी रहते थे)। अंत में वहां जर्मनिक मूल के लोग, बरगंडी, सुएबी, अलानी, फ्रेंक, अलेमानी और विसिगॉथ रहते थे। जैसा हम देख चुके हैं, बरगंडियों ने दक्षिण-पश्चिमी और मध्य गॉल पर राज किया। दक्षिण-पूर्व पर विसिगॉथों का प्रभुत्व था। रोम के नियंत्रण में इटली की सीमा पर, भूमध्यसागर के तट से लगी, जमीन की एक छोटी सी पट्टी थी। फ्रैंक उत्तरी गॉल में मुख्य रूप से केंद्रित थे। यह जिक्र किया जा सकता है कि उत्तरी गॉल दक्षिणी भाग के मुकाबले कम रोमनीकृत था। इस तरह उत्तर में जर्मनिक रीति-रिवाज और परंपराएं थोपना ज्यादा आसान था।

पांचवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जाकर फ्रैंकों ने प्रमुखता पाई। उन्होंने उत्तरी गॉल के ज्यादातर हिस्सों को अपने नियंत्रण में लाना शुरू किया। फ्रैंक दो प्रमुख समूहों, सैलियन फ्रैंक और रिपुएरियन फ्रैंक में विभाजित थे। उस काल में फ्रैंक समुदाय वर्गों में विभाजित हो चुका था। कबीलाई समाज का संगठन विखंडित हो चुका था और उसके फलस्वरूप एक तरफ जर्मनिक आश्रित किसान और दूसरी तरफ भूपति आभिजात्य वर्ग उभरे थे। इस भूपति आभिजात्य वर्ग में कुलों के सरदार और पेशेवर योद्धा शामिल थे। एक राजतंत्रीय राज्य वजूद में आया। लेकिन शुरू में राजा के पास सीमित अधिकार थे। राजाओं को कबीले के दूसरे सरदारों और अपने परिवार के दीगर सदस्यों के साथ सत्ता की साझेदारी करनी पड़ती थी।

इससे पहले जब भी सैन्य गोलबंदी की जरूरत पेश आती, कबीले के तमाम वयस्क पुरुष सैनिक की भूमिका निभाते। शांति के काल में वे खेती करते और मवेशी पालते। सामाजिक स्तरीकरण के गहराने से एक पेशेवर योद्धा वर्ग उभरा। इस वर्ग ने भूमि पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया। गॉल की विजय ने फ्रैंकों को व्यापक भूमि दिलाई थी। जब फ्रैंकों ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया तो रोमन भूपतियों से उनकी जमीनें छीन ली गईं। इसने फ्रैंकों में सामाजिक स्तरीकरण की रफ्तार तेज कर दी। ज्यादातर लोग अब

सैनिक नहीं रहे। वह महज किसान थे। अब से सेना में जर्मनिक किसानों की भूमिका थोड़ी सी रह गई थी। समय के साथ रोमन (या गैलो-रोमन) भूपति कुलीन वर्ग से छीनी गई जायदादों पर बसे जर्मनिक किसानों और उस क्षेत्र में बसे रोमन कोलोनाइ, पूर्व गुलाम या दीगर आश्रित किसानों के बीच कोई फर्क नहीं रह गया।

पांचवीं सदी के अंतिम चतुर्थांश में क्लोविस (जर्मन में ख्लोदविग) नामक एक जर्मनिक सरदार ने फ्रैंकों के राजा की उपाधि ग्रहण की। क्लोविस सालियान फ्रैंक था और मेरोवेक परिवार का सदस्य था। मेरोवेक प्रत्यक्षत: एक फ्रैंक कबीलाई सरदार था और क्लोविस का दादा था। क्लोविस फ्रैंक राजाओं के एक राजवंश का संस्थापक बन गया जिसने 751 तक गॉल पर राज किया। इतिहास में इस राजवंश को मेरोविंजी राजवंश (इसका नाम मेरोवेक पर रखा गया है) के नाम से जाना जाता है। क्लोविस ने 481 में अपने पिता (मेरोवेक का पुत्र चिल्डरिक प्रथम) के देहांत के बाद सालियान फ्रैंकों का नेतृत्व संभाला। आमतौर पर इस पर सहमति है कि 481 में फ्रैंक राज्य की स्थापना हुई। पारंपरिक ऐतिहासिक वर्णनों में यह तारीख रोमन गॉल से भिन्न एक नई राजनीतिक-भौगोलिक हस्ती—फ्रांस (फ्रैंक से व्युत्पन्न) की शुरुआत को रेखांकित करती है। इस बिंदु से हम इस क्षेत्र के लिए गॉल की जगह फ्रांस का शब्द इस्तेमाल करेंगे क्योंकि इससे इस क्षेत्र की ज्यादा स्पष्ट पहचान होती है। बेशक इसका यह कतई मतलब नहीं हुआ कि 481 के बाद 'फ्रांस' नाम ने 'गॉल' की जगह ले ली। दरअसल जब तक दसवीं सदी का अंत नहीं हुआ, 'फ्रांस' नाम का व्यापक इस्तेमाल शुरू नहीं हुआ। लोग एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया में किसी देश अथवा क्षेत्र को कोई नाम देते हैं और यह स्थान, काल और भाषा के अनुरूप बदलता रहता है (एक भौगोलिक क्षेत्र को विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न नाम दिया जा सकता है)।

क्लोविस ने उत्तरी फ्रांस के इलाकों का एकीकरण किया। इससे पहले उन पर विभिन्न जर्मनिक कबीलों का कब्जा था। पांचवीं सदी के अंत तक वह रिपुआरियाई फ्रैंकों और अलेमानी के कब्जे वाले इलाकों को मिला चुका था। 507 में उसने विसिगॉथों को हरा दिया और उन्हें फ्रांस से खदेड़ दिया। मेरोविंजियों के हाथों में अब फ्रांस के ज्यादातर हिस्सों का नियंत्रण था। अब फ्रांस में एकमात्र प्रमुख जर्मनिक राज्य जो बचा था, वह दक्षिण-पश्चिम में बरगंडियाइयों का था। छठी सदी के उत्तरार्द्ध में मेरोविंजियों ने उसे भी खत्म कर डाला।

मेरोविंजी शक्ति की वृद्धि में जिन महत्वपूर्ण कारकों ने योगदान दिया उनमें क्लोविस का ईसाई बनना भी शामिल था। क्लोविस (और उसके साथ समूचे फ्रैंकों) ने आर्थोडाक्स ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। इसने मेरोविंजी राज्य को फ्रांस के बिशपों के साथ गठबंधन करने का मौका दिया। चर्च ही एकमात्र संगठित संस्था थी जो रोमन काल से टिकी थी। इसके पास अपार संपत्ति थी। शिक्षा पर उसका लगभग एकाधिकार था और आमतौर पर

अच्छा-खासा राजनीतिक तथा सामाजिक प्रभाव था। यहां यह जिक्र करना प्रासंगिक होगा कि फ्रैंकों के बरखिलाफ पश्चिमी यूरोप के ज्यादातर प्रमुख जर्मनिक राज्यों ने एरियसवाद स्वीकार कर लिया था। इसने उन्हें रोमन साम्राज्य के स्थापित चर्च के साथ टकराव में ला दिया। याद रहे कि नाइसीया की परिषद (325) ने एरियसवाद को खारिज कर दिया था। इसका अर्थ हुआ कि रोमन राज्य ने ईसाइयत को उसके कैथोलिक रूप में ग्रहण किया। चूंकि वैंडलों, गॉथों और लोंबार्डों ने एरियसवाद को स्वीकार कर लिया था, उन्हें चर्च की संस्थाओं के विरोध सहने पड़े। दूसरी तरफ फ्रैंक अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए चर्च के सहयोग पर भरोसा कर सकते थे।

जब 511 में क्लोविस का देहांत हुआ, मेरोविंजी साम्राज्य को उसके चारों बेटों के बीच बांट दिया गया। यह फ्रैंक राज्य की एक विशेषता बनी रही। जर्मनिक राज्य संरचना की अपनी विशेषताएं थीं। जर्मनिक कबीले, मसलन फ्रैंक, एक कबायली राजव्यवस्था से एक राजतांत्रिक साम्राज्य की ओर संक्रमण कर रहे थे। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि उनके द्वारा स्थापित राज्यों में उनके कबीलाई अतीत के कुछ पहलू बरकरार थे। जर्मनिक कबीलों ने एक राजतांत्रिक राज्य के निर्माण की प्रक्रिया में रोमन संस्थाओं को अपनाया था और उन्हें संशोधित किया था। लेकिन यह पहले चरण के जर्मनिक राज्यों के लिए आसान था। जब उनके हमलों का दूसरा दौर शुरू हुआ, तो उस समय तक रोमन राज्य के कुछ ही तत्व बचे रह पाए थे (हमलों के पहले दौर ने स्वयं रोमन राज्य के विध्वंस में योगदान किया था)। उत्तरी गॉल जैसे क्षेत्रों के मामले में जो कम रोमनीकृत थे, यह टूट-फूट ज्यादा प्रत्यक्ष थी। नतीजतन फ्रैंकों को अपनी राजतांत्रिक परंपराएं विकसित करनी पड़ीं। इन परंपराओं में से कुछ उनके कबीलाई संगठन से उत्पन्न हुई थीं।

फ्रैंक (मेरोविंजी) साम्राज्य राजा का निजी अधिकार क्षेत्र माना जाता था। इसलिए वह विरासत के उसी कानून के मातहत था जिसके तहत निजी संपत्ति के दूसरे रूप आते थे। जर्मनिक कबीलों के लिए निजी संपत्ति, खासकर जमीन से जुड़ी निजी संपत्ति, अपने आप में एक नई अवधारणा थी। जब कोई व्यक्ति मरता तो फ्रैंक रीति-रिवाज के मुताबिक उसकी संपत्ति उसके तमाम बेटों के बीच बराबर-बराबर बांटी जाती थी। हालांकि यह पहले से एक पितृसत्तात्मक समाज में बदल चुका था और वर्ग के आधार पर विभाजित हो चुका था, कुछ कबायली रीति-रिवाज, जैसे तमाम पुरुष वंशजों के बीच संपत्ति का बंटवारा, टिके हुए थे। इसी अनुरूप राज्य भी बांटे जाते थे।

वर्ष 511 में मेरोविंजी साम्राज्य चार स्वतंत्र राज्यों में विभाजित किया गया जिस पर क्लोविस के पुत्रों ने राज किया। बेशक इन राज्यों के बीच अकसर झड़पें चलती थीं। फिर भी यह एक समग्र क्षेत्रीय विस्तार का काल था। इस क्रम में एक महत्वपूर्ण घटना 534 में बरगंडियाई राज्य के विजय की रही। इसने हमलों के पहले दौर में *फ्रांस* में स्थापित अंतिम जर्मनिक राज्य का खात्मा कर दिया। मेरोविंजी परिवार अब लगभग समूचे फ्रांस

पर शासन कर रहा था। करीब छठी सदी के मध्य में क्लोविस के पुत्रों में से एक क्लोटर प्रथम ने साम्राज्य का राजनीतिक एकीकरण किया। क्लोटर प्रथम 558 से लेकर 561 में अपनी मृत्यु तक विशाल मेरोविंजी साम्राज्य का एकछत्र शासक रहा।

यह साम्राज्य छठी सदी के उत्तरार्द्ध में अपने उत्कर्ष पर पहुंचा। क्लोटर प्रथम के निधन के बाद साम्राज्य का एक बार फिर विभाजन हुआ जिससे विभिन्न मेरोविंजी राज्यों के बीच नई झड़पें शुरू हुईं। फिर भी मेरोविंजी राजवंश आठवीं सदी के मध्य तक टिका रहा। ये शासक करीब 630 तक पर्याप्त रूप से शक्ति संपन्न रहे और समय-समय पर साम्राज्य का एकीकरण होता रहा। करीब 630 के बाद से साम्राज्य की असली ताकत मेरोविंजी अधिकारियों के हाथों में चली गई जो 'महल के मेयर' के नाम से जाने जाते थे।

महल के मेयर प्रमुख अधिकारी थे जिन्होंने सातवीं सदी की शुरुआत से मेरोविंजी साम्राज्य में एक अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी शुरू की थी। सातवीं सदी के मध्य तक वे तय करने लगे कि कौन राजा बनेगा। सदी के अंत तक राजा उनके हाथों में कठपुतली बनकर रह गए। महल का मेयर (*मेजोर पैलाती*) मूलत: उन अधिकारियों की उपाधि थी जो शाही परिवार के घरेलू मामलात की देखरेख करते थे। उनकी जिम्मेदारियों में राजा की निजी जायदादों की देखरेख भी शामिल थी। कुछ को राजकुमारों का शिक्षक नियुक्त किया गया था। इन अधिकारियों ने मेरोविंजी राज्यों के बीच की झड़पों का फायदा उठाया और मेरोविंजी सत्ता के पतन की रफ्तार तेज की। सातवीं सदी के मध्य के लगभग महल के मेयर के एक परिवार ने प्रमुखता ग्रहण कर ली। यह पिप्पिन प्रथम (या पेपिन प्रथम) का परिवार था। पिप्पिन प्रथम और उसका उत्तराधिकारी पिप्पिन द्वितीय पूर्वोत्तर फ्रांस में पेरिस और राईन के बीच स्थित इलाकों में प्रभावशाली था। पिप्पिन प्रथम और पिप्पिन द्वितीय ने धीरे-धीरे मेरोविंजी राज्य पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। यह प्रक्रिया पिप्पिन द्वितीय के बंटे चार्ल्स मार्टेल के काल में पूरी हुई।

चार्ल्स मार्टेल को अपना प्राधिकार स्थापित करने के लिए एक लंबे संघर्ष से गुजरना पड़ा। उसे महल के दूसरे मेयरों के साथ-साथ अनेक जर्मनिक सरदारों से भी लड़ना पड़ा। करीब 715 में वह अपने शासन को स्थिरता दे पाया। मेरोविंजी राजा अब बस नाममात्र का शासक रह गया और सारी राजनीतिक सत्ता चार्ल्स मार्टेल के हाथों में सिमट गई। चार्ल्स मार्टेल फ्रैंक राजाओं के एक नए राजवंश, केरोलिंजी राजवंश का वास्तविक संस्थापक था जिसने मेरोविंजी राजवंश की जगह ली थी। फिर भी चार्ल्स मार्टेल के देहांत के कई साल बाद ही केरोलिंजी औपचारिक रूप से सत्ता संभाल सके।

चार्ल्स मार्टेल को सबसे जबर्दस्त जिस चुनौती का सामना करना पड़ा, वह था फ्रांस पर अरबों का हमला। 711 में अरबों ने पश्चिम यूरोप में विस्तार करना शुरू किया था। स्पेन उनका पहला प्रमुख निशाना था। कुछ ही साल में अरबों ने विसिगाथों को शिकस्त दे दी और स्पेन के एक बड़े हिस्से में अपना राज स्थापित कर लिया। स्पेन के गवर्नर

(अब्द अल-रहमान) के नेतृत्व में अरब सेना ने आठवीं सदी की दूसरी चौथाई में स्पेन से दक्षिण फ्रांस पर हमला किया। चार्ल्स मार्टेल ने अरबों की अग्रगति को थामने के लिए फ्रैंक सेना गोलबंद की और 733 में उसने प्वाटिए के युद्ध में अब्द अल-रहमान की सेना को परास्त कर दिया। प्वाटिए उत्तर-पश्चिम फ्रांस में टुअर नगर के ठीक दक्षिण में स्थित है। प्वाटिए के युद्ध में हारने के बाद अरब फ्रांस से हट गए और स्पेन में सिमट गए। पूर्व मध्यकालिक फ्रांस के इतिहास के दृष्टिकोण से पोतियर्स युद्ध एक महत्वपूर्ण मोड़ था क्योंकि इस घटना ने फ्रैंक क्षेत्रों में अरब विस्तार के खतरे को खत्म कर दिया (भले ही तत्काल इसका महत्व समझ में नहीं आया हो)।

चार्ल्स मार्टेल को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उसने ऐसी कई संस्थाओं को ठोस शक्ल दी जो यूरोपीय सामंतवाद का एक अभिन्न अंग बनीं। उसने साम्राज्य के सैन्य ढांचे को ज्यादा प्रभावी बनाने के लिए एक कार्यक्रम शुरू किया। चार्ल्स मार्टेल के समय से हम फ्रैंकों के सैन्य संगठन में जबर्दस्त तब्दीली पाते हैं। पैदल सेना की जगह क्रमश: घोड़े पर बैठकर युद्ध करने वालों ने ले ली। कुछ हद तक यह जर्मनिक कबीलों के अंदर चल रही सामाजिक विभेदीकरण की प्रक्रिया की परिणति थी। पहले तमाम स्वस्थ वयस्क पुरुष सैन्य अभियानों में हिस्सा लेते थे। पेशेवर योद्धाओं के वर्ग के उद्‌भव ने बहुमत को, सामान्य किसान बन गए अन्य तमाम लोगों को, उनकी सैन्य जिम्मेदारियों से वंचित कर दिया। साथ ही सैन्य तकनीकों में तब्दीली (इस पर हम बाद में चर्चा करेंगे) के चलते पेशेवर योद्धा पैदल की जगह अधिकाधिक घोड़े पर बैठकर जंग करना पसंद करने लगे।

सैनिकों को घोड़े मुहैया कराना बेहद खर्चीला था। चार्ल्स मार्टेल ने इस उद्देश्य के लिए बड़े पैमाने पर चर्च की संपत्ति जब्त करने की मुहिम चलाई। चर्चों की जब्त जमीनें और जायदादें इस शर्त पर चार्ल्स मार्टेल के प्रमुख सैन्य समर्थकों के बीच बांटी गई कि उससे प्राप्त राजस्व का इस्तेमाल सेना के लिए घोड़ों और सैनिकों की देखरेख में होगा। अरब आक्रमण के काल में चर्चों की जायदादें जब्त कर पुन: वितरित करने के सिलसिले ने जोर पकड़ लिया। शायद अरबों के प्रतिरोध की क्षमता से फ्रैंक सेना को लैस करने के लिए यह तात्कालिक आवश्यकता भी थी। हमें याद रखना चाहिए कि अरब अपनी सैन्य सफलताओं के लिए अश्वारोही सेना पर अत्यधिक निर्भर थे।

वर्ष 741 में चार्ल्स मार्टेल के देहांत के बाद उसका राज्य उसके दो बेटों कार्लोमान और पिप्पिन तृतीय के बीच बांट दिया गया। कार्लोमान ने जल्द ही राजनीतिक जीवन से संन्यास ले लिया और पिप्पिन तृतीय समूचे फ्रैंक राज्य का शासक बन गया (747)। पिप्पिन तृतीय ने अंतिम मेरोविंजी राजा (चिल्डरिक तृतीय) को अपदस्थ कर खुद को औपचारिक रूप से राजा घोषित कर दिया। पिप्पिन की कार्रवाई को पोप ने वैधानिकता दी। पोप ने 751 में 'फ्रैंकों के राजा' के बतौर उसकी ताजपोशी की। बदले में पिप्पिन ने

इटली में लोंबार्डों के खिलाफ संघर्ष में पोप की मदद की। इस तरह पिप्पिन तृतीय केरोलिंजियों राजवंश का पहला राजा बना। उसके पूर्वज यह मिथ्या बनाए रखे थे कि वे मेरोविंजियों की तरफ से शासन कर रहे हैं। लेकिन पिप्पिन तृतीय ने खुद ही राजा की उपाधि अपना ली और मेरोविंजियों को तख्त-ताज से हटा दिया।

पिप्पिन तृतीय ने 751 से 768 तक राज किया। जैसा कि मेरोविंजियों के साथ मामला था, पिप्पिन की मृत्यु के बाद उसका राज्य उसके जीवित बेटों के बीच बांट दिया गया। पिप्पिन के दो बेटे थे, कार्लोमान द्वितीय और शार्लमेन। पिप्पिन तृतीय की मृत्यु के कुछ साल बाद तक दोनों भाई फ्रैंक साम्राज्य के अपने-अपने हिस्से पर राज करते रहे। 771 में कार्लोमान द्वितीय की मृत्यु हो गई और शार्लमेन साम्राज्य का एकछत्र शासक बना गया। शार्लमेन के राज्यारोहण से फ्रांस के इतिहास और कुल मिलाकर पश्चिमी यूरोप के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। शार्लमेन ने एक विशाल साम्राज्य कायम किया जो पश्चिमी यूरोप के एक बड़े हिस्से को समेटे हुए था। उसके शासन में जो सामाजिक, आर्थिक, सैन्य और राजनीतिक ढांचा विकसित हुआ, क्लासिकी सामंतवाद अनेक मायने में उसी का नतीजा है।

IV

शार्लमेन (लातीनी मजमूनों में उसे कैरोलस मैगनस, अर्थात, चार्ल्स महान कहा जाता है और उसी पर कैरोलिंजी राजवंश का नाम पड़ा है) का जन्म 742 में हुआ था। वह 768 में अपने पिता पिप्पिन तृतीय के निधन के बाद फ्रैंक साम्राज्य के एक हिस्से का शासक बना था। पिप्पिन ने अपना साम्राज्य अपने दो बेटों, कार्लोमान द्वितीय और शार्लमेन के बीच बांट दिया था। कार्लोमान का निधन तीन साल बाद हो गया और 771 में शार्लमेन समूचे फ्रैंक राज्य का राजा बन गया। शार्लमेन 814 तक जिंदा रहा और इस तरह उसने करीब आधी सदी तक राज किया। इस दौरान उसने पूरे जोश-खरोश के साथ साम्राज्य का विस्तार किया और उस पर शासन के लिए एक नए प्रशासन तंत्र का निर्माण किया। शार्लमेन को अपने साम्राज्य के विस्तार या रक्षा के लिए 50 से ज्यादा बड़ी जंगें लड़नी पड़ीं।

शार्लमेन के शुरुआती सैन्य अभियानों में से एक इटली के लोंबार्ड राज्य के खिलाफ था। लोंबार्डों ने पोप के शासन वाले कुछ इलाकों पर कब्जा कर रखा था। इन इलाकों को आमतौर पर पोप के राज्य कहा जाता है। ये मध्य इटली में स्थित थे और उन पर पोप का प्रत्यक्ष शासन (यह कुछ परिवर्तनों के साथ उन्नीसवीं सदी तक चला जब इटली का राजनीतिक एकीकरण हुआ) था। पोप को लोंबार्डों के आक्रमण का प्रतिरोध करने में दिक्कत आ रही थी। लिहाजा उसने शार्लमेन से सैनिक सहायता की अपील की। इस अपील को कैथोलिक चर्च और फ्रैंक राज्य के बीच के निकट संबंधों के संदर्भ में देखा

जाना चाहिए। 773 में शार्लमेन ने पोप की अपील के जवाब में इटली पर हमला किया। लोंबार्डों को पराजय हाथ लगी और फ्रैंक सेना ने लोंबार्ड राज्य की राजधानी पाविया पर कब्जा कर लिया। पोप को उसके राज्य बहाल कर दिए गए जबकि लोंबार्डों के इलाके शार्लमेन के राज्य में मिला दिए गए। इस घटना ने शार्लमेन की प्रतिष्ठा बढ़ा दी और पोप तथा फ्रैंक राज्य के बीच के गठबंधन को मजबूत किया।

अंततः शार्लमेन के राज्य में फ्रांस, मध्य यूरोप (पश्चिमी जर्मनी समेत), उत्तरी इटली और स्पेन का एक छोटा हिस्सा शामिल था। राईन के पूर्व में रहने वाले अनेक जर्मनिक कबीलों को अधीन किया गया और फ्रैंक शासन के मातहत लाया गया। नौवीं सदी की शुरुआत तक कैरोलिंजी साम्राज्य पश्चिमी यूरोप की सबसे बड़ी और सबसे शक्तिशाली राजनीतिक इकाई थी। शासन का प्रधान केंद्र आकेन (यह एक्स-ला-शपेल के नाम से भी जाना जाता है और अब जर्मनी के राईन इलाके में है) था। पोप लियो तृतीय (795-822) ने 800 में रोम के सम्राट के रूप में शार्लमेन की ताजपोशी की तो वह अपनी स्थिति को और सुदृढ़ कर सका। 795 में पोप निर्वाचित हुए लियो तृतीय चर्च के आंतरिक टकरावों के कारण रोम पर अपना प्राधिकार स्थापित करने में असफल रहा था। उसे इटली से भागने के लिए मजबूर किया गया। उसने शार्लमेन के पास पनाह ली। शार्लमेन ने लियो तृतीय को पुनर्स्थापित किया और 800 में रोम की तरफ मार्च किया। पोप ने इस अवसर का इस्तेमाल शार्लमेन को रोम का सम्राट घोषित करने के लिए किया।

रोमन सम्राट के रूप में शार्लमेन की ताजपोशी को दूरगामी ऐतिहासिक महत्व की एक घटना के बतौर पेश किया जाता है। यह कुछ हद तक सही भी है क्योंकि इसने शार्लमेन और उसके वंशजों को खुद को उत्तर-रोमन साम्राज्य की राजतांत्रिक परंपराओं के वैध वारिस के बतौर पेश करने में मदद की। यह कैरोलिंजी राजतंत्र के प्राधिकार को वैधता प्रदान करने में उपयोगी था। इसने पश्चिम के राजनीतिक एकीकरण को उजागर करने में भूमिका निभाई जिसे शार्लमेन ने पूरा किया था। शार्लमेन पूर्व रोमन साम्राज्य के पश्चिमी प्रांतों (स्पेन और ब्रिटेन को छोड़कर, लेकिन रोमन साम्राज्य में कभी शामिल नहीं रहे जर्मनी समेत) के अविवादित राजा के रूप में स्वीकार किया गया। लेकिन पोप का कदम महज सांकेतिक महत्व का था। 476 से ही पश्चिम में कोई सम्राट नहीं था और जहां तक पश्चिमी यूरोप का सवाल है राजनीतिक संदर्भों में इस उपाधि की बहुत कम प्रासंगिकता थी। उसके अलावा बैजंतियाई शासक खुद को रोमन सम्राटों के रूप में पेश करते थे। वह जताते थे कि रोमन साम्राज्य का प्राधिकार उनमें निहित है। पश्चिम में सम्राट की उपाधि की फिर से शुरुआत रोमन साम्राज्य को बहाल करने की कोशिश नहीं थी, बल्कि यह उस जबर्दस्त ताकत को अभिव्यक्त करने का तरीका था जो शार्लमेन के काल में कैरोलिंजी राजशाही ने पाई थी। इस उपाधि का इस्तेमाल कर शार्लमेन ने पश्चिमी यूरोप की राजनीतिक सत्ता पर अपना एकाधिकार जताया।

लियो तृतीय ने शार्लमेन को रोमन सम्राट की उपाधि देकर चर्च और कैरोलिंजी राज्य के बीच के संबंध को और पुख्ता किया। जैसा हम देख चुके हैं, यह रिश्ता पहले ही बहुत मजबूत था। कैरोलिंजी पोप के दृढ़ सहयोगी थे। बदले में उन्हें चर्च, उसकी संस्थाओं और अधिकारियों का समर्थन मिला था। शार्लमेन ने लियो तृतीय के हाथों रोमन सम्राट की उपाधि स्वीकार कर धार्मिक मामलों में पोप, अर्थात रोम के बिशप की सर्वोच्चता को मान्यता दी। उसके बाद सम्राटों के लिए अहम हो गया कि वे अपनी हैसियत को वैधता प्रदान करने के लिए पोप की मान्यता प्राप्त करें। इसने राज्य के मामलों में चर्च को दखल करने का कुछ अवसर दिया। बाद में इसके कारण चर्च और राज्य के बीच जबर्दस्त टकराव हुए।

पोप के हाथों रोमन सम्राट की ताजपोशी एक नया अनुष्ठान था। मध्यकालिक यूरोप में राजशाही की अवधारणा के लिए उसके कुछ निहितार्थ भी थे। राजाधिकार को अब दैविक आदेश के रूप में देखा जाने लगा। पोप के हाथों ताज स्वीकार करने का मतलब हुआ कि राजा के अधिकार को दैविक स्वीकृति मिली हुई है। दूसरे अर्थों में राजशाही सत्ता शासन करने के 'दैविक अधिकार' पर आधारित थी, और इस तरह परम और निर्बाध थी। शार्लमेन के उत्तराधिकारियों ने 'पवित्र रोमन सम्राट' की उपाधि का इस्तेमाल कर इसी 'दैविक अधिकार' और साथ ही पोप के धार्मिक प्राधिकार तथा सम्राट के राजनीतिक प्राधिकार के बीच के गहरे रिश्तों को उजागर किया। सम्राट महज रोमन सम्राट की जगह 'पवित्र रोमन सम्राट' कहलाने लगा। उसके शासन के अधीन आने वाले क्षेत्रों को 'पवित्र रोमन साम्राज्य' कहा जाने लगा।

एक ऐसे युग में जब राज्य की केंद्रीय प्रणाली बेहद कमजोर थी और कुछ अपवादों को छोड़कर सम्राट साम्राज्य पर केंद्रीकृत नियंत्रण स्थापित करने की स्थिति में नहीं थे, इस शब्दावली और अनुष्ठान ने राजशाही की संस्था को पश्चिमी यूरोप में निर्माणाधीन राजनीतिक ढांचे में प्रासंगिक बने रहने में मदद की राजशाही ने विकेंद्रीकृत सामंती राज्य का गठन करने वाले विभिन्न तत्वों (सामंती कुलीन वर्ग, सैनिक नेता, बड़े जमींदार, योद्धा) के एकीकरण के लिए एक ढांचा पेश किया। अर्थात इन तत्वों ने सैद्धांतिक रूप से 'दैविक आदेश प्राप्त' पवित्र रोमन सम्राट से अपने प्राधिकार पाए। यह सामंती शासक वर्ग के सदस्यों की शक्तियों को वैधानिकता प्रदान करने के लिए जरूरी था।

यह हमारे सामने उस अत्यधिक विकट समस्या को ला खड़ा करता है जिससे शार्लमेन रूबरू था। यह ऐसी समस्या थी जिसे महज नई उपाधियों और अनुष्ठानों से नहीं निबटाया जा सकता था। वस्तुत: इतने विशाल साम्राज्य पर राज्य करने के लिए कोई केंद्रीकृत प्रणाली नहीं थी। शार्लमेन को विरासत में मिली संस्थाओं से ही एक नई प्रणाली ढालनी पड़ी। साथ ही उसे क्षेत्रीय और स्थानीय अभिजातों, अर्थात सामंती सरदारों के हितों का भी खयाल रखना पड़ा। सामंती सरदारों (इसमें सैन्य नेताओं, पूर्व जर्मनिक सरदार और

रोमन कुलीन तंत्र के बचे-खुचे अवशेष शामिल थे) का स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर जबर्दस्त राजनीतिक और आर्थिक दबदबा था। शार्लमेन ने उन्हें राज्य मशीनरी के साथ जोड़ दिया। उसने साम्राज्य को अनेक प्रशासनिक इकाइयों में बांटा और उन्हें क्षेत्रीय गवर्नरों के मातहत रखा गया। उन गवर्नरों को 'काउंट' कहा जाता था। काउंटों को बहुत स्वायत्तता हासिल थी। उन पर राजस्व, न्यायिक और सैन्य जिम्मेदारियां थीं। बाद में हम शक्तिशाली सामंतों की एक अन्य श्रेणी देखते हैं। वे भी प्रांतीय प्रशासन देखते थे। उन्हें 'ड्यूक' कहा जाता था। शार्लमेन के तहत मोटे तौर पर तीन सौ प्रमुख सामंत देश का शासन संभालते थे। सम्राट शाही अधिकारियों की एक जमात के माध्यम से उनके कामकाज पर निगाह रखता था जिन्हें *मिस्सी डामिनिकी* कहा जाता था। *मिस्सी डामिनिकी* या 'आका के दूत' को प्रांतों के मामले की समीक्षा के लिए भेजा (*मिस्सी* का शाब्दिक अर्थ 'भेजा गया' होता है) जाता था। वे काउंटों को केंद्रीय प्रशासन के निर्देश भी पहुंचाते थे।

रोमन साम्राज्य के पतन के बाद पश्चिमी यूरोप में इतने विशाल साम्राज्य के लिए एक एकीकृत एवं प्रभावी प्रशासन विकसित करने का यह पहला व्यवस्थित प्रयास था। कैरोलिंजी शाही दस्तावेजों की एक पूरी शृंखला हम तक पहुंची है जो नौवीं सदी में फ्रैंक राज्य के चरित्र पर थोड़ा प्रकाश डालती है। उन्हें *कैपितुलरी* कहते हैं। शार्लमेन के *कैपितुलरी* इस संदर्भ में खासतौर पर प्रासंगिक हैं। ये उसके शासनकाल का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। *कैपितुलरी* मूलत: पत्र हैं जिनमें शाही आदेश या निर्देश हैं। उनमें से अनेक वैधानिक प्रकृति के हैं, अर्थात उनमें विविध विषयों पर कानून प्रतिपादित किए गए हैं या उनकी व्याख्या की गई है। उनमें से कुछ में बेहतर प्रशासन के लिए मार्ग निर्देश हैं जबकि दीगर में कुछ खास अधिकारियों की कार्रवाइयों पर सम्राट की अस्वीकृति है। *कैपितुलरी* दिखाते हैं कि शार्लमेन ने साम्राज्य के दूरदराज इलाकों में बसे विभिन्न समुदायों के लिए समान प्रशासनिक और कानूनी प्रणाली सृजित करने का गंभीर प्रयास किया। इसमें कोई शक नहीं है कि कई सदियों बाद उसके अंतर्गत पश्चिमी यूरोप में पहली बार कोई नियमित सरकार हुई। फिर भी, शार्लमेन के तमाम प्रयासों के बावजूद, एक लंबे काल में ऐतिहासिक स्थितियां केंद्रीकरण के लिए उपयुक्त नहीं थीं (प्रसंगवश, जैसा कि अनेक विद्वानों ने इंगित किया है, केंद्रीकृत प्रशासन अनिवार्यत: एक बेहतर किस्म का प्रशासन नहीं होता)। राज्य के पास एक विशाल नौकरशाही के लिए संसाधन नहीं थे। कोई नियमित सेना नहीं थी। प्रांतों का प्रशासन करने वाले बड़े सामंती सरदार (काउंट इत्यादि) को उनकी सेवाओं के पारिश्रमिक के रूप में जमीन आवंटित किए जाते थे। राजस्व वसूली, सैनिकों की भर्ती, सरकारी कर्मचारियों की वेतन अदायगी और अधिकारियों की बहाली केंद्रीकृत नहीं थी। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि शार्लमेन के उत्तराधिकारियों के तहत केंद्रीकरण की प्रक्रिया उलट दी गई जबकि सामंती सरदार अधिकाधिक अधिकार बटोरते गए।

यहां शार्लमेन के साम्राज्य के सामाजिक और राजनीतिक ढांचे के एक और घटक,

यानी कि चर्च का जिक्र करने की जरूरत है। फ्रैंक राज्य और कैथोलिक चर्च के निकट संबंधों पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है। राज्य के पुनर्गठन के लिए शार्लमेन के विभिन्न सुधारों में शासन के साथ औपचारिक रूप से चर्च को जोड़ना भी शामिल था। जब नवसृजित क्षेत्रीय प्रशासनिक इकाइयों को काउंटों के मातहत किया गया तो साथ ही चर्च के उच्च अधिकारियों को उन क्षेत्रों के धार्मिक मामलों की देखरेख की जिम्मेदारी सौंपी गई। ये अधिकारी आर्चबिशप या बिशप थे। प्रांतों में काउंट सर्वोच्च राजनीतिक प्राधिकार था जबकि आर्चबिशप या बिशप सर्वोच्च धार्मिक प्राधिकार था। कई मौकों पर बिशप राजनीतिक रूप से भी प्रभावशाली थे। चूंकि चर्च के पास बहुत सारी जमीनें थीं, वह कुछ इलाकों में अर्थव्यवस्था पर भी अपना दबदबा कायम कर सका। उसके साथ ही, अपनी संगठित पुरोहिताई के चलते चर्च उन इनीगिनी संस्थाओं में से एक था जो रोमन साम्राज्य के पतन के बाद स्थानीय स्तर पर रोजमर्रा के प्रशासनिक कार्यों में सहयोग देने में सक्षम था। इस तरह बिशपों और स्थानीय पुरोतिहों ने अपनी धार्मिक जिम्मेदारियों के अतिरिक्त राजनीतिक भूमिका भी निभाई।

पैरी एंडरसन ने पूर्व-मध्यकालिक यूरोप की संस्कृति, विचारों और कुछ संस्थाओं के विकास में चर्च के योगदान की ओर ध्यान आकर्षित कराया है। चर्च ने प्राचीन काल की यूनानी-रोमन उपलब्धियों को सहेजे रखा और उन्हें कैरोलिंजी युग में संप्रेषित किया। एंडरसन के मुताबिक चर्च 'दो युगों के बीच का एक अपरिहार्य सेतु था'। उनका कहना है कि 'ईसाई चर्च एक अकेली संस्था थी जो प्राचीन काल से मध्यकाल में संक्रमण में अनिवार्य धारावाहिकता के साथ रही। यह मुख्य, नाजुक जलसेतु था जो क्लासिकी विश्व के सांस्कृतिक खजानों को सामंती यूरोप के नए विश्व से जोड़ता था।'

शायद चर्च का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान पूर्व-मध्यकाल में साक्षरता की शुरुआत की मुहिम थी। जर्मनिक हमलों के बाद साक्षरता में एक समग्र गिरावट आई थी। रोमन साम्राज्य में साक्षरों की भाषा लातीनी थी। इसी भाषा में सर्वाधिक आधिकारिक काम होते थे। शिक्षा का मतलब था अंततः लिखित लातीनी पर महारत हासिल करना। ज्यादा शिक्षित लोगों को आमतौर पर यूनानी भाषा की भी जानकारी होती थी। अभिजात लातीनी भाषा में बातचीत करते और यह सुसंस्कृतों की भाषा थी। इटली के बाहर ज्यादातर आम लोग अपनी स्थानीय भाषा बोलते थे। लेकिन सदियों के रोमन शासन के चलते पश्चिमी प्रांतों में कुछ लातीनीकरण हुआ था। चर्च का प्रसार उत्तर-रोमन साम्राज्य में पश्चिम में लातीनीकरण को बढ़ावा देने वाला एक प्रमुख कारक रहा।

रोमन साम्राज्य के पतन और पांचवीं, छठी और सातवीं सदियों के उथल-पुथल ने लातीनी शिक्षा के प्रसार-प्रचार पर एक विपरीत प्रभाव डाला। लातीनी का प्रसार थम गया। आधिकारिक कार्यों में तथा आम बोलचाल में दोनों स्तर पर उसके इस्तेमाल में कमी आई। शासन के विखंडन और रोमन कुलीन वर्ग के बिखराव के मद्देनजर यह

अपरिहार्य था। इसके समांतर साक्षरता के स्तर में एक जबर्दस्त गिरावट आई। लातीनी पढ़ाने की परंपरा खत्म हो गई। इस तरह बहुत कम ही लोग लिखना-पढ़ना जानने लगे।

जर्मनिक हमलों ने पश्चिमी यूरोप का भाषाई चरित्र बदल दिया। जर्मनिक कबीले अपनी भाषाएं लेकर आए जो जर्मनिक भाषाई परिवार की थीं। जर्मनिक कबीलों के उत्थान का मतलब था कि पश्चिम में शासक वर्ग का एक बड़ा हिस्सा अब जर्मनिक भाषाएं बोलने लगा। जर्मनिक भाषाओं और लातीनी भाषा के बीच की पारस्परिक क्रिया ने भाषाई विविधता को बढ़ावा दिया। लातीनी भाषा की मातृभूमि इटली, गॉल और स्पेन (गॉल और स्पेन में लैटिन आमजन की भाषा नहीं थी, फिर भी उसने वहां गहरी जड़ें जमा ली थीं) में लातीनी एक परिवर्तित रूप में उभरने लगी जबकि रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा एक कालखंड में बदली। लिखने और पढ़ने के प्रति कोताही (शिक्षित समाज में भाषा ज्यादा स्थिर होती है) ने तब्दीलियों को पुख्ता किया। अंतत: इटली, फ्रांस, स्पेन और जिसे आज पुर्तगाल कहते हैं, में भिन्न भाषाएं (इतावली, स्पेनी, फ्रांसीसी और पुर्तगाली; उन्हें सामूहिक रूप से रोमांस भाषा कहते हैं) विकसित हुई। जर्मनिक भाषाएं अर्थात जर्मन और आंगल-सैक्सन (जिससे अंग्रेजी भाषा की उत्पत्ति हुई) का जर्मनी, मध्य यूरोप और इंगलैंड पर वर्चस्व हुआ। इन तमाम भाषाओं ने कुछ मामूली फेरबदल के साथ रोमन लिपि का इस्तेमाल किया। जर्मनिक और रोमांस भाषाओं ने एक दूसरे के तत्वों को खुलकर ग्रहण किया। रोमांस भाषा के क्षेत्र तक में, खासकर उत्तरी फ्रांस में भाषा का व्यापक जर्मनीकरण हुआ। फ्रैंकों के उत्थान ने फ्रांसीसी भाषा के विकास को बेहद प्रभावित किया। जर्मनिक बोलियों और गॉल-रोमन आबादी की लातीनी और सेल्टिक भाषाओं ने एक दूसरे को रूपांतरित कर दिया।

पूर्व की भाषाई तसवीर में हमें रुके रहने की जरूरत नहीं है। इतना कहना काफी है कि बैजंतियाई शासक वर्ग की मुख्य भाषा यूनानी थी। पूर्वी यूरोप के अन्य हिस्सों में जर्मनिक भाषाओं ने स्लाव भाषा समूह के साथ प्रतिस्पर्धा की। स्लाव हिंद-यूरोपीय कबीलाई लोग थे जिन्होंने पांचवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बड़ी संख्या में पूर्वी यूरोप पहुंचना शुरू किया था। छठी सदी की शुरुआत से स्लाव कबीलों के आगमन ने एक व्यापक स्वरूप ग्रहण कर लिया। स्लावों ने निम्न डैन्यूब में घुसना और बाल्कन प्रदेश में बसना शुरू किया। बाद में वे पूर्वी यूरोप में बाल्टिक सागर तक अर्थात आधुनिक पोलैंड, युक्रेन, रूस इत्यादि तक फैले। धीरे-धीरे स्लावभाषी, यथा पोलिश, रूसी, चेक, स्लोवाक और सर्ब-क्रोशियाई (यूगोस्लाविया की भाषा) पूर्वी यूरोप के प्रभुत्वशाली भाषाई समूह बन बैठे। पूर्वी यूरोप पर स्लावों का भाषाई प्रभाव इतना जबर्दस्त था कि नौवीं सदी में मकदूनिया और यूनान के एक हिस्से पर शासन स्थापित करने वाले गैर-हिंद-यूरोपीय उत्पत्ति के बुल्गार कबीले ने जल्द ही स्लावों की बोली और रहन-सहन अपना ली। बुल्गारियाई, जो एक स्लाव भाषा है, बुल्गार शासित क्षेत्र (मोटे तौर पर बुल्गारिया) की भाषा बन

गई। कुछेक स्लाव भाषाओं ने रोमन लिपि अपनाई जबकि अन्य ने अपनी लिपियां (ग्लैगोलिटिक, सिरिलिक) विकसित की जो यूनानी मूल की हैं। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि स्लाव लिपियों के विकास में चर्च की एक बड़ी भूमिका थी।

व्यापक तौर पर देखें तो पूर्व-मध्यकालिक काल तक यूरोप में चार भाषाई समूह थे—पश्चिम और मध्य यूरोप में रोमांस और जर्मनिक; पूर्वी यूरोप में स्लाव और यूनानी। पूर्व की तसवीर इस भाषाई वर्गीकरण से ज्यादा पेचीदा थी। नए समूहों के आगमन ने अनेक परिवर्तन लाए थे। ऐसा ही एक समूह मग्यारों का था। ये गैर-हिंद-यूरोपीय मूल के कबायली लोग थे। नौवीं सदी से उन्होंने उस क्षेत्र पर कब्जा जमाना शुरू किया जो आज हंगरी है। हंगरी भाषा अपनी संरचना में अनूठी है। किसी भी हिंद-यूरोपीय भाषा से उसकी कोई समानता नहीं है। उसके साथ ही ऐसे कुछ इलाके थे जहां लैटिन बोली बची हुई थी। इस तरह का एक क्षेत्र पूर्वी यूरोप में है जो आज रोमानिया का एक हिस्सा है। रोमानिया की मुख्य भाषा रोमानियन एक रोमांस भाषा है। यह पूर्वी यूरोप में एक लातीनी क्षेत्र था। बहरहाल पश्चिम में हालात ज्यादा समरूप थे। वहां लैटिन और उससे निकली भाषाओं ने अपना वर्चस्व बरकरार रखा। साथ ही, जर्मनिक भाषाओं के विकास में भी रोमांस भाषाओं और लैटिन की भूमिका रही। पश्चिम पर लैटिन और उसकी वारिस भाषाओं की जो जबर्दस्त पकड़ थी, उसे बहुत हद तक पूर्व मध्यकालिक यूरोप में ज्ञान एवं शिक्षा को फिर से शुरू करने में चर्च की अग्रणी भूमिका से जोड़ा जाना चाहिए। चूंकि लैटिन इस शिक्षा का बहुत हद तक आधार बनी, पश्चिम में सांस्कृतिक और भाषाई समरूपता ज्यादा थी। बदले में इसने धार्मिक आधार पर पश्चिम यूरोप को एकीकृत करने में मदद की। एंडरसन के शब्दों में पश्चिम में सर्वमुक्तिवादी सनातनता (universalist orthodoxy) और भाषाई लातीनीवाद ईसाइयत की विशिष्टताएं थीं।

शार्लमेन ने अपने साम्राज्य में साक्षरता और शिक्षा के स्तरों को उन्नत करने के अपने कार्यक्रम में चर्च को सचेत रूप से शामिल किया। आखिर यही एकमात्र संगठित संस्था थी जो इसे करने में सक्षम थी। जर्मनिक हमलों के काल में चर्च ज्ञान का मुख्य केंद्र था। एक लंबे समय तक शिक्षा और लैटिन का ज्ञान समानार्थी थे। मार्क ब्लॉख (*फ्युडल सोसाइटी*) कहते हैं, 'लैटिन शिक्षा-दीक्षा देने की महज एक भाषा नहीं थी, यह एकमात्र भाषा थी जिसे सिखाया जाता था। पढ़ना जानने का सीधा अर्थ था लैटिन पढ़ने की क्षमता।' रोमांस भाषाओं की साहित्यिक परंपराएं बहुत बाद में परिपक्व हुईं। रोमन साम्राज्य के खात्मे के बाद से लैटिन की पढ़ाई बहुत हद तक चर्च तक सीमित थी। इसके मद्देनजर यह समझना आसान है कि आखिर शिक्षा पर चर्च का एकाधिकार क्यों था।

यह सच्चाई है कि कानूनी काम भी लैटिन में किए जाते थे। इसलिए कानून और अदालत के मामलों से जुड़े तमाम लोगों को लैटिन भाषा की कम से कम एक काम-चलाऊ जानकारी जरूर थी। यह एक दूसरा क्षेत्र था जिसमें लैटिन के जानकार देखे जा

सकते थे। लैटिन के इस्तेमाल को जारी रखकर कानूनी संस्थान भाषा की बहाली के लिए जिम्मेदार एक अन्य कारक बन गए। फिर भी पूर्व-मध्यकालिक काल तक कानूनी पेशों से खासकर निचले दर्जों पर जुड़े अनेक लोग, मसलन, क्लर्क, शायद लैटिन को उसके क्लासिकी रूप में नहीं जानते होंगे। लेकिन वे कम से कम साक्षर तो जरूर थे। इटली में लैटिन की शिक्षा अपेक्षाकृत व्यापक थी। वहां जर्मनिक शासन में भी रोमन कानून की एक मजबूत परंपरा बरकरार रही। इसके विपरीत उन क्षेत्रों में लिखित कानून अप्रचलित हो गया जहां शिक्षित लोगों की कमी थी। लिखित कानून नजरअंदाज किए गए और पुरानी कानूनी शब्दावली तोड़ी-मरोड़ी गई। अनेक शब्दों के मूल अर्थ खो गए। हम उन लोगों की भूमिका को नजरअंदाज नहीं कर सकते जिन्होंने बोलचाल की लैटिन में हो रही तब्दीलियों को उसके लिखित रूप में समावेश कराने के लिए कानूनी प्रणाली का चरित्र बदल दिया। समकालीन कानूनी दस्तावेजों (वसीयतनामों, समझौतों, खरीदो-फरोख्त के कागजात, शादी के रिकार्डों) में अनेक और शब्द इस्तेमाल में दिखते हैं। इस तरह से शब्दावली समृद्ध हुई और अनेक पारिभाषिक शब्दों एवं इस्तेमालों ने नए अर्थ ग्रहण किए। मार्क ब्लॉख कहते हैं कि रोमांस भाषाओं के उत्थान के बावजूद हमें मध्यकालिक यूरोप की लैटिन को एक 'मृत भाषा' नहीं समझनी चाहिए। भाषा में परिवर्तन सबसे पहले कानूनी दस्तावेजों में परिलक्षित हुए।

चर्च की सुविधा इस तथ्य में निहित थी कि उसके पास शिक्षा प्रदान करने का एक बुनियादी ढांचा मौजूद था। शार्लमेन ने फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी में राज्य की ओर से चलने वाले शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने की पहल कर इस बुनियादी ढांचे को और विस्तार दिया। इन संस्थानों में शिक्षा देने के लिए यूरोप भर से प्रमुख विद्वानों को बुलाया गया। ज्यादातर विद्वान पुरोहित और मठवासी थे। उनमें से इंगलैंड के यॉर्क का एक मठवासी एलक्वन (मृत्यु 804) सबसे ज्यादा मशहूर हुआ। एलक्वन आकेन में स्थापित शार्लमेन के स्कूल में पढ़ाता था। आकेन शार्लमेन की राजधानी थी। एक शिक्षक के रूप में अपनी गतिविधियों के अतिरिक्त एलक्वन ने रोमन लिपि के लिखने के तरीके में संशोधन किया। उसने एक लेखन-शैली विकसित की जो कैरोलिंजी लिपि के नाम से जानी जाती है। उस वक्त तक रोमन लिपि सिर्फ बड़े (कैपिटल) अक्षरों में लिखी जाती थी। एलक्वन ने छोटा अक्षर ईजाद किया जिसे लिखना आसान था। यह रोमन लिपि में उसका हमेशा याद रखा जाने वाला योगदान था।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार के प्रति शार्लमेन के सरोकारों को राज्य के पुनर्गठन के लिए उठाए गए उसके कदमों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। शिक्षित प्रशासनकर्मियों की बहाली के उद्देश्य से आबादी के एक हिस्से को शिक्षित करने के लिए शिक्षण संस्थानों का होना जरूरी था। शासन के रोजमर्रा के कामों को पूरा करने के लिए थोड़ी शिक्षा प्राप्त कर्मचारियों की जरूरत थी। रिकार्डों को ठीक करने की जरूरत थी, खाता बही

लिखना था, पत्र लिखे जाने थे और कानूनों को लागू किया जाना था। इन सबके लिए शिक्षा का एक न्यूनतम स्तर जरूरी था। उसके अलावा विभिन्न भाषाई समूहों को अपने में समेटे इतने विशाल साम्राज्य के शासन के लिए एक आधिकारिक संपर्क भाषा अपरिहार्य थी। चर्च और फ्रैंक राज्य के प्रयासों से नौवीं सदी में शिक्षा के दुरुस्त होने के संकेत दिखने लगे। समाज अपेक्षाकृत ज्यादा शिक्षित हुआ। बेशक हमें साक्षरता के स्तर को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं देखना चाहिए। लातीनी चर्च, कानून, उच्च शिक्षा और आधिकारिक दस्तावेजों की भाषा थी। बेशक यह आमजन की और यहां तक कि राजनीतिक आभिजात्य वर्ग की भी भाषा नहीं थी। आमजन निरक्षर बने रहे और जैसा कि ब्लॉख ने रेखांकित किया है, पूर्व-मध्यकालिक कुलीन वर्ग (राजशाही समेत) शिक्षा के दृष्टिकोण से पिछड़ा था।

अपने जीवनकाल में शार्लमेन ने अपने तीन बेटों को अपने साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों का वारिस मनोनीत किया। उसकी मृत्यु के बाद साम्राज्य उनके बीच बांटा जाना था। उसके दो वारिस उससे पहले ही मर गए। 814 में शार्लमेन के देहांत के बाद उसका जीवित उत्तराधिकारी लुई प्रथम (814-40) समूचे कैरोलिंजी साम्राज्य का शासक बना। लुई प्रथम और उसके पुत्र चार्ल्स द्वितीय (840-77) के शासन को हमेशा परिवार के अंदर से खतरे का सामना करना पड़ा। शार्लमेन ने जो केंद्रीकरण किया था, वह एक अस्थायी परिघटना साबित हुई। नौवीं सदी के मध्य तक केंद्रीकृत ढांचा दरकना शुरू हो गया। कैरोलिंजी साम्राज्य अनेक अर्ध स्वतंत्र क्षेत्रों में टूट गया जिस पर ड्यूक या काउंटों का राज था। कैरोलिंजी राजतंत्र खुद भी एक सौ साल और टिकी, लेकिन उसके पास वास्तविक सत्ता नहीं थी। यह वह काल था जब सामंती संस्थाओं ने पश्चिमी यूरोप में अपनी जड़ें मजबूत कीं। सामंती सरदार अपने-अपने इलाकों में अधिकाधिक मजबूत होते गए। कैरोलिंजी राजवंश को अंततः 987 में पेरिस क्षेत्र के काउंट ह्यू कैपेत ने सत्ता से हटा दिया। ह्यू कैपेत ने एक नया राजवंश, कैपेतियाई राजवंश की बुनियाद रखी जिसने 1328 तक फ्रांस पर शासन किया। फिर भी कैपेतियाई एक केंद्रीकृत राज्य का निर्माण करने में सक्षम नहीं हुए। एक राजवंश को हटा कर दूसरे राजवंश के आने का मतलब राजनीतिक ढांचा में बदलाव नहीं था। दसवीं सदी तक सामंती व्यवस्था पूर्णतः स्थापित हो चुकी थी जो कैपेतियाई काल में फलती-फूलती रही।

अध्याय चौदह

मध्यकालीन यूरोप में सामंतवाद

दसवीं सदी की शुरुआत तक पश्चिमी यूरोप में एक सामाजिक संरचना वजूद में आ चुकी थी जो यूनानी-रोमन प्राच्य काल की सामाजिक संरचना से बुनियादी रूप से भिन्न थी। संक्रमण के एक लंबे काल के अंत में गुलाम सामाजिक संरचना की जगह *सामंतवादी सामाजिक* संरचना ने ले ली थी। संक्रमण के काल में रोमन और जर्मनिक दो समाज निकट संपर्क में आए थे और आपस में घुल-मिल गए थे। दोनों समाज जबर्दस्त सामाजिक परिवर्तनों से गुजर रहे थे। उनके आपसी संपर्क ने एक संश्लेषण पैदा किया जिसकी तुलना किसी रासायनिक प्रतिक्रिया से की जा सकती है। इससे गुणात्मक रूप से भिन्न एक नए समाज का जन्म हुआ। सामंती सामाजिक संरचना में रोमन के साथ जर्मनिक तत्व भी समाहित थे। यह संश्लेषण एक ऐसे समय अंजाम पाया जब दोनों समाज बिखर रहे थे। इसलिए सामंतवाद में जिन रोमन या जर्मनिक तत्वों को पाते हैं, उनमें से ढेर सारे हाल फिलहाल वजूद में आए थे। दोनों समाज में जारी परिवर्तनों ने एक-दूसरे को बल दिया और संश्लेषण की प्रक्रिया तेज की।

I

पश्चिम में रोमन साम्राज्य के ढहने के बाद रोमन भूस्वामी कुलीनों और जर्मनिक सरदारों/सैन्य नेताओं पर आधारित क्षेत्रीय एवं स्थानीय अभिजात वर्ग ने राज्य की सत्ता हड़प ली। वे अपने-अपने क्षेत्रों के वास्तविक शासक बन गए। जर्मनिक हमलों के बाद बने राज्य के प्रशासनिक ढांचों में इन अर्ध स्वतंत्र अभिजातों को शामिल करने की प्रक्रिया संभवतः विसिगॉथों के अधीन स्पेन में शुरू हुई। हम लोग इस तथ्य का जिक्र कर चुके हैं कि विसिगॉथों के काल में योद्धा सरदारों को उन जगहों की जिम्मेदारी सौंप दी गई थी जहां उनका वर्चस्व था (अध्याय तेरह)। मेरोविंजियों ने यह तरीका अपनाया और कैरोलिंजियों ने उसे विस्तार दिया। नौवीं सदी के दौरान बड़े सामंती सरदारों को *औपचारिक* रूप से राजनीतिक और न्यायिक प्राधिकार सौंपे गए। पहले राजनीतिक व्यवस्था में सरदारों की हैसियत अनौपचारिक थी। अब उनके प्राधिकार नियमित कर दिए गए।

इससे जुड़ी एक घटना पदानुक्रम पर आधारित एक ढांचे का विकास रही। इसके तहत बड़े सामंत (काउंट, ड्यूक अर्थात कुलीन वर्ग) सीधे राजा से अपना प्राधिकार

पाते थे। बदले में अपने से छोटे सामंतों को प्राधिकार हस्तगत करते थे। यह सिलसिला नीचे तक चलता था। हरेक स्तर पर सामंत अपने इलाके में वस्तुत: सर्वोच्च था, वह सरकार था। सैन्य प्रभाव और जमीन पर नियंत्रण के अतिरिक्त उसके पास राजनीतिक और न्यायिक प्राधिकार थे। आसानी के लिए पदानुक्रम पर आधारित इस ढांचे को पिरामिड माना जा सकता है जहां हर स्तर पर सामंत अपने से उच्च सामंत से शक्ति पाते थे और उससे निष्ठा रखते थे। यह कड़ी राजा तक जाती थी। इसे दूसरी तरह देखें। राजा राज्य का प्रतीक था और उसकी सत्ता या प्राधिकार एक पदानुक्रम में ढेर सारे सामंती सरदारों के बीच बंटा था। इसे पेरी एंडरसन मध्यकालीन यूरोप में 'प्रभुसत्ता का संविभाजन' कहते हैं। राजनीतिक सत्ता एक हाथ में केंद्रित नहीं थी। वह व्यापक रूप से बिखरी थी।

राज्य की सत्ता का यह वितरण या विक्रेंद्रीकरण कोई पसंद-नापसंद की बात नहीं थी। यह जमीनी यथार्थ की स्वीकृति थी। राज्य कुलीन वर्गों के समक्ष अपना प्रभुत्व जताने की स्थिति में नहीं था। सामंती सरदारों का अपने-अपने क्षेत्रों पर पूरा नियंत्रण था और उन्हें आसानी से बेदखल नहीं किया जा सकता था। अंतिम विश्लेषण में उनकी सत्ता ताकत पर टिकी थी अर्थात सशस्त्र समर्थक जुटाने की उनकी क्षमता पर टिकी थी जो एकमात्र उनके प्रति वफादार हों। अपने इन सशस्त्र समर्थकों की मदद से वे किसानों को सताते-धमकाते थे। अपने इलाकों की रक्षा करते थे और राज्य को चुनौती देते थे। लेकिन वे हमेशा अपने से बड़े सामंतों का प्रतिरोध नहीं कर पाते थे जिनके पास उनसे बड़े पैमाने पर सशस्त्र समर्थक गोलबंद करने की क्षमता थी। छोटे सामंत औपचारिक रूप से अपने से बड़े सामंतों का आधिपत्य स्वीकार कर उनके समक्ष समर्पण करते थे। सत्ता का वितरण व्यक्तिगत स्तर पर सशस्त्र समर्थकों को जुटाने की क्षमता के अनुरूप होता था।

राज्य के पास नियमित सेना की नियुक्ति के लिए संसाधन नहीं थे (राजस्व की केंद्रीकृत वसूली के लिए कोई मशीनरी नहीं थी)। इसलिए वह सामंतों की सैन्य शक्ति पर अंकुश नहीं लगा सकता था। किसी सर्वोच्च सेना की अनुपस्थिति में सामंतों के बीच आपाधापी मच जाती। दरअसल पांचवीं सदी से यही सब कुछ होता आ रहा था। उससे पार पाने के लिए कोई व्यवस्था बनानी थी। प्रारंभिक मेरोविंजियों ने केंद्रीय प्रशासन लागू करने की कोशिश की थी लेकिन वे नाकाम रहे थे। शार्लमेन इसमें अस्थायी रूप से कामयाब रहा था, लेकिन उसका बनाया केंद्रीकृत ढांचा इतना कमजोर था कि उसके देहांत के 50 साल के अंदर बिखर गया।

दसवीं सदी की शुरुआत तक पदानुक्रम के आधार पर सत्ता विभाजन वाला एक विक्रेंद्रित ढांचा ठोस रूप ले चुका था। यह राजनीतिक व्यवस्था सामंतवाद का एक राजनीतिक आयाम था। इसने तमाम सामंती सरदारों के हितों का खयाल रखा और उनके टकरावों को कम किया। इस पदानुक्रम में सामंती सरदार थे जो निजी तौर पर एक दूसरे से जुड़े थे। उच्च और निम्न सामंती सरदारों के बीच के रिश्ते का मूल सिद्धांत एक निजी

संबंध का बनना था। यह संबंध रिश्तेदारी का नहीं था। निम्न या अधीन सामंत को मातहत (वैसल) कहा जाता था जो अपने से उच्च सामंत के प्रति जीवन भर के लिए निजी वफादारी जताता था। बदले में उच्च सामंत मातहत की रक्षा का वादा करता था (हम पुरुषों की बात कर रहे हैं, महिलाएं इसमें कहीं शामिल नहीं थीं)।

सामंत और उसके मातहत के बीच रिश्ता बनाने के लिए एक लंबा-चौड़ा अनुष्ठान होता था। यह अनुष्ठान उनके रिश्तों की पवित्रता जताने के लिए था। एक समारोह आयोजित किया जाता था जिसमें मातहत पूरी जिंदगी सामंत की सेवा करने की कसमें खाते थे। इस समारोह को 'राजनिष्ठा' कहते थे। इसी समारोह के माध्यम से मातहत को सामंत का 'आदमी' होने की स्वीकृति मिलती थी। मार्क ब्लॉख का कहना है कि सामंती दौर में किसी का आदमी होना एक सामान्य बात थी। किसी सामंत/मातहत की शिनाख्त की व्याख्या उच्च दर्जे के किसी व्यक्ति के 'आदमी' के रूप में की जाती थी। साथ ही हरेक सामंत किसी अन्य का मातहत या 'आदमी' होता था। सामंत के ऊपर कोई अधिपति होता था तो नीचे कोई मातहत। अधिपतियों के भी आका होते थे। ये कुलीन थे। इस सिलसिले के शीर्ष पर राजा था। राजा के अधिकार सीमित थे। लेकिन वह सामंतों के प्राधिकार को वैधता प्रदान करने के लिए जरूरी था। राजा कुलीनों का तत्काल अधिपति था।

जब कोई मातहत अपने मालिक के प्रति वफादारी जताता था तो वह उसके साथ ही मालिक का संरक्षण भी स्वीकार करता था। मध्यकालीन फ्रांस में मालिक से मातहत को मिलने वाले संरक्षण के लिए अकसर *माइमबो* शब्द का इस्तेमाल किया जाता था। इस संरक्षण या *माइमबो* के बदले में मातहत को मालिक को विभिन्न किस्म की सेवाएं देनी पड़ती थीं। वे सेवाएं मुख्यत: सैनिक प्रकृति की होती थीं। मातहत मालिक को सैनिक सेवा देने की शपथ से बंधे थे। उसे आदेश होने पर एक खास तादाद में सैनिकों की आपूर्ति करना होता था। उसे प्रशासनिक जिम्मेदारी भी सौंपी जा सकती थी।

इस रिश्ते की जड़ें जर्मनिक कबीलों की प्रथा में खोजी जा सकती हैं जहां कबीलाई सरदार अपने साथ अत्यंत प्रशिक्षित और बेहद वफादार योद्ध रखते थे। ये योद्धा अपने सरदारों के साथ घनिष्ठ निजी संबंध रखते थे। ये सैनिक अभियानों में सरदार के साथ रहते थे और केंद्रक की भूमिका निभाते थे। सेना में बाकी लोग कबीला के स्वस्थ युवक होते थे। यह जरूरी नहीं था कि सारे सैनिक दक्ष योद्धा हों। जर्मनिक कबीलाई सरदारों के खास दस्ते में शामिल योद्धाओं को *गिजिंड* कहा जाता था जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'किसी अभियान का साथी।' जर्मनिक कबीलों पर रचे गए प्राचीन यूनानी ग्रंथों में *गिजिंड* का अनुवाद *कोमेज* (बहुवचन *कोमिटिज*) या सहयोगी के रूप में किया गया है। इस तरह के योद्धा सहयोगियों की टुकड़ी को लातीनी में *कोमिटेटस* की संज्ञा दी जाती थी। *कोमिटेटस* योद्धाओं के पूरे दस्ते को दर्शाता है।

यह *कोमिटेटस* था जिससे मातहती की संस्था क्रमश: विकसित हुई। जब यह

प्रणाली अपने मध्यकालीन रूप में स्थापित हो गई, *कोमिटेटस* मातहती का लातीनी समतुल्य शब्द बन गया। उत्तर रोमन साम्राज्य में पश्चिमी कुलीन वर्गों के बीच निजी योद्धाओं का दस्ता रखना एक सामान्य बात थी। जैसे ही यह तरीका मध्यकाल के शुरुआती दौर में फैला, अपने मालिकों के प्रति व्यक्तिगत वफादारी जताने वाले इन खास योद्धाओं के लिए अनेक शब्द इस्तेमाल में आए : *कोमेज, गैसिंडस, बुसेल्लाराई, वैसस* इत्यादि। ऐसा लगता है कि सेल्टिक का मूल शब्द *वैसस* गॉल में आम इस्तेमाल में आया और फिर अधिकाधिक प्रचलित होता गया। इसलिए हम मध्यकाल में वैसल शब्द का व्यापक इस्तेमाल देखते हैं।

सामंत-मातहत रिश्ते के एक अंतरंग हिस्से के रूप में किसी सामंत से अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने मातहत का भरण-पोषण करेगा। इस उद्देश्य से मातहत को अनुदान दिया जाता था ताकि वह अपना गुजारा करने के साथ सैनिकों की जरूरतें भी पूरी कर सके। यह अनुदान उस समय अदा किया जाता था जब राजनिष्ठा के समारोह में किसी के मातहत बनने की स्वीकृति मिलती थी। एक दौर में जब मुद्रा की आपूर्ति कम थी और मुद्रा विनिमय आम बात नहीं थी, अनुदान के रूप में जमीन आवंटित करना एक आम रुझान था। यह एक सशर्त आवंटन था। इसके साथ सामंत की सेवा (सैन्य या दूसरी तरह की) करने की अनिवार्यता जुड़ी थी। सामंतों के लिए यह सैनिक जुटाने और अपने इलाके के शासन का एक आसान तरीका था। शार्लमेन के शासनकाल में पहले से ही सरकारी कर्मी जमीन के आवंटन के रूप में वेतन पा रहे थे। इसलिए भले ही शार्लमेन ने एक केंद्रीकृत राज्य के निर्माण की कोशिश की हो, उसके प्रयासों की परिणति सामंती रुझान को मजबूती प्रदान करने में हुई। मातहतों को किए गए ये सशर्त आवंटन '*फीफ*' के नाम से जाना। *फीफ* के लिए कुछ अन्य समकालीन शब्द *बेनेफिस, लेह्न,* और *फ्यूडम* हैं। *फ्यूडम* (सैन्य) सेवा की शर्त पर आवंटन को सूचित करता है। यह *फीफ* का समानार्थी शब्द है और इसी से फ्युडलिज्म (सामंतवाद) शब्द विकसित हुआ है।

सैद्धांतिक रूप से *फीफ* किसी भी रूप (वेतन अदायगी, राजस्व वितरण, भूमि दान या सीधे सामंत के घर से मातहत का भरण पोषण) में हो सकता था। लेकिन दसवीं सदी तक भूमि आवंटन उसका प्रधान रूप बन गया। मातहत का आत्मसमर्पण हमेशा सामंत से मातहत को आवंटित होने वाले *फीफ* से अभिन्न रूप से जुड़ा होता था। जैसे कि हम देखेंगे, आठवीं सदी में प्रारंभिक कैरोलिंजियाई सैनिकों के समर्थन के लिए बार-बार भूमि आवंटन का रास्ता अपनाते थे। फिर भी इस चरण में बड़ी संख्या में आवंटन सैनिक सेवा से जुड़े नहीं थे। नौवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मातहती, फीफ और सैनिक सेवा तीनों आपस में घुलमिल कर एक हो गए। घुलने-मिलने की यह प्रक्रिया सामंती प्रणाली के लिए पूरी तरह केंद्रीय महत्व की थी।

इस बात पर इतिहासकारों की सहमति है कि सैनिक सेवा के साथ मातहती और

फीफ का जुड़ाव नियमित आधार पर सैनिकों की नियुक्ति की कैरोलिंजियाई कोशिश से जुड़ा था। रोमन साम्राज्य के पतन और जर्मनिक आक्रमणों के चलते पश्चिम में रोमन सेना बिखर गई थी। वहां कोई नियमित सेना नहीं बची थी। उसके बाद उभरने वाले राज्यों के पास केंद्रीकृत आधार पर सैनिक नियुक्त करने के संसाधन नहीं थे। जर्मनिक कबीलों के कबीलाई सैन्य संगठन के तहत तमाम मुक्त वयस्क पुरुष सेना में होते थे। लेकिन कबीलों के सदस्यों के आश्रित कृषकों में बदलने से यह संगठन खत्म हो गया।

सैन्य गोलबंदी के किसी दूसरे तरीके की तत्काल आवश्यकता थी। वर्ग विभाजन पर आधास्ति किसी भी समाज को एक ऐसे राज्य की जरूरत पड़ती है जिसके पास पर्याप्त सशस्त्र बल हो। यह सशस्त्र बलों के समर्थन वाले राज्य की उपस्थिति ही है जिसके चलते शासक वर्ग अधिशेष का बहुत बड़ा हिस्सा हड़प कर पाते हैं। जो शासक वर्ग आठवीं और नौवीं सदियों में वजूद में आने लगे थे उसने जंग लड़ने, हमले संचालित करने और किसानों को अपने चंगुल में जकड़े रहने के लिए अब तक तदर्थ उपायों का सहारा लिया था। कैरोलिंजियाइयों ने फीफ के माध्यम से सैनिकों की नियुक्ति का एक कारगर तरीका ईजाद किया था। यह पहलू इस कदर महत्वपूर्ण है कि कुछ विद्वान सामंतवाद को अनिवार्यत: एक सैनिक प्रणाली मानते हैं। उन्नीसवीं सदी के अंत में हेनरीख ब्रुनर ने सामंतवाद को 'तत्काल युद्ध' के लिए समाज के संगठन का एक तरीका बताया था। उन्होंने उस असुरक्षा को रेखांकित किया जो जर्मनिक, हूण, स्लाव, मग्यार और अरब आक्रमणों के कारण पैदा हुई थी। हिंसक उथल-पुथल जीवन का एक हिस्सा बन गई थी। नियमित सेना की गैर मौजूदगी में राजा सेना की गोलबंदी के लिए अपने मातहतों पर निर्भर होता था जो अपने मातहत पर निर्भर थे। यह सिलसिला जारी रहता था।

हमने पिछले अध्याय में देखा कि आठवीं सदी की शुरुआत में फ्रैंक सेना घोड़े पर बैठ कर लड़ने वाले पेशेवर योद्धाओं पर बुरी तरह आश्रित हो गई थी। पैदल सेना की जगह घुड़सवार सेना ले रही थी और पैदल सैनिक खत्म हो रहे थे। यह बताया गया था कि एक हद तक अरबों के आक्रमण के कारण भी घुड़सवार सेना का महत्व बढ़ा था। अरब सेना में घुड़सवारों की संख्या अच्छी-खासी थी। इसीलिए फ्रैंकों को भी अपनी घुड़सवार सेना विकसित करनी पड़ी। ब्रुनर फ्रैंक सेना के रूपांतरण में प्वाटिए के युद्ध को एक प्रमुख मोड़ मानते हैं। हम जानते हैं कि चार्ल्स मार्टेल के सुधार भी इसी समय हुए।

फिर भी फ्रैंक घुड़सवार सेना के विकास को एक दीर्घकालीन प्रक्रिया के एक हिस्से के रूप में देखना ज्यादा उचित होगा। कुशल पैदल सैनिकों की भर्ती में दिक्कत होने लगी थी और कई मायने में जर्मनिक किसानों के हाशिए पर ढकेले जाने और युद्ध में उनको दी गई नाममात्र की भूमिका ने इस तब्दीली को तेज किया। यह नहीं मान लिया जाना चाहिए कि सामंती युग में आम किसानों पर किसी तरह की सैन्य जिम्मेदारी थी ही नहीं। उन्हें इस्तेमाल किया जाता था, लेकिन हमेशा उनकी भूमिका लड़ रहे मुख्य बल

के सहायक की होती थी। घुड़सवार सेना मध्यकालीन यूरोप में सेना का मेरूदंड थी।

इतनी ही महत्वपूर्ण थीं प्रौद्योगिकी में सैन्य-संबंधी खोजें जो उस वक्त उपलब्ध हो गई थीं। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी रकाब (घोड़े की जीन या काठी में दोनों तरफ पांव रखने के लिए किया गया प्रावधान) के इस्तेमाल की शुरुआत। प्राक्-कैरोलिंजियाई यूरोप में रकाब के इस्तेमाल का कोई साक्ष्य नहीं मिलता है। करीब आठवीं सदी में रकाब पश्चिमी यूरोप में घुड़सवार के साजोसामान का हिस्सा बनना शुरू हो गई थी। अल्पविकसित रकाब प्राचीन भारत और चीन में इस्तेमाल होते थे। वहां से इसका विचार पश्चिम में फैला। आठवीं सदी की पहली चौथाई में फ्रैंकों ने इसे परिवर्द्धित रूप में अपनाया। रकाब ने घुड़सवार सेना को एक निर्णायक बढ़त प्रदान कर युद्ध के तौर-तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया।

यूरोपीय सामंतवाद के सर्वोच्च प्राधिकार माने जाने वाले बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के फ्रांसीसी इतिहासकार ब्लॉख ने कैरोलिंजियाई घुड़सवार सेना के विकास में रकाब की भूमिका उजागर की है। उन्होंने अपनी कृति *फ्युडल सोसाइटी* में मध्यकालीन युद्धकौशल में रकाब की भूमिका की जांच-पड़ताल की है। उन्होंने दूसरी खोजों, मसलन नाल के इस्तेमाल की भी पड़ताल की है जिसने घोड़े पर बैठ कर युद्ध करना प्रभावी बना दिया। ब्लॉख ने रकाब को उसकी अपेक्षित मान्यता दी। लेकिन उसका कहना था कि घुड़सवार सेना को फ्रैंकों से मिलने वाली प्रमुखता 'विकास की एक प्रक्रिया थी जो कई सौ सालों से चल रही थी।' फिर भी वह जानते थे कि इस सवाल पर छानबीन की जरूरत है। उन्होंने माना कि यह परिघटना 'हमेशा ठीक से समझी नहीं गई। एक हद तक इसका कारण यह रहा कि कुछ तकनीकी कारकों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया।' बाद में अमरीकी विद्वान लिन व्हाइट ने रकाब के इतिहास की गहन चर्चा की और नई बातें प्रकाश में लाईं।

लिन व्हाइट ने इस विषय पर अपने अनूठे अध्ययन *मेडिएवल टेक्नोलोजी एंड सोशल चेंज* (1962) में यह अनूठी परिकल्पना पेश की कि रकाब का इस्तेमाल उन कारकों में से एक है जिन्होंने सामंतवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया। उनकी दलील है कि रकाब ने सैनिक, राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर व्यापक प्रभाव डाले। इसने घुड़सवार सैनिकों के लड़ने के तरीके और समाज के संगठन में गुणात्मक परिवर्तन ला दिया। व्हाइट के अनुसार बारूद के इस्तेमाल से पहले युद्ध के समूचे इतिहास में रकाब सर्वाधिक महत्वपूर्ण आविष्कार था। रकाब ने घुडसवार सेना को सामरिक रूप से जबर्दस्त बढ़त दिला दी। रकाब के इस्तेमाल से पहले घुड़सवार अपना संतुलन बनाए रखने के लिए घोड़े के जिस्म को अपने घुटने से दबाते थे। अगर वे ज्यादा दबाव नहीं डाल पाते तो उनके गिरने का डर बना रहता था। इसने घोड़े पर बैठ कर जंग करना बेहद कठिन बना दिया था खास कर तब जब घोड़ा दौड़ रहा हो। घुड़सवार की अच्छी-खासी ऊर्जा खुद को संभालने में लग

जाती थी और वह पूरी शक्ति से अपने हथियार का इस्तेमाल नहीं कर पाता था। रकाब के इस्तेमाल की तुलना में यह जंग करने का एक अत्यंत अक्षम तरीका था।

रकाब ने घुड़सवार को बड़ी आसानी से घोड़े पर अपनी पकड़ बनाने की इजाजत दी। अब घुड़सवार घोड़ें पर मजबूती से जमा होता था। घोड़ा और घुड़सवार एक इकाई में बदल जाते थे। दोनों की सम्मिलित शक्ति ने घुड़सवार के हाथों में हथियार को कई गुणा ज्यादा जोर प्रदान किया। इस तरह हथियार ज्यादा मारक बन गया। मध्यकालीन यूरोप में घोड़े पर सवार योद्धा आमतौर पर मुख्य हथियार के रूप में लंबा बल्लम इस्तेमाल करते थे। जब वे बल्लम चलाते थे, दौड़ते हुए घोड़े की समूची शक्ति हथियार में हस्तांतरित हो जाती थी। इस तरह की जंग 'आरूढ़ आघात भिड़ंत' के नाम से जानी गई। आरूढ़ आघात भिड़ंत ने मध्यकालीन यूरोप के युद्धकौशल को बड़ी तेजी से बदल डाला। रकाब के बगैर आरूढ़ आघात भिड़ंत संभव नहीं थी।

यूरोप में कैरोलिंजियाई सैनिक नेतृत्व बहुत पहले ही युद्ध की तकनीक के रूप में आरूढ़ आघात भिड़ंत की श्रेष्ठता समझने में सफल रहा। संभवत: चार्ल्स मार्टेल के काल में ही फ्रैंकों ने यह तकनीक अपना ली। चार्ल्स मार्टेल ने आरूढ़ आघात भिड़ंत पर आधारित सैन्य अभियान के संचालन के लिए फ्रैंक सेना में एक बड़ी घुड़सवार सेना शामिल कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही काल (करीब 730) था जब फ्रैंक रकाब से वाकिफ हुए। यहां यह समझना जरूरी है कि घुड़सवार सेना का गठन कोई आसान मामला नहीं था। अच्छे घोड़े बेहद महंगे होते थे और घोड़ों की देखभाल, घुड़सवार सैनिकों का प्रशिक्षण और घुड़सवार सेना के साजोसामान (हथियार, बख्तर, रकाब इत्यादि) सभी के लिए बड़ी रकम दरकार थी। इन खर्चों को पूरा करने के लिए संसाधन जुटाने पड़ते थे। चूंकि इस तरह के कार्यभार के वित्तपोषण के लिए राजस्वों की केंद्रित उगाही और वितरण का कोई सवाल ही नहीं था, शक्तिशाली सामंतों को इस मकसद से भूमि आवंटित की गई। ये सशर्त आवंटन या *फीफ* थे जिसके साथ विशेष सैन्य जिम्मेदारियां जुड़ी थीं। भूमि पाने वाले को आवंटन के बदले एक खास संख्या में घुड़सवार सैनिक उपलब्ध कराने होते थे।

शासन की एक और समस्या यह थी कि उसे वितरण के लिए पर्याप्त जमीन की जरूरत थी। चार्ल्स मार्टेल ने बड़े पैमाने पर चर्च की जमीनें जब्त कर यह समस्या हल की। इसकी भरपाई के लिए चर्च को कुछ खास कर, मसलन धर्मशुल्क को कठोरता से लागू करने की इजाजत दी गई। चार्ल्स मार्टेल ने ये जमीन मातहतों के बीच बांट दिए जो उसकी उपज से घोड़ों और सैनिकों की देखरेख करने के लिए बाध्य थे। चार्ल्स मार्टेल के शासनकाल में चर्च की जमीनों की जब्ती तभी शुरू हुई जब अरबों ने फ्रांस पर हमला किया। इस स्थिति ने कई इतिहासकारों को फ्रैंक सेना के सुधारों और अरब आक्रमण के बीच सीधे संबंध के संदर्भ में सोचने के लिए प्रेरित किया।

व्हाइट ने दिखाया कि प्वाटिए में अरबों और फ्रैंकों के बीच भिड़ंत (733) से पहले ही जब्ती शुरू हो चुकी थी। चार्ल्स मार्टेल ने 732 में ऑर्लेआं के बिशप के अधिकार क्षेत्र में पड़ी जमीन जब्त कर ली थी। व्हाइट के विचार से यहीं प्वाटिए की जंग की पुनरीक्षित तारीख का महत्व है। पहले माना जाता था कि युद्ध 732 में हुआ। हाल फिलहाल के अध्ययनों में भी आम तौर पर यही तारीख इस्तेमाल की जाती रही है। एम. बौदोत के अनुसंधान ने स्थापित किया कि युद्ध वास्तव में 733 में हुआ। बौदोत का यह अध्ययन 1955 में प्रकाशित हुआ। परिवर्तित तारीख बताती है कि फ्रैंक सेना का पुनर्गठन (व्हाइट पुनर्विन्यास कहना पसंद करते हैं) अरबों के साथ संघर्ष से पहले हुआ। इसके अलावा मुख्यत: स्पेन में उम्मावियों की आंतरिक समस्या की वजह से अरबों का खतरा जल्द ही टल गया। व्हाइट का मानना है कि अरबों के मामले को थोड़ा तूल दिया गया है। वह पैदल सेना की जगह घुड़सवार सेना को प्रमुखता मिलने के पीछे रकाब के इस्तेमाल को एक तर्कसंगत कारण मानते हैं।

यहां हमने जो कुछ पेश किया वह व्हाइट की जटिल दलील का एक अतिसरलीकृत रूप है। लेकिन यह सही है कि उनके लिए रकाब उन जबर्दस्त तब्दीलियों का प्रारंभ बिंदु है जिनके कारण सामंतवाद एक राजनीतिक और सैन्य व्यवस्था के रूप में उभर सका। इसी कारण अपनी 'तकनीकी नियतिवाद' के लिए, अर्थात तकनीक को सामाजिक परिवर्तन का नियतकारी या निर्णायक कारक बनाने के लिए व्हाइट को आलोचना का शिकार होना पड़ा है। इसका यह मतलब नहीं है कि प्रौद्योगिकी को नजरअंदाज किया जा सकता है। लेकिन हमें उसे उसके उचित संदर्भों में रखना होगा। मध्यकाल में नाइट्स के नाम से प्रसिद्ध पेशेवर घुड़सवार योद्धाओं पर आधारित घुड़सवार सेना का संक्रमण दसवीं सदी तक संपन्न नहीं हुआ। यह बड़ी गहराई से न सिर्फ प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों से बल्कि राजनीतिक ढांचे और उत्पादन एवं अधिशेष दोहन के स्वरूप से भी जुड़ा था। राजनीतिक ढांचे की हम चर्चा कर चुके हैं और उत्पादन एवं अधिशेष दोहन के स्वरूप पर हम यहां चर्चा करेंगे।

II

मध्यकालीन यूरोप का राजनीतिक और सैन्य ढांचा कुछ भी हो, अंतत: उसकी सफलता उत्पादन एवं अधिशेष के दोहन की प्रणाली की स्थिरता पर निर्भर थी। यह एक उत्पादन प्रणाली के रूप में सामंतवाद था जिसने उस राजनीतिक, सैनिक और सामाजिक ढांचा को टिकाया जिसकी हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं। इन सभी पहलुओं (आर्थिक, राजनीतिक सैनिक, सामाजिक) को एक साथ जोड़ दें तो वे अपने पूर्णतम अर्थों में सामंतवाद का गठन करते हैं। ये सभी सामंती उत्पादन प्रणाली के हिस्से हैं जो गुलाम उत्पादन प्रणाली

के बाद पश्चिमी यूरोप में प्रमुख उत्पादन प्रणाली रही। इस नई उत्पादन प्रणाली ने गुलाम उत्पादन प्रणाली के संकट के कारण लंबे अर्से से जारी संकट से उबरने की संभावनाएं सृजित कीं।

गुलाम उत्पादन प्रणाली में संकट ने नए अधिशेष दोहन संबंधों को जन्म दिया था। ये अधिशेष दोहन संबंध सामंती सामाजिक संरचना के आधार बने। इसी प्रकार जर्मनिक कबीलों में सामाजिक विभेदीकरण ने पहले कबायली रिश्तों को कमजोर किया था। एक बार जब कबीले बस गए और उनके ज्यादातर सदस्य किसान बन गए, उत्पादकों के साथ प्रभुत्वशाली वर्ग का संबंध भी अधिकाधिक शोषणकारी होता गया। गुलाम सामाजिक संरचना में संकट से निबटने के लिए रोमन समाज ने हाल फिलहाल शोषण के जो तरीके विकसित किए थे, जर्मनिक समाजों ने बड़ी तेजी से उन्हें अपना लिया। अंततः दोनों समाजों के अधिशेष दोहन संबंध एक जैसे हो गए।

हमने अध्याय दस में देखा कि गुलाम उत्पादन प्रणाली के खात्मे के साथ पश्चिमी ग्रामांचलों में कोलोनेट प्रचलित हो गए। किसी समय मुक्त कृषक रहे कोलोनाइ उत्तर रोमन साम्राज्य में जमीन से बंधे आश्रित किसान में बदल चुके थे। जब जर्मनिक कबीले पश्चिम की कृषक अर्थव्यवस्था में आत्मसात कर लिए गए, तो उनके अपने योद्धा कुलीन वर्ग ने उन्हें कोलोनाइ में बदल दिया। उसके अतिरिक्त मुक्त किसानों की विभिन्न श्रेणियां भी उस समय कोलोनाइ बन गईं जब उन्होंने शक्तिशाली रोमन भूस्वामी या जर्मनिक सरदारों से संरक्षण मांगा। दूसरी तरफ अनेक पूर्व गुलाम लैटिफुंडिया में से बनाए गए छोटे जोतों पर अपने परिवार सहित बसाए गए थे। यह बड़ी जायदादों के प्रबंधन का नया तरीका था। इसने उनका दर्जा थोड़ा बुलंद किया। इन पूर्व गुलामों और कोलोनाइ की स्थिति भिन्न नहीं थी। दूसरे शब्दों में, वास्तविक कृषकों का एक उल्लेखनीय हिस्सा एक व्यापक श्रेणी, अर्थात कोलोनाइ में बदल गया था। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि गुलामों के साथ मुक्त किसान भी कोलोनेट से सहअस्तित्व कर रहे थे और कोलोनाइ को इन दो वर्गों के बीच में रखा गया था।

स्थानीय स्तर पर बड़े भूस्वामियों, सैन्य नेताओं और जर्मनिक सरदारों की बढ़ती आर्थिक एवं राजनीतिक ताकत के साथ-साथ मुक्त कृषक अपनी आजादी खोते गए। अपना प्राधिकार लागू कराने में केंद्रीकृत सरकार की विफलता ने इन समूहों को ज्यादा से ज्यादा सत्ता हथियाने का मौका दिया। किसान पूरी तरह बड़े सामंतों के रहमोकरम पर थे। लोगों को जर्मनिक कबीलों के उत्पीड़न से बचाने में शासन की नाकामी के कारण उनकी हालत बिगड़ी। आम किसान सुरक्षा के वादे पर हर ऐसे व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता सौंपने के लिए बाध्य हो गए जो उनके इलाके में सैन्य रूप से थोड़ा मजबूत था। स्वाभाविक रूप से यह भूस्वामी कुलीन वर्ग था जो उन्हें सुरक्षा प्रदान करने की हैसियत में था क्योंकि सैन्य समर्थन जुटाने के लिए उसके पास संसाधन थे। वास्तविक स्तर पर कुलीन वर्ग की

छोटी निजी सेना लोगों की सुरक्षा सुनिश्चित करे न करे, उसने किसानों पर गिरफ्त मजबूत करने में बड़े सामंतों की मदद जरूरी की। स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर सामंत और योद्धा सरदार ही असली शासक थे।

आठवीं सदी तक कोलोनाइ पश्चिम में कृषि उत्पादन का मुख्य आधार बन चुके थे। उत्पादन/अधिशेष दोहन के एक रूप के बतौर कोलोनेट गुलामी और भूदासता के बीच का एक संक्रमणकालीन चरण था। खुद कोलोनेट में भूदासता के अनेक अवयव मौजूद थे। मेरोविंजियाई काल में कोलोनाइ की हैसियत बिलकुल बाद के भूदास जैसी थी। लेकिन अवधारणात्मक रूप से दोनों में अंतर करने की जरूरत है। बेशक यह सही है कि भूदासता का विकास कोलोनेट से हुआ, लेकिन भूदास कोलोनाइ से बहुत भिन्न थे और उसकी वजह यह थी कि भूदासता प्राक्-मध्यकालीन यूरोप के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढांचे से गहराई से जुड़ी थी। भूदासता आधारित उत्पादन जिस तरह संगठित किया गया, बस वही नया था। सामंती सरदार की सत्ता का आधार भी भिन्न था। अब उसके पास व्यापक राजनीतिक और न्यायिक अधिकार थे जिनका इस्तेमाल वह किसानों के आर्थिकेत्तर अवपीड़न के लिए करता था।

किसी खास घटना की तरह उत्पादन की किसी प्रणाली के विकास का समय आसानी से निश्चित नहीं किया जा सकता। मोटा-मोटी एक काल बताया जा सकता है लेकिन यह तय करना उचित नहीं होगा कि किस वर्ष विशेष में इस उत्पादन प्रणाली का उद्भव हुआ। यह एक संक्रमण की प्रक्रिया होती है, न कि एक प्रणाली की जगह झट दूसरी प्रणाली ले लेती है। हमें किसी उत्पादन प्रणाली के चंद तत्वों के उभरने और किसी उत्पादन प्रणाली के प्रमुखता ग्रहण करने के बीच फर्क करना चाहिए। यह कुछ निश्चितता के साथ कहना संभव है कि *दसवीं सदी की शुरुआत तक उत्तरी फ्रांस में एक पूर्णरूपेण सामंतवाद की स्थापना हो गई।*

इस बात के मद्देनजर फ्रैंकों, और सबसे बढ़कर शार्लमेन की नीतियों ने सामंती संस्थाओं के विकास में खासा योगदान किया, इसमें शायद ही हैरत की बात है कि प्रारंभिक मध्यकालीन यूरोप में कैरोलिंजियाई साम्राज्य सामंतवाद के मुख्य केंद्र के रूप में उभरा। अब चूंकि उत्तरी फ्रांस इस साम्राज्य का मुख्य क्षेत्र था, इस क्षेत्र को यूरोपीय सामंतवाद का 'केंद्रीय गृहस्थल' कहना उचित होगा। बेशक कैरोलिंजियाई शासकों ने उन रुझानों को ज्यादा तेजी से आगे बढ़ाने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाई जो जर्मनिक आक्रमणों के दूसरे चरण में उभरे थे। छठी सदी के बाद से पश्चिमी यूरोप की अर्थव्यवस्था उत्तर की दिशा में खिसकने लगी थी। उत्तर की दिशा में अर्थव्यवस्था के खिसकने की यह प्रक्रिया रोमन साम्राज्य के पतन के बाद भूमध्यसागर से हटने से जुड़ी है। रोमन साम्राज्य के पतन के साथ ही यूनानी-रोमन प्राच्यकाल की भूमध्यसागर-केंद्रित अर्थव्यवस्था में बिखराव आना शुरू हो गया था।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि पहले जर्मनिक हमले के बाद भी यूरोप की आर्थिक गतिविधियां एक हद तक भूमध्यसागर की ओर केंद्रित रहीं। अरब विजय के बाद ही आठवीं सदी में कहीं जाकर यूरोपीय अर्थव्यवस्था के हृदय-स्थल के रूप में भूमध्यसागर की भूमिका समाप्त हुई और उत्तरी फ्रांस ने प्रमुखता ग्रहण की। हेनरी पिरेन ने अपने प्रभावशाली ग्रंथ *मोहम्मद एंड शार्लमेन* में बड़े जोरदार ढंग से यह दलील पेश की है। पिरेन का कहना है कि भूमध्यसागरीय क्षेत्र की एकता रोमन अर्थव्यवस्था के लिए नितांत आवश्यक थी और जर्मनिक हमलों के बावजूद यह कमोबेश बनी रही। इस क्षेत्र का व्यावसायिक संजाल टिका रहा और अनेक वस्तुओं की लंबी दूरी का व्यापार जारी रहा। बाद में उत्तरी अफ्रीका में अरबों के विस्तार ने इस क्षेत्र की एकता को जबर्दस्त चोट पहुंचाई। भूमध्यसागर की दक्षिणी तटरेखा और साथ ही पूर्वी एवं पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के कुछ हिस्सों पर अरबों के नियंत्रण ने इस क्षेत्र में शक्ति संतुलन को बुनियादी रूप से बदल दिया। व्यापार का समूचा स्वरूप बिगड़ गया और जहां तक यूरोपीय अर्थव्यवस्था का सवाल है, भूमध्यसागरीय क्षेत्र ने अपनी प्रासंगिकता खो दी। इससे जो शून्यता बनी, उसे कैरोलिंजियाई साम्राज्य ने भरी। पिरेन के शब्दों में, 'मोहम्मद के बगैर शार्लमेन अकल्पनीय है।' सचमुच मध्यकालीन समाज कैरोलिंजियाइयों के साथ ही वजूद में आया।

पिरेन ने सामंतवाद के उद्‌भव की व्याख्या अरब साम्राज्य के विस्तार के बाद भूमध्य-सागरीय व्यापार में ह्रास के संदर्भ में करने की कोशिश की। अनेक इतिहासकारों ने इस तर्क पर सवाल खड़ा किया है। मिसाल के तौर पर आर.एस. लोपेज ने इंगित किया है कि अगर हम आठवीं और नौवीं सदी के भूमध्यसागरीय व्यापार की संरचना पर गहरी नजर डालें तो हम पाएंगे कि अरब विस्तार के बाद लंबी दूरी का व्यापार अचानक खत्म नहीं हो गया। उल्टे ऐसी अनेक वस्तुओं की खरीदोफरोख्त जारी थी जिसके बारे में पिरेन का खयाल था कि यूरोप में उनका आयात या वहां से उनका निर्यात बंद हो चुका था। लोपेज ने पेपाइरस की मिसाल दी है जो मिस्र और यूरोप के बीच के व्यापार की एक महत्वपूर्ण वस्तु थी। यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि मिस्र 642 में ही अरब शासन के अधीन आ चुका था। साक्ष्य से लगता है कि पहले की मान्यताओं के विपरीत पूर्व मध्यकालीन यूरोप में लेखन के लिए पेपाइरस का इस्तेमाल पूरी तरह खत्म नहीं हो गया था। लोपेज के मुताबिक आम तौर पर लंबी दूरी के व्यापार और खास तौर पर भूमध्यसागरीय व्यापार के ह्रास के लिए दीर्घकालिक कारक (अध्याय दस में हम उस पर चर्चा कर चुके हैं) जिम्मेदार थे।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि भूमध्यसागरीय क्षेत्र से व्यापार की धुरी के खिसकने से और व्यापार में ढिलाई आने से उन क्षेत्रों के लिए नई संभावनाएं बनीं जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर थे। वे इलाके लंबी दूरी के व्यापार में ह्रास से होने वाले परिणामों से बच निकलने में कामयाब रहे जो भूमध्यसागरीय क्षेत्र के व्यावसायिक संजाल

में पूरी तरह से समेटे नहीं जा सके थे। उत्तरी फ्रांस ऐसा ही एक क्षेत्र था। उसकी स्थानीय आर्थिक इकाइयां जीवंत थीं जो कैरोलिंजियाई शासकों से मिली अपेक्षाकृत स्थिरता के चलते फली-फूलीं। नौवीं सदी के अंत तक उत्पादन की सामंती प्रणाली फ्रैंक क्षेत्रों में जड़ जमा चुकी थी। जिस तरह इटली प्राचीन रोमन सभ्यता का केंद्रक था, फ्रांस भी उसी तरह प्राक्-मध्यकालीन यूरोपीय सभ्यता का केंद्रक बना।

सामंती अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित करने से पहले कुछ आम टिप्पणियां करना प्रासंगिक होगा। सामंतवाद के प्रमुख लक्षणों में शहरीकरण का निम्न स्तर और मौद्रिक विनिमय की अनुपस्थिति वस्तुतः शामिल थीं। मुद्रा की आपूर्ति कम थी। हालांकि व्यापार अनुपस्थित नहीं था, इसका दायरा सीमित था। नगर, बाजार और विनिमय-वस्तु के उत्पादन का विकास कम हुआ था (विनिमय-वस्तु के उत्पादन का अर्थ विनिमय के लिए वस्तुओं का उत्पादन है अर्थात ये ऐसे वस्तु हैं जिनका उत्पादन सामान्य उपभोग के लिए नहीं, बल्कि मुद्रा या अन्य वस्तु के साथ विनिमय के लिए होता है)। बाजार के लिए दस्तकारी उत्पादन एक छिटपुट गतिविधि थी। सामंती अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से, यहां तक कि गुलाम सामाजिक संरचना से भी ज्यादा, कृषि आधारित थी। सामंती कुलीन वर्ग की संपत्ति प्राथमिक रूप से भूमि और उसकी उपज से सृजित होती थी। सामंतवाद का श्रेणीबद्ध राजनीतिक ढांचा भूमि के श्रेणीबद्ध अधिकारों का अक्स था। जो भी इस ढांचा के हिस्सा थे, वे इस पदानुक्रम में अपनी स्थिति के अनुरूप कृषिगत अधिशेष का हिस्सा पाते थे।

सामंती अर्थव्यवस्था पर सामंती सरदारों की जायदादों का वर्चस्व था। मध्यकालीन यूरोप की विशिष्ट जायदादों के रूप मेनर (गढ़ी) या सीन्यूरी थे। मेनर इलाके की *तमाम* जमीनों का कुल योग था जिस पर सरदार का सर्वोच्च अधिकार था। यह समूची जमीन या उसका कुछ हिस्सा उसे उसके अधिपति से *फीफ* के रूप में मिला था। यहां हम इस बात की चर्चा कर रहे हैं कि कैसे सामंत जमीन का शोषण करता था भले ही जमीन का कितना भी हिस्सा *फीफ* में शामिल न हो। मेनर एक *फीफ* थी जिसके दो भिन्न लेकिन एक दूसरे से जुड़े अवयव थे। जायदाद का एक हिस्सा सामंत के प्रत्यक्ष प्रबंधन के अधीन होता था। बाकी में किसानों के जोत शामिल होते थे। सामंत की सीधी देखरेख वाली जायदाद का हिस्सा *डीमेन* कहलाता था। डीमेन पर उत्पादन का काम आंशिक रूप से सामंत के घरेलू भूदास करते जो अकसर गुलाम होते। उत्पादन का बाकी काम किसान संभालते जिन्हें मेनर के बाकी हिस्से के छोटे भूखंड सौंपे जाते। किसानों को सामंत के मेनर का काश्तकार माना जाता था। काश्तकार होने के नाते अपने भूखंड को जोतने के बदले में उन्हें सामंत को कुछ देना पड़ता था। किसानों को लगान के रूप में श्रमसेवा देनी होती थी। (श्रमसेवा सामंती लगान होती थी) इसके तहत काश्तकारों को अपने जोतों पर खेती करने के अलावा सामंत के लिए भी काम करना पड़ता था। काश्तकारों

को सामंतों की श्रमसेवा के रूप में मुख्यत: सप्ताह में कुछ खास दिन डीमेन पर काम करना पड़ता था। ये आश्रित किसान (कोलोनाइ, पूर्व गुलाम, तंगहाल जर्मनिक किसान) थे जिनके पास सामंत का हुक्म बजाने के अलावा कोई चारा नहीं था। मध्यकालीन यूरोप के ये आश्रित किसान *सर्फ* (भूदास) कहलाते थे। वे जमीन से बंधे थे और पूरी तरह सामंत के अधीन थे। प्रसंगवश *सर्फ* शब्द लातीनी के *सर्वस* से निकला है। रोमन साम्राज्य में आम तौर पर गुलामों के लिए इस शब्द का इस्तेमाल किया जाता था जो यह इंगित करता है कि शुरू में भूदासों की स्थिति गुलामों से भिन्न नहीं थी।

सामंती उत्पादन प्रणाली पहले उत्तर रोमन साम्राज्य में लैटिफुंडिया के विखंडन के साथ उस समय उभरी जब गुलामों को बड़ी जागीरों के भीतर ही अलग-अलग भूखंडों पर बसाया जा रहा था। गुलाम श्रमिकों की सख्त कमी के कारण लैटिफुंडिया मालिकों ने अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण एवं प्रबंधन में जायदाद का एक छोटा हिस्सा रखना बेहतर समझा। सामंत की प्रत्यक्ष देखरेख में रह रहे जायदाद के हिस्से पूर्व गुलामों को दिए गए भूखंडों से घिरे होते थे। ये पूर्व गुलाम अब भी अपने स्वामी की सेवा के लिए बाध्य थे। इसके साथ ही, शक्तिशाली सामंतों के कारण जायदादों के इर्द-गिर्द बसे मुक्त किसानों की ज्यादा से ज्यादा संख्या की हैसियत जैसे-जैसे गिरती गई, वैसे-वैसे वे भी सामंत की सेवा के लिए बाध्य होते गए। इन आश्रित किसानों से सामंतों की श्रम आपूर्ति में वृद्धि हुई। चाहे कोलोनाइ हों या पूर्व गुलाम और उनके वंशज, जो भी जायदाद के सामंत वाले हिस्से से इस प्रकार बंधे, प्राक्-मध्यकालीन दौर में भूदासों की एक अभिन्न श्रेणी बन गए। फिर भी, अब दो महत्वपूर्ण अंतर थे। सर्वप्रथम, अनेक जायदादें जर्मनिक सरदारों के हाथों में चली गई थीं जिनके पास काम करने के लिए अपने कबीले या कुल के किसान थे। उनमें से ज्यादातर किसान भूदास बन गए। दूसरे, सामंती सरदारों को राजनीतिक और न्यायिक प्राधिकार सौंपे गए जिसने दमन-उत्पीड़न करने की उनकी क्षमता बढ़ा दी। एक संस्था के रूप में भूदासता की विशिष्टता इसी अवपीड़न में है जो अब सामंती सरदार आश्रित किसानों या भूदासों पर कर सकता था।

यह नहीं समझा जाना चाहिए कि मध्यकालीन यूरोप में गुलाम प्रथा नहीं थी। उल्टे यह दर्शाने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि मध्यकाल की शुरुआत में कुछ इलाकों में गुलाम प्रथा की पुनरावृत्ति हुई थी। पियरे डॉकेस ने अपने ग्रंथ *मेडिएवल स्लेवरी एंड लिबरेशन* में मध्यकालीन यूरोपीय गुलामी की परिघटना की विवेचना की है। मध्यकाल की शुरुआत में श्रमिकों की जबर्दस्त किल्लत के चलते सामंती सरदारों ने एक विकल्प के रूप में गुलामी को पूरी तरह त्याग नहीं दिया था। खासकर डीमेनो में गुलाम श्रम की व्यापक स्तर पर मौजूदगी थी। यह आकलन किया गया है कि कैरोलिंजियाई फ्रांस में गुलाम कुल कृषि श्रम बल का पांचवां हिस्सा थे। आठवीं और नौवीं सदी में लगातार जारी युद्धों ने गुलामों की आपूर्ति की। शार्लमेन ने अनेक अभियान छेड़े। उनमें से कई जर्मनिक

कबीलों के खिलाफ थे। नतीजतन बड़ी संख्या में युद्धबंदी गुलाम बनाए गए जिससे गुलाम श्रमिकों की संख्या बढ़ी। यहां यह नहीं कहा जा रहा है कि गुलामी कृषि के क्षेत्र में अपनी पुरानी हैसियत पर पहुंच गई। मेनर का आर्थिक संगठन प्राचीन लैटिफुंडिया से पूरी तरह भिन्न था।

मेनर एक समन्वित आर्थिक इकाई था। हरेक मेनर कमोबेश आत्मनिर्भर था क्योंकि वहां रोजमर्रा इस्तेमाल की करीब-करीब तमाम वस्तुओं का उत्पादन और उपभोग होता था। यह बात तब समझ में आती है जब हम यह याद करते हैं कि मेनर का संचालन ऐसी व्यवस्था में होता था जहां मुश्किल से कोई विनिमय होता था। जैसा कि हम देख चुके हैं, उत्पादन के उद्देश्य से मेनर दो स्पष्ट हिस्सों में (i) डीमेन और (ii) आश्रित किसानों की काश्तकारी में बंटे थे। भूदासों के पास काश्तकारी वाला हिस्सा रहता था और वे विभिन्न लगान अदा करते थे। वे अपनी जोतों पर अपने एवं अपने परिजन की मदद से खेती करते थे। कृषक परिवार सामाजिक और आर्थिक इकाई दोनों थे। पूर्व मध्यकाल में सामंतों ने लगान वसूली की जिस व्यवस्था को बेहतर पाया वह हफ्ते में कुछ दिन (अमूमन तीन दिन) डीमेन में काम करने के लिए भूदासों को मजबूर करना था। खेती-बाड़ी के समय जब काम की जरूरत (जुताई, कटाई इत्यादि) बढ़ जाती तो भूदासों को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता। इस तरीके से डीमेन के लिए श्रम की आपूर्ति सुनिश्चित की जाती थी।

हम यह पूछ सकते हैं कि सामंत जायदाद का एक हिस्सा अपनी प्रत्यक्ष देखरेख में क्यों रखना चाहता था। इसका एक कारण तो यह था कि कुल जमीन के हिसाब से पर्याप्त किसान/भूदास उपलब्ध नहीं थे। सामंत समूची जायदाद को छोटे-छोटे भूखंडों में बांट नहीं सकता था क्योंकि पर्याप्त संख्या में आश्रित काश्तकार खोजना असंभव था (इस व्यापक रुझान के इक्के-दुक्के अपवाद भी थे)। दूसरा कारण यह था कि भूदासों के भूखंडों की उत्पादकता कम थी। इससे सामंतों को मिलने वाला अधिशेष कम हो गया था। इसलिए उन्हें डीमेन में उत्पादन में सीधे हस्तक्षेप करना पड़ता था। डीमेन के तीन फायदे थे। पहला, सबसे उर्वर और जायदाद में सबसे अच्छी जगह स्थित क्षेत्रों को डीमेन के लिए आरक्षित रखा जाता। दूसरे, सामंतों के पास कृषि की बेहतर तकनीकों में निवेश करने के लिए संसाधन थे। भूदासों के पास इसकी कमी थी। सामंती काल की शुरुआत में डीमेन ने नई प्रौद्योगिकी और कृषि के बेहतर तरीकों के प्रचार-प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तीसरे, सामंत अवपीड़न कर डीमेन के लिए श्रम जुटा सकते थे। भूदासों को सहयोग देने के लिए सामंत के घरेलू नौकर और गुलाम थे। इन सहूलियतों के कारण सामंत अपने डीमेन पर उत्पादकता का उच्च स्तर कायम रख पाते थे और उससे भारी अधिशेष हासिल कर पाते थे। दूसरी तरफ समूची जायदाद की सीधी देखरेख करना संभव नहीं था। इसका कारण आश्रित किसानों की कमी के साथ-साथ उन्हें अपनी जोत

रखने की इजाजत देकर उपज में साझेदारी देने की जरूरत थी। बेशक अपवादस्वरूप ऐसे कुछ मामले थे जहां सामंत समूची जायदाद का प्रबंधन खुद करता था। इस समूचे प्रबंध की सफलता का दारोमदार डीमेन कृषि तथा किसानों द्वारा कराई गई कृषि के बीच सही संतुलन बनाने पर था।

मेनर सिर्फ एक आर्थिक इकाई नहीं थी। यह एक प्रशासनिक इकाई भी थी। सामंत का प्राधिकार सर्वोपरि था और मेनर में रहने वाले उसके अधीन थे। सामंत मेनर का कानून बनाता था। आम लोग अपने गांवों से नहीं बल्कि उस मेनर से जाने जाते थे, जिसमें वे रहते थे। गांव सामंती प्रशासनिक एवं सामाजिक-आर्थिक ढांचा में एक अलग इकाई के रूप में देखे नहीं जाते थे। मेनरों के उद्‌भव ने गांवों की एकता को कमजोर किया। किसी गांव को अकसर दो या दो से ज्यादा मेनरों में विभाजित कर दिया जाता था। किसी एक मेनर के अधिकार क्षेत्र में कई गांव आ सकते थे। इसके तहत समूचे गांव भी हो सकते थे और विभिन्न गांवों के हिस्से भी हो सकते थे। दूसरे शब्दों में, किसी गांव की सीमाएं और किसी मेनर की सीमाएं मेल नहीं खाती थीं। उसके अतिरिक्त *फीफों* के आवंटन के कारण मेनर समय-समय पर पुनर्गठित किया जाता था। यह गांवों के विभाजन को और बढ़ा देता। जब भी जमीनें हस्तांतरित की जातीं, उसके साथ जुड़े भूदास भी हस्तांतरित किए जाते जिससे किसी गांव की आबादी कई मेनर के बीच वितरित हो जाती। अगर कोई गांव लंबे समय तक वजूद में रहता तो गांववासियों के बीच रिश्ता मजबूत होता। इन रिश्तों ने ग्रामस्तरीय एकजुटता को बढ़ावा दिया जो उत्तर मध्यकाल में भूदासता के खिलाफ संघर्ष का एक उल्लेखनीय कारक बनी।

सामंत द्वारा भूदासों का शोषण सामंती सामाजिक संरचना का प्रमुख अधिशेष दोहन संबंध था। भूदासों से अधिशेष का दोहन विभिन्न तरीकों से किया जाता था। सामंती काल के शुरू में बिना किसी पारिश्रमिक के श्रमसेवा प्रदान करने की सामंतों की मांग भूदासों पर सबसे बड़ा बोझ था और उन्हें यह पूरा करना पड़ता था। फ्रांस में इन अवैतनिक श्रमसेवाओं को *कोरवी* कहा जाता था। *कोरवी* में कृषिगत काम शामिल थे जिन्हें भूदासों को डीमेन में करना होता था। साथ ही उन्हें ईंधन की लकड़ियां काटने से लेकर मकान बनाने तक अनेक प्रकार के अत्यंत कष्टसाध्य काम करने पड़ते थे। उसके अलावा वस्तु की शक्ल में भूदासों को शुल्क भी अदा करना पड़ता था। कुछ उनसे सीधे वसूला जाता जबकि बाकी की अप्रत्यक्ष रूप से उगाही की जाती थी। सीधे वसूले जाने वाले शुल्कों में सबसे महत्वपूर्ण *टेल* था। *टेल* उन अनेक शुल्कों में से एक था जिसे सामंत की ओर से मिलने वाली सुरक्षा के बदले किसानों को चुकाना होता था। जब भी सामंतों को अधिक संसाधनों की जरूरत पड़ती, वह मनमाने ढंग से इसे थोप देता। एक तरह से यह भूदासों को लूटना और उन्हें उनकी अत्यल्प बचत से भी वंचित कर देना था। परवर्ती काल में *टेल* को नियमित करने का प्रयास किया गया। उत्तर मध्यकाल में यह फ्रांसीसी राज्य

द्वारा उगाहे जाने वाले प्रमुख प्रत्यक्ष करों में से एक बन गया। फ्रांसीसी क्रांति के बाद इसका उन्मूलन किया गया।

प्रत्यक्ष वसूली किए जाने वाले अन्य शुल्कों में धर्मशुल्क का जिक्र किया जा सकता है। धर्मशुल्क मूलत: एक ऐसा कर था जो चर्च को अदा करना होता था, लेकिन पूर्व मध्यकाल में सामंती सरदार उसका एक बड़ा हिस्सा हड़प लिया करते थे। धर्मशुल्क (या दशमांश) की अवधारणा प्राचीन काल की है जब ईसाइयत फलस्तीन में सीमित थी। उस समय यह धार्मिक और खैराती उद्देश्यों से स्वैच्छिक योगदान था। पश्चिम में ईसाइयत के प्रसार के साथ धर्मशुल्क चर्च की ओर से लागू एक नियमित कर बन गया (धर्मशुल्कों की वसूली का विचार कभी पूर्व में पूरी तरह से स्थापित नहीं हो सका)। सभी ईसाइयों को यह कर अदा करना पड़ता था जो सिद्धांतत: उनकी समूची आमदनी का दसवां हिस्सा होता था। पहले धर्मशुल्क की वसूली किसी खास स्थान के चर्च के मांगने की क्षमता पर निर्भर करती थी। कैरोलिंजियाई शासन में राज्य उसको कड़ाई से लागू करने लगा। यह आठवीं सदी में चर्च से छीनी गई संपत्ति की भरपाई का एक तरीका था। बाद में चर्च को इस संपत्ति का कुछ हिस्सा दान के रूप में वापस मिला, लेकिन धर्मशुल्क खत्म नहीं किया गया। यहां इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि चर्च मध्यकालीन यूरोप के सबसे बड़े भूस्वामियों में से एक था। चर्च ने धर्मशुल्क की अदायगी पर जोर देना जारी रखा जहां कहीं भी उसके बड़े पादरी और मठाधीश सामंती सरदारों के रूप में कार्यरत थे। अन्य जगहों पर भी उसने एक धार्मिक कर के रूप में धर्मशुल्क की मांग की। उसे वहां भी इस मामले में राज्य का समर्थन हासिल था। फिर भी, अगर स्थानीय पादरी अपनी हैसियत जताने की स्थिति में नहीं होते तो धर्मशुल्क सामंत के पास चला जाता था। धर्मशुल्क में हिस्सेदारी को लेकर टकराहट मध्यकालीन यूरोपीय समाज की एक स्थायी विशेषता थी।

आश्रित किसानों से प्रत्यक्ष रूप से उगाहे जाने वाले उपर्युक्त शुल्कों के अतिरिक्त ऐसी आयों की एक पूरी शृंखला थी जो सामंती सरदारों को अप्रत्यक्ष रूप से मिलती थी। स्पष्टत: ये उनकी आर्थिकेतर शक्ति के द्योतक थे। मेनर एक आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई थे जिनमें रोजमर्रा इस्तेमाल के कच्चे मालों के प्रसंस्करण की सुविधा थी। वहां कारखाने, लोहारखाने, आटा चक्की, भट्टियां और शराब बनाने के लिए अंगूर पेरने के कोल्हू मौजूद थे। ये सब मेनर के मालिक की मिल्कियत होते थे। किसानों को उन उपकरणों और मशीनों के इस्तेमाल के लिए बाध्य किया जाता था। उन्हें बाहर जाने की इजाजत नहीं दी जाती थी। मिसाल के तौर पर पिसाई के लिए उन्हें अपना तमाम गेहूं मालिक की चक्की पर ले जाना पड़ता था। सामंत उनका शुल्क मनमाने ढंग से तय करता था और किसानों को उसे अदा करना पड़ता था। सामंत के इस विशेषाधिकार को *बैनालाइटेज* या एकाधिकार कहा जाता था।

सार संकलन : मेनर की भूसंपत्ति की यह प्रणाली सामंत–भूदास अधिशेष दोहन संबंध पर आधारित थी। पूर्व मध्यकाल में मेनर में अधिशेष हड़पने के मुख्य रूपों में *कोरवी,* टेल, धर्मशुल्क और *बैनालाइटेज* थे। एक साथ मिलकर ये शासक वर्गों द्वारा हड़पे जाने वाले अधिशेष का बड़ा हिस्सा थे और उनकी संपत्ति के मुख्य स्रोत थे।

अब तब हमने सामंती भूसंपत्ति के जिन रूपों पर चर्चा की है, चाहे वह *फीफ* हो या काश्तकारों की जोत, सबमें एक चीज साझी है। सबके साथ किसी प्रकार का दायित्व जुड़ा था। फीफ या जायदाद इस शर्त पर आवंटित की जाती थी कि उसे पाने वाला सैन्य सेवा देगा जबकि काश्तकारी अनिवार्य श्रमसेवा प्रदान करने और जिंस की शक्ल में विभिन्न लगानों की अदायगी से जुड़ी थी। फिर भी मध्यकाल में कम से कम एक तरह की भूसंपत्ति थी जो हर तरह के दायित्वों के निर्वाह से मुक्त थी। भूसंपत्ति की यह श्रेणी *अलॉड* कहलाती थी। *अलॉड* जर्मनिक कबायली समाज की एक उपज थी। यह शब्द खुद भी जर्मनिक है। जर्मनिक समुदाय के कबीलाई समाज से वर्ग समाज में संक्रमण के क्रम में कृषि और मवेशीपालन के लिए कबीला/कुल के सामूहिक नियंत्रण में रही जमीन अर्ध–स्थायी आधार पर विभिन्न परिवारों के बीच बांटी गई थी। यह परिवार की *अलॉड* बन गई। हरेक परिवार की अपनी *अलॉड* थी। *अलॉड* के इर्द–गिर्द हल्की–फुल्की बाड़ें लगाई जा सकती थीं और यह एक आर्थिक इकाई की तरह काम करती थीं। कबीलाई अलॉड न सिर्फ घेरी गई जमीन की द्योतक थी बल्कि उसमें परिवार और उस पर आश्रित (अर्थात जमीन पर काम करने वाले तमाम लोग), मवेशी और आवास शामिल थे।

हालांकि शुरू में *अलॉड* कबीलाई संपत्ति का एक विशेष रूप थी, लेकिन एक कालखंड में यह उस पर बसे परिवार की निजी संपत्ति बन गई। परिवार के सदस्यों और उनके वंशजों ने जमीन पर अपना पूरा मालिकाना हक बनाए रखा। रोमन क्षेत्रों में बसने के बाद जर्मनिक कबीलों में वर्ग विभाजन बढ़ा। जर्मनिक योद्धा कुलीन वर्ग ने बड़ी–बड़ी जायदादों पर कब्जा किया। इस क्रम में कुछ *अलॉड* के आकार बढ़े। *अलॉड* की इन जायदादों वाली *अलॉडों* के साथ बड़ी संख्या में छोटी और मध्यम आकार की *अलॉड* भी बनी रहीं। छोटी और मध्यम आकार की *अलॉड* मुक्त किसानों की जोत थी। न इन किसानों पर न उनकी मिल्कियत वाली जमीनों पर कोई सेवा देने की बाध्यता नहीं थी। मध्यकाल में इन कसौटियों को पूरा करने वाली कोई भी संपत्ति, चाहे वह जर्मनिक हो या गैर–जर्मनिक, *अलॉड* कहलाती थी।

सिद्धांततः किसान अलॉड और किसान काश्तकारी के बीच स्पष्ट फर्क था, लेकिन वास्तविक व्यवहार में छोटे और मध्यम मुक्त किसानों के लिए पड़ोस में प्रभुत्व जमाए शक्तिशाली एवं दबंग सामंती सरदारों की मांगों को ठुकरा देना आसान नहीं था। जैसे–जैसे ग्रामीण अंचलों पर मेनर की गिरफ्त कसती गई, वैसे–वैसे मुक्त किसानों के लिए अपनी अलॉड पर नियंत्रण कायम रखना कठिन हो गया। मुक्त किसानों की हैसियत गिरी और अलॉड की उनकी जोतें मेनर का हिस्सा हो गईं। एक वर्ग के रूप में मुक्त किसानों

का पतन और छोटे एवं मध्यम आकार की अलॉड का खात्मा साथ-साथ हुआ। किसान अलॉड सिर्फ सीमांत क्षेत्रों में बची रही।

अलॉड जायदादों का मामला बिलकुल जुदा था। यहां हम अलॉड संपत्ति की उस परिघटना की चर्चा कर रहे हैं जिसका संबंध *कुलीन वर्ग के स्तर पर* है। सामंती सरदारों की अलॉड *फीफ* से बिलकुल भिन्न थी (यहां यह बताना गैर-जरूरी होगा कि किसानों के पास फीफ नहीं होते थे)। फीफ सैन्य सेवा की शर्त पर अधिपति की ओर से मातहत को मिला आवंटन था जबकि अलॉड एक निजी मिल्कियत थी जिसके साथ कोई दायित्व नहीं जुड़ा था। फीफ में सामंत के अपने अधिकार सीमित होते थे जबकि अलॉड में उसके अधिकार व्यापक होते थे। हम यहां दोहराएंगे कि किसी मेनर में सामंत की मिल्कियत वाली विभिन्न प्रकारी की जमीनें (फीफ, अलॉड, इत्यादि) होती थीं। सामंती सरदारों ने अपनी अलॉडों में फीफ जोड़कर ही अपने संसाधन बढ़ाए थे। उसके अतिरिक्त अगर सामंतों के पास अपनी कुछ जमीन नहीं होती तो उनके लिए फीफ प्राप्त करना आसान नहीं होता। यह संभवत: अलॉड जागीर थी या किसानों से छीनी गई अलॉड जमीन। यह अकल्पनीय है कि किसी ऐसे व्यक्ति को मातहत के रूप में स्वीकार किया जा सकता था जिसके पास अपना कोई संसाधन नहीं था। आखिरकार, आम किसान मातहत नहीं बनते थे और इसलिए उन्हें फीफ नहीं मिलता था। अलॉड जायदाद होने से फीफ मिलने की संभावना बढ़ जाती थी। कोई सामंत अपनी अलॉड भूमि के साथ फीफ को जोड़कर ज्यादा सैनिकों की भर्ती कर सकता था और साथ ही अपनी तरफ से भी मातहत को जमीन आवंटित कर सकता था। इस तरह कुलीन वर्गों के स्तर पर अलॉड महत्वपूर्ण बनी रही। लेकिन जब भी किसी सामंत ने फीफ के रूप में किसी मातहत को अपनी अलॉड का एक हिस्सा आवंटित किया अलॉड भूसंपत्तियों का चरित्र और स्वरूप बदला।

III

प्रारंभिक मध्यकाल पश्चिमी यूरोप के उत्तरी हिस्सों में कृषि के विस्तार का एक काल था। गुलाम उत्पादन पद्धति में दीर्घकालीन संकट, रोमन साम्राज्य का पतन और जर्मनिक हमलों ने ऐसी दीर्घकालिक प्रक्रियाओं की शुरुआत करा दी जिनसे सामंतवाद का उदय हुआ। सामंतवाद के उदय ने खासकर उत्तरी फ्रांस में अर्थव्यवस्था के लिए अनुकूल स्थितियां सृजित कीं। इस आर्थिक पुनरुज्जीवन ने उत्पादन के तरीकों में परिवर्तनों को अंजाम दिया। ये वे परिवर्तन थे जो कैरोलिंजियाई उत्थान के पूर्व दो सदियों से शक्ल ले रहे थे। सामंती उत्पादन प्रणाली की ताकत सिर्फ उत्पादन संबंधों में परिवर्तन (अर्थात यूनानी-रोमन प्राच्यकाल की गुलाम सामाजिक संरचना में विद्यमान उत्पादन संबंधों के

बदले सामंती उत्पादन संबंधों का स्थान ग्रहण करना) का ही नतीजा नहीं थी, बल्कि यह कृषि तकनीकों में उल्लेखनीय सुधार का भी फल थी।

अनेक इतिहासकारों ने इंगित किया है कि आमतौर पर यूरोप में सामंती उत्पादन प्रणाली में उच्च स्तर की प्रौद्योगिकी इस्तेमाल नहीं की जा रही थी। मसलन मारिस डॉब ने अपनी क्लासिकी ग्रंथ *स्टडीज इन दि डेवलपमेंट आफ कैपिटलिज्म* में रेखांकित किया है कि सामंती अर्थव्यवस्था में तकनीकों का इस्तेमाल हो रहा था जिनकी अभिव्यक्ति निम्न उत्पादकता में हो रही थी। जब हम मध्यकालीन यूरोप में कृषि की हालत का समग्र आकलन करते हैं तो हमें यह बात सही प्रतीत होती है, लेकिन बाद के अध्ययनों ने दिखाया है कि इस तसवीर में तब्दीली की जरूरत है। इतिहासकारों ने डॉब के रुख पर सवाल खड़ा किया है और प्रौद्योगिकी में उन विकासों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है जो पूर्व मध्यकाल के दौरान हुए हैं। हमें सामंतवाद के बाद के गतिरुद्धता वाले चरण और शुरुआती चरण के बीच फर्क करना होगा जब प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नई खोजें और आविष्कार हुए। उनमें से कुछ खोज-आविष्कार और उनका प्रसार सातवीं सदी में तथा आठवीं सदी में हुआ होगा। हमें किसान काश्तकारी में उपयोग होने वाली निम्न तकनीकों और डीमेन में इस्तेमाल होने वाली अपेक्षाकृत उन्नत प्रौद्योगिकी के बीच भी फर्क करना चाहिए। सामंत बेहतर और ज्यादा महंगी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कर सकते थे जबकि किसान/भूदास नहीं कर सकते थे। नतीजतन डीमेन में ज्यादा उपज हासिल की जा सकती थी। बेशक प्रौद्योगिकी इसका एकमात्र कारण नहीं था। आश्रित किसानों के अवैतनिक श्रम से सामंती सरदारों को अतिरिक्त लाभ था। फिर भी, सातवीं और आठवीं सदी में बड़े जमींदारों के पास काम करने के लिए पर्याप्त संख्या में आश्रित किसान नहीं थे। श्रम की आपूर्ति कम थी। इसने उन्हें उत्पादकता बढ़ाने के लिए नई प्रौद्योगिकी की खोज के लिए प्रेरित किया। एक बार जब कृषि के विकसित तरीकों के फायदों का पता चल गया, उनका व्यापक इस्तेमाल होने लगा और यूरोप की कृषि रूपांतरित हो गई। ऐसा इसलिए भी हुआ कि पुरानी प्रौद्योगिकी के माध्यम से उत्तरी यूरोप की मिट्टी का पूरी तरह दोहन नहीं हो सकता था।

शुरू में पूर्व मध्यकालीन कृषि के ज्यादातर उल्लेखनीय विकास उत्तर-पश्चिमी यूरोप में केंद्रित थे जो एक विशाल और उर्वर मैदानी इलाका है। इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी भूमध्यसागरीय क्षेत्र से इस कदर भिन्न है कि यूनानी-रोमन जगत में पारंपरिक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली कृषि तकनीक उत्तर के लिए अनुकूल नहीं थी। यूनानी-रोमन तरीके भूमध्यसागरीय स्थितियों में विकसित हुए थे। वे हल्की और शुष्क मिट्टी के लिए उपयुक्त थे। लेकिन उत्तर-पश्चिम यूरोप में मृदा भारी और नम थी। दक्षिण में पूरा प्रयास इसके लिए होता था कि मृदा में पानी टिके जबकि उत्तर में अतिरिक्त पानी को तुरंत हटाना होता था, अन्यथा मृदा गीली और चिपचिपी हो जाती। उसके अलावा उत्तरी यूरोप

में कड़ाके की ठंड और हल्की गर्मी पड़ती जबकि भूमध्यसागरीय क्षेत्र में मौसम का मिजाज ज्यादा संतुलित था। यूनान और इटली (और पश्चिम एशिया के अनेक हिस्सों) में काष्ठ खनित्र फावड़ा, कुदाल और हल्के हलों से मिट्टी तोड़ी जा सकती थी। भूमध्यसागरीय क्षेत्र की कृषि के ये बुनियादी यंत्र उत्तरी मैदानों में ज्यादा काम के नहीं थे। एक राय यह है कि प्राचीन काल में उत्तरी गॉल इसी कारण से रोमन साम्राज्य के मुख्य हिस्सों से पीछे था कि उसके आर्थिक विकास के लिए जरूरी प्रौद्योगिकी मौजूद नहीं थी। सातवीं और आठवीं सदी में यह स्थिति बदलने लगी। एक नई किस्म के हल, पहियों वाले भारी हल का उपयोग इस काल में कृषि-क्षेत्र में प्रौद्योगिकी में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास था।

हालांकि प्राथमिक किस्म के हल पश्चिम एशिया में कांस्य युग की शुरुआत से प्रचलन में थे, भूमध्यसागरीय कृषि में काष्ठ खनित्र और कुदाल जैसे आदिम उपकरण ही प्रमुख रूप से इस्तेमाल किए जा रहे थे। कुदाल में लकड़ी के हत्थे में अंदर की तरफ मुड़ा एक वक्राकार फलक (आमतौर पर धातु का) जुड़ा होता था। जमीन पर चोट करके और उसकी तेज धार से जमीन खोद कर मिट्टी पलटी जा सकती थी। यूनानी किसान मुख्यत: इसी से खेती करते थे। कुदाल उनकी हल्की एवं शुष्क मृदा और छोटे खेतों के लिए उपयुक्त था। होमर और हेसियोड में लकड़ी के साधारण हलों के संदर्भ मिलते हैं जो बताते हैं कि यूनानी उत्तर 'अंध युग' में इस औजार से परिचित थे, लेकिन वे सामान्यत: कुदाल को तरजीह देते थे। रोमन भी ज्यादातर कुदाल का इस्तेमाल करते थे क्योंकि इटली, दक्षिणी गॉल और भूमध्यसागरीय स्पेन की मृदा भी हल्की और शुष्क थी। फिर भी रोमन साम्राज्य के विस्तार और पारिस्थितिकीय विविधता के कारण वहां इस्तेमाल होने वाले यंत्रों की संख्या बड़ी थी। कुदाल के अलावा फावड़े और हल्के हल इस्तेमाल होते थे। फावड़ा चम्मच की आकार का एक यंत्र था जिसमें एक छोटा, हल्का वक्राकार, धातु की चद्दर एक लंबे हत्थे से जुड़ी होती थी। इसका इस्तेमाल प्रोत्खनन में और इस तरह मिट्टी को ढीला करने और उसे पलटने में होता था। रोमन काल में फावड़े के एक संशोधित रूप का इस्तेमाल शुरू हुआ जिसे *बाईपैलियम* कहते थे। *बाईपैलियम* में एक पायदान होता था ताकि पैरों के दबाव से फावड़े को ज्यादा जोरदार ढंग से मिट्टी में ढकेला जा सके। इस फावड़े ने अनेक इलाकों में क्रमश: कुदाल की जगह ली।

यूनानियों की तुलना में रोमन हलों का ज्यादा व्यापक उपयोग करते प्रतीत होते हैं। पश्चिम में खेतों के बड़े आकार और इस तथ्य ने हल से खेती का तेज रफ्तार से प्रसार किया कि रोमन साम्राज्य के बड़े जमींदार अपेक्षाकृत ज्यादा धनी (फावड़े और कुदाल सस्ते थे जबकि हल महंगे थे) थे। हल से जुताई मृदा को उलटन-पलटने का बेहतर तरीका है। कुदाल और फावड़ा से जुताई में किसी बिंदु पर चोटदार गति होती है। यह गति खेत में अनेक बिंदुओं पर बार-बार दोहरानी पड़ती है जिसमें बहुत समय लगता है

और श्रम भी बहुत करना पड़ता है। इसके अलावा कुदाल और फावड़ा की मदद से पूरे खेत में समान रूप से मिट्टी पलटना मुश्किल है। हल मिट्टी में सीधी रेखा में फलक चलाकर मिट्टी तोड़ती है। यह खेत में लंबे खांचों की शृंखला बनाता है। इस तरह समग्र रूप से मिट्टी टूटती है और पलटती है।

पारंपरिक रोम हल *अरेट्रम* था। यह कम वजन का खरोंचदार हल था जिसमें मुख्यत: लकड़ी की एक लंबी कड़ी या हलस और काटने के लिए अंग्रेजी के एल अक्षर के आकार का एक यंत्र या मोल्डबोर्ड (*अरेट्रम* की संरचना भारतीय पारंपरिक हल से बहुत भिन्न थी) होता था। एल अक्षर के आकार के यंत्र का ऊर्ध्वाधर हिस्सा हलस के एक छोर से जुड़ा होता था। यह मूठ की तरह इस्तेमाल होता था। समतल हिस्सा वास्तविक फलक, या फाल होता था जो मिट्टी काटता था। फाल लोहे का होता था। हलस का दूसरा छोर हल को खींचने के लिए इस्तेमाल होने वाले पशुओं से जुड़ा होता था। रोमन *अरेट्रम* दो बैलों से खींचा जाता था।

अरेट्रम अपने मौजूदा रूप में उत्तरी यूरोप के भारी और समृद्ध मृदा में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। यहां शक्तिशाली फाल के साथ एक भारी हल की जरूरत थी। भारी हल को खींचना, खासकर जब मिट्टी सख्त हो, एक मुश्किल काम था। हल में पहिए जोड़ देने से इस समस्या का हल निकल आया। अंतत: एक पहिएदार भारी हल, *चैरयू,* ने उत्तर में रोमन *अरेट्रम* की जगह ली। पहिए इस हल की प्रमुख विशिष्टता थे। *चैरयू* शब्द सेल्टिक भाषा के *सर्रूका* से लिया गया है जो दो पहियों के एक वाहन को इंगित करता है। शुरू में दोनों शब्द समानार्थी थे।

चैरयू की उत्पत्ति और प्रसार काफी हद तक अनजाना है। इतिहासकार मोटे तौर पर सहमत हैं कि पहिएदार हल की बुनियादी अवधारणा करीब छठी सदी में प्रकट हुई। लिन व्हाइट के अनुसार ऐसे साक्ष्य हैं जिनसे पता चलता है कि उस समय कुछ स्लाव समुदाय इस तरह के हल का इस्तेमाल कर रहे थे। फिर भी मानक मध्यकालीन *चैरयू* को अपनी तमाम विशिष्टताएं ग्रहण करने में एक लंबा समय लग गया। उसे उत्तरी मैदानी इलाकों की भारी मृदा उलटने के लिए एक सर्वव्यापी उपकरण बनने में और भी लंबा समय लग गया। दसवीं सदी तक *चैरयू* उत्तरी फ्रांस में पूरी तरह स्थापित हो चुका था। *चैरयू* की उत्पत्ति कई चरणों से गुजरी। इस क्रम में रोमन *अरेट्रम* की कुछ विशेषताएं उससे जुड़ गईं।

उत्तर की आवश्यकताओं के अनुरूप *अरेट्रम* के विशिष्ट फाल में बदलाव आया। मोल्डबोर्ड में एक दोहरा हत्था जुड़ा ताकि हल का संचालन दोनों हाथों से किया जा सके। आखिर में मोल्डबोर्ड के सामने फलस पर चाकूनुमा एक तेज फलक जुड़ा ताकि इससे पहले कि फाल मिट्टी को पलटे, यह जमीन में शुरुआती चीरा लगा सके। इस फलक को कोल्टर कहते थे। अपने पूर्ण रूप में *चैरयू* एक अति जटिल उपकरण था।

इसमें एक फलस था जिसके एक छोर पर मोल्डबोर्ड लगा था। मोल्डबोर्ड में दो हत्थे और लोहे का एक भारी फाल लगा था। मोल्डबोर्ड के आगे पहियों का एक जोड़ा होता था। पहिए हल को गतिशील होने में मदद करने के साथ समूचे उपकरण को ज्यादा स्थिर बनाते थे। मोल्डबोर्ड और पहियों के बीच कोल्टर होता था जो फाल से पहले मिट्टी काटता था। *चैरयू* एक बड़ी उपलब्धि था। उसने यूरोपीय कृषि में क्रांति ला दी। *चैरयू* का वास्तविक आकार स्थान के अनुरूप बदलता है लेकिन उसका समग्र डिजाइन एक समान है। यूरोप के कुछ हिस्सों में, जहां मिट्टी ज्यादा शुष्क थी, *अरैरे* नामक पहिया विहीन हल इस्तेमाल किया जाता था।

चूंकि *चैरयू* का वजन *अरेट्रम* से बहुत ज्यादा था, उसे सिर्फ दो बैलों की मदद से चलाया नहीं जा सकता था। *चैरयू* को खींचने के लिए कम से कम छह से आठ बैलों की जरूरत पड़ती थी। ऐसा हल के वजन और मिट्टी के भारीपन दोनों के कारण था। इतने ज्यादा मवेशी रखना एक बड़ा खर्चीला मामला था और व्यापक स्तर पर *चैरयू* के प्रचलन में बाधा बन सकता था। किसानों ने आपस में अपने-अपने बैलों का सहयोग करके इस मुश्किल का हल ढूंढ़ा। बहरहाल, किसानों की जोत इतनी छोटी थी कि व्यक्तिगत आधार पर छह से आठ बैलों को पूरी तरह से इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। कुछ किसान एक साथ होते और अपने संसाधन मिलाकर बैलों का दल बनाते। यह दल बारी-बारी से संबंधित किसानों के खेत जोतता।

चैरयू इस्तेमाल करने का एक दूसरा नतीजा यह निकला कि उससे खेतों में लंबे और सीधे खांचे बने। *अरेट्रम* में अकसर आड़ी-तिरछी जुताई, अर्थात लंबाई और चौड़ाई की दिशा में जुताई की जरूरत पड़ती थी क्योंकि सिर्फ एक दिशा में जुताई करने से मिट्टी यथेष्ट रूप से ढीली नहीं पड़ती थी। जुताई का यह तरीका दक्षिणी यूरोप में खेतों के वर्गाकार में प्रतिबिंबित होता है। दूसरी तरफ, *चैरयू* का दबाव इतना जबर्दस्त था कि आड़ी-तिरछी जुताई के बगैर गहरे खांचे प्राप्त किए जा सकते थे। मिट्टी को तोड़ने के लिए बस एक ही दिशा में जुताई करना पर्याप्त था। *चैरयू* के लिए वर्गाकार के बजाए दीर्घ आयताकार पट्टियों वाले खेत ज्यादा सुविधाजनक थे। भारी हल के साथ छह या आठ बैलों को छोटी दूरी तक ले जाने के बाद दूसरी दिशा में मोड़ने (जैसा खेतों के वर्गाकार होने पर होता) के बजाए लंबाई में लंबी दूरी तक जुताई करना सुविधाजनक था।

खेतों के आकार में तब्दीली ने कई फर्क लाए। दक्षिण में किसान अपने खेतों के इर्द-गिर्द बाड़े लगाने के आदी थे। लेकिन लंबी पट्टियों जैसे उन खेतों में बाड़े लगाना महज इसलिए अव्यावहारिक था कि उनकी चौड़ाई बेहद कम थी। अगल-बगल के खेत लंबाई में एक-दूसरे से बहुत नजदीक होते (क्योंकि सब की चौड़ाई कम थी), लेकिन बेहद लंबी बाड़ से विभाजित होते। खेत की दोनों ओर बेहद लंबी बाड़े खेतों को अस्त-व्यस्त कर देतीं और चौड़ाई की दिशा में कुछ करने के लिए बस थोड़ी सी जगह बचती। किसानों ने इसी कारण से उसे तज दिया। व्यक्तिगत स्तर पर बाड़ें लगाने के

बजाए उन्होंने तमाम जोतें एक जगह कीं और बाड़विहीन या खुली जोतों को दो श्रेणियों में बांटा। एक में कुछ समय के लिए खेती की जाती तो दूसरे को अपनी पुरानी उर्वरता ग्रहण करने के लिए परती छोड़ दिया जाता था। इस बहुत बड़े भूखंड के इर्द-गिर्द हल्की-फुल्की बाड़ हो सकती थी जिसे फसलों को जानवरों से बचाने के लिए लगाया जाता था।

ऐसी स्थिति में जब बैलों के संयुक्त समूहों को नियमित रूप से एक खेत से दूसरे खेत में ले जाना होता था, खुले खेत बेहद सुविधाजनक थे। इस व्यवस्था का एक अतिरिक्त लाभ यह था कि परती छोड़े गए खुले खेत जानवरों के उत्सर्जित मल से मिलने वाले खाद से लाभान्वित होते। किसानों के मवेशी अब परती छोड़े गए विशाल भूखंड में आजाद घूमते। बैलों और खेतों के एकीकरण के तमाम प्रबंध किसानों के बीच किए जाते। कभी-कभी ये संबंध उन मेनरों के दायरे पार कर जाते जिनसे ये किसान जुड़े थे। इस स्तर पर जो बात सबसे ज्यादा मायने रखती थी, वह था गांव का रिश्ता। व्हाइट ने इस संदर्भ में कहा है, 'उत्तरी यूरोप के भारी हल ने व्यक्तिवाद को खत्म कर दिया था और अपने मामले निबटाने के लिए किसानों के बीच स्वशासन की एक मजबूत प्रणाली बनाई थी।' स्वाभाविक रूप से इसने गांव के स्तर पर एकजुटता बढ़ाई। उसके बगैर किसानों के लिए सामंती दमन के खिलाफ कोई प्रतिरोध करना संभव नहीं होता।

दो-भूखंड के इस आवर्तन को, जिसके तहत खेत के एक हिस्से (या खेतों के समूह के एक हिस्से) में फसल लगाई जाती और दूसरे को परती छोड़ दिया जाता, उत्तरी मैदानी इलाकों में कई स्थानों पर क्रमश: तीन-भूखंड आवर्तन में बदल दिया गया। दक्षिण में खेती दो-भूखंड प्रणाली पर आधारित थी और शुरू में उत्तरी इलाकों में इसी को लागू किया गया। भारी हल के प्रसार और उत्तर में जलवायु की स्थिति दोनों के कारण मिट्टी के सर्वोत्तम इस्तेमाल के लिए कुछ फेरबदल जरूरी हो गया जिससे तीन-भूखंड प्रणाली का उदय हुआ। इस प्रणाली के तहत किसी खेत को या खेतों के किसी समूह को दो के बजाए तीन हिस्सों में बांटा जाता था। एक हिस्से में पतझड़ के महीनों में और दूसरे में वसंत में फसल लगाई जाती थी जबकि तीसरे को परती छोड़ दिया जाता था। दक्षिण में बुआई का मुख्य काल पतझड़ था। पतझड़ में बोई फसल को जाड़े में होने वाली बारिश का लाभ मिलता। उत्तर में भी गेहूं, जौ और राई जैसी प्रमुख अन्न फसलों की बुआई का काल पतझड़ ही था। भूमध्यसागरीय क्षेत्र के विपरीत उत्तरी यूरोप में गर्मियों में भी खूब बारिश होती है। अत: यहां बसंत में एक अतिरिक्त फसल लगाना संभव था। वसंत की फसल को गर्मियों की बारिश से पानी मिलता। खेत का एक हिस्सा वसंत में बुआई के लिए छोड़ा जाता था। वसंत में बोई जाने वाली प्रमुख फसलों में जई, सेम और मटर थे। तीन-भूखंड प्रणाली के अनेक फायदे थे। पहला, फलियां और मटर मिट्टी को जरूरी नाइट्रोजन प्रदान कर उसे समृद्ध बनाते। दूसरे, सूखा पड़ने या फसल खराब हो जाने पर अब किसानों को एक अतिरिक्त फसल का सहारा था। तीसरा, उससे आदमी और घोड़ों

के लिए बेहद पौष्टिक जई उपलब्ध हो गया। इससे जुताई के लिए घोड़ों का इस्तेमाल करना आसान हो गया। फिर भी दो-भूखंड प्रणाली को कभी पूरी तरह छोड़ा नहीं गया। फसल आवर्तन के दोनों रूप साथ-साथ बने रहे। ऐसा खासकर इसलिए भी हुआ कि तीन-भूखंडों का आवर्तन कम उर्वर जमीन में नहीं हो सकता था।

हम पहले ही देख चुके हैं कि कैसे रकाब ने युद्ध में घोड़े के ज्यादा प्रभावी इस्तेमाल की गुंजाइश बनाई। घोड़ों से संबंधित कुछेक अन्य आविष्कार भी पूर्व मध्यकालीन यूरोप में अपनाए गए। इन आविष्कारों ने जुताई में घोड़ों की पूरी क्षमता के दोहन को संभव बनाया। घोड़ा भारी बोझ खींचने और उसके साथ तेज रफ्तार से चलने में सक्षम होता है। यूनानी रोमन प्राच्य काल में बैल सर्वप्रमुख भारवाही या लद्दू पशु था। नतीजतन पशुओं पर बोझ लादने का उपकरण बैलों के अनुसार बनाया गया था। इसमें मुख्य रूप से जुआ होता था जो बैल की गर्दन में डाला जाता था। जिस वस्तु को खींचना होता था उसे उस जुए के साथ जोड़ देते थे। यह व्यवस्था घोड़ों के साथ भी की गई, लेकिन अनुपयुक्त निकली। अगर घोड़े की गरदन पर बहुत ज्यादा वजन डाल दिया जाता तो वह तेज नहीं चल पाता या वजन नहीं खींच पाता। लिहाजा जुआ और खींची जाने वाली वस्तु का वजन अपेक्षाकृत कम करना पड़ा। लेकिन अगर घोड़े सिर्फ हल्की चीजें ही खींच सकते थे, तो उनका इस्तेमाल करने का कोई मतलब नहीं था। अगर उसे भारी सामान खींचने थे तो उसके लिए बिलकुल नए किस्म के साज की जरूरत थी।

नौवीं सदी की शुरुआत तक कैरोलिंजियाई साम्राज्य में एक नई किस्म का साज इस्तेमाल होने लगा था जिसमें घोड़ों की विशिष्ट शारीरिक संरचना को ध्यान में रखा गया था। जुआ की जगह घोड़े की गरदन के गिर्द रखी जाने वाली एक दृढ़ हंसली ने ले ली जिसे कंधे के बिलकुल ऊपर रखा जाता था। इसने बोझ को गरदन से हटाकर कंधे पर डाल दिया। अब घोड़ा ज्यादा बल और तेज रफ्तार से ज्यादा भारी बोझ खींच सकता था। हंसली और साज में कुछेक सुधार से एक भारवाहक पशु के रूप में घोड़े की श्रेष्ठता स्थापित हो गई। वजन और रफ्तार के हिसाब से घोड़े बैलों के मुकाबले ज्यादा सामर्थ्यवान हैं। एक बार जब घोड़े की क्षमता के दोहन की उपयुक्त प्रौद्योगिकी उपलब्ध हो गई, उसने भारी हल खींचने के लिए भारवाहक पशु के रूप में बैल की जगह ले ली। हम ऊपर नाल ठुंके घोड़ों के प्रचलन का जिक्र कर चुके हैं जो उनके नाजुक खुरों को सुरक्षित कर उन्हें बेहतर तरीके से काम करने योग्य बनाता है। अंत में जई की खेती ने सस्ती दर पर घोड़ों को पर्याप्त पौष्टिक आहार मुहैया करा दी। खुराक के मामले में घोड़े ज्यादा खर्चीले होते हैं। उन्हें ढेर सारे अनाज की जरूरत पड़ती है। जई उनके लिए एक आदर्श अनाज थी। पश्चिमी यूरोप की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीन-भूखंड प्रणाली के तहत जई की खेती और घोड़ों का व्यापक इस्तेमाल दोनों साथ-साथ चले।

IV

सामंती व्यवस्था कोई गतिहीन ढांचा नहीं थी। परिवर्तन की उसकी अपनी गतिकी थी। आर्थिक इतिहासकारों ने उसके विकास के तीन प्रमुख चरणों की शिनाख्त की है। पहला चरण करीब 900 से 1200 तक चला। इस काल में सामंतवाद का उदय और विस्तार हुआ और वह अपने उत्कर्ष तक पहुंचा। दसवीं से तेरहवीं सदी के बीच के काल को पश्चिमी यूरोपीय सामंतवाद का क्लासिकी युग माना जा सकता है। दूसरा चरण करीब 1200 में शुरू हुआ और 1320 के दशक तक चला। यह सामंती अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय परिवर्तनों का काल था। पहले चरण की अनेक विशेषताएं बदल गईं और नए रुझान उभरे। इन रुझानों ने (उनकी चर्चा हम नीचे करेंगे) तीसरे चरण को जन्म दिया जो 1320 के दशक में शुरू हुआ और चौदहवीं सदी के अंत तक जारी रहा। यह चरण सामंती व्यवस्था के दीर्घकालीन संकट से ग्रस्त था।

हमने सामंतवाद के कुछ लक्षणों की चर्चा की है जो दसवीं सदी के शुरू तक विकसित हुए थे। आठवीं सदी और नौवीं सदी के घटनाक्रम ने दसवीं सदी में सामंतवाद के उदय के लिए रास्ता साफ किया था। इस सदी के दौरान उत्पादन की सामंती प्रणाली ने एक ठोस रूप प्राप्त किया। जैसे-जैसे व्यवस्था स्थिर बनती गई, उच्च उत्पादकता और कृषि के विस्तार दोनों के चलते उपज बढ़ी। अर्थव्यवस्था अब एक बड़ी आबादी के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त संसाधन सृजित करने में सक्षम थी। यह दसवीं सदी के मध्य से आबादी की वृद्धि में परिलक्षित हुआ। उसके अलावा, ज्यादा उपज से सामंती सरदारों के पास ज्यादा अधिशेष पहुंचा और उन्हें नई व्यवस्था को कायम रखने की प्रेरणा मिली।

सामंती अर्थव्यवस्था का विस्तार ग्यारहवीं सदी में शुरू हुआ। यह बारहवीं सदी तक जारी रहा। सामंती उत्पादन प्रणाली ने फ्रांस, उत्तरी इटली और मध्य यूरोप के उन इलाकों में दीगर प्रणालियों की जगह ले ली जहां सामंतवाद पूरी तरह फैला नहीं था। यूरोप में सामंतवाद की तरफ संक्रमण की रफ्तार अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग रही। जहां उत्तरी फ्रांस में यह संक्रमण नौवीं सदी के अंत तक पूरा हो चुका था, पश्चिमी यूरोप के दूसरे हिस्सों में सामंती उत्पादन प्रणाली ने दसवीं और ग्यारहवीं सदी के विभिन्न बिंदुओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। बारहवीं सदी तक सामंती उत्पादन प्रणाली ने जर्मनी से शुरुआत कर पूर्वी यूरोप में रास्ता बनाया। जर्मनी में कृषि का विस्तार एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी। यह रेखांकित करना प्रासंगिक होगा कि करीब 500 में जर्मनी की कुल जमीन के दो प्रतिशत से ज्यादा जमीन पर खेती नहीं होती थी। सामंती कुलीन वर्ग ने जर्मनी में, खासकर एल्बे नदी के पूर्व में स्थित क्षेत्र में जमीन के उपनिवेशीकरण की शुरुआत करने में पहल की। बारहवीं सदी के लगभग पूर्वी जर्मनी में सामंती संबंध उभरने शुरू हुए और एक अत्यंत निर्मम किस्म की भूदासता उन इलाकों में उपनिवेशीकरण

एवं कृषि का आधार बनी। सामंती अर्थव्यवस्था के विस्तार ने बढ़ती आबादी के भरण पोषण में मदद की। ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में यूरोपीय आबादी में लगातार इजाफा होता रहा।

बारहवीं सदी के अंत तक सामंती अर्थव्यवस्था के विकास की प्रारंभिक क्षमता चूक चुकी थी। तेरहवीं सदी में जाहिर होने वाले नए रुझानों से व्यवस्था के अंदर अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने व्यवस्था की अंतर्निहित समस्याओं को सतह पर ला दिया और अंतत: एक संकट को जन्म दिया जिसने चौदहवीं सदी के पहले चतुर्थांश में गंभीर रूप अपना लिया। मध्यकालीन यूरोप के आर्थिक इतिहास पर शोध से यह स्थापित हुआ है कि आबादी के आंकड़े एक खास जनसांख्यिकीय रुझान को दर्शाते हैं। वहां जनसंख्या वृद्धि, आबादी में उल्लेखनीय इजाफा, खाद्य पदार्थों की किल्लत, अकाल, जनसंख्या का संकट, आबादी में गिरावट और संतुलन का एक चक्र था जो चलता रहता था। नौवीं और सत्रहवीं सदी के बीच पश्चिमी यूरोप में कम से कम ऐसे दो चक्र चले। पहला चक्र नौवीं सदी के मध्य में आबादी में बहुत सुस्त इजाफे से शुरू हुआ। 850 और 950 के बीच आबादी या तो थमी थी या बड़ी सुस्त रफ्तार से बढ़ रही थी। ग्यारहवीं सदी से इसने तेज रफ्तार से बढ़ना शुरू किया और चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध में शीर्ष पर पहुंच गई। यह आकलन किया गया है कि करीब 1000 में समूचे यूरोप की आबादी तीन करोड़ 85 लाख थी और करीब 1340 में बढ़कर यह सात करोड़ 35 लाख पहुंच गई। पश्चिमी यूरोप में वृद्धिदर और भी ज्यादा उल्लेखनीय थी। वहां इस काल में आबादी दो करोड़ से बढ़कर पांच करोड़ 40 लाख हो गई। उसके बाद चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में आबादी में तेज गिरावट आई। हालांकि पंद्रहवीं सदी के शुरुआती दशकों में आबादी में थोड़ा-बहुत इजाफा हुआ, 1450 में समूचे यूरोप की आबादी करीब पांच करोड़ थी जो 1340 के मुकाबले खासी कम थी। जनसंख्या वृद्धि का दूसरा चक्र पंद्रहवीं सदी के अंत से शुरू हुआ। जब आबादी में एक बार फिर गिरावट आई।

आबादी में उतार-चढ़ाव कोई अलग-थलग परिघटना नहीं थी। उन्हें एक ज्यादा विस्तृत तसवीर के एक हिस्से के रूप में देखना होगा। दसवीं सदी तक कबायली हमले/विस्थापन का अंत और साथ ही सामंतवाद में अंतर्निहित सुरक्षा प्रदान करने की प्रणाली ने सुनिश्चित किया कि अब इतने लंबे काल के लिए और इतनी जल्दी-जल्दी रोजमर्रा जिंदगी बाधित नहीं होगी जितना रोमन साम्राज्य के पतन के बाद हो रही थी। हालांकि आबादी में उतार- चढ़ाव के पीछे के कारक हमेशा बहुत जटिल होते हैं, दसवीं सदी के यूरोप में व्याप्त अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण स्थितियां उन कारकों में से एक रही जिसने सामंतवाद के पहले चरण में जनसंख्या वृद्धि की गति तेज की। प्रौद्योगिकी में परिवर्तन और उत्पादन के पुनर्गठन ने कृषि अर्थव्यवस्था की बहाली में मदद की जिसके बगैर बढ़ती आबादी का भरण पोषण नहीं हो सकता था।

आबादी में इजाफा ने श्रम की समस्या हल कर दी। उत्तर प्राच्य काल से ही श्रम की जबर्दस्त किल्लत थी। इसी किल्लत ने उत्पादन के पुनर्गठन की जरूरत पेश की थी। जैसा कि हमने देखा है कि डीमेन नई उत्पादन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अवयव था जो पश्चिमी यूरोप में उभरा था। डीमेन और उसके आश्रित श्रमिक, उन्नत प्रौद्योगिकी, अधिक उर्वर मिट्टी और ज्यादा निवेश—ये सभी सामंती सरदार की राजनीतिक और आर्थिक हैसियत तथा उत्पादन प्रक्रिया में उसकी प्रत्यक्ष हिस्सेदारी के कारण संभव हो सके थे एवं अर्थव्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त करने के लिए जरूरी थे। *सामंतवाद के पहले चरण में सामंती सरदार के लिए उसके डीमेन में आश्रित कृषकों द्वारा किया गया अवैतनिक श्रम सामंती शासक वर्ग के अधिशेष शोषण का मुख्य स्रोत बना।* डीमेन में उच्च उत्पादकता ने सामंती सरदारों को अधिशेष का उत्पादन और दोहन अधिकतम करने की इजाजत दी और इस तरह उन्हें अपना विलासपूर्ण जीवन बिताने के लिए अधिशेष का बड़ा हिस्सा मिलने लगा।

आबादी में इजाफा के साथ यह स्थिति बदलने लगी। सतत जनसंख्या वृद्धि से सामंतों को काम करने के लिए ज्यादा श्रमिक मिले। आबादी में इजाफा से उसी अनुरूप किसान काश्तकारों की तादाद भी बढ़ी क्योंकि नवागंतुकों ने जंगल इत्यादि साफ किए और कृषि का विस्तार किया। लेकिन उनमें से बहुत कम ही मुक्त किसान थे। वे किसी न किसी सामंत के अधीन थे। जैसे-जैसे ज्यादा से ज्यादा आश्रित किसान किसी सामंत के अधीन हुए, सामंती कुलीन वर्ग को मिलने वाले अधिशेष की मात्रा भी बढ़ी। तमाम आश्रित किसानों को विभिन्न सामंती लगान अदा करने होते थे।

ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में श्रम की किल्लत जैसे ही दूर हुई, खेती की बेहतर तकनीकों में निवेश करने में सामंतों की दिलचस्पी खत्म हो गई। करीब 1000 के बाद प्रौद्योगिकी की दृष्टि से सामंती अर्थव्यवस्था गतिरुद्ध हो गई। सामंतों के लिए बड़ी संख्या में किसानों को सामंती शुल्क देने के लिए बाध्य कर अधिक अधिशेष प्राप्त करना ज्यादा आसान था। अब डीमेन में काम करने के लिए ज्यादा लोग थे। लेकिन डीमेन में ज्यादा से ज्यादा लोगों को काम में लगाने का कोई तुक नहीं था। डीमेन में कुल कृषि योग्य जमीन में उत्पादक रूप से लगाने के लिए श्रमिकों की संख्या की एक सीमा थी। इसीलिए सामंतों ने श्रमसेवा के रूप में लगान वसूलने के बजाए जिंस (उपज के एक हिस्सा) या नकद के रूप में मांगना शुरू किया।

मार्क ब्लॉख ने इस बात पर जोर दिया है कि व्यापार और मौद्रिक विनिमय सामंती अर्थव्यवस्था से कभी पूरी तरह अनुपस्थित नहीं रहे। आत्मनिर्भर सामंती अर्थव्यवस्था का एक छोटे से मुद्रीकृत क्षेत्र के साथ सहअस्तित्व बना रहा। चाहे कितनी भी सीमित क्यों नहीं हो, मौद्रिक विनिमय की एक छोटी सी मात्रा के बगैर सामंत भोग-विलास के सामानों के साथ अपने अधिशेष का विनिमय नहीं कर सकते थे जिनका वे उपभोग करते

थे। सामान्य किसान भी स्थानीय बाजारों में या गांवों के हाटों में माल बेचा और खरीदा करते थे। किसानों के हाथ में जो मुद्रा आती थी, वह उनकी छोटी सी बचत में इजाफा करती थी। किसान उसे किसी आकस्मिक जरूरत के लिए सहेज कर रखते थे। सामंतों ने हमेशा विभिन्न तरीकों (जुर्माना, टेल इत्यादि) से किसानों से उनकी छोटी-मोटी मौद्रिक बचत छीनने के लिए बल प्रयोग किया। ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में आबादी में इजाफा होने के बाद एक नियमित मौद्रिक लगान थोपने का प्रयास किया गया। श्रम सेवा से मुद्रा के रूप में शुल्क अदायगी के इस परिवर्तन में बारहवीं सदी तक शहरी केंद्रों और व्यापार में हुई प्रगति ने मदद की। अर्थव्यवस्था के क्रमिक मुद्रीकरण ने पण्य उत्पादन (अर्थात बाजार के लिए उत्पादन) को गति दी। एक और रास्ता था जिससे मुद्रा ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रवेश पाया। डीमेन में काम करने वाले कुछ लोगों को मजदूरी में मुद्रा मिली। इसको पूरी तरह से समझने के लिए हमें उन परिवर्तनों पर निगाह डालनी होगी जो मेनर में उत्पादन के संगठन में हो रहा था।

बारहवीं और तेरहवीं सदी में आबादी में इजाफा ने ग्रामीण श्रमशक्ति का आकार बढ़ा दिया। इस पूरी श्रमशक्ति को लाभकर रूप से छोटी किसान जोतों में नहीं लगाया जा सकता था। साथ ही, जमीन घट गई और अतिरिक्त ग्रामीण आबादी का एक हिस्सा भूमिहीन हो गया। ढेर सारे मामलों में किसान परिवार के बेटों के बीच विभाजित होने के चलते जोत के विखंडन ने अतिरिक्त श्रम का सृजन किया। जिनके पास बेहद छोटी काश्तकारी और/या खराब किस्म की मिट्टी वाली जोत होती, वे अपनी आय बढ़ाने के लिए दूसरी जगह काम करने के लिए बाध्य होते। सामंत और बड़े किसान भूमिहीन कृषि मजदूर और छोटे किसानों की सेवा भाड़े पर लेते थे। उन्हें मजदूरी में आमतौर पर मुद्रा मिलती थी। यह मजदूरी भोजन और जरूरत के अन्य सामान खरीदने में इस्तेमाल होती थी। इस तरह ग्रामीण अंचलों में मौद्रिक विनिमय ने जोर पकड़ा और आर्थिक गतिविधियों की एक व्यापक शृंखला को अपने दायरे में ले लिया। खुद डीमेन में दो समांतर प्रक्रियाएं जारी थीं। पहली, सामंतों ने अब जायदाद के एक हिस्से (अर्थात डीमेन) का सीधे प्रबंधन करना जरूरी नहीं समझा। उन्होंने डीमेन को छोटी जोतों में खंडित करना और किसानों को भाड़े पर देना पसंद किया। कभी-कभार वे जमीन का एक छोटा हिस्सा (स्पष्टतः अत्यंत उर्वर जमीन सीधे अपनी निगरानी में खेती कराने के लिए) अपने पास रख लेते। डीमेन में उत्पादन अधिकाधिक घटता गया। दूसरी, अब उन्होंने सामंती शुल्क मुद्रा में या जिंस में मांगना शुरू किया। सामंतों को अब श्रमसेवा की जरूरत शायद ही थी क्योंकि उनके डीमेन का कुल आकार घट गया था और उनकी जमीन पर काम करने के लिए भाड़े पर मजदूर उपलब्ध थे। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण के साथ ही डीमेन कृषि का पतन, श्रमसेवा के बजाए मुद्रा के रूप में सामंती शुल्क वसूली की शुरुआत और ग्रामीण समाज में एक मजदूर वर्ग का भी उदय हुआ।

मजदूर वर्ग का उदय किसानों के बीच बढ़ते वर्ग-विभाजन का सूचक था। इसके पहले से ही जोत के आकार (वहां छोटे, मध्यम और कुछेक बड़े किसान थे) और किसानों की ओर से चुकाए जाने वाले शुल्क (हमें याद रखना चाहिए कि कृषक अलॉड पूरी तरह लुप्त नहीं हो गए थे), दोनों ही संदर्भों में थोड़ा विभेदीकरण मौजूद था। लेकिन अब किसानों के विभिन्न हिस्सों के बीच विषमता ज्यादा थी। एक छोर पर अपेक्षाकृत ज्यादा खुशहाल किसान थे जो अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण और आबादी में वृद्धि से लाभान्वित हुए थे। खुशहाल किसानों के पास बड़ी जोतें थीं। उनके पास अपने हल और बैल/घोड़े थे तथा मौसमी काम के लिए भाड़े पर वे कुछ मजदूर भी रखते थे। वे अपनी उपज का एक हिस्सा बाजार में बेचते भी थे। दूसरे छोर पर भूमिहीन कृषि मजदूर थे जिनमें से अनेक गरीब हो गए किसान थे। उनके बीच में छोटे और मध्यम किसान थे जिन पर विभिन्न हद तक सामंती सरदार का जोर-जबर चलता था। जोर-जबर्दस्ती के एक छोर पर भूदासता की ऐसी बदतरीन शक्ल थी जिसे गुलामी से अलग करना मुश्किल था। दूसरे छोर पर मामूली मुद्रा शुल्क अदायगी थी। जहां कुछ छोटे और मध्यम किसानों से जबरन हल्का-फुल्का शुल्क वसूला जाता था, अन्य की स्थिति वस्तुतः गुलामों जैसी थी।

तेरहवीं सदी में ज्यादातर किसानों की हालत और बिगड़ी। शुरू में जनसंख्या वृद्धि कृषि अर्थव्यवस्था के विस्तार के लिए अनुकूल थी क्योंकि अतिरिक्त श्रम की मदद से और जमीन कृषि के तहत लाई गई। इसका मतलब था ज्यादा उत्पादन। *बढ़े उत्पादन* का एक हिस्सा बढ़ी आबादी में खप गया जबकि बाकी पर सामंतों ने कब्जा कर लिया। श्रम के मुकाबले जमीन की किल्लत ने सामंतों को पहले के बनिस्बत बेहतर स्थिति में ला दिया। अब वे ज्यादा लगान मांग सकते थे। इस तरह वे बढ़ी उपज का एक खासा बड़ा हिस्सा ले गए। लेकिन जल्द ही एक बिंदु आ गया जिसके बाद सिर्फ कम उर्वर या सीमांत भूमि पर खेती की जा सकती थी। आबादी के बढ़ते दबाव के कारण खराब से खराब जमीन पर वास किया गया। साथ ही जैसे-जैसे जमीन की मांग उपलब्धता से आगे बढ़ी, मौद्रिक लगान के रूप में सामंतों की वसूली बेहद बढ़ गई। जैसे-जैसे जमीन के लिए प्रतिद्वंद्विता बढ़ती गई, सामंतों के साथ मोलतोल करने की किसानों की क्षमता घटती गई।

ऐसी स्थिति में जब कम उर्वरता वाली जमीन पर भी खेती शुरू हुई हो, सामंती लगान बढ़ाने से पूरी अर्थव्यवस्था पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। आइए दोहराएं : सामंती लगान जमीन की कमी के कारण बढ़ रहा था, जो खुद आबादी में इजाफे और सामंती शोषण का प्रतिरोध करने में किसानों को पेश आ रही दिक्कतों का नतीजा था। हालांकि उपज की कुल मात्रा बढ़ी थी, यह उपज पूरी आबादी का भरण-पोषण के लिए अभी पर्याप्त नहीं थी। उपज में यह वृद्धि सीमांत जमीनों तक कृषि का दायरा बढ़ा कर हासिल की गई थी। चूंकि सीमांत जमीन की उत्पादकता कम थी, उत्पादकता अर्थात, प्रति इकाई

उपज (कुल उपज और कृषि के अंतर्गत जमीन के कुल क्षेत्रफल का अनुपात) में समग्र गिरावट आई। इसका अर्थ यह हुआ कि हरेक व्यक्ति को उपलब्ध खाद्य पदार्थ की मात्रा घट रही थी।

खाद्य पदार्थों का बंटवारा न्यायपूर्ण ढंग से नहीं हो रहा था। गरीब किसानों को खाद्य पदार्थों की जो मात्रा उपलब्ध थी, वह अकसर जीवनयापन के न्यूनतम स्तर से भी नीचे थी। अधिशेष के अधिकाधिक दोहन की सामंतों की कोशिश का गरीब किसानों पर बहुत बुरा असर पड़ा। क्योंकि किसानों का यह तबका भुखमरी जैसी स्थिति में रह रहा था, सामंती लगान में थोड़ा भी इजाफा उन्हें भुखमरी के और भी नजदीक ढकेल देता था। छोटे और मध्यम किसान भी उससे प्रभावित हुए क्योंकि अधिशेष दोहन की दर में वृद्धि से उनके पास खेतीबाड़ी के कामों में लगाने के लिए बमुश्किल कुछ बचता था। एम.एम. पोस्टन के मुताबिक सामंती कुलीन वर्ग आश्रित किसानों की कुल उपज का करीब आधा रख लेता था। यह अधिशेष दोहन की अत्यधिक ऊंची दर थी। इन हालात में किसान अपनी जमीनों की उर्वरता बहाल करने के लिए उन्हें बहुत दिनों तक परती नहीं छोड़ सकते थे। लंबे काल तक लगातार कृषि से जमीन की उत्पादकता घट जाती थी। किसान पर्याप्त संसाधन या बचत नहीं होने के कारण खाद, बेहतर किस्म की बीज और उन्नत तकनीकों पर ज्यादा खर्च नहीं कर सकते थे। लिहाजा कृषि उत्पादन गतिरुद्ध हुआ और अंतत: उसमें गिरावट आई। खाद्य पदार्थों के असमान वितरण और आबादी में लगातार इजाफा के कारण इसने संकट को जन्म दिया।

यहां यह इंगित किया जा सकता है कि उत्पादन प्रक्रिया में सीधी भागीदारी से सामंतों के हटने से डीमेन खेती के माध्यम से अर्थव्यवस्था में उत्पादकता का उच्च स्तर बनाए रखने की संभावना समाप्त हो गई थी। अब सामंतों को अपनी जोर-जबर्दस्ती और बढ़ी आबादी से ज्यादा आय पाने का यकीन था। लिहाजा खेती के उन्नत तरीकों में अपनी आय का एक हिस्सा लगाने में उनकी रुचि नहीं थी। उसके बजाए वे अपनी ज्यादातर दौलत उत्पादन की जगह भोग-विलास में खर्च करते थे। रोडनी हिल्टन ने हिसाब लगाया है कि सामंतों को होने वाली कुल आय का महज पांच प्रतिशत उत्पादन में निवेश होता था। बाकी गैर-उत्पादक मदों में खर्च होता था।

सामंती सरदारों के पास संसाधन तो थे लेकिन कृषि में सुधार के लिए निवेश करने की उनमें प्रेरणा नहीं थी। वे अधिशेष की एक बड़ी मात्रा पाने के लिए बस किसानों का बेदर्दी के साथ शोषण कर सकते थे। उनके पास आर्थिकेतर शक्तियां थीं, अर्थात उनके पास राजनीतिक और कानूनी प्राधिकार थे जिनके चलते उन्हें किसानों के साथ जोर-जबर्दस्ती करने में आसानी होती थी। यह आर्थिकेतर अवपीड़न था और उसे उन जोर-जबर्दस्तियों से भिन्न करके देखना चाहिए जिन्हें वे आर्थिक कारकों (उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण, जनसंख्या वृद्धि, जमीन की किल्लत और बाजार तंत्र) के चलते कर पाते

थे। किसानों पर सामंतों का आर्थिकेतर अवपीड़न सामंती अधिशेष दोहन संबंध का केंद्रवस्तु था।

चौदहवीं सदी की शुरुआत तक सारे यूरोप में खाद्य आपूर्ति की गंभीर किल्लत हो गई थी। कृषि मूल्यों में जोरदार वृद्धि ने मजदूरी कर पेट पालने वालों की हालत और खराब कर दी। विशाल भूमिहीन श्रमशक्ति की उपलब्धि ने कृषि मजदूरी गिरा दी थी। मजदूरी घट रही थी जबकि आवश्यक वस्तुओं की कीमतें चढ़ रही थीं। छोटे किसान कृषि मूल्यों में इजाफा के इस रुझान से लाभ लेने में असमर्थ थे क्योंकि उनके पास बाजार में बेचने के लिए शायद ही कोई अधिशेष था। हम पाते हैं कि ग्रामीण आबादी का एक विशाल बहुमत अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए हताश संघर्ष कर रहा था। बढ़ती कृषि कीमतों के कारण शहरी इलाकों में भी निर्वाह व्यय ऊपर चला गया था। शहरों और कसबों में रहने वाले मजदूर (अर्थात दस्तकारी उत्पादन में जुड़े लोग) को अपनी थोड़ी सी कमाई से रोजमर्रा ही जरूरत की चीजें जुटाने में अधिकाधिक कठिनाई होने लगी।

खाद्य पदार्थों की लगातार किल्लत के कारण चौदहवीं सदी के पहले चतुर्थांश में अकालों का तांता लग गया। उन भयंकर अकालों में से एक 1315-16 का था। यूरोप के अनेक हिस्से अकाल से स्थायी रूप से ग्रस्त हो गए। इसका आबादी पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। अकाल में भूख से बड़ी संख्या में लोगों के मरने से चौदहवीं सदी के दूसरे चतुर्थांश में आबादी में जबर्दस्त गिरावट आई। सदी के मध्य में यह रुझान तब और भी तेज हो गया जब प्लेग की एक भयंकर महामारी ने पूरे यूरोप को अपनी चपेट में ले लिया। प्लेग की यह महामारी सबसे पहले 1347 में पूर्वी यूरोप में दिखी। करीब 1348 तक वह पश्चिमी यूरोप पहुंच चुकी थी और फिर उसने बड़ी तेजी से पूरे महाद्वीप को अपनी गिरफ्त में ले लिया। यह मध्यकाल की सबसे भयानक विपत्तियों में एक थी जिनसे यूरोप दो-चार हुआ था। महामारी का जोर 1350-51 तक चला। 1348-1351 की प्लेग की इस महामारी को 'काली मौत' के नाम से याद किया जाता है। इसने यूरोप की एक-चौथाई से लेकर एक तिहाई आबादी खत्म कर डाली। अकाल और प्लेग के कारण चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोप की आबादी में खासी गिरावट आई। चौदहवीं सदी के अंत तक यूरोप की आबादी सदी के पूर्वार्ध (हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं कि करीब 1340 में यूरोप की आबादी मोटे तौर पर सात करोड़ 35 लाख थी) के मुकाबले 40 प्रतिशत घट गई।

आबादी में इजाफा की प्रक्रिया पंद्रहवीं सदी में शुरू हुई। शुरू में आबादी में इजाफा की दर बेहद धीमी थी। आबादी में इजाफा के साथ सामंती चक्र फिर शुरू हो गया। हम इस चक्र को ऊपर रेखांकित कर चुके हैं। यह नवीन चक्र सत्रहवीं सदी तक जारी रहा जब आबादी में इजाफे ने एक और संकट को जन्म दिया। फिर भी पहले के चक्र और इस चक्र में बहुत भिन्नता थी। पंद्रहवीं सदी तक सामंतवाद में एक गुणात्मक परिवर्तन आ चुका था। इसी परिवर्तन ने पंद्रहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक चलने वाले चक्र के

चरित्र को निर्धारित किया। पहले, इस काल में व्यापार, मौद्रिक विनिमय और दस्तकारी में तेजी से विस्तार हुआ। यह विस्तार शहरों के विकास और सौदागर वर्ग के उदय के साथ गहराई से जुड़ा था।

दूसरे, भूदासता पर आधारित उत्पादन प्रणाली पश्चिमी यूरोप में खत्म हो रही थी। श्रमसेवा से मुद्रा में शुल्क अदायगी में तब्दीली पहले ही कुछ हद तक भूदासता को कमजोर बना चुकी थी। फिर भी सामंतों की अवपीड़न क्षमता नहीं घटी थी। दरअसल तेरहवीं सदी में और चौदहवीं सदी के शुरू में किसानों की कीमत पर सामंतों की इस क्षमता में इजाफा हुआ। पश्चिम में आश्रित किसानों ने चौदहवीं सदी के इस संकट का मुकाबला सामंती आहरण के बढ़ते बोझ के खिलाफ प्रतिरोध खड़ा करके किया। ज्यादातर प्रतिरोध स्वत:स्फूर्त और व्यक्तिगत स्तर के थे। किसान शुल्क अदा करने से इनकार कर देते या दूसरी जगह भाग जाते (नए उभर रहे शहरी केंद्र भागे हुए भूदास को शरण दे सकते थे; लेकिन भूदास दूसरे गांव/मेनर में भी भागते थे)। इसके साथ ही चौदहवीं सदी में बड़ी संख्या में संगठित किसान विद्रोह हुए जिन्होंने भूदासों पर सामंतों की गिरफ्त कमजोर करने में निर्णायक भूमिका निभाई। 1320 के दशक से फ्रांस, बेल्जियम और इंगलैंड में अनेक किसान विद्रोह हुए। उनमें से सर्वाधिक मशहूर फ्रांस का 1358 का महान किसान विद्रोह (ग्रैंड जैकरी के रूप में मशहूर) और इंगलैंड का 1381 का किसान विद्रोह हैं। पश्चिम में आश्रित किसानों ने विद्रोहों और प्रतिरोध के दूसरे रूपों से भूदासता की गिरफ्त ढीली करने में कामयाबी पाई। भूदासता के कमजोर होने का मतलब था कि अब सामंती सरदार किसानों से अधिशेष का दोहन करने के लिए उत्पीड़न के आर्थिकेतर तरीकों का इस्तेमाल नहीं कर सकते थे।

तीसरे, पंद्रहवीं सदी के बाद से पूर्व और पश्चिम के विकास के रास्ते बड़ी तेजी से एक दूसरे से दूर होने लगे। जहां पश्चिम के किसानों ने बड़ी हद तक आजादी हासिल कर ली, पूर्व में (खासकर पूर्वी जर्मनी, रूस और पोलैंड में) सामंती सरदार किसानों पर अपना चंगुल कसने में कामयाब रहे। इस तरह, जहां पश्चिम में भूदासता पतन पर थी, पूर्व में वह सशक्त हो रही थी। पूर्व में भूदासता की यह मजबूती उस तरह की आत्मनिर्भर कृषि अर्थव्यवस्था पर आधारित नहीं थी जो सामंतवाद के शुरुआती चरण में स्थापित थी, बल्कि यह यूरोप में व्यापार के विस्तार से जुड़ी थी। पूर्व में सामंती कुलीन वर्ग ने कृषि उत्पादों के व्यवसायीकरण का फायदा उठाया और पश्चिम के प्रमुख खाद्यान्न आपूर्तिकर्ता के रूप में उभरे। हालांकि उनकी जायदादों पर उत्पादन भूदास श्रम पर आधारित था, उसका एक बड़ा हिस्सा विनिमय के लिए था। पूर्व के सामंती सरदारों ने सस्ते भूदास श्रम से पैदा खाद्यान्नों का निर्यात कर भारी मुनाफा पाया।

जनसंख्या वृद्धि, उसके बाद आबादी का विशाल विस्तार, सीमांत भूमि पर वास, उत्पादकता में गिरावट, उच्चतर सामंती लगान, खाद्य पदार्थों की किल्लत, अकाल और

भुखमरी के इस नए चक्र की परिणति एक अन्य संकट में हुई। आर्थिक इतिहासकारों ने इस संकट को 'सत्रहवीं सदी का आम संकट' का नाम दिया है जिसने यूरोप के ज्यादातर हिस्से को चपेट में ले लिया था। इस बात के मद्देनजर कि पंद्रहवीं सदी में शुरू होने वाला यह चक्र पहले चक्र से अनेक मामलों में भिन्न था, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि सत्रहवीं सदी का संकट चौदहवीं सदी के संकट से भिन्न था। सत्रहवीं सदी के बाद यूरोप किसी अन्य सामंती चक्र से नहीं गुजरा, लेकिन उसने तेजी से सामंतवाद से पूंजीवाद का अपना संक्रमण पूरा किया।

इतिहासकार आमतौर पर इस पर सहमत हैं कि जनसंख्या में परिवर्तन और व्यापार दो प्रमुख कारक थे जिन्होंने सामंती अर्थव्यवस्था के रूपांतरण में योगदान किया और पूंजीवाद के लिए रास्ता साफ किया। फिर भी इस सवाल पर खासा मतभेद है कि दोनों में से किस कारक को परिवर्तन का प्राथमिक कारण (आदि प्रवर्तक) करार दिया जाए। पिछले कुछ दशकों में इस विषय पर व्यापक शोध ने जनसंख्या और मुद्रीकरण/व्यवसायीकरण की भूमिका पर हमारी समझ को समृद्ध किया है। कुछ आर्थिक इतिहासकारों ने, जिनमें एम.एम. पोस्टन और ई.ले राय लादुरी सर्वप्रमुख हैं, आबादी के विस्तार और संकुचन के संदर्भ में सामंती अर्थव्यवस्था की गति को स्पष्ट करने की कोशिश की। दूसरी तरफ हेनरी पिरेन और इमानुएल वालर्सटीन जैसे इतिहासकार हैं जिन्होंने व्यापार पर ज्यादा जोर दिया है। हाल फिलहाल में राबर्ट ब्रेनर ने 1976 में प्रकाशित एक महत्वपूर्ण लेख (*एग्रेरियन क्लास स्ट्रक्चर एंड इकानामिक डेवलपमेंट इन प्री-इंडस्ट्रियल यूरोप*) में इस समूची बहस की समीक्षा की है। ब्रेनर ने दलील दी है कि हालांकि 'जनसंख्या माडल' और 'व्यापार माडल' विषय की गहरी समझ देते हैं, लेकिन ये खुद से यह नहीं बता पाते कि सामंती व्यवस्था के भीतर परिवर्तन *क्यों* हुए। उन्होंने एक वैकल्पिक परिकल्पना पेश की है जिसमें परिवर्तनों को मध्यकाल में *जारी वर्ग संघर्ष के वास्तविक नतीजों* के रूप में देखा जाता है। किसान और सामंती सरदार इस वर्ग संघर्ष के दो मुख्य भाग लेने वाले समूह थे। जब भी इस अनवरत संघर्ष का नतीजा किसानों के पक्ष में रहता, उन पर से सामंती वसूली का बोझ घट जाता। अगर किसान अपना कुछ अधिशेष अपने पास रख पाते तो वे उसको अपने उत्पादन में फिर से निवेश कर सकते थे और इस तरह अपनी स्थिति तथा समग्र कृषि उत्पादकता सुधारते। जब किसान प्रतिरोध नाकाम हो जाता तो उनसे अधिशेष दोहन की दर बढ़ जाती और उसके अनुरूप उत्पादकता में गिरावट आती। जनसंख्या वृद्धि के चरण में सामंती शोषण के खिलाफ प्रतिरोध संघर्ष की नाकामी का भयंकर नतीजा निकलता क्योंकि उत्पादकता में गिरावट आबादी के एक बड़े हिस्से को जीवन-निर्वाह के साधन से वंचित कर देती थी।

ब्रेनर के मुताबिक आबादी में इजाफा अपने आप खाद्य पदार्थों की किल्लत पैदा नहीं करती। किसानों से उनकी उपज का एक बड़ा हिस्सा छीन लेने की सामंतों की

शक्ति उत्पादकता गिरा देती है। सामंती कुलीन वर्ग का दबाव अर्थव्यवस्था को नाजुक बना देता है और उसके खाद्य पदार्थों की किल्लत और अकाल की आशंका बढ़ जाती है। ब्रेनर ने अधिशेष की बड़ी मात्रा के दोहन की सामंती सरदारों की क्षमता और किसानों पर उनकी आर्थिकेतर अवपीड़न के बीच के संबंध पर जोर दिया है। यह सामंती सरदारों की आर्थिकेतर अवपीड़न का प्रतिरोध करने में किसानों की अक्षमता थी जो उनकी आर्थिक हैसियत खराब कर देती थी और इस तरह उत्पादकता गिरा देती थी। ब्रेनर की यह परिकल्पना सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण पर मारिस डॉब के विचारों से (*स्टडीज इन दि डेवलपमेंट आफ कैपिटलिज्म* में रेखांकित) कुछ हद तक प्रेरित थी। डॉब के लिए आर्थिकेतर अवपीड़न उत्पादन की सामंती प्रणाली का एक प्रमुख अवयव था। उनके विचार से उत्पादन की इस प्रणाली का पतन भूदासता के पतन, अर्थात आर्थिकेतर अवपीड़न के घटने से वर्ग संबंध के संतुलन में परिवर्तन के साथ शुरू हुआ।

ब्रेनर कहते हैं कि चौदहवीं सदी में संघर्ष तेज हो गया। इस दौर में किसान व्यापक रूप से दुखी और व्यथित थे। इससे अनेक किसान विद्रोह हुए। चौदहवीं सदी के अंत तक किसानों के अनवरत प्रतिरोध ने पश्चिमी यूरोप में भूदासता को कमजोर कर दिया। उन्होंने रेखांकित किया कि किसान प्रतिरोध संघर्ष पश्चिमी यूरोप में ज्यादा सफल रहा क्योंकि पश्चिम में गांवस्तरीय एकजुटता पारंपरिक रूप से ज्यादा मजबूत थी। पूर्व में गांवस्तरीय एकजुटता कमजोर थी क्योंकि यहां बस्तियां नई बसी थीं। इसके अलावा पूर्व में उपनिवेशीकरण की शुरुआत सामंती कुलीन वर्ग ने की थी। लिहाजा वहां के गांवों और गांवस्तरीय संस्थाओं पर सामंती सरदारों का ज्यादा मजबूत नियंत्रण था।

चौदहवीं सदी के अंत से पश्चिम की अर्थव्यवस्था भूदास श्रम पर पूरी तरह आधारित नहीं थी। फिर भी भूदासता के पतन ने अपने आप कृषि के क्षेत्र में पूंजीवादी उत्पादन संबंध (अर्थात भाड़े के मजदूरों द्वारा बड़ी जोतों पर कृषि) स्थापित नहीं कर दिया। मिसाल के तौर पर, फ्रांस में राज्य अब अधिशेष का बड़ा हिस्सा वसूलने के लिए सामंती कुलीन वर्ग से होड़ कर रहा था। भारी कराधान के सहारे अधिशेष वसूलने वाला एक राज्य वजूद में आ रहा था। किसानों ने आजादी पाई और (कई बार राज्य के समर्थन से) अपनी छोटी जोतों पर नियंत्रण बरकरार रखने में कामयाब रहे। ये जोतें इतनी छोटी थीं और किसानों के पास संसाधन इस कदर कम थे कि वे कृषि के उन्नत तरीके नहीं अपना सकते थे। यह बिंदु उस समय और स्पष्ट होगा जब हम इस स्थिति की तुलना इंगलैंड के ऐतिहासिक विकासक्रम से करेंगे।

इंगलैंड में विकास का स्वरूप बहुत भिन्न था। इंगलैंड में किसानों ने चौदहवीं सदी के अंत तक (1381 का किसान विद्रोह उनके संघर्ष का एक निर्णायक मोड़ था) आजादी पाई थी। फ्रांसीसी किसानों के विपरीत वे जमीनों पर कब्जा पाने में नाकाम रहे। ज्यादातर ये जमीनें सामंती सरदारों के पास चली गईं जो बड़ी समेकित भूसंपत्ति स्थापित करने में

कामयाब रहे। इन जायदादों को बड़े ही सुविधाजनक शर्तों पर पूंजीवादी किसानों को पट्टे पर दे दिया गया। इंगलैंड के पूंजीवादी किसान एक सुस्पष्ट वर्ग, ग्रामीण भद्र लोग, में विकसित हुए। दूसरी तरफ जमीन से वंचित किए गए किसान कृषि मजदूरों के विशाल वर्ग में शामिल हो गए। कृषि मजदूर अपना श्रम पूंजीवादी किसानों को देते और बदले में मजदूरी पाते थे। चूंकि इन मजदूरों को खाद्य पदार्थों एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं के साथ अपनी मजदूरी का विनिमय करना पड़ता था, उसी अनुरूप बाजार का विस्तार हुआ जो एक पूर्ण विकसित पूंजीवाद के विकास के लिए एक पूर्वशर्त थी।

इंगलैंड में उत्पादन के नए स्वरूप ने कृषि उत्पादकता की समस्या से निबटने में मदद की। बड़ी जायदादें कुछ अत्याधुनिक कृषि तकनीकों का इस्तेमाल कर सकती थीं। खुशहाल पूंजीवादी किसानों के पास इन तकनीकों में निवेश करने के लिए संसाधन थे। इन तकनीकों में कृषि का एक नया तरीका भी था जो 'परिवर्तनीय कृषि' (*कनवर्टिबल हजबैंड्री*) के नाम से जाना जाता है।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में इंगलैंड में हो रही कृषि क्रांति का विस्तृत अध्ययन करने वाले एरिक केरिज ने परिवर्तनीय कृषि को 'कृषि क्रांति का मेरूदंड' करार दिया है। यह तकनीक फसल आवर्तन से बेहद भिन्न थी। इसमें किसी खेत में कुछ सीजन तक फसल उपजाने के बाद कुछ सीजन तक के लिए चरागाह में बदल दिया जाता था। जायदाद के एक हिस्से को कुछ सीजन के लिए चरागाह में तब्दील करने से ज्यादा बड़े पैमाने पर भेड़ें और अन्य मवेशियों को पालना संभव हो सका। 1560 से 1660 के बीच परिवर्तनीय कृषि ने इंगलैंड की कृषि में समग्र क्रांति ला दी। केरिज कहते हैं कि इंगलैंड में कृषि क्रांति आम समझ के विपरीत अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के बजाए सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में हुई। इस क्रांति ने इंगलैंड को अपने कृषि उत्पादन को बढ़ाने और इस तरह सत्रहवीं सदी के आम संकट से बचने का मौका दिया। जहां यूरोप के दूसरे हिस्से सत्रहवीं सदी में संकट (आबादी में इजाफा, खाद्य पदार्थों की किल्लत, अकाल, भुखमरी) से त्रस्त रहे, इंगलैंड की अर्थव्यवस्था में विकास का सिलसिला जारी रहा। यह सतत प्रगति औद्योगिक क्रांति के लिए आवश्यक थी और कृषि क्रांति के बगैर औद्योगिक क्रांति अंजाम नहीं पा सकती थी। इस तरह हम देखते हैं कि चौदहवीं सदी के दौरान हुए वर्ग संघर्ष के भिन्न परिणाम निकले: (i) पूर्व में सामंतवाद का सुदृढ़ीकरण; (ii) फ्रांस में भूदासता का खात्मा और लघु कृषक संपत्ति की व्यापकता; और (iii) इंगलैंड में भूदासता का खात्मा और पूंजीवादी कृषि का विकास। इन भिन्नताओं ने संबंधित क्षेत्रों में सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण की रफ्तार निर्धारित की।



परिशिष्ट

रोमन साम्राज्य में धर्म

I

जब रोम मात्र एक नगर-राज्य था तो रोमन धर्म नगर के मूल निवासियों का धर्म था। रोम में बसे कबीलों के अपने-अपने देवी-देवता थे। मातृ देवियों और प्रकृति की शक्तियों की पूजा आम थी। रोमनों के देवी-देवता पड़ोस के लातीनी कबीलों के देवी-देवताओं से मिलते-जुलते थे। आदिम रोमन धर्म पर एट्रूरियाई प्रभाव थोड़ा-बहुत दिखता था। जब नगर ने एक सुस्पष्ट शिनाख्त पा ली तो रोम की अनेक धार्मिक प्रथाएं समरूप हो गईं। गणतंत्र की स्थापना तक नगर के साझे धर्म के संबंध में कुछ कहना संभव हो पाता है। नगर का सर्वोच्च देवता जूपीटर था जिसे देवताओं का राजा माना जाता था। युद्ध का देवता मार्स भी एक प्रमुख देवता था। रोम में कैपिटोलिन पर्वत पर जूपीटर को समर्पित एक बड़ा मंदिर बनाया गया था। परंपरा के अनुसार मंदिर का निर्माण करीब उस समय शुरू हुआ जब राजतंत्र भंग किया गया था। कैपिटोलिन पर्वत पर जूपीटर का मंदिर रोमन साम्राज्य में राजधर्म का मुख्य धर्मस्थल बन गया।

रोमन धर्म बहुदेववादी था। वहां अनेक देवी-देवताओं की एक साथ पूजा की जाती थी। गणतंत्र काल की शुरुआत के समय आधिकारिक स्तर पर धर्म पहले से ही सुसंगठित था। धर्म राज्य का एक अनन्य भाग था। राजतंत्र के अधीन राजा लोग राजकीय अनुष्ठानों की अध्यक्षता करते थे। कुछ ऐसे पवित्र कर्मकांड थे जिन्हें सिर्फ राजा कर सकते थे। पुरोहित के रूप में राजा लोग *रेक्स सैकरोरम* उपाधि धारण करते थे। एट्रस्कैन राजतंत्र के पतन के बाद राजाओं द्वारा संपन्न किया जाने वाला पुरोहित कर्म एक बड़े पुरोहित के पास चला गया। यह पुरोहित वही पदवी धारण करता था जिसे पहले राजा धारण करते थे। गणतंत्र में *रेक्स सैकरोरम* (कभी कभी सिर्फ रेक्स संबोधन से पुकारा जाता था) का कोई राजनीतिक कार्य नहीं था, वह केवल धार्मिक कर्मचारी था। उसे पैट्रिशियाइयों के बीच से चुना जाता था और वह जीवन भर के लिए नियुक्त होता था। जल्द ही *रेक्स सैकरोरम* की जगह एक अन्य धार्मिक अधिकारी *पोंटीफेक्स मैक्सिमस* ने ले ली (देखें नीचे)।

रोमनों की धार्मिक प्रथाओं में प्राचीन कर्मकांड शामिल थे। उनमें प्रार्थनाएं, त्योहार और व्यक्तिगत स्तर पर या राज्य की ओर से आयोजित बलि शामिल थे। देवी-देवताओं को मनाने के लिए पशु बलि अनिवार्य मानी जाती थी। बलि देते समय सख्त विधि-विधान के मुताबिक यंत्रवत मंत्रोच्चार किया जाता था। विभिन्न उद्देश्यों के लिए अलग-अलग प्रार्थनाएं थीं। प्रमुख धार्मिक घटनाएं सार्वजनिक अवसर होतीं जिनमें लोग सामूहिक रूप से हिस्सा लेते थे। राज्य सार्वजनिक पूजा का आयोजन आधिकारिक पुरोहितों की देखरेख में करता था। रोम के अधीन क्षेत्रों के निवासियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे उन कार्यक्रमों में हिस्सा लेंगे।

भविष्यवाणी रोमन धर्म की एक अन्य विशेषता थी। यूनानियों की तरह रोमन भी अपना भविष्य जानने के लिए आप्तपुरुषों से नियमित संपर्क करते थे। ऐसे पुरोहित थे जो इन देववाणियों की व्याख्या करते थे। उसके अलावा पक्षियों की उड़ान पर आधारित भविष्यवाणी थी। उसे *ऑसपिशियम* (*ऑसपिशियम* का शाब्दिक अर्थ पक्षियों पर निगाह रखना है और अंग्रेजी शब्द ऑस्पिशस अर्थात शुभ इसी से निकला है) कहते थे। *ऑगर* के नाम से जाने जाने वाले पुरोहित इस पद्धति से भविष्य बताने के विशेषज्ञ थे। आधिकारिक *ऑगरों* का एक समूह राज्य से जुड़ा था और प्रशासन भविष्य जानने के लिए उनकी सलाह नियमित रूप से लेता था। भविष्यवाणी के एक और तरीके में बलि के जानवर का पेट देखा जाता था। यह समझा जाता था कि बलि के जानवर के पेट में ऐसे संकेत होते हैं जिससे पता चल जाता है कि देवताओं ने बलि स्वीकार की या नहीं।

धर्म औपचारिक रूप से रोमन राज्य का एक हिस्सा था। समुदाय के धार्मिक मामलों की देखरेख संस्थाएं करती थीं जो राज्य के ढांचा का हिस्सा थीं। एक आधिकारिक पुरोहित वर्ग धर्म के तमाम पहलुओं की निगरानी करता था। पुरोहित निर्वाचित होते थे। गणतंत्र की शुरुआत में पुरोहिताई के तमाम आधिकारिक पदों पर पैट्रिशियाइयों ने एकाधिकार स्थापित कर रखा था। पुरोहितों के निर्वाचन में कोमीशिया क्यूरियाटा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। राजधर्म का प्रबंधन पुरोहितों की एक परिषद करती थी जिसे पोंटीफिसेज (एक वचन *पोंटीफेक्स*) कहते थे। गणतंत्र काल की शुरुआत में तीन पोंटीफिसेज थे। जुलियस सीजर के काल तक पोंटीफिसेज की संख्या सोलह तक पहुंच गई। शुरू में तमाम पोंटीफिसेज पैट्रिशियाई थे। करीब 300 ईसापूर्व से आधे पोंटीफिसेज का चुनाव प्लेबयाइयों के बीच से होने लगा। इस परिषद का अध्यक्ष *पोंटीफेक्स मैक्सिमस* कहलाता था। *पोंटीफेक्स मैक्सिमस* का चुनाव जिंदगी भर के लिए होता था। वह न तो अपने पद से इस्तीफा दे सकता था और न ही उसे हटाया जा सकता था। गणतंत्र के अंत तक *रेक्स सैकरोरम* का पद समाप्त हो चुका था और *पोंटीफेक्स मैक्सिमस* उसकी ज्यादातर जिम्मेदारियां संभाल चुका था।

पोंटीफेक्स मैक्सिमस रोमन राजधर्म का प्रमुख था। यह राज्य के सर्वाधिक प्रतिष्ठित पदों में से एक था और उसके साथ कुछ राजनीतिक शक्तियां भी जुड़ी थीं। उत्तर-गणतंत्र काल में चोटी के राजनीतिज्ञ यह पद पाने के लिए लालायित रहते थे। दूसरे शासकत्रय के तहत लेपीडस को *पोंटीफेक्स मैक्सिमस* चुना गया था। बाद में जब लेपीडस को राजनीति से संन्यास लेने के लिए बाध्य किया गया तब भी वह मुख्य पुरोहित बना रहा क्योंकि उसे इस पद से हटाया नहीं जा सकता था। 27 ईसापूर्व में खुद को *प्रिंसेप्स* घोषित करने के बाद आगस्टस *पोंटीफेक्स मैक्सिमस* की उपाधि धारण करने के लिए बहुत इच्छुक था। लेकिन उसे लेपीडस के निधन (12 ईसापूर्व) तक इंतजार करना पड़ा। तभी वह *पोंटीफेक्स मैक्सिमस* बन सका। इसने रोमन धर्म को उसके नियंत्रण में लाकर आगस्टस के प्राधिकार को और मजबूत बनाया।

रोमनों के प्रमुख देवी-देवताओं में जूपीटर (उसे जोविस भी कहा जाता था); जूनो, जो जूपीटर की पत्नी थी; जूपीटर का भाई और समुद्र देवता नेप्ट्यून; वीनस, जो प्रेम की देवी और ईनियस (ईनियस रोमनों का मिथकीय पूर्वज था) की मां थी; जूपीटर का बेटा और युद्ध का देवता मार्स; प्लूटो; सैटर्न; मिनर्वा; अपोलो; वल्कन; वेस्टा और डायना शामिल थे। उनमें से जूनो, वीनस, मिनर्वा, वेस्टा और डायना देवियां थीं। यूनानी और यूनानवादी धार्मिक आस्थाओं ने खास कर तीसरी सदी ईसापूर्व के बाद से रोमन धर्म के विकास में सांचे का काम किया। तब रोम ने दक्षिणी इटली और भूमध्यसागरीय क्षेत्र में अपना विस्तार करना शुरू किया था। रोमन देवी-देवताओं का यूनानी देवी-देवताओं के साथ तादात्म्य स्थापित किया गया और इस तरह यूनानी धार्मिक पौराणिकी से जोड़ा गया। इस प्रक्रिया में रोमन देवी-देवताओं ने भूमध्य-सागरीय जगत में बृहद स्वीकृति पाई। हम यहां यह जोड़ सकते हैं कि यूनानी संस्कृति और विचारधारा ने यूनानवादी युग में खुद को खासा संशोधित कर लिया था। मध्य एवं उत्तर गणतंत्र में, अर्थात जब रोमन एक साम्राज्य का निर्माण कर रहे थे, यूनानी संस्कृति और विचारधारा ने रोम पर जबर्दस्त प्रभाव डाला। आगस्टस युग के क्लासिकी रोमन लेखक (वर्जिल, ओविड, होरेस) ने यूनानी और यूनानवादी विषय वस्तुओं को नए रूपों में ढाला जिससे रोमन देवमाला को एक ज्यादा सुसंगत शक्ल मिली।

तमाम प्रमुख रोमन देवी-देवताओं के प्रतिरूप यूनानी देवकुल में मिलते हैं। जूपीटर जियस का तादात्म्य नेप्ट्यून से किया गया है; नेप्ट्यून का पोसाइडन से; वीनस का एफ्रोडाइट से; मिनर्वा का एथेना से; और डायना का आर्टेमिस से (देखें अध्याय सात)। अब माना जाता था कि रोमन देवी-देवता ओलंपस पर्वत पर वास करते हैं। अपोलो एक बेहद लोकप्रिय यूनानी देवता था जिसका कोई रोमन प्रतिरूप नहीं था। अपोलो की पूजा की परंपरा रोमन धर्म में अपेक्षाकृत बाद में, संभवतः तीसरी सदी ईसापूर्व के लगभग अपनाई गई। हमने देखा है कि यूनान में डायनिसस की

उपासना खासी प्रचलित थी। डायनिसस या बैकस की उपासना सारे रोमन साम्राज्य में भी व्यापक रूप से होती थी। कर्मकांड रूप में मदिरापान और मदमस्त होकर नाचना डायनिसस प्रथाओं के अंग थे। इनमें स्त्रियां भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती थीं। उत्तर गणतंत्र में बैकस उत्सव इस कदर उच्छृंखल और बेलगाम हो गए प्रतीत होते हैं कि राज्य को उन पर अंकुश लगाने के लिए कदम उठाने पड़े। शायद ये उत्सव भारी संख्या में गरीब और असंतुष्ट लोगों के हुजूम को आकर्षित करते होंगे और अधिकारी इन अवसरों पर हिंसा भड़कने की आशंकाओं से त्रस्त रहते होंगे। कभी-कभी डायनिसस को सैबेजियस के साथ जोड़ा जाता है जो थ्रेसियाई मूल का एक अन्य देवता था। सैबेजियस के अनुयायी कर्मकांड के एक हिस्से के रूप में शराब के बदले *सबैया* (एक किस्म का बीयर) का सेवन करते थे। इसे छोड़कर दोनों पंथों के बीच अनेक समानताएं थीं।

रोमन नगर का प्रभुत्वकारी धर्म रोमन साम्राज्य का इस मायने में आधिकारिक धर्म था कि रोमन राज्य उसको संरक्षण देता था। लेकिन उसे रोमन लोगों की समग्र धार्मिक अनुभूति नहीं करार दिया जा सकता है। रोम के अतिव्यापक क्षेत्रीय विस्तार के साथ-साथ उसमें नए धार्मिक रुझान भी उभरे। रोमन जिस विशाल साम्राज्य पर शासन कर रहे थे, उसकी विविधता के मद्देनजर यह अपरिहार्य था। इस साम्राज्य का हिस्सा बनने वाले विभिन्न समाजों की अपनी-अपनी धार्मिक आस्थाएं थीं। यह स्थिति खासतौर पर पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र मिस्र, पश्चिम एशिया, अनातोलिया और यूनान में थी जहां बेहद पुरानी और अत्यंत विकसित धार्मिक परंपराएं रही थीं। यह संभव नहीं था कि इन क्षेत्रों के लोग आसानी से रोमन धर्म स्वीकार कर लें। उसके विपरीत, पूर्वी धर्म यूनानी-रोमन जगत पर छा गए। रोमन धर्म को एक बंद और गतिहीन चीज नहीं मानना चाहिए। इसने विदेशी पूजा पद्धतियों को अपने अंदर समाहित करने में खासा खुलापन दिखाया। आखिरकार साम्राज्य के ज्यादातर लोग गैर-रोमन थे। साम्राज्य के टिके रहने के लिए उनके धार्मिक कर्मकांडों को आत्मसात करना जरूरी था और रोम ने इस संदर्भ में खासा लचीलापन दिखाया। यूनानी धर्म को अपनाने के अलावा मिस्री, सीरियाई और फ्रीजियाई (फ्रीजिया मध्य अनातोलिया मे स्थित एक क्षेत्र था) धर्मों के तत्वों को भी रोमन धर्म में जगह दी गई। हमें साम्राज्य में नए पंथों और आस्थाओं के प्रसार में सौदागरों, मल्लाहों, सैनिकों और यहां तक कि गुलामों की भूमिका को अपने दिमाग में रखना चाहिए।

रोमन साम्राज्य में जिन सबसे प्राचीन पूर्वी पूजा पद्धतियों को आम मान्यता मिली उनमें सेरापिस, सिबली और अतागार्तिस की पूजा शामिल थी। सेरापिस की पूजा की शुरुआत टालेमी कालीन मिस्र में हुई। सेरापिस पंथ में ओसाइरिस और एपिस दोनों की पूजा शामिल थी। एपिस मेंफिस का पवित्र वृष था। ऐसा प्रतीत होता है कि

मेंफिस के पुजारियों ने मेंफिस के वृष पंथ और *ओसाइरिस* के लोकप्रिय पंथ को एक साथ मिला दिया था। दोनों को अब एक मिश्रित देवता-*सेरापिस* कहा जाता था। *सेरापिस* को समर्पित मंदिर को सेरापियम कहा जाता था। मिस्र के टालेमी कालीन शासकों ने इस पूजा पद्धति को राजकीय संरक्षण दे रखा था और सारे देश में अनेक सेरापियमों में *आइसिस* की भी पूजा होती थी। आइसिस की पूजा के लिए समर्पित अलग से भी मंदिर (आइसियम) थे।

उत्तर गणतंत्रकाल में सेरापियम और आइसियम रोम और अन्य इतालवी शहरों में उभरने लगे। आइसिस पंथ ने रोमन धर्म को इतनी बड़ी चुनौती दी कि राजधानी में कुकुरमुत्ते की तरह फैल गए आइसियमों को बंद करने के लिए गणतंत्र के अंतिम दिनों में सीनेट से जारी आदेशों का जिक्र मिलता है। फिर भी यह पंथ फलता-फूलता रहा। बाद में आगस्टस ने रोमन संस्कृति को बढ़ावा देने की अपनी मुहिम के तहत रोम में सेरापिस और आइसिस पंथ को कुचलने की कोशिश की। गैर-रोमन पूजा पद्धतियों के खिलाफ उसका अभियान कुछ हद तक रोम से मिस्री विचारधारा और संस्कृति के तमाम अवशेषों को खत्म करने की उसकी सचेत नीति का एक हिस्सा था। मिस्री पूजा पद्धतियों के विरुद्ध आगस्टस के मुहिम को मार्क एंटनी और क्लियोपेट्रा के खिलाफ उसके लंबे संघर्ष और खुद को रोम के मुक्तिदाता के रूप में पेश करने की उसकी इच्छा के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। टाइबेरियस ने आगस्टस की नीतियों को जारी रखा, लेकिन सेरापिस पंथ बचा रहा और अलेक्जैंड्रिया का सेरापियम चौथी सदी ईसवी तक रोमन साम्राज्य के पवित्रतम धर्मस्थलों में से एक बना रहा।

रोमन साम्राज्य में जो एक दूसरा प्रमुख पूर्वी पंथ फला-फूला, वह सिबली नामक मातृदेवी से जुड़ा था। सिबली फ्रीजिया (अनातोलिया) की एक लोकप्रिय देवी थी जहां उसे कुबेबे के नाम से जाना जाता था। सिबली का एक साथी एटिस था। दरअसल सिबली पूर्वी देवी-देवताओं में पहली थी जिसे आधिकारिक रूप से रोमन धर्म का हिस्सा बनाया गया। उसे दूसरे प्यूनिक युद्ध के समय रोमन धर्म में जगह दी गई। सिबली की पूजा से जुड़े कर्मकांड विशेष हिजड़े पुजारी संपादित करते थे। सिबली पंथ वृष बलि से गहराई से जुड़ा था। इस पंथ के कर्मकांडों में वृष बलि शामिल थी जो एक *टौरोबोलियम* नामक एक विशेष ढांचे में दी जाती थी। इस ढांचे में एक भूमिगत गड्ढा होता था जो एक चबूतरा से ढका होता था। इस चबूतरे में अनेक छेद होते थे। पुजारी गड्ढे में उतरता था। वृष की बलि गड्ढे को ढके चबूतरे पर दी जाती थी। बलि दिए हुए वृष का खून चबूतरे के छेदों के मार्फत पुजारी पर गिरता। यह आनुष्ठानिक पवित्रीकरण का द्योतक था। पूरे पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में वृष पंथों और वृष बलि का दौरदौरा था। ये भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में एकीकरण के समय से रोमन साम्राज्य के तमाम इलाकों में विभिन्न

रूपों में उभरे। मसलन, मिश्र धर्म, जिसकी चर्चा हम बाद में करेंगे, एक पश्चिम एशियाई धर्म था और उसमें भी वृष पंथ के तत्व थे।

पश्चिम एशिया में स्थित सेल्यूकस के क्षेत्रों की विजय के बाद सीरियाई पूजा पद्धतियों का भी रोमन साम्राज्य में प्रवेश हुआ। अतागार्तिस एक प्रमुख सीरियाई देवी थी। इस पंथ के साथ वंशानुगत पुजारियों की एक बड़ी संख्या जुड़ी थी। इसका मुख्य केंद्र सीरिया में हायेरोपोलिस-बांबाइस था। सीरिया में सर्वाधिक लोकप्रिय देवताओं में से एक सौर देवता बाल था। वास्तव में अनेक पृथक बाल पंथ थे। हम पहले ही उन बाल पंथों में से एक, एलागाबाल पंथ की चर्चा कर चुके हैं जिसको रोमन सम्राट एलागाबालस (218-222 ई.) का संरक्षण मिला था। यहां यह याद करना प्रासंगिक होगा कि एलागाबालस सेप्टिमियस सेवेरस की पत्नी जुलिया डोम्ना (देखें अध्याय नौ) के परिवार का था। जुलिया डोम्ना सीरियाई थी और एलागाबालस खुद एलागाबाल मंदिर का मुख्य पुजारी था। एलागाबालस के छोटे से शासनकाल में बाल पंथ (एलागाबाल) साम्राज्य का राजकीय पंथ बन गया। यह राजधानी के रूढ़िवादी समुदायों के बीच सम्राट की अलोकप्रियता का भी एक कारण था जिसकी परिणति प्रीटोरियाई गार्डों के हाथों एलागाबालस की हत्या में हुई। फिर भी पूर्वी सीमा पर तैनात रोमन सैनिक सीरियाई देवी-देवताओं, खासकर अतार्गातिस और बाल के प्रति श्रद्धा जताते रहे। ये सैनिक अपनी सुरक्षा के लिए उनकी नियमित पूजा-अर्जना करते रहे। जब ये सैनिक अवकाश ग्रहण करते तो वे पूर्व में अपनी लंबी तैनाती के क्रम में अपनाए गए कर्मकांडों और अनुष्ठानों को साम्राज्य के दूसरे हिस्सों में ले जाते। यह एक तरीका था जिससे पश्चिम एशियाई पूजा पद्धतियां एक बड़े इलाके में फैलीं।

सामान्य स्तर पर साम्राज्य के ज्यादातर निवासी अपनी सदियों पुरानी आस्थाओं से जुड़े रहे। रोम के शासन के अधीन क्षेत्रों में अनेक देवी-देवताओं की पूजा होती थी। यूनानियों का अपना देवकुल था, अनातोलियाई समुदायों के अपने देवी-देवता थे और आम सीरियाई, मेसोपोटामियाई, मिस्री एवं उत्तर अफ्रीकी लोगों के भी अपने-अपने देवी और देवता थे। साम्राज्य के दूर-दराज के इलाकों में पूजा के आदिम कबायली रूप प्रचलित थे। फलस्तीन में यहूदी थे जिनकी देवी-देवता और धर्म के बारे में अपनी सुस्पष्ट समझ थी। हम बाद में उन पर विस्तार से चर्चा करेंगे। कार्थेज के फिनिशियाई एक देवता की पूजा करते थे जिसका नाम मेलकार्त था। मेलकार्त पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र की फिनिशियाई बस्तियों का मुख्य देवता था। उत्तरी यूरोप में गॉल और ब्रिटेन के केल्टों का अपना कबायली धर्म था जिसे आमतौर पर डूइडवाद कहते हैं। डूइडवाद के बारे में हमारे पास बहुत कम जानकारी है। डूइड पुरोहित हुआ करते थे जो इन कबीलों के धार्मिक अनुष्ठान और कर्मकांड संपन्न कराते थे। डूइडवाद प्रकृति की शक्तियों की पूजा के इर्द-गिर्द केंद्रित थी और उसके कर्मकांडों

में बलि शामिल थी। रोमनों ने पहली सदी ईसवी के मध्य में डूइडवाद को बड़ी निर्ममता से कुचल दिया, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। जर्मनिक कबीलों के वोडेन और थोर जैसे अपने देवी-देवता थे। बाद में वोडेन की शिनाख्त मर्करी के साथ और थोर की हेराक्लीज (हरक्युलस) के साथ बनी।

रोमनों के लिए साम्राज्य के हरेक समुदाय के धार्मिक जीवन को नियमित करना असंभव था। राज्य ने कुल मिलाकर लोगों को अपनी पारंपरिक पूजा पद्धति पर अमल करने की इजाजत दे दी। बेशक, प्रधान राजकीय धार्मिक समारोह रोम नगर में आयोजित होते थे। रोम के बाहर राजकीय धार्मिक समारोह लातीनी सभ्यता के प्रभाव वाले क्षेत्रों (प्राथमिकत: इटली), रोमन और लातीनी उपनिवेशों, प्रांतीय राजधानियों, गैरिजन नगरों, लघु प्रशासनिक केंद्रों, तटीय नगरों और उल्लेखनीय रोमन आबादी वाले शहरों तक सीमित थे। स्थानीय अभिजातों और प्रशासन से इस या उस रूप से जुड़े तमाम लोगों से अपेक्षा की जाती थी कि वे इन जगहों पर आयोजित राजकीय धार्मिक समारोहों में हिस्सा लेंगे। कभी-कभी उसमें शायद जोर जबर्दस्ती भी हो जाती होगी। लेकिन जब तक लोग (या कम से कम स्थानीय समुदायों के नेता) रोमन राजकीय प्रथाओं के नाम के लिए ही जुड़े रहे होंगे, भले ही यह अनैच्छिक हो और राजधर्म के प्रति सम्मान का दिखावा करते रहे होंगे, उन्हें छेड़ा नहीं गया होगा। यह शहरी इलाकों से ज्यादा ग्रामीण अंचलों के लिए सच था।

इसका यह मतलब नहीं कि धार्मिक उत्पीड़न कोई अनजानी चीज थी या राज्य समय-समय पर वह दायरा तय करने की कोशिश नहीं करता था जिसके अंदर किसी समुदाय की धार्मिक गतिविधि चल सकती थी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब प्रांतीय और स्थानीय अधिकारियों ने धार्मिक मामलों में अत्यधिक असहिष्णुता दिखाई और रोमन साम्राज्य के धर्म को नहीं स्वीकार करने वालों के खिलाफ जोरदार अभियान चलाया। ईसामसीह ऐसे ही एक अधिकारी के शिकार बने। उसके अलावा, अगर किसी समुदाय की धार्मिक हठधर्मिता कोई राजनीतिक रंग ले लेती, या अगर धार्मिक असहमति को राज्य की मुख़ालिफत समझा जाता तो शासन इन स्थितियों से बड़ी क्रूरता से निबटता। हम यह चीज उत्तर गणतंत्र में बैकस उत्सवों और आइसिस पंथ के खिलाफ किए गए उपायों में, केल्टों के बीच डूइडवाद के उन्मूलन में, और प्रिंसिपेट में 66-70 ईसवी के यहूदी विद्रोह के कुचलने में पाते हैं। तीसरी सदी ईसवी में साम्राज्य के अंदर संकट के गहराने के कारण रोमन शासक वर्ग के एक हिस्से का दृष्टिकोण अधिकाधिक संकीर्ण और कट्टर होता चला गया। राज्य ने राजकीय धर्म थोप कर विचारधारात्मक एकता का दिखावा करने की कोशिश की लेकिन, जैसा हम देखेंगे, इसने और समस्याएं पैदा कर दीं।

प्रिंसीपेट के गठन से राजधर्म में कुछ नई विशेषताएं जुड़ीं। दूसरे शासकत्रय ने

जूलियस सीजर की उपासना शुरू करवाई जिसे आगस्टस के काल में गति मिली। जूलियस सीजर को देवता माना जाता था और उसको समर्पित अनेक मंदिर थे। खुद आगस्टस को मरने के बाद दैवत्व प्रदान किया गया। जूलियस और आगस्टस सीजर की उपासनाएं राजतंत्र को वैधता प्रदान करने के काम आती थीं। पहली सदी ईसवी में खुद रोम शहर श्रद्धा की चीज बन गई। रोम साम्राज्य का प्रतीक था और राज्य ने शहर को देवताओं की श्रेणी में बुलंद किया। रोम की पूजा एक देवी के रूप में की जाती थी। देवी रोम ईनियास की मां वीनस के साथ जुड़ी थी। राजकीय उपासनाओं में वीनस का एक विशेष स्थान था।

रोमन धर्म के लिए शासक विशेष की निजी तरजीहों को प्रतिबिंबित करना एक स्वाभाविक चीज थी। आगस्टस और टाइबेरिस ने बड़े जोरदार ढंग से गैर-रोमन उपासनाओं और पंथों को खारिज किया था। यहां यह जिक्र किया जा सकता है कि एंटनी और क्लियोपेट्रा से संघर्ष से पहले आगस्टस मिस्री धर्म के प्रति काफी उत्साही था। यह सर्वविदित है कि जब वह शासकत्रय था तो उसने रोम में एक सेरापियम का निर्माण शुरू कराया था। लेकिन प्रिंसीपेट की शुरुआत तक सब कुछ बदल गया। आगस्टस और टाइबेरियस की दृढ़ समझ थी कि गैर-रोमन पंथों को लातीनी सभ्यता की मुख्य भूमि से दूर रखा जाना चाहिए। टाइबेरियस के उत्तराधिकारियों ने साम्राज्य में पूर्वी पंथों की बढ़ती लोकप्रियता के कारण इस नीति पर अमल करने में कठिनाई महसूस की। कैलिगुला के समय से मिस्री, अनातोलियाई और सीरियाई देवी-देवताओं को सम्राटों से संरक्षण मिल रहा था। कुछ सम्राटों ने आइसिस समारोहों में हिस्सा लिया। वेसपासियान को जब सम्राट घोषित किया गया तो उसने अलेक्जैंड्रिया में सेरापिस के मंदिर में पूजा की। एलागाबालस ने रोम में बाल की सार्वजनिक पूजा शुरू करवाई। तीसरी सदी ईसवी में विभिन्न सौर देवता सम्राटों के बीच लोकप्रिय हुए। सम्राटों को सूर्य के साथ जोड़ने का चलन था। बाल एक सौर देवता था। रोम में मिथ्र धर्म के बड़ी संख्या में श्रद्धालु थे और उस वाद में भी सौर पूजा के तत्व थे। सम्राटों के विविध रुझानों से रोमन शासक वर्गों में एक व्यापक धार्मिक दृष्टिकोण के विकास को बढ़ावा मिला।

II

पश्चिम एशिया में रोमनों के एक क्षेत्रीय शक्ति बनने के बाद वहां के पंथों ने साम्राज्य में प्रवेश करना शुरू कर दिया। ईरान और मेसोपोटामिया के धार्मिक आंदोलनों ने दूसरी सदी ईसवी के बाद रोमन धर्म की दिशा एवं गति को प्रभावित करना शुरू कर दिया। इसलिए इस क्षेत्र के साम्राज्य में शामिल नहीं होने के बावजूद ईरान के धर्मों

की कुछ प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित करना जरूरी है। ऐकेमेनियों के फारस साम्राज्य (अर्थात छठी सदी ईसापूर्व में साइरस और दारा प्रथम द्वारा स्थापित साम्राज्य जिसे बाद में सिकंदर महान ने नष्ट कर डाला) में दो प्रमुख धर्म थे : मिथ्र धर्म और ज़रतुश्त धर्म (या माज्दा धर्म)। मिथ्र उपासना की उत्पत्ति प्राचीन भारोपीय कबीलों में हुई थी। चौहदवीं सदी ईसापूर्व के दस्तावेजों में मिथ्र के ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। मिथ्र हित्तीयुग में अनातोलिया में पूजे जाने वाले देवी-देवताओं में से एक था। मिथ्र पंथ भारोपीय कबीलों के साथ उत्तरी मेसोपोटामिया और ईरान में फैल गया।

जैसे-जैसे मिथ्र धर्म का विकास होता गया, उसने अनेक नए विचार ग्रहण किए और अपनी विश्वदृष्टि सूत्रबद्ध की। मिथ्र को ऐसे देवता के रूप में देखा जाता था जो प्रकाश का प्रतीक था और अंधकार के खिलाफ संघर्षरत रहता था। मिथ्र धर्म और ज़रतुश्त धर्म दोनों में ईरान का जो धार्मिक दर्शन व्याप्त था, उसकी एक केंद्रीय अवधारणा यह थी कि ब्रह्मांड पर दो विरोधी अलौकिक शक्तियों का राज है। एक तरफ प्रकाश और अच्छाई की शक्तियां हैं तो दूसरी तरफ अंधकार और बुराई की। इन दोनों शक्तियों के बीच सतत संघर्ष रहता है। विश्व के इस दार्शनिक बोध को 'द्वैतवाद' कहते हैं। इस मत के अनुसार एक समय आएगा जब अंधकार की शक्तियों को अंतिम रूप से परास्त किया जा सकेगा। तब तक हम अच्छाई के पक्ष में खड़े होकर प्रकाश की शक्तियों को मजबूत कर सकते हैं। इसे उचित अनुष्ठानों और अच्छे कर्मों से पूरा किया जा सकता है। मिथ्र धर्म में मिथ्र प्रकाश का द्योतक है। प्रकाश के मूर्त रूप में मिथ्र को एक सौर देवता, अर्थात सूर्य देवता के बतौर भी देखा जाता था। इस पंथ के साथ कर्मकांडों की एक विस्तृत शृंखला जुड़ी थी। ऐकेमेनी काल की शुरुआत से ईरान और मेसोपोटामिया में इस पंथ के अनुयायियों की एक बड़ी संख्या थी। लेकिन दारा प्रथम के काल में मिथ्र धर्म में गिरावट आई। दारा ने ज़रतुश्त धर्म को सरकारी संरक्षण दिया और उसे राजधर्म बनाया।

यूनानवादी काल में मिथ्र धर्म फिर से उभरा। नया मिथ्र धर्म अपने पुराने रूप से थोड़ा भिन्न था। मिथ्र के अनुयायी अब एक तरह के गुप्त समुदाय के रूप में संगठित थे। देवता की पूजा अब सार्वजनिक रूप से नहीं होती थी और न ही पंथ के अनुष्ठान खुले में किए जाते थे। कुछ गुप्त अनुष्ठान के आधार पर पंथ में नए सदस्य भर्ती किए जाते थे। पंथ के अपने पुरोहित थे जो मिथ्र से जुड़े पूजास्थलों में पंथ के पवित्र समारोहों की निगरानी करते थे। महिलाओं को पंथ में शामिल नहीं किया जाता था। मिथ्र धर्म वृष पंथ से घुलमिल गया और वृष बलि गुप्त अनुष्ठानों का प्रमुख पहलू बन गई। यूनानी-रोमन मूर्ति कला में मिथ्र को वृषहंता के रूप में पेश किया जाता है। जैसा कि पहले जिक्र किया जा चुका है अति प्राचीन काल से वृष पंथ समूचे पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र, अनातोलिया और पश्चिम एशिया में व्याप्त था। वृष की बलि प्रजनन क्षमता से

संबंधित अनुष्ठानों से जुड़े थे। माना जाता था कि बलि प्रजनन क्षमता बढ़ाती है।

मिथ्र धर्म पर अमल करने वाले शुरुआती रोमनों में वे सैनिक थे जो पूर्वी सेनाओं में सेवारत थे। मिथ्र रोमन सेना का एक विशेष देवता बन गया और सैनिक उससे गहराई से जुड़े थे। इसके अलावा पश्चिम एशिया में रोमन क्षेत्रों के स्थानीय निवासियों के बीच पहले ही से मिथ्र के अनुयायी मौजूद थे। दूसरी सदी ईसवी में मिथ्र धर्म पश्चिमी प्रांतों में फैला। यहां उसके अनुयायी मुख्यत: शहरों के अभिजात और मध्य वर्ग के थे। पंथ के गुप्त पूजास्थल, जिसे मिथ्रियम कहते थे, समूचे साम्राज्य में उभर आए। पुरातात्विक उत्खननों से रोम में करीब पचास मिथ्रियम; ओस्टिया में अट्ठारह, अलेक्जैंड्रिया और कार्थेज में अनेक; और लंदन में एक विशाल मिथ्रियम मिला है। यह एक संकेत है कि मिथ्र धर्म किस हद तक रोमन साम्राज्य के धर्म का एक हिस्सा बन चुका था।

खुद ईरान में मिथ्र धर्म ज़रतुश्त धर्म के तले दब गया। ज़रतुश्त धर्म (जिसे भारतीय उपमहाद्वीप के लोग पारसी धर्म के नाम से ज्यादा अच्छे ढंग से जानते हैं) के उदय का काल छठी सदी ईसापूर्व तक जाता है जब इस धर्म के पैगंबर ज़रतुश्त की शिक्षाओं ने इसका मुख्य स्वरूप किया। ज़रतुश्त धर्म में हिंद-ईरानी लोगों की कुछ पुरानी धार्मिक परंपराएं शामिल थीं। ज़रतुश्त धर्म की मान्यता थी कि ब्रह्मांड पर दो प्रतिद्वंद्वी ताकतों का राज है। उनमें से एक अहुरमाज्दा है जो सच्चाई का देवता है और दूसरा अहिरमान जो बुराई का द्योतक है। ज़रतुश्त धर्म के मुताबिक दोनों के बीच एक सृष्टिव्यापी संघर्ष सतत रूप से जारी है। अहुरमाज्दा को प्रकाश और अच्छाई के प्रतिनिधि के रूप में पूजा जाता है। ज़रतुश्त धर्म को माज्दा धर्म भी कहा जाता है। ज़रतुश्त के मंदिरों में पवित्र आग होती थी जिसे हमेशा जलते रखा जाता था। यह आग अंधकार के खिलाफ संघर्ष में प्रकाश का प्रतीक थी। इस धर्म के अनुष्ठानों का संचालन एक वंशानुगत पुरोहित वर्ग करता है जिसे मजूसी कहते हैं। उनका पवित्र ग्रंथ जैंद-अवेस्ता है।

सेल्युकस वंश के शासनकाल में ज़रतुश्त धर्म को एक झटका लगा। पार्थियाई क्षेत्रों में ज़रतुश्त धर्म और मिथ्र धर्म का सहअस्तित्व था। इस काल में दोनों धर्मों ने विचारों के आदान-प्रदान से एक-दूसरे को समृद्ध किया। सासानी शासनकाल में ज़रतुश्त धर्म को राजधर्म का दर्जा बहाल हो गया। शुरू में सासानी साम्राज्य में द्वैतवाद पर आधारित एक नया धर्म मानी धर्म लोकप्रिय हुआ। उसमें मिथ्र धर्म, ज़रतुश्त धर्म और शुरुआती ईसाइयत के तत्व समाहित थे। हम ईसाइयत के उदय के संदर्भ में मानी धर्म पर बाद में चर्चा करेंगे। तीसरी सदी ईसवी के अंत में ज़रतुश्ती माज्दा धर्म को सासानी साम्राज्य का राजधर्म बनाया गया। रोमन धर्म के दृष्टिकोण से ज़रतुश्त धर्म का महत्व इस तथ्य में है कि रोमन साम्राज्य के अधीनस्थ सीरिया, उत्तरी

मेसोपोटामिया, और आर्मीनिया के कुछ हिस्सों में ज़रतुश्त के अनुयायियों की खासी आबादी थी। दूसरे, ज़रतुश्ती विचारों ने साम्राज्य के कुछ धार्मिक रुझानों को, खासकर मानी धर्म को प्रभावित किया जो कुछ समय के लिए साम्राज्य के सर्वाधिक शक्तिशाली धार्मिक आंदोलनों में एक था।

III

सीरियाई तट के ठीक दक्षिण में स्थित अर्धशुष्क जमीन की पट्टी का रोमन साम्राज्य के धार्मिक इतिहास में एक अनूठा स्थान है। भूमध्यसागरीय क्षेत्र के दक्षिणी पूर्वी कोने से लाल सागर के उत्तरी सिरे तक फैले इस संकीर्ण क्षेत्र को फलस्तीन (मौजूदा इस्राइल-फलस्तीन) कहा जाता था। फलस्तीन पश्चिम में जार्डन नदी और मृत सागर से घिरा है। यह उन इलाकों में से एक है जिसे सिकंदर महान ने जीता था। सिकंदर की मौत के बाद फलस्तीन मिस्र के टालेमी राज्य का एक हिस्सा बन गया। सेल्युकस वंश के शासकों ने टालेमियों को इस इलाके से हटाने के लिए अनेक प्रयास किए। एंटीओकस तृतीय ने 200 ईसापूर्व में फलस्तीन को सेल्युकसी राज्य में मिला लिया। सेल्युकसी शासक इस पर 63 ईसापूर्व तक राज्य करते रहे। रोमनों ने 63 ईसापूर्व में सेल्युकसी राज्य खत्म कर दिया और सीरिया तथा फलस्तीन पर कब्जा कर उन्हें रोमन साम्राज्य में मिला लिया।

फलस्तीन दो प्रमुख धर्मों : यहूदी धर्म और ईसाई धर्म का केंद्र था। चौथी सदी ईसवी में ईसाइयत रोमन राज्य का राजधर्म बन गई। ईसाइयत से पहले यहूदियत फलस्तीन का प्रमुख धर्म थी। उसने ईसाइयत के उदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दी थी। इसलिए हमें रोमन साम्राज्य में ईसाइयत के उत्थान और प्रसार की जांच करने से पहले यहूदियत की चर्चा करनी चाहिए।

यहूदियत दुनिया के सबसे पुराने जीवित संगठित धर्मों में से एक है। इसकी शुरुआत करीब 2000 ईसापूर्व में पश्चिम एशिया में पश्चिमी सामी कबीलों के संचलनों तक जाती है। परंपरा के अनुसार यहूदियत की स्थापना अब्राहम के नेतृत्व में कबीलों के स्थानांतरण के क्रम में हुई। करीब 1800 ईसापूर्व में इस्राइली के नाम जाने जाने वाले ये कबायली मेसोपोटामिया से सीरिया-फलस्तीन जा रहे थे। वे हाल ही में एकीकृत हुए थे और उनकी एका साझे तौर पर उनके एक धर्म अपनाने में प्रदर्शित हुई थी। जब इस्राइली उत्तरी मेसोपोटामिया से गुजर रहे थे तो उन्होंने एक सच्चे ईश्वर, यहोवा के अस्तित्व को स्वीकारा। माना जाता है कि हारन में अब्राहम ने यहोवा से मूर्तियों और तमाम देवी-देवताओं की पूजा त्याग देने का समझौता किया। अब से एक और सिर्फ एक ईश्वरीय शक्ति, यहोवा की पूजा होगी। बदले में यहोवा

ने इस्राइलियों या यहूदियों को अपना पसंदीदा समुदाय माना। उन्हें फलस्तीन में जमीन पर कब्जा दिलाने का वायदा किया गया। मेसोपोटामिया से शुरू हुई इस यात्रा की दास्तान 'दि बुक आफ जेनेसिस' में है जो बाइबल के ओल्ड टेस्टामेंट का एक हिस्सा है।

बाद में इस्राइली फलस्तीन के कठोर पर्यावरण के कारण मिस्र चले गए। यहां वे सदियों तक रहे। नील नदी के डेल्टा पर यहूदी बस्तियां फली-फूलीं। बाद में इस्राइलियों को उस वक्त मिस्र छोड़ना पड़ा जब फराओं में से एक (फरानो रामेसस द्वितीय, 1304-1237 ईसापूर्व) ने उन पर जुल्म ढाना शुरू किया। मिस्र से यहूदियों के प्रस्थान को बड़े जीवंत ढंग से ओल्ड टेस्टामेंट में पेश किया गया है। मिस्र को खाली करके इस्राइली फलिस्तीन चले गए। मूसा के नेतृत्व में वे 40 साल तक भटकते रहने के बाद अपनी मंजिल पर पहुंचे। इसी प्रस्थान के दौरान इस्राइलियों ने अपने बुनियादी कानून बनाए। इन्हीं को दस धर्मादेश कहा जाता है। ये उनके समुदाय के सबसे पुराने कानून हैं। दस धर्मादेश सीनाई पर्वत पर मूसा को ईश्वर की ओर से संदेश के रूप में मिले। इससे इस्राइलियों को अपने को राष्ट्र में रूपांतरित करने में मदद की। मूसा का फलस्तीन के रास्ते में ही निधन हो गया। उनका उत्तराधिकारी जोशुआ करीब 1200 ईसापूर्व में इस्राइलियों को फलस्तीन पहुंचाने में सफल रहा। हाल में एक अग्रणी इस्राइली पुरातत्वविद जेव हर्जोग ने इन तथ्यों की ऐतिहासिकता पर प्रश्न खड़ा किया है कि यहूदी फलस्तीन छोड़कर गए थे और फिर वहां लौटे थे। उनका कहना है कि इस्राइली उन सामी खानाबदोश कबीलों में से एक थे जो अनेक सदियों से सीरिया-फलस्तीन में रह रहे थे। उनके बीच गहरे संबंध थे। उनके कुल *(मिशपहा)* पर्व-त्योहार और अनुष्ठानों पर नियमित रूप से मिलते-जुलते थे। ये रिश्ते उस वक्त और भी मजबूत हो गए जब उन्होंने एक साझा एकेश्वरवादी धर्म कबूल कर लिया। धर्म ने इन कबीलों को एक बंधन में बांध दिया और राज्य निर्माण की स्थितियां सृजित कीं।

इस्राइली जमीन की जिस पट्टी पर बसे थे, उसे उस वक्त कनान कहते थे। उसे यह नाम कनानी नामक सामी लोगों से मिला जो सीरियाई तट से फलस्तीन तक के भूभाग पर बसे थे। फिनिशियाई व्यावसायिक बस्तियों का तटरेखा पर वर्चस्व था। करीब 1200 और 1000 ईसापूर्व के बीच इस क्षेत्र में फिनिशियाई और इस्राइली विस्तार एक दूसरे से गहराई से जुड़े थे। इस्राइली तायर और सिडोन के फिनिशियाई नगरों के निकट बसे थे। एक समय वे तायर के फिनिशियाई शासक हिरम के साथ राजनीतिक रूप से जुड़े थे। इस्राइलियों ने तायर के व्यापारियों को व्यापारिक संबंध बढ़ाने में मदद की। फिनिशियाई वाणिज्य के साथ उनके जुड़ाव ने इस्राइली कबीलों के बीच राज्य निर्माण और वर्ग विभाजन की गति तेज की। यहूदी स्मृतियां हमें

बताती हैं कि जब इस्राइली करीब 1200 ईसापूर्व में कनान में बसे थे तो वे 12 कबीलों में बंटे थे। इन कबीलों पर पुरोहित-सरदारों या न्यायाधीशों का शासन था। इलाके की खराब मिट्टी के मद्देनजर अधिशेष बढ़ाने के लिए व्यापार अत्यंत महत्वपूर्ण था। इस व्यापार से यहूदी शहरी केंद्र विकसित हुए।

कनान में अनेक कबीले बसे थे जो अपने-अपने क्षेत्रों को बढ़ाने के लिए आपस में हमेशा लड़ते रहते थे। कनान में स्थिति अस्थिर रही क्योंकि मिस्र, सीरिया और मेसोपोटामिया की संधि पर स्थित इस गलियारा-समान क्षेत्र से कबीलों का आना-जाना हमेशा बना रहता था। क्षेत्र पर प्रभुत्व के मामले में इस्राइलियों के मुख्य विरोधी फलिस्तीनी थे। जब करीब 1200 ईसापूर्व में कबायली संचलनों के कारण हित्ती साम्राज्य बिखरा, तो पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के कुछ विस्थापित कनान में आ बसे। उन कबीलों में से एक पेलेस्त (हिब्रु में *प्लिश्तीम*) था। पेलेस्तों को प्राचीन साहित्य में आमतौर पर फलिस्तीनी कहा जाता है। उन्होंने इस क्षेत्र में खुद को स्थापित कर दिया और उसे अपना नाम फलस्तीन (आसानी के लिए और उलझाव से बचने के लिए हम अब से आमतौर पर समूचे क्षेत्र के लिए इसी नाम का इस्तेमाल करेंगे) दे दिया। प्रस्थान के बाद के यहूदी साहित्य में इस्राइलियों और फलिस्तीनियों के बीच का संघर्ष बारंबार आता है।

इस्राइली राज्य की नींव करीब 1000 और 931 ईसापूर्व के बीच के काल में रखी गई। करीब 1020 ईसापूर्व में राजा सॉल ने इस्राइली राज्य की स्थापना की। करीब 1000 ईसापूर्व में डेविड ने सॉल का उत्तराधिकार संभाला। सॉल और डेविड को फलिस्तीनियों पर उल्लेखनीय सफलता मिली। उन्होंने इस्राइलियों के कब्जे वाले इलाके के शासन के लिए एक प्रशासन तंत्र विकसित किया। अब तक इस्राइली मुख्यत: धर्म के आधार पर एकताबद्ध थे। अब वे एक राज्य में संगठित थे। करीब 960 ईसापूर्व में डेविड के बाद राजा सॉलोमन के हाथ में शासन की बागडोर आई। सॉलोमन ने यरुशलम को इस्राइली राज्य की राजधानी बनाया। उसके शासनकाल में यरुशलम एक प्रमुख शहरी केंद्र बन गया। सॉलोमन ने यरुशलम में एक विशाल यहूदी मंदिर का निर्माण करवाया और शहर को समुदाय के धार्मिक जीवन का केंद्र बना दिया। माना जाता है कि सॉलोमन बहुत शाही ठाठ-बाट से रहता था। किंवदंतियों में उसकी शाही ठाठ-बाट वाली जीवन शैली की बात संभवत: कुछ हद तक अतिशयोक्तिपूर्ण है, लेकिन यह दिखाता है कि उस वक्त तक इस्राइलियों के बीच खासा सामाजिक विभेदीकरण हो चुका था और कबीलाई समाज से वर्ग समाज में उनका संक्रमण पूरा हो चुका था। संपत्ति में विषमता संकेत देती है कि शासक वर्ग एक विशाल अधिशेष हथियाने में सक्षम हो गया था।

931 ईसापूर्व में सॉलोमन के निधन के बाद इस्राइली राज्य एकताबद्ध नहीं रह

सका। राज सिंहासन के विभिन्न दावेदारों के बीच टकराव को राज्य का बंटवारा कर हल किया गया। इस्राइली राज्य को दो हिस्सों में बांट दिया गया—इस्राइल का उत्तरी राज्य और जूडा का दक्षिणी राज्य। यरुशलम अब जूडा की राजधानी बन गया। 722 ईसापूर्व में मेसोपोटामिया के असीरियाइयों ने इस्राइल अर्थात उत्तरी राज्य पर हमला कर दिया। असीरियाइयों ने इस्राइल को अपने अधीन कर लिया, लेकिन जूडा टिका रहा। फिर 586 ईसापूर्व में मेसोपोटामिया के बेबीलोनियाई शासकों ने फलस्तीन पर हमला कर दिया। इस बार जूडा अधीन कर लिया गया और यरुशलम तबाह कर दिया गया। असीरियाइयों और बेबीलोनियाइयों के लगातार हमलों ने इस्राइलियों के राज्यों को खत्म कर डाला। बेबीलोनियाई विजय यहूदियों के लिए विनाशकारी थी। इस्राइली बस्तियां उजाड़ दी गईं और हजारों यहूदियों को जबर्दस्ती बेबीलोन भेजा गया। अनेक यहूदियों ने मिस्र और भूमध्यसागरीय क्षेत्र के दूसरे हिस्सों में पनाह लेने की कोशिश की। यहूदी आबादी के इस तरह बिखरने को डायसपोरा कहा जाता है।

इसने यहूदियत का चरित्र बदल दिया। यहूदी किसी एक जगह केंद्रित नहीं रहे, बल्कि विभिन्न देशों में बिखर गए। इन देशों में नई यहूदी बस्तियां उभरीं। यहूदी समुदायों ने अपनी विशिष्ट आस्था और अनुष्ठानों पर सख्ती से अमल कर अपनी अलग धार्मिक अस्मिता बचाए रखने की कोशिश की। यह वह काल था जब पिछली सदियों में विकसित हुई परंपराओं को जमा किया गया और उन्हें व्यवस्थित किया गया। बेबीलोन में शहर बदर किए गए यहूदी यहूदियत का मर्मस्थल बन गए। बेबीलोनियाई यहूदियों ने निर्वासन में रहते हुए यहूदी धर्म सिद्धांतों को ठोस रूप दिया।

यहूदियत उन प्राचीनतम धर्मों में से एक था जो एकेश्वरवाद पर अडिग और अटल रहा। यहूदी सिर्फ एक सर्वोच्च ईश्वर, यहोवा की पूजा करते थे। यहूदी धर्म मूर्तिपूजा के सख्त खिलाफ था। इसने और सख्ती से मानव बलि जैसे अनेक कर्मकांडों को रोका जो उस समय उस क्षेत्र में प्रचलित थे। माना जाता है कि अब्राहम ने ईश्वर के साथ औपचिरिक समझौता किया था और उसमें सिर्फ और सिर्फ यहोवा को मानने पर मुख्य जोर था। मूसा ने यहूदियत के इस एकेश्वरवाद को दोहराया जब वह मिस्र से फलस्तीन की ओर गमन में यहूदियों का नेतृत्व कर रहे थे। यहूदी मूसा को अपना पैगंबर और कानूनदाता मानते हैं। यह मान्यता है कि मूसा ने मूर्तिपूजा के पूर्ण नकार के लिए सांकेतिक रूप से सोने के एक बछड़े की प्रतिमा तोड़ी थी। यह संभव है कि फलस्तीन में राजतांत्रिक राज्य की स्थापना के बावजूद मूर्तियां और प्रतिमाएं पूरी तरह लुप्त नहीं हुई होंगी। पहले के कुछ कबाइली अनुष्ठान यहोवा की उपासना के साथ बने रहे। ऐसे साक्ष्य हैं जिनसे संकेत मिलता है कि सॉलोमन के बाद के काल में स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा फिर से शुरू हो गई थी। मिसाल के तौर पर 873-

52 ईसापूर्व में इस्राइल के राजा अहब के शासनकाल में बाल की पूजा का जिक्र मिलता है। अहब के बाद इसे खत्म करने के लिए कड़े कदम उठाए गए। पूरी संभावना यही है कि डायसपोरा के बाद ही समूचा यहूदी समुदाय एकेश्वरवाद के सख्त अमल पर दृढ़ हुआ।

टॉरा यहूदियों का पवित्र ग्रंथ है। इसमें पैगंबरों की मूल शिक्षाएं, यहूदियों की ऐतिहासिक परंपराएं और सीनाई पर्वत पर मूसा को प्रकटित दस धर्मादेश शामिल हैं। *टॉरा* का संकलन और लेखन करीब 1000 और 500 ईसापूर्व के बीच कई सदियों में हुआ। 450 ईसापूर्व के लगभग उसको अंतिम रूप दिया गया। इसमें पांच खंड हैं और उसे पंचग्रंथ भी कहते हैं। प्रसंगवश *टॉरा* बाइबल के ओल्ड टेस्टामेंट का पहला भाग है। यहूदियों के दीवानी और धर्मवैधानिक कानून *तल्मूद* में संकलित हैं। यहूदियत का प्रारंभिक साहित्य इबरानी और अरामी भाषाओं में लिखित है।

यहूदियत जीवन की एक पूर्ण शैली है। उसमें अनुयायियों को रोजमर्रा के मामलों में दिशानिर्देश के लिए विस्तृत कायदे-कानून हैं। पारिवारिक बंधनों पर बहुत जोर दिया गया है। पुरुष एक यहूदी के रूप में पहचान के लिए खतना कराते हैं। यहूदियों के पूजा के रूप सरल हैं। यहूदी धर्मावलंबी सिनागोग में एकत्रित होते हैं और पवित्र ग्रंथों का पाठ करते हैं। इन जलसों में कोई भी बुलंद आवाज से पवित्र ग्रंथों का पाठ कर सकता है। उसके लिए कोई विशेषज्ञ पुजारी की जरूरत नहीं है। कोई जटिल उपासना या कर्मकांड नहीं है जिसके लिए पुजारियों की जरूरत हो। इतिहासकारों ने इंगित किया है कि तमाम यहूदियों को सुलभ लिखित साहित्य के विकास और पवित्र ग्रंथों के सामूहिक पाठ ने समुदाय के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ऐकेमेनियाइयों के ईरानी साम्राज्य के उदय और प्रसार ने फलस्तीन पर बेबीलोनियाई शासन खत्म कर दिया। यह क्षेत्र अब फारस के अधीन आ गया। ऐकेमेनियाइयों ने एक उदार और सहिष्णु धार्मिक नीति पर अमल किया। विशाल ऐकेमेनी साम्राज्य में विभिन्न समुदाय रहते थे और उन्हें अपनी आस्था के अनुसार पूजा-उपासना करने की आजादी थी। जब साइरस ने 539 ईसापूर्व में बेबीलोनियाइयों को परास्त किया तो यहूदियों को एक बार फिर यरुशलम में बसने की इजाजत मिल गई। इस घटना के तुरंत बाद यहूदियों ने यरुशलम में एक दूसरा मंदिर बनाया। फलस्तीन में यहूदियत फिर से फलने-फूलने लगी। इस काल में टॉरा का अंतिम संस्करण तैयार किया गया। बेबीलोन और यरुशलम दोनों जगहों के यहूदी समुदायों ने टॉरा के मजमून को अंतिम रूप देने में योगदान किया। यहां यह जिक्र करना उचित होगा कि यहूदियों की एक बड़ी आबादी बेबीलोन में रहती थी और मेसोपोटामिया यहूदियत का एक महत्वपूर्ण केंद्र बना रहा।

ऐकेमेनी और यूनानवादी काल में यहूदियत ने पश्चिम एशिया में खासकर फलस्तीन

में गहरी जड़ें जमा ली थी। फलस्तीन पर यहूदी सरदारों का शासन था जो ऐकेमेनियाइयों के प्रभुत्व को स्वीकार करते थे। बाद में उन्होंने टालेमी और सेल्युकस वंश के प्रभुत्व को भी स्वीकार किया। यरुशलम यहूदियों का मुख्य राजनीतिक और धार्मिक केंद्र था। लेकिन पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में रोमन विस्तार से क्षेत्र की राजनीति में बेहद तब्दीली आ गई। सेल्युकस वंश के राजा एंटीओकस तृतीय के खिलाफ रोमन अभियानों (देखें अध्याय आठ) ने सीरिया के यूनानवादी राज्य का प्राधिकार कमजोर कर दिया। 167 ईसापूर्व में सेल्युकसी राज्य के खिलाफ यहूदी विद्रोह फूट पड़ा। दरअसल 175 ईसापूर्व में राजा बने एंटीओकस चतुर्थ (एंटीओकस एपीफनीज के नाम से भी मशहूर) ने यहूदियत को कुचलने का प्रयास किया। एंटीओकस चतुर्थ एंटीओकस तृतीय का बेटा था और उसका यह कदम सेल्युकसी राज्य के यूनानवादीकरण की उसकी नीति का एक हिस्सा था। इस तरह की नीति का फलस्तीन पर गंभीर प्रभाव पड़ा क्योंकि एंटीओकस ने इस अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्र पर जबरदस्ती यूनानी अभिजात संस्कृति थोपने की कोशिश की। उसके अलावा रोमनों ने सेल्युकसी शासकों से खिराज मांगे जिसके चलते लोगों पर भारी बोझ पड़ा। फलस्तीन की कमजोर अर्थव्यवस्था कराधान में वृद्धि बर्दाश्त नहीं कर सकी। इसने सेल्युकसी शासन के खिलाफ लोगों के बढ़ते गुस्से को और बढ़ा दिया।

एंटीओकस चतुर्थ के खिलाफ यहूदी विद्रोह का नेतृत्व यरुशलम के अग्रणी यहूदी पुजारी जुडास मैकेबियस ने किया था। यह विद्रोह 164 ईसापूर्व तक चला और मैकेबियस के अनुयायियों (मैकेबियाई) ने सेल्युकसी राज्य के सांस्कृतिक और धार्मिक हमलों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। मैकेबियाइयों ने सेल्युकसी शासन के खिलाफ रोमनों के साथ गठबंधन किया। यह रोमनों के लिए एक अवसर था और उन्होंने क्षेत्र में पैठ बढ़ाने के लिए उसका तुरंत इस्तेमाल किया।

एंटीओकस चतुर्थ की 163 ईसापूर्व में मृत्यु हो गई, लेकिन मैकेबियाइयों का स्वतंत्रता संग्राम जारी रहा। मैकेबियस के परिवार ने सेल्युकसी राज्य की गिरती ताकत का फायदा उठाते हुए जूडा का स्वतंत्र राज्य (करीब 145 ईसापूर्व) स्थापित कर दिया। मैकेबियस परिवार यरुशलम का प्रधान पुजारी और फलस्तीन का स्वायत्त शासक बन बैठा। उसे सत्ता में रहने के लिए रोमनों और सेल्युकसों दोनों के साथ चलना पड़ा। रोमन विजय के बाद फलस्तीन रोम का आश्रित राज्य बन गया। पहले उस पर रोमन समर्थक यहूदी पुरोहित राजाओं का शासन था। बाद में 6 ईसवी में फलस्तीन में जूडिया का नया प्रांत गठित किया गया और उसे रोमन प्रशासकों के तहत ले आया गया। पुजारियों को यहूदी समुदाय के मामलों में कुछ हद तक स्वायत्तता दी गई थी।

मैकेबियाई विद्रोह के अगले डेढ़ सौ सालों के दौरान यहूदी अनेक संप्रदायों में

बंट गए। ये विभाजन एक हद तक संप्रदायों के बीच सिद्धांत संबंधी मतभेदों पर आधारित थे। साथ ही ये विभाजन प्रांतीय अभिजातों का हिस्सा बन चुके उच्च वर्गीय शहरी यहूदियों और शहरी समाज के हाशिए पर रहने वाले कम खुशहाल यहूदियों के बीच बढ़ते फासले को भी दिखाते हैं। मैकेबियाइयों ने खुद भी एक संप्रदाय के रूप में शुरुआत की थी जिसने एंटीओकस चतुर्थ की अधीनता स्वीकार नहीं की थी जबकि कुछ अन्य यहूदियों ने यूनानवादीकरण स्वीकार कर लिया था। करीब 145 ईसापूर्व के बाद उन्हें ऐसे लोगों के रूप में देखा गया जिन्होंने राजनीतिक सत्ता पाने के खातिर अनैतिक गठबंधन बनाकर यहूदी राज्य की आजादी गिरवी रख दी। मैकेबियाइयों ने महसूस किया कि सेल्युकसी अधिकारियों के साथ लंबे अर्से तक टकराव जारी रखना व्यावहारिक नहीं होगा क्योंकि यहूदियों के पास लंबे अर्से तक लगातार लड़ने के लिए संसाधन नहीं थे। यह दलील दी गई कि समूचे समुदाय को खत्म हो जाने से बेहतर समझौता करना होगा। बाद में, मैकेबियाइयों की एक शाखा सदूसी ने रोमनों का आधिपत्य स्वीकार कर यहूदी राज्य पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली। सदूसी यहूदी समुदाय के धनी अभिजात थे और जमीन तथा व्यापार पर नियंत्रण के चलते अर्थव्यवस्था पर उनका वर्चस्व था। जब ईसा मसीह फलस्तीन में धर्मोपदेश दे रहे थे तो यही समूह सत्ता में था।

यहूदियों का एक और संप्रदाय फारसी था। आरंभिक प्रिंसीपेट में उसके अनुयायियों की संख्या बहुत थी। मैकेबियाई विद्रोह के बाद यहूदी राज्य जो रूप ले रहा था, फारसी उसके आलोचक थे। उन्होंने यरुशलम के धार्मिक नेताओं पर भ्रष्टाचार में लिप्त होने और सच्ची यहूदियत के लक्ष्यों से धोखा करने का आरोप लगाया। लेकिन कुछ अन्य संप्रदायों के विपरीत उन्होंने यहूदी समुदाय की बस्तियों से अलग हो जाना पसंद नहीं किया। वे यरुशलम और उसके आसपास रहते थे और शहर के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का एक अनन्य हिस्सा थे। फारसियों के विचारों का असर आम जन पर पड़ा जो शासक वर्गों से दूर थे। फारसियों का मानना था कि यहूदी धर्मग्रंथों में पेश किए गए नियमों का शब्दश: पालन करके ही सच्चे अर्थों में धर्म पर चल सकते हैं। दूसरी तरफ सदूसियों की दलील थी कि फारसी जीवन के हरेक पहलू को नियमित करने के मामले में जरूरत से अधिक उत्साहित हैं और इसलिए उन्होंने सैकड़ों नए नियम गढ़ डाले हैं जिनका पवित्र ग्रंथों में कोई आधार नहीं है। एक लंबे काल में फारसियों ने मौजूदा सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप चलने की कोशिश की। धार्मिक मामलों में उनके जटिल कर्मकांड उन्हें सबसे जुदा बनाते थे। अंतत: फारसियों की धारणाएं सर्वाधिक प्रचलित हो गईं। जहां सदूसियों का धार्मिक जीवन यरुशलम के मंदिर के इर्द-गिर्द घूमता था, फारसियों ने

धार्मिक सभाओं के आयोजन के लिए स्थानीय सिनागोगों के विकास को बढ़ावा दिया। ये वे यहूदी थे जिनके साथ ईसा मसीह के अनुयायियों का लंबे समय तक टकराव चला।

दूसरे यहूदी संप्रदाय भी थे जो किसी भी तरह के समझौते के खिलाफ थे। उनमें वे यहूदी थे जो अतिनैतिकतावादी यहूदियत का प्रचार करते थे। सबसे प्रमुख अतिनैतिकतावादी संप्रदाय एसीनों का था जो सदूसी और फारसी दोनों का विरोध करता था। एसीन पंथ के लोगों ने सादगी का प्रचार किया। उनकी जीवन शैली मितव्ययी थी। उन्होंने अपनी चीजों को आपस में बांटने और नेक तथा सदाचारी होने पर जोर दिया। तपस्या और ब्रह्मचर्य के उसूलों के तहत उन्होंने ग्रामीण और शहरी समाज से अलग रहना पसंद किया। वे आम तौर पर अगल-बगल के पहाड़ी इलाकों में गुफाओं में रहते थे। यहां उन्होंने अपने पृथक समुदाय बना लिए थे। जैसा कि हम देखेंगे, ईसाइयत और एसीनों के धर्म सिद्धांतों के बीच अनेक समानताएं हैं।

फलस्तीन पर रोमन शासन और रोमनों के बढ़ते कर एवं शुल्कों ने यहूदियों के बीच के अंतर्विरोध को गहरा दिया। जेलट जैसे धर्मांध कुछ संप्रदाय थे जिनका कहना था कि रोमन राज्य के खिलाफ तब तक एक सतत सशस्त्र संघर्ष चलाया जाए, जब तक यहूदी राज्य आजाद न हो जाए। फिर भी, कभी-कभार तनाव होने के बावजूद प्रिंसीपेट के प्रारंभिक काल तक ज्यादातर यहूदी रोमन शासन के साथ सामंजस्य बना चुके थे। उनमें फलस्तीन और साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में बसे यहूदी शामिल थे। यहूदियों और रोमन अधिकारियों के बीच विवाद का मुख्य कारण रोमन देवी-देवताओं को मानने या आधिकारिक रोमन पूजा में हिस्सा लेने से यहूदियों का इनकार था। एक काल खंड में रोमन राज्य ने यहूदियों के एकेश्वरवाद के लिए जगह बना दी। यहूदियों को एक ऐसा पृथक समुदाय मान लिया गया जिसकी अपनी प्रथाएं थीं।

ऐसे कुछ मौके आए जब रोमन राज्य ने यहूदियों के खिलाफ चौतरफा अभियान छेड़ दिया। ये ऐसे हालात में हुए जब रोमन अधिकारियों को रोमन राज्य के खिलाफ यहूदियों के संगठित प्रतिरोध संघर्ष छिड़ने का अंदेशा हुआ। फलस्तीन के यहूदियों और रोमनों के बीच सबसे जबर्दस्त हथियारबंद टकराव 66-70 ईसवी में हुआ। यह प्रथम यहूदी विद्रोह के नाम से जाना जाता है। वेस्पेशियन ने इस विद्रोह को कुचल डाला (अध्याय नौ)। वेस्पेशियन के बेटे टाइटस ने यरुशलम पर कब्जा कर लिया और यहूदियों के पवित्र मंदिर को नष्ट कर दिया। 70 ईसवी के बाद एक स्वतंत्र राजनीतिक निकाय के रूप में अर्ध-स्वायत्त यहूदी राज्य का अस्तित्व खत्म हो गया। उसके बाद यहूदी साम्राज्य में राजनीतिक के बजाए प्राथमिक रूप से एक धार्मिक समुदाय थे। दूसरा उथल-पुथल 132-35 ईसवी का दूसरा यहूदी विद्रोह था। हैड्रियान

ने यरुशलम में रोमन उपनिवेश स्थापित करने का और प्रांत के प्रशासन के पुनर्गठन का प्रस्ताव किया था जिसने इस विद्रोह के लिए चिंगारी का काम किया। विद्रोह मिस्र (अलेक्जैंड्रिया में यहूदियों की एक बड़ी आबादी थी) और अफ्रीका तक फैल गया। 135 ईसवी के बाद कुछ साल तक दोनों पक्ष एक-दूसरे को संदेह की निगाह से देखते रहे। एंटोनाइनस पायस के काल तक उनके बीच सामान्य संबंध स्थापित हो चुके थे। तीसरी सदी ईसवी में उत्पीड़न का कोई बड़ा मामला सामने नहीं आता। उसके बाद की सदी में ईसाइयत को रोमन राज्य का राजधर्म बना लेने के बाद यहूदी समुदायों के लिए हालात कठिन हो गए।

IV

हम लोग प्रिंसीपेट के प्रारंभ में फलस्तीन की ऐतिहासिक स्थितियों पर नजर डाल चुके हैं। इसी माहौल में यहां ईसाइयत का जन्म हुआ। ईसाइयत ईसा मसीह की शिक्षाओं पर आधारित है और वह आगस्टस तथा टाइबेरियस के शासनकाल में यहां रहे थे। ईसा मसीह का जन्म करीब 6 ईसापूर्व में यरुशलम के निकट बैथलेहम में एक साधारण परिवार में हुआ था। यहां यह स्पष्ट करना उचित होगा कि आमतौर पर सन् ईसवी की शुरुआत ईसा के जन्म से मानी जाती है। लेकिन ग्रहों की गति और ईसाई पंचांग में हुए संशोधनों के आधार पर हाल के अध्ययन यह इंगित करते हैं कि ईसा का जन्म करीब 6 ईसापूर्व में हुआ था।

उन्होंने अपनी जिंदगी के पहले 30 साल उत्तरी फलस्तीन में स्थित अपने गृह नगर नजरत में गुजारे। जब ईसा करीब 30 साल के हुए तो उन्होंने धर्मोपदेश देना शुरू कर दिया। शायद वह एसीनी जैसे अतिनैतिक संप्रदायों के धर्म सिद्धांतों से अवगत थे और उनकी कुछ धारणाओं से सहमत थे। परंपराओं के अनुसार, ईसा ने रेगिस्तान में चालीस दिन गुजारे। इस दौरान उन्होंने उपवास रखा और इबादत की। उसके बाद उन्होंने अपने ऊपर अवतरित ईश्वरीय संदेश का प्रचार-प्रसार शुरू किया।

ईसा ने एक नए युग के शुरू होने का संदेश दिया जो 'ईश्वर के राज्य' की स्थापना के बाद आएगा। तमाम बुराइयां खत्म हो जाएंगी और सिर्फ सच्चाई का दौर-दौरा होगा। इस राज्य में गरीबों को उनका उचित स्थान मिलेगा। ईसा ने लोगों से सदाचारी बनने और बुराई तथा गुनाह वाली चीजों से बचने को कहा। उन्होंने लोगों को बताया कि पूरे ब्रह्मांड का एक ईश्वर है जो सभी को प्यार करता है और जिसकी इबादत सबके लिए खुली है। हरेक उससे अपने पाप माफ करा सकता है। ईसा ने दूसरों के प्रति दया और करुणा जताने तथा जरूरतमंदों का खयाल रखने की शिक्षा दी। उनके उपदेश आम लोगों के दिलों को छूते थे।

ईसा मसीह का यह मिशन करीब तीन साल तक चला। उनकी शिक्षाओं का सारांश *सर्मन आन दि माउंट* में संकलित है। उसमें लोगों, खासकर दबे कुचले लोगों के प्रति प्यार और करुणा जताने की बात बार-बार उजागर की गई है। गरीब यहूदी इन विचारों की ओर तुरंत आकर्षित हुए। लेकिन जब ईसा यरुशलम पहुंचे तो उन्हें यहूदी अभिजातों के बढ़ते विरोध का सामना करना पड़ा। सदूसियों ने रोमन अधिकारियों पर जोर डाला कि वे उनके खिलाफ कार्रवाई करें। उस समय जुडीया के रोमन प्रांत का प्रशासक पोंटियस पाइलेट (करीब 25-36 ईसवी) था। पोंटियस पाइलेट के निर्देश पर राजद्रोह और विद्रोह के लिए लोगों को भड़काने के आरोप में मुकदमा चलाने के लिए ईसा को लाया गया। उन्हें सलीब पर चढ़ा कर मौत की सजा सुनाई गई। जब ईसा को सलीब पर चढ़ाया गया तो उनकी उम्र छत्तीस साल थी।

ईसा को सलीब पर चढ़ाए जाने के बाद यहूदी परिषदों ने उनके अनुयायियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई करनी शुरू की। वे ईसा की शिक्षाओं को मिलने वाली लोकप्रियता से शायद घबराए हुए थे। बहरहाल यह ध्यान में रखना चाहिए कि इन शिक्षाओं, अर्थात ईसाइयत का विरोध मुख्यत: उच्च वर्गीय यहूदियों और रूढ़िवादी पुजारियों ने ही किया था। दूसरी तरफ शुरू में ईसाइयत कबूल करने वालों में स्थानीय यहूदी और एसीन जैसे अतिनैतिक संप्रदाय शामिल थे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि एसीनों की मान्यताओं और ईसा की शिक्षाओं में ढेर सारी बातें समान हैं।

मृत सागर के निकट स्थित गुफाओं से 1940 के दशक के अंत में बड़ी संख्या में प्राचीन एसीनी दस्तावेज मिले। ये दस्तावेज *डेड सी स्क्रॉल* के नाम से जाने जाते हैं। *डेड सी स्क्रॉल* एक एसीनी समुदाय के पवित्र ग्रंथ हैं जो फलस्तीन के मृत सागर क्षेत्र की पहाड़ियों के बीच स्थित कुमरान की दुर्गम घाटी में रहा करता था। ये दस्तावेज ईसा मसीह के काल के हैं। इन्होंने ईसाई विचारधारा के निर्माण के चरण के संबंध में हमारी समझ को बिलकुल बदल दिया है। कुमरान समुदाय मानता था कि विश्व का अंत निकट है और एक नई व्यवस्था जल्द ही स्थापित होगी। ईश्वर के राज के आने का भी जिक्र था। उसके अनुसार तब तक के लिए दुनियादारी से हट जाना जरूरी है ताकि लोग गुनाहों से प्रदूषित नहीं हों। उनका विश्वास था कि ईश्वरीय हस्तक्षेप से जालिम रोमन राजाओं और उनके स्थानीय यहूदी सहयोगियों का शासन खत्म होगा। इन दस्तावेजों में 'नेकी के एक शिक्षक' की चर्चा है जो ईश्वर के राज्य में जाने में लोगों का नेतृत्व करेगा। ईश्वर लोगों को सच्चा रास्ता दिखाने के लिए एक मसीहा या मुक्तिदाता भेजेगा। मसीहा की परिकल्पना कोई नई नहीं थी क्योंकि यह प्राचीन यहूदी धार्मिक विचारों में दृढ़ता से जड़ जमाए था। यह संभव है कि कुछ एसीनियों ने ईसा को देवार्पित मसीहा समझा। हम निश्चित तौर पर नहीं कह सकते कि क्या ईसा ने खुद को कभी मसीहा के रूप में देखा या नहीं, लेकिन बाद में उनके

अनुयायियों ने उनको मसीहा माना। ईसा को *क्राइस्ट* का जो नाम दिया गया है वह एक यूनानी शब्द *क्रिस्टोस* से लिया गया है जिसका वही अर्थ होता है जो हिब्रू के *माशियाह* या मसीहा का है।

इसके साथ ही ईसा की शिक्षाओं में और बपतिस्मादाता जॉन के नाम से मशहूर एक-दूसरे प्रचारक में भी ढेर सारी समानताएं हैं जो उसी समय सक्रिय था। जॉन एसीनी परंपरा का एक लोकप्रिय धार्मिक नेता था। उसने समाज से खुद को अलग कर लेने के बजाए आम लोगों के बीच अपने विचारों का जोर-शोर से प्रचार-प्रसार किया। उसने लोगों से खुद को पवित्र कर दुनिया के खात्मे के लिए तैयार होने को कहा। उसने कहा कि जल्द ही स्थापित होने वाले ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाने के लिए आत्मानुशासन और स्व-नकार जरूरी है। सिर्फ सदाचारी ही उसमें जगह पाएगा। जॉन ने पवित्र होने के लिए जार्डन नदी में आनुष्ठानिक स्नान या बपतिस्मा (बपतिस्मा का शाब्दिक अर्थ डुबकी लगाना होता है) की वकालत की। वह स्वयं एक अति कठोर जीवन व्यतीत करता था, यहां तक भोजन भी नाममात्र का करता था। माना जाता है कि जॉन की शिक्षाओं ने ईसा को नजरेत से वहां आकर्षित किया था।

ईसा ने अपने पीछे अपने शिष्यों का एक छोटा समूह छोड़ा था जो उनकी शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए प्रतिबद्ध था। इस समूह का नेतृत्व साइमन पीटर (सेंट पीटर) कर रहा था जिसे ईसा ने अपना प्रमुख शिष्य या प्रचारक मनोनीत किया था। ये शिष्य शुरू में यरुशलम से थे। उन्होंने अनेक यहूदियों को ईसाई बनाया था। पीटर ने इटली समेत साम्राज्य के अन्य हिस्सों की यात्रा की। रोम में उसके इर्द-गिर्द ईसाइयों का एक छोटा सा समुदाय विकसित हुआ। नीरो के शासन काल में पीटर को मृत्यु दंड दे दिया गया। उसकी शहादत ईसाइयों के लिए एक शक्तिशाली धार्मिक प्रतीक बन गई। पीटर को पारंपरिक रूप से रोम का पहला बिशप माना जाता है और तमाम रोमन पोपों को उसका उत्तराधिकारी करार दिया जाता है।

शुरुआती ईसाइयत के विकास में पॉल (सेंट पॉल) का बहुत हाथ था। पॉल ने रोमन साम्राज्य में ईसाइयत को एक प्रमुख धर्म में बदल दिया। पॉल अनातोलिया के एक यहूदी परिवार से था। वह एक छोटा अधिकारी था और इस हैसियत से वह ईसाइयों के खिलाफ कार्रवाई शुरू करने में शामिल था। उसने करीब 37 ईसवी में ईसाइयत कबूल की। पॉल कभी ईसा के सीधे संपर्क में नहीं आया। उसके धर्मांतरण से ईसाइयत के इतिहास में जबर्दस्त बदलाव आया। पॉल ने शुरुआती ईसाई धर्म को एक संगठित स्वरूप दिया। उसे चर्च का वास्तविक जन्मदाता माना जा सकता है। पॉल ने ईसाइयत के प्रचार के लिए रोमन साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों की यात्रा की। करीब 45 ईसवी और उसके बाद उसने ईसाइयत के प्रचार के लिए साम्राज्य के

विभिन्न हिस्सों में मिशन भेजे। पॉल अध्ययनशील व्यक्ति था। उसे पश्चिम एशिया और रोमन साम्राज्य की धार्मिक मान्यताओं की जानकारी थी। वह अनेक भाषाओं का ज्ञाता था और खूब लिखा करता था। उसके लेखों में पत्रों की एक शृंखला शामिल है जिन्हें *इपिसल* (धर्मपुत्र) कहा जाता है। पॉल ने इन पत्रों में ईसा के जीवन और कृतियों को रेखांकित किया है। बाइबल के न्यू टेस्टामेंट का करीब आधा हिस्सा पॉल के *इपिसल* पर आधारित है। ईसा ने जो उपदेश दिए, पॉल ने उनकी व्याख्या करते हुए उन्हें स्पष्ट और व्यवस्थित किया। उसने साफ कहा कि ईसा मसीह देवार्पित मसीहा और मुक्तिदाता था जिसे ईश्वर ने मानवता के उद्धार के लिए भेजा। पॉल ने ईसाइयत को साम्राज्य के गैर-यहूदी निवासियों के लिए बोधगम्य बनाया और उसे सार्विक अपील दी। यहां याद रखना चाहिए कि शुरू में ईसाइयत ने ढेर सारी यहूदी धार्मिक शब्दावलियों का इस्तेमाल किया था जो उनसे अनभिज्ञ लोगों को समझ नहीं आती थी। पॉल ने पश्चिम एशिया के धर्मों के अनेक अनुष्ठान (मोमबत्ती जलाना, पवित्र पानी का इस्तेमाल, इत्यादि) अपनाया और उन्हें ईसाई प्रथा का हिस्सा बना दिया। करीब 64 ईसवी में पॉल को रोम में मृत्युदंड दे दिया गया।

शुरू में रोमन ईसाइयत और यहूदियत में फर्क नहीं कर सकते थे। ईसाइयों को यहूदियों के एक नए संप्रदाय के रूप में देखा गया था। बहरहाल, जहां मुख्यधारा के यहूदियों को अपने रीति-रिवाज के हिसाब से पूजा-अर्चना करने की आजादी थी, अधिकारी उनके विसम्मत संप्रदायों को अच्छी निगाह से नहीं देखते थे। उनका मानना था कि ये संप्रदाय मुश्किल खड़ी कर सकते हैं। इसलिए राज्य ने ईसाइयत और अतिनैतिकवादी यहूदी संप्रदायों के खिलाफ कार्रवाई करने में कोई हिचक नहीं दिखाई। इस काम में कभी-कभी फारसी और सदूसी जैसे यहूदी संप्रदाय भी उनकी मदद करते थे। उल्लेखनीय है कि शुरुआती ईसाई रोमन राज्य द्वारा यहूदी आबादी के आम उत्पीड़न का भी शिकार बनते थे।

यह बताया जा चुका है कि ईसाइयों के प्रति अधिकारियों के शंकालु रवैए का एक कारण निम्न वर्गों के बीच ईसाइयत की लोकप्रियता थी। साथ ही, चूंकि ईसाई एकेश्वरवादी थे, वे रोमन देवी-देवताओं की पूजा नहीं करते थे। वे राजधर्म से दूर एक पृथक समुदाय बने रहे। नीरो ने रोम के ईसाई समुदाय के खिलाफ बहुत सख्त कार्रवाई की। उसके दमन अभियान में पीटर और पॉल समेत अनेक लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि तब तक ईसाइयों और यहूदियों के बीच फर्क किया जाने लगा था। फिर भी ईसाई वेसपेसियन और टाइटस के यहूदी विरोधी अभियान (66-70 ईसवी) के शिकार हुए होंगे।

अगली आधी सदी तक ईसाइयों को कमोबेश तन्हा छोड़ दिया गया। दूसरी सदी की शुरुआत में ट्राजन ने निर्देश जारी किए कि ईसाइयों के खिलाफ कार्रवाई

नहीं की जाए। अगर उनके खिलाफ रोमन देवी-देवताओं की पूजा नहीं करने के विशेष आरोप लगाए जाते हैं तभी उन्हें सजा दी जाए। मारकस आरेलियस के शासनकाल में ईसाइयों और रोमनों के बीच के संबंध बिगड़ गए। साथ ही साम्राज्य के कुछ हिस्सों में स्थानीय ईसाइयों और गैर-ईसाइयों के बीच तनाव उत्पन्न हो गया। ऐसे साक्ष्य हैं जो दिखाते हैं कि मारकस आरेलियस के शासनकाल में ईसाइयों को गिरफ्तार किया गया और उन्हें मृत्युदंड दिया गया। यह कॉमोडस के दौर में चलता रहा। सेप्टिमियस सेवेरस के दौर में स्थिति बेहद खराब हो गई। सेप्टिमियस सेवेरेस ने पहली बार समूचे साम्राज्य में ईसाइयों के खिलाफ अभियान चलाया। धर्मांतरण की इजाजत नहीं थी। ईसाइयों के खिलाफ दंड और अन्य उपाय किए गए और अनेक को या तो मौत के घाट उतार दिया गया या फिर जेल में डाल दिया गया। यह नीति तीसरी सदी ईसवी के लगभग पूर्वार्ध तक चलती रही। करीब 250 ईसवी में यह नीति कुछ समय के लिए हटा दी गई। लेकिन दमन उत्पीड़न का सिलसिला एक दशक और चला। तत्पश्चात करीब 260 और 303 ईसवी के बीच रोमन शासकों ने ईसाइयों के प्रति ज्यादा उदार रुख अपनाया।

जब डायक्लीशन 284 ईसवी में सम्राट बना तो उसके शासनकाल के पहले दो दशकों में नीतियों में कोई उल्लेखनीय तब्दीली नहीं आई। लेकिन राजसिंहासन छोड़ने से तुरंत पहले उसने ईसाइयत को कुचलने के लिए एक हिंसक अभियान छेड़ा। सम्राट के कुछ सलाहकार लंबे समय से इसकी वकालत कर रहे थे। हालांकि वह उनसे सहमत था, उसने नई नीति का क्रियान्वयन लंबित रखा था क्योंकि वह अन्य कई समस्याओं में उलझा था। उसने 303 ईसवी में अभियान छेड़ा जो 'ईसाइयों के महान उत्पीड़न' के नाम से जाना जाता है। डायक्लीशन राज्य को सुदृढ़ करने की अपनी समग्र योजना के तहत रोम की पारंपरिक धार्मिक आस्थाओं का प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था। उसका हुक्म था कि लोग आधिकारिक राजधर्म का सख्ती से पालन करें। ईसाई उन समुदायों में प्रमुख थे जिन्होंने रोमन देवताओं को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। वे अब डायक्लीशन के धार्मिक उत्पीड़न के मुख्य निशाना बने। चर्च और ईसाइयों के पवित्र ग्रंथ नष्ट कर दिए गए; ईसाइयों की सभा करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया, ईसाई सरकारी अधिकारियों को उनके पदों से हटा दिया गया और इस धर्म पर चलने वाले सभी लोगों को मृत्यु दंड या कैद की सजा की धमकी दी गई। पूर्वी प्रांतों और उत्तरी अफ्रीका में ईसाइयों की मुख्य ताकत थी। इन क्षेत्रों में उत्पीड़न ज्यादा था। कुल मिलाकर करीब 3000 लोगों के मारे जाने की जानकारी है। अनेक लोगों को गिरफ्तार किया गया और यातनाएं दी गईं।

डाइक्लीशन के उत्तराधिकारी 313 ईसवी तक इस नीति पर चलते रहे। यह तारीख ईसाइयत के इतिहास में एक प्रमुख मोड़ है। 313 ईसवी में कांस्टेनटाइन

महान ने एक फरमान जारी किया जिसे सहिष्णुता फरमान (या मिलान का फरमान) कहा जाता है। इसने आधिकारिक तौर पर उत्पीड़न रोक दी। शासन ने वस्तुत: यह महसूस नहीं किया था कि ईसाइयत को कुचलने में उसे इतने तीखे प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा। कुछ भी हो, तीसरी सदी के अंत में इस धर्म के अनुयायियों की संख्या इतनी ज्यादा हो चुकी थी कि उनका पूरी तरह से सफाया करना वस्तुत: असंभव हो चुका था। पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका में शासक वर्ग का एक उल्लेखनीय हिस्सा ईसाई बन चुका था। ईसाई विरोधी नीति जारी रहने से उत्तरी प्रांतों में जबर्दस्त अस्थिरता आ सकती थी जिससे कांस्टेनटाइन बचना चाहता था। तीसरी सदी ईसवी में ईसाइयत मिस्र और उत्तरी अफ्रीका के ग्रामीण अंचलों में फैल गई। यह आकलन किया गया है कि 300 ईसवी तक मिस्र की आधी आबादी ईसाई हो चुकी थी। अलेक्जैंड्रिया ईसाइयत की धर्मशिक्षा का प्रमुख केंद्र था। ईसाइयत के सर्वप्रमुख और अग्रणी धर्मवेत्ता पूरब के थे। शुरुआती ईसाई साहित्य यूनानी या अरामी में लिखा गया।

पूर्वी उपासना पद्धतियों की बढ़ती लोकप्रियता ने, जिनकी रोमन शासक वर्ग में भी अच्छी पैठ थी, अंतत: रोमन क्षेत्रों में भी ईसाइयत के प्रसार के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यह खासतौर पर साम्राज्य पूर्वी हिस्से के लिए सच है जहां ईसाइयत की अपनी जड़ें थी। कांस्टेनटाइन का सहिष्णुता फरमान और रोमन साम्राज्य की राजधानी पूर्व (कांस्टेनटिनोपल) ले जाने तथा पश्चिम में रोमन साम्राज्य के विखंडन के बाद पूर्व के लोगों में जनाधार की तलाश का समय एक ही है।

कांस्टेनटाइन ने अपनी मृत्यु (337 ईसवी) से कुछ ही पहले निजी तौर पर ईसाइयत कबूल कर ली थी। उसनें पहले ही ईसाइयत को रोमन साम्राज्य का राजधर्म बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। जैसे ही नए धर्म ने रोमन देवी-देवताओं की जगह ली, रोम के पारंपरिक धर्म का तेजी से पतन हो गया। राजधर्म के रूप में ईसाइयत ने बड़ी तेजी से विकास किया। चौथी सदी ईसवी में ईसाइयत लातीनी-भाषी पश्चिमी प्रांतों का सर्वप्रमुख धर्म बन गई।

तीसरी सदी ईसवी की शुरुआत तक ईसाई चर्च एक विस्तृत बुनियादी ढांचा ग्रहण कर चुका था। ईसाई धर्मावलंबियों की धार्मिक सभाएं ज्यादातर इन्हीं चर्चों में होती थीं। चर्च एक धार्मिक और सामाजिक केंद्र था जिसके इर्द-गिर्द ईसाई समुदाय संगठित थे। पुरोहित चर्च के अनुष्ठानों को अधिकाधिक नियंत्रित करते थे। जैसे-जैसे पुरोहिताई कार्य विशेषीकृत होते गए, पुरोहितों और समुदाय के आम जन के बीच की सामाजिक दूरी बढ़ती गई। दूसरी तरफ दान, सामुदायिक सेवा और गरीबों तथा वृद्धों की देख-रेख ने समुदाय की एकजुटता बनाए रखी। ईसाई, खासकर पश्चिम

प्रांतों के ईसाई, रोम के बिशप की सर्वोच्चता स्वीकार कर चुके थे। करीब 200 ईसवी में रोम में करीब 10000 ईसाई थे। करीब 300 ईसवी में यह संख्या 40000 तक चली गई और कांस्टेनटाइन के काल में 80000 पहुंच गई। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि पांचवीं सदी ईसवी में भी ईसाई आबादी का बड़ा हिस्सा पूर्व में रहता था।

V

तीसरी सदी ईसवी के उत्तरार्द्ध और चौथी सदी ईसवी के शुरू में ईसाइयत को एक-दूसरे धार्मिक आंदोलन मानीवाद से प्रतिद्वंद्विता करनी पड़ी। कुछ समय तक मानीवाद रोमन साम्राज्य में ईसाइयत का मुख्य प्रतिद्वंद्वी रहा। मानीवाद का उदय तीसरी सदी ईसवी में सासानी साम्राज्य में हुआ था। इसकी स्थापना मानी नामक बेबीलोन के एक व्यक्ति ने की थी। मानी का जन्म करीब 216 ईसवी में हुआ था। उसका पालन ईसाई समुदाय में हुआ था और वह ईसाइयत से बहुत प्रभावित था। मानी ने सासानी साम्राज्य (मेसोपोटामिया के ज्यादातर हिस्सों के साथ बेबीलोन पर सासानियों का राज था) में रहकर ज़रतुश्त धर्म के विचारों को आत्मसात किया था। वह बुद्ध की शिक्षाओं का भी बेहद सम्मान करता था। उसने एक नई धार्मिक विचारधारा विकसित की जो ईसाइयत, ज़रतुश्त धर्म और ईरानी द्वैतवाद पर आधारित थी। उसके विचारों में मिश्र धर्म की झलक है। मानीवाद का सार ब्रह्मांड की एक द्वैतवादी अवधारणा है। उसने प्रकाश और अंधकार की शक्तियों के महासंग्राम के संदर्भ में चिंतन किया। प्रकाश की शक्तियां अंततः जीतेंगी। इस बीच हमें बुराई को परास्त करने के लिए नेकी के पक्ष में रहना होगा। मानीवाद की प्रथाएं आत्ममुक्ति और पवित्रीकरण के निर्धारित अनुष्ठानों पर आधारित थी। उनमें उपवास, पाप-स्वीकृति, निवृत्ति और आत्म-नकार शामिल थे। आर्नल्ड टॉयनबी ने मानीवाद को 'ईसाई लबादा में ज़रतुश्त धर्म' की संज्ञा दी है।

मानी ने पहले प्राचीन सासानी राजधानी टेसीफोन में उपदेश दिए। टेसीफोन बेबीलोन से लगे दजला के तट पर स्थित था। उसने खुद को एक नए विश्व धर्म का संस्थापक घोषित किया। उसका कहना था कि उसका धर्म अंततः पूरी दुनिया को अपने दायरे में समेट लेगा। इसके लिए उसने अपने धर्म सिद्धांत के प्रचार के लिए मिशनरी भेजे। उसने पुरोहितों और मठ व्यवस्था से एक सुव्यवस्थित संगठन बनाया। मानीवादियों के अपने चर्च थे। मानी की शिक्षाओं को ईरान, मेसोपोटामिया और सीरिया में व्यापक समर्थन मिला। इसने अर्दशीर के पुत्र एवं सासानी सम्राट शापुर प्रथम के साथ गहरे संबंध बना लिए थे।

पारंपरिक ज़रतुश्ती पुरोहितों को मानीवाद के उदय से खतरा महसूस हुआ। उन्होंने

नए आंदोलन का जोरदार विरोध किया । शापुर प्रथम के निधन के बाद ज़रतुश्त धर्म के मुख्य पुरोहित कार्तिर ने मानी के खिलाफ आक्रामक अभियान चलाया। सासानी शासन ने मानी को गिरफ्तार कर लिया। उसे करीब 273 ईसवी में मृत्युदंड दे दिया गया। उसके अनुयायियों ने धर्म प्रचार जारी रखा। तीसरी सदी ईसवी के अंत तक मानीवाद लगभग एक विश्व धर्म बन चुका था और उसके चर्च एवं अनुयायी यूरोप, उत्तर अफ्रीका, पश्चिम एशिया, मध्य एशिया और चीन में फैले थे। लेकिन जब ज़रतुश्त धर्म सासानी साम्राज्य का राजधर्म बन गया और रोमन राज्य ने ईसाइयत को अपना लिया तो मानीवाद के पास सरकारी संरक्षण की कोई उम्मीद नहीं रही। चौथी सदी ईसवी के दौरान इस आंदोलन में ह्रास आने लगा।

जब ईसाइयत रोमन साम्राज्य का राजधर्म बनी तो उसे वजूद में आए तीन सदियां पूरी हो चुकी थी। इस दौरान उसमें अनेक विचारधारात्मक मतभेद उभर आए। उनमें से कुछ विवादों ने ईसाइयों को संप्रदायों में बांट दिया था। ईसाई चर्च में पहला विवाद इस बात पर था कि क्या ईसा मसीह एक इनसान थे या उन्हें देवता माना जाए। अलेक्जैंड्रिया के एक ईसाई विद्वान एरियस (मृत्यु 336 ईसवी) ने बड़ी जोरदार दलीलों के साथ कहा था कि ईसा कोई देवता नहीं थे बल्कि मानव थे। एरियस के वाद को एरियसवाद कहते हैं। अनेक धर्मशास्त्रियों ने इसके विपरीत विचार पेश किए। उन्होंने इस पर जोर दिया कि ईसा कोई इनसान नहीं थे बल्कि खुद ईश्वर थे। उन्हें परमेश्वर से अलग नहीं किया जा सकता है। अलेक्जैंड्रिया का ही धर्मशास्त्री एथेनैसियस ईसा की इस अवधारणा का प्रणेता था। इस बहस ने इतने गंभीर टकराव का रूप ले लिया कि कांस्टेनटाइन को इस मामले को हल करने के लिए ईसाई नेताओं की परिषद बुलानी पड़ी। काउंसिल आफ नाइसीया के नाम से मशहूर यह परिषद 315 ईसवी में हुई। इस परिषद में साम्राज्य भर से पुरोहित शामिल हुए और सम्राट खुद भी शामिल हुआ। परिषद ने एरियसवाद की भर्त्सना की। उसके बाद चर्च में इस विचार को प्रभुत्व मिला कि ईसा परमेश्वर के पुत्र थे और उसी पदार्थ के बने हैं जिसका परमेश्वर है। नाइसीया की यह परिषद ईसाइयत के इतिहास की प्रथम प्रमुख सभा थी। कांस्टेनटाइन ने परिषद बुलाकर और उसमें एरियन विवाद को पेश कर साम्राज्य के लिए ईसाइयत की एक समरूप आधिकारिक व्याख्या पाने की कोशिश की। इसमें वह बहुत हद तक कामयाब भी रहा।

आधिकारिक स्तर पर एरियसवाद खारिज कर दिया गया। लेकिन वह खत्म नहीं हुआ। पश्चिम एशिया के हिस्सों में इस मत के मानने वालों की बड़ी संख्या थी। पश्चिमी यूरोप में चौथी सदी के अंतिम वर्षों में एरियसवाद को उस समय फलने-फूलने का मौका मिला जब कुछ जर्मनिक कबीलों ने ईसाइयत कबूल की और एरियसवाद को माना। विसिगॉथों के शासनकाल में एरियसवाद स्पेन का आधिकारिक

धर्ममत बना। करीब दो सदियों तक एरियसवाद स्पेन में और पश्चिम यूरोप के कुछ हिस्सों में फलता-फूलता रहा। लेकिन छठी सदी ईसवी में विसिगॉथ कैथोलिक अर्थात रूढ़िवादी विचार के पैरोकार बन गए जिसे नाइसीया की परिषद में बुलंद किया गया था।

पांचवीं सदी ईसवी में पश्चिमी यूरोप के जर्मनिक राज्यों ने ईसाइयत को मुख्यत: उसके कैथोलिक रूप के साथ कबूल कर लिया। पश्चिमी ईसाइयत को जर्मनिक कबीलों के ईसाई बनने से और बल मिला। जब रोमन साम्राज्य खत्म हुआ तो यूरोपवासियों के जबर्दस्त बहुमत ने ईसाइयत कबूल कर लिया। सातवीं सदी में इसलाम के उदय से पहले तक ईसाइयत पूर्वी प्रांतों, मिस्र और उत्तरी अफ्रीका का भी मुख्य धर्म थी।

अतिरिक्त अध्ययन के लिए

सामान्य

पेरी एंडरसन, *पैसेज फ्रॉम एंटीक्विटी टु फ्युडलिज्म,* लंदन, 1978.

जॉन बोर्डमैन इत्यादि (सं.), *ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ दि क्लासिकल वर्ल्ड,* ऑक्सफोर्ड, 1986.

हेनरी सी. बोरेन, *दि एनशिएंट वर्ल्ड : ऐन हिस्टारिकल पर्सपेक्टिव,* दूसरा संस्करण, एंगलबुड क्लिफ्स, न्यूजर्सी, 1986.

जे ब्रोनाउस्की, *दि एसेन्ट आफ मैन*, लंदन, 1973.

वी. गोर्डन चाइल्ड, *व्हाट हैपेंड इन हिस्ट्री,* हारमोंड्सवर्थ, 1942.

ब्रायन फैगान, *पीपुल आफ दि अर्थ : एन इंट्रोडक्शन टु वर्ल्ड प्री हिस्ट्री,* छठा संस्करण, इलिनाय, 1989.

यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड I-III, लंदन, 1994-96.

मानव क्रमविकास

बुनियादी

वी. गोर्डन चाइल्ड, *व्हाट हैपेंड इन हिस्ट्री,* हारमोंड्सवर्थ, 1942.

मॉरिस डॉमास, *ए हिस्ट्री आफ टेक्नोलोजी एंड इन्नोवेशन,* खंड 1, न्यूयार्क, 1969.

ब्रायन फैगान, *पीपुल आफ दि अर्थ : ऐन इंट्रोडक्शन टु वर्ल्ड प्रीहिस्टी,* छठा संस्करण, इलिनाय, 1989.

जनरल एंथ्रोपोलोजी, दूसरा संस्करण, न्यूयार्क, 1975.

रिचर्ड लीके, *दि ऑरिजिन आफ ह्यूमन काइंड,* लंदन, 1996.

यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड 1 : *प्री हिस्टी एंड दि बिगिनिंग्स आफ सिविलाइजेशन,* संपादक एस.जे. दिलाएत, लंदन, 1994.

उच्चतर

डब्ल्यू. ई. ले ग्रोस क्लार्क, *दि फॉसिल एविडेंस फॉर ह्यूमन इवोल्यूशन, शिकागो,* 1985.

रिचर्ड डॉकिंस, *दि ब्लाइंड वाचमेकर, हारमोंड्सवर्थ,* 1991.

पुरापाषाण युग

बुनियादी

वी. गोर्डन चाइल्ड, *व्हाट हैपेंड इन हिस्ट्री,* हारमोंड्सवर्थ, 1942.

यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड 1 : *प्री हिस्ट्री एंड दि विगिनिंग्स आफ सिविलाइजेशन,* संपादक एस.जे. दिलाएत, लंदन, 1994.

ब्रायन फैगान, *पीपुल आफ दि अर्थ : ऐन इंट्रोडक्शन टु वर्ड प्री हिस्ट्री,* छठा संस्करण, इलिनायस, 1989.

रिचर्ड लीके, *दि ऑरिजिन ऑफ ह्यूमन काइंड, लंदन,* 1996.,

ग्राहम क्लार्क, *वर्ल्ड प्री हिस्ट्री इन न्यू पर्सपेक्टिव,* तीसरा संस्करण, कैंब्रिज, 1907.

उच्चतर

सी.एमिलियानी, *प्लैनेट अर्थ,* कैंब्रिज, 1995.

पीटर उक्को एवं ए रोजेफेल्ड, *पेलियोनिथिक केवल आर्ट,* लंदन, 1977.

नवपाषाण युग

बुनियादी

वी. गोर्डन चाइल्ड, *व्हाट हैपेंड इन हिस्ट्री,* हारमोंसड्सवर्थ, 1992.

यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड 1 : *प्रीहिस्ट्री एंड दि बिगिनिंग्स आफ सिविलाइजेन,* संपादक एस.जे. दिलाएत, लंदन, 1994.

ब्रायन फैगान, *पीपुल आफ दि अर्थ : ऐन इंट्रोडक्शन टु वर्ल्ड प्री हिस्ट्री,* छठा संस्करण, इलिनायस, 1989.

आर. वेंक, *पैटर्न्स इन प्री हिस्ट्री,* दूसरा संस्करण, आक्सफोर्ड, 1984.

ग्राहम क्लार्क, *वर्ल्ड प्री हिस्ट्री इन न्यू पर्सपेक्टिव,* तीसरा संस्करण, कैंब्रिज, 1997.

उच्चतर

लेविस बिनफोर्ड, 'पोस्ट-प्लीस्टोसीन एडॉप्टेशंस', *न्यू पर्सपेक्टिव्ज इन आर्कैयोलोजी*, संपादक, एल.आर. एवं एस.आर. बिनफोर्ड, शिकागो, 1968.

एम.एन. कोहेन, *दि फूड क्राइसिस इन प्री हिस्ट्री : ओवरपापुलेशन एंड दि औरिजिंस आफ एग्रीकल्चर,* न्यू हैवेन, 1977.

स्टुअर्ट स्टुएवर, *प्रीहिस्टोरिक एग्रीकल्चर,* न्यूयार्क, 1971.

सभ्यता का प्रारंभ और कांस्ययुगीन मेसोपोटामिया

बुनियादी

वी. गोर्डन चाइल्ड, *व्हाट हैपेंड इन हिस्ट्री,* हारमोंड्सवर्थ, 1942.

ब्रायन फैगान, *पीपुल्स आफ दि अर्थ : एन इंट्रोडक्शन टु वर्ल्ड प्री हिस्टी,* छठा संस्करण, इलिनाय, 1989.

जे. ओरेज, *बेबीलोन,* लंदन, 1979.

जे.एन. पोस्टगेट, *अर्ली मेसोपोटामिया,* लंदन, 1992.

जार्ज राउक्स, *एनशिएंट इराक,* तीसरा संस्करण, हारमोंड्सवर्थ, 1992.

यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ मैनकाइंड,* खंड 1, *प्री हिस्ट्री एंड दि बिगिनिंगस आफ सिबिलाईजेशन,* संपादक जे. हॉर्कस एवं एल. वुली, लंदन, 1963.

यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड II : *फ्रॉम थर्ड मिलेनियम टु सेवेंथ सेंच्युरी बी सी,* संपादक : ए.एच. दानी एवं जे.पी.मोहन, लंदन, 1996.

उच्चतर

गेर्डा लर्नर, *दि क्रिएशन आफ पैट्रियार्की,* न्यूयार्क, 1986.

प्रारंभिक मिस्री सभ्यता

बुनियादी

ब्रायन फैगान, *पीपुल्स आफ दि अर्थ : ऐन इंट्रोडक्शन टु वर्ल्ड प्री हिस्ट्री,* छठा संस्करण, इलिनाय, 1989.
टी.जी.एच. जेम्स, *एन इंट्रोडक्शन टु एनशिएंट इजिप्ट,* लंदन, 1979.
ब्रूस ट्रिगर इत्यादि, *एनशिएंट इजिप्ट : ए सोशल हिस्ट्री,* कैंब्रिज, 1893.
यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड I : *प्री हिस्ट्री एंड दि बिगिनिंग्स आफ सिविलाइजेशन,* संपादक एस.जे. दिलाएत, लंदन, 1994.
यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड II. *फ्रॉम थर्ड मिलेनियम टु सेवेंथ सेंचुरी बी सी,* संपादक ए.एच. दानी और जे.पी. मोहन, लंदन, 1996.
जे. बोट्टेरो, ई कैसीन एवं जे. वरकाउटर (संपादक), *दि नियर ईस्ट : दि अर्ली सिविलाइजेशंस,* न्यूयार्क, 1967.

उच्चतर

आई.ई.एस. एडवर्ड्स, *दि पीरामिड्स आफ इजिप्ट,* हारमोंड्सवर्थ, 1961.
ए. मोरेट, *दि नाइन एंड इजिप्शियन सिविलाइजेशन,* लंदन, 1927.

कांस्य युग से लौह युग : अनातोलिया और यूनान

बुनियादी

जॉन बोर्डमैन इत्यादि (संपादक), *ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ दि क्लासिकल वर्ल्ड,* ऑक्सफोर्ड, 1986.
ब्रायन फैगान, *पीपुल आफ दि अर्थ : ऐन इंट्रोडक्शन टु वर्ल्ड प्री हिस्ट्री,* छठा संस्करण, इलिनाय, 1989.
यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड 1, *प्री हिस्ट्री एंड दि बिगिनिंग्स आफ सिविलाइजेशन,* संपादक एस.जे. दिलाएत, लंदन, 1994.
यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड II, *फ्रॉम थर्ड मिलेनियम टु सेवेंथ सेंच्यूरी बी सी,* संपादक ए.एच. दाली एवं जे.पी. मोहेन, लंदन, 1996.

उच्चतर

एम.आई. फिनले, *दि वर्ल्ड आफ ऑडिसियस,* दूसरा संशोधित संस्करण, हारमोंड्सवर्थ, 1979.
औ.आर. गुर्नी, *दि हिट्टाइट्स,* हारमोंड्सवर्थ, 1952.
गेर्डा लर्नर, *दि क्रिएशन आफ पैट्रियार्की,* न्यूयार्क, 1986.

पुराकालीन और क्लासिकी यूनान

बुनियादी

पेरी एंडरसन, *पैसेजेज फ्रॉम एंटीक्विटी टु फ्युडलिज्म, लंदन,* 1978.
एंटनी एंड्र्यूज, *ग्रीक सोसाइटी,* हामोंड्सवर्थ, 1991.
जॉन बोर्डमैन इत्यादि (संपादक), *ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ दि क्लासिकल वर्ल्ड,* ऑक्सफोर्ड, 1986.
एम.आई. फिनले, *दि एनशिएंट ग्रीक्स,* हारमोंड्सवर्थ, 1963.

उच्चतर

जी. ग्लोट्स, *दि ग्रीक सिटी एंड इट्स इंस्टीट्यूशंस,* लंदन, 1969.
डब्ल्यू. डब्ल्यू. टार्न, *हेलेनिस्टिक सिविलाइजेशन,* न्यूयार्क, 1952.
जार्ज थामसन, *स्टडीज इन एनशिएंट ग्रीक सोसाइटी : दि फसर्ट फिलॉस्फर्स,* लंदन, 1972 (विशेषकर खंडIV).
ई.एम. वुड, *पेजेंट-सिटीजन एंड स्लेव : दि फाउंडेशंस आफ एथेनियन डेमोक्रेसी,* लंदन, 1988.

प्राचीन रोम

बुनियादी

पेरी एंडरसन, *पैसेजेज फ्रॉम एंटीक्विटी टु फ्युडलिज्म,* लंदन 1978.
जॉन बोर्डमैन इत्यादि (संपादक), *ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ दि क्लासिकल वर्ल्ड,* ऑक्सफोर्ड, 1986.
डी. डूडले, *रोमन सोसाइटी,* हारमोंड्सवर्थ.
यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड III, *फ्रॉम सेवेंथ सेंच्युरी बी सी टु सेवेंथ सेंच्यूरी ए डी,* संपादक जोआकिम हरमैन और एरिक जुर्कर, लंदन, 1996.

उच्चतर

पी.ए. ब्रुंट, *सोशल कनफ्लिक्ट्स इन दि रोमन रिपब्लिक,* लंदन, 1971.
एम.आई. फिनले, *दि एनशिएंट इकोनोमी,* दूसरा संस्करण, हारमोंड्सवर्थ 1992.
लियोन होमो, *रोमन पॉलिटिकल इकोनॉमी : फ्रॉम सिटी टु स्टेट,* लंदन, 1962.
राबर्ट टरकन, *दि कल्ट्स आफ दि रोमन एंपायर,* दूसरा संस्करण, ऑक्सफोर्ड, 1996.

अरब, इसलाम और उम्मावी तथा पूर्व अब्बासियों के तहत पश्चिम एशिया, पूर्व मध्यकालीन पश्चिम एशिया

बुनियादी

जे.ए. बोआयल (सं.) *दि कैंब्रिज हिस्ट्री आफ ईरान,* खंड V : *दि सल्जूक एंड मंगोल पीरियड्स,* कैंब्रिज, 1968.
एल्बर्ट हो उरानी, *ए हिस्ट्री आफ दि अरब पीपुल्स*, लंदन, 1991.
मैक्सिम रोडिंसन, *मोहम्मद,* लंदन, 1971.
यूनेस्को, *हिस्ट्री आफ ह्यूमैनिटी,* खंड III : *फ्रॉम सेवेंथ सेंच्यूरी बी.सी टु सेवेंट सेंच्यूरी ए डी,* संपादक जोअकिम हरमैन और ऐरिक जुर्कर, लंदन, 1996.

उच्चतर

डब्ल्यू.एम. वाट, *मुहम्मद एट मेक्का*, आक्सफोर्ड, 1953.
एम.जी.एस. हाजसन, *दि वेंचर आफ इसलाम,* खंड I, शिकागो, 1974.
पी.एम. होल्ट इत्यादि (संपादक), *दि कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इसलाम,* खंड I : *दि सेंट्रल इसलामिक लैंड्स,* कैंब्रिज, 1970.

मध्यकालीन यूरोप

बुनियादी

पेरी एंडरसन, *पैसेजेज फ्रॉम एंटीक्विटी टु फ्युडलिज्म,* लंदन, 1978.

टी.एच. एस्टोन एवं सी.एच.ई. फिलपिन (संपादक), *ब्रेनर डिबेट : एग्रेरियन क्लास स्ट्रक्चर एंड इकोनोमिक डेवलपमेंट इन प्रीइंडस्टियल यूरोप,* कैंब्रिज, 1987.

मार्क ब्लॉख, *फ्युडल सोसाइटी,* खंड I, : *दि ग्रोथ आफ टाइज ऑफ डिपेंडेंस,* दूसरा संस्करण, लंदन, 1992 (1982 पुन: प्रकाशन).

कार्लो एम. सिपोला (संपादक), *दि फॉनटाना इकोनोमिक हिस्ट्री आफ यूरोप,* खंड I : *दि मिडल एजेज,* ग्लासगो, 1972.

उच्चतर

पियरे डाक्स, *मेडिएवल स्लेवरी एंड लिबरेशन,* लंदन, 1982.

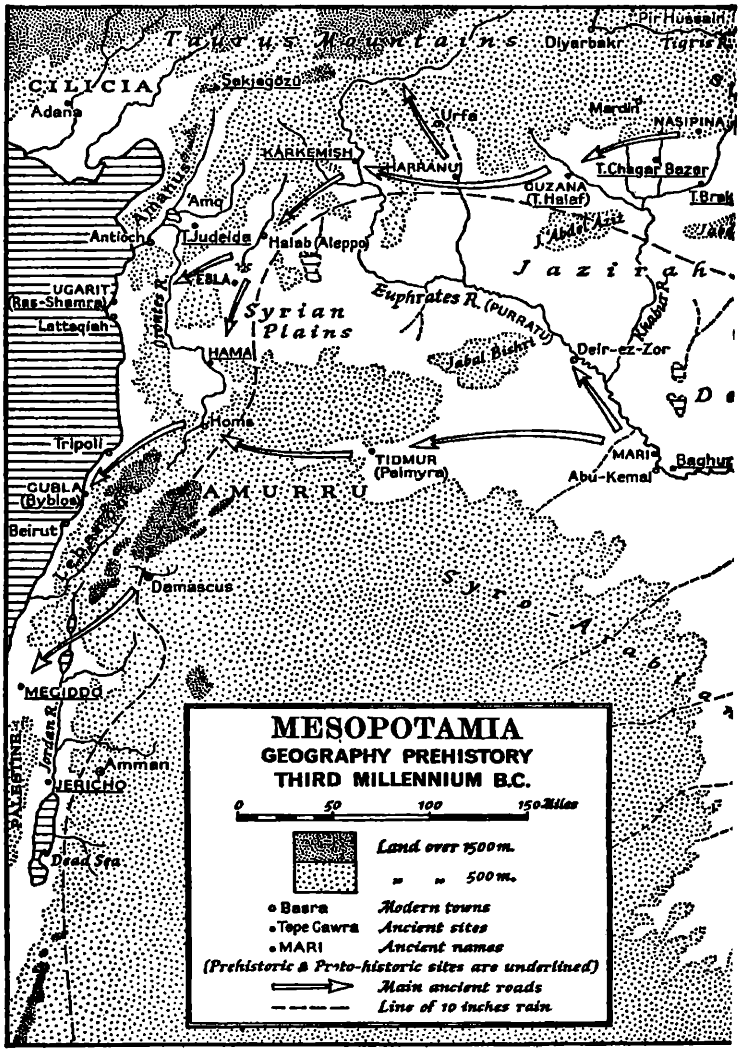
हेनरी पिरेने, *मोहम्मद एंड शार्लमेन,* न्यूयार्क, 1939.

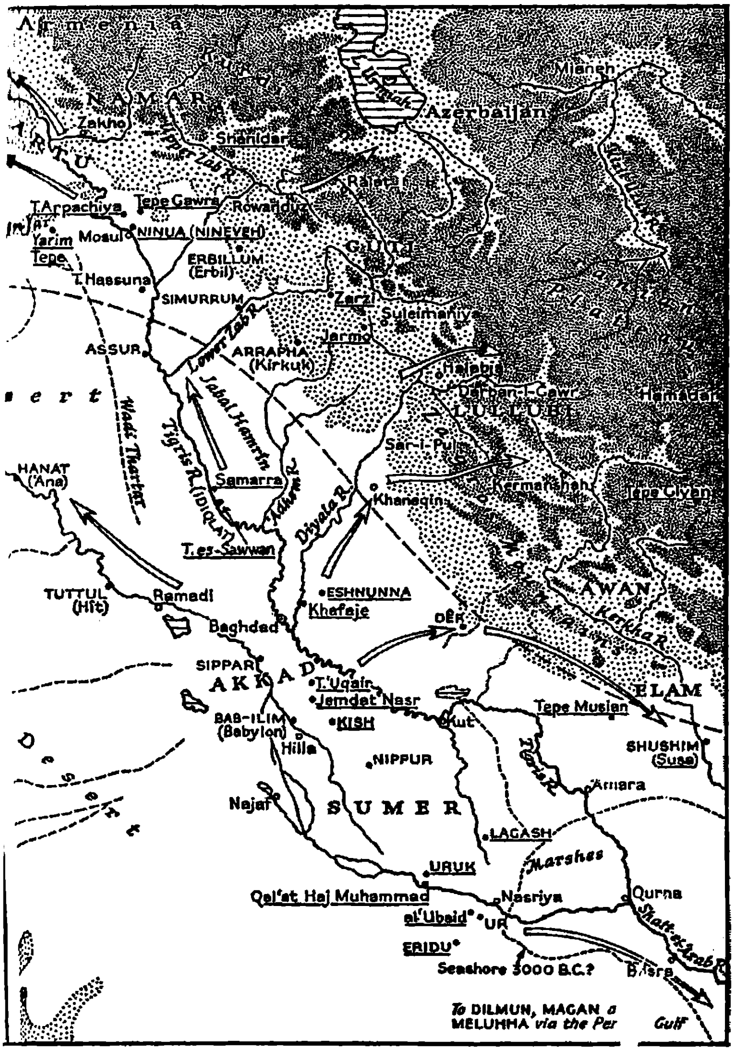
लिन व्हाइट जूनियर, *मेडिएवल टेक्नोलोजी एंड सोशल चेंज, ऑक्सफोर्ड,* 1962.

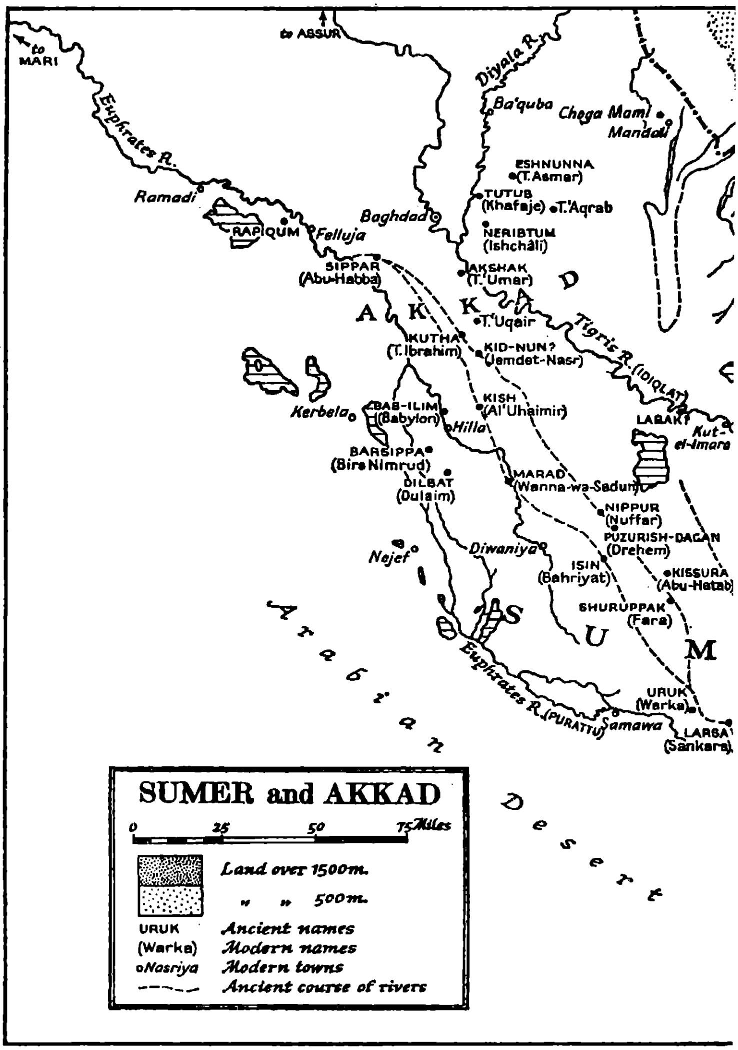
अनुक्रमणिका

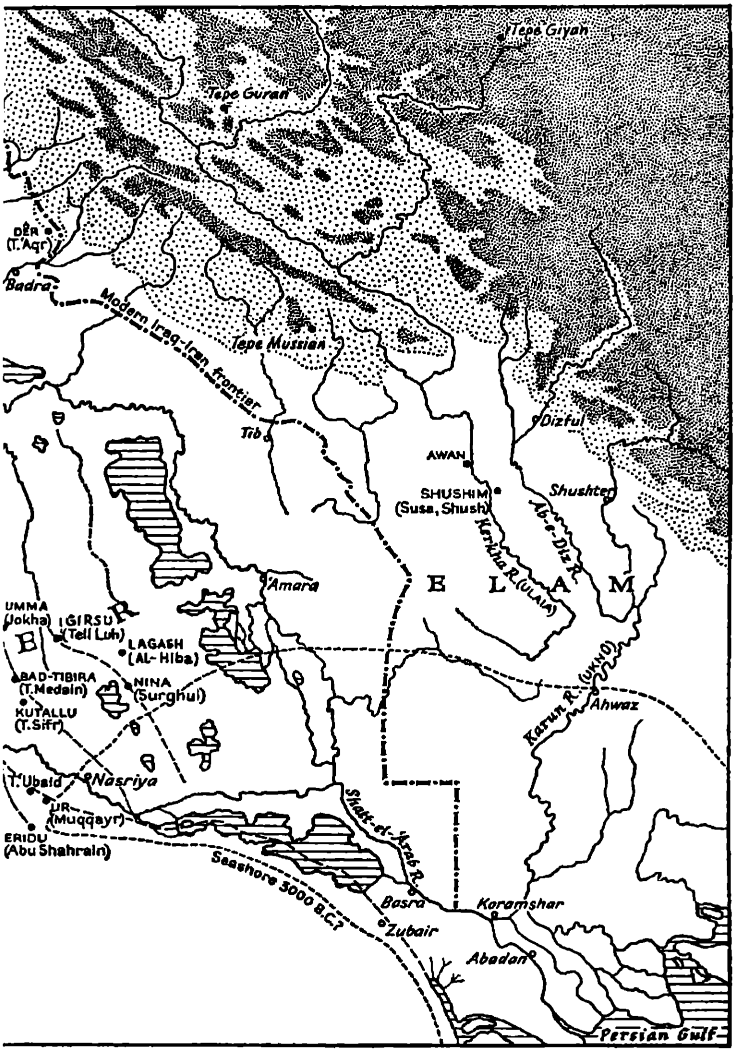


Map 1 : The Aegean World


MESOPOTAMIA
GEOGRAPHY PREHISTORY
THIRD MILLENNIUM B.C.
0 50 100 150 Miles
Land over 1500m.
" " 500m.
Basra Modern towns
Tepe Gawra Ancient sites
MARI Ancient names
(Prehistoric & Proto-historic sites are underlined)
Main ancient roads
Line of 10 inches rain
Taurus Mountains
Diyarbakr
Tigris R.
Pir Hussain
CILICIA
Adana
Sakjegözü
Urfa
Mardin
NASIPINA
T.Chagar Bazar
KARKEMISH
HARRANU
GUZANA
(T.Halaf)
T.Brak
Amanus
'Amq
Antioch
T.Judeide
Halab (Aleppo)
J. Abdel Aziz
Jazirah
EBLA
UGARIT
(Ras-Shamra)
Lattaqiah
Orontes R.
Syrian Plains
Euphrates R. (PURRATU)
Khabur R.
HAMA
Jabal Bishri
Deir-ez-Zor
Homs
Tripoli
TIDMUR
(Palmyra)
MARI
Abu-Kemal
Baghuz
GUBLA
(Byblos)
AMURRU
Beirut
Lebanon
Damascus
Syro-Arabia
MEGIDDO
PALESTINE
Jordan R.
Amman
JERICHO
Dead Sea


Armenia
NAMAR
Zakho
Upper Zab R.
Shanidar
Urmiah
Azerbaijan
Mianeh
Rowanduz
T.Arpachiya
Tepe Gawra
Mosul
NINUA (NINEVEH)
Yarim Tepe
ERBILLUM (Erbil)
GUTI
T.Hassuna
SIMURRUM
Zarzi
Suleimaniya
Jarmo
ASSUR
Lower Zab R.
ARRAPHA (Kirkuk)
Halabja
Darband-i-Gawr
LULLUBI
Hamadan
Jabal Hamrin
Wadi Tharthar
Tigris R. (IDIQLAT)
Samarra
Adhaim R.
Sar-i-Pul
Kermanshah
Tepe Giyan
HANAT (Ana)
Diyala R.
Khaneqin
T. es-Sawwan
TUTTUL (Hit)
Ramadi
ESHNUNNA
Khafaje
AWAN
Kerkha R.
DER
Baghdad
SIPPAR
AKKAD
T.'Uqair
Jemdet Nasr
ELAM
Kut
Tepe Musian
BAB-ILIM (Babylon)
KISH
Hilla
NIPPUR
SHUSHIM (Susa)
Amara
Najaf
SUMER
LAGASH
Marshes
URUK
Qal'at Haj Muhammad
Nasriya
Qurna
al'Ubaid
UR
ERIDU
Seashore 3000 B.C.?
Basra
Shatt-el-Arab R.
To DILMUN, MAGAN a MELUHHA via the Per Gulf
Desert

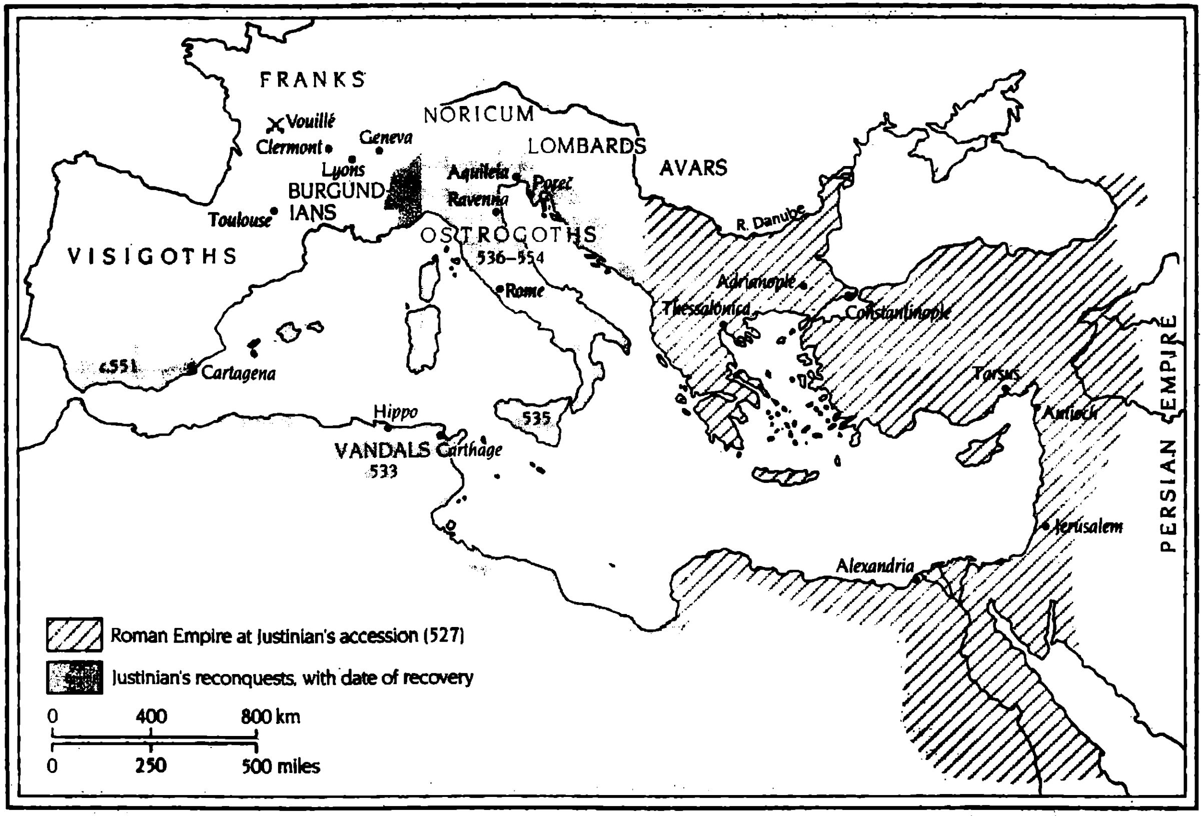

SUMER and AKKAD
0
25
50
75 Miles
Land over 1500m.
" " 500m.
URUK
Ancient names
(Warka)
Modern names
oNasriya
Modern towns
Ancient course of rivers
to MARI
to ASSUR
Euphrates R.
Diyala R.
Ba'quba
Chega Mami
Mandali
ESHNUNNA
(T. Asmar)
TUTUB
(Khafaje)
T. Aqrab
NERIBTUM
(Ishchâli)
Ramadi
RAPIQUM
Felluja
Baghdad
SIPPAR
(Abu-Habba)
AKSHAK
(T. 'Umar)
A K K A D
T. 'Uqair
Tigris R. (IDIQLAT)
KUTHA
(T. Ibrahim)
KID-NUN?
(Jemdet-Nasr)
KISH
(Al'Uhaimir)
Kerbela
BAB-ILIM
(Babylon)
Hilla
LARAK?
Kut-el-Imara
BARSIPPA
(Birs Nimrud)
DILBAT
(Dulaim)
MARAD
(Wanna-wa-Sadum)
NIPPUR
(Nuffar)
PUZURISH-DAGAN
(Drehem)
Nejef
Diwaniya
ISIN
(Bahriyat)
KISSURA
(Abu-Hatab)
SHURUPPAK
(Fara)
S U M
Arabian Desert
Euphrates R. (PURATTU)
Samawa
URUK
(Warka)
LARSA
(Sankara)


Tepe Giyan
Tepe Guran
DER
(T. Aqr)
Badra
Modern Iraq-Iran frontier
Tepe Mussian
Tib
AWAN
SHUSHIM
(Susa, Shush)
Dizful
Shushter
Ab-e-Diz R.
Kerkha R. (ULAIA)
E L A M
'Amara
UMMA
(Jokha)
GIRSU
(Tell Luh)
LAGASH
(AL-Hiba)
BAD-TIBIRA
(T. Medain)
NINA
(Surghul)
KUTALLU
(T. Sifr)
Karun R. (UKNU)
Ahwaz
T. Ubaid
Nasriya
UR
(Muqqayr)
ERIDU
(Abu Shahrain)
Shatt-el-Arab R.
Seashore 3000 B.C.?
Basra
Zubair
Koramshar
Abadan
Persian Gulf



Map 4 : Greece and the Aegean

Map 5



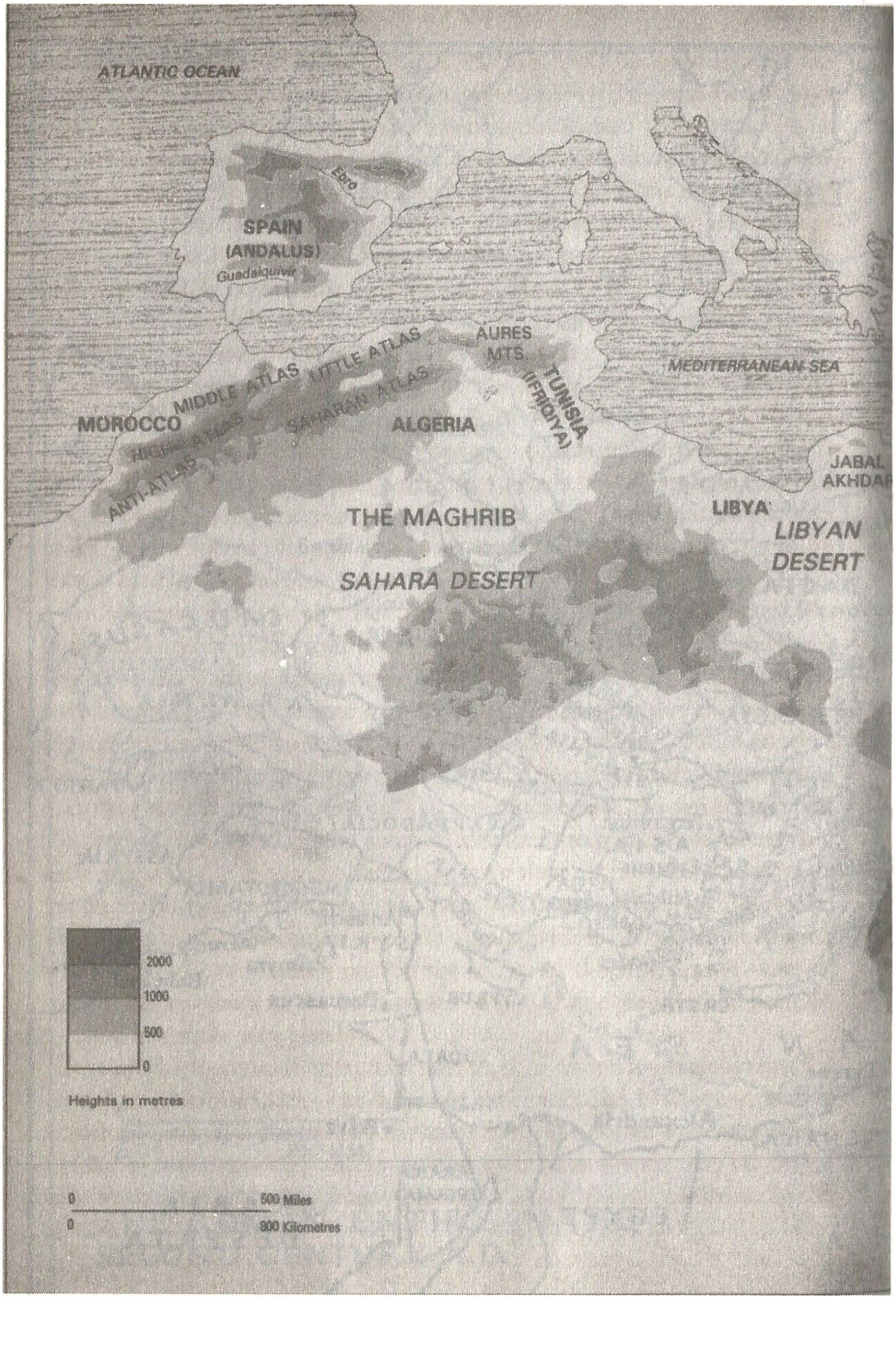
THE MEDITERRANEAN IN THE REIGN OF JUSTINIAN



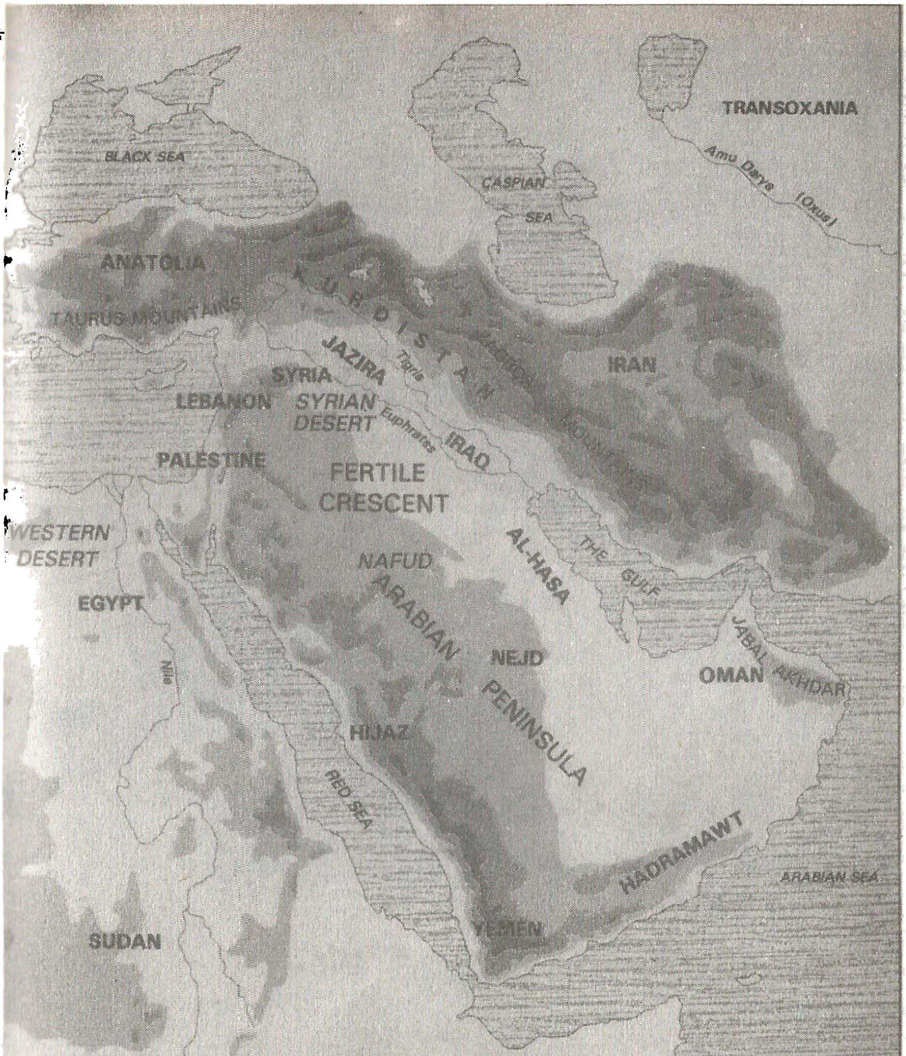
THE ROMAN EMPIRE IN THE SECOND CENTURY A.D.

1

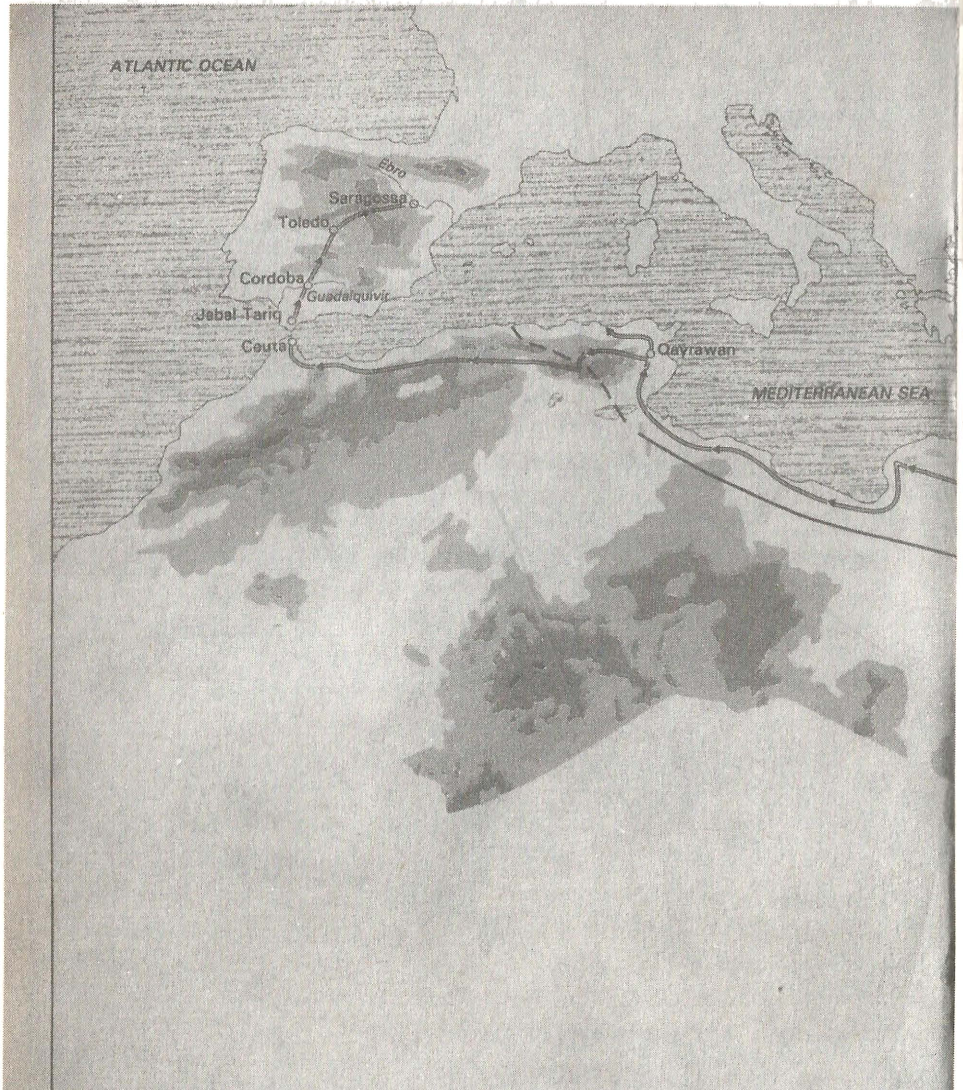

EDGAR HOLLOWAY
Olbia
DACIA
mium
BLACK SEA
CAUCASUS
MOESIA
Sinope
Byzantium
Nicomedia
THRACIA
ARMENIA
BITHYNIA ET PONTUS
GALATIA
Ankara
PARTHIA
CEDONIA
AEGEAN SEA
Pergamum
ASIA
CAPPADOCIA
Actium
Ephesus
ASSYRIA
Athens
Miletus
LYCIA ET PAMPHYLIA
CILICIA
MESOPOTAMIA
Delos
Antioch
Tarsus
SYRIA
Euphrates
Rhodes
Palmyra
Babylon
Tigris
CRETE
CYPRUS
Damascus
AN SEA
JUDAEA
Cyrene
Alexandria
Petra
RENAICA
ARABIA PETRAEA
EGYPT
ARABIA DESERTA
A

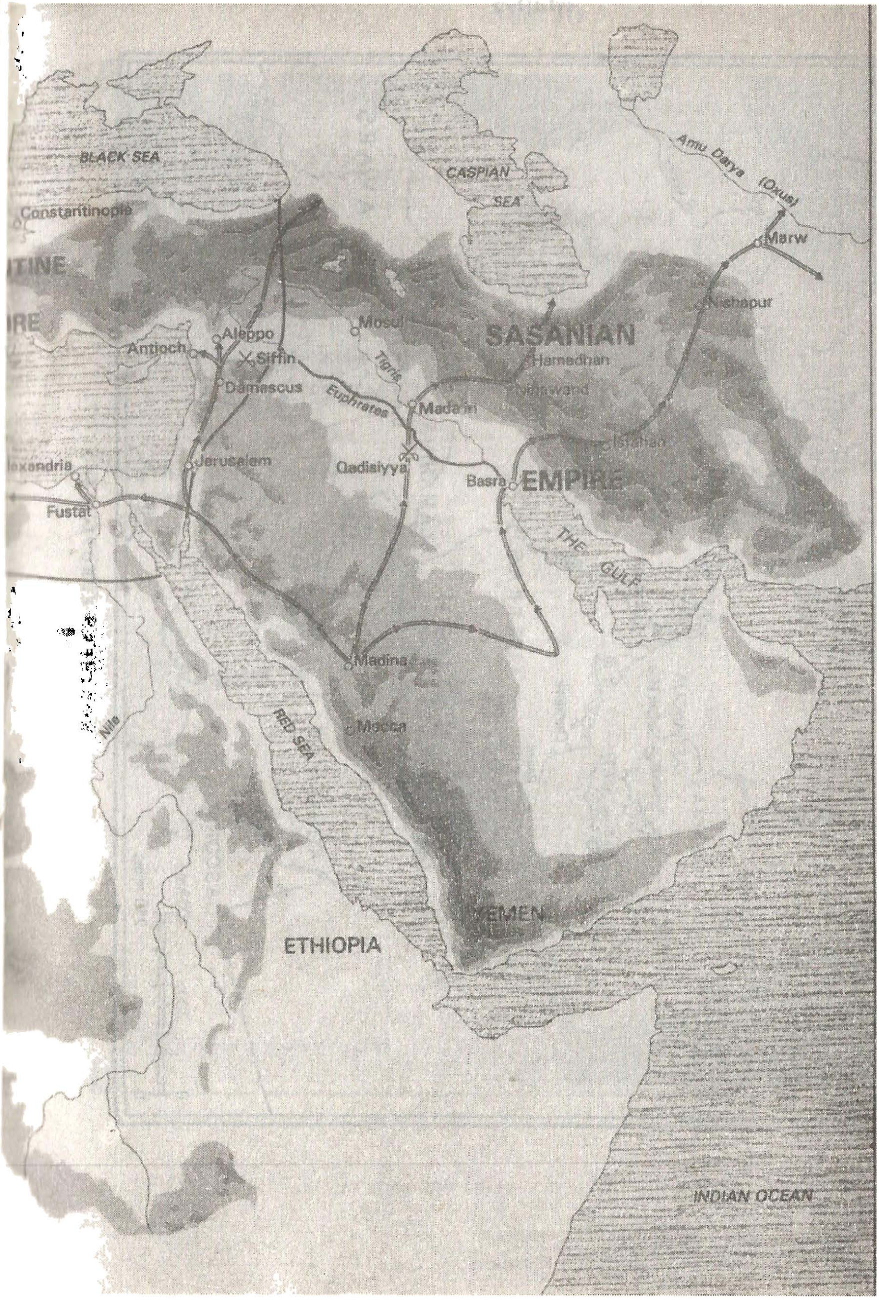

ATLANTIC OCEAN
Ebro
SPAIN
(ANDALUS)
Guadalquivir
AURES
MTS.
LITTLE ATLAS
MIDDLE ATLAS
SAHARAN ATLAS
TUNISIA
(IFRIQIYA)
MEDITERRANEAN SEA
MOROCCO
HIGH ATLAS
ANTI-ATLAS
ALGERIA
JABAL
AKHDAR
LIBYA
THE MAGHRIB
LIBYAN
DESERT
SAHARA DESERT
2000
1000
500
0
Heights in metres
0
500 Miles
0
800 Kilometres

7

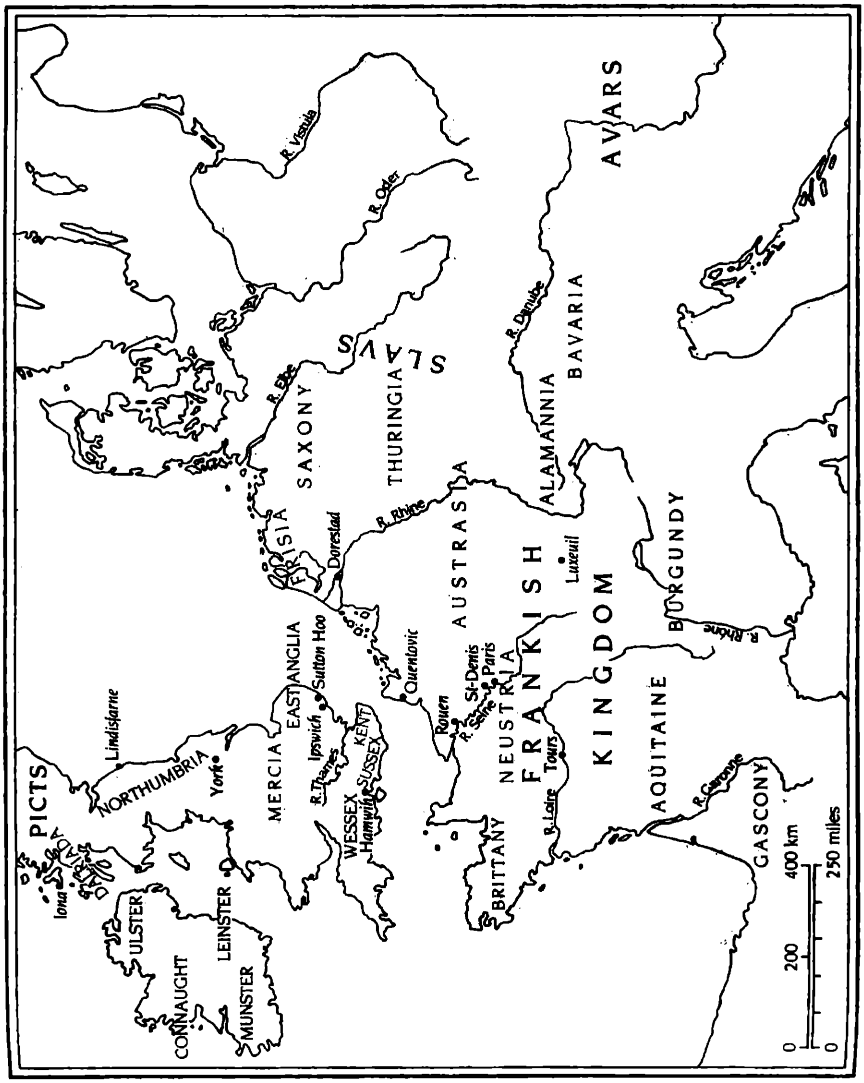

BLACK SEA
CASPIAN
SEA
TRANSOXANIA
Amu Darya (Oxus)
ANATOLIA
TAURUS MOUNTAINS
KURDISTAN
JAZIRA
Tigris
SYRIA
LEBANON
SYRIAN
DESERT
Euphrates
IRAQ
IRAN
PALESTINE
FERTILE
CRESCENT
WESTERN
DESERT
NAFUD
ARABIAN
PENINSULA
AL-HASA
THE GULF
EGYPT
Nile
NEJD
OMAN
JABAL AKHDAR
HIJAZ
RED SEA
HADRAMAWT
ARABIAN SEA
YEMEN
SUDAN
ETHIOPIA
White Nile
Blue Nile
INDIAN OCEAN

Map


ATLANTIC OCEAN
Ebro
Saragossa
Toledo
Cordoba
Guadalquivir
Jabal Tariq
Ceuta
Qayrawan
MEDITERRANEAN SEA
Boundaries of the Byzantine empire
Expansion of Muslim power outside Arabia
0
500 Miles
0
800 Kilometres


BLACK SEA
Constantinople
CASPIAN
SEA
Amu Darya
(Oxus)
Marw
Nishapur
SASANIAN
Hamadhan
Mosul
Aleppo
Antioch
Siffin
Damascus
Tigris
Euphrates
Mada'in
Isfahan
Jerusalem
Qadisiyya
Basra
EMPIRE
Fustat
THE
GULF
Madina
Mecca
RED SEA
Nile
YEMEN
ETHIOPIA
INDIAN OCEAN

Map 9

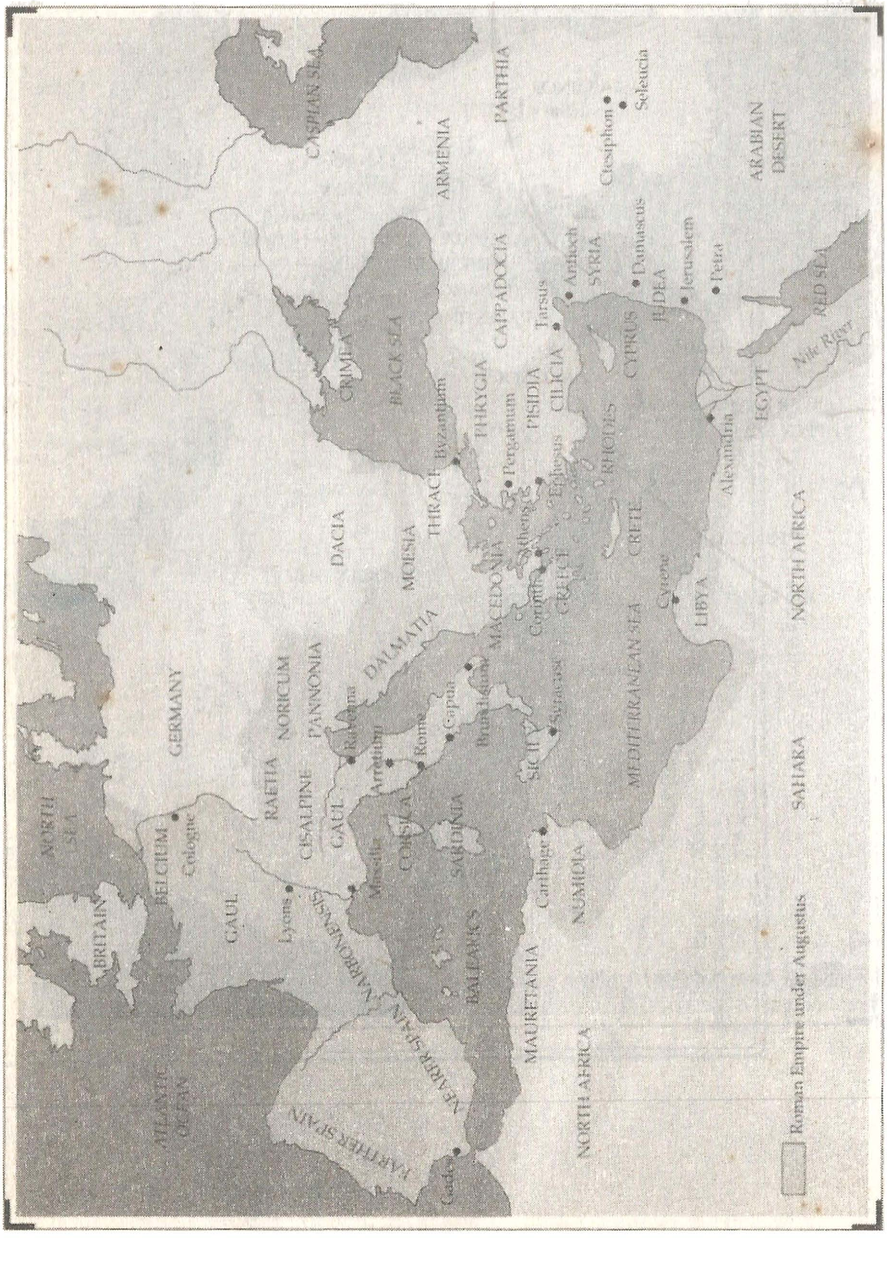


NORTHERN EUROPE, c.600

Map 10


ASIA MINOR
(Anatolia)
CASPIAN SEA
FERTILE CRESCENT
ASSYRIA
MESOPOTAMIA
Nineveh
MEDITERRANEAN SEA
Tigris River
CYPRUS
SYRIA
PHOENICIA
AKKAD
LEBANON
ZAGROS MOUNTAINS
BABYLONIA
PALESTINE
Babylon
PERSIA
Jerusalem
Giza
Memphis
SUMER
DEAD SEA
Euphrates River
LOWER EGYPT
Amarna
Ur
UPPER EGYPT
Persepolis
Thebes
Luxor
PERSIAN GULF
First Cataract
ARABIAN DESERT
Nile River
Fourth Cataract
RED SEA
Areas of greatest fertility

Map 11 : The Roman Empire under Augustus



इस पुस्तक में प्राचीन और मध्यकालीन दौर की सामाजिक संरचनाओं और संस्कृतियों का परिचय दिया गया है। मानव जीवन के आविर्भाव से लेकर रोमन साम्राज्य के पतन के दौर के समाजों के विकास, मध्यकालीन यूरोप की रचना और इस्लाम के आगमन का अध्ययन यहां प्रस्तुत किया गया है। इसके विवेचन के केंद्र में यूरोप, पश्चिम एशिया और मिस्र की संस्कृतियां हैं।

यह पुस्तक जिन विषयों पर विमर्श प्रस्तुत करती है, उनमें प्रमुख हैं: खाद्यान्न उत्पादन की शुरुआत, ताम्रयुगीन समाजों का आविर्भाव, प्राचीन मेसोपोटामियाई और मिस्री सभ्यताएं, ग्रेसियो-रोमन पुरातन संस्कृति, दासप्रथा पर आधारित उत्पादनपद्धति, यूरोपीय सामंतवाद, इसलामी दुनिया से लगाकर मंगोलों के आक्रमण तक की संस्कृति। कहने की जरूरत नहीं कि इस विषय से संबंधित विपुल साहित्य मौजूद है। लेकिन काफी समय से इस बात की जरूरत महसूस की जा रही थी कि छात्रों की जरूरत को ध्यान में रखकर सारी सामग्री को संक्षेप में सर्वेक्षण के रूप में एक पुस्तक में समेटा जाए और इस पुस्तक में ऐसा ही किया गया है।

इस पुस्तक की रचना में विश्वविद्यालय के स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों की जरूरत का विशेष ध्यान रखा गया है। इसके बावजूद बड़े फलक पर सूचनाओं का संकलन किया गया है, इसमें इस विषय से संबद्ध हाल की बहसें भी शामिल हैं जिनमें आम पाठकों की भी दिलचस्पी हो सकती है।

अमर फ़ारूकी हंसराज कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) में इतिहास पढ़ाते हैं। इस समय वे नेहरू मेमोरियल म्युजियम और लाइब्रेरी, नई दिल्ली में फेलो हैं। उनकी अन्य रचनाएं हैं: *कॉलोनियल फॉरेस्ट पॉलिसी इन उत्तरांचल* और *स्मगलिंग एज सबवर्सन*। डॉ. गंगाधर अधिकारी के लेखों का संकलन और संपादन किया है। कई महत्वपूर्ण शोध पत्रों में वे लगातार लिखते रहते हैं।

ISBN 81-7917-010-1

मूल्य 225.00

ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड
B-7, सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर,
दिल्ली-110092